श्रीविचारसागर
और
श्रीवृत्तिरत्नावलि

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई.



॥ श्रीविचारसागर ॥

साधु-श्रीनिश्चलदासजीकृत

तथा

ब्रह्मनिष्ठ-पंडित-श्रीपीताम्बरजीकृत

९९४ टिप्पण । अरु

श्रीवृत्तिरत्नावलि

औ

श्रीपंचदशीसटीकासभाषागत श्रीनाटकदीप इत्यादिसहित ।

॥ नवीनरूढ़िः

॥ दोहा ॥

ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी बानी वेद ॥
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेदभ्रम छेद ॥ १ ॥

(वि. सा. तृ. त.)

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास™,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

॥ दोहा ॥

अस्ति-भाति-प्रिय-सिंधुमैं,
नामरूप जंजाल ॥
लखि तिहिं आत्मस्वरूप निज,
है तत्काल निहाल ॥ १ ॥

वृ. प्र.

साधु श्रीनिश्चलदासकृत विचारसागर ब्रह्मनिष्ठ पंडित श्रीपीतांबरकृतटीकासहित,
इस पुस्तकको शरीफ साले महंमद इन्होंके पुत्र दाऊद भाई और अल्लादीनभाई
इनके पाससें सब रजिस्टरीहकसहित हमने ले लिया है.

मूल्य : ५०० रुपये मात्र ।

संस्करण : जनवरी २०१७, सवंत् २०७३

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013



शरीफ सालेमहंमद.

यह आवृत्ति सुज्ञ श्री शरीफ सालेमहम्मदकी
प्रसिद्ध की हुई आवृत्ति परसे छपी है.



पण्डित पीतांबर पुरुषोत्तमजी.

॥ ॐ गुरुपरमात्मने नमः ॥

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ प्रथमा वृत्तिकी प्रस्तावना ॥

प्राणिमात्र केवलसुखकूं चाहै हैं औ दुःखकी अत्यंतनिवृत्तिकूं इच्छै हैं, परंतु ऐसी सर्वकी इच्छा पूर्ण नहीं होवै है। अनेक पुरुष सुखके निमित्त धन-पुत्र-स्त्री आदिक पदार्थनकी प्राप्तिका प्रयत्न करै हैं औ दुःखकी निवृत्तिअर्थ दान तप-योग-औषध-मंत्र-आदिकका आश्रय लेवै हैं, परंतु दीनके दीन ही रहै हैं। काहेतैं?सुखप्राप्ति औ दुःखनिवृत्तिके हेतु उक्तपदार्थ नहीं हैं । तिन पदार्थोंकरिके उलटी दुःखकी प्राप्ति औ सुखकी न्यूनता होवै है। जैसैं कोई पुरुष अफीममदिरादिकके अधिक अधिक ग्रहणकरि सुख मानै हैं, परंतु तिनकरि दुःखकूं ही अनुभवकरिके मरै हैं, तैसैं जे जे पुरुष सुखप्राप्ति औ दुःखनिवृत्तिअर्थ देहआसक्तिकरि जगत्के तुच्छपदार्थरूप मदिरादिक व्यसनका आश्रय करै हैं। वे दुःखकूं अनुभवकरिके जन्मै हैं औ मरै हैं।

केवलसुखकी प्राप्ति औ दुःखकी अत्यंतनिवृत्तिअर्थ पुरुष, विचित्रपंथ औ तिनके आचार्यनका आश्रय लेवै हैं। तिसकरि बी तिनोंकी इच्छा पूर्ण नहीं होवै है। किंतु वृथाकष्टकूं ही अनुभव करै हैं ॥

केवलसुखकी प्राप्ति औ दुःखकी अत्यंतनिवृत्तिअर्थ केइ न्यायादिक अनेकपांडित्यमतकूं आश्रय करै हैं तथापि तिनोंकरि बी पुरुषनकी इच्छा पूर्ण नहीं होवै है। यातैं—

केवलसुखकी प्राप्ति औ दुःखकी अत्यंतनिवृत्तिअर्थ आत्मज्ञान (आपका ज्ञान) ही उपयोगी है। अन्य नहीं। जैसैं मृग अपनी कस्तूरीकी सुगंधका अनुभवकारिके औरठौर कस्तूरी ढूंढै है औ दुःखकूं अनुभव करै है, तैसैं पुरुष वांछितविषयके लाभरूप निमित्ततैं अंतर्मुखवृत्तिमैं स्वरूपआनंदके प्रतिबिंबकूं अनुभवकरिके विषयमैं आनंदकूं ढूंढै है । तिसकरि दुःखकूं ही अनुभव करै है।

बड़ा आश्चर्य है जो पुरुष समुद्रकी गंभीरता, पवनका वेग, अनेक यंत्र, तारोंकी गति, इत्यादिककी शोध करै हैं। परंतु आपके ज्ञानकी शोध नहीं करै हैं औ जैसैं और बुद्धिरहित प्राणी आपकूं जानै विना आहार, निद्रा, भय औ मैथुनका अनुभवकारिके मरै है तैसैं यह बुद्धिसहित मनुष्यप्राणी बी मरै है ॥

आत्मज्ञान (आपका ज्ञान) अद्वितीयके प्रतिपादक बहुतसंस्कृतग्रंथनसैं गुरुद्वारा पुरुषकूं प्राप्त होवै है॥ तैसैं फारसी, अरबी, अंग्रेजी आदिक भाषामैं बी कोई कोई आत्मज्ञानके बोधक ग्रंथ हैं। परंतु संस्कृतमैं जैसैं विस्तीर्ण ग्रंथ हैं, तैसैं औरभाषाविषै नहीं हैं। हिंदुस्थानी भाषामैं बी आत्मज्ञानके बोधक ग्रंथ हैं, परंतु आत्मज्ञानमैं उपयोगी इस जैसा संपूर्ण प्रक्रियाग्रंथ दूसरा नहीं है। श्रीनिश्चलदासजीनै भाषावालोंपर बड़ी कृपा कारिके स्थूलबुद्धिवालोंको बी उपयोगी होवै, ऐसा यह श्रीविचारसागर ग्रंथ रच्या है ॥

आत्मज्ञानके अर्थ औरपदार्थनका ज्ञान अपेक्षित है। जैसैं भोजनकी सिद्धिअर्थ अग्नि-अन्नजल आदिककी अपेक्षा रहै है, तैसैं

आत्मज्ञानअर्थ जीव, ईश्वर औ जगत्का ज्ञान अपेक्षित है औ तिनकी सिद्धिअर्थ औरपदार्थनका ज्ञान अपेक्षित है ॥ सो ज्ञान, ग्रंथ औ गुरुकरि औ अपनै विचारकरि प्राप्त होवै है।यातैं

प्रक्रियाके ज्ञान विना आत्मज्ञानकी दृढ़ता होवै नहीं। यद्यपि इस ग्रंथमैं केवल महावाक्यके श्रवणसैं ही ज्ञान होवै है। ऐसा अंक १८ सें अंक २३ पर्यंत प्रतिपादन किया है। तथापि तहां कह्या है:-असंभावना औ विपरीतभावनारहित जिसकी बुद्धि होवै तिस उत्तम अधिकारीकूं ही केवल महावाक्यके श्रवणकरि ज्ञान होवै है। सर्वकूं नहीं। ऐसैं। उत्तमअधिकारी जगत्मैं क्वचित् ही होवै हैं। यातैं जिसकूं महावाक्यके श्रवणसैं असंभावना औ विपरीतभावनासहित बोध हुवा है, तिसकूं तिनकी निवृत्तिअर्थ अनेकयुक्तिसहित पद पदार्थ श्रवणकरिके विचारे चाहिये ॥

आत्मबोधमैं उपयोगी प्रक्रिया इस ग्रंथमैं अनेक हैं। यातैं जिस पुरुषकूं परमानंदकी प्राप्ति औ अनर्थकी निवृत्तिरूप मोक्षकी इच्छा होवै, तिसकूं यह ग्रंथ मानों दुःखरूप संसारसमुद्रसैं लंघावनैकूं शीघ्र चलनैवाला अग्निबोट है किंवा विमान ही है, ऐसैं कहैं तौ अनुचित नहीं है ॥

इस ग्रंथमैं द्वेषकरिके कोई पंथकी निंदा नहीं है औ पक्षकरिके कोई पंथकी स्तुति नहीं है॥ तैसैं न इसमैं कोई पंथ वा धर्मका प्रतिपादन है। किंतु यामैं केवलआत्मज्ञान (आपका ज्ञान) जो सर्वका निजधर्म है, तिसका प्रकार ही अनेकयुक्तिकरि दिखाया है।

केई पुरुष उपासनामैं, केई सिद्धिमैं, केई वेषमैं औ केई औरकिसीमैं अटकि रहे हैं औ आपमैं अथवा औरमैं तिनकी प्राप्ति नहीं देखिके आत्मज्ञानकी तरफ आलसी होइके शंकासहित रहे हैं॥ ऐसी और बी अनेक शंका होवै हैं, सो सब इस ग्रंथके विचारनैकरि दूरि होवै हैं ॥

विचार(का)सागर इस ग्रंथका नाम होनैतैं इसके प्रकरणके नाम तरंग (मौजा) रखे हैं। इसमैं सर्वमिलिके सप्ततरंग हैं। तिनमें-

१ प्रथमतरंगविषै अनुबंध(ग्रंथका आधिकारी, संबंध, विषय औ प्रयोजन)का वर्णन है। दूसरे तरंगमैं अनुबंधका विशेषकरिके वर्णन है। जैसैं कोई अपनी जमीनपर घर रचै, तहां दूसरा पुरुष आइके घरके धर्नीसैं जमीनका दावा करै औ रचे हुये घरकूं पायेसैं उखाडि डाले। तब घरका धर्नी अपनी जमीनका धनीपना सिद्धकरिके फेर घरकूं रच लेवै। तब निःशंक होवै है ॥ तैसैं इस ग्रंथके प्रथमतरंगमैं अनुबंध दिखाये हैं औ तिसका—

२ दूसरे तरंगमैं पूर्वपक्ष (वादीका पक्ष)करिके खंडन किया है। फेर सर्वशंकाका क्रमसैं समाधान करिके अनुबंधका मंडन किया है ॥

३ तीसरे तरंगमैं मुमुक्षुकूं शिक्षाअर्थ गुरुके औ शिष्यके लक्षण औ गुरुकी भक्तिका प्रकार औ फल दिखाया है ॥

४ चौथेतरंगमैं उत्तमअधिकारीकूं उपदेशका प्रकार दिखाया है ॥

५ पांचवें तरंगमैं मध्यमअधिकारीकूं उपदेशका प्रकार दिखाया है। तिसकूं अहंग्रहउपासनाकी विधि कही है ॥

६ छटे तरंगमैं कनिष्ठ-(कुतर्कबुद्धि) अधिकारीकूं उपदेशका प्रकार दिखाया है ॥

७ सातवें तरंगमें जीवन्मुक्त औ विदेहमुक्तके व्यवहारका प्रकार दिखाया है ॥

सातों तरंगोंका विशेषभावार्थ "मार्गदर्शक अनुक्रमणिका" करि जान्या जावैगा ॥

और ग्रंथकार जैसें वेदआदिकके प्रमाणकरि ग्रंथकूं पूर्ण करै हैं तैसा इसमें नहीं है । किंतु श्रुतिके अर्थकूं निर्णय करनैवाली युक्तियां इस ग्रंथमें प्रधान हैं । युक्तिकरि सर्वप्रकारके अधिकारीकूं सुखसें बोध होवै है । एक दो ठौरपर आवश्यकता धारिके श्रुति रखी है ॥

इस ग्रंथके समान मुमुक्षुकूं उपयोगी भाषाग्रंथ आधुनिक समयमैं अद्वैतमतविषै नहीं है । संस्कृतमैं बी ऐसैं संपूर्ण वेदांतकी प्रक्रियाके ग्रंथ अल्प ही हैं । ग्रंथकर्त्ता श्रीनिश्चलदासजीनै दूसरे औ तीसरे अंकमैं ग्रंथकी महिमा कही है । सो यथास्थित ही कही है । आत्मबोधविषै उपयोगी कोई बी प्रक्रिया इसमैं नहीं ऐसा नहीं है औ सो बी कहुं वेदविरुद्ध नहीं है ॥

बहुतकरिके वेदांतप्रक्रियाके ऊपर भाषा पढ़नैवालोंकी रुचि इस ग्रंथकी उत्पत्तिसैं अनंतर ही हुई है । इस ग्रंथकी उत्पत्तिसैं पूर्व भाषा जाननैंवाले अनेक गृहस्थ औ साधुआदिक सत्संगी वेदांतप्रक्रियाकूं यथास्थित नहीं जानते थे । इसके अनंतर अब बहुत पुरुष प्रक्रियाकूं जनिके निःसंदेह ब्रह्मनिष्ठ हुवे हैं ॥ "वृत्तिप्रभाकर" जो इस ग्रंथके कर्त्तानै किया है, तिसका जिस जिस पुरुषने सम्यक् अभ्यास किया है, सो मानों पंडित ही भये हैं औ तैसें पुरुषनके साथि संस्कृतके वेत्ता जब शास्त्रार्थ करते हैं तब आश्चर्यकूं पावते हैं औ कहते हैंः—अहो ! क्या इन भाषा जाननैवालोंकी बुद्धि है !

इस ग्रंथमैं अनुबंधनिरूपण है । ऐसा अनुबंधका सुंदर निरूपण संस्कृतग्रंथनविषै बी मिलना कठिन है ॥ जैसैं जेवरीविषै सर्प अध्यासरूपकरि प्रतीत होवै है, तैसैं परमात्माविषै सर्वस्थूलसूक्ष्मप्रपंच अध्यासरूप जीवकूं प्रतीत होवै है । ऐसा वेदांतका सिद्धांत है । जेवरीविषै सर्पभ्रममैं अध्यासकी सामग्री कही है । परंतु जगत्अध्यासमैं तौ कोई बी सामग्री नहीं है । सामग्री विना ही प्रतीत होवै है । ऐसा इस ग्रंथमैं प्रौढिवादकरि सिद्ध किया है ॥ इस प्रकारका अध्यासनिरूपण कोई संस्कृतग्रंथविषै बी बहुतकरि नहीं देखिये है । और बी अनेक उपयोगी सिद्धांतअविरुद्ध स्वतंत्र अद्भुत विचार ग्रंथकर्त्तानै इसमैं रखे हैं ॥

ग्रंथके कर्त्तानै इसकी भाषा बहुत सरल करी है औ जैसैं और ग्रंथकार अर्धसंस्कृतमिश्र भाषामैं ग्रंथकूं रचिके कठिन करि देवै हैं । ऐसा इसमैं नहीं किया है । बहुत ठिकानैं कठिन प्रसंगनकूं वारंवार लिखे हैं । जिसकरि स्थूलबुद्धिमान् बी समझि सके । जहां जहां कठिन संस्कृतशब्द रखे हैं, तहां तहां तिन शब्दोंके अर्थ खोले हैं । ऐसा ग्रंथकूं सरल किया है । तथापि इस ग्रंथका श्रवण औ अभ्यास अनेकपुरुषनकूं कठिन प्रतीत होवै है । सो कठिनता इस ग्रंथकूं प्रक्रियाकरि पूर्ण होनैतैं औ विचाररूप होनैतैं है औ इसका विषय बी दुर्बोध है । परंतु इस नवीनरूढिसैं अंकित ग्रंथकूं विचारनैसैं इसका श्रवण औ अभ्यास अत्यंत सुगम होवैगा ॥

एक ही यह ग्रंथ ऐसा उत्तम है जो इसकूं मुमुक्षु भले प्रकार विचारै तौ शीघ्र अपनै स्वरूपकूं जानै औ आत्मज्ञानके निमित्त और कोई बी दूसरे ग्रंथके देखनैकी अपेक्षा रहै नहीं; परंतु इतना है जो इस ग्रंथकूं गुरुद्वारा ही देखना चाहिये । काहेतैं ? आत्मज्ञान वरकरि अथवा बहुत पढ़नैकरि अथवा और किसी स्वतंत्रउपाय-

करि प्राप्त नहीं होवै है। ऐसा वेदांतका सिद्धांत है ॥ इसके अंक ९४ में कह्या हैः-

॥ दोहा ॥

"पेख चारिअनुबंधयुत,
पढ़ै सुनै यह ग्रंथ ॥
ज्ञानसहित गुरुसैं जु नर,
लहै मोछको पंथ ॥ १ ॥"

औ इसके अंक ९७ मैं बी कह्या हैः-

"बिन गुरुभक्ति प्रवीनहु,
लहै न आतमज्ञान ॥"

यातैं जिज्ञासुनकूं ऐसी विनति है. जो इस ग्रंथकूं गुरुद्वारा विचारना ॥

इस ग्रंथके कर्त्ता श्रीनिश्चलदासजीका संपूर्ण जन्मचरित्र इसके साथि लिखनैका मेरा विचार था, परंतु ऐंसे साधनकी अप्राप्ति होनैतैं जो कछुक मेरे श्रवणमैं आया है, सो इहां लिखूं हूं॥

श्रीनिश्चलदासजीका जन्म कहां औ कब हुवा है, सो ज्ञात नहीं है ॥ विद्याअभ्यासमैं इनोंका वड़ा स्नेह था । १४ सैं ६० वर्षपर्यंत विद्याअभ्यासमैं ही काल व्यतीत किया ॥ इस ग्रंथके ५२६ वें अंकमैं तिनके अभ्यासका यह कछुक वर्णन हैः-

॥ दोहा ॥

"सांख्य न्यायमैं श्रम कियो,
पढ़ि व्याकरण असेष ॥
पढ़े ग्रंथ अद्वैतके,
रह्यो न एकहु सेप ॥१११ ॥
कठिन जु और निबंध हैं.
जिनमैं मतके भेद ॥
श्रमतैं अवगाहन किये,
निश्चलदास सवेद ॥ ११२ ॥

ऐसैं अभ्यासवान् पुरुष आधुनिक समयमैं क्वचित् ही देखनैमैं आवे हैं ॥

इस ग्रंथकरि श्रीनिश्चलदाजीकी अद्भुत-निष्ठाका अनुमान होवै है । काहेतैं ? जो इसमैं सिद्धांतकी वार्त्ता कोईठौरमैं कछु बी छुपाइके नहीं कही है औ मुमुक्षुकूं निष्ठा करावनैके प्रकार सम्यक्रीतिसैं इसमैं रखे हैं । औ तिन्होंका व्यवहार बी अतिउत्तम औ निःशंक था । जैसैं कोई ज्ञानीपनैका अभिमान धारिके देहाभिमान आदिकविषै गिड़े रहते हैं, तैसैं यह महात्मापुरुष नहीं थे । महाविरक्तदशावाले औ बड़े ब्रह्मनिष्ठ थे । ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थितिमैं ही सदा मग्न रहते थे ॥

न्यायव्याकरणआदिक बुद्धिकूं तीव्र करै हैं औ तीव्रबुद्धिका वेदांतमैं बी उपयोग है । तथापि तिनका बहुतअध्ययन अनात्मा(द्वैत)की तरफ बुद्धिकूं जोडै है औ मतिकूं मलिन करि डारै है । ऐसा कहै हैं जो न्यायसैं एकशत गुन वेदांत बिचारैं, तब न्यायकरि दूषित हुई बुद्धि शांतिकूं पावै है ॥ श्रीनिश्चलदासजी व्याकरणन्यायआदिकमैं अतिकुशल थे तौ बी तिनोंकी वेदांतपर ही प्रबल निष्ठा थी ॥

आप कोईकोईकूं न्यायादिशास्त्र पढ़ावते थे तहां कोई प्रभातमैं न्यायादि पढ़ने आवै तिसकूं नहीं पढ़ावते थे औ कहते थे जो प्रभातमैं अनात्मा (द्वैत)के प्रतिपादकग्रंथनकूं हम नहीं पढ़ावैंगे ॥

इन दृष्टांतोंकारि श्रीनिश्चलदासजी अद्भुत-निष्ठावान् थे । ऐसा सिद्ध होवै है ॥

श्रीनिश्चलदासजीका पांडित्य तिनकें अभ्यासकरि ही बडा अद्भुत था ऐसा सिद्ध होवै है ।

तिनका "वृत्तिप्रभाकर" ग्रंथ देखिके बड़े बड़े विद्वान् बी श्रीनिश्चलदासजीके पांडित्यकूं सराहते हैं। अधिक क्या कहें ? तिनोंके समयमैं औ अब बी साधुपुरुषनविषै श्रीनिश्चलदासजीके समान कोई बी परिपक्वविद्यावाला पंडित नहीं है ॥

श्रीनिश्चलदासजी पृथ्वीपर जहां विचरते थे तहां वेदांतशास्त्रकी प्रतिदिन कथा करते थे ॥ इस ग्रंथकी औ वृत्तिप्रभाकरकी बी आपनै बहुत वेर कथा करी है। जहां जहां आप श्रवण करावते थे, तहां तहां अनेक साधुनकी सभा श्रवणवास्ते मिलती थी औ अतिरसिकभाषण सुनिके आनन्दवान् होती थी ॥

बहुतकरि श्रीनिश्चलदासजी श्रीकाशीजीविषै ही रहते थे ॥ तहां आप बी कहू श्रवणमैं जाते थे। एक समय श्रीकाशीजीमैं भाषारामायणके कर्त्तासैं विलक्षण महात्मा श्रीतुलसीदासजी कथा करते थे। तहां आप गये थे। प्रसंगसैं श्रीतुलसीदासजीनै कहा, जोः-ईश्वरविषै आवरणशक्ति नहीं है। विक्षेपशक्ति है।" यह सुनिके श्रीनिश्चलदासजीनै कह्या कि, "ईश्वरविषै दोनूं नहीं हैं"। इस बातपर थोडा शास्त्रार्थ हुवा। इस पीछे आप तिस महात्माकी कथामैं गये नहीं। कारण जो अपनै वचनोंकरि कहुं किसीकूं खेद होवै तौ भला नहीं। ऐसा विचारिके गये नहीं ॥ परंतु आप तिन महात्माकी निष्ठाकी बहुत श्लाघा करते थे। तैसैं श्रीतुलसीदासजी बी श्रीनिश्चलदासजीके पांडित्य औ अद्भुतनिष्ठाकी वारंवार स्तुति करते थे। "ईश्वरमैं आवरण औ विक्षेपशक्ति दोनों नहीं हैं" ऐसा इसके अंक २०६ औ २०७ मैं भले प्रकार प्रतिपादन किया है ॥

इस ग्रंथकूं रचनैमैं श्रीनिश्चलदासजीनै कोई बी ग्रंथकी सहायता नहीं लई है। जैसैं कोई सहज पत्र लिखै है तैसैं इसकूं रचि गये हैं। "श्रीवृत्तिप्रभाकर" रच्या तब और ग्रंथोंकूं देखते थे, परंतु सो अपनै ग्रंथकूं निर्दोष करनैकूं देखते थे। औ "श्रीवृत्तिप्रभाकर" मैं अनेक प्रामाणिक ग्रंथनके प्रमाण दिखाये हैं औ तिसमैं अनेकग्रंथनके दोष बी स्पष्ट दिखाये हैं ॥ अब केई केई संस्कृतके वेत्ता पंडित "श्रीवृत्तिप्रभाकर" कूं छुपाइके बांचे हैं। काहेतें ! जो संस्कृतके वेत्ता होइके भाषाग्रंथकी सहायता लेनैकूं तिनकूं लज्जा होवै है। परंतु अतिउत्कृष्ट होनैतैं तिसकी सहायता लेते हैं ॥ "श्रीवृत्तिप्रभाकर" मैं न्याय आदिक अनेकपांडित्यमत भले प्रकार दिखाये हैं। यातैं तिसका पढ़ना कठिन भया है ॥ अन्तके प्रकरणमैं सर्वमतका खंडनकरिके वेदांतमतका प्रतिपादन किया है ॥

हिन्दुस्थानमैं बुंदी विषै रामसिंहराजानै श्रीनिश्चलदासजीकूं बड़े आदरसहित अपनै पास रखे थे औ राजारानी दोनूं तिनोंमैं गुरुभाव रखते थे। श्रीनिश्चलदासजीकी संगतिसैं सो राजा पंडितकी पदवीकूं प्राप्त भया ॥ राजानै एक समय बड़े बड़े पंडितनकी सभा करी थी, तिसमैं शास्त्रार्थ हुवा था। तिसकी राजानै यथास्थित परीक्षा करी। तिस दिनसैं सर्वपंडितजनोंनै तिस राजाका नाम "विद्वान्" करिके रखा। इस राजानै श्रीनिश्चलदासजीकूं विनति करी। जो हिन्दुस्थानी भाषामैं पंडितनकूं उपयोगी होवै ऐसा वेदांतग्रन्थ कोई नहीं है, सो आप करोगे तो सहज ही उनपर उपकार होवैगा। इस प्रेरणाकरि औ भाषाके जाननैवालों पर दयादृष्टि करि आपनैं "श्रीवृत्तिप्रभाकर" बनाया है ॥

श्रीकाशीजीमैं रहिके श्रीनिश्चलदासजीनै विद्याके २७ लक्ष संस्कृतश्लोकनका संग्रह

किया था। आप संस्कृतके बड़े धुरन्धर वेत्ता थे तथापि भाषा पढ़नैवालोंपर बड़ी दयाकरि दो उत्तमग्रंथनकूं प्रगट किये। इस ग्रंथके अंक ५२६ मैं कह्या हैः—

॥ दोहा ॥

"तिन यह भाषा ग्रंथ किय,
रंच न उपजी लाज ॥
तामैं यह इक हेतु है,
दया धर्म सिरताज ॥११३॥

श्रीनिश्चलदासजीनै श्रीकठवल्लीउपनिषदपर संस्कृतमैं व्याख्यान किया है औ वैद्यकशास्त्रका बी एक ग्रंथ रच्या है, ऐसा सुन्या जावै है॥ काव्यशास्त्रमैं बी आप कुशल थे। ऐसा इस ग्रंथकी कविता निर्दोष है। तिसकरि जान्या जावै है॥

श्रीसुन्दरदास जिनका " श्रीसुंदरविलास " प्रसिद्ध है, तिनोंनै औ श्रीनिश्चलदासजीनै मिलिके श्रीदादूजीके पंथकूं अतिशय प्रकाशित किया है॥

श्रीनिश्चलदासजीकूं पंथका अभिमान नहीं था। बड़े निरभिमान थे। बाल्यावस्थासैं आप साधुदशामैं ही रहे थे औ तिसमैं बड़ा विद्या-अभ्यास किया औ पीछे बहुतकारिके ब्रह्म-चिंतनविषै ही मग्न रहते थे। संवत् १९२० की सालमैं श्रीदिल्लीशहरमैं इनोंका देह पड्या है। तिनोंका श्रीकिहडोलीमैं जहां यह ग्रंथ समाप्त भया है, तहां गुरुद्वारा बी है औ अद्यापि तहां तिनोंके शिष्य बी हैं॥

श्रीनिश्चलदासजीका जो ऊपर वृत्तांत लिख्या है, सो बहुत अपूर्ण है है। कोई कृपा करिके इस महात्मापुरुषका सविस्तरवृत्तांत मेरेकूं लिख भेजैंगे सो तिसका और कोई दूसरे समयपर उपयोग करनैकी मेरी बड़ी इच्छा है॥

जिस समयमैं यह ग्रंथ संपूर्ण भया, तिस समयमैं अनेक पुरुष इसकूं लिखाइके रखते थे। औ तिसका अभ्यास करते थे॥ तिस पीछे यह ग्रंथ कलकत्ता, लाहोर, मुंबई आदिक स्थानोंमैं छपा है औ मराठी भाषामैं इसका भाषांतर भया है॥ बंगालीभाषामैं बी इसका भाषांतर हुवा है ऐसा सुन्या है॥

जहां जहां यह ग्रंथ हिन्दुस्तानीभाषामैं छपा है, तहां तहां विभक्त्यंतपदच्छेदरहित औ विचारनैमैं कठिन रूढिके छपे हैं औ कहुं कहुं तौ निकृष्टकागद औ छापेकरि ग्रंथकूं अरुचि-कर करि दिया है॥

मेरेकूं इसका अभ्यास कठिन प्रतीत भया। तब मैंने कष्टसैं स्वअभ्यासके अर्थ अनुक्रमणिका रची॥ पीछे बहुत सत्संगीनै मेरेकूं सूचना करी। जो इस ग्रंथकूं अनुक्रमणिका सहित छपाना चाहिये औ तिसकरि सर्वमुमुक्षुनकूं इसका अभ्यास बहुत सुगम होवैगा। तब मैंने—

इसमैं ५२७ अंक किये हैं। जिसकरि अनेक प्रक्रिया औ अंतर्गतप्रक्रियारूपी रत्न विचार (रूपी) सागरमैं भिन्न भिन्न दृष्टि आवै हैं।

या ग्रंथकी कविता बड़े अक्षरमैं औ टीका लघु अक्षरमैं रखी है। काहेतैं? इस रूढिके ग्रंथमैं सर्व अक्षर बड़े लिखैं तौ इसका पूर तीन वा चार गुना होइ जावै। इसके पद्य औ गद्यके सर्वशब्द विभक्त्यंत पदच्छेदकारिके रखे हैं॥ औ कविताके चरन बी भिन्न भिन्न रखे हैं॥ इसकरि इसका पढ़ना अतिशयसुगम होवैगा॥

इस ग्रंथके आरंभमैं मंगलाचरणके अत्युत्कृष्ट पांच दोहे हैं, तिनका अर्थ बहुत गंभीर है॥ इनकी टीका कहुं नहीं है परंतु श्रीनिश्चल

दासजीनै बहुत साधु पुरुषनके पास इन दोहनका युक्तिपूर्वक व्याख्यान किया था। सो व्याख्यान स्वामी श्रीत्रिलोकरामजीसैं एक-महात्मापुरुषनै श्रवण किया था औ तिनसैं मैंनै श्रवण किया है।इन मंगलाचरणके दोहनकी टीका अतिउपयोगी जानिके नवीन रीतिके अनुसार इस ग्रंथके आरंभमैं छापिके रखी है ॥

जिस महात्मा ब्रह्मनिष्ठ पुरुपसैं मैंनै मंगलाचरणकी टीका औ इस ग्रंथका श्रवण किया है तिस महात्मा पुरुपका मेरे ऊपर अतिवड़ा उपकार भयो है।औ ग्रंथके आरंभमैं अर्पणपात्र रख्या है । सो इसी ही महात्मापुरुषके वास्ते रख्या है॥

॥ विक्रमसंवत् १९७४॥

—प्रसिद्धकर्ता.

१ महात्मा श्रीमद्रामगुरु अखंडानंदसरस्वतीके प्रशिष्य औ पूज्यपाद श्रीमद्बापुसरस्वतीके शिष्य, ब्रह्मनिष्ठ-पंडित श्रीपीतांबरजी महाराज। इस महात्मानै श्रीपंचदशी की विस्तृत औ अतिउत्कृष्ट तत्त्वप्रकाशिकानामक अष्ट उपनिषद्नकी संपूर्ण सटीक शंकरभाष्यके अनुसार हिंदुस्थानीमैं टीका करी है औ श्रीसुदरविलासके विपर्यय अंगकी टीका, श्रीविचारचंद्रोदय अरु वृत्तिरत्नावलिआदिक अनेक वेदांतके ग्रंथ रचे हैं, सो भाषावालोंपर परमअनुग्रह किया है। एसै उत्तमविद्वान् दयालु उपदेशकुशल औ ज्ञानवैराग्यआदिक अनेक-उत्तमगुणगणमणिमंडित ये महात्मा थे ॥





॥ श्रीब्रह्मवित्सद्गुरुभ्यो नमः ॥।

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ पंचमावृत्तिकी प्रस्तावना ॥

॥ उपोद्घात ॥

संस्कृतभाषाविषै वेदांतार्थविषयक अनेक उत्तमग्रंथ विद्यमान हैं। परंतु स्वतंत्रभाषाग्रंथोंमैं साधु श्रीनिश्चलदासजीकृत श्रीविचारसागर ग्रंथ उत्तमोत्तम औ अद्वितीय है। 'अखिलभाषाग्रंथोंके समूहमैं इसग्रंथसमान अन्य ग्रंथ नहीं है' ऐसैं कहनैमैं किंचित् बी अतिशयोक्ति नहीं है। वेदांतके सर्वप्रकारके अधिकारिओंकूं इस ग्रंथसैं सम्यक्बोधकी प्राप्ति होवै है।काहेतैं? इसविषै अद्वैतसिद्धांतकी सर्वप्रक्रिया समाविष्ट हुई हैं। इतना ही नहीं, किन्तु वे सर्व प्रक्रिया वेदके महत्सिद्धांतसैं अविरुद्ध हैं। यह ग्रंथ मुमुक्षुजनोंकूं कैसा प्रिय औ उपयोगी है, सो वार्त्ता याकी यह पञ्चमावृत्ति भई है इसकरिकेही सिद्ध होवै है॥ प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ औ यह पञ्चम ऐसैं इस ग्रंथकी पांच आवृत्तियोंकूं उत्तरोत्तर देखनैसैं ज्ञात होवैगा, कि, अभ्यासकी सुगमताअर्थ प्रत्येक आवृत्तिमैं हमनै नवीनता करी है तथापि कहूं बी ग्रंथकर्त्ताके शब्दोंविषै अधिकता वा न्यूनता नहीं करी है।जैसी इस ग्रंथके अर्थकी उत्तमता है, तैसी ही उत्तमता मुद्रणशैलीकी रचना औ शृंगारविषै करनैनिमित्त इस पञ्चमावृत्तिविषै जे नवीनता करी हैं, वे नीचे दर्शावते हैं:—

श्रीवृत्तिरत्नावली।

"श्रीवृत्तिप्रभाकर"नामकग्रंथ बीसाधु श्रीनिश्चलदासजीनै किया है औ सो गहन होनैतैं पंडितगम्य तथा अनेक प्रकारके तर्कवितर्कोंसैं भरपूर है। इस ग्रंथका वेदांतोपयोगी सारांश ब्रह्मनिष्ठ पंडित श्रीपीतांबरजी महाराजनै निष्कर्षकरिके तिसका नाम "श्रीवृत्तिरत्नावली" रख्या है॥ यह वृत्तिरत्नावलिग्रंथ इस श्रीविचारसागरकी तृतीयावृत्तिविषै छाप्या था सोई ही महाराजश्रीनै दयाकरिके पुनः संशोधन करि दिया। सो इस आवृत्तिविषै छाप्या है॥

श्रीपंचदशीसटीकासभाषा द्वितीयावृत्तिगत श्रीनाटकदीप ।

जैसैं भाषाग्रंथोंमैं श्रीविचारसागर रत्नरूप है, तैसैं संस्कृतग्रंथोंमैं श्रीमद्विद्यारण्यस्वामिकृत श्रीपंचदशी रत्नरूप है। श्रीविचारसागर औ श्रीपंचदशीका लक्ष्यपूर्वक अवलोकन करनैसैं श्रीविचारसागरविषै श्रीपंचदशीकी अनेक प्रक्रिया दृष्ट होती हैं।यातैं ऐसा अनुमान होवै है, कि, साधु श्रीनिश्चलदासजीनै श्रीपंचदशीग्रंथका दृढ अभ्यास औ रटनकरिके तिसके सारार्थकूं अपनै चित्तरूपी जठरमैं अत्यन्त पाचन किया होवैगा। उक्त श्रीपंचदशीकी अलौकिकरूढियुक्त द्वितीयावृत्ति हमनै छापी है औ तिसका विस्तार इस ग्रंथके पृष्ठके परिमाण जैसैं १००० सैं अधिकपृष्ठका है। तिसाविषै ५६७८ अंक करिके संपूर्ण संस्कृत मूल तथा अन्वययुक्त टीका औ तितनै ही अंकयुक्त तिनकी संपूर्ण भाषा औ ८३९ टिप्पण समाविष्ट किये हैं॥ संस्कृतटीकाकी रचनामैं जैसी गम्भीरता है वैसी अन्य कोई बी भाषाके टीकाकारोंकी टीकाविषै देखनैमैं आवती नहीं। सो गम्भीरता उक्त नवीनरूढिसैं ग्रंथके छापनैतैं स्पष्ट भई है। इतनाही नहीं, परंतु ऐसी रूढिके लिये अभ्यासकी अत्यन्त सुगमता भई है। इस ग्रन्थके अंतमैं श्रीपंचदशीसटीकासभाषा श्रीनाटकदीप नामक दशम प्रकरण धरचा है। तिसकरि सारे पंचदशीग्रंथकी मुद्रणशैली ज्ञात होवैगी ॥ इस ग्रंथमैं नाटकके रूपकसैं वेदांतसिद्धांतकी उत्तम प्रक्रिया रखी है, सो बी मुमुक्षुजनोंकूं अतिउपयोगी होवैगी॥ इसके मुखपृष्ठउपरि अनुक्रमणिका धरी है। सो तहां देखनैसैं तद्गत विषय ज्ञात होवैंगे॥

॥ षट्दर्शनसारदर्शकपत्रकम् ॥

उक्त नाटकदीपके आरम्भमैं ब्रह्मनिष्ठ पंडित श्रीपीतांबरजीकृत अत्युपयोगी षट्दर्शनसारदर्शक पत्रक दिया है। जिसविषै पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा (ब्रह्मसूत्ररूप वेदांत), न्याय, वैशेषिक, सांख्य औ योग इन षट्दर्शनोंके मतानुयायियोंनै जीव, जगत्, बंध, मोक्ष आदिक १७ मुख्य विषयोंके कैसे भिन्न भिन्न लक्षण किये हैं, सो संक्षेपसैं स्फुट दर्शाये हैं। प्रत्येक दर्शनसंबंधी अनेक ग्रंथोंके श्रमपूर्वक अवलोकनसैं जे उपयोगी पदार्थ जाने जावै हैं, वे इस लघुपत्रकके अवलोकनसैं प्राप्त होवै हैं, इस पत्रककी स्पष्टताके लिये श्रीषट्दर्शनसारावलिनामक ग्रंथ महाराजश्रीनै तैयार किया है॥

स्वप्नबोध औ महावाक्यविवेक ॥

साधु श्रीसुंदरदासजीकृत अत्यन्त रुचिकर श्रीसुन्दरविलासादिविषै स्वप्नबोधनामक अति रसिक औ कंठ करनैमैं सुगम ग्रंथ है। सो इस ग्रंथविषै अवकाशकूं देखिके श्रीवृत्तिरत्नावलिके अंतमैं धरचा है॥ तैसैं ही श्रीपंचदशीगत श्रीमहावाक्यविवेक,जिसविषै चारिवेदके महावाक्यनका सम्यक्बोध किया है, सो बी अर्थयुक्त इस प्रस्तावनाके अंतमैं धरचा है॥

॥ अनुक्रमणिका ॥

जैसैं मंदप्रकाशयुक्त गृहगत अनेकपदार्थनमैं सैं कौनसा पदार्थ कहां है, सो जाननैनिमित्त दीपककी आवश्यकता है। तैसैं ग्रंथविषै रहे भिन्नभिन्न पदार्थनकी प्राप्तिमैं अनुक्रमणिका मानौं एक दीपकके समान है। इस ग्रंथमैं प्रसंगदर्शक औ विषयदर्शक ऐसैं दोप्रकारकी विस्तारयुक्त अनुक्रमणिका छापी है॥

१ प्रसंगदर्शकानुक्रमणिका ग्रन्थारम्भमैं धरी है। तिसतैं कोई बी वांछितप्रसंगका अंक औ कितनै अंकपर्यंत तिस प्रसंगका विस्तार है। सो निमेषमात्रसैं ज्ञात होवैगा॥

२ ताके पीछे विषयदर्शकानुक्रमणिका धरी है सो अत्यन्त उपयोगी है। काहेतैं?तिसविषै ग्रंथभागगत, टिप्पणभागगत औ वृत्तिरत्नावलिगत सर्व ज्ञातव्य विषयोंकूं श्रमपूर्वक प्रवेश किये हैं। इतना ही नहीं। परंतु ये सर्व अकारादिअनुक्रमसैं ग्रथित किये होनैतैं कोई

बी वांछितविषयका अंक शीघ्र प्राप्त होवै है ॥

(१) इक्तअंकनमैं जे चिह्नरहित है वे श्रीविचारसागरके अंक हैं ।

(२) जिन अंकनके अंतमैं "टि" धऱ्या है वे टिप्पणांकनकूं सूचन करै हैं । औ—

(३) वृत्तिरत्नावलिगत अंकनकूं तिसके अंतमैं "वृ" छापिके भिन्नता करी है ॥

सुगमताकी अधिकता औ श्रमकी न्यूनता करनैनिमित्त इस अनुक्रमणिकागत बहुत शब्दनकूं जहां जहां अवकाश मिला तहां तहां भिन्न भिन्न अक्षरोंके अनुक्रममैं एकसैं अधिकवार दिये हैं । जैसैं किः—"पंचक्लेश"का विषय कौनसे अंकमैं है, यह जानना होवै तौ—

(१) "पं"के अनुक्रममैं "पंचक्लेश" शब्द देखनैतैं तत्संबंधी सर्वअंक प्राप्त होवैंगे ॥

(२) तैसैं ही "क्ले" के अनुक्रममैं "क्लेशपंचक" यह शब्द देखनैतैं बी तिसके सर्व अंक ज्ञात होवैंगे ॥

इस रीतिसैं "पंचक्लेश" औ "क्लेशपंचक" ऐसैं दो स्थलमैंसैं एक ही विषयके अंक मिल सकेंगे॥ कहूं तौ एक ही पदार्थ अवकाशानुसार तीन स्थलविषै बी धरा है ॥

छापनैकी रूढि ॥

इस आवृत्तिमैं अंकयुक्त पॅरेग्राफकी (विभागनकी) नवीन मुद्रणशैली प्रविष्ट करी है । तिसतैं इस ग्रंथके अभ्यास जनोंकूं श्रवणमननरूप अभ्यासमैं अत्यंतसुलभता होवैगी ऐसैं स्वानुभवसैं निश्चय होवै है ॥ एक ही पॅरेग्राफमैं एक ही विषयका अनेकप्रकारसैं विवेचन किया होवै अथवा एक ही पॅरेग्राफमैं उत्तरोत्तरसंबंधवान् अनेक विषय संलग्नतासैं आवते होवैं, तब उक्त विषयका कितनै प्रकारसैं विवेचन हुवा है । किंवा तिस पॅरेग्राफमैं कितनै विषयका समावेश हुवा है औ तिनोंका परस्परसंबंध किस प्रकारका है, सो संपूर्ण पॅरेग्राफ चिंतापूर्वक आरंभसैं अंतपर्यंत पठन किये विना ज्ञात होता नहीं ॥ अंकयुक्त पॅरेग्राफनकी जो नवीनरूढि इस आवृत्तिविषै प्रवेश करी है तिसके योगतैं उक्त सर्व विषय दृष्टिपातमात्रसैं ज्ञात होवै हैं ॥

जैसैं किः—२१ वें पृष्ठोपरि दुःखका विवेचन किया है । वे दुःख कितनै प्रकारके हैं सो अंक १–२–३ वाले तीन पॅरेग्राफऊपर दृष्टि करनैसैं ही ज्ञात होवै है कि दुःख तीन प्रकारका है । तदुपरि प्रत्येक प्रकारके दुःखका वर्णन भिन्नभिन्न पॅरेग्राफपैं करिके तद्गत अध्यात्मदुःख, अधिभूतदुःख औ अधिदैवदुःख आदिकप्रधान शब्दोंकूं स्थूलकरिके स्पष्टता करी है ।

तैसैं ही पृष्ठ २३२ ऊपर "ईश्वर व्यापक औ नित्य है" ऐसा विषय चलता है, तिसमैं ईश्वरकूं व्यापक औ नित्य नहीं माननैमैं भिन्न भिन्न प्रकारके षट्दोष किस रीतिसैं प्राप्त होवै हैं तद्गत चाक्रिकानामक तृतीयदोष किस प्रकार चक्राकार भ्रमण होवै है । चतुर्थ अन्योन्याश्रयदोष किस अनुक्रमसैं प्राप्त होवै है, इस आदिक समग्रवार्त्ता भिन्नभिन्न पेरेग्राफ आंतरपॅरेग्राफ औ तिसके आरंभमैं दिये हुवे अंकनपर दृष्टिका पतन होते ही तत्काल ज्ञात होवै है ॥

इस रीतिसैं उक्त नवीनरूढिके लिये ग्रन्थगत भिन्नभिन्न विषय, तिनोंका सम्बन्ध, समानासमानपना, उत्तरोत्तरक्रम, शंका, समाधान, तिनोंका आरम्भ तथा अन्त, दृष्टांत, सिद्धांत औ विकल्पआदिक श्रमसैं विना बुद्धिमैं प्रवेश करैंगे ॥

॥ टिप्पण ॥

इस आवृत्तिमैं टिप्पणोंकी मुद्रणशैली बी ग्रंथविभागकी रूढिकूं अनुसरिके रखी है। इतना ही नहीं, परन्तु तद्गत सारभूत शब्दकूं स्थूलतायुक्त धरिके स्फुटता करी है ॥ तदुपरि इस आवृत्तिके लिये ब्रह्मनिष्ठ पण्डित श्रीपीतांबरजीमहाराजनै कृपाकरिके श्रमपूर्वक उक्त टिप्पणोंका पुनः संशोधन किया है औ तिसमैं कितनैक स्थलमें ता प्रसंगवशात् न्यूनाधिकता करिके बी अर्थकूं विशेष स्पष्ट किया है ॥

ब्रह्मनिष्टपंडित श्रीपीतांबरजी पुरुषोत्तमजीकी यथार्थचित्रितमूर्ति ।

परब्रह्मनिष्ठ औ पूज्यपाद इन महात्माका जन्म संवत् १९०३ मैं कच्छदेशगत श्रीमज्जलग्रामविषै हुवा । परमपूज्यपाद श्रीमद्रामगुरुके प्रशिष्य औ श्रीमद्बापूमहाराजके वे शिष्य होवैं हैं । इनोंका स्वभाव अत्यंतशांत, दयालु औ परमोपकारी था । इनोंका जीवनचरित्र ४६ पृष्ठके विस्तारसैं श्रीविचारचंद्रोदयकी पंचमावृत्तिके आरंभविषै हमनै छाप्या है। इन महात्मानै जे ग्रंथ स्वतंत्र रचे हैं तथा जिन ग्रंथनकूं टिप्पण किये हैं औ संस्कृतभाषाविषे अज्ञजनोंके लिये जिन ग्रंथनकी भाषा करी है,वे नीचे दिखावैं हैं:-

१ जे स्वतंत्रग्रंथादिक रचे हैं औ जे छापे गये हैं, वे ये हैं:—

(१) श्रीविचारचन्द्रोदय । इसकी पंचमआवृत्ति अंकयुक्त पॅरेग्राफनकी रूढिसहित है॥

(२) श्रीबालबोध सटीक स टिप्पण द्वितीयावृत्ति ॥

(३) श्रीसुंदरविलासके विपर्ययनामक २०वें अंगकी रहस्यार्थदीपिका नामक टीका॥

(४) श्रीवृत्तिप्रभाकरका सारभूत वृत्तिरत्नावलिग्रंथ।जो इस ग्रंथके साथि ही छाप्या है।

(५) श्रुतिषड्लिंगसंग्रह संस्कृत तथा भाषायुक्त ।श्रीईशाद्यष्टोपनिषत् औ श्रीबृहदारण्यकोपनिषद्के आरंभमें छाप्या है॥

(६) श्रीसर्वात्मभावप्रदीप । स्वामी श्रीत्रिलोकरामजीकृत श्रीमनोहरमालाके साथि छाप्या है ॥

(७) श्रीवेदस्तुतिकी टीका ॥

(८) श्रीविचारसागरके मंगलाचरणके पंचदोहाकी टीका ॥ [यह इसी ग्रंथमैं छापी है.]

(९) श्रीषड्दर्शनसारदर्शकपत्रकम् ॥
[यह भी इस ग्रंथके अन्तमैं छाप्या है.]

२ जिन ग्रंथनके उपरि स्वतंत्र टिप्पण रचे हैं,वे ये हैं:—

(१) श्रीविचारसागर टिप्पण ९९३×४५ ॥

(२) श्रीपंचदशीसटीकासभाषापर टिप्पण ८३९×१९ ॥

(३) श्रीसुंदरीविलासपर टिप्पण १०९ ॥

(४) श्रीविचारचन्द्रोदयपर टिप्पण १८१ ॥

(५) श्रीबालबोधसटीकपर टिप्पण २१० ॥

(६) श्रीमनोहरमालापर टिप्पण ४९२ ॥

(७) श्रीसर्वात्मभावप्रदीपपर टिप्पण १०९॥

३ जिन ग्रंथनके भाषांतरआदिक किये हैं औ जे छापे गये हैं । वे ये हैं:—

(१) श्रीपंचदशी मूल औ टीकाकी भाषा ॥

(२) श्रीअष्टावक्रगीताके मूलकी भाषा ॥

(३) श्री ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंड, मांडूक्य, तैत्तिरीय औ ऐतरेय । ये ८ उपनिषद् औ तत्संबंधी श्रीशंकरभाष्य तथा आनंदगिरिकृत टीकाका भाषांतर "ईशाद्यष्टोपनिषद्" नामसैं प्रसिद्ध है । याकी द्वितीय आवृत्ति भई है ॥

(४) श्रीछांदोग्यउपनिषद् औ तत्संबंधी श्रीशंकरभाष्य तथा आनंदगिरिकृत टीकाका भाषांतररूप टिप्पण ।

(५) श्रीबृहदारण्यकउपनिषद औ तत्संबंधी श्रीशंकरभाष्य तथा आनंदगिरिकृत टीकाका भाषांतररूप टिप्पण ।

(६) श्रीवेदस्तुतिका भाषांतर ।

(७) श्रीपदार्थमंजूषा श्रीमूलचंद्रज्ञानीकृतशोधन करिके छपवाया है ॥

३ और भी इन्होंने श्रीवेदान्तकोशादि तेरह ग्रंथ रचे हैं ।

इस रीतिसैं इस महात्मानै अनेकग्रंथकी रचना करिके सकल मुमुक्षुजनोंके उपरि महान् अनुग्रह औ दया करी है । तिनोंकी दर्शनमात्रसैं कृतार्थ करनेहारी यथास्थित चित्रितमूर्ति बहुत द्रव्यव्ययसैं विलायतसैं मँगवाई हुई चतुर्थावृत्तिके ग्रंथारंभमैं स्थापित करी थी । अभी पंचमावृत्तिमैं भी वैसीकी वैसी ही ग्रंथारंभमैं रखी है ।

(इस षष्ठावृत्तिमैं भी वैसीकी वैसी ही उसी स्थानपर रखी है ।)

इस चित्रितमूर्तिके नीचे जे अक्षर हैं, वे पूज्यपादमहाराजश्रीके हस्ताक्षर हैं ॥

॥ निर्गुणउपासनाचक्र ॥

॥ ११११ ॥

*अनुभूतेरभावेऽपि ब्रह्मास्मीत्येव चिन्त्यताम् ।
अप्यसत्प्राप्यते ध्यानान्नित्याप्तं ब्रह्म किं पुन १९९

जैसैं उक्त महाराजश्रीकी मूर्ति दर्शनद्वारा हितकारी है, तैसैं इस निर्गुणउपासनाचक्रका दर्शनमात्र स्मृतिद्वारा स्वरूपस्थितिके हेतु अभ्यासमैं हितकारी है॥यह निर्गुणउपामनाचक्र वस्तुनिर्देशरूप मंगलकी टीकाके अन्तमें उपरोक्त श्लोकसहित लिख दिया है । " प्रधानरूपशक्ति ब्रह्मचेतनसैं भिन्न नहीं" ऐसैं श्रीविचारसागरके २७९ के अंकमैं लयचिंतनप्रसंगमैं कह्या है । तैसैं अज्ञानादिक उपाधि औ अन्य जितने नाम उपासनाचक्राविषै देखिये हैं, तिनोंका अभेदचिंतनरूप लयचिंतन बी इस चक्रकरिके होइ सके है । लयचिंतनका विस्तृत वर्णन श्रीविचारसागरके २७७-२८० अंकनविषै हैं ।

निर्गुणउपासनाकी रीति जैसैं उपनिषदादिकविषै है, तैसैं विस्तारसैं श्रीविचारसागरके अंक २८१-३०२ पर्यंत देखनैमैं आवेगी औ उपासनाचक्रविषै ईश्वरादिकका प्राज्ञादिक तथा मकारादिकके साथि अभेद, आकृतिनकी समीपताकरि दिखाया है । सो श्रीविचारसागरमैं उक्तअंकनविषै अतिस्पष्ट ही है॥यद्यपि उक्तचक्रविषै ॐआदि अक्षर हैं तिनका कोरेकागजैस भेद नहीं । तथापि स्याहीरूप उपाधिसैं ही भेद भासता है । यह वार्ता टिप्पणीकारनै श्रीविचारसागरके द्वितीयतरंगके ४८ वें टिप्पणविषै जनाई है । तिस दृष्टांतकी बी इस चक्रके दर्शनतैं स्मृति होवै है । यातैं मुमुक्षुजनोंकूं यह चक्र बी कल्याणकारी ही होवैगा ॥

* उक्तश्लोकको संस्कृत तथा भाषाटीका श्रीपंचदशीसटीकासभाषामैंसैं नीचे रखी है ॥

३९३३ ज्ञानेऽसमर्थस्य ध्यानेऽधिकार इत्यत्र वाक्यान्तरं पठति—

३४] अनुभूतेः अभावे अपि "ब्रह्म अस्मि" इति एव चिन्त्यताम् ।

३५ ध्यानाद्धि ब्रह्मप्राप्तौ कैमुतिकन्यायमाह (अपीति)—

३६] असत् अपि ध्यानात् प्राप्यते । पुनः नित्याप्तं ब्रह्म किम् ॥

३७) उपासकस्य पूर्वमविद्यमानमपि देवत्वादिकं ध्यानात् प्राप्यते किल । स्वरूपत्वेन नित्यप्राप्तं सर्वात्मकं ब्रह्म ध्यानात् प्राप्यते इति किमु वक्तव्यमित्यर्थः ॥ १९९ ॥

३९३३ ज्ञानविषै असमर्थपुरुषकूं ध्यानविषै अधिकार है । इस अन्यवाक्यकूं पठन करै हैं:—

३४] अनुभूतिके अभाव हुये बी "मैं ब्रह्म हूं" ऐसैं ही चिंतन करना ॥

३५ ध्यानतैं ही ब्रह्मकी प्राप्तिविषै कैमुतिक न्याय कहै हैं:—

३६) असत् कहिये अविद्यमानवस्तु बी ध्यानतैं प्राप्त होवै है तब फेर नित्यप्राप्त जो ब्रह्म सो ध्यानतैं प्राप्त होवै यामें क्या कहना है ?

३७) कीटकूं भ्रमरभावकी न्यांई उपासककूं पूर्व अविद्यमान बी देवभावआदिक ध्यानतैं प्राप्त होवै है । तब स्वरूप होनैकरि नित्यप्राप्त जो सर्वात्मकब्रह्म है, सो ध्यानतैं प्राप्त होवै है यामैं क्या कहना है ? यह अर्थ है ॥ १९९ ॥

॥ ग्रंथकी जिल्द ॥

इस ग्रंथकी चतुर्थावृत्तिकी जिल्द देखनेतैं ही निश्चय होता था कि श्रीपंचदशीसटीकासभाषा द्वितीयावृत्तिकी जिल्दकी न्यांई वह जिल्द बी महासुंदर, चित्ताकर्षक औ उत्तमअर्थवान् करनैमैं अत्यंत द्रव्यखर्च औ परिश्रम किया था ॥

परंतु खेद है कि अबकी बार हम इस ग्रन्थकी पञ्चमावृत्तिकी जिल्द बहुत ही परिश्रम और बड़ा भारी द्रव्य खर्च करनेपर भी वैसी न बना सके, जैसी कि चतुर्थावृत्तिमें बनाई थी; क्योंकि कागज, स्याही, रंग, कपड़ा कारीगर आदि जिल्दको महासुंदर और नयनमनोहर बनानेके साधन जैसे चाहिये वैसे इस वक्त नहीं मिल सके इसलिये हम आशा करते हैं कि पाठकगण सिर्फ जिल्दकी थोडीसी त्रुटिको देखकर नाराज न होंगे किन्तु क्षमा ही करके पहिले जैसा ही उदार मनसे आश्रय देंगे।

'पदार्थगत सुंदरता तिस पदार्थविषै प्रीतिकूं उत्पन्न करै है औ जहां प्रीति होवै तहां प्रवृत्ति बी अवश्य होवै है' यह सामान्य नियम है। सुंदरता चित्ताकर्षणकी हेतु है औ 'जहां प्रीतिसहित चित्ताकर्षण होवैहै तहां प्रवृत्तिकी पुनरावृत्ति होवै है' यह बी नियम है। जहां वारंवार प्रवृत्ति होवै वहां अधिकदृढता बी होवै है। इस रीतिसैं सुंदरताका उपयोग है। रूपकी सुंदरताके साथि कोई उत्तमअर्थकूं जोडनैमैं आवै तौ सुंदरतानिमित्त चित्तकी प्रवृत्ति होते ही तिसके साथि अनुस्यूत किये हुवे उत्तमअर्थकूं मनुष्यकी बुद्धि अनायाससैं ग्रहण करि लेवै यह स्वाभाविक है। इस हेतुकूं लक्ष्यमैं राखिके हमारे ग्रंथोंकी जिल्द ऊपर छापे हुवे चित्र मात्र सुंदरतासंपादनार्थ नहीं। परतु सुंदरताके साथि अतिगंभीर औ उत्तमअर्थके स्मारक होवैं इस हेतुसैं दिये जाते हैं॥

इस ग्रंथकी जिल्द ऊपर जे चित्र हैं तिनविषै जो अर्थकी कल्पना करी है, सो नीचे दर्शावते हैंः—

॥ गजेन्द्रमोक्षका चित्र ॥

यह चित्र देखनैसैं जान्या जावैगा कि सरोवरविषै गजराजकूं एक ग्राहनै बहुत बलपूर्वक ग्रहण किया है औ सो गजराज ग्रसनसैं मुक्त होनैअर्थ अत्यंत बल करता है, इतना ही नहीं। परंतु गजराजका कुटुंब परिवार आपआपकी शुंडादंडसैं तिस गजराजकूं बाहिर खींच लेनेमैं अत्यंत परिश्रम करता भया॥ ऐसैं दीर्घप्रयत्नसैं बी अपना मुक्त होना अशक्य देखिके सो गजराज सरोवरविषै उत्पन्न हुये अंबुजोंमैंसैं एककूं तोडिके शुंडसैं मस्तकउपरि धारिके, जब भक्तिभावपूर्वक श्रीविष्णुकी प्रार्थना करता भया तब स्तुतिसैं प्रसन्न हुवा है अंतःकरण जिसका औ परमदयालु है स्वभाव जिसका, ऐसै श्रीविष्णुभगवान् आपके चक्रसैं तत्काल गजेंद्रका ग्राहतैं उद्धार करते भये॥

इस कथाभूतरूपकविषै जो उत्तमसारार्थ गूढ रह्या है। सो यह हैः—

गजराजकूं तौ अज्ञानी जीव, ग्राहकूं तौ महामोहरूप माया औ सरोवरकूं तौ अपार दुस्तर संसार समझना॥ जैसैं सरोवरविषै रमण करता हुया गजेंद्र ग्राहसैं ग्रस्त भया है, तैसैं संसारविषै रमणकरता हुया यह अज्ञानी जीव प्रबलप्रधानमहामोहरूप मायासैं ग्रस्त होवै है॥ जैसैं गजराज आपके औ अन्यहस्तिनके बलसैं बी छूटनैकूं असमर्थ भया है। तैसैं यह अज्ञानी जीव बी केवल अपनी बुद्धिके बलसैं वा मंत्रकर्म हठयोगादिक बाह्योपचारसैं मुक्त होनैकूं असमर्थ होवै है। परंतु जैसैं गजराज हरिस्तुतिसैं श्रीहरिकूं प्रसन्न करिके तिनोंके फेंके हुये चक्रकी सहायतासैं मुक्त हुवा। तैसैं यह अज्ञानी जीव

बी परब्रह्मनिष्ठगुरु जो गोविंद (हरि) सैं अभिन्न है, तिसकूं श्रद्धापूर्वक तनमनधन अर्पणरूप सेवापूर्वक स्तुतिसैं प्रसन्न करै तौ तिसके दिये हुये ज्ञानोपदेशरूप चक्रकी सहायतासैं तत्काल मुक्त होवै। यह निःसंशय है ॥

इस रीतिसैं यह उत्तमचित्र दर्शनमात्रसैं ही उक्तश्रेष्ठसिद्धांतकूं स्मरण करावनैद्वारा मुमुक्षुनकूं महाकल्याणका साधन होवैगा।

सागरका चित्र।

[चतुर्थावृत्तिमैं इस ग्रंथकी जिल्दपर गजेंद्रमोक्षके ऊपर सागरका चित्र दिया था जिसका तात्पर्यअर्थ भवसागरके रूपकसे नीचे दर्शाया है वह इस वक्त इस ग्रथकी पञ्चमावृत्तिमें उसकी बनावटकी सामग्रीके न होनेसे न दे सके इस लिये भी पाठकोंको क्षमा ही करनी चाहिये]

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिध्यति नान्यथा ॥

यह मोक्षप्राप्तिका उपायदर्शक श्रीमच्छंकराचार्यकृत विवेकचूडामणिका ५८ वां श्लोक चतुष्कोण आकृतिविषैं दिया है ॥अब भवसागरके सिद्धांतरूप सारार्थकूं प्रकट करै हैंः—

यह संसार एक विकट औ दुस्तरसागरकी उपमाकूं सर्वप्रकारसैं योग्य है ॥ तिसविषै डुबावनैमैं अत्यंतशक्तिमान् ऐसैं रागद्वेष सुखदुःख आदिक द्वंद्वनके अनेक महान्तरंग उछल रहे हैं ॥ जे जन गुरुकृपासैं उक्ततरंगनका उल्लंघन करिके समुद्रके पारकूं पावै हैं। केवल वेइ ही मात्र मुक्त होवै हैं।अन्य सर्व तिन तरंगनविषय होइके "पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्" रूप महादुःखकरघटमालमैं चक्रकी न्याईं भ्रमण करै हैं ॥ सागरकूं तरनैवास्तै सर्वथा नौकाकी आवश्यकता है ॥ अब इस दुस्तरभवसागरके उल्लंघनअर्थ भिन्नभिन्न मतवालोंने भिन्नभिन्न नौकाकी कल्पना करी है। तिसमैं "कर्म" "उपासना" औ "ज्ञान" रूप तीन नौका प्रधान हैं ॥

इस जगत्‌विषै कर्म, उपासना औ ज्ञान इन तीनोंमैं ज्ञानके अधिकारिनकी संख्या अतिअल्प देखिये है। काहेतैं ? ज्ञानमार्गमैं प्रवेशकरनैअर्थ अनेकसद्‌गुण औ विचक्षण तथा निर्मल बुद्धिकी आवश्यकता है औ तैसी बुद्धि सर्वदा सर्वथा सर्वकूं प्राप्त नहीं होती, किंतु अल्पजनोंकूं ही प्राप्त होवै है। यह अर्थ विवादरहित है ॥ उक्त चित्रकूं देखनैसैं बी ज्ञात होवैगा कि कर्म औ उपासनारूप नौका मनुष्यजनोंसैं भरपूर भरी है। तब ज्ञानरूप अग्निनौकाके प्रति जानैका प्रयास मात्र थोड़े जन करतेहुवै तिनमैंसैं कोई वीरपुरुष अग्निनौकामैं स्थिति करै है ॥

१ मनुष्यसमुदायमैं अधिकसंख्यायुक्त वर्ग तौ ऐसा है कि जो इस असार,मिथ्या औ अनित्य भवसागरकूं नित्य मानिके भ्रांतिग्रस्त होयके तिसविषै प्राप्त होते सुखदुःखनमैं ही कृतार्थता जानता है औ उत्तमपुरुषार्थका परित्याग करिके केवल विषयप्राप्तिका प्रयत्न करै है ॥ ऐसैं पुरुषनकूं इस ग्रंथविषै पामर कहे हैं ॥

२ उक्त पामरजनोंसैं न्यूनसंख्या ऐसैं मनुष्योंकी है कि जो यद्यपि स्वर्गादिक उत्तमलोकके भोग इस संसारके भोगनके तुल्य ही हैं तदपि अधिक होनैतैं तिनकी प्राप्तिकूं ही मोक्ष मानै हैं ॥ ऐसैं पुरुष कर्म औ उपासनामैं प्रवृत्त हुये "कर्मसैं उत्पादित हुया फल क्वचित् बी नित्य बनै नहीं" ऐसैं सामान्यन्यायकूं विचारनैमैं बी असमर्थ हैं॥ इनकूं शास्त्रनविषै विषयी कहै हैं ॥

३ इनतैं न्यूनसंख्यावाले जन ऐसैं हैं कि जो कर्म औ उपासनासैं प्राप्त होनैहारे इस लोक औ परलोकके सर्वभोगनकूं अनित्य मानिके

नित्यनिरातिशय जो मोक्षसुख तिसकी प्राप्तिका ही सर्वदा विचार करै हैं । औ गुरुकूं गोविन्दरूप जानिके तिसके उपदेशरूप मार्गद्वारा नित्यनिरतिशयसुखरूप पारकूं पहुँचावनैहारी ज्ञानरूप अग्निबोटमैं स्थिति करै हैं । ऐसैं मनुष्यनकूं इस ग्रंथविषै मुमुक्षु कहे हैं ॥

४ मुमुक्षुनतैं न्यूनसंख्या गुरुआदिककी कृपातैं "तत्त्वमसि" आदिक जीवब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक महावाक्यनके अर्थमैं परम आस्तिक हुये ज्ञानरूप "अग्निबोट" मैं स्थिति करिके ॐरूप (मोक्षरूप) पारकूं प्राप्त भये ज्ञानिनकी है ॥ तिनोंकूं इस लोक वा परलोक वा मोक्षसंपादनार्थ कुछ बी कर्त्तव्य अवशेष रहा नहीं, यातैं वे कृतकृत्य औ प्राप्तप्राप्य हैं ॥ ऐसैं ज्ञानी पुरुष अज्ञानिनकी दृष्टिमैं भवसागर औ विचारसागर इन उभयविषै यथेच्छ वर्त्ततेहुवे दृश्यमान होवै हैं । परंतु जैसैं घूकपक्षी प्रकाशकूं नहीं जाने हैं तैसैं अज्ञानी पुरुष ज्ञानिनकी अंबुजवत् निर्लेपस्थितिकूं नहीं जानै हैं ॥

इस जगत्‌विषै पामरनतैं विषयिनकी, विषायिनतैं मुमुक्षुनकी औ मुमुक्षुनतैं मुक्तनकी संख्या उत्तरोत्तर न्यून होवै है ऐसैं ऊपर कहा सो श्रीमद्भगवद्गीतागत भगवान् श्रीकृष्णके नीचे लिखे हुये वचनसैं स्पष्ट होवै है ॥

॥ श्लोक ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ७३

अर्थः—अनेकसहस्र मनुष्यनविषै कोई एक ही मुमुक्षु ज्ञानकी उत्पत्तिअर्थ प्रयत्न करै है । औ तिन प्रयत्नकरनैहारे अनेक सहस्र मुमुक्षुनविषै बी कोई एक ही मुज परमात्माकूं तत्त्वतैं कहिये वास्तवरूपसैं जानै है ॥ ७३ ॥

जे पुरुष कर्म वा उपासनारूप नौकाका आश्रय लेवै हैं, वे मोक्षरूप पारकूं नहीं पावै हैं किंतु स्वर्गादिलोककूं पावै हैं,कर्म औ उपासनाके मतानुयायी केवलकर्म औ केवलउपासनाद्वारा ही मोक्षकी सिद्धिका वाद करै हैं। परंतु वेदांतशास्त्रके महान्‌सिद्धांतसैं वे वाद केवलविपरीत हैं ॥ वेदांतमतमैं कर्म औ उपासनाकूं मलविक्षेपवान् चित्तोंकी शुद्धि औ स्वस्थता करनैहारे गिनिके मात्र तितनै अंशमैं ज्ञानप्राप्तिविषै सहायकारी मानै हैं । परंतु तिनसैं विना मोक्ष न होवै अथवा वे मोक्षके साक्षात् साधन हैं ऐसैं मान्या नहीं है ॥ मोक्षका साक्षात साधन तौ मात्र एक ही संभवै है औ सो ब्रह्मज्ञान है ॥ सर्वत्र ऐसा नियम है कि विरोधी पदार्थके नाश करनेकूं तिसका साक्षात् विरोधी पदाथ ही समर्थ होवै है । जैसैं शीतलता केवल उष्णतासैं दूरि होवै है । अन्यथा होवै नहीं । तैसैं अंधकार केवल प्रकाशके सद्भावसैं दूरि होवै है । परंतु यज्ञ तप बलिदान किंवा अस्त्रशस्त्रके प्रहार तिसकूं दूरि करनैमैं समर्थ होवै नहीं । काहेतैं ? अंधकारका साक्षात् विरोधी मात्र एक प्रकाश है ॥ बंधकी प्राप्ति अज्ञानसैं है । यातैं तिस अज्ञानका विरोधी जो ज्ञान है । केवल तिसतैं ही बंध नष्ट होनेकूं योग्य है, परंतु कर्म वा उपासनासैं बंधनिवृत्ति कदाचित् बी होवै नहीं औ संभवै नहीं ॥ श्रुतिमैं बी कह्या है:—

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" ॥

अर्थः—तिस प्रत्यक् अभिन्नपरमात्माकूं जानिके संसाररूप मृत्युकूं उल्लंघन करिके जाता है, मोक्षके प्रति गमन अर्थ अन्य मार्ग नहीं है ॥

इसी अर्थकूं वेदांतशास्त्रोंविषै अनेक स्थलोंमैं विस्तारसैं कथन किया है यातैं इस अर्थकी अत्र समाप्तिअर्थ जगद्गुरु श्रीमच्छंकराचार्यकृत श्रीविवेकचूडामणिगत ५८ वां श्लोक अर्थसहित नीचे देते हैं ॥

॥ श्लोकः ॥

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया ।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्धयति नान्यथा५८

अर्थः--योग, सांख्य, कर्म औ विद्याकरि मोक्ष नहीं होवै है। किंतु मोक्ष तौ केवल ब्रह्म-त्माकी एकताके ज्ञानकरि ही सिद्ध होवै है५८॥

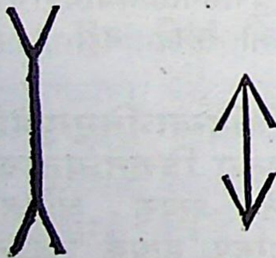
इस प्रमाणरूप श्लोकसैं बी उक्त सिद्धांत स्थापित है ॥

इस रीतिसैं मुमुक्षुजनोंकूं यह चित्र दर्शन-मात्रसैं वेदांतके महान्‌सिद्धांतकूं सदा स्मरण करावैगा ॥

॥ भ्रांतिचित्र ॥

ग्रंथकी पीठगत एक चित्र औ जिल्दके पृष्ठ-भागगत सात चित्र, ऐसैं सर्व मिलिके आठ चित्र हैं, ये साररूप भासनैहारे जगत्‌की असार रूपताके दृष्टांतनिमित्त धरे हैं। तिनका विस्तृतविवेचन अब करै हैः—

१ प्रथम चित्रः—ग्रंथकी पीठऊपरि द्वित्रि-कोणाकारके नीचे प्रथम औ द्वितीयआकृतिके समान दो चित्र रखे हैं ॥



प्रथम आकृति. द्वितीय आकृति.

उभयचित्रोंकी दोनूं सीधी मध्यरेखा यद्यपि समानपरिमाणकी हैं, तथापि तिनके अग्र भागविषै धरी हुई तिर्यक्‌रेखारूप उपाधिके बलसैं भ्रांतिद्वारा वामाचित्रकी मध्यरेखा दक्षिण चित्र मध्यरेखासैं बडी प्रतीत होवै है ॥

(जिल्दके पृष्ठभागगत सात चित्रः-)

२ द्वितीय चित्रः—ऊपरके भागमैं दो स्थूल हरितवर्णरेखाओंके मध्यमैं जो चित्र है, तिसकी दो दीर्घरेखा नीचेकी तृतीयआकृतिसदृश

क ख क

तृतीय आकृति.

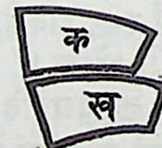
प्रतीयमान होवै है। कहिय आदि अंतमैं दोनूं दीर्घ रेखाका 'क' 'क' भाग संकोचित तथा मध्यका 'ख' भाग विकासित दृष्ट आवता है। यातैं वे रेखा बाह्यवक्राकार प्रतीत होवै हैं। परंतु तैसी हैं नहीं। किंतु सीधी ही हैं। इस वार्त्ताकी चक्षुरूप प्रत्यक्षप्रमाणसैं सिद्धि करै हैः—

जैसैं कोई बाणकू छोडनैके समयपर बाणकूं लक्ष्यके साथि सांधता है तैसैं उक्त ऊपरनीचेकी दो रेखाओंके आदिके साथि अंतकूं लक्ष्यकरिके देखनैस वे दोनूं रेखा नीचेकी चतुर्थआकृति-समान सीधी ही दृष्टि आवैंगी ॥

चतुर्थ आकृति.

यातैं 'क' 'क' भाग संकोचित औ 'ख' भाग विकासित दृष्टि आवता है। सो मात्र भ्रांति-करिके ही दृष्टि आवता है। प्रत्येक दीर्घरेखाके उपरि तथा नीचे जे अनुमानसैं २८ छोटी टेढी रेखा हैं वे उपाधि ही इस भ्रांतिका कारण है॥

३ तृतीय चित्रः—'क' औ 'ख' अक्षरयुक्त नीचेकी पंचमआकृतिसमान दो चित्र एक दूस-



पंचम आकृति.

रेके ऊपरि धरे हैं। ये उभयचित्र यद्यपि सर्व-प्रकारसैं परिमाणमैं समान हैं। तथापि 'ख' चित्र 'क' चित्रसैं बडा भासता है ॥

इस असत्यप्रतीतिका इतना ही कारण है कि 'ख चित्रकूं यत्किंचित् बहिर निकसता दिखाया है ॥

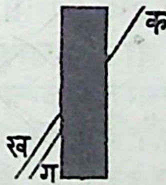
चतुर्थ चित्रः—उक्तचित्रकी दक्षिणदिशाविषै 'ख' अक्षरयुक्त स्थूलरेखाके उपरि 'क' अक्षरयुक्त सूक्ष्मरेखा खडी करी है । तिसमैं सूक्ष्मरेखा 'क' स्थूलरेखा 'ख' सैं किंचित् लघु है तौ बी दीर्घ भासती है ॥

यह भ्रांति स्थूलसूक्ष्मताके संयोगसैं औ सूक्ष्मरेखाकूं खडी करी होनैतैं उत्पन्न होवै है ॥

५ पंचम चित्रः—बराबर मध्यमैं षट्चक्रयुक्त एकआकृति है तिसका उपयोग ऐसा है किः—ग्रंथकूं सम्मुख दक्षिणहस्तविषै धारिके वामसैं दक्षिणकी तरफ त्वरासैं लघुचक्राकार फेरनैकरि वे षट्चक्र दक्षिणकी तरफ फिरते दृष्टि पड़ैंगे औ तिसी आकृतिके मध्यमैं १२ दंतयुक्त जो रक्तचक्र है, सो षट्चक्रनसैं विपरीत कहिये वामकी तरफ फिरता देखनेमैं आवैगा ॥

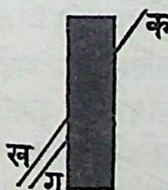
प्रज्वलितअग्निवाले काष्ठकूं भ्रमण करनैनैं अलातका चक्र प्रतीत होवै है । तिसमैं तीव्रवेग कारणभूत है । तैसैं यामैं बी वेग ही प्रधानकारण है ॥

षष्ठ चित्रः—'क' 'ख' औ 'ग' रेखावाली नीचेकी षष्ठआकृतिसमान चित्रमैं प्रथमदृष्टिसैं



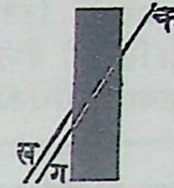
षष्ठ आकृति.

'क' रेखा 'ख' रेखाके साथि नीचेकी सप्तमआकृतिकी न्यांई संधिके योग्य दीखती है ।



सप्तम आकृतिः

परंतु वास्तविक तौ नीचेकी अष्टमआकृतिकी



अष्टम आकृति.

न्यांई 'ग' रेखाके साथि ही संधिकूं प्राप्त है ॥

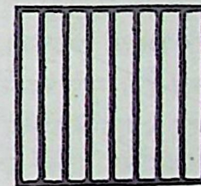
इस भ्रांतिके उत्पन्न होनैमैं मध्यका श्यामविभाग दृष्टिकूं रोकनैद्वारा कारणभूत है ॥

७ सप्तम चित्रः—उक्तचित्रके दक्षिणविषै नीचेकी नवमआकृतिसदृश सप्तरेखावाला एक



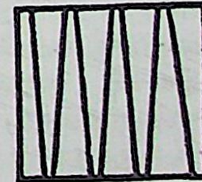
नवम आकृति.

चतुष्कोणचित्र है।थे सात ही रेखा औ तिनोंके आंतरालमैं प्रतीत रक्तवस्त्ररूप सर्वरक्तरेखा यद्यपि नीचेकी दशमआकृतिसमान सीधी ही है



दशम आकृति.

तथापि वे सर्वरेखा नीचेकी एकादशमआकृतिकी न्यांई क्रमानुसार ऊपर नीचे संकोचित-



एकादशम आकृति.

विकासित हुई भासती हैं ॥

यह विपरीतदर्शन छोटी टेढीरेखारूप उपाधिके अनुसन्धानसैं होवै है ॥

८ अष्टम चित्रः--सर्वसैं नीच दो स्थूल हरितवर्णरेखाके मध्यमैं द्वितीयाचित्रके सदृश आकृति रखी है। तिसकी दोनूं दीर्घरेखा यद्यपि सीधी ही हैं, तथापि नीचेकी द्वादशआकृति-

क ख क

द्वादश आकृति.

सदृश द्वितीयाचित्रसैं विपरीतवक्राकार कहिये आंतरवक्राकार प्रतीत होवै हैं ॥

या भ्रांतिका कारण द्वितीयचित्रकी भ्रांतिके कारण समान ही होनेतें इहां लिख्या नहीं ॥

उक्तसर्वभ्रांतिनविषै मुख्यकारण तौ यह है कि उपाधिके प्रतापसैं प्रकाशके किरणोंका चक्षुकरि यथास्थित ग्रहण नहीं होवै है ॥ प्रकाश औ दृष्टिकी आधुनिकविद्या (Optics) के अनेक ग्रंथ इंग्रेजी भाषामैं हैं । तिसतैं तौ ऐसा सिद्ध होवै है कि चक्षु बाह्यपदार्थोंकूं बाह्यस्थिति देखती नहीं है, परंतु पदार्थके मात्र प्रतिबिंबकूं ग्रहण करती है । अर्थात् पदार्थोंका बहिरस्थितपना मात्र भ्रांतिकरि ही भासता है इस वार्त्ताकूं स्पष्ट करनै निमित्त एक पाश्चात्य-विद्वान्‌की उक्तिमैंसैं कछुक नीचे धरै हैंः--

"पुष्पका रंग, पक्षीका शब्द औ अन्नका स्वाद, ऐसे जे गुण पदार्थमैं नहीं है वे गुण पदार्थमैं मानिके जनसमूह कथन करै है । परंतु वे गुण मनोमात्र हैं ॥ * * * * ॥ अवकाशविषै पदार्थोंकी स्थिति जैसैं प्रतीत होती है, तैसैं अपनै देखतैं नहीं हैं । इस वार्ताकूं मानना यद्यपि दुष्कर है तथापि इतना तौ निर्विवाद सिद्ध हुवा है, कि परिमाण, अवकाश औ अंतर (दूरपना) इन तीनोंकी कल्पना बाल्यावस्थामैं किये हुए मानसिकप्रयत्न औ शारीरिक प्रयोगका परिणाम है ॥ जब किसी जन्मांधपुरुषकूं शस्त्रक्रियासैं दृष्टि प्राप्त होती है, तब तिसकूं सो दृष्टिमात्रसैं पदार्थोंका परस्पर अंतर ज्ञात होता नहीं । किंतु समीप औ दूर स्थित सर्वपदार्थ तिसकी चक्षुकूं समानसमीपतावाले भासते हैं॥"

(लेनसेट ता० २१ डिसेम्बर १८९९ पृष्ठ १५५८.)

इन सर्वभ्रांतिचित्रोंका सारार्थः--

सर्वमतशिरोमणि वेदांतसिद्धांतमैं सत्यकी न्यांई भासनैवाले इस जगत्‌कूं स्वप्नके नगरकी, रज्जुके सर्पकी औ ऊषरभूमिविषै दृश्यमान मिथ्याजलकी उपमा देवै हैं ॥

स्वप्नविषै देखे नगरका औ रज्जुविषै मानै सर्पका तौ अनेक मुमुक्षुनकूं अनुभव होवै है; परंतु मिथ्याजलका अनुभव बहुत जनोंकूं नहीं है । काहेतैं? तिस भ्रांतिके कारणरूप ऊषरभूमि-आदिक सर्वदेशविषै प्राप्त नहीं हैं ॥

वेदांतशास्त्रविषै यह मिथ्याजलका दृष्टांत अत्यंतप्रबल असरकारक औ समानअंशवाला है । कारण कि जैसैं ऊषरभूमिविषै वास्तविक जलका लेश नहीं है तौ बी जल प्रतीत होवै है । औ "सो मिथ्याजल है" ऐसा निश्चय ज्ञान हुवे पीछे बी सो जलकी प्रतीति दूर होती नहीं तैसैं ब्रह्मरूप अधिष्ठानविषै वास्तविक जगत्‌का लेश नहीं है तौ बी जगत् प्रतीत होवै है । औ "यह मिथ्याजगत् है" ऐसा दृढनिश्चय हुवे पीछे बी सो जगत् प्रतीति दूर होती नहीं; परंतु जैसैं ऊषरभूमिके जलका मिथ्यात्वनिश्चय हुवे पीछे सो जल पान करनैकी इच्छा उत्पन्न होती नहीं, तैसैं यह ब्रह्मरूप अधिष्ठानमैं जो जगत् प्रतीत होता है, सो "मिथ्या है" ऐसा शास्त्र औ गुरुकृपासैं दृढनिश्चयरूप बाध होय जावै तौ इस मिथ्याजगत्‌विषै अहंता-ममतादिक दुःखकी कारणभूत दृढआसक्तियां क्वचित् बी उत्पन्न होवैं नहीं ॥

ये भ्रांतिचित्र बी लघुरेखाकूं दीर्घ, सीधी रेखाकूं वक्र औ स्थिरतावाले चक्रोंकूं गतिमान्, ऐसैं विपरीत दिखावै हैं । इतना ही नहीं परंतु यथार्थवार्ताके ज्ञान हुवे पीछे बी सो पूर्वकी न्यांई ही विपरीतदर्शन देवै हैं । यातैं मरुस्थलके जलके यथोचित चित्रितदृष्टांतमय हैं। औ तिस-द्वारा इस जगदाडंबरकी असारताके स्मारक हैं॥

ऊपरिप्रदर्शित किये वर्णनसैं वाचक-वृंदकूं निश्चय होवैगा कि श्रीविचारसागरकी यह पंचमावृत्ति उत्तमोत्तम भई है औ सो उत्तमता संपादन करनैवास्तै केवल मुमुक्षुजनोंका हित ही लक्ष्यमैं राखिके द्रव्य औ श्रमकी किंचित् बी गणना नहीं करी है ॥

—प्रकाशक.



॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ षष्ठावृत्ति ॥

॥ प्रसंगदर्शकानुक्रमणिका ॥

॥ तृतीयस्तरंगः ॥ ३ ॥

श्रीगुरुशिष्यलक्षण गुरुभक्तिफल-प्रकारनिरूपण ।

॥ चतुर्थस्तरंगः ॥ ४ ॥

॥ उत्तमाधिकारीउपदेशनिरूपण ॥

॥ १५० ॥ प्रश्नः–"जगतद्रष्टा आत्मासैं भिन्न कह्या चाहिये" ॥

॥ १५१–१५२ ॥ उत्तरः— १५१ सारे कल्पितका अधिष्ठान ही द्रष्टा है ॥

१५२ मिथ्यासंसारके निवृत्तिकी चाह बनै नहीं ॥

॥ १५३ ॥ "जन्मादिकसंसार दुःखका हेतु है। यातैं ताकी निवृत्तिका उपाय बतावो" ॥

॥ १५४–१५५ ॥ उत्तरः— १५४ आत्माके अज्ञानतैं जगतकी प्रतीति होवे है, ताकी निवृत्तिके उपाय-ज्ञानाका स्वरूप ॥

१५५ अज्ञानका नाश केवलज्ञानसैं है, कर्मउपासना-सैं नहीं ॥

॥ १५६ ॥ उक्तअर्थके अनुवादपूर्वक वक्ष्यमाण-शंकाका सूचन ॥

॥ १५७ ॥ शंका:–"ब्रह्म औ मेरा स्वरूप परस्पर-विरुद्ध है। यातैं तिनसैं मेरी एकता बनै नहीं" ॥

॥ १५८ ॥ अन्यशंका:— पक्षीरूपतासैं विलक्षण जीवब्रह्मकी एकतासैं कर्मउपासना प्रतिपादक वेद निष्फल होवैगा" ॥

॥ १५९–१७२ ॥ समाधानः– अंक १५७ गत शंका-का समाधान ॥

१५९–१६३ चारिआकाश (१६०घटाकाश–१६१ जलाकाश–१६२ मेघाकाश–१६३ महाकाश)— १६४–१७२ चारिचेतन (१६५ कूटस्थ–१६६–१७० जीव (१६७ स्फटिक पुष्पदृष्टांत–१६८–१६९ गमनागमन कूटस्थविषै नहीं– १७० जीवका और स्वरूप) १७१ ईश– १७२ ब्रह्म :॥

॥ १७३–१७५ ॥ समाधानः– अंक १५८ गतशंकाका समाधान ॥

१७३ कूटस्थ प्रकाशमान है औ आभास भोगै है– १७४ आभास कर्म करै है औ फल देवै है । चेतन नहीं–१७५ जीवब्रह्मके लक्ष्यअर्थका अभेद है ॥

॥ १७६ ॥ प्रश्नः–"अहं ब्रह्म" यह ज्ञान किसकूं होवै है ?"

॥ १७७–१८३ ॥ उत्तरः—

१७७–१७८ आभासकी सप्तअवस्था– १७९ अज्ञान औ आवरणस्वरूप– १८० भ्रांति–१८१ परोक्ष औ अपरोक्षज्ञान– १८२ भ्रांतिनाश– १८३ हर्षस्वरूप ॥

॥१८४॥ प्रश्नः–, "ब्रह्मसैं भिन्न आभासकूं मैं ब्रह्म" यह ज्ञान मिथ्या होवैगा (अंक १७६ गतप्रश्नका गूढ अभिप्राय ॥

॥ १८५ ॥ उत्तरः–,"अहं" शब्दके दोअर्थ । तिनमैं कूटस्थका ब्रह्मसैं मुख्यसामानाधिकरण्य औ आभासका बाधसमानाधिकरण्य ॥

॥ १८६ ॥ प्रश्नः– "अहंवृत्तिविषै कूटस्थ औ आभासका भान क्रमसैं अथवा क्रमविना होवै है ? ॥

॥ १८७–२०५॥ उत्तरः–१८७ एकही समय साक्षीका औ आभासका भान होवै है ॥

१८८ शंका:–अज्ञानका आश्रय औ विषय चेतन है– १८९–१९० समाधान–बाहिरके पदार्थविषै वृत्ति औ आभास दोनुंवांका उपयोग है । तिसविषै अज्ञानआवृत्तघटकाउदाहरण –१९१–१९६ प्रमाण निरूपण-(१९१ प्रत्यक्षप्रमाण-- १९२ अनुमान॰ प्रमाण– १९३ शब्दप्रमाण– १९४ उपमानप्रमाण- १९५ अर्थापत्तिप्रमाण– १९६ अनुपलब्धिप्रमाण)- १९७ प्रमाण औ प्रमाज्ञानका लक्षण– १९८–१९९ स्मृतिज्ञान औ षट्प्रमाके विचारपूर्वक करणका लक्षण– २०० प्रमाता, प्रमाण, प्रमिति औ प्रमेय चेतन– २०१ अवच्छेदवादकी रीतिसैं प्रमाता औ साक्षीसंहित विशेषण औ उपाधिका लक्षण– २०२ आभासवादकी रीतिसैं जीव औ साक्षीआदिकका लक्षण– २०३ आभासवादकी श्रेष्ठता– २०४ अंतः-करणमैं विविध प्रकाश हैं। यातैं सोई प्रमाता है । अन्य नहीं– २०५ प्रमाताआदिक चारि चेतनका स्वरूप ॥

॥ २०६–२१० ॥ प्रश्नः– २०६ "इंद्रियसंबंधविना 'अहंब्रह्म' यह ज्ञान प्रत्यक्ष कैसैं बनै ?—"

२०७ ब्रह्मकूं नेत्रकी अविषयता (रामकृष्णादिकनके शरीर ब्रह्म नहीं)– २०८ ब्रह्मकूं त्वचाइंद्रियकी अविषयता– २०९ ब्रह्मकूं रसना घ्राण औ श्रोत्र इंद्रियकी अविषयता– २१० ब्रह्मकूं कर्मइंद्रियकी अविषयता ॥

॥ २११-११२ ॥ उत्तरः- (अंक २०६-२१० गतप्रश्नका)-२११ "इंद्रियसंबंध विना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं" यह नियम नहीं ॥

२११-सुखदुःखकी साक्षीभास्यता- २१२ ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष संभवे है ॥ तत्त्वदृष्टिकूं भेदभ्रमका अंत ॥

पंचमस्तरंगः ॥ ५ ॥

॥ श्रीगुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादन ॥ २१३-२७६ ॥

॥ मध्यमाधिकारी साधननिरूपण ॥ २७७--३०३ ॥

२१३ ॥ अदृष्टिका प्रश्नः—"वेदगुरु सत्य होवैं वा मिथ्या होवैं दोनूं रीतिसैं वेदगुरुतैं अद्वैतज्ञान बनै नहीं" ॥

॥ २१४-२३६ ॥ उत्तरः—

२१४ शंकरमतकी प्रमाणता- २१५ भेदवादकी अप्रमाणता-२१६ भेदवादका-तिरस्कार- २१७-२२८ राजाके मंत्री भर्छुकी कथा (२१७ भर्छुका तपस्वी होना- २१८ नारीनिंदा- २१९ भर्छुके वैराग्यका कथन-२२० राजासैं लेके ब्रह्मापर्यंत सर्वसुख एकांतमै होवै है-२२१ युवतिसंगसैं दुःख २२२ युवतिसंगसैं धनविगार-२२३ युवतिसंगसैं धर्मविगार- २२४ युवतिसंगसैं बिंदुनाश—२२५ पुत्रसंगसैं दुःख-२२६ धनसंगसैं दुःख-२२७ राजाकूं भर्छुमैं प्रेतबुद्धि होनी औ राजाका भागना-- २२८ अंक २२७ उक्त दृष्टांतकूं सिद्धांतमैं जोड़ना ॥ भेदवादकी धिक्कारपूर्वक त्याज्यता)--२२९ मिथ्या-दुःखका मिथ्यासैं नाश । एक भूपकूं स्वप्नकी प्राप्ति तिसकूं गादरीकरि दुःखका होना औ मिथ्यावैद्यसैं मिटना--२३० अंक २२९ उक्त प्रसंगकी टीका--२३१ मरुस्थलके जल औ प्यासमैं सत्ताका भेद--२३२ समसत्ताकी आपसैंमें साधकबाधकता--२३३--२३५ तीनिसत्ता (२३४ व्यावहारिकसत्ता--२३५ पारमार्थिकसत्ता)--२३६ वेदगुरु औ संसारदःखकी व्यावहारिकसत्ता है । यातैं तिनके भवदुःखका नाश बनै है ॥

॥ २३७ ॥ शंकाः- "शुक्तिरूपाआदिकका ब्रह्मज्ञान विनाही बाध औ संसारदुःखका ब्रह्मज्ञानसैं अनंतर बाध । यह भेद कौन हेतुसैं राखौ हो ?"

॥ २३८ ॥ समाधानः—जाके ज्ञानसैं जो उपजै तिसका ताके ज्ञानसैं बाध होवै है ।

॥ २३९ ॥ प्रश्नः-ब्रह्मके अज्ञानसैं संसार कौन क्रमतैं उपजै है ?"

॥ २४०-२७१ ॥ उत्तरः—

२४० स्वप्नसमान विना क्रमतैं जगत्का भासना-२४१ सूत्रकारभाष्यकारका श्रुतिबचनसैं जगत्-उत्पत्तिकथनका अभिप्राय—२४२ प्रसंगसैं मायास्वरूपप्रतिपादन—२४३ अज्ञानकी स्वाश्रयता औ स्वविषयता—२४४ उक्तअर्थमैं वाचस्पतिका मत-२४५ वाचस्पतिके मतकी असमीचीनता औ अज्ञानकी एकता—२४६ स्वाश्रयस्वविषयपक्षका अंगीकार-२४७ एकअज्ञानपक्षमैं बंधमोक्षकी व्यवस्था ॥ सर्वप्रक्रियाकी श्रेष्ठतापूर्वक मायाका नामभेदसैं स्वरूप--२४८ प्रसंगसैं ईश्वरका स्वरूप ॥ द्विविध-कारणका लक्षण-२४९ जगत्का उपादान औ निमित्तकारण ईश्वर है--२५० जीवका स्वरूप--२५१ ईश्वरमैं विषमदृष्टि और क्रूरता नहीं--२५२ जीवनके भोगनिमित्त ईश्वरकूं जगत्के उपजावनेकी इच्छा--२५३--२५७ सूक्ष्मसृष्टिनिरूपण (२५३ पंचभूत औ तिनके गुणनकी उत्पत्ति--२५४ अंतःकरणकी चारिभेद सहित उत्पत्ति--२५५ प्राणकी पंचभेद-सहित उत्पत्ति--२५६ ज्ञानेंद्रिय औ कर्मेन्द्रिय-की उत्पत्ति)--२५८--२५९ पंचीकरण (२५८पंचीकरणप्रकार--२५९ स्थूलब्रह्मांडादिककी उत्पत्ति)-२६०-२६७ आत्मविवेक अथवा पंचकोशविवेक (२६० पंचकोश औ तिनकरि आत्माका आच्छादन करना-२६१ विरोचनका सिद्धांत- २६२ इंद्रिय-आत्मवादीका मत [इंद्रियआत्मा]-२२३ हिरण्य-गर्भके उपासकका मत [प्राणआत्मा]- २६४ मन-आत्मवादीका मत [मनआत्मा]-२६५ विज्ञान-वादी बौद्धका मत [बुद्धिआत्मा]-२६६ भट्टका मत [आनंदमयकोशआत्मा]-२६७ माध्यमिक-बौद्धका मत [आनंदमयकोशआत्मा]- २६८ प्रभाकर औ नैयायिकका मत [आनंदमयकोश-आत्मा]- २६९ जीवका पंचकोशकी न्याईं ईश्वरके पंचकोशनसैं ताके स्वरूपका आच्छादन-२७० पंच-कोशविवेकका प्रकार- २७१ महावाक्यके अर्थका उपदेश) ॥

॥ षष्ठस्तरंगः ॥ ६ ॥

॥ श्रीगुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनम् ॥

अगृधदेवका स्वप्न ॥ ३३०-४५२॥

॥ ३३९ ॥ अगृधदेवके प्रश्नः-
१ "मैं कौन हूँ ?"
२"संसारका कर्त्ता कौन है"
३" मुक्तिका हेतु ज्ञान है अथवा कर्म है अथवा उपासना है अथवा दो हैं ?"

॥ ३४०-३६९ ॥ १ " मैं कौन हूँ " याका उत्तरः-

३४० आत्मा संघातका साक्षी है. ३४१-३५४ आत्मा सुखदुःखादिधर्मसैं रहित व्यापक एक है सांख्यमतका औ त्रिविधन्यायमतका कथन औ खंडन. ३५५ आत्मा सत् है. ३५६---३५९ आत्मा चित् है. ३६०-३६१ आत्मा आनंदरूप है. ३६४----३६५ सच्चिदानंद परस्पर भिन्न नहीं. ३६६ -३६८ ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा है.३६९आत्मा असंग है ॥

३७०-३७४ ॥ " संस्कारका कर्त्ता कौन है ? " याका उत्तरः--

३७० जगत्का कर्त्ता ईश्वर है. ३७१--३७२ ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् औ स्वतंत्र है. ३७३ ईश्वर व्यापक औ नित्य है. ३७४ ईश्वर औ जीवका स्वरूपसैं भेद नहीं ॥

॥ ३७५-४०६ ॥ ३ " मुक्तिका हेतु कौन ?," याका उत्तरः—

३७५ मुक्तिका हेतु ज्ञान है. ३७६--३७९ कर्म औ उपासना मुक्तिके हेतु नहीं. ३८०--३८३ आक्षेपः---, कर्म औ उपासना ज्ञानके औ मोक्षके हेतु हैं. ३८४--३८६ कर्मउपासनासैं ज्ञानका विरोध है, ३८७--३९० ज्ञानमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा नहीं. ३९१ कर्मउपासनातै ज्ञानकी रक्षा होवै नहीं. ३९२-३९३ ज्ञानकूं पाप औ चंचलताके अभावतै कर्म औ उपासनाका उपयोग नहीं. ३९४ ज्ञानिनके 'प्रारब्धकी विलक्षणता औ तिनकी जीवन्मुक्तिके सुखअर्थ बी उपासनामैं अप्रवृत्ति. ३९५--३९६ दृढ अदृढज्ञानी औ उत्तममंदजिज्ञासुकूं कर्मउपासनामैं अधिकार नहीं. ३९७--३९९ दृढबोधके कर्मउपासना विरोधी नहीं । परंतु मंदबोधके विरोधी हैं. ४०० उक्त अर्थ सर्ववेदका सार है. ४०१ भाषाकी संप्रदाय. ४०२--४०४ उक्तअर्थका संग्रह. ४०५--४०६ अन्यप्रकारसैं मोक्षका साधन ज्ञान है । यह कथन ॥

॥ ४०७-४०९ ॥ लक्षणा तीनि प्रकारकी हैं ॥
॥ ४१०-४२७ ॥ शक्तिनिरूपण ॥

४१० न्यायरीतिसैं शक्तिविलक्षण. ४११ अथ स्वरीति शक्तिलक्षण. ४१२ प्रश्नः-वर्णसमुदायसैं जुदी शक्ति नहीं । यातैं ईश्वरइच्छा शक्ति है. ४१३--४२७ गत-प्रश्नका उत्तर (४१३--४१४ सिद्धांतरीतिसैं अग्नि-आदिकमैं दाहादिकार्यकी सामर्थ्यरूप शक्तिका प्रतिपादन.४१५--४२७ अन्यमतकी शक्तिका खंडन [४१६ वैयाकरणरीतिशक्तिलक्षण. ४१७----४१८ वैयाकरणरीतिकी शक्तिका खंडन. ४१९--४२० भट्ट-रीतिशक्तिलक्षण. ४२२--४२७ भट्टमतकी शक्तिका खंडन])

॥ ४२८ ॥ शक्यका लक्षण ॥

॥ ४२९ ॥ लक्ष्यअर्थ औ लक्षणाका सामान्य-रूप ॥

॥ ४३०-४३२ ॥ जहती अजहती औ भाग-त्यागलक्षणाका लक्षण॥

॥ ४३३-४४९ महावाक्यनमैं लक्षणा ॥

४३३ "तत्" पदका वाच्यअर्थ. ४३४"त्वं". पद-वाच्यनिरूपण. ४३५ वाच्यअर्थमैं एकताका विरोध औ लक्षणाकी कर्त्तव्यता. ४३६ महावाक्यमैं जहतीका असंभव ४३७ महावाक्यमैं अजहतीका असंभव. ४३८ महावाक्यमैं भागत्यागका अंगीकार. ४३९--४४३ जीवईश्वरके स्वरूपमैं पंचदशीकार तथा विवरणकारादिकका मत (आभास प्रतिबिंब औ अवच्छेदवाद.) ४४४ उक्तअर्थसंग्रह. ४४५ प्रश्नः--दोनूंपदनमैं लक्षणा मानना निष्फल है. ४४६--४४९ गतप्रश्नका उत्तर. (४४६--दोनूंपदनमैं लक्षणा सफल है. ४४७ ईशवाचकपदमैं लक्षणा है । याका उत्तर. ४४८ जीववाचकपदमैं लक्षणा है । याका उत्तर. ४४९ दोनूंपदनमैं लक्षणा औ ओत-प्रोतभाव.)

॥ ४५० ॥ अंक ३३३ उक्त ग्रंथकी समाप्ति ॥

॥ ४५१ ॥ प्रश्नः-अर्थसहित ग्रंथ पढ़ा तौ बी मन दुःखका मूल भासता है ॥

॥ ४५२ ॥ वनका नाशक हेतु यही (उक्त) है ॥ अगृधदेवके स्वप्नकी समाप्ति (नाश) ॥

॥ ४५३ ॥ मिथ्यागुरुदेवतैं अज्ञानजन्य मिथ्या-जगतका परिहार होवै है ॥

॥ सप्तमस्तरंगः ॥

॥ जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्णनम् ॥

॥ ४५४ ॥ ज्ञानीके व्यवहारमैं नियम नहीं ॥

॥ ४५५–४७३ ॥ आक्षेपः----ज्ञानीके व्यवहारमैं नियम हैं ॥

४५५- ४५८ ज्ञानीकूं समाधि औ शरीरनिर्वाहतैं अधिकअप्रवृत्तिके नियमका आक्षेप--४५९–४७३ समाधिप्रकार (४५९--४६५ समाधिके अष्टअंग- ४६६ सुषुप्तिसैं निर्बिकल्पसमाधिका भेद. ४६७ निर्विकल्पसमाधि दो प्रकारकी. ४६८अद्वैतावस्थान-रूप समाधिसैं सुषुप्तिका भेद, ४६९--४७२ निर्विकल्पसमाधिके लय विक्षेप कषाय औ रसास्वाद ये चारि विघ्न. ४७३ ज्ञानवान्‌की बाह्यप्रवृत्तिके असंभवके आक्षेपकी समाप्ति) ॥

४७४–४७८ ॥ समाधानः-अंक ४५५–४७३ गत आक्षेपका समाधान ॥

४७४--ज्ञानी निरंकुश है ॥ प्रारब्धसैं व्यवहारसिद्ध ४७५ ज्ञानीकूं विदेहमोक्षत्याग वा परलोककी इच्छा होवै नहीं. ४७६ ज्ञानीकी मंदप्रारब्धसैं जीवन्मुक्तिसुखकी विरोधि प्रवृत्ति. ४७७–४७८ ज्ञानीके व्यवहारका अनियम ॥

॥ ४७९–४८० ॥ तत्त्वदृष्टिका देशादिअपेक्षारहित देहपात ॥

॥ ४८१ ॥ अदृष्टिका देशादिअपेक्षासहित देहपात ॥

॥ ४८२–४९८ ॥ तर्कदृष्टिका निश्चय ॥ विद्याके अष्टादशप्रस्थान ॥

४८२ सर्वशास्त्रनकूं ब्रह्मज्ञानकी हेतुता. ४८३ विद्याके अष्टादशप्रस्थान. ४८४ चारिवेदका ब्रह्मज्ञानमैं तात्पर्य. ४८५ चारिउपवेदका ब्रह्मज्ञानमैं तात्पर्य. ४८६ चारिवेदनके षट्अंगनका अर्थसहित प्रयोजन.४८७ अष्टादशपुराण तथा उपपुराणका अर्थ.४८८न्याय औ वैशेषिकसूत्रनका फल ४८९धर्ममीमांसा औ ब्रह्ममीमांसा भेदतैं दोमीमांसा औ संकर्षणकांडका फल. ४९०स्मृतिआदिकग्रंथनके कर्त्ता औ प्रयोजन. ४९१ सांख्यशास्त्रका फल- ४९२ योगशास्त्रका फल औ शारीरक उक्तिसैं अविरोध. ४९३ पांचरात्र औ पाशुपततंत्रआदिकका फल. ४९४ शैवग्रंथादिकनका फल औ वाममार्ग. ४९५ नास्तिकमत. ४९६ साहित्यआदिकके तात्पर्यपूर्वक तर्कदृष्टिका सारग्राही निश्चय. ४९७ तर्कदृष्टिका एकविद्वान्‌सैं मिलाप. ४९८ ज्ञानीकूं इच्छाका संभव औ इच्छाके अभावका अभिप्राय ॥

॥ ४९९–५०८ ॥ शुभसंततिराजाका प्रसंग ॥

५०० शुभसंततिका पंडितोंसैं प्रश्नः--“ऐसा कौन देव है, जो सोवै नहीं किंतु जागता है?” ५०१ विष्णुउपासकका उत्तर. ५०२ शिवसेवकका उत्तर. ५०३ गणेशपूजकका उत्तर. ५०४ देवीभक्तका उत्तर. ५०५ सूर्यभक्तका उत्तर.५०६उक्तमतके अनुवादपूर्वक स्मार्त्तमत– ५०७ षट्शास्त्रनकी परस्परविरुद्धता. ५०८ तर्कदृष्टिका पितासैं मिलाप ॥

॥ ५०९–५२४ ॥ तर्कदृष्टिका पिताप्रति उपदेश ॥

५०९ कारणरूपकी उपास्यता औ कार्यरूपकी निकृष्टता. ५१०पुराणउक्तस्तुति औ निंदाके करनैमैं व्यासका अभिप्राय. ५११ पांचदेवनके उपासनकूं सम (ब्रह्मलोक) फलप्राप्ति. ५१२ एक परमात्मामैं नानानामरूप संभवै हैं. ५१३–५१४ सारे पुराणका कारण औ कार्य ब्रह्मके उपासनाकी क्रमतैं उपादेयता औ हेयतामैं तात्पर्य है.५१५–५१६मूर्तिप्रतिपादनका अभिप्राय. ५१७ आकारमैं आग्रहवाले शैवादिककूं खेदकी प्राप्ति. ५१८–५२० उत्तरमीमांसाकी प्रमाणता। औरनकी अप्रमाणता.५२१–५२२ अन्य शास्त्रनकी त्याज्यतामैं दृष्टांत औ हेतु. ५२३–५२४ राजाका मृत्यु औ ब्रह्मलोककी प्राप्ति ॥

॥ ५२५ ॥ तर्कदृष्टिका देहपात औ परमात्मासैं अभेद ॥

॥ ५२६ ॥ इस भाषाग्रंथके रचनैका प्रयोजन ॥

॥ ५२७ ॥ मंगलाचरणपूर्वक ग्रन्थकी समाप्ति ॥

॥ इति श्रीविचारसागरकी प्रसंगदर्शक अनुक्रमणिका ॥

मंगलाचरणम्

[अनुष्टुप् छन्दः]

चैतन्यं शाश्वतं शांतं व्योमातीतं निरंजनम् ।
नादबिंदुकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १
सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदांबुजम् ।
वेदांतांबुजमार्तण्डस्तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २
अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४
ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥ ४
अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ६
न गुरोराधिकं तत्त्वं न गुरोराधिकं परम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात् संपूज्यते गुरुः ॥ ७
अखंडानंदबोधाय शिष्यसंतापहारिणे ।
सच्चिदानंदरूपाय रामाय गुरवे नमः ॥ ८
अज्ञानमूलहरण जन्मकर्मानिवारणम् ।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं गुरुपादोदकं पिबेत् ॥ ९

[मन्दाक्रांता छन्दः]

ब्रह्मानंदं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥ १०

॥ इति गुरुस्तुतिः ॥



॥ श्रीवृत्तिरत्नावलि ॥

अर्थात्

श्रीवृत्तिप्रभाकरसार ।

॥ प्रसंगदर्शकानुक्रमणिका ॥

॥ प्रथमरत्न ॥ १ ॥

॥ द्वितीयरत्न ॥ २ ॥

॥ तृतीयरत्न ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थरत्न ॥ ४ ॥

॥ पंचमरत्न ॥ ५ ॥

॥ षष्ठरत्न ॥ ६ ॥

॥ सप्तमरत्न ॥ ७ ॥

॥ अष्टमरत्न ॥ ८ ॥

॥ नवमरत्न ॥ ९ ॥

॥ दशमरत्न ॥ १० ॥

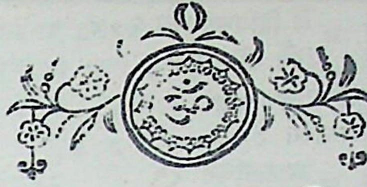
॥ एकादशरत्न ॥ ११ ॥

॥ द्वादशरत्न ॥ १२ ॥

॥ त्रयोदशरत्न ॥ १३ ॥

॥ चतुर्दशरत्न ॥ १४ ॥

.ति श्रीवृत्तिरत्नावलिकी प्रसंगदर्शक-अनुक्रमणिका ॥



॥ विचारसागर सटिप्पण ॥

तथा

॥ वृत्तिरत्नावलि ॥

॥ षष्ठावृत्तिकी अकारादिअनुक्रमणिका ॥

वृ.--श्रीवृत्तिरत्नावलिके अंकनकूं सूचन करै है ।
टिः--श्रीविचारसागरके टिप्पणांकनकूं सूचन करै है ।
अन्यसर्वअंक श्रीविचारसागरके अंकनकूं सूचन करै हैं ।

द.

ध.

४

॥ इति विचारसागर सटिप्पण तथा वृत्तिरत्नावलिकी अकारादिअनुक्रमणिका ॥



श्रीपंचदशीसटीकासभाषा-द्वितीयावृत्तिमैंसैं

श्रीमहावाक्यविवेकके मूल औ अर्थ मात्र ।

येनेक्षते शृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च ।
स्वाद्वस्वादू विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम् ॥१॥

अर्थः—जिस चैतन्यकरि पुरुष इस रूपादिककूं देखता है औ शब्दकूं सुनता है औ गंधकूं सूंघता है औ शब्दकूं बोलता है औ स्वादुअस्वादुरसकूं जानता है । सो वृत्तिउपलक्षितचैतन्य प्रज्ञान कह्या है ॥ १ ॥

चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु ।
चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि ॥ २ ॥

अर्थः—ब्रह्मा इन्द्रआदिदेवनविषै औ मनुष्य अश्व गौ आदिकनविषै जो एक चैतन्य है सो ब्रह्म है ॥ यातैं मेरे विषै वी स्थित प्रज्ञान ब्रह्म है ॥ २ ॥

परिपूर्णः परात्माऽस्मिन्देहे विद्याऽधिकारिणि ।
बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते ॥३॥

अर्थः—परिपूर्ण परमात्मा । विद्या जो ज्ञान ताके अधिकारी इस देहविषै बुद्धिका साक्षी होनैकरि स्थित होयके जो स्फुरता है, सो "अहं" इस पदकारि कहिये है ॥ ३ ॥

स्वतः पूर्णः परात्माऽत्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः ।
अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम् ॥ ४ ॥

अर्थः—स्वतः पूर्णपरमात्मा जो है सो इहां "ब्रह्म" शब्दकारि वर्णन किया है ॥ "अस्मि" यह पद एकताका स्मरण करावनैहारी है ॥ तिस हेतुकरि "मैं ब्रह्म ही हूं" ॥ ४ ॥

एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूपविवर्जितम् ।
सृष्टेः पुराऽधुनाप्यस्य तादृक्त्वं तदितीर्यते ॥ ५॥

अर्थः—सृष्टितैं पूर्व एक ही अद्वितीय नामरूपरहित जो सत् था । इस सतका अब सृष्टिके पीछे वी तैसैपना "तत्" कहिये सो । ऐसैं कहिये है ॥ ५ ॥

श्रोतुर्देहेन्द्रियातीतं वस्त्वत्र त्वम्पदेरितम् ।
एकता ग्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूयताम् ॥ ६ ॥

अर्थः—श्रोताके देहइन्द्रियतैं अतीत जो वस्तु कहिये सत्रूप आत्मा है, सो इहां "त्वं" पदकारि कहिये है। "असि"¹ इस पदकारि एकता ग्रहण कराइये है, यातैं तिनकी एकता अनुभव करना ॥ ६ ॥

स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मतम् ।
अहंकारादिदेहांतात्प्रत्यगात्मेति गीयते ॥ ७ ॥

अर्थः– "अयम्" इस उक्तिकारि आत्माका स्वप्रकाशपनैकरि युक्त अपरोक्षपना मान्या है ॥ अहंकारसैं आदिलेके देहपर्यंत जो संघात है; तिसतैं जो आंतर है, सो "आत्मा" ऐसैं कहिये है ॥ ७ ॥

दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीर्यते ।
ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥८॥

अर्थः–दृश्यमान सर्वजगतका जो तत्त्व है, सो "ब्रह्म" शब्दकारि कहिये है। सो ब्रह्म स्वप्रकाशआत्मस्वरूप है ॥ ८ ॥

इति श्रीमहावाक्यविवेकः ।



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ वंस्तुनिर्देशरूप मंगलकी टीका ॥

॥ दोहा ॥

जो सुख नित्य प्रकाश विभु,
नाम रूप आधार ।
मति न लखै जिहिं मति लखै,
सो मैं शुद्ध अपार ॥१॥

टीकाः-"सो मैं हूं" यह अन्वय है ॥ इस कहनैकारि महावाक्यका अर्थरूप प्रत्यक्-अभिन्नपरमात्मा अपना स्वरूप कह्या ॥

अब तिसके भिन्न भिन्न विशेषण कहै हैं:-

सो (ब्रह्म) कैसा है ?

१ जो "सुख" है ।
२ जो नित्य है ।
३ जो प्रकाश है ।
४ जो "विभु" है ।
५ जो "नामरूपका आधार" है ॥

फेर सो (ब्रह्म) कैसा है ?

६ "मति न लखै जिहिं मति लखै" ॥

(१) इसका यह अर्थ है:- बुद्धि जिस (ब्रह्म) कूं प्रकाशै नहीं औ जो (ब्रह्म) बुद्धिकूं प्रकाशै ॥ (२) दूसरा यह बी अर्थ है:- शब्दकी शक्तिवृत्तिसैं मति जिस (ब्रह्म) कूं जानै नहीं । शब्दकी लक्षणावृत्तिसैं मति जिस(ब्रह्म) कूं जानै॥ (३) और यह बी अर्थ है:-मलिनमति जिस (ब्रह्म) कूं जानै नहीं । शुद्धमति जिस (ब्रह्म) कूं जानै ॥ इस अर्थसैं यह जानना:-जो शुद्धमति बी फलव्याप्तिसैं जिस (ब्रह्म) कूं नहीं जानै है । किन्तु

॥ १ ॥ निर्गुणवस्तु ॥

॥ २ ॥ विघ्नध्वंसके अनुकूल व्यापार ॥

॥ ३ ॥ संबंध ॥

॥ ४ ॥ देखो अंक ॥ ४४३ ॥

॥ ५ ॥ अंतर (आत्मा) ॥

॥ ६ ॥ आनंद । देखो अंक ॥ ३६४ ॥

॥ ७ ॥ सत्य । देखो अंक ॥२४२।३५५ ॥

॥ ८ ॥ चित् । चैतन्य । ज्ञानस्वरूप ॥

॥ ९ ॥ व्यापक। देशकालवस्तुकारि अततैं रहित। देखो अंक ॥ ३६४ ॥

॥ १० ॥ अधिष्ठान । विवर्तउपादानकारण । देखो अंक ॥ १४९ ॥

॥ ११ ॥ देखो अंक ॥ ४०९ ॥

॥ १२॥ भागत्यागलक्षणासैं । देखो अंक ४०९॥ ४३२।४३८ ॥

॥ १३ ॥ मलविक्षेपदोषसहित बुद्धि ॥

॥ १४ ॥ मलविक्षेपदोषरहित बुद्धि । चारिसाधन-सहित ॥

॥ १५ ॥ चिदाभासकी विषयताकारि । देखो अंक २०५ ॥

वृत्तिव्याप्तिसैं[16] जानै है, सो वृत्ति बी जैसे दीपक अन्यपदार्थोंकूं प्रकाशता है, तैसैं ब्रह्मकूं प्रकाशनैमैं समर्थ नहीं है। परंतु जैसैं पात्रसैं ढांपी हुई मणि अंधेरेमैं स्थित होवै औ तिस पात्रकूं डंडसैं फोडिके मणिका प्रकाश होवै है, तैसै "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्तिसैं ब्रह्मके आवरणरूप अज्ञानकी निवृत्ति करनाही ब्रह्मका प्रकाश करना कहिये है ॥ जातैं ब्रह्म अपने प्रकाशमैं बुद्धि-आदिक और प्रकाशकी अपेक्षारहित हुवा सर्वका प्रकाशक है। यातैं "मति न लखै जिहिं. मति लखै।" इस वाक्यके अर्थकरि ब्रह्म स्वयंप्रकाश है। ऐसा सिद्ध होवै है ॥

फर सो (ब्रह्म) कैसा है ?

७ जो "शुद्ध"[18] है।

८ जो "अपार"[19] है ॥

उक्त ब्रह्मके लक्षणकी पंदकृतिकूं[20] दिखावै हैं:-

१ जो केवलब्रह्म "सुख" है, ऐसैं कहैं तौ विषयसुख वा न्यायमतमैं[21] आत्माका आनन्दगुण मानै हैं। तिनमैं ब्रह्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति[22] होवै, तिसके निवा-रणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "सुख" के साथि "नित्य" कह्या है ॥

(१) विषयानंद अनित्य है। औ--

(२) नैयायिक आत्माका आनंद[23] गुण मानै हैं। सो बी अनित्य मानै हैं ॥

इहां ब्रह्म "सुख" औ "नित्य" कह्या है। यातैं तिनोंमैं अतिव्याप्ति नहीं ॥

२ जो केवलब्रह्म "नित्य" है, ऐसैं कहैं तौ न्यायमतमैं[24] आकाशकालआदिक नित्य मानै हैं, तिनमैं अतिव्याप्ति होवै, तिसके निवारण-अर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "नित्य" के साथि "प्रकाश" कह्या है॥ नैयायिक आकाशा-दिककूं नित्य मानै हैं परंतु प्रकाशरूप नहीं मानै हैं. किंतु जड मानै हैं॥ इहां ब्रह्म "नित्य" औ "प्रकाश" कह्या है। यातैं तिसके मतमैं अतिव्याप्ति नहीं।

३ जो केवलब्रह्म "प्रकाश" है, ऐसैं कहैं तौ

(१) सूर्यादिक प्रकाशनमैं अतिव्याप्ति होवै

(२) वा न्यायमतमैं[25] आत्माका ज्ञान गुण मानै हैं तिसमैं अतिव्याप्ति होवै ॥

(३) वा क्षणिकविज्ञानवादीके[26] मतमैं आत्मा क्षणिकविज्ञानरूप मानैं हैं। तिसमैं अतिव्याप्ति होवै ॥

तिसके निवारणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "प्रकाशके" साथि "विभु" कह्या है।

(१) सूर्यादिकप्रकाश व्यापक नहीं हैं किंतु परिच्छिन्न हैं। औ—

(२) नैयायिक आत्माके ज्ञानगुणकूं व्यापक नहीं मानै हैं। किंतु परिच्छिन्न मानै हैं।

॥१६॥ केवलवृत्तिकी विषयताकारि देखो अंक २०९

॥ १७ ॥ देखो अंक १७९ ॥

॥ १८ ॥ माया औ ताके कार्यरूप मलसैं रहित ॥

॥ १९ ॥ देशकालवस्तुकारि अंतते रहित।

॥ २० ॥ परीक्षाकूं ॥

॥ २१ ॥ देखो अंक ३४३ । ३६३ ॥

॥ २२ ॥ जिसका लक्षण करीये तिसमैं वर्तिके तिसतैं और पदार्थमैं बी लक्षणका वर्त्तना ॥

॥ २३ ॥ गुण होवै सो अनित्यही होवै है। ऐसा नियम है ॥

॥ २४ ॥ देखो अंक ३४३ ॥

॥ २५ ॥ देखो अंक ३४३ । ३५७ ।

॥ २६ ॥ देखो अंक १२७ ॥

(३) तैसैं क्षणिकविज्ञानवादी क्षणिकविज्ञानकूं व्यापक नहीं मानै हैं । किन्तु परिच्छिन्न मानै हैं ॥

इहां ब्रह्म "प्रकाश" औ "विभु" कह्या है। यातैं तिनोंमैं अतिव्याप्ति नहीं ॥

४ जो केवलब्रह्म "विभु" है। ऐसैं कहैं तौ

(१) आकाशादिक बी व्यापक हैं। तिनमैं अतिव्याप्ति होवै। औ--

(२) नैयायिकप्रभाकर आत्माकूं विभु मानै हैं तिसमैं अतिव्याप्ति होवै । वा-

(३) सांख्यमतमैं प्रकृतिकूं व्यापक मानै हैं तिनमैं अतिव्याप्ति होवै ॥

तिसके निवारणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "विभु" के साथि "नामरूपका आधार" कह्या है ॥

(१) आकाशादिक विभु तौ हैं। परन्तु नामरूपके आधार नहीं है ॥

(२) तैसैं नैयायिक औ प्रभाकर आत्माकूं विभु मानै हैं। परंतु नामरूपका आधार नहीं मानै हैं। औ--

(३) सांख्यमतमैं प्रकृतिकूं व्यापक मानै हैं परंतु नामरूपका आधार नहीं मानै हैं।

इहां ब्रह्म "विभु" औ "नामरूपका आधार" कह्या है। यातैं तिनोंमैं अतिव्याप्ति नहीं ॥

५ जो केवलब्रह्म "नामरूपका आधार" है, ऐसे कहै तौ प्रातिभासिक सर्पादिकनके नाम औ रूपके आधार रज्जुआदिक हैं। तिनमैं अतिव्याप्ति होवै, तिसके निवारणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "नामरूपका आधार" के साथि "माति न लखै जिहिं माति लखै" (स्वयंप्रकाश) कह्या है ॥

यद्यपि "नामरूपका आधार" इस एकविशेषणसैं ही किसी मतके कोई पदार्थमैं ब्रह्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं होवै है औ वेदांतमतमैं रज्जुआदिक स्थलमैं कल्पितसर्पादिकनके नामरूपका आधार रज्जुउपहितचेतन ही अंगीकार किया है। रज्जुआदिक नहीं। तथापि इहां जो रज्जुआदिककूं नामरूपकी आधारता कहिके अतिव्याप्ति निवारण करी है सो स्थूलदृष्टिसैं करी है ॥

६ जो केवलब्रह्म "स्वयंप्रकाश" है, ऐसैं कहैं तौ---

(१) कोई उपासकोंके मतमैं आत्मा स्वयंप्रकाश मानै है । तिसमैं अतिव्याप्ति होवै ॥ तिसके निवारणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "स्वयंप्रकाश" के साथि "शुद्ध" कह्या है ॥

(२) उपासकोंके मतमैं आत्मा स्वयंप्रकाश औ अविद्यादिमलसहित मान्या है ॥ इहां ब्रह्म "स्वयंप्रकाश" औ "शुद्ध" कह्या है।

यातैं तिनमैं अतिव्याप्ति नहीं ॥

७ जो केवलब्रह्म "शुद्ध" है ऐसैं कहैं तौ सांख्यमतमैं आत्मा शुद्ध मानै हैं, तिसमैं अतिव्याप्ति होवै ॥ तिसके निवारणअर्थ ब्रह्मके लक्षणमैं "शुद्ध" के साथि "अपार"

॥ २७ ॥ देखो अंक ३४९ ॥

॥ २८ ॥ आकाशादिककी व्यापकता आपेक्षिक है। देखो अंक १७२ ॥

॥ २९ ॥ प्रतीतिमात्र। कल्पित। देखो अंक २१९॥

॥ ३० ॥ प्रथमपृष्ठपर, स्वयंप्रकाश अर्थ सिद्ध किया है ॥

॥ ३१ ॥ देखो अंक ॥ १३६ ॥

॥ ३२ ॥ देखो अंक ३४२ ॥

कह्या है ॥ सांख्यमतमैं आत्मा शुद्ध तौ मानै हैं, परंतु अपार नहीं मानै हैं ॥

यद्यपि सांख्यमतमैं आत्मा देशकालकरि अंतवाला नहीं, तथापि वस्तुकरि अंतवाला है। यातैं सर्वथा अपार नहीं औ इहां ब्रह्म "शुद्ध" औ "अपार" (देशकालवस्तुकरि अंततैं रहित)कह्या है। यातैं तिसमैं अतिव्याप्ति नहीं ॥

यद्यपि "सुख नित्य" वा "नित्य प्रकाश" इस रीतिसैं दोदोविशेषण जो ऊपर दिखाये हैं, तिन दोदोविशेषणकरिही अतिव्याप्ति तौ दूरी होवै है, तथापि अधिक विशेषण जो कहे- हैं, सो जिज्ञासुनको तिन विशेषणोंका बोध होवै। इस निमित्त कहे हैं ॥ किंवा अनेकरीतिसैं ब्रह्मके लक्षणका ज्ञान होवै। इस निमित्त कहे हैं ॥

उक्तविशषणोंकारि युक्त जो ब्रह्म "सो मैं हूं" ऐसा यह दोहेका भावार्थ है ॥ १ ॥

शंकाः–विष्णुशिवआदिक देवनका स्मरणरूप मंगल किया चाहिये। तिन देवनकूं छोडिके अपना स्मरणरूप मंगल करना उचित नहीं है। याके समाधानका––

॥ दोहा ॥

अब्धि अपार स्वरूप मम,
लहरी विष्णु महेस।
विधि रवि चंदा वरुन यम,
सक्ति धनेस गनेस ॥ २ ॥

टीकाः–मेरा (प्रत्यक्‌आत्माका) स्वरूप समुद्र[33]की न्यांई अपार है। तिस मेरे स्वरूपभूत समुद्रकी विष्णु, महेश[34], विधि[35], रवि, चंद्र, वरुण[36], यम[37], शक्ति[38], धनेश[39], गणेश[40], इसकरि उपलक्षित[41] सर्वदेव लहरी हैं ॥ स्वस्वरूपभूत समुद्रमैं सर्वदेवता लहरी होनैतैं। अपनै ही मंगलसैं सर्वदेवताओंके मंगलकी सिद्धि होवै है। यातैं अपना ही मंगल करनैमैं कछु बी अनुचित नहीं ॥ २ ॥

शंकाः–विष्णुशिवादिक देव ईश्वर[42]की लहरी संभवै हैं। तुम्हारे स्वरूप (प्रत्यक्‌आत्मा) की लहरी संभवै नहीं। यातैं ईश्वरका मंगल करना चाहिये ॥ जैसैं वृक्षके मूलमैं जलसेच नसैं स्कंधादिककी औ प्राणके अहारतैं इंद्रियनकी तृप्ति होवै है। तैसैं ईश्वरका मंगल कियेसैं सर्वदेवताके मंगलकी सिद्धि होवै है। हमारे (प्रत्यक्‌आत्माके) मंगलसैं सर्वदेवताके मंगलकी सिद्धि नहीं होवै है। याके समाधानका––

॥ दोहा ॥

जा कृपालु सर्वज्ञको,
हिय धारत मुनि ध्यान।

॥ ३३ ॥ यद्यपि समुद्रका तौ नौकाकरि पार आवै है। यातैं समुद्रकी उपमा उपमेय (स्वस्वरूप) के समान नहीं है औ उपमा समानवस्तुकीही होवै है। तथापि हस्तपादादिअंगकी क्रियाकरि समुद्रका पार आवै नहीं। तातैं समुद्रके समान स्वरूप कह्या है ॥ इहां समुद्रकी पूर्णउपमा नहीं है किंतु लुप्तउपमा है।

॥ ३४ ॥ शिव ॥

॥ ३५ ॥ ब्रह्मा ॥ वेदमतसैं विष्णु शिव ईश्वरकोटीमैं होनैतैं तिनका प्रथम ग्रहण है औ ब्रह्मा जीवकोटीमैं होनैतैं तिसका पीछे ग्रहण है ॥

॥ ३६ ॥ जलका अभिमानी देवता ॥

॥ ३७ ॥ धर्मराजा ॥ ॥ ३८ ॥ देवी ॥

॥ ३९ ॥ कुबेर ॥ ॥ ४० ॥ गणपति ॥

॥ ४१ ॥ देखो अंक ५१६ ॥

॥ ४२ ॥ मायाविशिष्टचेतनकी ॥

ताको होत उपाधितैं,
मोमैं मिथ्या भान ॥ ३ ॥

टीकाः—जिस कृपालु सर्वज्ञ (ईश्वर) का मुनि हृदयमें ध्यान धरै हैं, तिस ईश्वरका मायाउपाधिसैं जैसैं रज्जुमैं सर्पादि औ स्वप्नमैं नगरादि भान होवै हैं, तैसैं मेरे स्वरूप (प्रत्यक्तत्त्व) विषै (ईश्वर) मिथ्या ही भान होवै है ॥ यातैं मेरे मंगलसैं ईश्वरादिसर्वके मंगलकी सिद्धि होवै है । काहेतैं ? जो वस्तु जिसके विषै कल्पित होवै सो तिसका रूपही होवै है । ऐसा नियम है यातैं मेरा ही मंगल उचित है ॥ ३ ॥

शंकाः—ईश्वर तौ शुद्धब्रह्ममैं अध्यस्त है। तुमारे स्वरूप (प्रत्यक्आत्मा) मैं नहीं । यातैं निर्गुणब्रह्मका मंगल करना चाहिये । तिसके मंगलसैं सर्वके मंगलकी सिद्धि होवैगी । तुमारे मंगलकरि नहीं । याके समाधानका—

॥ दोहा ॥

है जिहिं जानै बिन जगत,
मनहु जेवरी साप ॥
नसै भुजग जग जिहिं लहै,
सोऽहं आपे आप ॥ ४ ॥

टीकाः—जैसैं जेवरीकूं जानै बिना सर्प प्रतीत होवै है । तैसैं जिस (ब्रह्म) कूं जानै विना यह जगत् प्रतीत होवै है ॥ औ जेवरीके जाननैसैं जैसैं सर्प नाश होवै है। तैसैं तिस (ब्रह्म)कूं जाननैसैं यह जगत् निवृत्त होवै है ॥ सो अधिष्ठानरूप शुद्धब्रह्म मैं आपे आप हूं ॥ "आपे आप" कहनैकरि अंशअंशीभाव, वा विकारविकारीभाव, वा उपासकउपास्यभावआदिक कोई बी रीतिसैं मेरा औ ब्रह्मका किंचित् भेद नहीं। यह सूचन किया, औ भेदके अभावतैं कार्यतारूप, प्रकाश्यतारूप, औ आधेयतारूप जे तीनप्रकारकी परतंत्रता हैं, तिनतैं मैं रहित हूं । यह बी सूचन किया ॥ यातैं मेरा (प्रत्यक्आत्माका) मंगलही शुद्धब्रह्मका मंगल है ॥ ४ ॥

शंकाः—तुमारे परंपरागुरु दादूजीके संप्रदायके इष्टदेव श्रीरामजीका तौ नमस्काररूप मंगल करना चाहिये । याके समाधानका—

॥ दोहा ॥

बोध चाहि जाको सुकृति,
भजत राम निष्काम ।
सो मेरा है आतमा,
काकूं करूं प्रनाम ॥ ५ ॥

टीकाः—जिस रामजीको बोधकी चाहना करिके सुकृति निष्काम भजे हैं। सो रामजी मेरो आत्मा (स्वरूप) है (दादूदयालजीके संप्रदायमैं रामजीकूं निर्गुणब्रह्मरूप होनैतैं) यातैं मैं किसकूं प्रणाम करूं ? मेरैतैं भिन्न और वस्तुके अभावतैं किसीकूं बी प्रणाम नहीं करूं । यह भाव है ।

अथवा जिस (परब्रह्म)के बोधकी चाहनाकरि सुकृतिपुरुष रामजीकूं निष्काम भजे हैं, सो परब्रह्म मेरो आत्मा (स्वरूप) है । (सोई रामजी है) यातैं सर्वको अधिष्ठान मैं किसकूं प्रणाम करूं ? मेरैतैं भिन्न और कोई वस्तु है ही नहीं । जाको मैं प्रणाम करूं । यह भाव है ॥

इति श्रीविचारसागरके मंगलके पंचदोहेकी टीका संपूर्ण ॥

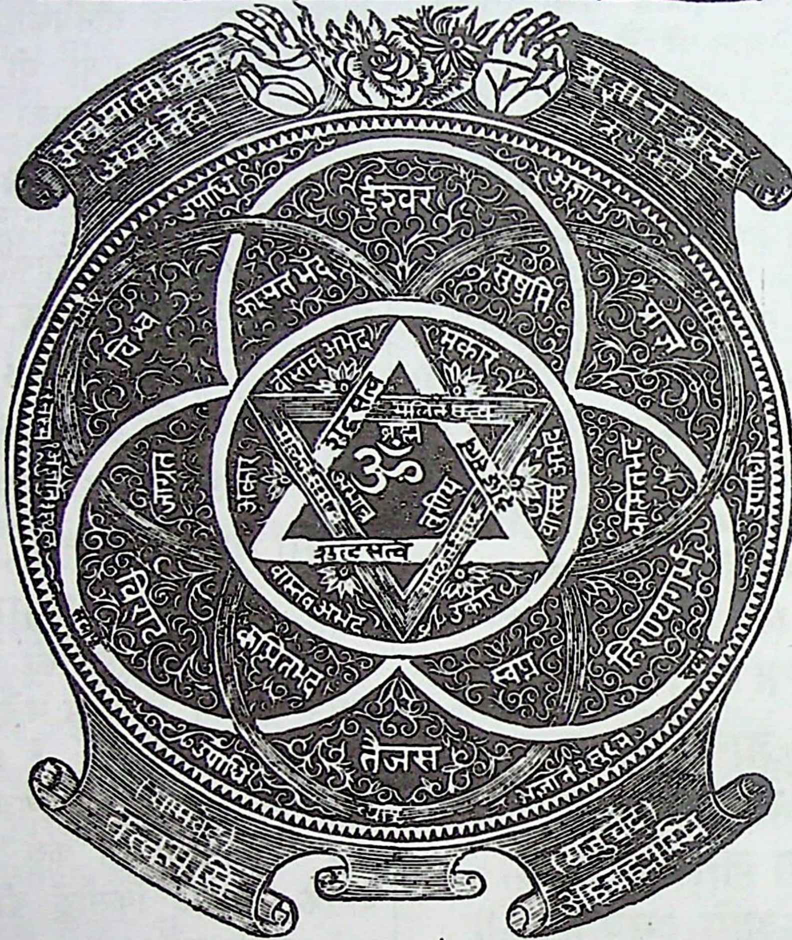
॥ ४३ ॥ कल्पित ॥

॥ ४४ ॥ कारणकी अधीनता, प्रकाशककी अधीनता औ आधारकी अधीनता, ये तीन परतंत्रता ॥

॥ ४५ ॥ दादूपंथी।रामके नामकी धून लगाते है ॥

निर्गुण उपासना चक्र

देखो श्रीविचारसागरमें अंक ॥ २८१-३०२ ॥



॥ ११९३ ॥ अनुभूतेरभावेऽपि ब्रह्मास्मीत्येव चिन्त्यताम् ।
अप्यसत्प्राप्यते ध्यानान्नित्याप्तं ब्रह्म किं पुनः ॥ १५५ ॥
[श्रीपंचदशी-ध्यानदीपः]

॥ सवैयाछंद ॥

ध्यान अहंग्रह प्रनवरूहको ।
कह्यो सुरेश्वर श्रुतिअनुसार ॥
अच्छर प्रनव ब्रह्म ममरूप सु ।
यू अनुलव निजमति गति धार ॥
ध्यानसमान आन नहिं याके ।
पंचोकरनप्रकार विचार ॥
जो यह करत उपासन सो मुनि ।
तुरित नसै संसार अपार ॥ १६८ ॥
(श्रीविचारसागर अंक ॥ २८१ ॥)

॥ सवैयाछन्द ॥

जो यह निर्गुनध्यान न व्है तौ ।
सगुनईस करि मनको धाम ।
सगुनउपासनहू नहिं व्है तौ ।
करि निष्कामकर्म भजि राम ॥
जो निष्कामकर्महू नहीं व्है ।
तौ करिये सुभकर्म सकाम ॥
जो सकामकर्महूं नहीं होवै ।
तौ सठ वारवार भरि जाम ॥ १६९ ॥
(श्रीविचारसागर अंक ॥ ३०३ ॥



॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ प्रथमस्तरंगः ॥ १ ॥



॥ अथ अनुबंधसामान्यनिरूपणम् ॥

॥ १ ॥ अथ वस्तुनिर्देशरूप मंगल ॥

॥ दोहा ॥

जो सुख नित्य प्रकास विभु,
नाम रूप आधार ।
मति न लखै जिहिं मति लखै,
सो मैं सुद्ध अपार ॥ १ ॥
अब्धि अपार स्वरूप मम,
लहरी विष्णु महेस ।
विधि रवि चंदा वरुन यम,
सक्ति धनेस गनेस ॥ २ ॥
जा कृपालु सर्वज्ञको,
हिय धारत मुनि ध्यान ।
ताको होत उपाधितैं,
मोमैं मिथ्या भान ॥ ३ ॥
है जिहिं जाने बिन जगत,
मनहुँ जेवरी सांप ।
नसै भुजग जग जिहिं लहैं,
सोऽहं आपै आप ॥ ४ ॥
बोध चाहि जाकों सुकृति,
भजत राम निष्काम ।
सो मेरो है आतमा,
काकूं करूं प्रनाम ॥ ५ ॥

॥ २ ॥ ग्रंथमहिमा ॥ २-३ ॥

भर्‌यो वेद सिद्धांतजल,
जामैं अतिगंभीर ।
अस विचारसागर कहूं,

॥ १ ॥ प्रतिवादी औ सिद्धांतीकरिके वा गुरु-शिष्यकरिके किया जो जड-चेतन-आदिक पदार्थनका विवेचन कहिये निर्णय, सो विचार कहियें है ॥ इहां विचारशब्दसैं अजहत्लक्षणाकरिकें प्रतिवादीआदिक-कारि निर्णीत अर्थरूप विचारके विषयका बी ग्रहण है ॥ सो विचारका विषयरूप निर्णीत अर्थ ही सिद्धांत है ॥ यातैं

१ प्रतिवादी वा शिष्यरूप पवनकारिके प्रेरित जो सिद्धांती वा गुरुरूप मेघ ।

२ तिसकारि भई जो विचाररूप जलकी वर्षा है ।

३ तासहित ताका विषयरूप वेदका सिद्धांत जल है ।

४ ताका सागरकी न्यांई विस्तीर्ण होनैकारि सागररूप ग्रंथ है ।

यातैं सो विचारसागर कहिये है ।

१ वाकी आदितैं लेके अंतपर्यंतके वर्णोंकी समष्टि-रूप भूमिका है ।

२ तामैं उक्त वेदका सिद्धांतरूप जल भर्‌या है ।

²पेखि ³मुदित ह्वै ⁴धीर ॥ ६ ॥
⁵सूत्र ⁶भाष्य ⁷वार्तिक प्रभृति,
ग्रंथ बहुत सुरबानि ।
तथापि मैं भाषा करूं,
⁸लखि मतिमंद अजानि ॥ ७ ॥

टीका:--यद्यपि सूत्रभाष्यवार्तिकसैं प्रभृति कहिये आदिलेके, सुरबानि कहिये संस्कृतग्रंथ बहुत हैं। तथापि संस्कृतग्रंथनसैं मंदबुद्धि पुरुषन कूं बोध होवै नहीं औ भाषाग्रंथनसैं मंदबुद्धि पुरुषनकूं बी बोध होवै है। यातैं भाषाग्रंथका आरंभ निष्फल नहीं । किंतु संस्कृतग्रंथनके विचारनैविषै जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है, तिनके निमित्त ग्रंथका आरंभ सफल है ॥ ७ ॥

---

३ याके सप्तप्रकरणरूप तरंग कहिये लहरियां हैं।
४ यामैं अनेकछंदरूप स्वल्प जलजंतु हैं । औ
५ कठिनप्रसंगरूप मकर हैं । औ
६ उत्तमछंदरूप सीपियां हैं।
७ तिनमैं वर्णमैत्रीआदिक मौक्तिक हैं । औ
८ यामैं शुद्धस्वरूपके निर्णयरूप मणि-माणिक्य-आदिक हैं। औ
९ विवेकादिसाधनरूप चतुर्दश रत्न हैं ।
१० याके उल्लंघन करनेकूं जिज्ञासुकी बुद्धिरूप नौका है । औ
११ अभ्यासरूप शुभपवन है । औ
१२ ब्रह्मनिष्ठ गुरुरूप कर्णधार नाम केवट है ।
१३ याका संसाररूप कुदेशसैं संबंधी अज्ञान-रूप अवारतीर है । औ
१४ मोक्षरूप सुदेशसैं संबंधी ज्ञानरूप पार-तीर है ।
१५ याके श्रद्धापूर्वक पढ़नेरूप उलंघन करनेका मोक्षरूप सुदेशकी प्राप्ति फल है ।
ऐसा यह विचारसागरनामा ग्रंथ है ॥

॥ २ ॥ पेखि कहिये गुरुमुखद्वारा श्रद्धाभक्तिपूर्वक याका श्रवणमननरूप विचार करिके ॥

॥ ३ ॥ मुदित कहिये स्वरूपके साक्षात्काररूप अपरोक्षज्ञानद्वारा अविद्यातत्कार्यरूप अनर्थकी निवृत्ति-पूर्वक परमानंदकूं प्राप्त होवै है ॥

॥ ४ ॥ "धी" जो बुद्धि ताकूं "र" कहिये विषयनतैं रक्षा करै । ऐसा जो ब्रह्मचर्यआदिक साधन-करि संपन्न अधिकारी, सो इहां "धीर" कहिये है ॥

॥ ५ ॥ स्वल्पअक्षरोंवाला, असंदिग्ध कहिये निःसंदेहसारवाला, सर्वओर प्रवृत्त होनेवाला, किसी-कारि बी रोकनैकूं अशक्य औ निर्दोष जो वाक्य सो सूत्र कहिये है ॥ ऐसैं सूत्रनके समुदायरूप षट्-शास्त्रआदिक अनेक ग्रंथ हैं । तिनमैं इहां वेदव्यासरचित ५५५ ब्रह्मसूत्ररूप उत्तरमीमांसाशास्त्रका "सूत्र" शब्द करिके ग्रहण है । और उपनिषद् औ गीता-आदिक अन्यग्रंथनका "प्रभृति" शब्दकरिके ग्रहण है ॥

॥ ६ ॥ सूत्रादिरूप मूलग्रंथगत पदकूं लेके ताके पर्यायरूप स्वपदोंकूं कहिके फेर मूलगत पदनके अनुसारि पदों करिके जो स्वपदोंका विवरण कहिये विशेषकरिके वर्णन सो "भाष्य" कहिये है । ऐसे भाष्य अनेक हैं । तिनमैंसैं इहां श्रीशंकरा-चार्यकृत भाष्यका ग्रहण है ॥

॥ ७ ॥ मूलग्रंथकारकरि उक्त, अनुक्त औ विरुद्ध उक्तअर्थका चिंतन जो विचार सो जिसविषै होवे, ऐसा जो श्लोकबद्ध व्याख्यान, सो "वार्तिक" कहिये है । तैसैं वार्तिक बी अनेक हैं । तिनमैंसैं इहां श्रीशंकराचार्यके शिष्य श्रीसुरेश्वराचार्य (मंडनमिश्र) कृत वार्तिकका ग्रहण है ॥

॥ ८ ॥ मतिमंद कहिये संस्कृतग्रंथनके विचारनेविषै जिनकी अल्पबुद्धि है औ अजानि कहिये स्वरूप-के अज्ञानी हैं, ऐसे पुरुषनकूं लखि कहिये जानिके मैं भाषाग्रंथकूं करता हूँ ॥ इस कथनकरि "संस्कृतविषै अल्पमतिवाला औ स्वरूपका अज्ञानी या भाषा ग्रंथका अधिकारी" कह्या ॥

या लक्षणकी यह परीक्षा है:-

१ भाषा औ संस्कृत दोनूंविषै अल्पमतिवाले अरु अज्ञानी तौ अनेक पामर औ विषयी जीव हैं । वे

॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥

कविजनकृत भाषा बहुत,
ग्रंथ जगत विख्यात ।
बिन विचारसागर लखें,
नाहिं संदेह नसात ॥ ८ ॥

टीकाः—यद्यपि भाषाग्रंथ बहुत हैं, तथापि विचारसागर विना और भाषाग्रंथनसैं आत्मवस्तुविषे संदेह दूरि होवै नहीं। याकेविषे यह हेतु हैः—

१ कितनै तौ श्रवण करिके भाषाग्रंथ रचे हैं। जैसैं पंचभाषा हैं ॥ तिनकी प्रक्रिया काहू अंशमैं तौ शास्त्रके अनुसार है औ जो श्रवण किया अर्थ यथार्थ ग्रहण नहीं हुवा तिस अंशमैं शास्त्रसैं विरुद्ध है, यातैं श्रोताकूं तद्ग्रंथसैं संदेहरहित बोध होवै नहीं ॥

२ और कोई भाषाग्रंथ किंचित्‌शास्त्र पढ़िके रचे हैं। जैसैं आत्मबोध है। तिनसैं बी संदेहरहित बोध होवै नहीं। काहेतैं तिनमैं वेदांतकी प्रक्रिया संपूर्ण नहीं है। औ

विचारसागरग्रंथमैं संपूर्ण प्रक्रिया है औ वेदांतशास्त्रके अनुसार है। काहू स्थानमैं बी विरुद्ध नहीं है औ आत्मज्ञानमैं उपयोगी जो पदार्थ हैं, तिनका निरूपण विस्तारसैं किया है। यातैं और भाषाग्रंथनके समान यह ग्रंथ नहीं है। किंतु सर्व भाषाग्रंथनसैं यह ग्रंथ उत्तम है ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ ॥ अनुबंधनाम ॥

॥ चौपाई ॥

नहिं अनुबंध पिछानै जौलौं,
है न प्रवृत्त सुघर नर तौलौं।
जानि जिनै यह सुनै प्रबंधा,
कहूं व यातैं ते अनुबंधा ॥ ९ ॥

टीकाः—अधिकारी, संबंध, विषय औ प्रयोजनका नाम अनुबंध है । अधिकारीआदिक ग्रंथके अनुबंध जानै विना सुघर कहिये विवेकी पुरुषकी ग्रंथनमैं प्रवृत्ति होवै नहीं। यातैं जिन अनुबंधनकूं जानिके प्रबंध कहिये ग्रंथकूं सुनै तिन अनुबंधनकूं व कहिये अब कहूं हूं ॥ ९ ॥

॥ सोरठा ॥

अधिकारी संबंध,
विषय प्रयोजन मेलि चव।
कहत सुकवि अनुबंध,
तिनमैं अधिकारी सुनहु ॥ १० ॥

मूर्ख होनैतै आपकूं अज्ञानी मानते नहीं किंतु ज्ञानी मानते हैं। याते जिज्ञासाके अभावतैं विवाहविषै अनधिकारी षंढपुरुषकी न्यांई वे ग्रंथविषै अधिकारी नहीं-औ

२ संस्कृतविषै अल्पमतिवाले तों केइक भाषाके वेत्ता ज्ञानी बी हैं। वे भाषाग्रन्थविषै अल्पमतिवाले नहीं। यातैं जिज्ञासाके अभावतै ग्रंथविषै अधिकारी नहीं किंतु मुक्त हैं। औ

३ अज्ञानी तो केइक (पामर वा विषयी वा जिज्ञासुरूप) संस्कृतके वेत्ता बी हैं वे अल्पमतिवाले नहीं। यातैं भाषाग्रन्थविषै अधिकारी नहीं ॥

यातै उपरि कहा जो लक्षण सो निर्दोष है ॥

॥ ९ ॥ षट्प्रश्नी। शतप्रश्नी। ज्ञानमञ्जरी । ज्ञानचूर्ण। वेदान्तसार। पञ्चीकरण। ये मनोहरदासकृत षट्भाषा ग्रन्थ हैं, तिनमैं पंचीकरण स्वल्प है, ताकूं छोड़िके पञ्चभाषा कहिये हैं ॥

॥ १० ॥ इंद्रियकी वा चित्तकी चचलतासैं श्रवण किया अर्थ भूतके अग्निकी न्यांई ज्यूंका त्यूं धारण नहीं हुआ ॥

॥ ११ ॥ साधु श्रीमाणकदासजीकृत **माणकबोध** है। याहीकूं **आत्मविचार** बी कहते हैं। जिसके ऊपर मूलचन्दज्ञानीनै **सारोद्धार** नामक व्याख्यान किया है॥

॥ ५ ॥ अधिकारीवर्णन ॥ ५-२३ ॥

॥ दोहा ॥

मलबिछेप जाके नहीं,
किंतु एक अज्ञान ।
है चव साधनसहित नर,
सो अधिकृत मतिमान ॥ ११ ॥

टीकाः—अंतःकरणविषै तीन दोष होवै हैं:— १ एक तौ मल होवै है। २ दूसरा विक्षेप होवै है औ ३ तीसरा आवरण होवै है। (१) निष्कामकर्मसैं अंतःकरणका मलदोष दूरि होवै है। (२) उपासनासैं विक्षेपदोष दूरि होवै है। (३) ज्ञानसैं आवरणदोष दूरि होवै है ॥

जा पुरुषनै निष्कामकर्म औ उपासना करिकै मल औ विक्षेपदोष दूरि किये हैं औ एकअज्ञान कहिये स्वरूपका आवरण जाके चित्तविषै होवै औ च्यारि साधनसंयुक्त होवै, सो पुरुष अधिकृत कहिये अधिकारी है ॥ ११ ॥

॥६॥ अथ च्यारिसाधनवर्णन ॥६-१४॥

॥ दोहा ॥

प्रथम विवेक विराग पुनि,
शमादि षट्संपत्ति ।
कही चतुर्थ मुमुच्छुता,
ये चव साधन सत्ति ॥ १२ ॥

॥ ७ ॥ ॥ (१) अथ विवेकलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

अविनासी आतम अचल,
जग तातैं प्रतिकूल ।
ऐसो ज्ञान विवेक है,
सब साधनको मूल ॥ १३ ॥

टीकाः—

१ आत्मा अविनाशी कहिये नाशरहित है औ अचल कहिये क्रियारहित है । औ

२ जगत् आत्मातैं प्रतिकूल कहिये विपरीतस्वभाववाला है, विनाशी है औ चल है ।

या ज्ञानका नाम विवेक है ॥

यह विवेक ही सर्वसाधनका मूल है। काहेतैं? प्रथम विवेक होवै तौ वैरागसैं आदि लेकै उत्तरसाधन होवै हैं औ विवेक नहीं होवै तौ उत्तरसाधन होवै नहीं । यातैं वैराग्य शमादिषट्संपत्ति और मुमुक्षुता इनका हेतु विवेक[१२] है॥१३॥

॥ १२ ॥ इहां यह शंका है:—विजिगीषु (अन्योंकूं जीतनेकी इच्छावाले) जे पंडित हैं तिनकूं वी "आत्मा नित्य है औ आत्मासैं भिन्न देहादिप्रपंचरूप अनात्मा अनित्य हैं" इस आकारवाला भेदज्ञानरूप विवेक होवै है। सो विवेक वैराग्यसैं आदि लेके उत्तरसाधनोंका हेतु ही कैसैं होता नहीं ? याका

यह समाधान है:—उक्त विजिगीषु पंडितनकूं यद्यपि शास्त्रके अभ्याससैं विवेकज्ञान होवै है तथापि सो निष्कामकर्मउपासनासैं शुद्धिरहित मलिन अन्तःकरणदेशविषै उदय होवै हैं। यातैं

१ अन्यदेशसैं उखाड़िके जलसंबन्धरहित ऊषर भूमिविषै गाड़े हुए कदलीवृक्षकी न्यांई वैराग्यादि उत्तरसाधनरूप अन्यवृक्षोंकी परंपराका हेतु नहीं होवै है। किंतु वह विवेक चित्रांगदकी न्यांई और चित्रामृतकी न्यांई औ चित्राग्निकी न्यांई वाणीमात्रका क्रियाहोनैतैं अविवेक ही है । औ—

२ शुद्धियुक्त अंतःकरणदेशविषै उदय भया जो विवेक सो सजलसरसभूमिविषैं गाडे हुए कदलीवृक्षकी न्यांई वैराग्यादिउत्तरसाधनरूप अन्यवृक्षनकी परंपराका हेतु होवै है । यातैं शुद्धचित्तरूप भूमिविषै उदय भया जो विवेक सो **वैराग्यका असाधारणकारण** है औ वैराग्य **षट्संपत्तिका असाधारणकारण** है । इस रीतिसे उत्तरउत्तरसाधनका पूर्वपूर्वसाधन निमित्त कारण है औ शुद्धअन्तःकरणरूप भूमिका सर्वका उपादानकारण है ।

तातैं मुमुक्षुपुरुषकूं चित्तशुद्धिपूर्वक विवेक संपादन करना योग्य है ॥

॥ ८ ॥ ॥ (२) अथ वैराग्यलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्मलोक लौं भोग जो,
चहै सबनको त्याग ।
वेदअर्थ ज्ञाता मुनी,
कहत ताहि वैराग ॥ १४ ॥

॥९॥॥ (३)अथ शमादिषट्नाम॥९-१३॥

॥ दोहा ॥

सम दम श्रद्धा तीसरी,
समाधान उपराम ।
छठी तितिच्छा जानिये,
भिन्न भिन्न यह नाम ॥ १५ ॥

॥१०॥ ॥ [१-२] अथ शमदमलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

मन विषयनतै रोकनों,
सम तिहिं कहत सुधीर ।
इंद्रियगनको रोकनों,[१३]
दम भाखत बुधवीर ॥ १६ ॥

॥११॥[३-४]अथ श्रद्धासमाधानलक्षण॥

॥ दोहा ॥

सत्य वेद गुरु वाक्य हैं,
श्रद्धा अस विस्वास ।
समाधान ताकूं कहत,
मन विछेपको नास ॥ १७ ॥

॥१२॥ ॥ [५] अथ उपरामलक्षण ॥[१५]

॥ चौपाई ॥

[१६]साधनसहित कर्म सब त्यागै ।
लखि विष सम विषयनतैं भागै ॥
दृग नारी लखि है जिय ग्लाना ।
यह लच्छन उपराम बखाना ॥१८॥

॥ १३ ॥ जैसे रंग (कल्ली) रहित काचविषै मुखके देखे हुए नेत्रकी वृत्ति बाहिर निकस जाती हैं, तैसे इंद्रियरूप द्वारके विषयनतैं निरोधरूप दम विना मनका निरोधरूप शम सिद्ध होवै नहीं औ लगामके पकड़े विना अश्वकी न्याई मनके निरोधरूप शम विना इंद्रियनका निरोधरूप दम सिद्ध होवै नहीं, यातैं इन शमदमकी परस्पर अपेक्षा है ॥

तैसैं सारी षट्सम्पत्तिकी परस्पर अपेक्षा है। सो आगे २० वें दोहाके टिप्पणमें कहैंगे ॥

॥ १४ ॥ (१)सर्वसाधनोंकी सम्पत्तिरूप दधिमथनकी सामग्रीविषै श्रद्धारूप मथनपात्र है। ताके भंग हुए सर्वसाधनोंकी व्यर्थता होवै है ॥

(२) किंवा सर्व साधनोंकी सम्पत्तिरूप वृक्षनका श्रद्धारूप फल है । ताके नाश भये सर्व साधनोंकी व्यर्थता होवै है ॥

श्रद्धाके होते अन्य सर्वसाधनोंकी सफलता होवै है । यातैं ज्ञानके सर्व साधनोंविषे श्रद्धा जो है सो मुख्य साधन है। ताका कुसंगआदिक नाशके निमित्ततैं रक्षण करना योग्य है ॥

साधनसंपत्तिरूप दधिमथनकी सामग्रीका रूपक हमने श्रीबोधरत्नाकरके प्रथमरत्नविषै लिख्या है औ इसी ही साधनसामग्रीरूप वृक्षका रूपक हमने श्रीबालबोधिनीटीकासहित बालबोधके प्रथम उपदेशविषै विस्तारसे लिख्या है॥

॥ १५ ॥ त्याग किये पीछे प्राप्त भये विषयकी इच्छाका अभाव उपराम कहिये है । याहीकूं उपरति बी कहै हैं॥ यह ही फेर भोगनमें अदीनतारूप वैराग्यका फल है ॥

॥ १६ ॥ स्त्री धन जाति अभिमान आदिक कमकी सामग्रीसहित ॥

॥ १७ ॥ यद्यपि इहां "विषयनतैं भागै" इस कथनकरि स्त्रीआदिक सर्वविषयनमैं ग्लानि दिखायी । फिर बी नारीरूप विषयमैं ग्लानिके कथनतैं पुनरुक्ति-

॥ १३ ॥ [६] अथ तितिक्षालक्षण ॥

॥ दोहा ॥

आतप सीत छुधा तृषा,
इनको सहन स्वभाव ।
ताहि तितिच्छा कहत हैं,
[१८]कोविद मुनिवर राव ॥ १९ ॥
समादिषट्संपत्तिको,
भाखत साधन एक ।
इमि नव नहिं साधन भनैं,
किंतु च्यारि सविवेक ॥ २० ॥

टीकाः—शमादिषट्की जो सम्पत्ति कहिये प्राप्ति, सो एकैसाधन करिके गिनिये है । यातैं नव साधन नहीं किन्तु सविवेक कहिये विवेकी जन च्यारि साधन कहे हैं ॥ २० ॥

रूप दोष होवै है । तथापि अनन्तजन्मविषै किये नारी-संगके सस्कारकी तीव्रतातै औ नारीविषै शब्द स्पर्श रूप मुखचुम्बनआदिक रस, अतर फुलल आदिक गन्ध औ मैथुन, इन षटूविषयनके बहुत कारि लाभतैं नारी-रूप विषय अन्यसर्वविषयनतैं प्रबल है । यातैं ताके विषै अतिशय ग्लानि करनी चाहिये । इस अभिप्रायसे ताका फेर कथन किया है । तातैं इहां पुनरुक्ति जो है सो दूषणरूप नहीं किंतु भूषणरूप है ॥

॥ १८ ॥ कोविद कहिये पंडित, ऐसै मुनि जो संन्यासी, तिनमैं वर कहिये श्रेष्ठ जो विद्वत्संन्यासी तिनके राव कहिये आचार्य ॥

॥ १९॥ जैसे सुवर्णरचित अनेक मणकोंकी माला एक भूषणकरिके गिनिये हैं तैसैं परस्परसहकारी शम-दमादिक षट् साधनोंकी प्राप्तिरूप षट्संपत्ति बी एक साधनकरिके गिनिये है ॥ शमादिषटूसाधनोंकी परस्पर सहकारिता इस रीतिसे हैः—

१ (१) मननिरोधरूप शम विना इंद्रियनका निरोध होता नहीं । यातैं दमकूं शमकी अपेक्षा है । औ

(२) मनके निरोध विना बहिर्मुख (स्त्रीपुत्रादि-विषयविषै आसक्त) भये मनकी वेदान्तशास्त्र औ सदगुरुविषै पूर्ण श्रद्धा रहती नहीं । यातैं श्रद्धाकू बी शमकी अपेक्षा है । औ

(३) मनके निरोध विना ब्रह्मविषै चित्तकी एकाग्रता होवै नहीं । यातैं समाधानकूं बी शमकी अपेक्षा हैं । औ

(४) जैसैं दुग्धादि उत्तम आहारसैं पालन किया अबद्धबिल्ला मूषाकूं देखिके ठहरता नहीं किंतु मूषाके उपर दौड़ता है तैसैं विषयनतैं उपरामकूं पाया जो मन, सो निरोधरूप रस्सीसैं मुक्त हुआ ठहरता नहीं किन्तु प्राप्त विषयनके ऊपर दौड़ता है । यातैं उपरामकूं बी शमकी अपेक्षा है । औ

(५) अन्तर्मुख भये मनसैं शीतउष्णादिद्वंद्वका सहन होवै है । बहिर्मुख मनसैं नहीं । यातैं तितिक्षाकूं बी शमकी अपेक्षा है ॥

इस रीतिसैं शमकूं दमादिकनकी सहकारिता है कहिये सहायकता है ॥

२ (१) तैसैं कलीविना काचविषै नेत्रवृत्तिकी न्यांई इन्द्रियरूप द्वारके निरोध विना मनका निरोध होता नहीं । यातैं शमकूं दमकी अपेक्षा है औ ।

(२) रूपादि विषयविषै तत्पर भये पुरुषकूं सत्-शास्त्र औ सद्गुरुविषै श्रद्धा रहती नहीं । यातैं श्रद्धाकूं बी दमकी अपेक्षा है । औ

(३) इंद्रियनके निरोध विना चञ्चल भये मनविषै एकाग्रता ठहरती नहीं । यातैं समाधानकूं बी दमकी अपेक्षा है । औ

(४) इंद्रियनके रोके विना प्रत्यक्ष अनुभव किये अनुकूलविषयनविषै रागके उदूबुद्ध संस्कारद्वारा इच्छा होवै है । यातैं उपरामकू बी दमकी अपेक्षा है । औ

(५) इंद्रियके निरोध विना विषयनके दर्शनकारि विक्षिप्त भये मनसैं द्वंद्वधर्मका सहन होता नहीं, यातैं तितिक्षाकूं बी दमकी अपेक्षा है ॥

इस रीतिसैं दमकूं शमआदिकनकी सहका-रिता है ।

३ तैसैं सद्गुरु औ सत् शास्त्रके वचनविषै विश्वास

॥ १४ ॥ (४) अथ मुमुक्षुतालक्षण ॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्मप्राप्ति अरु बंधकी,
हानि मोक्षको रूप ।
ताकी चाह मुमुच्छुता,
भाखत मुंनिवरभूप ॥ २१ ॥

टीकाः-ब्रह्मकी प्राप्ति औ अनर्थकी निवृत्ति मोक्षका स्वरूप है । ताकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है ॥ मुमुक्षुता और मुमुक्षुत्व पर्याय-शब्द हैं ॥ २१ ॥

॥ दोहा ॥

ये चव साधन ज्ञानके,
श्रवनादिक त्रय मेलि ।
तत्पद त्वंपद अर्थको,
सोधन अष्टम भेलि ॥ २२ ॥

टीकाः-विवेकादि च्यारि, श्रवण, मनन, निदिध्यासन ये तीनि, तत्पदके अर्थका औ त्वंपदके अर्थका शोधन, ये अष्ट ज्ञानके साधन हैं ॥ २२ ॥

॥ १५ अंतरंग औ बहिरंग साधन १५-१६ ॥

॥ दोहा ॥

अंतरंग ये आठ हैं,
यज्ञादिक बहिरंग ।
अंतरंग धारै तजै,
बहिरंगनको संग ॥ २३ ॥

रूप श्रद्धा विना श्रवणमैं प्रवृत्तिकी इच्छाके अभावतैं पतिके पास जानेविषै उपयोगी शृंगारकूं विधवाकी न्यांई श्रवणविषै उपयोगी शमआदिक कोई बी साधनकूं पुरुष धारण करै नहीं औ श्रद्धा विना धारण किये सर्वसाधनोंकी विधवाकरि किये शृंगारकी न्यांई व्यर्थता है । यातैं शमआदिक सर्व साधनकूं श्रद्धाकी अपेक्षा है। इस रीतिसैं श्रद्धाकूं शमादिक सर्वसाधनकी सहकारिता स्पष्ट है ॥

४ तैसैं चित्तकी एकाग्रता विना बी शमादिक साधन सिद्ध होते नहीं । यातैं शमआदिकनकूं समाधान-की अपेक्षा है ॥ इस रीतिसैं समाधानकूं शमआदिकनकी सहकारिता है ॥

५ तैसैं विषयनतैं चित्तके उपराम हुए विना शम-आदिक कोई बी साधन सिद्ध होता नहीं । यातैं शमआदिकनकूं उपरामकी अपेक्षा है । इस रीतिसैं उपरामकूं शमआदिकनकी सहकारिता है ॥

६ तैसैं शीत उष्ण क्षुधा तृषा हानि लाभ आदिक अनेक व्यावहारिक उपद्रवके सहन विना मननिरोध इंद्रिय-निरोध गुरुशास्त्रवचनविषै आस्तिकता चित्तएकाग्रता औ प्राप्त धनआदिक विषयनतैं उपरामता सिद्ध होवै नहीं । यातैं शमादिकनकूं तितिक्षारूप तपकी अपेक्षाके होनेतैं तितिक्षाकूं शमआदिकनकी सहकारिता है ॥

इस प्रकारसैं शमआदिकनकूं परस्परकी सहकारिता है। यातैं इन षट्कूं एकसाधनरूपता है ॥

॥ २० ॥ मुनि जो संन्यासी तिनविषै वर कहिये श्रेष्ठ ऐसे जो विद्वत् संन्यासी, तिनके भूप कहिये आचार्य ॥

॥ २१ ॥ एकअर्थवाले दो शब्द परस्पर पर्याय कहिये हैं ॥

॥ २२ ॥ चेतनका औ जड़का क्रमतैं कार्यकारण-पना औ अधिष्ठान अध्यस्तपना औ द्रष्टा दृश्यपना औ साक्षी साक्ष्यपना जो है, तिसका शास्त्रोक्त अनेक प्रक्रिया करिके जो विचार करना कहिये हंसपक्षी-करि क्षीरनीरके विभागकी न्यांई किंवा घृत औ तक्र (मठा) के विभागकी न्यांई किंवा मृत्तिका-कूपाकाशके विभागकी न्यांई विभाग करना । सो पदार्थशोधन कहिये है । वेदांतशास्त्र उक्त सर्व प्रक्रियाका इसी अर्थके लखावनेविषै तात्पर्य है औ यह ही अर्थ महावाक्यके अर्थके ज्ञानविषै उपयोगी है। यातैं उक्तपदार्थशोधन मुमुक्षुकूं सम्यक् कर्तव्य है ॥

टीकाः—१ पूर्व दोहेमें कहे विवेकादिक आठ अंतरंगसाधनँ कहिये हैं औ २ यज्ञादिकर्म बाहिरंगैसाधन कहिये हैं। तिनमें बाहिरंगनकूं जिज्ञासु त्यागै औ अंतरंगकूं धारै ॥

१ जिनका श्रवणमैं अथवा ज्ञानमैं प्रत्यक्षफल होवै सो अंतरंगसाधन कहिये है॥ विवेकादि च्यारिका श्रवणमैं उपयोग है। काहेतैं ? (१) विवेकादिक विना बाहिर्मुखकूं श्रवण बनै नहीं ॥ (२) तैसैं श्रवणमननिदिध्यासनका ज्ञानमैं उपयोग है। श्रवणादिक विना ज्ञान होवै नहीं॥ (३) तैसैं तत्पदका अर्थ औ त्वंपदका अर्थ जानै विना बी अभेदज्ञान होवै नहीं ॥

इस रीतिसै विवेकादि च्यारि साधनोंका श्रवणमैं उपयोग है औ श्रवणादिक च्यारि साधनोंका ज्ञानमैं उपयोग है ॥ यातैं आठ अंतरंगसाधन हैं ॥

॥ १६ ॥ २ जाका ज्ञानमैं अथवा श्रवणमैं प्रत्यक्ष फल होवै नहीं किन्तु अंतःकरणकी शुद्धि जाका फल होवै सो ज्ञानका बहिरंगसाधन कहिये है ॥ ऐसे यज्ञादिक कर्म हैं ॥

यद्यपि यज्ञादिक कर्म संसारके साधन हैं। तिनतैं अंतःकरणकी शुद्धि बी कहना संभवै नहीं । [२६]तथापि सकाम पुरुषकूं संसारके

॥ २३ ॥ जैसैं धनुषसैं छूटया जो बाण सो लक्ष्य (अमाज) के वेधनेका समीपवर्ती हुया साधन है। यातैं सो ताका अंतरंगसाधन है ॥

तैसैं विवेकादिक आठ ज्ञानके समीपवर्ती हुए साधन हैं। यातैं वे ज्ञानके अंतरंगसाधन कहिये हैं ॥

॥ २४ ॥ जैसैं धनुष जो है सो लक्ष्यके वेधनेका दूरवर्ति हुया बाणके छूटनेद्वारा साधन है । यातैं सो ताका बहिरंगसाधन है ॥

तैसैं यज्ञ औ सगुणउपासना आदिक कर्म बी ज्ञानका दूरवर्ति हुया। पाप औ विक्षेपरूप मलकी यथायोग्य निवृत्तिरूप चित्तशुद्धिपूर्वक जिज्ञासाद्वारा साधन है । यातैं सो ज्ञानका बहिरंगसाधन कहिये है ॥

॥ २५ ॥ जैसैं कूपमैं गिर्या पुरुष प्रथम वृक्षकी जड़आदिक आश्रयकूं पकड़ता है। पीछे जब कोई दयालुपुरुष रस्सी गेरे तब उक्तआश्रयका त्याग करिके रस्सीकूं पकड़ता है। परंतु रस्सीकी प्राप्ति विना जो उक्तआश्रयका त्याग करे तौ उभयभ्रष्ट होयके कूपमैं ही डूबता है ॥

तैसैं जन्ममरणरूप जलकरि युक्त संसाररूप कूपविषै गिर्या जो जीव, सो सत्संगादिकनिमित्तकरि प्राप्त भई शुभवासनासैं कर्म उपासनाविषै प्रवृत्त होवै है। जब ईश्वररूप दयालुपुरुषकी कृपाकरि चित्तशुद्धिपूर्वक जिज्ञासाआदिक साधनकी प्राप्ति होवै तब सो पुरुष जिज्ञासु हुया कर्मरूप बहिरंगसाधनका त्यागकरिके विवेकादिक अंतरंगसाधनकूं चित्तविषै धारै, परन्तु अंतरंगसाधनकी प्राप्ति विना जो बहिरंगसाधनका त्याग करै तौ यह जीव उभयभ्रष्ट होयके संसाररूप कूपविषै डूबता है ॥

॥ २६ ॥ जैसैं कोई रसायनका वेत्ता स्थानधारिसाधु था। सो अपने शिष्यकूं पास बिठायके प्रगलित ताम्रविषै वल्लीके रसकूं निचोड़िके रसायन बनायकै दिखाया। फेर आप अनेकवर्षपर्यंत तीर्थयात्राविषै अटन कर्ता भया। पिछाड़ी तिस शिष्यके हाथसैं रसायन भया नहीं औ परमार्थका मार्ग बन्द भया ॥ फेर जब गुरु आया तब कहा कि "ताम्रविषै इसी ही वल्लीका रस सूधे हाथसैं डालनेकरि वा इसी ही मिलौनीसैं रसायन होता नहीं औ उलटे हाथमैं वल्लीके रसके निचोड़नेकरि वा भिन्न मिलौनीसैं रसायन होता है औ दरिद्रता निवृत्त होती है" तब तिसनैं तिसी प्रकार किया ॥

हेतु हैं औ निष्कामकूं अंतःकरणकी शुद्धिके हेतु हैं। इस रीतिसैं निष्कामपुरुषके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानके हेतु हैं । यातैं बहिरंगसाधन कहिये हैं। औ--

विवेकादिक अंतरंगसाधन कहिये हैं ॥ बहिरंग नाम दूरिका है औ अंतरंग नाम समीपका है। यज्ञादिककर्म औ तिनके साधन स्त्रीधनपुत्रादिकनकूं त्यागै सो ज्ञानका अधिकारी है। ज्ञानके अधिकारीमैं यज्ञादिक संभवै नहीं यातैं दूरि हैं ॥

॥१७॥ विवेकादिककी अंतरंगसाधनता ॥

विवेकादिक ज्ञानके अधिकारीमैं संभवै हैं यातैं समीप हैं । तिनमैं बी इतना भेद है:--विवेकादिकनका श्रवणमैं उपयोग है औ श्रवणादिकनका ज्ञानमैं उपयोग है। यातैं विवेकादिकनकी अपेक्षातैं श्रवणादिक अंतरंग हैं। तिनकी अपेक्षातैं विवेकादिक बहिरंग हैं ॥ यद्यपि विवेकादिक बी ज्ञानके अंतरंगसाधन ही सर्वग्रंथनमैं कहे हैं। बहिरंग नहीं कहे। तथापि विवेकादिकनका ज्ञानके साधन श्रवणमैं प्रत्यक्षफल है औ श्रवणादिकनकी न्यांई विवेकादिक जिज्ञासूकूं उपादेय हैं। यज्ञादिकनकी न्यांई जिज्ञासूकूं हेय नहीं। यातैं अंतरंग कहे हैं। औ यज्ञादिकनकी अपेक्षातैं बी अंतरंग हैं। यातैं बी अंतरंगसाधनोंमैं कहे हैं ॥

॥ १८ ॥ ज्ञानके मुख्य अंतरंगसाधन । (महावाक्य) ॥ श्रवण मनन औ निदिध्यासनके लक्षण ॥

औ विचारसैं देखिये तौ ज्ञानके मुख्य अंतरंगसाधन "तत्त्वमसि" आदिक महावाक्य हैं, श्रवणादिक बी नहीं। काहेतैं? १ युँक्तिसैं वेदांतवाक्यनका तात्पर्यनिश्चय श्रवण कहिये हैं ॥

तैसैं शास्त्ररूप गुरुनै जीवकूं चित्तशुद्धिरूप रसायनकी सिद्धिअर्थ बोधन किया जो कर्म, सो कामनाकारि किया हुआ चित्तशुद्धिरूप रसायनका हेतु नहीं होवै है। किंतु संसाररूप दरिद्रताका हेतु होवै है औ यह ही कर्म निष्कामताकारि किया हुया चित्तशुद्धिरूप रसायनका हेतु होवै है औ संसाररूप दरिद्रताकूं निवृत्त करै है ॥ इहां अनुपानभेदसैं औषधके गुणभेदका बी दृष्टांत है ॥

॥ २७ ॥ विवेकादिक चारि साधन विना बहिर्मुख पुरुषकूं वेदान्तशास्त्रका दीर्घकाल निरन्तर आदरसहित होनेकारि निश्छिद्र श्रवण होता नहीं औ श्रवण विना मनन औ निदिध्यासन होता नहीं। यातैं मनन औ निदिध्यासनका हेतु जो श्रवण, तिसमैं विवेकादिक चारि साधनका उपयोग कहिये फल है ॥

॥ २८ ॥ श्रवणआदिक विना दृढ ज्ञान होवै नहीं। यातैं श्रवणआदिक चारिका ज्ञानमैं उपयोग है ॥

॥ २९ ॥ इहां "युक्ति" शब्द कारिके अग्निके निर्णायक धूमरूप लिंगकी न्यांई वेदांत जो उपनिषद्, तिनका अद्वैततत्त्वरूप जो तात्पर्यार्थ है -- ताके निर्णायक नाम निश्चायक जे षड् लिंग हैं, तिनका ग्रहण है ॥ वे षड् लिंग ये हैं--

१ उपक्रम कहिये प्रकरणका आरंभ औ उपसंहार कहिये प्रकरणकी समाप्ति, तिनकी एकरूपता प्रथम लिंग है ॥

२ अभ्यास जो अद्वैतरूप अर्थका बारंबार पठन सो द्वितीय लिंग है ॥

३ अपूर्वता नाम श्रुतिसैं भिन्न प्रमाणकी अविषयता किंवा स्वप्रकाशतारूप अलौकिकता; यह तृतीय लिंग है ॥

४ अद्वैततत्त्वके ज्ञानके फलका प्रतिपादन चतुर्थ लिंग है ॥

५ भेदज्ञानकी निंदा औ अभेदज्ञानकी स्तुतिरूप अर्थवाद पंचम लिंग है ॥

६ कार्यकारणके अभेदकी बोधकताकारि अद्वैतज्ञानके अनुकूलदृष्टांतरूप उपपत्ति षष्ठ लिंग है॥

२ जीवब्रह्मके अभेदकी साधक औ भेदकी बाधक युक्तियोंसैं अद्वितीयब्रह्मका चिंतन—इन षट्‌लिंगनकरि वेदांतवाक्यनका अद्वैतब्रह्म विषै तात्पर्यका निश्चय होवै है । सोई **श्रवण** कहिये है औ वेदांतशास्त्रका अभ्यास तिसका साधन है। यातैं सो बी **श्रवण** कहिये है ।। इन लिंगनका स्पष्टीकरण श्रुतिषड्‌लिङ्गसंग्रहविषैं हमने किया है ।।

॥ ३० ॥ **जीवब्रह्मके अभेदकी साधक युक्तियां** ये हैंः–

१ जीव है सो ब्रह्मसैं अभिन्न है, सच्चिदानद रूप होनेतैं; ईश्वरचेतनकी न्याईं जो सच्चिदानन्दरूप नहीं सो ब्रह्मसे अभिन्न बी नहीं। जैसे घट है ।। जातैं यह जीव ऐसा नहीं यातैं ब्रह्मसैं भिन्न बी नहीं। किंतु अभिन्न है ॥ इहां इस अनुमानमैं

(१) जीव **पक्ष** है ।
(२) ताका ब्रह्मसैं अभेद **साध्य** है ।
(३) सच्चिदानदरूपता **हेतु** है । औ–
(४) ईश्वरचेतन अरु घट **उदाहरण** कहिये **दृष्टांत** है ।

इत्यादि **अनुमानप्रमाणरूप युक्तियां** हैं । औ–

२ (१) **जैसैं** घटमठउपाधिकूं दूरि करिके घटाकाश मठाकाशका अभेद है, **तैसैं** बुद्धि औ मायाउपाधिकूं दूरि करिके जीवब्रह्मका अभेद है । औ–

(२) **जैसैं** घटाकाश, जलाकाश, महाकाश औ मेघाकाश ये च्यारि आकाश हैं । तिनमैं जलाकाश औ मेघाकाशका अभेद नहीं बी है । तथापि घटाकाश औ महाकाशका नाममात्रसैं भेद है, परमार्थसैं नहीं ॥ **तैसैं** कूटस्थ जीव ब्रह्म औ ईश्वर, ये च्यारि चेतन हैं। तिनमैं जीव औ ईश्वरका अभेद नहीं बी है । तथापि तिनके अधिष्ठान लक्ष्यार्थरूप कूटस्थ औ ब्रह्मका नाममात्रसैं भेद है, परमार्थसैं नहीं । इत्यादि **उपमानप्रमाणरूप युक्तियां** हैं । औ–

३ **"नेह नानास्ति किंचन"** इत्यादिश्रुतिनमैं भेदका निषेध किया है, सो निषेध वास्तवअभेद होवै तौ सम्भवै । तिस विना सम्भवै नहीं । यातैं भेदके मनन कहिये हैं ॥ ३ **अनात्माकारवृत्तिका व्यवधानरहित ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थिति । निदि-**निषेधकी अनुपपत्तिके ज्ञानरूप अर्थापत्तिप्रमाणसैं जीवब्रह्मके अभेदका ज्ञानरूप अर्थापत्तिप्रमाण होवै है । इत्यादिक **अर्थापत्तिप्रमाणरूप युक्तियां** हैं ॥

इस रीतिसैं प्रत्यक्षप्रमाण औ शब्दप्रमाणतैं भिन्न युक्तिशब्दके वाच्य अनुमान उपमान अर्थापत्तिरूप तीनि प्रमाण अभेदकी साधक युक्तियां हैं ॥

॥ ३१ ॥ **भेदकी बाधक युक्तियां** ये हैंः–

१ जीवब्रह्मका भेद मिथ्या है, औपाधिक होनैतैं, घटाकाशमहाकाशके भेदकी न्याईं । जो मिथ्या नहीं सो औपाधिक बी नहीं । **जैसैं** घटपटका व्यवहारदशाविषै भेद है। सो औपाधिक नहीं यातैं मिथ्या बी नहीं, जातैं यह भेद ऐसा नहीं यातैं मिथ्या बी नहीं ऐसैं नहीं । किंतु मिथ्या ही है ॥ इहां–

(१) भेद **पक्ष** है ।
(२) मिथ्यात्व **साध्य** है ।
(३) औपाधिकता **हेतु** है । औ–
(४) दो आकाशनका भेद औ घटपटका भेद **उदाहरण** हैं ।

इत्यादि **अनुमानप्रमाणरूप युक्तियां** ।। हैं

इहां आदिशब्दकरि "मुमुक्षुसर्वस्वसारसग्रह" उक्त औ "वेदांतपदार्थमंजूषा" उक्त औ तृतीयतरंगगत तृतीयचौपाईके टिप्पणविषै उक्त पंचभेदके निवर्तक पांचअनुमानमैंसैं चारि अनुमानोंका ग्रहण है ॥

२ (१) **जैसैं** बिंबप्रतिबिंबका भेद मिथ्या है, **तैसैं** जीवब्रह्मका भेद मिथ्या है ॥
(२) **जैसैं** अनेक घटाकाशका परस्पर भेद मिथ्या है, **तैसैं** जीवनका परस्परभेद मिथ्या है ॥
(३) **जैसैं** स्वप्नके जीवनका औ स्वप्नके घटादिकका भेद मिथ्या है, **तैसैं** जीवजड़का भेद मिथ्या है ॥
(४) **जैसैं** रज्जु औ कल्पितसर्पका भेद । **किंवा** साक्षीचेतनका औ स्वप्नप्रपंचका भेद मिथ्या है, **तैसैं** जडजगत औ ईश्वरका भेद मिथ्या है ॥

ध्यासन कहियेहैं॥ निदिध्यासनकी परिपाकअवस्थाकूं ही समाधि कहै हैं, यातैं समाधिका बी निदिध्यासनमैं अंतर्भाव है। पृथक्साधन नहीं ॥

ये श्रवण, मनन, निदिध्यासन ज्ञानके साक्षात् साधन नहीं। किंतु बुद्धिके दोष जो असंभावना औ विपरीतभावना, ताके नाशक हैं ॥

(९) जैसैं रज्जुविषै कल्पित सर्पदण्डादिकनका किंवा स्वप्नपदार्थनका परस्परभेद मिथ्या है। तैसैं जड़पदार्थनका परस्परभेद मिथ्या हैं ॥

इत्यादिक उपमानप्रमाणरूप युक्तियां हैं। औ

३ महावाक्यनमैं कह्या जो जीवब्रह्मका अभेद, सो प्रतीयमानभेदके मिथ्यात्व विना न बनता हुया जीवब्रह्मके भेदके मिथ्यात्वकूं कल्पता है। इत्यादि अर्थापत्तिप्रमाणरूप युक्तियां हैं। औ—

४ जैसैं जाग्रत्स्वप्नविषै उपाधिके होते जीवब्रह्मका भेद भासता है तैसैं सुषुप्तिविषै उपाधिके अभाव हुए भेद भासता नहीं। यातैं जीवब्रह्मके पारमार्थिकभेदका अभाव है यह निश्चय होवै है। इत्यादि अनुपलब्धिप्रमाणरूप युक्तियां हैं ॥

ये सर्व भेदकी बाधक युक्तियां हैं ॥

॥ ३२ ॥ साक्षात्कारविषै अनात्माकारवृत्तिके अन्तरायसैं रहित ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थिति जो है सो नम्रशाखाकी न्यांई अप्रयत्नसैं होवै है औ निदिध्यासनविषै उक्त प्रकारकी स्थिति जो है, सो हस्तसैं पकड़िके नम्र करी हुई उच्चशाखाकी न्यांई प्रयत्नसैं होवै है औ हस्तसैं पकड़नेरूप प्रयत्नके त्याग किये जैसैं उच्चशाखाकी नम्रता रहती नहीं तैसैं निदिध्यासनविषै प्रयत्नके त्याग किये उक्त प्रकारकी स्थिति रहती नहीं ॥

किंवाः—साक्षात्कारवानकूं व्यवहारकालविषै कदाचित् उक्त वृत्तिकी स्थितिके अभाव हुए कर्तव्यबुद्धिकारि पश्चात्ताप नहीं होवै है औ निदिध्यासनवानकूं व्यवहारकालविषै कदाचित् उक्त वृत्तिकी स्थितिके अभाव हुए कर्तव्यबुद्धिकारि पश्चात्ताप होवै है ॥

इतना साक्षात्कारसैं निदिध्यासनका भेद है ॥

॥ ३३ ॥ त्रिपुटीके भावसहित जो सविकल्पसमाधि सोई निदिध्यासन है ॥ ताकी परिपाक अवस्था "निर्विकल्पसमाधि" कहिये है। यातैं इहां "समाधि" शब्द करिके त्रिपुटीके भानसैं रहित निर्विकल्पसमाधिका ग्रहण है, सो निर्विकल्पसमाधि १ बाह्य २ आंतरभेदतैं द्विविध है:—

१ मूर्तिआदिक बाह्य आलंबनके चिंतनतैं जो होवै, सो बाह्यनिर्विकल्पसमाधि है। औ—

२ सर्वांतरअद्वैतब्रह्मके चिंतनतैं जो होवै, सो आंतरनिर्विकल्पसमाधि है ॥

तिनमैं आंतरनिर्विकल्पसमाधि बी (१) साक्षात्काररूप औ (२) असाक्षात्काररूप भेदतैं द्विविध है:—

(१) गुरुमुखद्वारा अर्थसहित महावाक्यके श्रवणमननआदिरूप विचारपूर्वक अद्वैतब्रह्मके चिन्तनकरिके ब्रह्मआत्माके एकताके अपरोक्षभानसहित होवै सो साक्षात्काररूप आंतरनिर्विकल्पसमाधि है। औ—

(२) विचारपूर्वक अद्वैतब्रह्मके चिन्तनकरिके बी एकताके परोक्षभानसहित जो होवै, सो असाक्षात्काररूप आंतरनिर्विकल्पसमाधि है ॥

(१) तिनमैं असाक्षात्काररूप जो है, सो साक्षात्काररूप समाधिका साधन है। यातैं ताका निदिध्यासनमैं अंतर्भाव है, पृथक् साधन नहीं ॥ औ

(२) साक्षात्काररूप जो समाधि है, सो एक क्षणविषै उदय होवै है औ द्वितीय क्षणविषै स्थित होयके आवरणके नाशका प्रारंभ करै है औ तृतीय क्षणविषै आवरणका नाश होवै है। तातैं जीवन्मुक्ति होवै है ॥ प्रथम यह क्षणस्थायी हुवा बी आवरणका भंग करै है। यातैं विद्वान्विषै ऋतंभराबुद्धिआदिक सिद्धिके उद्भवकी शंका नहीं है ॥ जैसैं घटके साक्षात्कार हुए तत्काल घटका आवरण भंग होवै है। ताके अर्थ पीछे बुद्धिके निरोधका प्रयोजन नहीं, तैसैं ब्रह्मके आवरणके भंग

१ संशैंयकूं असंभावना कहै हैं ।

२ विपैंर्थयकूं विपरीतभावना कहै हैं ॥

॥ १९ ॥ श्रवणादिककूं परंपरासैं ज्ञानकी हेतुता ॥

श्रवणसैं प्रमाणका संदेह दूरि होवै है औ मननसैं प्रमेयका संदेह दूरि होवै है ॥

१ वेदांतैंवाक्य अद्वितीयब्रह्मके प्रतिपादक हैं अथवा अन्यअर्थके प्रतिपादक हैं ? ऐसा प्रैंमाणमैं संदेह होवै, सो श्रवणसैं दूरि होवै हैं ॥ औ

२ जीवब्रह्मका अभेद सत्य है अथवा भेद सत्य है ? ऐसैं प्रैंमेयमैं संदेह होवै । सो मननसैं दूरि होवै है ॥

३ देहादिक सत्य हैं औ जीवब्रह्मका भेद सत्य है। ऐसे ज्ञानकूं विपरीतभावना कहै हैं ताहीकूं विप्रैंजै कहै हैं । ताकूं निदिध्यासन दूरि करै हैं ॥

इस रीतिसैं श्रवणादिक तीनू, असंभावना-विपरीतभावनाके नाशक हैं औ असंभावना औ विपरीतभावना ज्ञानके प्रतिबंधक हैं। यातैं ज्ञानका जो प्रतिबंधक ताके नाशद्वारा श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहिये हैं । साक्षात् हेतु नहीं ॥

॥२०॥अवांतरवाक्यकूं परोक्षज्ञानकी औ महावाक्यकूं अपरोक्षज्ञानकी हेतुता ॥

ज्ञानके सैंाक्षात्साधन श्रोत्रसंबंधी वेदांत-

भये पीछे हठ करिके वृत्तिके निरोधका प्रयोजन नहीं । ऐसे हुए बी पीछे सप्तमभूमिकापर्यंत जो वृत्तिका निरोध करिये है, सो निरोध वासनाक्षय औ मनोनाशद्वारा कहिये मनके स्थूलभावकी निवृत्तिद्वारा जीवन्मुक्तिके विलक्षणआनंदका हेतु है; आवरणभंगका हेतु नहीं ॥

इस रीतिसैं समाधिका निदिध्यासनमैं अंतर्भाव है ॥

॥३४॥ "यह रज्जु है वा सर्प है ?" इस रीतिसे दो कोटी नाम दो पक्षकूं विषय करनेवाला ज्ञान **संशय** कहिये है ॥

॥ ३५ ॥ "यह सर्प है" इस रीतिकी जो अविद्याकी वृत्ति, सो **भ्रांतिज्ञान** है । सोई **विपर्यय** औ **विपरीतभावना** कहिये हैं । ताहीकूं **ज्ञानाध्यास** औ **विपरीतज्ञान** बी कहते हैं ॥ ऐसा इहां मिथ्या-अनात्मारूप देहादिककी सत्यरूपता औ आत्मरूपताकरि जो ज्ञान है सो **विपर्यय** है ॥

॥ ३६ ॥ वेदका अंतभागरूप जे उपनिषद् किंवा वेदका अंत कहिये निर्णय जिसविषै है ऐसा सूत्रभाष्यरूप उत्तरमीमांसाशास्त्र, सो **वेदांत** कहिये है ॥ इनके वाक्य कहिये पदसमुदाय ॥

॥ ३७ ॥ प्रमाज्ञानका जो करण सो **प्रमाण** कहिये है ॥ इहां वेदप्रतिपादित मोक्षआदिक पदार्थनका यथार्थअनुभवरूप जो शाब्दी प्रमा, ताका करणरूप जो उपनिषद्‌रूप शब्द सो प्रमाणशब्दका अर्थ है, ताके स्वरूपमैं जो उक्त प्रकारका संशय होवै है, सो **प्रमाणगत संशय** है ॥ विचार करिके देखिये तौ जितने प्रमेयगत संशयके भेद शास्त्रविषै कहे हैं, उतने ही प्रमाणगत संशयके भेद सिद्ध होवे हैं ॥

॥ ३८ ॥ 'ऐसा' कहिये इससैं आदिलैकैं अनेक आकारवाला प्रमेयगत संशय है ॥ प्रमेयगत संशयके अनेक भेद हमने पंचदशीकी भाषाटीकाविषै तथा बालबोधकी बालबोधिनीटीकाविषै लिखे हैं ॥

॥ ३९ ॥ प्रमाज्ञानकरि वा ताके साधन प्रमाणकरि जानने योग्य जो मोक्षआदिक पदार्थ, सो इहां **प्रमेय** कहिये है ॥

॥ ४० ॥ इहां " विपर्यय " शब्दका अपभ्रंशरूप " विप्रजै " शब्द लिख्या है ॥

॥ ४१ ॥ जैसें नेत्रविषै डाऱ्या जो अंजन, सो नेत्ररोगकी निवृत्तिद्वारा सूर्यके दर्शनका साधन है, साक्षात् नहीं । सूर्यके दर्शनका साक्षात्साधन नेत्र हैं । तैसे श्रवणआदिक ज्ञानके प्रतिबन्धरूप रोगकी निवृत्तिद्वारा ज्ञानके साधन हैं, ज्ञानका साक्षात्साधन तौ श्रोत्रसम्बंधि वेदान्त वाक्य है ॥

वाक्य हैं ॥ सो वेदांतवाक्य दो प्रकारके हैं:—
१ एक अवांतरवाक्य है । २ एक महावाक्य है ॥

१ परमात्माके अथवा जीवके स्वरूपका बोधक जो वाक्य, सो अवांतरवाक्य कहिये है ॥

२ जीवपरमात्माकी एकताबोधक वाक्य महावाक्य कहिये है ॥

१ अवांतरवाक्यसैं परोक्षज्ञान होवै है ॥
२ महावाक्यसैं अपरोक्षज्ञान होवै है ॥

१ "ब्रह्म है" इस ज्ञानकूं परोक्षज्ञान कहै हैं ॥

२ "ब्रह्म मैं हूं" इस ज्ञानकूं अपरोक्षज्ञान कहै हैं ॥

"त्वं ब्रह्म" ऐसा आचार्यनैं उच्चारण किया जो वाक्य, ताका श्रोताके कर्णसैं संबंध होते ही "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा अपरोक्षज्ञान श्रोताकूं होवै है औ श्रोताके कर्णसैं वाक्यका संबंध हुए विना ज्ञान होवै नहीं; यातैं श्रोत्रसंबंधी वाक्य ही ज्ञानका हेतु है ॥

१ श्रोत्रसंबंधिअवांतरवाक्य परोक्षज्ञानका हेतु है । औ—

२ श्रोत्रसंबंधि महावाक्य अपरोक्षज्ञानका हेतु है । महावाक्यसैं सर्वकूं अपरोक्ष ही ज्ञान होवै है, परोक्ष नहीं होता ॥

॥ २१ ॥ वेदांतके एकदेशीका मत ॥
(केवलवाक्यसैं परोक्षज्ञान)

एकदेशीका यह मत है:—

१ श्रवणमनननिदिध्यासनसहित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवै है ॥

२ केवलवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है; अपरोक्ष नहीं ॥

जो केवलवाक्यतैं ही अपरोक्षज्ञान होवै तौ श्रवणमनननिदिध्यासन व्यर्थ होवैंगे । यद्यपि सिद्धांतमतमैं केवलवाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवै है औ श्रवणादिकनतैं असंभावना-विपरीतभावनाका नाश होवै है । यातैं श्रवणादिक व्यर्थ नहीं, तथापि जा वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवै ताके विषै असंभावनाविपरीतभावना काहूकूं बी होवै नहीं, यातैं केवलवाक्यतैं अपरोक्षज्ञानवादीके सिद्धांतमैं "तत्त्वमसि" आदिकवाक्यनतैं ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान हुयेतैं पीछे असंभावनाविपरीत-भावना संभवै नहीं । यातैं श्रवणादिकसाधन व्यर्थ होवैंगे औ "केवलवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है। श्रवणमनननिदिध्यासन कियेतैं अपरोक्ष ज्ञान होवै है" या मतमैं श्रवणादिक व्यर्थ नहीं । यह बहुत ग्रंथकारोंका मत है । तथापि यह मत समीचीन नहीं । काहे तैं:—

॥ ४२ ॥ सिद्धांतके एकदेशकूं आश्रय करिके स्वतंत्र अधिक अर्थका निरूपण जिनमैं किया है, ऐसै जे पंचदशीआदिक वेदांतके प्रकरणग्रंथ हैं, तिनके कर्ता जे आचार्य, वे इहां एकदेशी कहिये हैं । भर्तृप्रपंचके अनुसारी नहीं ॥

॥ ४३ ॥ केवलवाक्यतैं अपरोक्षज्ञानका वादी कहिये कहनेवाला जो सिद्धांती ताके मतमैं ॥

॥ ४४ ॥ मदबोधवालेकूं श्रवणआदिक साधनविषै आलस्य मति होवै इस अभिप्रायसैं यह उक्त प्रकारका संक्षेप शारीरकसैं भिन्न बहुत प्रकरणग्रंथनके कर्ताओं-का मत है ॥

॥ ४५ ॥ दृढबोधवान्कूं बी श्रवणआदिकविषै कर्त्तव्यबुद्धिका उद्भव मति होवै इस अभिप्रायसैं केव-लवाक्यसैं अपरोक्षज्ञानके कहनेवाले सिद्धान्तीके अनु-सार यह समाधान कहिये हैं ॥

॥ २२ ॥ उक्त एकदेशीके मतकी असमीचीनता ॥ २२–२३ ॥

शब्दका यह स्वभाव है:––

१ जो वस्तु व्यवहित[46] होवै ताका शब्दसैं परोक्ष ही ज्ञान होवै है। किसी प्रकारतैं व्यवहित वस्तुका शब्दसैं अपरोक्षज्ञान होवै नहीं ॥ जैसैं व्यवहितस्वर्गका औ इंद्रादिक देवनका शास्त्ररूपी शब्दतैं परोक्ष ही ज्ञान होवै है । औ–

२ जो वस्तु अव्यवहित होवै ताका शब्दसैं (१)अपरोक्षज्ञान औ(२)परोक्षज्ञान दोनू होवै हैं॥

(१) जहां अव्यवहितवस्तुकूं शब्द "अस्ति" रूपतैं बोधन करै तहां अव्यवहितका बी परोक्षज्ञान होवै है ॥ जैसैं "दशमपुरुष है"[47] इस रीतिसैं "अस्ति" रूपतैं बोधन किया जो अव्यवहित दशम ताका शब्दसैं परोक्षही ज्ञान हुवा है॥औ

॥४६॥ देशकृत किंवा कालकृत अन्तरायकूं व्यवधान कहै हैं॥ व्यवधानवाले वस्तुकूं **व्यवहित** कहै हैं

१जो वस्तु दूरदेशविषै होवै सो **देशसैं व्यवहित** है औ जो वस्तु भूत किंवा भविष्यत्कालविषै होवै सो **कालकरि व्यवहित** है । औ––

२ व्यवहिततैं भिन्न जो अन्तरायसैं रहित वस्तु सो **अव्यवहित** कहिये हैं ।

॥ ४७ ॥ इहां यह प्रसंग है:–जैसैं कोई दश बालक थे । वे इकट्ठे होयके देशान्तरविषै विनोदअर्थ जाते थे । तहां मार्गमैं मृगजलकी नदी प्राप्त भई । ताकूं उल्लंघन करते भये । पीछे एक प्रमुखबालकनैं अन्य नव बालकनकी गणना करी औ आपकी गणना करी नहीं । तब कहने लग्या कि:–मेरे प्रियतम !

१ " दशमपुरुषकूं मैं जानता नहीं " यह **अज्ञान-अवस्था** भई ।

२–३ तातैं ' दशम है नहीं ' औ 'भासता नहीं' यह **द्विविध आवरण** भया ॥

४ तातैं रोदनादिरूप **विक्षेप** भया ॥

५ पीछे कोई आप्त नाम यथार्थवक्ता पुरुष आया। तिसनैं ' दशम है ' ऐसा अवांतरवाक्य कहा, ताकूं सुनिके तिस दशमपुरुषकूं स्वस्वरूपभूत दशमका ' दशम है' ऐसा **परोक्षही ज्ञान** भया है।

६ पीछे ' दशम कहां है ? ' ऐसे पूछे हुए तिस आप्त पुरुषनै ' दशम तू है' ऐसा वचन कहा । तब ' दशम मैं हूं ' ऐसा **अपरोक्षज्ञान** भया ।

७ तातैं अज्ञानकृत आवरणसहित रोदनादि विक्षेपका नाश भया । तातैं हर्षरूप **तृप्ति** भई ॥

तैसैं यह पुरुष जो जीव सो स्थूलशरीरसहित अष्टपुरीरूप नवपुरुषनके साथि मिलिके संसाररूप मृगजलकी नदीविषै प्रवेशकूं पायके ताके मनुष्यदेहरूप तीरपर आयके कदाचित् जिज्ञासाकालविषै विचार करता है, तब–

१ आपसैं भिन्न उक्त नव पुरुषनकूं जानता है, परंतु तिनके ज्ञाता आपके निजरूप ब्रह्मकूं जानता नहीं । यह **अज्ञानअवस्था** भई ।

२–३ तातैं "ब्रह्म है नहीं" औ "भासता नहीं"- यह **द्विविध आवरण** भया ।

४ तातैं अर्थाध्यास औ ज्ञानाध्यासरूप **विक्षेप** कहिये शोक भया ॥

५ पीछे "ब्रह्म है" ऐसैं गुरुनैं अवांतरवाक्य कहा, ताकूं सुनिके "ब्रह्म है" ऐसा **परोक्षज्ञान** होवै है ।

६ पीछे "ब्रह्म कौन है ?" ऐसैं प्रश्नके किये गुरुनै "तू ब्रह्म है" ऐसा महावाक्य कहा । ताकूं सुनिके शिष्यकूं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा **अपरोक्ष ज्ञान** होवै है ।

७ तातैं अज्ञानकृत आवरणसहित द्विविधअध्यासरूप विक्षेपका नाश होवै है ।तातैं अत्यंतहर्षरूप **निरंकुशा तृप्ति** होवै है ॥

इस चिदाभासकी सातअवस्थाका वर्णन आचार्यकृत उपदेशसहस्री तथा पंचदशी तथा विचारसागरके चतुर्थतरंगविषै सविस्तार लिख्या है। इहां यह संक्षेपतैं रीतिमात्र जताई है॥

(२) जहां अव्यवहित वस्तुकूं "यह है" इस-रीतिसैं शब्द बोधन करै तहां अव्यवहितका शब्दसैं अपरोक्षज्ञान ही होवै है, परोक्ष नहीं । जैसैं "दशमा तू है" इस रीतिसैं शब्दनैं बोधन किया जो दशमा, ताका अपरोक्षज्ञान ही हुवा है ॥

(१) तैसैं ब्रह्म सर्वका आत्मा होनैतैं अत्यन्त अव्यवहित है, ताकूं अवांतरवाक्य "अस्ति" रूपतैं बोधन करै हैं, यातैं अव्यवहितब्रह्मका बी अवांतरवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है ॥ औ

(२) "दशमा तूं है" इस वाक्यकी न्यांई श्रोताका आत्मरूपकरिकै ब्रह्मकूं महावाक्य बोधन करै हैं । यातैं महावाक्यतैं अव्यवहित-ब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवै नहीं । किंतु अपरो-क्षज्ञान ही होवै है ॥

॥ २३ ॥ और जो कह्याः—" जा वस्तुका अपरोक्षज्ञान होवै ताके विषै असंभावना-विपरीतभावना होवैं नहीं । यातैं श्रवणादिक विफल होवैंगे" ॥

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं जैसैं राजाकूं भर्छुका नेत्रसैं अपरोक्षज्ञान हुवैतैं बी विपरीत-भावना दूरि हुई नहीं, तैसैं महावाक्यतैं ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होवै है । परंतु जाकी बुद्धिमैं असंभावना विपरीतभावनादोष होवै ताका दोषरूप कलंकसहित ज्ञान फलका हेतु नहीं । सो दोषकी निवृत्तिवास्ते श्रवणादिक करै । जाकी बुद्धिमैं दोष नहीं सो न करै ॥

इस रीतिसैं ज्ञानके साधन महावाक्य हैं । श्रवणादिक नहीं । परंतु ज्ञानका प्रतिबंधक जो दोष है ताके नाशक हैं । यातैं श्रवणादिक ज्ञानके हेतु कहिये हैं । श्रवणादिकनके हेतु विवेकादिक हैं । यातैं विवेकादिक ज्ञानके साधन कहिये हैं ॥ विवेकादिक च्यारिसाधन-संयुक्त जो पुरुष है सो अधिकारी है ॥२३॥

॥ ४८ ॥ इहां यह रहस्य हैः—जैसैं दशमपुरुषकूं मन औ नेत्र करिकै प्रत्यक्ष करने योग्य संघातका मन औ नेत्ररूप सामग्रीके होते बी अरोक्षबोध हुया नहीं, किंतु "दशमा तू है" इस वाक्यतैं ही अपरोक्ष-बोध हुया है । यातैं दशमके अपरोक्षबोधरूप प्रमाका शब्द करण है, तातैं सो प्रमाण है । ताका मन औ नेत्र सहकारी है ॥ तैसैं ब्रह्मके अपरोक्ष-बोधरूप प्रमाका करण महावाक्यरूप शब्द है ॥ यातैं सो प्रमाण है । ताका साधनकारि संस्कृत मन सहकारी है ॥

॥ ४९ ॥ " अरे मैत्रेयि ! आत्मा देखने योग्य है, श्रवण करने योग्य है, मनन करने योग्य है औ निदिध्यासन करनेकूं योग्य है " इत्यादिक श्रुतिकारि प्रतिपादित आत्मदर्शनके साधन श्रवणादिक विफल कहिये निष्फल होनेकूं योग्य नहीं । किंतु सफल होनेकूं योग्य हैं ॥ केवल महावाक्यकारि अपरोक्षज्ञानके माने हुए श्रुति उक्त श्रवणादिकसाधन निवर्त्तनीयदोषके अभावतैं रोगके अभाव हुये औषधसेवनकी न्यांई विफल कहिये निष्फल होवैंगे । यह अभिप्राय है ॥

॥ ९० ॥ भर्छुनामक मन्त्रीका सविस्तार वृत्तान्त आगे पंचमतरंगविषै कहियेगा । यातैं इहां ताका नाम-मात्र कहा है ॥

॥ ९१ ॥ ज्ञानतैं पूर्व सगुणब्रह्मके साक्षात्कारप-र्यंत जाकी उपासना होवै ताकूं कृतोपासन कहते हैं, तातैं भिन्नकूं अकृतोपासन कहते हैं, तिनमैं कृतो-पासनके वैराग्यादिक साधन तीव्र हैं । यातैं प्रसिद्ध दीखते हैं औ अकृतोपासनके साधन मन्द हैं, यातैं प्रसिद्ध दीखते नहीं किंतु गुप्त रहते हैं । परन्तु जैसैं वस्त्रके एक पल्लेके पकड़े हुये सारा वस्त्र पकड्या जाता है तैसैं च्यारि साधनमैंसें एक साधनके निश्चयके भये सर्वसाधन गुप्त हैं । ऐसा निश्चय होवै है । काहेतैं विवेकादिक च्यारि साधनकूं परस्पर सहकारी होनेतैं । परन्तु जिस किस प्रकार श्रद्धालु औ व्यसनी तीव्र बुद्धिमान पुरुषकूं बोध होवे है । यह विवेक है ॥

॥ २४ ॥॥ अथ संबंधवर्णन ॥

दोहा—

प्रतिपादक प्रतिपाद्यता,
ग्रंथ ब्रह्म संबंध ।
प्राप्य प्रापकता कहत,
फल अधिकृतको फंद ॥ २४ ॥

टीकाः—

१ ग्रंथका औ विषयका प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभाव संबंध है । ग्रंथ प्रतिपादक है औ विषय प्रतिपाद्य है। जो प्रतिपादन करनैवाला होवै सो प्रतिपादक कहिये है ॥ जो प्रतिपादन करनेकू योग्य होवै सो प्रतिपाद्य कहिये है ॥

२ अधिकारीका औ फलका प्राप्यप्रापकभाव संबंध है। फल प्राप्य है औ अधिकारी प्रापक है। जो वस्तु प्राप्त होवै सो प्राप्य कहिये है। जाकूं प्राप्त होवै सो प्रापक कहिये है ॥

३ अधिकारीका औ विचारका कर्तृकर्त्तव्यभाव संबंध है। अधिकारी कर्त्ता है औ विचार कर्त्तव्य है । जो करनेवाला होवै सो कर्त्ता कहिये है औ करने योग्य होवै सो कर्त्तव्य कहिये है ॥

४ ग्रंथका औ ज्ञानका जन्यजनकभावसंबंध है। विचारद्वारा ग्रंथ ज्ञानका जनक है, ज्ञान जन्य है । जो उत्पत्ति करनेवाला होवै सो जनक कहिये है । जाकी उत्पत्ति होवै सो जन्य कहिये है ॥

इससैं आदि लेके और बी संम्बंध[९२] जानि लेनै ॥ २४ ॥

॥ २५ ॥ ॥ अथ विषयवर्णन ॥

दोहा—

जीवब्रह्मकी एकता,
कहत विषय जन बुद्धि ।
तिनको जे अंतर लहैं,
ते मतिमंद अबुद्धि ॥ २५ ॥

टीकाः—जीवब्रह्मकी एकता या ग्रंथका विषय है । जो प्रतिपादन करिये सो विषय कहिये है। या ग्रंथविषै जीवब्रह्मकी एकता प्रतिपादन करिये है। यातैं सो एकता ग्रंथका विषय है। सो एकता सर्ववेदके वचन प्रतिपादन करै हैं। यातैं जीवब्रह्मका भेद कहैं हैं ते पुरुष शठ[९४] हैं औ वेदके विरोधी हैं ॥ २५ ॥

॥२६॥ अथ प्रयोजनवर्णन ॥२६-३२॥

दोहा—

परमानंद स्वरूपकी,
प्राप्ति प्रयोजन जानि ।
जगत समूल अनर्थ पुनि,
ह्वै ताकी अतिहानि ॥ २६ ॥

॥ ९२ ॥ इहां "आदि" शब्दकरिके श्रवणादिक साधनोंका औ ज्ञानका तथा विज्ञानका औ मोक्षका साध्यसाधनभाव आदिक संबन्ध जानि लेने ॥

॥ ९३ ॥ जल औ सींचनेकी न्याई होनेकारि योग्यतावाले परस्परउपयोगी दो पदार्थनका संबन्ध सिद्ध होवै है। निरुपयोगी पदार्थनका नहीं ॥ यातैं योग्यता विना संबन्धके असंभवके ज्ञानरूप अर्थापत्तिप्रमाणकारि तिन तिन पदार्थनकी योग्यताकी कल्पना रूप अर्थापत्तिप्रमा होवै है। इस हेतुतैं शास्त्रविषै सम्बन्धका व्यवहार लिख्या है । अन्यप्रयोजनअर्थ नहीं ॥

॥ ९४ ॥ जे पुरुष परपुरुषके मुखके आगे प्रिय वचन बोलते हैं औ अन्य ठिकाने ताका बहुत अप्रिय कर डालते हैं, वे शठ कहिये हैं ॥

टीकाः—प्रपंचका कारण जो अज्ञान औ प्रपंच वह जन्ममरणरूपी दुःखका हेतु है। यातैं अनर्थ कहिये है। ता अनर्थकी निवृत्ति औ परमानन्दकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है । सो १ ग्रन्थका परमप्रयोजन है औ २ अवांतरप्रयोजन ज्ञान है ॥

१ जाविषै पुरुषकी अभिलाषा होवै, सो परमप्रयोजन कहिये हैं औ ताकूं पुरुषार्थ बी कहिये हैं। सो अभिलाषा दुःखकी निवृत्तिविषै औ सुखकी प्राप्तिविषै सर्वपुरुषनकी होवै है। सोई मोक्षका स्वरूप है ॥

यातैं परमप्रयोजन मोक्ष है औ ज्ञान नहीं है काहेतैं? सुखकी प्राप्ति औ दुःखकी निवृत्तिका साधन तो ज्ञान है औ सुखकी प्राप्ति वा दुःखकी निवृत्तिरूप ज्ञान नहीं। यातैं अवांतरप्रयोजन ज्ञान है ॥

२ जा वस्तुद्वारा परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै सो अवांतरप्रयोजन कहिये है । ऐसा ज्ञान है। काहेतैं? ग्रन्थकारिके ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै है। यातैं ज्ञान अवांतरप्रयोजन है ॥ २६ ॥

॥ २७ ॥ ग्रंथके प्रयोजनमैं शंका औ ताका समाधान ॥ २७–३२ ॥

॥ शंकापूर्वक उत्तर कवित्त ॥

जीवको स्वरूप अति
आनँद कहत वेद,
ताकूं सुखप्राप्तिको
असंभव बखानिये।
आगे जो अप्राप्त वस्तु
तकी प्राप्ति संभवत,
नित्यप्राप्त वस्तुकी तौ
प्राप्ति किम मानिये?॥
ऐसी संका लेस आनि
कीजे न विस्वास हानि,
गुरुके प्रसादतैं
कुतर्क भले भानिये।
करको कंकन खोयो
ऐसो भ्रम भयो जिहिं,
ज्ञानतैं मिलत इम
प्राप्त प्राप्ति जानिये ॥

॥ २८ ॥ टीकाः—पूर्व कहा था "अनर्थकी निवृत्ति औ परमानन्दकी प्राप्ति ग्रन्थका प्रयोजन है" सो बनै नहीं। काहेतैं? सर्ववेद जीवकूं परमानन्दस्वरूप वर्णन करै हैं औ तुम अंगीकार बी करो हो औ जो वस्तु अप्राप्त होवै ताकी प्राप्ति संभवै है। सदा प्राप्त वस्तुकी प्राप्ति सर्वथा बनै नहीं। यातैं "सदा परमानन्दस्वरूप आत्माकूं परमानन्दकी प्राप्ति कहना सर्वप्रकारकारिके असम्भवै है।" ऐसी कोऊ शंका करै है ॥ २९ ॥ ता शंकाकूं सुनिकै ग्रन्थके प्रयोजनमैं विश्वास दूरि नहीं करना । किन्तु आत्मविद्याके उपदेश करनेवाला जो गुरु है तिनकी कृपातैं शंकारूपी जो कुतर्क है सो दृष्टान्तसैं दूरि कारि देना ॥

सो दृष्टांत कहिये हैः—जैसैं काहूके हाथमैं

॥ ९५ ॥ "प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म" कहिये प्रज्ञान जो जीव सो आनन्दरूप ब्रह्म है । इससैं आदि लेके चारि वेदनके वाक्य जीवकूं स्वभावसैं सिद्ध आनन्दरूप कहे हैं ॥

॥ ९६ ॥ वादी प्रतिवादी दोनूकूं संमत जो अर्थ सो दृष्टांत है, सोई उदाहरण है। दृष्टांतकरि सिद्धअर्थकूं दार्ष्टांत कहतेहैं । ताहीकूं सिद्धांत बी कहते हैं॥

कंकन होवै ताकूं ऐसा भ्रम होइ जावै जो "मेरा हाथका कंकन खोया गया" तब वाकूं किसीके कहेसैं कंकनका ऐसा ज्ञान होजावै जो "मेरा कंकन हाथमैं है" तब वह ऐसैं कहै है:—"मेरा कंकन मिल गया है"॥इस रीतिसैं प्राप्त जो कंकन है ताकी बी प्राप्ति कहिये है ॥

तैसैं परमानन्दस्वरूप आत्माविषे अविद्याके बलसैं ऐसी भ्रांति होवै है:—"आत्मा परमानंदस्वरूप नहीं है किन्तु परमानन्दस्वरूप ब्रह्म है॥ ता ब्रह्मका औ मेरा वियोग होय गया है। उपासना करिकै ता ब्रह्मकूं मैं प्राप्त होऊंगा" ॥

इस रीतिकी भ्रांति बहुत मूर्ख प्राणियोंको होई रही है ॥ यद्यपि बहुत पंडित बी ऐसैं कहै हैं तथापि वे मूर्ख ही हैं। काहेतैं? जो जीवब्रह्मका वियोग अंगीकार करै हैं ते मूर्ख कहिये हैं ॥ तिन पुरुषनकूं उत्तमसंस्कारसैं जो कदाचित् ब्रह्मज्ञानी आचार्यसैं वेदान्तग्रन्थके श्रवणकी प्राप्ति होय जावै तब सुन अर्थकूं निश्चय करिकै कहै हैं:—"परमानन्द हमारेकूं ग्रन्थ औ आचार्यकी कृपासैं प्राप्त भया है" यह उनका कहनेका अभिप्राय है। आत्मा तौ परमआनन्दस्वरूप आगे बी था। परन्तु "मेरा आत्मा परमआनंदरूप है"। इस रीतिसैं भान नहीं होवै था। यातैं अप्राप्तकी न्यांई था। आचार्यद्वारा ग्रन्थश्रवणसैं परमानन्दका बुद्धिविषे भान होवै है। यातैं परमानन्दकी प्राप्ति कहै हैं॥

इस रीतिसैं प्राप्तिकी बी प्राप्ति बननैतैं परमानन्दकी प्राप्तिरूप ग्रन्थका प्रयोजन संभवै है।

॥ ३० ॥ जैसैं प्राप्तकी प्राप्ति ग्रन्थका प्रयोजन है तैसैं नित्यनिवृत्ति निवृत्ति बी प्रयोजन संभवै है ॥

दृष्टांतः—जेवरीविषै सर्प नित्यनिवृत्त है औ जेवरकि ज्ञानसैं निवृत्त होवै है तैसैं आत्माविषै संसार नित्यनिवृत्त है । ताकी निवृत्ति आत्माके ज्ञानसैं होवै है । यातैं नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति औ नित्यप्राप्तकी प्राप्ति ग्रन्थका प्रयोजन है ॥ २७ ॥

॥३१॥ शंकाः—एक पदार्थ (मोक्ष) विषे भाव अभाव दोनूं बनै नहीं ॥

"कारण सहित जगत्की निवृत्ति औ परमानन्दकी प्राप्ति ग्रन्थका प्रयोजन है" यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं। काहेतैं? निवृत्ति नाम ध्वंसका है। ध्वंस औ नाश दोनों पर्याय शब्द हैं। "सो नाश अभावरूप है।" यातैं मोक्षविषै भावरूपता औ अभावरूपता दोनों प्रतीत होवै हैं॥

१ अनर्थकी निवृत्ति कहनैसैं अभावरूपता प्रतीत होवै है । औ—

॥ ९७ ॥ व्यावहारिक किंवा प्रातिभासिक प्रपंचके वर्त्तमानकालविषे भावके होते बी पारमार्थिक सत्ताकरि प्रपंचका तीनिकालविषे निषेधमुखश्रुति औ विद्वानोके अनुभवकरि सिद्ध अत्यंताभाव है सोई ताकी नित्यनिवृत्ति है। याहीकूं विषयरूप निवृत्ति बी कहते हैं । उक्त नित्यनिवृत्तिवाला जो प्रपंच सो नित्यनिवृत्त नाम तुच्छ कहिये है ॥ ता नित्यनिवृत्त प्रपंचकी निवृत्ति कहिये विद्यमानपरमार्थसत्ताकरि त्रयकालिकअभावका श्रुति, युक्ति औ तत्त्वज्ञान करिके निश्चय जो विषयिरूप निवृत्ति सो नित्यनिवृत्तिकी निवृत्ति है ।

॥९८॥ जैसैं स्वगृहविषै गाडया हुया निधि अज्ञानतैं अप्राप्तकी न्यांई होवै है । ताका जो अजनादिक साधनसैं निश्चयरूप ज्ञान सो नित्यप्राप्तकी प्राप्ति है ॥ तैसैं परमानन्दरूप जो ब्रह्म सो सर्वका अपना आप होनैतैं नित्यप्राप्त है, तौ बी सो अज्ञानतैं अप्राप्तकी न्यांई होवै है। ताका तत्त्वज्ञानतैं "मैं ही परमानन्दरूप ब्रह्म हूं" ऐसा निश्चयरूप जो ज्ञान सो नित्यप्राप्तकी प्राप्ति है ।

२ परमानंदकी प्राप्ति कहनैसैं भावरूपता प्रतीत होवै है ॥

सो दोनों एकपदार्थविषै बनै नहीं । काहेतैं ? "भावरूपता औ अभावरूपता दोनों आपसमैं विरोधी हैं, जो विरोधीधर्म होवै सो एककालमैं एकवस्तुविषै रहै नहीं । यातैं ग्रंथका प्रयोजन संभवै नहीं" ऐसी कोऊ शंका करै है ॥

॥ ३२ ॥ ता शंकाके उत्तरका दोहा ॥

अधिष्ठानतैं भिन्न नहिं,
जगत निवृत्ति बखान ।
सर्पनिवृत्ती रज्जु जिम,
भये रज्जुको ज्ञान ॥ २८ ॥

टीकाः—कारणसहित जगत्की निवृत्ति अधिष्ठानब्रह्मरूप है । यातैं पृथक् नहीं ॥ जैसैं सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठानजेवरीरूप है ॥ "सारे कल्पित वस्तुकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है ॥ यातैं पृथक् नहीं" । यह भाष्यकारका सिद्धांत है । यातैं इस स्थानविषै अनर्थकी निवृत्ति ब्रह्म-रूप है । काहेतैं ? जो सर्वअनर्थका अधिष्ठान ब्रह्म है सो ब्रह्म भावरूप है । यातैं अनर्थकी निवृत्ति भावरूप होनैतैं ग्रंथका प्रयोजन बनै है । यह वार्त्ता सिद्ध भई ॥ २८ ॥

दोहा—

जो जन प्रथमतरंग यह,
पढ़ै ताहि तत्काल ।
करहु मुक्त गुरुमूर्ति ह्वै,
दादू दीनदयाल ॥ २९ ॥

इति श्रीविचारसागरे अनुबंधसामान्य-निरूपणं नाम प्रथमस्तरंगः समाप्तः ॥ १ ॥

॥ ९९ ॥ कल्पित अनर्थकी निवृत्तिविषै दो पक्ष हैं-

१ " ज्ञातत्वधर्मकारि उपलक्षित अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्ति है" । यह प्रथमपक्ष है । औ--

२ " कल्पितकी निवृत्ति कहिये अभाव, सो अधिष्ठान कहिये अधिकरणतैं भिन्न अनिर्वचनीय है" । यह द्वितीयपक्ष है ॥

तिनमैं प्रथमपक्ष भाष्यकारका है औ द्वितीयपक्ष न्यायवाचस्पतिकार जो वाचसपतिमिश्र नाका है ॥

३ जैसैं प्रथमपक्षविषै " पुरुष स्थाणु ह" इस वाक्यका "पुरुषका अभावरूप स्थाणु है" ऐसा बाध-सामानाधिकरण्यकरिके अर्थ होवै ह तैसैं " सर्वं खल्विदं ब्रह्म" कहिये यह सर्व जगत् निश्चयकरिके ब्रह्म है। इस विधिमुखताकरिके सर्व जगत्की ब्रह्मरूपताके प्रतिपादक श्रुतिवाक्यका बी "इस प्रतीयमान सर्व जगत्का अभावरूप ब्रह्म है" ऐसा "सर्व" औ "ब्रह्म" इन समानविभक्तिवाले नाम प्रथमाविभक्तिवाले दो पदनके बाधसामानाधिकरण्यरूप संबंधकरिके अर्थ होवै हैं । यातैं कल्पित अनर्थकी निवृत्ति कहिये पर-मार्थसत्तासैं अत्यन्ताभाव, ताकूं ब्रह्मरूप होनैकारि मोक्ष-विषै भावरूपता औ अभावरूपताके अभावतैं द्वैताप-त्तिकी शंका नहीं है । औ—

२ द्वितीयपक्षविषै 'पुरुष स्थाणु है" इस वाक्य का " पुरुषके अभाववाला स्थाणु है " ऐसा अर्थ होवै है औ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इस श्रुतिवाक्यका बी " इस प्रतीयमान सर्वजगत्के अभाववाला ब्रह्म है है " । ऐसा अर्थ होवै है ।

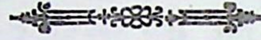
उक्त अभावरूप निवृत्ति बी अनिर्वचनीय नाम मिथ्या है । जो वस्तु अनिर्वचनीय होवै सो वास्तव-अधिष्ठानतैं भिन्न नहीं होवै है, किंतु अधिष्ठानरूप होवै है । यातैं मोक्षविषै द्वैतापत्तिकी शंका नहीं है ॥

ये कहे जे दो पक्ष, तिनमैं प्रथम पक्षविषै लाघव है औ द्वितीयपक्षविषै गौरव है । यातैं प्रथमपक्ष श्रेष्ठ है । दोनूं रीतिसैं मोक्षविषै द्वैतापत्तिकी शंका नहीं है ॥



श्रीविचारसागर ।

द्वितीयस्तरंगः ॥



॥ अथ अनुबंधविशेषनिरूपणम् ॥

॥ दोहा ॥

याके प्रथमतरंगमैं,
किय अनुबंध—विचार ।
कहुँ व द्वितीयतरंगमैं,
तिनहीको विस्तार ॥ १ ॥

॥ ३ ॥ कारणसहित जगत्‌निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथमअंशकी इच्छा बनै नहीं ॥ ३३—३६ ॥

टीकाः—च्यारिसाधनयुक्त अधिकारी कह्या । तिन च्यारिसाधनमें मुमुक्षुता गिनी है। मोक्षकी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है । कारणसहित जगतकी निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है । ताके विषै कारणसहित जगत्‌की निवृत्तिरूप मोक्षका अंश, ताकूं कोऊ चाहै नहीं । यह वार्त्ता—

॥ ६० ॥ जैसैं काहू पुरुषनैं गृहके रचनेका आरंभ किया होवै ताकूं दूसरा प्रतिपक्षी पुरुष रोक देवै, तब वह फिरियाद करिके फेर निःशंक होयके गृहकूं रचता है ॥ तैसैं ग्रंथकारनैं याके प्रथमतरंगविषै च्यारी अनुबंधनका सामन्यसैं निरूपण किया । सो मानो इस ग्रंथरूप गृहके रचनेका आरंभ किया है ॥ ताकूं द्वितीय तरंगके पूर्वार्धसैं पूर्वपक्षीनैं रोक दिया। तब सिद्धांती जो ग्रंथकार तिसनैं श्रुतिरूप राजाके अनुसारी युक्तिरूप मंत्रीके पास फिरियाद करिके ताके बलसैं फेर निःशंक होयके च्यारिअनुबंधनका निरूपणरूप इस ग्रंथके रचनेका आरंभ किया है । इस रीतिसैं या द्वितीयतरंगविषै च्यारी अनुबंधनका विशेषकरिके निरूपण किया है ॥

॥ ३४ ॥ पूर्वपक्षी प्रतिपादन करै है ॥

॥ अथ अधिकारीखंडन (१) ॥ ३४-३८

॥ दोहा ॥

मूलसहित जगध्वंसकी,
कोउ करत नहिं आस ।
किंतु विवेकी चहत हैं ।
त्रिविधि दुखनको नास ॥ २ ॥

टीकाः—मूलअविद्यासहित जो जगत्‌का ध्वंस कहिये निवृत्ति, ताकी आस कहिये इच्छा कोउ पुरुष करै नहीं है । किंतु कहिये कहा करै है ? तीनि प्रकारके जे दुःख हैं तिनका नाश विवेकी पुरुष चाहै है ॥ याका यह अभिप्राय हैः—दुःख तीनि प्रकारके हैंः—१ एक

॥ ६१ ॥ जैसैं पुरुष भिक्षुकोंके भयसैं अन्नके त्यागकूं इच्छता नहीं औ यूकाके भयसैं वस्त्रके त्यागकूं इच्छता नहीं औ पशुपक्षीनके भयसैं क्षेत्रके

तौ अध्यात्मदुःख है । २ दूसरा अधिभूतदुःख है औ ३ तीसरा अधिदेवदुःख है ॥

१ रोगक्षुधादिकनतैं जो दुःख होवै सो अध्यात्मदुःख कहिये है ।

२ चोरव्याघ्रसर्पादिकनतैं जो दुःख होवै सो अधिभूतदुःख कहिये है ।

३ यक्षराक्षसप्रेतग्रहादिक औ शीतवातआतपतैं जो दुःख होवै सो अधिदेवदुःख कहिये है ॥

इस रीतिसैं तीन भांतिके जे दुःख हैं, तिनके नाशकी सर्वपुरुषनकूं इच्छा है । दुःखसे भिन्न जो पदार्थ हैं, तिनके नाशकी विवेकी पुरुष इच्छा करै नहीं, यातैं अज्ञानसहित सकल जगत्की निवृत्तिकी काहूकूं इच्छा बनै नहीं । औ-

॥३५॥ जो सिद्धांती ऐसे कहैः--यद्यपि सकलपुरुष दुःखनिवृत्तिकी इच्छा करै हैं । तथापि अज्ञानसहित सर्वजगत्की निवृत्ति विना दुःखनकी निवृत्ति होवै नहीं । यातैं दुःखनिवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित जगत्की निवृत्तिकूं बी चाहै हैं" ॥

॥३६॥ सो बनै नहीं । काहेतैं ? जे आयुर्वेदमैं औषध कहे हैं तिनतैं रोगजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है औ भोजनसैं क्षुधाजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है ॥ इस रीतिसैं अपनै अपनै उपायनतैं सर्वदुःखनकी निवृत्ति होवै है, यातैं अज्ञानसहित जगत्की निवृत्ति विना बी दुःखनकी निवृत्ति बनै है ॥ दुःखनकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित जगत्की निवृत्तिकी चाहना बनै नहीं ॥ "कारणसहित जगत्की निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष कहिये है" ताके विषै कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके अंशकी बी इच्छा काहूकूं बनै नहीं, यह वार्ता प्रथम दोहाविषै कही ॥

॥ ३७ ॥ ब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीय-अंशकी बी इच्छा काहूकूं बनै नहीं । यह वार्ता

पूर्वपक्षी कहै है-

दोहा-

किय अनुभव जा वस्तुको,
ताकी इच्छा होइ ।
ब्रह्म नहीं अनुभूत इम,
चहै न ताकूं कोइ ॥ ३ ॥

टीकाः--जा वस्तुका अनुभव कहिये ज्ञान होय, ता वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा होवै है । जा वस्तुका ज्ञान होवै नहीं, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बी होवै नहीं । जैसैं अन्य देशके अनंत पदार्थ

त्यागकूं इच्छता नहीं । तैसैं विवेकी पुरुष बी त्रिविध-दुःखके भयसैं कारणसहित जगत्के नाशकूं इच्छता नहीं, किंतु त्रिविध दुःखके नाशकूं इच्छता है । यह सांख्यमतके अनुसारिनकी शंका है ॥

॥ ६२ ॥ आत्माकूं आश्रयकरिके वर्त्तनेवाला जो स्थूलसूक्ष्मशरीर, सो अध्यात्म कहिये है । तिससैं जन्य जो दुःख सो अध्यात्मदुःख कहिये है । ताहीकूं अध्यात्मताप बी कहते हैं ॥

॥ ६३ ॥ स्वसंघाततैं भिन्न होवै औ चक्षुइंद्रिय-का विषय होवै सो अधिभूत कहिये है । तिसतैं जन्य जो दुःख सो अधिभूतदुःख कहिये है ॥

॥ ६४ ॥ स्वसंघाततैं भिन्न होवै औ चक्षुइंद्रिय-का अविषय होवै सो अधिदेव कहिये है । तिसकी प्रेरणासैं जन्य जो दुःख सो अधिदैवदुःख कहिये है ॥

॥ ६५ ॥ पूर्व अनुभव किये वस्तुकी इच्छा होवै है । ब्रह्मरूप अधिष्ठानके ज्ञानसैं कारणसहित जगत्की निवृत्तिका अनुभव पूर्व कबी किया नहीं । यातैं कारणसहित जगत्की निवृत्तिकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं । यह पूर्वपक्षीकी शङ्काका उत्तेजन है ॥ याका समाधान आगे ९१ वें टिप्पणविषै कहियेगा ॥

अज्ञात है, तिनकी प्राप्तिकी इच्छा काहू पुरुषकूं होवै नहीं औ अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मका ज्ञान है नहीं औ जाकूं ब्रह्मका ज्ञान है सो अधिकारी नहीं किंतु मुक्त है। ताकूं ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं, यातैं वेदांतश्रवणतैं पूर्व अज्ञात जो ब्रह्म, ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं। इस रीतिसैं अज्ञानसहित जगत्की निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्तिरूप जो मोक्ष, ताकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं, यातैं मुमुक्षु कोउ है नहीं ॥ ३॥

॥ ३८॥ मुमुक्षुता बनै नहीं, यातैं वैराग्यादिक बी बनैं नहीं ॥

अन्यरीतिसैं अधिकारीका अभाव

पूर्वपक्षी प्रतिपादन करै है।

दोहा—

चहत विषयसुख सकल जन,
नहीं मोछको पंथ।
अधिकारी यातैं नहीं,
पढ़ै सुनै जो ग्रंथ ॥ ४ ॥

टीकाः—सर्वपुरुष विषयसुखकूं चाहै हैं। और जो कोई सकलविषयनका त्याग करिके तपविषै आरूढ़ है, सो बी परलोकके उत्तम भोगनकी इच्छा करिके नाना क्लेश संहारै है। यातैं इस लोकका अथवा परलोकका विषयसुख सर्व चाहै हैं। सो विषयसुख मोक्षविषै है नहीं, यातैं मोक्षका पंथ कहिये साधन, ताकूं कोई पुरुष चाहै नहीं। इस रीतिसैं मोक्षकी इच्छारूप मुमुक्षुता बनै नहीं औ सकल पुरुषनकूं विषयसुखकी इच्छा होवै है, यातैं वैराग्य,शम,दम, उपरति बी काहूविषै बनै नहीं। यातैं चतुष्टय-साधनसहित अधिकारीका अभाव होनैतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है ॥ ४ ॥

॥ अथ विषयखंडन (२) ॥ ३९-४४ ॥

॥ पूर्वपक्ष ॥

॥ ३९॥ जीवब्रह्मकी एकता बनै नहीं

दोहा—

जीवब्रह्मकी एकता,
कह्यो विषय सो कूर।
क्लेसरहित विभु ब्रह्म इक,
जीव क्लेसको मूर ॥ ५ ॥

टीकाः—पूर्व कह्या जो "जीवब्रह्मकी एकता या ग्रंथका विषय है" सो संभवै नहीं। काहेतैं? १ ब्रह्म तौ (१) [१] अविद्या[66]।

॥ ६६ ॥ जो विचारके किये हुए होवै नहीं, सो अविद्या कहिये है। सो अविद्या १ मूला, २ तूला भेदतैं दो भांतिकी है ॥

१ जो शुद्धचैतन्यकू ढांपै सो मूलाअविद्या है ॥
२ घटादिउपाधिवाले चैतन्यकूं ढांपै सो तूलाअविद्या है।

तिनमैं मूलाअविद्या बी (१) कार्य (२) कारण भेदतैं दो भांतिकी है ॥

(१) अन्यविषै अन्यकी बुद्धिरूप प्रतीति जो है सो कार्यरूप अविद्या है। औ—
(२) आवरणविक्षेपशक्तिवाली अनादिभावरूप जो है सो कारणरूप अविद्या है।

तिनमैं कार्यरूप अविद्या बी—
[१] अनात्मादेहादिकविषै आत्मबुद्धि औ—
[२] अनित्यआकाशादिकविषै नित्यबुद्धि औ—
[३] दुःखरूप धनादिकविषै सुखबुद्धि औ—
[४] अशुचि जो स्त्रीपुत्रके मुखचुंबनआदिक तिसविषै शुचिबुद्धि।

-इस भेदतैं च्यारि भांतिकी है ॥ इहां पंचक्लेशके प्रसंग-मैं उक्त च्यारि प्रकारकी कार्यअविद्याका ग्रहण है ॥

[२] अस्मिता[६७]। [३] राग[६८]। [४] द्वेष[६९]। [५] अभिनिवेश[७०]। इन पंचक्लेशनतैं रहित है। औ (२) विभु कहिये व्यापक है। (३) एक है सजातीयभेदरहित है। काहेतैं? ब्रह्मके सजातीय और ब्रह्म है नहीं। औ–

२ जीवविषै (१) सर्व क्लेश हैं। औ (२) परिच्छिन्न है। औ (३) जीव नाना हैं। काहेतैं जितनैं शरीर हैं उतनैं जीव हैं। जो सर्वशरीरविषै जीव एक होवै तौ एक शरीरमैं सुख अथवा दुःख होनैतैं सर्वशरीरविषै सुख औ दुःख हुवा चाहिये ॥ औ–

॥ ४० ॥ जो वेदांती कहै हैं:—"सुखसैं आदिलेकै अन्तःकरणके धर्म हैं, सो अन्तःकरण नाना हैं, यातैं एकके सुखी दुःखी होनैतैं सर्व सुखी दुःखी नहीं होवै हैं औ साक्षी सुखदुःखतैं रहित है, एक है औ सर्वक्लेशनतैं रहित है औ ताकी ब्रह्मके साथ एकता बनै है" ॥

॥४१॥ साक्षीका नानापना ॥४१–४४॥

सो वार्ता बनै नहीं। काहेतैं?–जो कर्ता भोक्ता जीव है तिसतैं भिन्न साक्षी वन्ध्यापुत्रके समान है। औ जो साक्षी अंगीकार बी करो सो बी एक बनै नहीं। नानासाक्षी मानने होवैंगे। काहेतैं? यह वेदांतका सिद्धान्त है:–"अंतःकरण औ सुखदुःखसैं आदिलेकै अंतःकरणके धर्म, ये इंद्रिय औ अन्तःकरणके विषय नहीं किन्तु साक्षीके विषय हैं। काहेतैं? इंद्रिय तौ पंचीकृत भूतनकूं विषय करे हैं। यामैं इतना भेद है:–औ तिनके कार्य–

१ नेत्र[७१]इंद्रिय तौ रूपवान जो वस्तु है ताके रूपकूं औ रूपके आश्रयकूं दोनुवाकूं विषय करै है। जैसैं नीलपीतादिक घटका रूप औ तिस रूपके आश्रय घटकूं नेत्रइन्द्रिय विषय करैहै औ–

२ त्वचा[७२]इंद्रिय बी स्पर्शकूं औ ताके आश्रयकूं दोनुवाकूं विषय करै है। औ—

३-४-५ रसना[७३], घ्राण, श्रवण, ये तीन तौ रस गंध शब्दमात्रकूं विषय करै हैं। तिनके आश्रयकूं विषय करैं नहीं। यातैं इन तीनुवासैं तौ अंतःकरणका ज्ञान बनै नहीं। औ–

नेत्रसैं तथा त्वचासैं अन्तःकरणका ज्ञान बनै

॥ ६७ ॥ बुद्धि औ आत्माकी एकताकी जो प्रतीति सो अस्मिता है। याहीकूं सामान्य-अहंकार बी कहते हैं ॥

॥ ६८ ॥ अनुकूलताके ज्ञानसैं जन्य जो बुद्धिवृत्ति सो राग है ॥

॥ ६९ ॥ प्रतिकूलवस्तुके ज्ञानसैं जन्य जो बुद्धिवृत्ति सो द्वेष है ॥

॥ ७० ॥ मरणके भयसैं शरीरकी रक्षाविषै जो आग्रह सो अभिनिवेश है ॥

॥ ७१ ॥ इहां "रूप" शब्दकरिके रूपत्वजातिका औ रूपत्वके व्याप्य नाम अंतर्गत शुक्लत्व नीलत्व आदिक सप्तजातिनका बी ग्रहण है ॥

॥ ७२ ॥ इहां "स्पर्श शब्दकरिके स्पर्शके आश्रय स्पर्शत्वजातिका औ स्पर्शत्वके व्याप्य कठिनत्व कोमलत्व आदिक च्यारि जातिनका बी ग्रहण है॥

॥ ७३ ॥ इहां रस, गंध औ शब्दगुण, इन तीनों करिके क्रमतै रसत्व, गंधत्व अरु शब्दत्व, इन तीन जातिनका औ रसत्वके व्याप्य मधुरत्वआदिक षट्जातिनका औ गंधत्वके व्याप्य, सुगंधत्व अरु दुर्गंधत्वरूप दो जातिनका औ शब्दत्वरूप व्यापक नाम अधिकदेशवर्ती जातिके व्याप्य कहिये न्यूनदेशवर्ती तारतम्य (अधिकत्व अरु मन्दत्व) रूप दो जातिका ग्रहण है। सो यथायोग्य जानि लेना ॥

नहीं। काहेतें? पंचीकृत भूत अथवा पंचीकृत भूतनका कार्य जो रूपवान् अथवा स्पर्शवान् होवै सो नेत्र औ त्वचाका विषय होवै है। अन्तःकरण अपंचीकृत भूतनका कार्य है। यातें नेत्र औ त्वचाका बी विषय नहीं। इसी कारणतें अपंचीकृत भूतनका कार्य नेत्रइन्द्रिय बी नेत्रका विषय नहीं है। औ बाह्यवस्तु इंद्रियका विषय होवै है। औ अन्तःकरण इंद्रियकी अपेक्षातें अंतर है। यातें बी इंद्रियका विषय नहीं औ—

॥ ४२ ॥ अन्तःकरणकी वृत्तिका बी अन्तःकरण विषय नहीं। काहेतें? अन्तःकरण वृत्तिका आश्रय है। यातें अन्तःकरण अपनी वृत्तिका विषय बनै नहीं ॥ जैसें आग्नि दाहका आश्रय है सो दाहका विषय नहीं होवै है, किन्तु अग्निसें भिन्न जो काष्ठसें आदि लेकै वस्तु है, सो दाहका विषय होवै है। तैसें अन्तःकरणसें भिन्न जो वस्तु हैं सो अन्तःकरणजन्य वृत्तिके विषय हैं औ अन्तःकरण नहीं ॥

॥ ४३ ॥ तैसें अन्तःकरणके धर्म बी अन्तःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं। काहेतें? अंतःकरणकूं विषय करने वास्तै जो अंतःकरणकी वृत्ति होवै तौ अन्तःकरणके धर्म जो सुखादिक हैं तिनकूं बी विषय करै ॥ सो अंतःकरणकूं विषय करनेवाली वृत्ति तौ अन्तःकरणके सम्मुख होवै नहीं, यातें अन्तःकरणके धर्म बी अन्तःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं। औ-

यह नियम हैः—जो वृत्तिके आश्रयसें किंचित् दूरि वस्तु होवै सो वृत्तिका विषय होवै है। जो वस्तु वृत्तिके आश्रयसें अत्यन्त समीप होवै सो वृत्तिका विषय होवै नहीं ॥ जैसें नेत्रकी वृत्तिका आश्रय जो नेत्र ताके अत्यन्त समीप अंजन नेत्रकी वृत्तिका विषय नहीं। तैसें अन्तःकरणकी वृत्तिका आश्रय जो अंतःकरण ताके अत्यन्त समीप जो सुखसें आदि लेकै धर्म, सो अन्तःकरणकी वृत्तिके विषय बनैं नहीं ॥ इस रीतिसें धर्मसहित अन्तःकरणका इंद्रियतें अथवा अपनेतें भान बनै नहीं किन्तु साक्षीके विषय हैं ॥

॥ ४४ ॥ सो साक्षी एक अंगीकार करैं

॥ ७४ ॥ यद्यपि गृहका मध्य जैसें अन्धकारका आश्रय है औ विषय बी है, चेतन अज्ञानका आश्रय है औ विषय बी है, तैसें अन्तःकरण वृत्तिका आश्रय है तौ बी वृत्तिका विषय होवैगा तथापि यामें यह रहस्य हैः—गृहके मध्य औ अधकारआदिककी न्यांई जहां आश्रय अरु आश्रितका भेद है तहां तो एक ही वस्तु आश्रय औ विषय होवै है। औ जहां अग्नि औ दाहकी न्यांई आश्रय अरु आश्रितका भेद नहीं तहां आश्रय औ विषय एक होवै नहीं। जातें अन्तःकरणतें वृत्तिका भेद नहीं तातें अंतःकरण वृत्तिका उपादानरूप आश्रय है। परंतु विषय बनै नहीं ॥

॥ ७५ ॥ जैसें नेत्रइंद्रिय अपनेतें दूरस्थित अन्य सर्वरूपवान् वस्तुकूं प्रकाशता है, परंतु अपने अंधत्व मंदत्वपटुत्वरूप धर्मसहित आपकूं प्रकाशता नहीं औ नेत्रदेशमैं स्थित जो अंतःकरण सो उक्तधर्मसहित नेत्रकूं प्रकाशता है।

तैसें अंतःकरण बी अपनेतें भिन्न सर्व जड़वस्तुनकूं प्रकाशता है। परंतु सुखादिधर्मसहित आपकूं आप प्रकाशता नहीं। किंतु साभासअंतःकरणविषै आरूढ जो साक्षी, सो धर्मसहित अंतःकरणकूं प्रकाशता है। यातें साभासअंतःकरण आपेक्षिकस्वयंप्रकाश है। निरपेक्षस्वयंप्रकाश नहीं। औ—

साक्षी अपने प्रकाशविषै अन्यप्रकाशकी अपेक्षा करता नहीं औ सर्वका प्रकाशक है। यातें निरपेक्षस्वयंप्रकाश है।

या मूलग्रंथ उक्त शंकाका समाधान इसी अभिप्रायसें आगे विषयमंडनके प्रसंगमैं कहियेगा। तातें ग्रंथके विषयमैं भ्रम करना योग्य नहीं ॥

तौ जैसें एक अंतःकरणके सुखदुःखका साक्षीसें भान होवै है, तैसें सर्वके सुखदुःखका भान हुवा चाहिये । यातें साक्षी नाना हैं, जब नानासाक्षी अंगीकार करिये तब दोष नहीं । काहेतें ? जा साक्षीकी उपाधि अंतःकरण है ता साक्षीसें अपनी उपाधिके धर्मका भान होवै है । यातें सर्वके सुखदुःखका भान होवै नहीं ॥

इस रीतिसें नाना जो साक्षी तिनूंकी एक ब्रह्मके साथ एकता बनै नहीं ॥ ९ ॥

॥अथ प्रयोजनखंडन (३) ४५-५९-॥

॥ पूर्वपक्ष ॥

॥ ४५ ॥ मिथ्याबंधकी सामग्री नहीं है, यातें ताकी निवृत्ति बनै नहीं ॥

॥ दोहा ॥

बंधनिवृत्ति ज्ञानतैं,
बनै न बिन अध्यास ।
सामग्री ताकी नहीं,
तजो ज्ञानकी आस ॥ ६ ॥

टीकाः-अहंकारसैं आदिलैकै जो अनात्मवस्तु हैं, सो बंध कहिये है ॥ सो बंध जो अध्यासरूप ° होवै तौ ज्ञानतैं निवृत्त होवै औ अध्यासरूप नहीं होवै तौ ज्ञानतैं निवृत्त होवै नहीं । काहेतैं ? ज्ञानका यह स्वभाव है:-- जा वस्तुका ज्ञान होवै ताके विषै अध्यास औ अज्ञान तिनकूं दूरि करै है ॥ जैसैं जेवरीका ज्ञान जेवरीविषै सर्पअध्यासकूं औ जेवरीके अज्ञानकूं दूरि करै है ॥

भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु औ भ्रांतिज्ञान ताका नाम अध्यास है ॥

जाके विषै जो वस्तु मिथ्या नहीं है किंतु सत्य है, ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं ॥

तैसैं आत्माविषै अहंकारसैं आदि लैकै बंध जो अध्यास कहिये मिथ्या होवै तौ ज्ञानसैं निवृत्ति होवै । आत्माविषै मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं औ बंध प्रतीति होवै है । यातैं बंध सत्य है । ता सत्यबंधकी ज्ञानसैं निवृत्तिकी आशा निष्फल है ॥ ६ ॥

॥ ४६ ॥ अथ अध्याससामग्रीनिरूपण ॥

॥ दोहा ॥

सत्यवस्तुके ज्ञानतैं,
संसकार इक जान ।

॥ ७६ ॥ स्वअभावके अधिकरणमैं जो अवभास नाम विषय औ ज्ञान, सो अध्यास कहिये है ॥ जैसैं कल्पितसर्पके व्यावहारिक औ पारमार्थिक अभावके अधिकरण कहिये आश्रय रज्जुविषै प्रातिभासिक सर्पका अवभास कहिये सर्प औ ताका ज्ञान है, सो अध्यास है ।

अथवा अधिष्ठानतैं विषमसत्तावाला जो अवभास सो अध्यास कहिये है ॥ जैसैं व्यावहारिक सत्तावाले रज्जुरूप अधिष्ठानतैं विषम कहिये प्रातिभासिकरूप विपरीतसत्तावाला जो अवभास कहिये सर्प औ ताका ज्ञान है सो अध्यास है ॥

सो अध्यास १ अर्थाध्यास और २ ज्ञानाध्यास-भेदतैं दो भांतिका है ।

१ भ्रांतिज्ञानका विषय जो सर्पादिक मिथ्यावस्तु सो अर्थाध्यास है ॥ औ-

२ भ्रांतिज्ञान जो मिथ्यावस्तुका मिथ्याज्ञान सो ज्ञानाध्यास है ॥

तिनमैं ज्ञानाध्यास परोक्ष-अपरोक्षभेदतैं दो भांतिका है ॥ औ-

अर्थाध्यास १ केवलसंबंधाध्यास । २ संबंधसहित संबंधीका अध्यास । ३ केवलधर्माध्यास । ४ धर्मसहित

त्रिविधदोष अज्ञान पुनि, साँमग्री पहिचान ॥ ७ ॥

टीकाः--१. सत्यवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार। औ तीनप्रकारके दोष । २ प्रमेयका दोष। ३ प्रमाताका दोष। ४ प्रमाणका दोष । औ ५ अधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान । इतनी अध्यासकी सामग्री है। या विना अध्यास होवै नहीं ॥

१ जैसैं सीपीमैं रूपेका औ जेवरीमैं सर्पका अध्यास होवै है, सो जा पुरुषनैं सत्य रूपा औ सर्प देख्या है, ताकूं होवै है औ जाकूं सत्यरूपेका औ सर्पका ज्ञान नहीं ताकूं होवै नहीं। यातैं सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कार अध्यासके हेतु हैं ॥ औ--

२ सीपीमैं सर्पका औ जेवरीमैं रूपेका अध्यास होवै नहीं । यातैं प्रमेयविषै सादृश्यदोष अध्यासका हेतु है ॥

३ इस रीतिसैं प्रमाताविषै लोभ भयसैं आदि लैकै । औ--

४ नेत्रादिकप्रमाणविषै पित्तकामलसैं आदि लैकै जो दोष सो अध्यासके हेतु हैं ॥ औ-

५ सीपीका "इदं" रूपकरिके सामान्यज्ञान होवै औ "यह सीपी है" ऐसा विशेषज्ञान नहीं होवै। जब अध्यास होवै है "सीपी है" ऐसा विशेषरूप करिके ज्ञान होवै तब अध्यास होवै नहीं ॥औ सामान्यरूप करिके ज्ञान नहीं होवै तौ बी अध्यास होवै नहीं। यातैं अधिष्ठानका विशेषरूपकरिके अज्ञान औ सामान्यरूपकरिके ज्ञान अध्यासका हेतु है ॥

इतनी अध्यासकी सामग्री है, इनमैं कोई एक नहीं होवै तौ बी अध्यास होवै नहीं ॥ जैसैं कुलाल चक्र दंड मृत्तिका घटकी सामाग्री है। कोई एक नहीं होवै तौ घट होवै नहीं । तैसैं अध्यास बी सारी सामग्रीसैं होवै है ॥ ७ ॥

धर्मीका अध्यास। ५ अन्योन्याध्यास औ ६ अन्यतराध्यासभेदतैं षट्प्रकारका है ॥

अथवा संसर्गाध्यास औ स्वरूपाध्यासभेदतैं अर्थाध्यास दो भांतिका है ॥

इहां निष्कर्ष यह हैः-- केवल संबंधाध्यास ही संसर्गाध्यास है औ संबंधसहित संबंधीका अध्यास ही संसर्गसहित स्वरूपाध्यास है \ सोई अन्योन्याध्यास है, सर्वत्र संसर्ग औ स्वरूप दोनूंका मिश्रभाव होवै है औ दोनूंमैंसैं एकका जो अध्यास सो अन्यतराध्यास कहिये है सो मिथ्यावस्तुका स्वरूपाध्यासरूप कहिये है । अरु सत्यवस्तुका संबंधाध्यासरूप कहिये है ॥ यह अन्यतराध्यासका किंवा केवलसंबंधाध्यासका पृथग्भावकरि कथन जो है सो आत्मा अरु अनात्माके अध्यासके भेदज्ञानअर्थ है, परंतु सर्व अर्थाध्यास अन्योन्याध्यासरूप ही है। तातैं पृथक् नहीं ॥ सो अन्योन्याध्यास कहूं केवलधर्मका होवै है औ कहूं धर्मसहित धर्मीका होवै है। यातैं उक्त भेदतैं अन्योन्याध्यास दो प्रकारका ही है॥

इनके संक्षेपतैं उदाहरण हमने विचारचंद्रोदयकी षष्ठकलाविषै लिखे हैं औ विस्तारसैं उदाहरण श्रीवृत्तिप्रभाकरविषै लिखे हैं ॥

॥ ७७ ॥ कारणके समुदायकूं सामग्री कहैहैं ॥ जैसैं लकरी चुल्ही आदिक कारण मिलिकै पाक जो रसोई ताकी सामग्री कहिये है तैसैं अध्यासके कारणोंका समुदायरूप जो सामग्री है १ सो इहां कहियेगा ॥

॥ ७८ ॥ प्रमाज्ञानका जो विषय सो प्रमेय कहिये है ॥ कल्पित सर्परजतआदिकका अधिष्ठान रज्जुशुक्तिआदिक प्रमाज्ञानका विषय है । यातैं सो प्रमेय है। ताकविषै जो सर्पादिकनकी तुल्यता है सो सादृश्यदोष है। याहीकूं प्रमेयदोष बी कहते हैं॥ रज्जुविषै भूमिस्पृष्टित्वदीर्घत्वत्रिवलयाकारतारूप सर्पका सादृश्य है औ शुक्तिविषै चाकचिक्यतारूप रजतका सादृश्य है ॥ इस रीतिसैं अन्यठिकानैं बी अधिष्ठानविषै अध्यस्तका सादृश्य जानि लेना ॥

॥४७॥ १ बन्धके अध्यासमैं सत्यवस्तुके ज्ञानसैं जन्य संस्कारकी असिद्धि ॥

तैसैं बन्धके अध्यासमैं एक बी कारण है नहीं । बन्ध कहूं सत्य होवै तौ ताके ज्ञानजन्य संस्कारतैं आत्माविषै मिथ्याबन्ध प्रतीत होवै । सो सिद्धान्तमैं आत्मासैं भिन्न कोई सत्यवस्तु है नहीं, यातैं सत्यबन्धके ज्ञानजन्य संस्कारका अभाव होनैतै आत्माविषै बन्धका अध्यास बनै नहीं ॥

॥ ४८ ॥ २ बन्धके अध्यासमैं प्रमेयके दोषकी असिद्धि ॥

तैसैं आत्माका औ बन्धका सादृश्य बी है नहीं । उलटा तमप्रकाशकी न्याई विपरीत स्वभाव है ॥

१ आत्मा प्रत्यक् है औ बंध पराक् है । प्रत्यक् नाम अंतरका है औ पराक् नाम बाह्यका है ॥

२ आत्मा विषयी है औ बंध विषय है । जो प्रकाश करनैवाला होवै सो विषयी कहिये है ॥ जाका प्रकाश करिये सो विषय कहिये है ॥

१ प्रत्यक्‌विषै पराक्‌का तथा पराक्‌विषै प्रत्यक्‌का अध्यास होवै नहीं । जैसैं पुत्रादिकनकी अपेक्षातैं देह प्रत्यक् है । ताके विषै पुत्रादिकनका औ पुत्रादिक विषय देहका अध्यास होवै नहीं ॥ औ—

२ विषयमैं विषयीका तथा विषयीमैं विषयका अध्यास होवै नहीं । जैसैं विषय जो घटादिक तिनविषै विषयी दीपकका औ दीपकविषै घटादिकनका अध्यास होवै नहीं ॥

तैसैं सादृश्यके अभाव होनेतैं प्रत्यक् विषयी जो आत्मा ताविषै पराक्‌विषयरूप बन्धका अध्यास बनै नहीं ॥

प्रत्यक्‌का औ पराक्‌का विरोध है । विषयका औ विषयीका विरोध है । सादृश्य नहीं । यातैं बन्धका अध्यास आत्माविषै बनै नहीं ॥

॥४९॥ ३-४ बन्धके अध्यासमैं प्रमातादिक दोषकी असिद्धि ॥

तैसैं प्रमाताके दोषका औ प्रमाणके दोषका बी अभाव है । काहेतैं ? "प्रमातासैं आदि लेके सर्व प्रपंच अध्यासरूप है, सोई बन्ध है।" यह वेदांतका सिद्धान्त है ॥ इस रीतिसैं बंधके अध्याससैं पूर्व प्रमाताप्रमाणका स्वरूप असिद्ध है औ ताका दोष बी असिद्ध हैं। यातैं बन्धका अध्यास बनै नहीं ॥

॥ ५० ॥ ५ बन्धके अधिष्ठान ब्रह्मका विशेषरूपसै अज्ञान बनै नहीं ॥

औ अधिष्ठानका विशेषरूपकरिके अज्ञान बी बनै नहीं । काहेतैं ? जो बन्धका अधिष्ठान ब्रह्म है सो स्वयंप्रकाश ज्ञानरूप है । ता स्वयंप्रकाशज्ञानरूप ब्रह्मविषै सूर्यविषै तमकी न्यांई अज्ञान बनै नहीं ॥ जैसैं प्रकाशमान सूर्यसैं तमका विरोध है तैसैं चेतनप्रकाश औ तमरूप अज्ञानका परस्पर विरोध है ॥ औ—

अधिष्ठानका अज्ञान अंगीकार करैं तौ बी बन्धका अध्यास बनै नहीं । काहेतैं ? अत्यन्त अज्ञातविषै तथा अत्यन्त ज्ञातविषै अध्यास होवै नहीं, किन्तु विशेषरूपसैं अज्ञात औ सामान्यरूपसैं ज्ञातविषै होवै है ॥ औ ब्रह्म सामान्यविशेषभावसैं रहित है । निर्विशेष है । यह

॥ ७९ ॥ ब्रह्मचैतन्यसैं भिन्न अज्ञानं औ ताका कार्य स्थूलसूक्ष्मप्रपंच यह सर्व चेतनविषै अध्यस्त हैं । याहीके अन्तर्गत अंतःकरणरूप प्रमाता औ इंद्रियरूप प्रमाण हैं। यातैं वे बी अध्यस्त हैं ॥ तातैं प्रपंचके अध्यासतैं पूर्व सिद्ध नहीं । यह उपनिषदनका निर्णीत अर्थरूप सिद्धांत है ॥

सिद्धान्त है। यातैं विशेषरूपसैं अज्ञात औ सामान्यरूपसैं ज्ञात ब्रह्म बनै नहीं ॥ औ---

अध्यासके लोभसैं ब्रह्मविषै सामान्यविशेषभाव अंगीकार करौगे तौ सिद्धान्तका त्याग होवैगा ॥

इस रीतिसैं निर्विशेष जो प्रकाशरूप ब्रह्म ताका विशेषरूपसैं अज्ञान औ सामान्यरूपसैं ज्ञानका अभाव होनेतैं ताके विषै अध्यास बनै नहीं। यातैं ब्रह्मविषै बन्ध अध्यासरूप है। यह कहना बनै नहीं। किंतु बन्ध सत्य है ॥ता सत्यबन्धकी ज्ञानसैं निवृत्तिका असंभव है। यातैं ज्ञानद्वारा मोक्षरूप ग्रंथका प्रयोजन बनै नहीं। औ ज्ञानसैं मोक्षका प्रतिपादक जो सिद्धांत सो समीचीन नहीं, किंतु कर्मसैं मोक्ष होवै है। यह वार्ता एकभविकवादकी रीतिसैं प्रतिपादन करै हैं--

॥ ५१ ॥ केवलकर्मसैं मोक्षकी सिद्धि (एकभविकवाद) ॥५१-५८ ॥

॥ दोहा ॥

सत्यबंधकी ज्ञानतैं,
नहीं निवृत्ति सयुक्त ।
नित्यकर्म संतत करै,
भयो चहै जो मुक्त ॥ ८ ॥

टीकाः-सत्यबंधकी ज्ञानसैं निवृत्ति माननी सयुक्त कहिये युक्तिसहित नहीं, किंतु अयुक्त है। यातैं जो पुरुष मुक्त हुवा चाहै सो संतत कहिये निरंतर नित्यकर्म करै। याका यह अभिप्राय हैः-

॥ ५२ ॥ कर्म दो प्रकारका है, १ एक विहित है औ २ एक निषिद्ध है ॥

१ पुरुषकी प्रवृत्तिके निमित्त जाका स्वरूप वेदनैं बोधन किया है सो विहितकर्म कहिये है ॥ औ---

२ पुरुषकी निवृत्ति जासैं बोधन करी है सो निषिद्धकर्म कहिये है। औ---

स्वभावसिद्ध जो क्रिया है सो कर्म नहीं। काहेतैं ? जो वेदने प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिके निमित्त बोधन किया है सो कर्म कहिये है ॥ उदासीनक्रिया कर्म नहीं । यातैं दो प्रकारका कर्म है। तीन प्रकारका नहीं ॥

॥ ५३ ॥ विहितकर्म चारि प्रकारका है। १ एक प्रायश्चित्त है। २ काम्य है। ३ नैमित्तिक है औ ४ नित्य है ॥

१ पापनाशके निमित्त विधान किया जो कर्म सो प्रायश्चित्त कहिये है ॥ जैसैं प्रमादसैं द्रव्यके ग्रहणजन्य जो यतिकूं पाप, ताके नाशके निमित्त द्रव्यका त्याग औ तीनि उपवास हैं ॥

२ फलके निमित्त विधान किया जो कर्म सो काम्य कहिये है ॥ जैसैं वृष्टिकामकूं कारीरी-

---

॥ ८० ॥ जाका वेदविषै विधान औ निषेध किया नहीं, ऐसी जो रागद्वेषसैं रहित स्वाभाविक गमनशौचादिरूप क्रिया सो उदासीनक्रिया है ॥

॥ ८१ ॥ अवश्य करनै योग्य कार्यका विस्मरण प्रमाद कहिये है। वा शास्त्रसैं करनैकूं योग्य होवै औ जाके करनैकी इच्छा बी होवै तिस कार्यका जो न करना, सो प्रमाद कहिये है ॥ जैसैं यति जो संन्यासी ताकूं द्रव्यका अग्रहण शास्त्रने विधान किया है औ आपकूं अग्रहणके करनैकी इच्छा बी है। फेर ताका न करना (द्रव्यका ग्रहण करना) सो प्रमाद है ॥

॥ ८२ ॥ स्वदेशविषै वृष्टिकी कामनावाला राजा अपनी प्रजासैं धनका विभागरूप कर लेके जो याग करता है, सो; किंवा वंशवृक्षके अंकुर करीर हैं, तिनके होमकरि जो याग होवै सो कारीरीयाग कहिये है॥

याग है और स्वर्गकामकूं अग्निहोत्रसोमयागसैं आदि लेके हैं ॥

३ जा कर्मके नहीं कियेसैं पाप होवै औ कियेसैं पुण्यपापरूप फल होवै नहीं औ सदा जाका विधान नहीं, किंतु किसी निमित्तकूं लेके विधान किया होवै, सो कर्म नैमित्तिक कहिये है ॥ जैसैं ग्रहणश्राद्ध है। औ अवस्थावृद्ध, जातिवृद्ध, आश्रमवृद्ध, विद्यावृद्ध, धर्मवृद्ध, ज्ञानवृद्ध पुरुषनके आगमनतैं उत्थानरूप कर्म हैं। विद्याशब्दसैं शास्त्रज्ञानका ग्रहण है। औ ज्ञान-शब्दसैं अपरोक्षविद्याका ग्रहण है। पूर्वपूर्वसैं उत्तरउत्तर उत्तम हैं ॥

४ जाके नहीं कियेसैं पाप होवै, कियेसैं फल होवै नहीं औ सदा जाका विधान होवै, सो नित्यकर्म कहिये है। जैसैं स्नानसंध्यादिक हैं॥

इसरीतिसैं च्यारिप्रकारका विहित औ निषिद्ध मिलिके पांच प्रकारका कर्म है ॥

॥ ५४ ॥ मोक्षकी इच्छावान् काम्य और निषिद्धकर्म करै नहीं। काहेतैं ? काम्यकर्मसैं उत्तमलोककूं जावै हैं औ निषिद्धसैं नीचलोककूं जावै हैं। यातैं दोनूंको त्याग करै औ नित्यकर्म सदा करै औ नैमित्तिकका जब निमित्त होवै तब नैमित्तक बी करै। काहेतैं ? नित्यनैमित्तिक कर्म नहीं करै तौ पाप होवैगा, ता पापसैं नीचयोनिकूं प्राप्त होवैगा, यातैं पापके रोकनेवास्तै नित्यनैमित्तिककर्म करै। नित्य-नैमित्तिककर्मका और फल नहीं। यही फल है:— जो तिनके नहीं करनेसैं पाप होवै है सो तिनके

॥ ८३ ॥ याका यह अर्थ है:—

१ अवस्थावृद्धतैं जातिवृद्ध कहिये वर्णवृद्ध उत्तम है ॥ औ

२ केवल वर्णवृद्धतैं अवस्थावृद्ध औ वर्णवृद्ध उत्तम है ॥ औ

३ अवस्था वृद्ध वर्णवृद्ध दोनूतैं आश्रमवृद्ध उत्तम है ॥ औ

४ केवल आश्रमवृद्धतैं अवस्थावृद्ध, आश्रमवृद्ध उत्तम है ॥ औ

५ अवस्थावृद्ध, आश्रमवृद्ध, वर्णवृद्ध इन तीनोंतैं विद्यावृद्ध उत्तम है ॥ औ

६ केवल विद्यावृद्धतैं अवस्थावृद्ध विद्यावृद्ध उत्तम हैं ॥ औ

७ अवस्थावृद्धविद्यावृद्धतैं वर्णवृद्धविद्यावृद्ध उत्तम हैं ॥ औ

८ वर्णवृद्धविद्यावृद्धतैं आश्रमवृद्धविद्यावृद्ध उत्तम हैं ॥ औ

९ अवस्थावृद्ध, वर्णवृद्ध, आश्रमवृद्ध अरु विद्यावृद्धतैं धर्मवृद्ध उत्तम है ॥ औ

१० अवस्थावृद्धधर्मवृद्धतैं वर्णवृद्धधर्मवृद्ध उत्तम हैं ॥ औ

११ वर्णवृद्धधर्मवृद्धतैं आश्रमवृद्धधर्मवृद्ध उत्तम है ॥ औ

१२ आश्रमवृद्धधर्मवृद्धतैं विद्यावृद्धधर्मवृद्ध उत्तम है ॥ औ

१३ अवस्थावृद्धतैं लेकै धर्मवृद्ध पर्यंत इन सर्वतैं ज्ञानवृद्ध उत्तम है ॥ तिनमैं बी

१४ केवलज्ञानवृद्धतैं अवस्थावृद्धज्ञानवृद्ध उत्तम है औ ॥

१५ अवस्थावृद्धज्ञानवृद्धतैं वर्णवृद्धज्ञानवृद्ध उत्तम है ॥ औ

वर्णवृद्धज्ञानवृद्धतैं आश्रमवृद्धज्ञानवृद्ध उत्तम है ॥ औ

१७ आश्रमवृद्धज्ञानवृद्धतैं विद्यावृद्धज्ञानवृद्ध उत्तम है औ

१८ विद्यावृद्धज्ञानवृद्धतैं धर्मवृद्धज्ञानवृद्ध उत्तम है ॥

इहां धर्मशब्दसैं शास्त्रोक्त अर्थके अनुष्ठानका ग्रहण है औ विद्यावृद्धशब्दसैं अधिकशास्त्राभ्यासवान्का ग्रहण है औ ज्ञानवृद्धशब्दसैं ज्ञाननिष्ठाविषै अधिक आरूढका ग्रहण है ॥

करनेसैं होवै नहीं। यातैं मुमुक्षु नित्यनैमित्तिक कर्म अवश्य करै ॥

॥ ५५ ॥ और जो कदाचित् प्रमादसैं निषिद्धकर्म होयँ जावै तो ताका दोष दूरि करनेकूं प्रायश्चित्त करै ॥ जो निषिद्धकर्म नहीं किया होवै तौ बी जन्मांतरके जो पाप हैं तिनके दूरि करनैवास्तै प्रायश्चित्तकर्म करै। परंतु इतना भेद है:--प्रायश्चित्त दो प्रकारका है॥१ एक तौ असाधारण है औ २ एक साधारण है ॥

१ जो किसी पापविशेषके दूरि करनैवास्तै शास्त्रनै विधान किया होवै सो असाधारण प्रायश्चित्त कहिये है। जैसैं पूर्व कह्या उपवास है ॥ औ----

२ सर्वपापके दूरि करनैवास्तै शास्त्रनै जो विधान किया कर्म सो साधारणप्रायश्चित्त कहियेहै। जैसैं गंगास्नान औ ईश्वरके नामका उच्चारण है ॥ इसतैं आदि लेके और बी जानि लेनै ॥

इस रीतिसैं दो प्रकारके प्रायश्चित्त हैं ॥

१जो ज्ञातपाप होवै तौ तिस पापका नाशक जो असाधारणप्रायश्चित्त शास्त्रनै बोधन किया है ताकूं करै ॥ औ--

२ जो जन्मांतरके अज्ञातपाप हैं तिनके दूरि करनैवास्तै साधारणप्रायश्चित्त करै। काहेतैं ?

१ असाधारणप्रायश्चित्तका यह स्वभाव है:--जा पापका नाश करनैवास्तै शास्त्रनै जो प्रायश्चित्त विधान किया है सो पाप प्रायश्चित्तसैं दूरि होवै है। और नहीं॥ औ--

२ जन्मांतरके पापका ऐसा ज्ञान है नहीं, जो कौनसा पाप है, किस प्रायश्चित्तसैं दूरि होवैगा। यातैं साधारणप्रायश्चित्त करै ॥

॥ ५६ ॥ साधारणप्रायश्चित्तसैं सर्वपाप दूरि होवै हैं ॥ यद्यपि गंगास्नानसैं आदि लेके जो साधारणप्रायश्चित्त कहे सो केवलप्रायश्चित्तरूप नहीं। किंतु १ काम्यरूप औ २ प्रायश्चित्तरूप हैं। काहेतैं ? (१) "गंगास्नानसैं उत्तमलोककी प्राप्ति" शास्त्रमैं कही है ॥ तैसैं "ईश्वरके नाम-उच्चारणसैं बी उत्तमलोककी प्राप्ति" कही है ।यातैं काम्यरूप हैं ॥ औ (२) पापके नाशक हैं। यातैं प्रायश्चित्तरूप हैं।

जैसैं अश्वमेध ब्रह्महत्यादिक पापका नाशक है औ स्वर्गकी प्राप्तिरूप फलका हेतु है। तैसैं गंगास्नानादिक हैं । केवलप्रायश्चित्त नहीं, यातैं गंगास्नानादिकनतैं उत्तमलोककी प्राप्ति होवै है । सो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं । तथापि जाकूं उत्तमलोककी वांछा है ताकूं तौ गंगास्नानादिक पापनाशकरिके उत्तमलोककूं प्राप्त करै है ॥ जाकूं लोककी कामना नहीं है, ताके केवलपापहीके नाशक हैं । यातैं कामनासहित अनुष्ठान किये काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं ॥ लोककामनासैं विना अनुष्ठान किये केवल प्रायश्चित्तरूप हैं ॥

जैसैं वेदांतमतमैं संपूर्णकर्म सकामपुरुषकूं संसारके हेतु हैं औ निष्कामकूं अंतःकरणकी शुद्धिकरिके मोक्षके हेतु हैं । तैसैं एक ही गंगास्नान तथा ईश्वरका नामउच्चारण सकामकूं तौ काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं औ निष्कामकूं केवलप्रायश्चित्तरूप है । यातैं मुमुक्षु साधारण प्रायश्चित्त करै ॥

इस रीतिसैं जन्मांतरके संपूर्ण पापका ज्ञानसैं विना ही नाश होवै है ॥

॥५७॥ तैसैं मुमुक्षुके जन्मांतरके काम्यकर्म बी वंध्याके समान हैं, फलके हेतु नहीं । काहेतैं ? जैसैं कर्मके अनुष्ठानकालविषै पुरुषकी इच्छा फलका हेतु वेदांतमतमैं अंगीकार करी है ॥ इच्छासहित अनुष्ठान किये कर्म

स्वर्गादिफलके हेतु हैं औ निष्काम अनुष्ठान किये स्वर्गादिफलके हेतु नहीं। यह वेदांतका सिद्धांत है ।

तैसैं[८४] कर्मकी सिद्धिसैं अनंतर बी पुरुषकी इच्छा फलका हेतु है । सो पुरुषकी इच्छा जिस कालमैं पुरुष मुमुक्षु हुवा तब दूरि होइ गई। यातैं जन्मांतरके काम्यकर्म बी फलके हेतु नहीं ॥ जैसैं किसी पुरुषनै धनकी प्राप्तिकी इच्छातैं धनी पुरुषका आराधन किया होवै, ता धनीके आराधनसैं अनंतर बी जो धनकी इच्छा दूरि होय जावै तौ धनकी प्राप्तिरूप फल होवै नहीं ॥ तैसैं जन्मांतरके काम्यकर्मका बी मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावतैं फल होवै नहीं।

इस रीतिसैं केवलकर्मसैं मोक्ष होवै है ॥

॥ ५८ ॥ १ वर्त्तमानजन्मविषै काम्य औ निषिद्ध किये नहीं । जातैं ऊर्ध्वलोकअधोलोककूं जावै ॥ जन्मांतरके प्रारब्ध जो निषिद्ध औ काम्य तिनका भोगसैं नाश होवै है ॥ नित्य औ नैमित्तिकके नहीं करनैतैं जो पाप होवै सो तिनके करनैतैं मुमुक्षुकूं होवै नहीं ॥ औ जन्मांतरके संचित जो निषिद्ध हैं तिनका साधारणप्रायश्चित्तसैं नाश होवै है ॥ जन्मांतरका संचितकाम्यकर्म मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावतैं फल देवै नहीं । यातैं मुमुक्षु नित्य-नैमित्तिक औ साधारणप्रायश्चित्तरूप कर्म करै औ वर्तमानजन्मका ज्ञातनिषिद्धकर्म होवै तौ असाधारणप्रायश्चित्त करै ॥

२ अथवा नित्य औ नैमित्तिक ही करै । प्रायश्चित्त नहीं करै। काहेतैं ? जो संचितानिषिद्ध-कर्म औ काम्यकर्म सो मुमुक्षुके नाश होय जावै हैं ॥ जैसैं ज्ञानवान्के संचितकर्मका नाश वेदांतमतमैं अंगीकार किया है तैसैं निषिद्ध-काम्यका त्यागकरिके नित्यनैमित्तिक कर्मविषै वर्त्तमान जो मुमुक्षु ताके संचितकर्मका नाश होवै है ॥

३ अथवा संचित जो काम्य औ निषिद्ध सो सारे मिलिके एक जन्मका आरंभ करै हैं । यातैं मुमुक्षुकूं एक जन्म और होवै है ।

४ अथवा योगीके कायव्यूहकी न्यांई एक ही कालविषै सारे संचित अनंतशरीरनका आरंभ करै हैं। तिनतैं मुमुक्षु उत्तरजन्मविषै सर्वका फल भोग लेवै है ।

५ अथवा नित्य औ नैमित्तिककर्मके अनुष्ठानतैं जो क्लेश होवै है सो जन्मांतरके संचित-निषिद्धकर्मका फल है, यातैं जन्मांतरका संचित-निषिद्ध और जन्मका आरंभ करै नहीं ॥ काम्य

॥ ८४ ॥ "तैसैं" कहिये हमारे एकभविकवादीके सिद्धांतमैं ॥

॥ ८५ ॥ साधारणप्रायश्चित्त औ असाधारणप्रायश्चित्तके करनैविषै बहुत श्रम देखिके मुमुक्षुकूं स्वमतमैं अरुचि होवैगी । या अभिप्रायसैं एकभविकवादी अन्य सुगम प्रकार कहै है ॥

॥ ८६ ॥ "नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" ॥ अर्थः–सौकोटिकल्पों करिके बी अज्ञानीका कर्म भोग विना नाश होता नहीं, किंतु किया जो शुभअशुभकर्म सो अवश्य भोगनैकूं योग्य है ॥ जो भोग विना कर्मका नाश मानैं तौ उक्तशास्त्रवचनका विरोध होवैगा। ताके निवारणअर्थ अन्यपक्ष कहै है ॥

॥ ८७ ॥ अनन्तविलक्षणजन्मोंके कारण अनंतकर्मनका फल एकजन्मविषै संभवै नहीं । या शङ्काके लिये अन्यपक्ष कहै हैं ॥

॥ ८८ ॥ योगीके काय कहिये शरीरनका व्यूह कहिये समूह ताकी न्यांई एककालमैं बी अनंतप्रकारके जन्मकरि अनंतप्रकारके सुखकी न्यांई अनंतप्रकारके दुःख बी उत्तरजन्मविषै भोगनै पडैंगे। इस भयसे मुमुक्षुकी या मतमें अप्रवृत्ति होवैगी। या अभिप्रायसैं एकभविकवादी उत्तरजन्म विषै मुमुक्षुकूं केवलसुखका भोग दिखायके स्वमतमें रुचि उपजावता है ॥

जो संचित है सो एकजन्म अथवा एककालमैं अनंतशरीरनका आरंभ करै है। यातैं मुमुक्षुकूं उत्तरजन्मविषै दुःखका लेश बी होवै नहीं। केवलसुखका भोग होवै है। काहेतैं? जन्मांतरके संचित जो विहितकर्म हैं तिनतैं शरीर हुआ है औ संचित जो निषिद्ध हैं सो नित्यनैमित्तिकके अनुष्ठानके क्लेशतैं पूर्वजन्मविषै भोगि लिये ॥

इस रीतिसैं प्रायश्चित्तसैं विना केवल नित्य औ नैमित्तिककर्मके अनुष्ठानतैं मोक्ष होवै है। यातैं नैमित्तिककर्मके समय नैमित्तिक अनुष्ठान करै। औ नित्यकर्म संतत अनुष्ठान करै ॥ या मतकूं शास्त्रमैं एँकभविकवाद कहै हैं ॥

॥ ५९ ॥ बंधनिवृत्ति ज्ञानद्वारा ग्रंथका प्रयोजन नहीं ॥

यातैं बी बंधकी निवृत्ति ज्ञानद्वारा ग्रंथका प्रयोजन नहीं। काहेतैं ? जो वस्तु औरसैं होवै नहीं सो मुख्यप्रयोजन होवै है ॥ जैसैं रूपका ज्ञान नेत्र विना औरसैं होवै नहीं सो रूपज्ञान नेत्रका प्रयोजन है । औ बंधकी निवृत्ति ग्रंथसैं विना कर्मतैं होवै है। यातैं बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन नहीं ॥

इस रीतिसैं ग्रंथके अधिकारी विषय प्रयोजन बनैं नहीं ॥

॥ ६० ॥ ॥ संबंधखंडन (४) ॥

॥ पूर्वपक्ष ॥

अधिकारी आदिकोंके अभावतैं संबंध बी बनै नहीं। काहेतैं ?

१ विषयके अभावतैं ग्रंथका औ विषयका प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसंबंध बनै नहीं ॥
२ अधिकारी औ फलके अभावतैं तिनका प्राप्यप्रापकभावसंबंध बनै नहीं ॥
३ अधिकारीके अभावतैं ताका औ विचारका कर्तृकर्तव्यभावसंबंध बनै नहीं ॥
४ ज्ञानकूं निष्फलता होनैंतैं ग्रन्थका औ ज्ञानका जन्यजनकभावसंबंध बनै नहीं ॥ सफलवस्तु जन्य होवै है । पूर्व कही रीतिसैं ज्ञान सफल है नहीं ॥ औ—

५ ज्ञानके स्वरूपका बी अभाव है । यातैं बी ज्ञानकां औ ग्रन्थका संबंध बनै नहीं । काहेतैं? जीवब्रह्मके अभेद निश्चयका नाम सिद्धांतमैं ज्ञान है॥ सो अभेदनिश्चय बनै नहीं। काहेतैं ? जीवब्रह्मका अभेद है नहीं। यह वार्ता विषयके निराकरणमैं पूर्व प्रतिपादन करी है । यातैं अभेदनिश्चयरूप ज्ञान बनै नहीं ॥

इस रीतिसैं अधिकारीआदिक अनुबन्धनके अभावतैं ग्रन्थका आरम्भ बनै नहीं ॥

॥अथ पूर्वपक्षीक्रमतैं उत्तर॥६१-९३॥

॥६१॥अधिकारीमंडन(१)॥६१-७१॥

॥ अंक ३४-३६ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ६१-६३ ॥

(मोक्षकी प्रथमअंशकी इच्छा बनै है)

पूर्वपक्षीनैं प्रथम कह्या " जो मोक्षकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं। काहेतैं ? मोक्षविषै दोअंश हैंः— १एक तौ कारणसहित जगत्की निवृत्ति मोक्षका अंश है। औ २ दूसरा अंश ब्रह्मकी प्राप्तिरूप है ॥ तिनाविषै कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथमअंशकी इच्छा काहूकूं है नहीं। किंतु तीन प्रकारके दुःखकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वपुरुषनकूं है, सो दुःखकी निवृत्ति अपनै अपनै उपायनतैं होय जावै है। यातैं मूलसहित

॥ ८९ ॥ एक भविक कहिये एकजन्मका अथवा मोक्षके साधन एकही कर्मका, वाद कहिये कथन, सो एकभविकवाद शब्दका अर्थ है ॥

जगत्की निवृत्तिकी इच्छावाला मुमुक्षु अधिकारी बनै नहीं " ताका–

॥ ६२ ॥ समाधान प्रथम कहै हैं ॥

॥ दोहा ॥

मूलसहित जगहानि विन,
है न त्रिविधदुःख–ध्वंस ।
यातैं जन चाहत सकल,
प्रथम मोछको अंस ॥ ९ ॥

टीकाः––मूल कहिये जगत्का कारण जो अज्ञान औ जगत्के नाश विना तीन प्रकारके दुःखका और उपायनतैं ध्वंस कहिये नाश होवै नहीं, औ मूलअविद्याके नाशतैं सर्वदुःख औ दुःखके कारण रोगादिक औ रोगादिकनके आश्रय शरीरादिकनका नाश होवै है । यातैं त्रिविध दुःखके नाशके निमित्त कारणसहित जगत्की निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकूं सकल पुरुष चाहै हैं ।

तात्पर्य यह है:–जो सर्व औषधआदिक उपाय करनैविषै समर्थ हैं, तिनके बी दुःख नियमकरि दूरि होवै नहीं । काहू पुरुषका रोगादिजन्य दुःख औषधादिक उपायनतैं नाश होवै है औ काहूके दुःखका औषधादिक उपायनतैं नाश होवै नहीं । यातैं औषधआदिक उपायनतैं रोगादिजन्य दुःखकी नियमकरिके निवृत्ति होवै नहीं । औ जाके औषधादिक उपायनतैं दुःखकी निवृत्ति होवै है ताके बी दुःखकी उत्पत्ति फेरि होवै है । यातैं औषधआदिक उपायनतैं दुःखकी अत्यंत निवृत्ति होवै नहीं । जाकी निवृत्ति हुई है ताकी फेरि उत्पत्ति नहीं होवै । सो अत्यन्तनिवृत्ति कहिये है । औषधआदिक उपायनतैं दुःखकी निवृत्ति नियमकरिके होवै नहीं औ निवृत्ति जो दुःख ताकी फेरि बी उत्पत्ति होवै है । यातैं अत्यन्तनिवृत्ति बी तिन उपायनतैं होवै नहीं ॥ औ–

दुःखके सकलसाधनका नाश होवै तौ सकल दुःखकी नियमकरिके निवृत्ति होवै औ दुःखके साधनका नाश हुयेतैं फेरि दुःख होवै नहीं, यातैं दुःखकी निवृत्तिके निमित्त दुःखके साधनकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वकूं होवै है ॥

॥६३॥ सो दुःखका साधन अज्ञान औ ताका कार्य प्रपंच है । यह वार्ता छांदोग्य-उपनिषद्में भूमविद्याविषै प्रसिद्ध है ॥ तहां यह प्रसंग है:–एक समय सनत्कुमारके पास नारद प्राप्त हुए ॥ औ–

नारदनैं कह्याः–" हे भगवन्!जो आत्मज्ञानी पुरुष है ताकूं शोक नहीं होवै है औ मैं शोकसहित हूं,यातैं मैं अज्ञानी हूं । मेरेकूं ऐसा उपदेश करो जासैं मेरा अज्ञान दूरि होवै " ॥

तब सनत्कुमारनैं नारदकूं कह्याः––" हे नारद! भूमा शोकरहित है,सुखरूप है औ भूमासैं भिन्न सकल तुच्छ है औ दुःखका साधन है"॥

भूमा नाम ब्रह्मका है ॥

इस रीतिसैं ब्रह्मसैं भिन्न जो वस्तु, सो सकल दुःखका साधन कहै हैं । अज्ञान औ ताका कार्य ब्रह्मसैं भिन्न है । यातैं दुःखका साधन है॥ताकी निवृत्ति हुयेसैं सर्वदुःखकी नियमकरिके अत्यंत-

॥ ९० ॥ जैसैं कफकारक पदार्थके त्याग विना कफरोगकी निवृत्ति होवै नहीं, यातैं कफनिवृत्तिका इच्छु " मैं वैद्यसैं जानिके कफकारकपदार्थका त्याग करूगा" ऐसैं कफके साधनकी निवृत्तिकूं इच्छता है । तैसैं दुःखके साधनकी निवृत्ति विना दुःखकी निवृत्ति होवै नहीं । यातैं दुःखकी निवृत्तिका इच्छु पुरुष "मैं शास्त्रगुरुसैं जानिके दुःखके साधनका त्याग करूंगा" ऐसैं दुःखके साधनकी निवृत्तिकूं बी इच्छता है॥

निवृत्ति बनै है। यातैं सकलदुःखकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिरूप मोक्षके प्रथम अंशकी चाह बनै है ॥ ९ ॥

॥६४॥ अंक ३७-३८ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ६४-६५ ॥

(मोक्षके द्वितीय अंशकी इच्छा बनै है)

और जो पूर्वपक्षनैं(अंक ३७ मैं)कह्याः- "जा वस्तुका अनुभव किया होवै, ताकी प्राप्तिकी इच्छा होवै है। ब्रह्मका अनुभव काहूनै किया है नहीं। यातैं ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्षके द्वितीय अंशकी इच्छा काहूकूं होवै नहीं"। ताका—

समाधान[९१] कहै हैं।

॥ दोहा ॥

किय अनुभव सुखको सबहि,
ब्रह्म सुन्यो सुखरूप।
ब्रह्मप्राप्ति या हेतुतैं,
चहत विवेकी भूप ॥ १० ॥

टीकाः--सर्वपुरुषनैं सुखका अनुभव किया है। यातैं सुखकी इच्छा सर्वकूं है औ "ब्रह्म नित्यसुखरूप है" ऐसा सत्शास्त्रमैं सुन्या है। यातैं विवेकी भूप कहिये उत्तमविवेकी सुखस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्तिकूं चाहै है ॥ १० ॥

॥ ६५ ॥ ॥ दोहा ॥

केवलसुख सब जन चहै,
नहीं विषयकी चाह।
अधिकारी यातैं बनै,
है जु विवेकी नाह ॥ ११ ॥

टीकाः-पूर्व (अंक ३८ मैं) कह्या जो "सर्व पुरुष विषयजन्य सुख चाहै हैं, सो विषयजन्य सुख मोक्षविषै प्राप्त होवै नहीं। किन्तु जगत्मैं प्राप्त

॥ ९१॥ इहां यह शंका हैः- जा वस्तुका पूर्व अनुभव किया होवै ताकी इच्छा होवै है। यह नियम है-ब्रह्मरूप अधिष्ठानके ज्ञानसैं अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिका अनुभव मुमुक्षुकूं पूर्व किसी कालविषै भया नहीं। यातैं ताकूं अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिकी इच्छा बनै नहीं। यह ९१ वें टिप्पण उक्त शंकाका **यह समाधान** हैः-अनुभव किये वस्तुकी इच्छा होवै है ऐसा नियम नहीं किंतु अनुभव किये वस्तुके सजातीयकी इच्छा होवै है। यह नियम है ॥ जो अनुभव किये वस्तुकी इच्छा होवै तौ भुक्त भोजनविषै फेरी इच्छा हुई चाहिये औ होती नहीं किंतु तिसके सजातीय ताके तुल्य वा तिसतैं विलक्षण अन्य भोजनकी इच्छा होवै है ॥ **जैसैं** अज्ञानसहित प्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है **तैसैं** कल्पित सर्पादिकनके अधिष्ठान रज्जुआदिक हैं यातैं वे अधिष्ठानताकरिकै परस्पर सजातीय हैं। अरु सर्पादिकनकी निवृत्ति औ अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्ति बी परस्पर सजातीय हैं ॥जातैं रज्जुआदिकके ज्ञानसैं सर्पादिकनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अनुभूत है, तातैं तिनके सजातीय ब्रह्मके ज्ञानसैं अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिकी इच्छा बनै है॥

॥ ९२ ॥ इहां यह रहस्य हैः- जो अनुभव किये वस्तुमात्रकी इच्छा होती होवै तौ अनुभव किये रोगादिनिमित्तसैं जन्य दुःख औ ताके साधन रोगादिरूप प्रतिकूल वस्तुकी बी इच्छा सर्वकूं हुई चाहिये औ होती नहीं। यातैं अनुभव किये सुख औ सुखके साधनरूप अनुकूलवस्तुकी इच्छा होवै है, तिनमैं बी अनुभव किये अनुकूल वस्तुके सजातीयकी इच्छा होवै है। **यह नियम है** ॥ जातैं बुद्धिविषै ब्रह्मानन्दके प्रतिबिंबरूप विषयसुखका अनुभव सर्वनैं किया है, ताका सजातीय बिंबभूत सुखरूप ब्रह्म शास्त्रमें सुन्या है यातैं ब्रह्मके प्राप्तिकी इच्छा बनै है ॥

होवै है । यातैं मोक्षकी इच्छावान् अधिकारीके अभावतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है" ॥

ताकूं यह पूछे हैं:-१ जो कोई मुमुक्षु नहीं है ? २ अथवा मुमुक्षु तौ है परंतु तिनकी ग्रंथविषे प्रवृत्ति होवै नहीं ?

१ जो ऐसै कहै:-"मुमुक्षु नहीं है" । सो बनै नहीं । काहेतैं ? सर्वपुरुष सर्व दुःखका नाश औ नित्यसुखकी प्राप्ति चाहै हैं ॥ सो सर्वदुःखका नाश औ सुखकी प्राप्तिरूप मोक्ष है, यातैं सर्वपुरुष मुमुक्षु हैं ॥

और कह्या जो "विषयजन्य सुख चाहै है"। सो नहीं । किंतु सुखमात्र चाहै हैं । सो सुख विषयसैं होवै अथवा विषय विना होवै ॥ जो विषयजन्य सुखकूं ही चाहै तौ सुषुप्तिके सुखकी इच्छा नहीं हुई चाहिये । सुषुप्तिका सुख विषयजन्य है नहीं; यातैं सुखमात्रकूं चाहै हैं ॥ केवल विषयजन्यकूं हीं नहीं । उलटा आत्म-सुखकूं चाहै हैं । विषयजन्यकूं नहीं चाहै हैं । काहेतैं ? सर्वपुरुषनकूं न्यून अथवा अधिकविषय-सुख प्राप्त बी है । परंतु ऐसी इच्छा सदा रहै है:--"हमारेकूं ऐसा सुख प्राप्त होवै, जा सुखका नाश कदै होवै नहीं" ॥ ऐसा सुख आत्मस्वरूप मोक्ष है । यातैं सर्व पुरुष मुमुक्षु हैं । "कोउ मुमुक्षु नहीं" ऐसा कहना बनै नहीं ॥

॥ ६६ ॥ मुमुक्षुकी सिद्धिसैं ग्रंथके आरंभकी सफलता ॥ ६६-६८ ॥

२ और जो ऐसै कहै:-"मुमुक्षु तौ हैं, परंतु ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं । यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है" ॥ ताकूं यह पूछे हैं:-(१) ग्रंथ मोक्षका साधन नहीं है। यातैं ग्रंथविषै प्रवृत्ति नहीं होवै ? (२) अथवा ग्रंथसैं और बी कोई साधन है, जाकेविषै प्रवृत्ति होनैतैं ग्रंथविषै प्रवृत्ति होवै नहीं? (३) अथवा जिन शमादिकनतैं ग्रंथमैं अधिकार कह्या, सो शमादिमान् ज्ञानके योग्य कोई अधिकारी नहीं है । यातैं ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं?

(१) जो ऐसै कहै:-"ग्रंथ मोक्षका साधन नहीं" सो वार्ता बनै नहीं । काहेतैं ? मोक्ष ज्ञानतैं नियमकरिके होवै है, यह वेदका सिद्धांत है ॥

सो ज्ञान श्रवणसैं होवै है, श्रवण दो प्रकारका है--(१) एक तौ वेदांतवाक्यका औ श्रोत्रका संयोगरूप है औ (२) दूसरा वेदांतवाक्यका विचाररूप है । ज्ञानका हेतु प्रथम श्रवण है । दूसरा नहीं । काहेतैं ? शब्दजन्यज्ञानविषै इंद्रियके साथ शब्दका संयोग ही सर्वत्र हेतु है । यातैं वेदांतवाक्यका औ श्रोत्रका संयोगरूप श्रवण ब्रह्मज्ञानका हेतु है । अवांतरवाक्यका श्रवण परोक्षज्ञानका हेतु है औ महावाक्यका श्रवण अपरोक्षज्ञानका हेतु है । यह वार्ता पूर्व प्रतिपादन करी है ॥

जाकूं ज्ञान हुवेतैं बी असंभावना औ विपरीतभावना होवै । सो १ दूसरा श्रवण, २ मनन औ ३ निदिध्यासन करै ॥

१ वेदांतवाक्यका विचाररूप जो श्रवण, तासूं वेदांतवाक्यविषै असंभावना दूरि होवै है ॥ "वेदांतवाक्य ब्रह्मके प्रतिपादक हैं अथवा और अर्थके प्रतिपादक हैं ?" ऐसा संशय वेदांत-वाक्यकी असंभावना है । सो तिनके विचारसैं दूरि होवै है ॥ औ--

॥९३॥ अंगअंगीभेदतैं श्रवण दो प्रकारका है ॥ तिनमैं द्वितीयश्रवण प्रथमश्रवणका उपकारक है यातैं सो अंग (साधन) श्रवण कहिये है औ प्रथमश्रवण उपकार्य है । यातैं अंगी (फल) श्रवण कहिये है ॥

२ मननसैं प्रमेयकी असंभावना दूरि होवै है । जीवब्रह्मकी एकता वेदांतका प्रमेय कहिये है । "सो एकता सत्य है अथवा जीव-ब्रह्मका भेद सत्य है ?" ऐसा जो संशय, सो प्रमेयकी असंभावना कहिये है । सो मननसैं दूरि होवै है ॥

३ विपरीतभावना निदिध्यासनतैं दूरि होवै है ॥

इस रीतिसैं प्रथम श्रवण तौ ज्ञानद्वारा मोक्षका हेतु है औ विचाररूप श्रवण औ मनन औ निदिध्यासन, ये असंभावना औ विपरीतभाव-नाकी निवृत्तिद्वारा मोक्षके हेतु हैं ॥

वेदांत नाम उपनिषद्का है, सो यद्यपि या ग्रंथतैं भिन्न है तथापि तिनके समान अर्थ-वाले भाषावाक्य या ग्रंथमैं हैं, तिनके श्रवणतैं बी ज्ञान होवै है । यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे ॥

इस रीतिसैं ज्ञानद्वारा ग्रंथ मोक्षका हेतु है औ विचाररूप औ मननरूप यह ग्रंथ है । यातैं असंभावनादोषकी निवृत्तिद्वारा मोक्षका हेतु है । यातैं " ग्रंथसैं मोक्ष होवै नहीं " यह केवल हठमात्र है ॥

॥ ६७ ॥ २ और जो ऐसे कहैः-"ग्रंथसैं मोक्ष तौ होवै है, परंतु और साधनसैं बी मोक्ष होवै है, यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है "। ताकूं यह पूछे हैं सो और साधन कौन हैं जातैं मोक्ष होवै है !

जो ऐसे कहैः-"उपनिषद् सूत्रभाष्यसैं आदि लेके संस्कृतग्रंथ जीवब्रह्मकी एकताके प्रति-पादक बहुत हैं, तिनसैं बी ज्ञानद्वारा मोक्ष होवै है । याका भिन्न अधिकारी नहीं । यातैं यह ग्रंथ निष्फल है" ॥

सो वार्ता यद्यपि सत्य है, तथापि तिनका अर्थ ग्रहण करनैविषै जाकी बुद्धि समर्थ नहीं है, ऐसा जो मुमुक्षु ताकूं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं । यातैं मंदबुद्धिमुमुक्षुकी तिनविषै प्रवृत्ति होवै नहीं । या ग्रंथविषै ही प्रवृत्ति होवैगी ॥

॥ ६८ ॥ ३ और जो ऐसे कहैः- "ग्रंथसैं मोक्ष बी होवै है औ संस्कृतग्रंथनसैं मंदबुद्धिकूं बोध बी होवै नहीं औ मुमुक्षु बी है तौ बी ग्रंथविषै प्रवृत्ति होवै नहीं । काहेतैं ? जो विवेक-वैराग्यशमादिमान अधिकारी कह्या । सो दुर्लभ है । यातैं अपनैविषै साधनका अभाव देखिके ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं "॥ ताकूं यह पूछे हैः-

(१) बहुत अधिकारी नहीं ? (२) अथवा कोई बी नहीं ?

(१) जो ऐसे कहैः-" बहुतअधिकारी नहीं ॥" सो तौ हम बी अंगीकार करैं हैं ॥औ-

(२) जो ऐसे कहैः-" कोई बी ज्ञानके योग्य अधिकारी नहीं " ॥ सो वार्ता बनैं नहीं । काहेतैं ? अंतःकरणविषै तीन दोष हैः-

(क) एक मल है । औ (ख) विक्षेप है औ (ग) स्वरूपका आवरण है ॥

॥ ९४ ॥ भाषाग्रन्थके श्रवणतैं बी ज्ञान होवै है, यह वार्ता आगे तृतीय तरंगके दशम दोहाविषै प्रतिपादन करैंगे ॥

॥ ९५ ॥ वेदका अन्तभागरूप जो वेदांत सो उपनिषद् कहिये है ॥ वे उपनिषद् अनेक (१०८) हैं॥तिनमैं ईश । केन । कठ । प्रश्न । मुंडक । माण्डूक्य । तैत्तिरीय । ऐतरेय । छान्दोग्य । बृहदारण्यक ये दश-उपनिषद्‌ मुख्य हैं तिनके ऊपर श्रीशंकराचार्य-स्वामीकृत भाष्य हैं ॥ इन १० उपनिषद्नका हिंदु-स्थानी भाषांतर हमने प्रकट किया है ॥ सूत्र औ भाष्यका लक्षण तौ पंचम औ षष्ठ टिप्पणविषैं लिख्या है ॥

(क) मल नाम पापका है । (ख) विक्षेप नाम चंचलताका है । औ (ग) आवरण नाम अज्ञानका है ॥

(क) शुभकर्मतैं मलदोष दूरि होवै है औ (ख) उपासनातैं विक्षेपदोष दूरि होवै है । (ग) ज्ञानतैं आवरणदोष दूरि होवै है ॥

जिनके अंतःकरणविषै मल औ विक्षेपदोष हैं सो अधिकारी नहीं बी हैं । परंतु इस जन्मविषै अथवा पूर्वजन्मविषै शुभकर्म औ उपासनाके अनुष्ठानतैं जिनके मल औ विक्षेपदोष नाश हुवे हैं । तैसे ज्ञानयोग्य अधिकारी हैं, तिनकी ग्रन्थमैं प्रवृत्ति बनै है ॥

॥ ६९ ॥ पामर औ विषयी पुरुषनका लक्षण ॥

औ जो ऐसे पूर्व कह्या:—(अंक ३८ का भाव) "सर्वकूं विषयसुखमैं अलंबुद्धि है । नित्य सुखकूं कोई चाहै नहीं." ॥

सो बनै नहीं । काहेतैं ? चारि प्रकारके पुरुष हैं:—१ पामर । २ विषयी । ३ जिज्ञासु । ४ मुक्त ॥

१ इस लोकके निषिद्ध औ विहितभोगनविषै आसक्त जो शास्त्रसंस्काररहित पुरुष, सो पामर कहिये है ।

२ शास्त्रके अनुसार विषयनकूं भोगता हुवा परलोकके अथवा इस लोकके भोगनके निमित्त जो कर्म करै सो विषयी कहिये है । औ—

॥ ७० ॥ जिज्ञासुका लक्षण ॥

३ ऐसा पुरुष जिज्ञासु कहिये है:—जा पुरुषकूं उत्तम संस्कारतैं सत्‌शास्त्रका श्रवण होवै ता उत्तमकूं ऐसा विवेक होवै है:—

(१) विषयसुख अनित्य हैं । जितना काल विषयसुख होवै है तब बी कोई दुःख अवश्य रहै है औ परिणाममैं विनाशी सुख दुःखका अवश्य हेतु है औ वर्त्तमानकालमैं बी नाशके भयतैं दुःख का हेतु है । इस रीतिसैं विषयसुख दुःखतैं ग्रस्या हुवा है, यातैं दुःखरूप है ॥ औ—

॥ ९६ ॥ १ कृतोपासन औ २ अकृतोपासनभेदतैं **अधिकार दो प्रकारका** है ॥ तिनमैं—

१ सगुण ब्रह्मकी संपूर्ण (चित्तकी एकाग्रतापर्यंत) उपासना जिस पुरुषनैं करी है सो **कृतोपासन** है ॥ ताकेविषै तौ शास्त्रोक्तसाधन सर्वप्रसिद्ध देखिये हैं ॥

२ जाके ज्ञानतैं पूर्व सगुणब्रह्मकी उपासना अपूर्व है सो पुरुष **अकृतोपासन** है । ताकेविषै सर्वसाधन प्रसिद्ध दीखते नहीं । किंतु कोई कोई साधन प्रसिद्ध दीखता है । और गौण रहते हैं, यातैं ताकूं चित्तकी एकाग्रताके अभावतैं ज्ञानके उत्पन्न भये पीछे विपरीतभावना रहती है । ताके निवारणअर्थ निदिध्यासन कर्तव्य है ॥

॥ ९७ ॥ १ उत्तम २ मध्यम औ ३ कनिष्ठभेदतैं **पामर तीन प्रकारका** है ॥

१ जो शास्त्रवेत्ता हुवा बी इस लोकके ही भोगनविषै आसक्त है, सो **उत्तमपामर** है ॥ औ—

२ जो अशास्त्रवेत्ता हुवा अन्यके मुखसैं श्रवण किये शास्त्रके अर्थविषै अविश्वासकरिके इस लोकके ही भोगनविषै आसक्त है सो **मध्यमपामर** है ॥ औ

३ जो सर्वथा शास्त्रसंस्काररहित होनेकरि इस लोकके ही भोगविषै आसक्त है, सो **कनिष्ठपामर** (अल्पपामर) है ॥

विषयी तीन प्रकारका है ॥

॥९८॥ १ जो वैकुंठ किंवा ब्रह्मलोकादिककी इच्छा करिके सकाम उपासनाविषै प्रवृत्त भया है, सो **उत्तमविषयी** है ॥ औ—

२ जो स्वर्गलोककी इच्छाकरिकें सकामकर्मविषै प्रवृत्त भया है, सो **मध्यमविषयी** है ॥ औ—

३ जो इसलोकगत राज्यादिभोगकी इच्छा करिके पुण्यकर्मविषै प्रवृत्त भया है, सो **कनिष्ठविषयी** है ॥

(२) दुःखकी निवृत्ति लौकिकउपायतैं होवै नहीं। काहेतैं ? जो उपाय करै हैं तिनके बी सारे दुःख निवृत्त होवैं नहीं औ निवृत्त हुवे बी फेरि होवै हैं ॥ औ—

(३) जितनै काल शरीर है तब पर्यन्त दुःखकी निवृत्ति संभवै बी नहीं। काहेतैं ? जो शरीर हैं सो सारे पुण्य औ पापसैं होवै हैं ॥

(१) मनुष्यशरीर तौ मिश्रितकर्मका फल प्रसिद्ध है। औ—

(२) देवशरीर बी मिश्रितकर्मका ही फल है ॥ जो केवलपुण्यका फल देवशरीर होवै तौ अपनैसैं अधिक अन्यदेवकी विभूति देखिके जो देवनकूं ताप होवै है सो नहीं हुवा चाहिये ॥ सर्वदेवनमैं प्रधान जो इंद्र ताकूं बी अनेक दैत्यदानवके भयजन्यदुःख शास्त्रमैं कह्या है ॥ जो देवशरीर केवल पुण्यका ही फल होवै तौ देवनकूं दुःख नहीं हुवाचाहिये। यातैं देवशरीर बी पुण्यपाप दोनोंका फल है औ जो श्रुतिमैं कह्या है:—"देवता पापरहित हैं"। ताका यह अभिप्राय है:—कर्मका अधिकार केवल मनुष्यशरीरमैं है औरमैं नहीं। यातैं देवशरीरमैं किया जो शुभ अथवा अशुभ तिनका फल देवनकूं होवै नहीं औ देवशरीरसैं पूर्वशरीरमैं किया जो शुभ औ अशुभ तिनका फल तौ देवशरीरमैं बी होवै है ॥ इस रीतिसैं देवशरीर मिश्रितकर्मका फल है ॥ औ—

(३) तिर्यक्पशुपक्षीका शरीर बी मिश्रित कर्मका फल है। काहेतैं ? जो तिनकूं प्रसिद्ध दुःख है सो तौ पापका फल है औ मैथुनादिकनका जो सुख है सो पुण्यका फल है।

(क)उदरसैं जो गमन करै सो तिर्यक् कहिये है ॥ (ख) पक्षसैं गमन करै सो पक्षी कहिये है ॥(ग)च्यारिपादसैं गमन करै सो पशु कहिये है॥(घ)कहूं पशुपक्षी बी तिर्यक् ही कहिये हैं॥ इस रीतिसैं सर्वशरीर पुण्य और पापसैं रचित हैं ॥

(१) कोई शरीर तौ न्यूनपाप औ अधिकपुण्यतैं रचित हैं। जैसैं देवशरीर हैं ॥ अपनेअपने जो पुण्य हैं, तिनहीतैं सर्वदेवनविषै पाप न्यून है। यातैं न्यूनपापअधिकपुण्यतैं रचित देवशरीर कहिये हैं। या अभिप्रायतैं ही शास्त्रमैं केवलपुण्यका फल देवशरीर कह्या है। यातैं विरोध नहीं। जैसैं बहुत ब्राह्मणतैं ब्राह्मणग्राम कहिये हैं तैसैं अधिकपुण्यका फल होनैतैं देवशरीर केवलपुण्यका फल कहिये हैं। परंतु केवलपुण्यका फल नहीं ॥

(२) तिर्यक्पशुपक्षीका शरीर अधिकपापन्यूनपुण्यसैं रचित है ॥

(३) जो उत्तममनुष्य हैं तिनकी देवनके समान रीति है और नीचनकी सर्पादिकनके समान है ॥

इस रीतिसैं सर्वशरीर पुण्यपापरचित हैं ॥ औ पापका फल दुःख है। यातैं शरीर रहे तबपर्यंत दुःखकी निवृत्ति होवै नहीं ॥

(१) सो शरीर धर्म और अधर्मका फल है। तिनकी निवृत्ति विना शरीरकी निवृत्ति होवै नहीं। काहेतैं ? वर्त्तमानशरीर दूरि हुयेसैं बी पुण्यपापतैं और शरीर होवैगा। यातैं पुण्यपापकी निवृत्ति विना शरीरकी निवृत्ति होवै नहीं ॥

॥ ९९ ॥ यामैं इतना भेद है:— परमेश्वरकी भक्ति, दया, सत्य औ ज्ञानआदिक शुभगुणनका तौ मनुष्यमात्रकूं अधिकार है। औ वर्णाश्रमके कर्मका तौ वर्णआश्रमवाले मनुष्यनकूं ही यथायोग्य अधिकार है। यातैं देव औ तिर्यक् पशु पक्षीकूं क्रमतैं सर्वज्ञता औ अज्ञतारूप हेतुतैं ज्ञानी औ बालककी न्यांई वर्त्तमानशरीरविषै किये शुभअशुभकर्मका फल अन्यजन्मविषै होता नहीं। यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥

(२) सो पुण्यपाप रागद्वेषके नाश विना दूरि होवै नहीं। काहेतें? वर्त्तमानपुण्यपापकी भोगसैं निवृत्ति हुवेसैं बी रागद्वेषतें और पुण्यपाप होवैंगे। यातें रागद्वेषकी निवृत्ति विना पुण्यपाप दूरि होवै नहीं॥

(३) सो रागद्वेष अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञानसैं होवै हैं॥ (क) जाविषै अनुकूलज्ञान होवै ताविषै राग होवै है। औ (ख) जाविषै प्रतिकूलज्ञान होवै ताविषै द्वेष होवै है।

यातें अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञानकी निवृत्ति विना रागद्वेषकी निवृत्ति होवै नहीं॥

(४) सो अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान भेदज्ञानसैं होवै है। काहेतें? जा वस्तुकूं अपनै स्वरूपतें भिन्न जानै ताकेविषै अनुकूलज्ञान अथवा प्रतिकूलज्ञान होवै है। अपनै स्वरूपमैं अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान होवै नहीं॥ (क) सुखके साधनका नाम अनुकूल है औ (ख) दुःखके साधनका नाम प्रतिकूल है॥

अपना स्वरूप सुखका अथवा दुःखका साधन नहीं। यद्यपि सुखरूप है तथापि सुखका साधन नहीं। यातें स्वरूपसैं भिन्न जो वस्तु जान्या है ताविषै अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान होवै है॥ इस रीतिसैं पदार्थनविषै अपनैसैं जो भेदज्ञान सो अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञानका हेतु है। ता भेदज्ञांनकी निवृत्ति विना अनुकूलज्ञानप्रतिकूलज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं॥

(५) सो भेदज्ञान अविद्याजन्य है। काहेतें? "संपूर्ण प्रपंच औ ताका ज्ञान स्वरूपके अज्ञानकालमैं है"। यह संपूर्णवेद अरु शास्त्रका ढँढोरा हैं। इस रीतिसैं संपूर्णदुःखका हेतु स्वरूपका अज्ञान है॥ सो स्वरूपका अज्ञान स्वरूपज्ञान विना दूरि होवै नहीं। काहेतें? जा वस्तुका अज्ञान होवै सो ताके ज्ञानसैं दूरि होवै है। जैसें रज्जुका अज्ञान रज्जुके ज्ञानसैं दूरि होवै है, औरसैं नहीं। यातें स्वरूपका ज्ञान ही अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा दुःखकी निवृत्तिका हेतु है॥ औ—

स्वरूपज्ञानसैं ब्रह्मकी प्राप्ति होवै है। सो ब्रह्म नित्य है औ आनन्दस्वरूप है। दुःखसंबंधसैं रहित है। यातें स्वरूपज्ञानसैं नित्य औ दुःखके संबंधसैं रहित जो ब्रह्मस्वरूप आनंद ताकी प्राप्ति बी होवै है॥

इस रीतिसैं दुःखकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिका हेतु स्वरूपज्ञान है। यातें स्वरूप जाननेकू योग्य है॥

ऐसा जाके विवेक होवै सो जिज्ञासु कहिये है॥

४ स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरतें भिन्न जो अपना स्वरूप ताका ब्रह्मरूपकरिके अपरोक्षज्ञान जाकूं होवै सो मुक्त कहिये है॥

इस रीतिसैं चारि प्रकारके पुरुष हैं॥ तिनविषै

॥ १०० ॥ अज्ञानरूप मूलके निवृत्ति भये ज्ञानीकूं जीवईश्वरका भेद औ ताके अंतर्गतजीवजीवका भेद, जीवजडका भेद औ जडजडका भेद औ जडईश्वरका भेद। ये पांचभेद वास्तव प्रतीत होते नहीं। किंतु कल्पित उपाधिकृत होनैतैं कल्पित प्रतीत होवै हैं। तातैं बाधितानुवृत्तिकरि दग्ध धान्यकी न्याईं अनुकूलप्रतिकूलज्ञान रागद्वेष (पंचक्लेश) औ शुभाशुभक्रिया प्रतीत होवै है। परंतु ताका फल भाविजन्म औ सुखदुःख होवै नहीं॥

॥ १०१ ॥ १ उत्तम, २ मध्यम, ३ कनिष्ठभेदतैं जिज्ञासु तीन प्रकारका है:—

१ तीव्रजिज्ञासावान् हुया चारि साधन अथवा मन्द बोधकारि संपन्न उत्तमजिज्ञासु है॥ औ—

२ मन्दजिज्ञासाकरिके वेदांतश्रवणविषै प्रवृत्त होवै सो मध्यमजिज्ञासु है॥

३ मंदजिज्ञासाकरिके निष्कामकर्मउपासनाविषै प्रवृत्त होवै सो कनिष्ठजिज्ञासु है॥

॥ ७१ ॥ ग्रंथमैं जिज्ञासुकी प्रवृत्ति होवै है। मुक्तादिकं तीनकी नहीं ॥

१-२ पामर औ विषयीकूं तौ यद्यपि विषयसुखमैं ही अलंबुद्धि है औ किसी विषयीकूं परमसुखकी इच्छा बी होवै तब बी ताके जो उपाय नहीं हैं तिनमैं उपायबुद्धिकरिके प्रवृत्त होवै है। काहेतैं? उपायका ज्ञान सत्संग औ सत्शास्त्रके श्रवणतैं होवै है सो ताके है नहीं। यातैं पामर औ विषयीकी सुखप्राप्तिके निमित्त ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥ दुःखकी निवृत्तिके निमित्त बी दोनों अन्य उपायनमैं प्रवृत्त होवै हैं। ताके निमित्त बी ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं। यातैं विषयी औ पामरकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥

३ तथापि जिज्ञासु जो पुरुष है ताकूं विषयसुखसैं अलंबुद्धि होवै नहीं। किंतु परमसुखकी ताकूं इच्छा है औ दुःखकी अत्यंतकरिके निवृत्तिकी इच्छा है। सो "परमसुखकी प्राप्ति औ दुःखकी अत्यंतनिवृत्ति ज्ञानसैं विना होवै नहीं" ऐसा जाकूं सत्संगसैं विवेक है ताकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति बनै है ॥ औ-

४ मुक्तकी प्रवृत्ति बी होवै नहीं। काहेतैं? ज्ञानवान् मुक्त कहिये हैं। सो ज्ञानी कृतकृत्य है। ताकूं कछु कर्तव्य नहीं। यह वार्ता[१०२] आगे प्रतिपादन करैंगे ॥ औ लीलाकरिके मुक्त प्रवृत्त होवै तौ बी मुक्तकूं ग्रंथमैं प्रवृत्तिसैं कोई प्रयोजन सिद्ध होवै नहीं। यातैं मुक्तके निमित्त बी ग्रंथ नहीं ॥

इस रीतिसैं मोक्षकी इच्छावान अधिकारी बनै हैं ॥ ११ ॥

॥ ७२ ॥ ॥ विषयमंडन (२) ॥ ७२-७६ ॥

अंक ३९-४४ गतपूर्व पक्षका उत्तर ॥

दोहा-

साक्षी ब्रह्मस्वरूप इक,
नहीं भेदको गंध।
रागद्वेष मतिके धरम,
तामैं मानत अंध ॥ १२ ॥

टीकाः-पूर्व कह्या जो "जीव रागादिकक्लेशसहित है औ ब्रह्म क्लेशरहित है। यातैं जीवब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनै नहीं" ॥

यह वार्ता यद्यपि सत्य है तथापि रागद्वेषरहित जो साक्षी है ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै है ॥ और-

जो पूर्व कह्या-" कर्त्ताभोक्तासैं भिन्न साक्षी वन्ध्यापुत्रके समान असत् है" ॥

सो बनै नहीं। काहेतैं? कर्त्ता भोक्ता जो संसारी ताके विशेषभागका नाम साक्षी है ॥ जो साक्षिका निषेध करैं तो संसारीके विशेषभागका निषेध होनैतैं कर्त्ता भोक्ता जो संसारी ताका ही निषेध होवैगा ॥

एँकै[१०३] ही चैतन्यके विषै साक्षीभावकी अन्तः-

[१०२] ॥ १०२ ॥ यह वार्ता आगे पंचम तरंगमैं २७९ के अंकविषै कहियेगी ॥ याके उपरि जो पामर औ विषयीकूं विषयसुखमैं अलंबुद्धि कही है ताका अर्थ संतोष नहीं। काहेतैं? विषयसुखके भोगकूं अग्निविषै डारे घृतकी न्यांई अधिक भोगकी इच्छारूप तृष्णाका वर्द्धक होनैतैं ताका अर्थ सन्तोष नहीं। किन्तु "विषयसुखसैं विलक्षण नित्यनिरतिशयआत्मसुख बी है" इस ज्ञानके अभावतैं सेखसल्लिके मनोरथकी न्यांई मनोरथमात्र भाविविषयसुखविषै कृतार्थताकी बुद्धि उक्त अलबुद्धिशब्दका अर्थ है ॥

[१०३] ॥ १०३ ॥ एक ही अंतःकरण विवेकीकी दृष्टिसैं चेतनका उपाधि है औ अविवेकीकी दृष्टिसैं विशेषण है यातैं एक ही चेतन विवेकीकूं साक्षीरूप भासता औ अविवेकीकूं जीवरूप भासता है। यह वार्ता बालबोधविषै हमनैं स्पष्ट लिखी है ॥

करण उपाधि है औ कर्त्ताभोक्तापनैका विशेषण है ॥

विशेषणसहित विशिष्ट कहिये है ॥

उपाधिवाला उपहित कहिये है ॥

जो वस्तु जितनै देशमैं आप होवै, उस देशमै स्थित वस्तुकूं जनावै औ आप पृथक् रहै। सो उपाधि कहिये है। जैसैं नैयायिकमतमैं कर्णगोलकवृत्ति आकाश श्रोत्र कहिये है। सो कर्णगोलक श्रोत्रकी उपाधि है । काहेतैं ? सो कर्णगोलक जितनै देशमैं आप है उतनैं देशमैं स्थित आकाशकूं श्रोत्ररूपकरिके जनावै है औ आप पृथक् रहै है । यातैं कर्णगोलक श्रोत्रकी उपाधि है ॥

तैसैं अंतःकरण बी जितनै देशमैं आप है उतनै देशमैं स्थित चेतनकूं साक्षीसंज्ञाकरिके जनावै है। आप पृथक् रहै है। यातैं अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है।

यातैं यह अर्थ सिद्ध हुआः—अंतःकरणविषै वृत्ति जो चेतनमात्र सो साक्षी कहिये है।

॥ ७३ ॥ अपनैसहित वस्तुकूं जो जनावै सो विशेषण कहिये है।

जैसैं—"कुंडलवाला पुरुष आया है"। या स्थानमें पुरुषका कुंडल विशेषण हैं । काहेतैं ? अपनैसहित पुरुषका आगमन कुंडल जनावै है। यातैं विशेषण है ॥ "नीलरूपवान् घटकूं मैं देखूं हूं" या स्थानमैं बी नीलरूप घटका विशेषण है ॥

तैसैं अन्तःकरण बी कर्त्ताभोक्ता जो जीवचेतन ताका विशेषण है। काहेतैं ? अन्तःकरणसहित चेतनकूं कर्त्ताभोक्तारूपकरिके अन्तःकरण जनावै है। यातैं संसारीका अन्तःकरण विशेषण है ॥

यातैं यह सिद्ध हुवाः—अन्तःकरणविषै वृत्ति चेतन औ अंतःकरण संसारी कहिये है। या अर्थकूं विस्तारसैं आगे कहैंगे ॥

॥ ७४॥ रागद्वेषादिक क्लेश संसारीविषै हैं, औ साक्षीविषै नहीं । संसारीका बी जो विशेषण अन्तःकरण है ताके विषै हैं औ विशेष्य जो चैतन्य ताकेविषै नहीं । काहेतैं ? संसारीविषै विशेष्य जो चैतन्यभाग ताका साक्षीसैं भेद नहीं । काहेतैं ?

१एक ही चैतन्य अन्तःकरणसहित संसारी है। औ—

२अन्तःकरणभाव त्यागिके साक्षी कहियेहै। यातैं साक्षीका औ संसारीके विशेष्यभागका भेद नहीं । जो विशेष्यभागमैं क्लेश अंगीकार करैं तब साक्षीमैं बी अंगीकार करने होवैंगे ॥ औ "साक्षी सर्वक्लेशरहित है"। यह वेदका सिद्धांत है । यातैं संसारीके विशेष्यभागमैं क्लेश नहीं। किन्तु विशेषणमात्र अन्तःकरणमैं हैं। इस अभिप्रायतैं दोहेके तृतीयपादमैं राग द्वेष बुद्धिके धर्म कहे औ जीवके नहीं कहे ॥

इस रीतिसैं अंतःकरणविशिष्टकी ब्रह्मसैं एकता नहीं बी बनै। परन्तु अंतःकरणउपहित

॥ १०४ ॥ इहां इस साक्षीके लक्षणकी पदकृति (परीक्षा) हैः—

१ अंतःकरण तौ आप बी है । परंतु सो ताके विषै वृत्ति कहिये वर्त्तनेवाला नहीं ॥

२ चेतन तौ चिदाभास बी है। सो चेतनमात्र नहीं।

३ चेतनमात्र तौ ब्रह्म बी है। सो अंतःकरणविषै वृत्ति नहीं ॥

यातैं ऊपर लिख्या साक्षीका लक्षण निर्दोष है ॥

॥१०५॥ यह अर्थ चतुर्थतरंगगत २०१-२०२ के अंकविषै तथा षष्ठतरंगविषै बी कहियेगा ॥

॥ १०६ ॥ जाके आश्रित होयके विशेषण रहै सो विशेष्यभाग कहिये है ॥

जो साक्षी ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै है ॥ और

॥ ७५ ॥ जो पूर्व कह्याः—" साक्षी नाना हैं औ ब्रह्म एक है, यातैं नाना-साक्षीकी एक ब्रह्मसे एकता बनै नहीं । औ जो व्यापक एक ब्रह्मतैं साक्षीका अभेद अंगीकार करोगे तौ साक्षी बी सर्वशरीरमैं व्यापक एक ही होवैगा । यातैं सर्वशरीरके सुख दुःख भान हुवे चाहिये" ॥

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ? यद्यपि ईश्वरसाक्षी एक है औ जीवसाक्षी नाना हैं औ परिच्छिन्न हैं तौबी व्यापक ब्रह्मसैं भिन्न नहीं॥ जैसैं घटाकाश नाना हैं औ परिच्छिन्न हैं तौ बी महाकाशसैं भिन्न नहीं । किंतु महाकाशरूप ही घटाकाश हैं । तैसैं नाना जो परिच्छिन्नसाक्षी सो बी ब्रह्म रूप ही है ॥ और

॥ ७६ ॥ जो पूर्व कह्याः—" सुख दुःख अंतःकरणकी वृत्तिके विषय नहीं " ॥

सो असंगत है । काहेतैं ? यद्यपि सुख दुःख साक्षीभास्य हैं सो साक्षी नाना हैं । तथापि जब अंतःकरणका परिणाम सुखरूप वा दुःखरूप होवै ताही समय अंतःकरणकी ज्ञानरूप वृत्ति सुखदुःखकूं विषय करनैवाली होवै है ॥ ता वृत्तिमैं आरूढ साक्षी तिनकूं प्रकाशै हैं ॥

इस रीतिसैं ग्रंथकारोंनैं सुखदुःख साक्षीके विषय कहै हैं । वृत्ति विना केवलसाक्षीके विषय नहीं ॥ या स्थानमैं—

यह रहस्य हैः—जैसैं आकाशमैं घटाकाश नाम औ जलका आनयनरूप जो कार्य प्रतीत होवै है सो घटरूप उपाधिकी दृष्टिसैं प्रतीत होवै है । घटरूप उपाधिकी दृष्टि विना घटाकाश नाम औ जलका आनयनरूप कार्य प्रतीत होवै नहीं । किंतु आकाशमात्र ही प्रतीत होवे । यातैं घटाकाश महाकाशरूप है ॥

तैसैं चेतनविषै साक्षी नाम औ धर्मसहित अंतःकरणका प्रकाशरूप कार्य अंतःकरणरूप उपाधिकी दृष्टिसैं प्रतीत होवै है । औ अंतः-करणरूप उपाधिकी दृष्टि विना साक्षी नाम औ धर्मसहित अंतःकरणका प्रकाशरूप कार्य प्रतीत होवै नहीं । किंतु चैतन्यमात्र ब्रह्म ही प्रतीत होवै । यातैं साक्षी ब्रह्मरूप है ॥

या अभिप्रायतैं दोहेके प्रथमपादमैं साक्षी एक कह्या । काहेतैं? उपाधिकी दृष्टि विना साक्षीमैं नानापना औ परिच्छिन्नभाव प्रतीत होवे नहीं ।

सो साक्षी जीवपदका लक्ष्य है । यह वार्ता आगे कहैंगे ॥

इस रीतिसैं जीवब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनै है ॥ १२ ॥

॥७७॥ प्रयोजनमंडन (३) ॥ ७७-९२ ॥

॥ अंक ४५ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥

॥ अथ कार्यअध्यासनिरूपण ७७-८४

॥ कवित्त ॥

सजातीयज्ञान संसकार-
तैं अध्यास होत,

॥ १०७ ॥ जैसैं कोरे कागजपर स्याही लगायके ताके मध्य श्वेतअक्षर धन्या होवै तिस अक्षरका औ कोरे कागजका जैसा कथनमात्र भेद है तैसा साक्षी-का औ शुद्धचैतन्यका भेद है । जैसैं स्याहीरूप उपाधिकी दृष्टि विना अक्षरनाम नहीं किंतु वह कोरा कागज ही है । तैसैं अंतःकरणरूप उपाधिकी दृष्टि विना साक्षीनाम नहीं । किंतु वह शुद्धचैतन्य ही है ॥

॥ १०८ ॥ यह वार्ता आगे चतुर्थतरंगगत २०१—२०२ के अंकविषै तथा षष्ठतरंगगत ३४१के अंकविषै कहियेगी ॥

॥ १०९ ॥ अज्ञानकृतस्थूलसूक्ष्मप्रपंचरूप जो भ्रम सो कार्यअध्यास है ॥

सत्यज्ञानजन्य संसकार-
को न नेम है।
दोषको न हेतुता
अध्यासविषै देखियत,
पटविषै हेतु जैसे
तुरी तंतु वेम है ॥
आतमा द्विजाति संख
पोत सिता कटु भासै,
सीपमैं विरागी रूप
देखै बिन प्रेम है।
नभ नील रूपवान
भासत कटाह तंबू,
जिनके न कोउ पित्त
प्रभृति अछेम हैं ॥ १३ ॥

टीकाः—पूर्व कह्या जो "बंध सत्य है, ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं औ मिथ्यावस्तुकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै है ॥ आत्मामैं मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं । यातैं बंध सत्य है, ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं" ॥

सो वार्त्ता बनै नहीं । काहेतैं ? बंध मिथ्या है, ताकी ज्ञातसैं निवृत्ति बनै है। औ—

॥ ७८ ॥ अंक ४७—४८ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ७८—८२ ॥

पूर्व कह्या जो "सत्यवस्तुका ज्ञान संस्कारद्वारा अध्यासका हेतु है । जैसैं सत्यसर्पका ज्ञान संस्कारद्वारा सर्पअध्यासका हेतु है। तैसैं सत्यबंध होवै तौ सत्यबंधका ज्ञान होवै। सो सिद्धांतमैं अनात्मवस्तु कोई सत्य है नहीं । यातैं सत्यवस्तुका ज्ञान जो संस्कारद्वारा अध्यासकी सामग्री ताका अभाव होनैतैं बंध अध्यास नहीं। किंतु सत्य है" ॥

(१सत्यवस्तुजन्य ज्ञानके संस्कारका खंडन)

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं ? अध्यासविषै संस्कारद्वारा सत्यवस्तुका ज्ञान हेतु नहीं । किंतु वस्तुका ज्ञान हेतु है । सो वस्तु सत्य होवै अथवा मिथ्या होवै । जो सत्यवस्तुका ज्ञान ही अध्यासविषै हेतु होवै तौ जा पुरुषनैं सत्य छुहारेका वृक्ष नहीं देख्या होवै औ बाजीगरका बनाया मिथ्या छुहारेका वृक्ष बहुत वार देख्या होवै औ बाजीगरसैं ऐसा सुन्या होवै जो "यह छुहारेका वृक्ष है" औ खजूरका वृक्ष कदै देख्या सुन्या होवै नहीं, ताकूं खजूरका वृक्ष देखिके छुहारेका अध्यास होवै है। सो नहीं हुवा चाहिये। काहेतैं ? सत्य छुहारेका ताकूं ज्ञान है नहीं ॥ औ हमारी रीतिसैं तौ बाजीगरका देख्या जो मिथ्या छुहारा ताका ज्ञान है । यातैं अध्यास बनै है। यातैं सजातीय वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार ही अध्यासके हेतु हैं ॥

सो संस्कारका जनक ज्ञान औ ताका विषय मिथ्या होवै अथवा सत्य होवै, संस्कारद्वारा ज्ञान हेतु है ॥ औ—

"ज्ञानजन्य संस्कार हेतु है"। या कहनैमैं अर्थका भेद नहीं। एक ही अर्थ है। काहेतैं ? "संस्कारद्वारा ज्ञान हेतु है" याका अर्थ यह हैः— ज्ञान संस्कारका हेतु है औ संस्कार अध्यासका हेतु है। यातैं संस्कारद्वारा ज्ञानकूं हेतुता कहनैतैं बी ज्ञानजन्य संस्कारकूं ही अध्यासविषै हेतुता सिद्ध होवै है ॥ औ—

॥७९॥ (सिद्धांतीः—) केवलवस्तुके ज्ञानकूं ही अध्यासविषै हेतु कहै तौ बनै नहीं। काहेतैं ?

यह नियम हैः—"जो हेतु होवै सो कार्यसैं अव्यवहितपूर्वकालमैं होवै है"। जैसैं घटका हेतु दंड है सो घटसैं अव्यवहितपूर्वकालमैं होवै है तैसैं जो अध्यासका हेतु ज्ञान अंगीकार करैं सो बी अध्यासतैं अव्यवहितपूर्वकालमैं चाहिये ॥

१ (पूर्वपक्षीः-) सो बनै नहीं । काहेतैं? जा पुरुषकूं सर्पका ज्ञान होवै ताकूं ज्ञानसैं महीने पीछे बी रज्जुविषै सर्पका अध्यास होवै है । सो नहीं हुवा चाहिये । काहेतैं ? जो रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु सर्पका ज्ञान है ताका नाश होय गया । यातैं अव्यवहितपूर्वकालमैं है नहीं । यद्यपि पूर्वकालमैं तौ है तथापि अव्यवहितपूर्वकालमैं है नहीं ॥

(१)अंतरायरहितकानामअव्यवहितहै।औ-

(२)अंतरायसहितका नाम व्यवहित है॥औ

२ जो ऐसैं कहैः-कार्यतैं पूर्वकालमैं हेतु चाहिये । व्यवहितपूर्वकालमैं होवै अथवा अव्यवहितपूर्वकालमैं हेतु होवै ॥ औ "कार्यतैं अव्यवहितपूर्वकालमैं होवै है" । ऐसा नियम अंगीकार करैं तौ "विहितकर्म स्वर्गप्राप्तिका हेतु है औ निषिद्धकर्म नरकप्राप्तिका हेतु है"। यह शास्त्रकी वार्त्ता अप्रमाण होय जावैगी । काहेतैं? कायिकवाचिकमानसक्रियाका नाम कर्म है। सो क्रिया अनुष्ठानकालसैं अनंतर ही नाश होय जावै है औ स्वर्ग नरक कालांतरमैं होवै हैं। यातैं स्वर्गनरकप्राप्तिके अव्यवहितपूर्वकालमैं विहितकर्म औ निषिद्धकर्म है नहीं ॥ जैसैं व्यवहितपूर्वकालके शुभकर्म औ अशुभकर्म स्वर्गप्राप्ति औ नरकप्राप्तिके हेतु हैं तैसैं "व्यवहितपूर्वकालमैं जो सर्पका ज्ञान सो बी रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु है" ॥

१-२ (सिद्धांतीः-) सो वार्त्ता बनै नहीं। काहेतैं ? जैसैं नष्टज्ञान औ नष्टकर्मतैं अध्यास औ स्वर्गनरककी प्राप्ति अंगीकार करी तैसैं मृतकुलाल औ नष्टदंडसैं बी घट हुवा चाहिये । काहेतैं? जैसैं रज्जुमैं सर्पअध्यासतैं व्यवहितपूर्वकालमैं सर्पका ज्ञान है औ स्वर्गनरककी प्राप्तितैं व्यवहितपूर्वकालमैं शुभअशुभकर्म हैं तैसैं घटतैं व्यवहितपूर्वकालमैं नष्टदण्ड औ मृतकुलाल बी हैं । तिनतैं बी घट हुवा चाहिये सो होवै नहीं । यातैं व्यवहितपूर्वकालमैं जो वस्तु होवै सो हेतु नहीं । किंतु अव्यवहितपूर्वकालमैं जो वस्तु होवै सोई हेतु होवै है ॥ औ-

शुभअशुभकर्म बी कालांतरभावी जो स्वर्ग नरककी प्राप्ति ताके हेतु नहीं, किन्तु शुभकर्म तौ अपनैतैं अव्यवहित उत्तरकालमैं धर्मकी उत्पत्ति करै है । अशुभकर्म अधर्मकी उत्पत्ति करै है । सो धर्मअधर्म अंतःकरणविषै रहै हैं। तिनतैं कालांतरमैं स्वर्ग औ नरककी प्राप्ति होवै है । तासैं अनन्तर धर्म अधर्मका नाश होवै है। इस अभिप्रायसैं ही शास्त्रमैं शुभकर्म औ अशुभ कर्म अपूर्वद्वारा फलके हेतु कहे हैं। साक्षात् नहीं ॥

अपूर्व नाम धर्मअधर्मका है औ अदृष्ट बी तिनकूं कहै हैं औ पुण्यपाप बी तिनकूं ही कहै हैं औ कहूं धर्म अधर्मकी जनक जो शुभअशुभ क्रिया है ताकूं बी धर्मअधर्म कहै हैं ॥ जैसैं कोई शुभक्रिया करता होवै ताकूं लोक ऐसा कहै हैंः-"यह धर्म करै है" औ अशुभक्रिया करनेवालेकूं ऐसा कहै हैंः-"यह अधर्म करै है" सो शुभअशुभक्रियाका नाम धर्म अधर्म नहीं । किंतु शुभअशुभक्रिया धर्मअधर्मकी जनक है। यातैं क्रिया कूं धर्म अधर्म कहै हैं ॥ जैसैं आयुका वर्धक जो घृत है ताकूं शास्त्रमैं आयु कहै हैं ॥

इस रीतिसैं अव्यवहितपूर्वकालमैं हेतु होवै है ॥ औ-

॥ ८० ॥ रज्जुमैं सर्पअध्यासतैं अव्यवहित पूर्वकालमैं सर्पका ज्ञान है नहीं, यातैं सर्पका ज्ञान रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु नहीं । किंतु सर्पज्ञानजन्य संस्कार ही रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु है ॥ तैसैं सीपीमैं रूपअध्यासका हेतु रूपज्ञानजन्य संस्कार है॥ इस रीतिसैं सारे संस्कार ही अध्यासके हेतु हैं ॥ औ—

वस्तुका ज्ञान संस्कारका हेतु है ॥ जैसैं शुभअशुभकर्मजन्य धर्म अधर्म अंतःकरणमैं रहै हैं तैसैं वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार बी अंतःकरणमैं रहै हैं ॥

जा पुरुषकूं पूर्व सर्पका ज्ञान नहीं हुआ ताके बी और वस्तुके ज्ञानजन्यसंस्कार तौ हैं । परंतु रज्जुमैं सर्पका अध्यास होवै नहीं ॥ जा वस्तुका अध्यास होवै ताके सजातीयवस्तुके ज्ञानका संस्कार अध्यासका हेतु है। विजातीयके ज्ञानके संस्कार हेतु नहीं ॥ सर्पके सजातीय सर्प होवै है और नहीं । सर्पका जाकूं पूर्व ज्ञान नहीं, अन्यवस्तुका ज्ञान है ताकूं सजातीय वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार नहीं ।यातैं रज्जुमैं सर्पका अध्यास होवै नहीं ॥

सूक्ष्म अवस्थाका नाम संस्कार है ॥

इस रीतिसैं अध्यासतैं पूर्व जो सजातीयवस्तुका ज्ञान ताके संस्कार अध्यासके हेतु हैं ॥ औ—

"सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कार ही अध्यासके हेतु हैं। मिथ्यावस्तुके ज्ञानके नहीं" यह नियम नहीं ॥ यह वार्त्ता छुहारेके दृष्टांतसैं प्रतिपादन करी है। यातैं मिथ्यावस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार बी अध्यासके हेतु हैं ॥

॥ ८१ ॥ सो बंधके अध्यासविषै बी बनै है। काहेतैं ? जो अंहकारसैं आदि लेके अनात्मवस्तु औ ताका ज्ञान बंध कहिये हैं ॥

"सो अनात्मवस्तु रज्जुके सर्पकी न्याईं जब प्रतीत होवै तब ही है औ प्रतीत नहीं होवै तब नहीं" । यह हमारा वेदसंमत सिद्धांत है ॥ इस कारणतैं ही सुषुप्तिविषै सर्वप्रपंचका अभाव प्रतिपादन किया है।सुषुप्तिमैं कोई पदार्थ प्रतीत होवै नहीं।यातैं सर्वप्रपंचका सुषुप्तिमैं लय होवै है। इसका नाम शास्त्रमैं दृष्टिसृष्टिवाद कहै हैं॥ [110] या अर्थकूं आगे प्रतिपादन करैंगे॥ [111]

इस रीतिसैं अनंत अहंकारादिक औ तिनके ज्ञान उत्पन्न होवै हैं औ लय होवै हैं । अहंकारादिक औ तिनके ज्ञानकी साथ ही उत्पत्तिलय होवै है जब अहंकारादिकनकी प्रतीतिकी उत्पत्ति होवै तब अहंकारादिकनकी उत्पत्ति होवै है औ प्रतीतिका लय होवै तब अहंकारादिकनका लय होवै है। अहंकारादिक औ तिनके ज्ञानका नाम अध्यास है । यह वार्त्ता अनिर्वचनीय ख्यातिके प्रतिपादनमैं कहैंगे ॥ यद्यपि अहंकार साक्षीभास्य है । यह वार्त्ता विषयप्रतिपादनमें कही है। यातैं अहंकारकी प्रतीति साक्षीरूप है । ताकी उत्पत्ति औ लय बनै नहीं । तथापि अहंकारका बी वृत्तिसैं ही साक्षी प्रकाश करै है। साक्षात् नहीं । ता वृत्तिकी उत्पत्तिलय होवै हैं । यातैं अहंकारकी प्रतीतिकी उत्पत्तिलय कहिये है ॥

इस रीतिसैं उत्तरउत्तर अहंकारादिक औ तिनके ज्ञानकी जो उत्पत्ति ताके हेतु पूर्व पूर्व मिथ्या अहंकारादिकनके ज्ञानजन्य संस्कार बनै हैं।और

॥ ८२ ॥ जो ऐसैं कहैः—"उत्तर उत्तरअहंकारादिकनके अध्यासविषै तौ यद्यपि

॥ ११० ॥ दृष्टि कहिये अविद्याकी वृत्तिरूप ज्ञान, ताके समसमयमैं सृष्टि कहिये पदार्थ (विषय) की उत्पत्ति, ताका वाद कहिये कथन जा पक्षमैं किया है ता पक्षकूं शास्त्रमैं दृष्टिसृष्टिवाद कहते हैं ॥

॥ १११ ॥ या अर्थकूं आगे षष्ठतरंगगत ३१७–३२९ के अंकविषै प्रतिपादन करैंगे ॥

पूर्व पूर्व अध्यासके संस्कार हेतु बनै हैं। तथापि प्रथम उत्पन्न जो अहंकार औ ताका ज्ञान ताके हेतु संस्कार बनै नहीं। काहेतैं ? जो ताके पूर्व और अहंकार उत्पन्न हुआ होवै तौ ताके ज्ञानके संस्कार बी होवैं। सो प्रथम अहंकारसैं पूर्व और अहंकार हुआ नहीं। तैसैं "सर्ववस्तुके प्रथम अध्यासके हेतु संस्कार बनै नहीं" ॥

यह शंका बी सिद्धांतके अज्ञानसैं होवै है। काहेतैं ? यह वेदांतका सिद्धांत है:-एक ब्रह्म औ ईश्वर। जीव। आविद्या औ अविद्याका चैतन्यसैं संबध औ अनादि वस्तुका भेद। यह षट्वस्तु स्वरूपसैं अनादि हैं॥जा वस्तुकी [११२]उत्पत्ति होवै नहीं सो वस्तु स्वरूपसैं अनादि कहिये है ॥ इन षट्की उत्पत्ति होवै नहीं। यातैं स्वरूपसैं अनादि हैं ॥ औ--

अहंकारादिकनकी तौ श्रुतिमैं उत्पत्ति कही है। यातैं स्वरूपसैं अनादि यद्यपि अहंकारादिक नहीं तथापि प्रवाहरूपतैं सर्ववस्तु अनादि हैं ॥ सर्ववस्तुका प्रवाह दूरि होवै नहीं। अनादिकालमैं ऐसा समय कोई पूर्व हुआ नहीं जा समय कोई घट होवै नहीं। यातैं घटका प्रवाह अनादि है। इस रीतिसैं सर्ववस्तुका प्रवाह अनादि है। प्रलयकालमैं बी सुषुप्तिकी न्याई सर्ववस्तु संस्काररूप होयके रहै हैं ॥

यातैं प्रपंचका प्रवाह अनादि होनेतैं प्रपञ्च [११३]अनादि कहिये है। ऐसा जाकूं ज्ञान नहीं है।

॥ ११२ ॥ १ ब्रह्म अविद्याका अधिष्ठान है। यातैं ताकी अविद्या (मूलप्रकृति) तैं उत्पत्ति संभवै नहीं। औ ईश्वरजीवआदिककी सिद्धि तौ ब्रह्म विना होवै नहीं। यातैं तिन चारितैं ब्रह्मकी उत्पत्ति संभवै नहीं। यातैं ब्रह्म अनादि है ॥

२ ब्रह्म निर्विकार है। यातैं तिसतैं अविद्याकी उत्पत्ति नहीं औ ईश्वरआदिक चारिकी सिद्धि तौ अविद्याकी सिद्धिके आधीन है। यातैं तिनतैं अविद्याकी उत्पत्ति संभवै नहीं, तातैं अविद्या अनादि है ॥

३-४ केवल ब्रह्मतैं वा केवल मायातैं वा परस्परतैं वा स्वसिद्धिके आधीनभेदतैं जीवईश्वरकी उत्पत्ति सभवै नहीं औ अविद्याचेतनके संबंधकी सिद्धिसैं ईश्वरजीवकी सिद्धि है। सो संबंध आप बी अनादि है। तिसतैं तिनकी उत्पत्ति नहीं। तातैं ईश्वरजीव बी अनादि हैं ॥

५ ब्रह्म औ अविद्या अनादि हैं। यातैं तिनका तादात्म्यसंबंध बी अनादि है। तिनतैं तिसकी उत्पत्ति नहीं। औ ईश्वरआदिक तीनकी सिद्धि तौ संबंधकी सिद्धिके आधीन है। यातैं तिनतैं तिसकी उत्पत्ति नहीं। अविद्या औ चेतनका संबंध अनादि है ॥

६ इन पांचों वस्तुकी आपही आपतैं उत्पत्ति मानै तौ आत्माश्रयदोष होवैगा। यातैं इन पांच वस्तुनकी आपआपतैं बी उत्पत्ति नहीं॥जातैं इन पांच वस्तुनकी उत्पत्ति नहीं। यातैं तिन पांचवस्तुनका परस्परभेद है। ताकी बी उत्पत्ति बनै नहीं ॥

इस रीतिसैं इन षट्वस्तुनकी उत्पत्ति नहीं। यातैं ये स्वरूपसैं अनादि हैं ॥ तिनमैं—

(१) ब्रह्म त्रिकालअबाध्य है। यातैं अनादि-अनंत है ॥ औ--

(२) अविद्याआदिक पांच ज्ञानसैं बाधकूं पावते हैं। यातैं अनादिसांत है॥

११३॥ प्रपंच अनादि है। यातैं बहुकाल-स्थायि होनेतैं सत्य होवैगा ? । या शंकाका-

यह समाधान है:-जैसे रज्जुमैं सर्पका भ्रम होवै है औ स्वप्न होवै है। सो घटी प्रहर दो प्रहर चारि प्रहरपर्यंत पूर्वसिद्ध औ अनादिसिद्ध प्रतीत होवै है। किंवा सर्पादिभ्रम वर्षपर्यन्त बी रहै है। तौ बी रज्जुके औ जाग्रतके ज्ञान हुये ताका त्रिकालअभाव-निश्चयरूप बाध होवै है। यातैं मिथ्या है ॥ तैसैं प्रपंच बी आरोपदशाविषैं अनादिसिद्ध भासता है। तौ बी अधिष्ठानके ज्ञान हुये याका त्रिकाल-अभावनिश्चयरूप बाध होवै है। यातैं प्रपंच मिथ्या है। याहीतैं प्रवाहरूपसैं अनादिसांत कहिये है ॥

ताकूं यह शंका होवै है:-"जो प्रथमअध्यासके हेतु संस्कार बनै नहीं" ॥ औ सिद्धांतमैं किसी अहंकारादिक वस्तुका अध्यास सर्वसैं प्रथम है नहीं, किन्तु अपनेसैं पूर्व पूर्व अध्यासतैं संपूर्ण उत्तर हैं, यातैं शंका बनै नहीं ॥

इस रीतिसैं सजातीयके पूर्व ज्ञानजन्य संस्कारसैं अहंकारादिक बंधका अध्यास बनै है। यह प्रथमपादका अर्थ है ॥ और--

॥ ८३ ॥ अंक ४९ गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ८३-८४ ॥

(२ प्रमेयदोषका खंडन)

जो पूर्व कह्या:-"तीन प्रकारका दोष अध्यासका हेतु है औ बंधके अध्यासमें कोई बी दोष बनै नहीं, यातैं बंध सत्य है"

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं ? जो दोषतैं विना अध्यास होवै नहीं तौ अध्यासका हेतु दोष होवै। जैसैं तुरी तंतु वेम पटके हेतु हैं। तुरी तंतु वेम होवैं तौ पट होवै औ नहीं होवैं तौ पट होवै नहीं, तैसैं दोष अध्यासके हेतु नहीं। काहेतैं ? सादृश्यदोष विना आत्मामैं जातिका अध्यास होवै है ॥

ब्राह्मणत्वसैं आदि लेके जो जाति हैं सो स्थूलशरीरका धर्म है। आत्माका औ सूक्ष्मशरीरका धर्म नहीं। काहेतैं ? और शरीरकूं प्राप्त होवै तब आत्मा औ सूक्ष्मशरीर तौ जो पूर्वशरीरमैं है सोई रहै है औ जाति और बी होवै है। यह नियम नहीं:-"जो पूर्व शरीरमैं जाति है सोई उत्तर शरीरमैं होवै है" ॥

॥ ११४ ॥ न्यायमतमैं "नित्य, एक औ अनेकधर्मी (व्यक्ति) नविषै अनुगत धर्म जाति कहिये है" ताका औ आत्माका सादृश्यरूप प्रमेयदोष बनता है। यातैं आत्माविषै जातिका अध्यास होवै है।

आत्माका अथवा सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति होवै तौ उत्तर शरीरविषै और जाति नहीं हुई चाहिये। यातैं आत्माका औ सूक्ष्मशरीरका धर्म जाति नहीं। किन्तु स्थूलशरीरका धर्म है ॥ औ "मैं द्विजाति हूं"। इस रीतिसैं ब्राह्मणत्व क्षात्रियत्व वैश्यत्वजातिका आत्मामैं भान होवै है। यातैं आत्मामैं जातिका अध्यास है ॥ जैसैं रज्जुमैं सर्प परमार्थसैं नहीं है औ भान होवै है, यातैं रज्जुमैं सर्पका अध्यास है। तैसैं आत्मामैं जाति नहीं है औ भान होवै है। यातैं आत्मामैं जातिका अध्यास है ॥ औ---

आत्माके साथ जातिका सादृश्य नहीं है। काहेतैं ?

१ आत्मा व्यापक है औ जाति परिच्छिन्न है ॥

२ आत्मा प्रत्यक् है औ जाति पराक् है ॥

३ आत्मा विषयी है औ जाति विषय है ॥

इस रीतिसैं आत्मामैं विरोधीजातिका बी अध्यास होवै है।

द्विजाति नाम त्रिवर्णका है ॥

जैसैं आत्माविषै सादृश्यतैं विना जातिका अध्यास होवै है तैसैं सादृश्य विना अहंकारादिक बंधका अध्यास बी आत्मामैं बनै है ॥

सादृश्य दोष अध्यासका हेतु नहीं ॥ जो सादृश्यदोष अध्यासका हेतु होवै तौ

१ आत्मामैं जातिका अध्यास नहीं हुआ चाहिये। औ-

२ शंखमैं पीतताका अध्यास नहीं हुआ चाहिये ॥ औ—

तातैं प्रमेयदोष अध्यासका हेतु है यह आशंका मनमैं ल्यायके दूसरा शंखमैं पीतताके अध्यासका दृष्टांत दिया है ॥

३ मिसरीमैं[115] कटुताका अध्यास नहीं हुवा चाहिये ।

काहेतैं ?

श्वेतता औ पीतताका विरोध है । सादृश्य नहीं ॥ तैसैं मधुरता और कटुताका विरोध है। सादृश्य नहीं । यातैं अधिष्ठानमैं मिथ्यावस्तुका सादृश्य दोष अध्यासका हेतु नहीं ॥

॥८४॥ (३ प्रमातादोषका खंडन)

तैसैं प्रमाताका लोभभयादिक दोष बी अध्यासका हेतु नहीं । काहेतैं ? जो लोभरहित वैराग्यवान् पुरुष है ताकूं बी सीपीमैं रूपेका अध्यास होवै है सो नहीं हुवा चाहिये । यातैं प्रमाताका दोष बी अध्यासका हेतु नहीं॥औ—

(४ प्रमाणदोषका खंडन)

प्रमाणका दोष बी अध्यासका हेतु नहीं । काहेतैं ? सर्वपुरुषनकूं रूपरहित जो आकाश है सो नीलरूपवाला प्रतीत होवै है औ कटाहके तथा तंबूके आकार प्रतीत होवै है । यातैं सर्वकूं आकाशमैं नीलरूपका, कटाहका तथा तंबूका अध्यास है ॥ औ सर्वके नेत्ररूप प्रमाणमैं दोष कहना बनै नहीं । यातैं प्रमाणका दोष अध्यास-का हेतु नहीं ॥

आकाशमैं नीलादिकनका जो अध्यास है ताके विषै एक प्रमाणदोषका ही अभाव नहीं है । किंतु [116] सर्वदोषनका अभाव है । सादृश्य बी नहीं औ प्रमाताका दोष बी नहीं । जैसैं सर्व-दोषके अभावतैं बी आकाशमैं नीलादिकनका अध्यास होवै है तैसैं आत्माविषै बी बंधका अध्यास दोष विना ही बनै है । यातैं " दोषके अभावतैं बंध अध्यासरूप नहीं । यह शंका बनै नहीं । काहेतैं ? सर्व दोषका अभाव बी है तो बी आकाशमैं नीलादिकनका अध्यास सर्वपुरुषनकूं होवै है । यातैं दोष अध्यासका हेतु नहीं ॥

कबित्तके चतुर्थपादका यह अर्थ है:—जिनके कोई पित्त प्रभृति कहिये पित्तसैं आदि लेके अक्षम कहिये दोष नहीं है तिनकूं बी आकाश

॥ ११५ ॥ **ननु** शंखमैं पीतताका अध्यास नहीं । किंतु कामलादोषयुक्त नेत्रमैं स्थित पीतरंग शंखमैं चिपटता है। तातैं शंख पीत भासता है ।यह **शंका** भई **तहां कहै हैं:—जैसैं** घटविषै मढ्या जो स्वर्ण सो स्वर्णकारकूं औ अन्यपुरुषनकूं दीखता हैं । **तैसैं** शंखका पीतरंग आपहीकूं दीखता है अन्योंकूं नहीं। यातैं सो रंग नेत्रसैं निकसिके शंखमैं चिपट्या नहीं, किंतु भ्रमरूप है ॥

ननु । जैसैं आकाशमैं उड्या जो पक्षी सो जाके नेत्रके समीप होयके गया है ताकूं तो दूरदेश-पर्यंत दीखता है, अन्योंकूं नहीं, **तैसैं** यह पीतरंग बी जाके नेत्रसैं निकसिके शंखमैं गया है ताहीकूं दीखता है । अन्योंकूं नहीं । यातैं सो पीतरंग सत्य है। यह शंका भई ।

तहां कहै हैं:— आकाशमैं उड्या जो पक्षी सो जाकी दृष्टिके समीपसैं गया है सो पुरुष अंगुलिनिर्देश-करिके दिखलावै तौ अन्यपुरुषकूं बी दीखता है । **तैसैं** शंखका पीतरंग अंगुलिके निर्देश किये बी अन्यपुरुषकूं दीखता नहीं । यातैं सो सत्य नहीं, किंतु भ्रमरूप है ॥

इस रीतिसैं शंखमैं पीतताका अध्यास सादृश्य-दोष विना होवै है। **तथापि** यह दृष्टांत उक्त शंकासमा-धानरूप विवादसैं सिद्ध है । प्रत्यक्ष सिद्धवस्तुविषै विवाद होवै नहीं । यह आशंका मनमैं ल्यायके यह तीसरा मिसरीमैं कटुताके अध्यासका दृष्टांत कहा है ।

॥ ११६ ॥ १ आकाशमैं नीलादिकनका जो अध्यास है तामैं सर्वपुरुषनके नेत्रमैं तिमिरादिक दोषके अभावतैं **प्रमाणदोषका अभाव** है । औ—

२ नीलादिकनका अरु आकाशका सादृश्य नहीं । यातैं **प्रमेहदोषका** बी **अभाव** है । औ—

३ किसीकूं आकाशके नीलरंगका औ आकाश जैसैं कटाहका औ आकाश जैसैं तंबूका लोभ बी नहीं, यातैं **प्रमातादोषका** बी **अभाव** है ॥

नीलरूपवान् औ कटाहाकार औ तंबूके आकार भासै है, यातैं प्रमाणदोष अध्यासका हेतु नहीं॥

क्षेम नाम कुशलका है, ताका विरोधी जो प्रमाणदोष, सो अक्षेम कहिये है ।

ज्ञानका साधन जो इंद्रिय सो प्रमाण कहिये है ॥

इस रीतिसैं दोष[117] अध्यासके हेतु नहीं, यातैं बंधके अध्यासमैं दोषकी अपेक्षा नहीं । औ-

संक्षेपशारीरकमैं बंधके अध्याससमय[118] दोष बी प्रतिपादन किये हैं । विस्तारके भयसैं हमनैं नहीं लिखे औ अध्यासके हेतु जो दोष होवैं तौ दोष निरूपण करते, सो दोष अध्यासके हेतु नहीं है, यातैं बी दोषका निरूपण नहीं किया ॥ १३ ॥

॥ ११७ ॥ याका यह अभिप्राय हैः–सर्वदोष होवैं तौ अध्यास होवै, यह नियम नहीं किंतु कोई दोष होवै तौ अध्यास होवै है ॥ यद्यपि इहां आकाशविषै नीलादिकनके अध्यासमैं सर्वदोषनका अभाव प्रतिपादन किया है, यातैं कोई बी दोष अध्यासका हेतु नहीं, तथापि जहां कोई दोष नहीं तहां अविद्या ही दोष है । सर्वथा दोषका अभाव होवै तौ अध्यास होवै नहीं । याहीतैं श्रीमधुसूदनस्वामीनै अद्वैतसिद्धिमैं दोषजन्यता भ्रमका लक्षण कह्या है । इहां सर्वदोषनके अभावतैं जो अध्यासका निरूपण किया है सो प्रौढिवाद है । प्रौढि कहिये अपनी उत्कृष्टताके लिये जो वाद कहिये कथन है सो प्रौढिवाद है ॥ यामैं

कोई द्वैतवादी शंका करै है किः– विवादका विषय जो जगत् सो मिथ्या नहीं । काहेतैं ? अधिष्ठानके समानसत्तावाले दोषकारि अजन्य होनैतैं । जो जो अधिष्ठानके समानसत्तावाले दोषकारि अजन्य हैं सो सो मिथ्या नहीं । जो अधिष्ठानके समानसत्तावाले दोषकारि अजन्य नहीं किंतु तैसैं दोषकारि जन्य है, सो वस्तु मिथ्या नहीं ऐसैं नहीं, किंतु मिथ्या है । जैसैं रज्जुसर्पादिक हैं ॥ इस व्यतिरेकि अनुमानकारि जगत्के अध्यासका अभाव है ॥

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ? जो व्यावहारिक रज्जुआदिक कल्पित सर्पादिकनके अधिष्ठान होवैं तौ तिस दृष्टांतकारिके उक्त अनुमानकी सिद्धि होवै । विचारकारि देखिये तौ सर्पादिकनका अधिष्ठान रज्जुआदि उपहितचेतन है वा वृत्तिउपहितचेतन है । यह वार्ता चतुर्थतरंगविषै अनिर्वचनीयख्यातिके निरूपणमैं कहियेगी । यातैं तिस चेतनकी परमार्थसत्ताके होनैतैं ताके समानसत्तावाले दोषके दृष्टांतमैं बी अभाव है ॥

किंवा मुख्यसिद्धांत (दृष्टिसृष्टिवाद) मैं तौ सर्वकार्यकी प्रातिभासिकसत्ता होनैकारि दृष्टांत रज्जुसर्पादि औ दार्ष्टान्त जगत्की विलक्षणताके अभावतैं एक ही चेतन रज्जुसर्पादिकनका औ घटादिकनका अधिष्ठान है । यातैं बी अधिष्ठानकी समसत्तावाले दोषका अभाव है । यातैं सर्वअध्यासनकूं अधिष्ठानतैं विषमसत्तावाले दोषकारि जन्यता है ॥

इस रीतिसे हेतुदृष्टांतके अभावतैं उक्तव्यतिरेकि अनुमानकी असिद्धि है, तातैं प्रपंच सत्य नहीं । किंतु मिथ्या ही है ॥

॥ ११८ ॥ यहा यह अध्यासके हेतु दोषका कथन हैः–

१ अंतःकरणदेशगत अज्ञानकी विक्षेपहेतुशक्तिमैं स्थित जो शुभाशुभकर्मके संस्काररूप अदृष्ट, सो प्रमातादोष है ॥ औ–

२ चेतनविषै अन्यप्रमाणके अभावतैं अपना स्वरूप ही प्रमाण है । तामैं स्थित जो अविद्या, सो प्रमाणदोष है ॥ औ–

३ चेतनमैं निरपेक्षआंतरता है औ प्रपंचमैं सापेक्ष आंतरता है अरु चेतनमैं पारमार्थिकवस्तुता है औ प्रपंचमैं अनिर्वचनीयवस्तुता है । यातैं आंतरताकारि औ वस्तुताकारि चेतनमैं प्रपंचका सादृश्य है । सो प्रमेयदोष है ॥

इस रीतिसैं संक्षेपशारीरकादिग्रन्थनमैं अध्यासके कारणरूप दोष प्रतिपादन किये हैं ॥

॥ अथ कारण[११९] अध्यासनिरूपण ॥
॥ ८५-९२ ॥

॥८५॥ अंक ५० गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ८५-८६ ॥

(५ अधिष्ठानके विशेषरूपसैं अज्ञानका खंडन)

॥ दोहा ॥

चित् सामान्य प्रकाशतैं,
नहीं नसै अज्ञान ।
लहै प्रकास सुषुप्तिमैं,
चेतनतैं अज्ञान ॥ १४ ॥

टीकाः--पूर्व कह्या जो "विशेषरूपसैं अज्ञानवस्तुसैं अध्यास होवै है औ आत्मा स्वयंप्रकाश है, ताके विषै अज्ञान बनै नहीं। काहेतैं? तमका औ प्रकाशका परस्पर विरोध है। यातैं जैसैं अत्यंतप्रकाशमैं स्थित रज्जुमैं सर्पका अध्यास होवै नहीं। तैसैं स्वयंप्रकाश आत्मामैं बंधका अध्यास बनै नहीं"

सो शंका बी बनै नहीं । काहेतैं ? यद्यपि आत्मा प्रकाशरूप है **तथापि** आत्माका स्वरूपप्रकाश अज्ञानका विरोधी नहीं। जो आत्मस्वरूपप्रकाश अज्ञानका विरोधी होवै तौ सुषुप्तिमैं प्रकाशरूप आत्माविषै अज्ञान प्रतीत होवै है, सो नहीं हुआ चाहिये ॥

घोरनिद्रासैं जाग्या जो पुरुष है ताकूं ऐसा ज्ञान होवै हैः-"मैं सुखसैं सोया औ कछु बी नहीं जानता हुआ" या ज्ञानका सुख औ अज्ञान विषय है, सो सुख औ अज्ञानका जो जाग्रतमैं ज्ञान है सो प्रत्यक्षरूप नहीं । काहेतैं ? जा ज्ञानका विषय सम्मुख होवै सो ज्ञान प्रत्यक्षरूप होवै है औ जाग्रतकालमैं सुख औ अज्ञान है नहीं। यातैं जाग्रत्मैं सुख औ अज्ञानका ज्ञान प्रत्यक्षरूप नहीं किंतु स्मृतिरूप है। सो स्मृति अज्ञातवस्तुकी होवै नहीं, किंतु ज्ञातवस्तुकी होवै है, यातैं सुषुप्तिमैं सुख औ अज्ञानका ज्ञान है ॥ सो सुषुप्तिका ज्ञान अंतःकरण औ इंद्रियजन्य तौ है नहीं । काहेतैं ? सुषुप्तिमैं अंतःकरण औ इंद्रियका अभाव है। यातैं सुषुप्तिमैं आत्मस्वरूप ही ज्ञान है ॥ ज्ञान औ प्रकाशका एक ही अर्थ है ॥

इस रीतिसैं सुषुप्तिमैं आत्मा प्रकाशरूप है, ता प्रकाशरूप आत्मासैं स्वरूपसुख औ अज्ञानकी प्रतीति होवै है, जो आत्मस्वरूपप्रकाश अज्ञानका विरोधी होवै तौ सुषुप्तिमैं अज्ञानकी प्रतीति नहीं हुई चाहिये। यातैं आत्मा प्रकाशरूप तौ है परंतु आत्माका स्वरूप प्रकाश[१२०]

॥ ११९ ॥ प्रपंचका कारण जो अधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान है, ताका जो अध्यास सो **कारणअध्यास** कहिये है। **यद्यपि** प्रपंचके अध्यासका कारण अज्ञान है औ अज्ञानके अध्यासका कारण अन्य कोई नहीं है, यातैं अज्ञानका अध्यास बनै नहीं **तथापि** दीपककी न्यांई औ साख्याभिमत स्वप्रकाशआत्माकी न्यांई औ नैयायिकअभिमतभेदकी न्यांई अज्ञान स्वपरका निर्वाहक है। यातैं ताका अध्यास बनै है ॥

॥ १२० ॥ **जैसैं** अन्धकार अकाशआदिकचारि भूतनके गुण, शब्द, स्पर्श, रस औ गंधकूं आवरण करता नहीं, किंतु तेजके गुणरूपकूं ही, आवरण करता है। यातैं अंधकार तेजके सामान्यस्वरूपके आश्रित होयके रहता है औ ताहीकूं विषय करै है (ढांपै है)। यातैं सामान्य तेज अंधकारका विरोधी नहीं, **तैसैं** अज्ञान बी चेतनके सामान्यप्रकाशके आश्रित होयके रहता है औ ताहीकूं विषय करै है। यातैं सामान्य चेतन अज्ञानका विरोधी नहीं ॥

अज्ञानका विरोधी नहीं । उलटा आत्माका स्वरूपप्रकाश अज्ञानका साधक है ॥

इस अभिप्रायतैं ही वेदांतशास्त्रमैं कह्या है:— "सामान्यचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं" किंतु विशेषचैतन्य ही अज्ञानका विरोधी है । व्यापक जो चैतन्य है सो सामान्यचैतन्य कहिये है औ वृत्तिमैं स्थित जो चैतन्य सो विशेष-चैतन्य कहिये है ॥ जैसैं काष्ठमैं स्थित जो सामान्यअग्नि है, सो अंधकारका विरोधी नहीं औ मथनसैं प्रगट किया जो अग्नि है, सो बत्तीमैं स्थित होयके अंधकारका विरोधी है । तैसैं व्यापक चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं बी है । परंतु वेदांतके विचारसैं अंतःकरणकी जो ब्रह्माकारवृत्ति हुई है, ताके विषै स्थित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है ॥

इस रीतिसैं केवलचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं । किंतु—

१ वृत्तिसहित[121] चैतन्य अज्ञानका विरोधी है ?
२ अथवा चैतन्यसहित वृत्ति अज्ञानकी विरोधी है ?
१ प्रथम पक्षमैं तौ अज्ञानके नाशका हेतु चैतन्य है औ वृत्ति सहायक है ॥
२ दूसरे पक्षमैं अज्ञानके नाशका हेतु वृत्ति है औ चैतन्य सहायक है ॥

यह अवच्छेदवादकी रीति है ॥ औ आभासवादमैं तौ सामान्यचैतन्यको न्यांई विशेषचैतन्य बी अज्ञानका विरोधी नहीं । किन्तु वृत्तिसहित आभास अथवा आभाससहित वृत्ति अज्ञानका विरोधी है ॥

इस रीतिसैं प्रकाशरूप चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं, यातैं चैतन्यके आश्रित[122] अज्ञान है, ता अज्ञानसैं आवृत जो आत्मा ताके विषै बन्धका अध्यास बनै है ॥ और—

॥८६॥ पूर्व कह्या जो "सामान्यरूपतैं ज्ञात औ विशेषरूपतैं अज्ञातवस्तुमैं अध्यास होवै है औ आत्मामैं सामान्यविशेषभाव है नहीं । यातैं निर्विशेषआत्मा ज्ञात औ अज्ञात बनै नहीं । ताके विषै अध्यासका असंभव है" ॥

सो वार्ता बी बनै नहीं । काहेतैं ? "आत्मा है" यह सर्वकूं प्रतीति होवै है ॥ आत्मा नाम अपने स्वरूपका है ॥ "मैं नहीं हूं" यह किसीकूं प्रतीति होवै नहीं, किन्तु "मैं हूं" यह प्रतीति सर्वकूं होवै है । यातैं सत्‌रूपकरिके आत्मा सर्वकूं भान होवै है औ "चैतन्य आनंद व्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्तरूप आत्मा है" यह सर्वकूं प्रतीति होवै नहीं । यातैं चैतन्य आनंद व्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्तरूपतैं आत्मा अज्ञात है औ सत्‌रूपकरिके ज्ञात है । यह वार्ता अनुभवसिद्ध है । सो अनुभवसिद्ध वार्ता युक्तिसैं दूरि होवै नहीं ॥

१ सर्वकूं प्रतीत जो होवै है आत्माका सत्-रूप सो तौ सामान्यरूप है। औ—
२ केवलज्ञानीकूं जो प्रतीति होवै चेतन-आनंदादिक सो विशेषरूप है ॥

॥ १२१ ॥ अवच्छेदवादमैं वृत्तिसहित चैतन्य वा चैतन्यसहितवृत्ति विशेषचैतन्य (कल्पितविशेष-चैतन्य) कहिये है, सो अज्ञानका विरोधी है॥ दोनूंमैं उत्तरपक्ष श्रेष्ठ है । कहातैं ? वृत्तिकूं ही आवरणभंगकी हेतु होनैसैं ॥

॥१२२॥ पूर्व कहा था कि—सूर्यविषै अंधकारकी न्यांई स्वप्रकाशरूप आत्माविषै अज्ञान संभवै नहीं । सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ? सूर्यादिक ज्योति महातेजका विशेषरूप है, सामान्य नहीं औ आत्माका स्वरूप तौ सामान्यप्रकाश है, यातैं सो अज्ञानका विरोधी नहीं । यातैं दृष्टांत (सूर्य) औ सिद्धांत (चेतन) की विषमताकरि उक्त शंकाका अवकाश नहीं ॥

१ जो अधिककालमैं अधिकदेशमैं होवै सो सामान्यरूप कहिये है ॥ औ----

२ न्यूनदेशमैं न्यूनकालमैं होवै सो विशेष रूप कहिये है ॥

यद्यपि आत्माका स्वरूप ही चेतनआनंदादिक है,यातैं सतकी न्यांई चेतनआनंदादिक सर्वत्र व्यापक है॥सतकी अपेक्षातैं चेतनआनंदादिकनकूं न्यूनदेशमैं औ चेतनआनंदादिकनकी अपेक्षातैं सत्‌रूपकूं अधिक देशमैं कहना बनै नहीं । यातैं सत्‌रूप आत्माका सामान्य अंश है औ चेतनआनंदादिक विशेष अंश हैं। यह कहना बी बनै नहीं॥तथापि सत्‌की प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमैं बी होवै है औ "चेतनआनंदरूप आत्मा है" यह प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमैं होवै नहीं । केवलज्ञानीकूं ही होवै है ॥ अविद्याकालमैं चेतन आनन्द मुक्तता शुद्धता बी है। परन्तु प्रतीति होवै नहीं । यातैं अनहुयेके समान है, इस अभिप्रायतैः----

१ चैतन्य आनंदादिक न्यूनकालवृत्ति कहिये है । औ----

२ सत्‌रूप अधिककालवृत्ति कहिये है ॥

इस रीतिसैं सत्‌रूपका औ चेतनआनंदादिकनका सामान्यविशेषभाव नहीं बी है। परन्तु अल्पकाल औ अधिककालमैं प्रतीति होनैतैं सामान्यविशेषभावकी न्यांई है । या कारण तैं----

१ आत्माका सत्‌रूप सामान्यअंश कहिये है। औ----

२ चेतनआनंदादिक विशेषअंश कहिये है। औ-- -

आत्मा निर्विशेष है या सिद्धान्तकी बी हानि नहीं ॥ जो आत्मामैं सामान्यविशेषभाव अंगीकार करैं तौ "निर्विशेष आत्मा है" या सिद्धांतकी हानि होवै ॥ सो सामान्यविशेषभाव अंगीकार किया नहीं । किंतु अविद्यासैं सामान्यविशेषकी न्यांई प्रतीति होवै है, यातैं सामान्यविशेषभाव कहे हैं ॥

इस रीतिसैं सत्यरूपकरिके ज्ञात औ चेतन आनंद नित्यशुद्ध नित्यमुक्त ब्रह्मरूपकरिके अज्ञात आत्माविषै बंधका अध्यास बनै है । अध्यासरूप बंधकी ज्ञानसैं निवृत्ति बी बनै है । यातैं ग्रंथका प्रयोजन संभवै है ॥ औरः--

॥८७॥अंक५१-५८गत पूर्वपक्षका उत्तर ॥ ८७-९२ ॥

(पूर्वपक्षीः--)पूर्व कह्या जो "निषिद्धकाम्य कर्मका त्यागकरिके नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित्त कर्म करै। यातैं निषिद्धकर्मके अभावतैं नीच लोककूं प्राप्त होवै नहीं औ काम्यकर्मके अभावतैं उत्तम लोककूं प्राप्त होवै नहीं औ नित्यनैमित्तिक कर्मके नहीं करनैतैं जो पाप होवै, सो तिनके करनैतैं होवै नहीं औ इस जन्मविषै अथवा अन्य जन्मविषै पूर्व करे जो पाप हैं, तिनका साधारण औ असाधारण प्रायश्चित्तसैं नाश होवै है ॥ औ पूर्व करे जो काम्यकर्म हैं तिनके फलकी इच्छाके अभावतैं मुमुक्षुकूं तिनका फल होवै नहीं । यातैं मुमुक्षुकूं ज्ञानसैं विना ही जन्मका अभावरूप मोक्ष होवै है" ॥

(सिद्धांतीः--)सो बनै नहीं। काहेतैं? नित्यनैमित्तिककर्मका बी स्वर्गरूप फल है । यह वार्त्ता भाष्यकारने युक्ति औ प्रमाणसैं प्रतिपादन करी है, यातैं नित्यनैमित्तिककर्मसैं उत्तमलोककूं प्राप्त होवैगा । जन्मका अभाव बनै नहीं ॥ औ नित्यनैमित्तिककर्मका जो फल अंगीकार नहीं करै तौ नित्यनैमित्तिककर्मका बोधक जो वेद है सो निष्फल होवैगा । काहेतैं ? जो नित्यनैमित्तिक कर्मके नहीं करनैतैं पाप होवै तौ ता पापकी

अनुत्पत्ति तिनका फल बनै, सो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनैतैं पाप होवै नहीं । काहेतैं ? जो नित्यनैमित्तिक कर्मका नहीं करना सो अभावरूप है औ पाप भावरूप है । अभावसैं भावकी उत्पत्ति होवै नहीं । यातैं "नित्यनैमित्तिक कर्मके नहीं करनैतैं पाप होवै है" यह कहना बनै नहीं ॥ जो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनैतैं पापकी उत्पत्ति अंगीकार करैं तौ "अभावतैं भावकी उत्पत्ति होवै नहीं" यह दूसरे अध्यायमैं भगवान्‌नै कह्या है, तासैं विरोध होवैगा । यातैं नित्यनैमित्तिककर्मके अभावतैं भावरूप पापकी उत्पत्ति बनै नहीं ॥ इस रीतिसैं नित्यनैमित्तिक कर्मका पापकी अनुत्पत्ति फल नहीं । किंतु नित्यनैमित्तिक कर्मसैं विना बी पापकी अनुत्पत्ति सिद्ध है । यातैं नित्यनैमित्तिककर्मका जो स्वर्गरूप फल अंगीकार नहीं करैं तौ कर्म निष्फल होवैंगे औ निष्फल जो नित्यनैमित्तिक कर्म हैं, तिनका बोधक वेद बी निष्फल होवैगा । यातैं नित्यनैमित्तिकर्मसैं बी स्वर्गफल होवै है ॥ औ--

॥ ८८ ॥ पूर्व कह्या जो "जन्मांतरके जो काम्यकर्म हैं तिनका इच्छाके अभावतैं फल होवै नहीं ॥"

सो वार्ता बी बनै नहीं । काहेतैं ? कर्मरूपी बीजसैं दो अंकुर उत्पन्न होवै हैं ॥ एक तौ वासना औ दूसरा अदृष्ट ॥ धर्मअधर्मका नाम अदृष्ट है ॥ शुभकर्मसैं तौ शुभवासना औ धर्मरूप अंकुर होवै है औ अशुभकर्मसैं अशुभवासना औ अधर्मरूप अंकुर होवै है॥शुभवासनासैं तौ आगे शुभकर्ममैं प्रवृत्ति होवै है औ धर्मसैं सुखका भोग होवैहै । इस रीतिसैं अशुभवासनासैं अशुभकर्ममैं प्रवृत्ति होवै है औ अधर्मसैं दुःखका भोग होवै है ॥ इस रीतिसैं वासनारूप औ अदृष्टरूप अंकुर कर्मरूपी बीजसैं होवै है तिनविषै-

१ "वासनारूप अंकुरका तौ उपायसैं नाश होवै है" औ--

२ "अदृष्टरूप अंकुरका फलकी उत्पत्तिसैं विना किसी प्रकारसैं बी नाश होवै नहीं"

यह शास्त्रका निर्णय है ॥

१ अशुभकर्मसैं उत्पन्न हुवा जो अशुभवासनारूप अंकुर है, ताका तौ सत्संगआदिक उपायतैं नाश होवै है ॥ औ-

२ शुभकर्मसैं उत्पन्न जो हुई शुभवासना ताका कुसंग आदिकनतैं नाश होवै है ॥

शास्त्रमैं जितना पुरुषार्थ कह्या है तासैं प्रवृत्तिकी हेतु जो वासना ताका ही नाश होवै है । यातैं पुरुषार्थ बी सफल है औ भोगका हेतु जो अदृष्ट ताका नाश होवै नहीं । यातैं "फल दिये विना कर्मकी निवृत्ति होवै नहीं" यह वार्ता जो शास्त्रमैं कही है तासैं बी विरोध नहीं ॥ इस रीतिसैं अज्ञानीकूं फलभोग विना कर्मकी निवृति बनै नहीं ॥ औ--

ज्ञानीकूं तौ भोगसैं विना बी कर्मकी निवृति बनै है । काहेतैं ?कर्म औ कर्त्ता तथा फल परमार्थसैं तौ हैं नहीं । किंतु अविद्यासैं कल्पित हैं ॥ ता अविद्याका ज्ञान विरोधी है । यातैं अविद्याकल्पित जो कर्मादिक हैं तिनका बी ज्ञानसैं नाश होवै है ॥ जैसैं स्वप्नविषै निद्रासैं जो पदार्थ प्रतीत होवै हैं तिनका जाग्रत्‌विषै निद्राकी निवृत्तिसैं अभाव होवै है । तैसैं अविद्यारूप निद्रासैं प्रतीत जो होवै हैं कर्म कर्त्ता फल तिनका बी ज्ञानदशारूप जाग्रत्‌विषै अविद्याकी निवृत्तितैं अभाव होवै है । औ ज्ञान विना अभाव होवै नहीं ॥ औ--

१ इच्छाके अभावतैं जो कर्मका फलभोग होवै नहीं तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्या होवैगा ॥

काहतैं ? "फलभोग विना अज्ञानीके कर्मकी निवृत्ति होवै नहीं' यह ईश्वरका संकल्प है। जो इच्छाके अभावतैं करे कर्मका फल होवै नहीं तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्या ही होवैगा औ "सत्यसंकल्प ईश्वर है" यह वार्त्ता शास्त्रमें प्रसिद्ध है। यातैं "इच्छाके अभावतैं पूर्व करे काम्यकर्मका फल होवै नहीं" यह वार्त्ता विरुद्ध है।

२ जो इच्छाके अभावतैं ही काम्यकर्मफल नहीं होवै तौ अशुभकर्मका फल किसीकूं बी नहीं हुवा चाहिये। काहेतैं ? अशुभकर्मका फल दुःख है, ताकी किसीकूं बी इच्छा है नहीं। यातैं ज्ञान विना कर्मके फलका अभाव होवै नहीं ॥ और-

॥ ८९ ॥ जो पूर्व कह्या-"जैसें कर्मके अनुष्ठानकालमें जो इच्छारहित पुरुष है ताकूं कर्मका फल वेदांतमतमें अंगीकार नहीं कन्या। तैसें कर्मके अनुष्ठानसैं अनंतर बी जो पुरुषकी इच्छा दूरि होय जावै तौ कर्मका फल होवै नहीं" ॥

सो वार्त्ता बी वेदांतमतकूं नहीं जानिके कही है। काहेतैं ? फलकी इच्छासहित जो कर्म करै अथवा फलकी इच्छारहित जो कर्म करै हैं तिनकूं कर्मका फलभोग तौ निश्चय होवै है। परंतु इच्छारहित कर्मसैंअंतःकरण शुद्ध होवै है औ इच्छासहित जो कर्म करै है ताकूं केवल भोग तौ होवै है परंतु अंतःकरण शुद्ध होवै नहीं ॥

१ "जो इच्छारहित कर्म करनैतैं शुद्ध अंतःकरण होयके श्रवणतैं ज्ञान होय जावै ताकूं तौ कर्मका फल होवै नहीं" औ-

२ "जानै कर्म तौ फलकी इच्छारहित किये हैं। परंतु श्रवणके अभावतैं अथवा किसी अन्यनिमित्ततैं ज्ञान होवैं नहीं। ताकूं तौ इच्छारहित कर्मके फलका भोग दूरि होवै नहीं" यह वेदांतका सिद्धांत है। यातैं ज्ञानसैं विना कर्मका फलभोग दूरि होवै नहीं ॥ और-

॥ ९० ॥ पूर्व कह्या जो "प्रायश्चित्तसैं संपूर्ण अशुभकर्मका नाश होवै है" सो वार्त्ता बी बनै नहीं। काहेतैं ? अनंतकल्पके जो अशुभकर्म हैं तिनका एक जन्मविषै प्रायश्चित्त बनै नहीं औ गंगास्नान औ ईश्वरका नामउच्चारणसैं आदि लेके सर्वपापके नाशके जो साधारणप्रायश्चित्त कहे हैं सो बी ज्ञानके ही साधन हैं यातैं सर्वपापके नाशक कहे हैं, यातैं ज्ञानसैं ही सर्वपापका नाश होवै है ॥ और-

॥ ९१ ॥ पूर्व कह्या जो "नित्यनैमित्तिककर्मके करनैतैं जो क्लेश होवै है" सो पूर्वसंचित निषिद्धकर्मका फल है। यातैं संचितनिषिद्धकर्मका फल और होवै नहीं ॥

सो वार्त्ता बी बनै नहीं। काहेतैं ? अनंत प्रकारके संचित निषिद्ध जो कर्म हैं तिनका फल बी अनंत प्रकारका दुःख है। केवल कर्मके अनुष्ठानका क्लेश ही तिनका फल बनै नहीं ॥ और-

॥ ९२ ॥ पूर्व कह्या जो "संपूर्ण संचित काम्यकर्मतैं एक ही शरीर होवै है"

॥ १२३ ॥ भोग, प्रायश्चित्त औ ज्ञान इन तीनसैं कर्मकी निवृत्ति होवै है। याका चतुर्थ कारण नहीं ॥

१ तिनमैं प्रारब्धकर्मकी भोगसैं निवृत्ति होवै है ॥ औ-

२ क्रियमाणकर्मकी प्रायश्चित्तसैं औ ज्ञानसैं बी निवृत्ति होवै है। औ-

३ संचितकर्मकी किंचित्निवृत्ति साधारणप्रायश्चित्तसैं होवै है। संपूर्णनिवृत्ति ज्ञानसैं होवै है ॥

सो वार्ता बी बनै नहीं। काहेतें? संचित काम्यकर्म अनंत हैं, तिनका एकजन्मविषै भोग बनै नहीं ॥ औ–

एकपुरुषकूं एककालमैं नानाशरीरसैं जो भोग कह्या सो बी सिद्धयोगी विना औरकूं बनै नहीं औ "सिद्धयोगीकूं बी और तौ संपूर्ण सामर्थ्य होवै है। परंतु ज्ञान विना मोक्ष तौ होवै नहीं" यह वेदका सिद्धांत है ॥

इस रीतिसैं काम्यकर्म औ निषिद्धकर्मकूं त्यागिके जो केवल नित्यनैमित्तिककर्म अज्ञानी करै ताकूं नित्यनैमित्तिककर्मका फल भोगनैके वास्ते औ पूर्व जो शुभअशुभकर्म करे हैं तिनका फल भोगनैके वास्ते अनंत शरीर होवैंगे। मोक्ष होवै नहीं। यातें ज्ञानद्वारा बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन बनै है ॥ जैसैं स्वप्नविषै जो मिथ्यापदार्थ प्रतीत होवै हैं तिनकी जाग्रत् विना निवृत्ति होवै नहीं, तैसैं बंध बी मिथ्या प्रतीत होवै है ताकी बी ज्ञानरूप जाग्रत विना निवृत्ति होवै नहीं ॥

॥ ९३ ॥ संबंधमंडन (४) ॥

॥ ग्रंथका आरंभ बनै है ॥

इस रीतिसैं ग्रंथके अधिकारी, विषय, प्रयोजन संभवै हैं औ अधिकारी आदिकनके संभवतैं संबंध बी संभवै है, यातैं ग्रंथका आरंभ बनै है ॥

॥ दोहा ॥

दादू दीनदयाल जू,
सत सुख परमप्रकाश।
जामैं मतिकी गति नहीं,
सोई निश्चलदास ॥ १९ ॥

इति श्रीविचारसागरे अनुबंधविशेषनिरूपणं नाम द्वितीयस्तरंगः समाप्तः ॥ २ ॥





॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ तृतीयस्तरंगः ॥ ३ ॥



॥ अथ श्रीगुरुशिष्यलक्षण ॥ ९४-९६ ॥
औ
॥ गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपणम् ॥९७-१०८॥

॥ ९४ ॥ ग्रंथारंभकी प्रतिज्ञा ॥

॥ दोहा ॥

पेख च्यारि अनुबंधयुत,
पढै सुनै यह ग्रंथ ।
ज्ञानसहित गुरुसैं जु नर,
लहै मोछको पंथ ॥ १ ॥

टीकाः–चारिअनुबंधसहित ग्रंथकूं जानिके ज्ञानसहित गुरुसैं जो पुरुष पढ़ै अथवा एकाग्रचित्तकरिके सुनै सो पुरुष मोक्षका पंथ जो ज्ञान है ताकूं प्राप्त होवै ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

अनयासहि मति-भूमिमैं,
ज्ञौन चिमन आबाद ।
है इहि कारन कहत हूं,
गुरू–सिष्य–संवाद ॥ २ ॥

टीकाः–गुरुशिष्यके संवादसैं अर्थनिरूपण करनैतैं श्रोताकूं बोध सुखसैं होवै है, इस कारणतैं गुरुशिष्यके संवादसैं ग्रंथका आरंभ करिये है ॥ २ ॥

॥ ९५ ॥ अथ श्रीगुरुलक्षण ॥

॥ चौपाई ॥

वेदअर्थकूं भलै पिछानै ।
आतम ब्रह्मरूप इक जानै ॥
भेद पंचकी बुद्धि नसावै ।
अद्वय अमल ब्रह्म दरसावै ॥३॥
भव मिथ्या मृगतृषा समाना ।
अनुलव इम भाखत नहीं आना॥
सो गुरु दे अद्भुतउपदेसा ।
छेदक सिखा नलुंचित केसा॥४॥

टीकाः–" वेदके अर्थकूं भले प्रकारसैं पिछानै " यह कहनैसैं अधीतवेद आचार्य होवै है यह कह्या ॥ औ जीवब्रह्मकी एकता निश्चयकरिके जानै, यातैं आत्मज्ञानविषै जाकी

॥ १२४ ॥ ज्ञानरूप चिमन कहिये बगीचा । आबाद है कहिये प्रफुल्लित होवै ॥

स्थिति होवै सो आचार्य होवै है । यह कह्या । जो वेद पढ़्या औ ज्ञानविषै जाकी निष्ठा न होवै सो आचार्य नहीं है औ ज्ञानविषै जाकी निष्ठा होवै औ वेद नहीं पढ़्या सो बी आप तौ मुक्त है परंतु उपदेश करनै योग्य आचार्य नहीं है। काहेतैं ? वाकूं जिज्ञासुकी शंका मेटनैकी युक्ति नहीं आवै है ॥ जाके चित्तविषै शंका उठै नहीं ऐसा जो उत्तमसंस्कारवाला जिज्ञासु है ताके तौ उपदेश करनैविषै समर्थ है बी । परंतु सर्वके उपदेश करनै योग्य नहीं, यातैं आचार्य नहीं । किंतु--

१ अधीतवेद होवै । औ--

२ ज्ञानविषै जाकी निष्ठा होवै ।

सो आचार्य कहिये है ॥ औ-

३ शिष्यकी बुद्धिमैं भान जो होवै पंचप्रकारका भेद ताकूं नानायुक्तिसैं दूरि करनैविषै समर्थ होवै ॥ जीवईशका भेद, जीवनका परस्पर भेद, जीवजड़का भेद, ईशजड़का भेद, जड़जड़का भेद, यह पंचप्रकारका भेद है । ताकूं खंडन करै । काहेतैं ? भेद भयका हेतु है । यातैं भेदका निराकरण अवश्य कर्त्तव्य है ॥

४ भेदका निराकरणकरिके अद्वय औ अमल कहिये अविद्यादिमलरहित जो ब्रह्म ताकूं दरसावै कहिये आत्मरूपकरिके साक्षात्कार करवावै ॥ औ--

५ सर्वसंसारकूं मिथ्यारूपकरिके उपदेश करै ॥

सो अद्भुतउपदेश दैनैवाला आचार्य कहिये है ॥ औ केवल आप मुंडन कराइके शिष्यकी शिखा छेदनमात्र करनैवाला अथवा और कोऊसंप्रदायके चिह्नमात्रसैं अंकित करनैवाला आचार्य नहीं कहिये है ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

करत मोछ भवग्राहतैं,
दे असि निज उपदेस ।
सौ दैसिक बुधजन कहत,
नहिं कृत गैरिकबेस ॥ ५ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ५ ॥

॥ ९६ ॥ शिष्यके लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

दैसिकके लच्छन कहे,
श्रुतिमुनि वच अनुसार ।
सो लच्छन हैं सिष्यके,
है जिनतैं अधिकार ॥ ६ ॥

॥ १२९ ॥ पंचभेदके खंडनकी युक्तियां यह हैं:-

१ जीवईशका भेद कल्पित है; अविद्यामायारूप उपाधिकृत होनैतैं, घटाकाशमठाकाशके भेदकी न्यांई ॥

२ जीवनका परस्पर भेद कल्पित है, साभास अंतःकरणरूप उपाधिकृत होनैतैं, नाना घटाकाशनके भेदकी न्यांई ॥

३ जीवजड़का भेद कल्पित है। साभास अंतःकरण औ निराभास नामरूपमय उपाधिकृत होनैतैं; स्वप्नगत चरअचरकी न्यांई॥

४ ईशजड़का भेद कल्पित है, नामरूपमय उपाधिकृत होनैतैं; रज्जुविषै कल्पित सर्पदंडादिकके भेदकी न्यांई ॥

ये पांचप्रकारके अनुमान पंचभेदके खंडनमैं युक्तियां हैं ॥

टीकाः-शास्त्रके अनुसार दैशिक कहिये गुरु ताके लक्षण कहे औ जिन साधनसैं ग्रंथमैं अधिकार होवै सो साधन शिष्यके लक्षण हैं ॥ याका यह अभिप्राय हैः-जो अधिकारीके लक्षण[१२६] पूर्व कहे सोई लक्षण शिष्यके जानि लेनै ॥ ६ ॥

॥९७॥ ॥ अथ गुरुभक्तिका फलवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

ईश्वरतैं गुरुमैं अधिक,
धारै भक्ति सुजान ।
बिन गुरुभक्ति प्रवीनहू,
लहै न आतमज्ञान ॥ ७ ॥

टीकाः-सुजान पुरुष गुरुमैं ईश्वरसैं अधिक भक्ति करै । काहेतैं ? जो सर्वशास्त्रमैं प्रवीण बी पुरुष होवै सो बी गुरुके उपदेश विना ज्ञानकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ ७ ॥

जो पूर्व दोहेमैं बात कही सोई दृष्टांतसैं प्रतिपादन करै हैंः-

॥ दोहा ॥

वेद उदधि बिन गुरु लखै,
लागै लौन समान ।
बादर गुरुमुख द्वार ह्वै,
अमृतसैं अधिकान ॥ ८ ॥

टीकाः-वेदरूपी उदधि कहिये जो समुद्र है, सो गुरु विना लौनके समान क्षार है ॥ जैसैं क्षारसमुद्रमैं पैठिके वाके जलकूं जो पान करै सो केवल क्षारताकूं अनुभव करै है औ तासूं क्लेशकूं प्राप्त होवै है । तैसैं गुरु विना जो वेदके अर्थकूं विचारै हैं, सो भेदरूपी क्षारकूं अनुभव करिके जन्ममरणरूपी खेदकूं प्राप्त होवै हैं ॥ इसी कारणसैं रामानुज औ मध्वसैं आदि लेके जो नानापुरुष हुए हैं तिनोंने वेदके अर्थका विचार बी किया है, परंतु गुरु द्वारा नहीं किया । यातैं भेदविषै निश्चय करिके जन्ममरण रूपी खेदकूं ही प्राप्त भये । मुक्तिरूप आनन्द उनकूं प्राप्त नहीं भया ॥

यद्यपि रामानुज आदि जो भये हैं, तिनोंनैंबी वेद अपनै अपनै गुरुसैं ही पढ़िके विचार्या है औ विचारिके व्याख्यान किया है । तथापि जिनके पास उनोंनैं वेद पढ़्या सो गुरु नहीं। काहेतैं " जो जीव ब्रह्मकी एकताका उपदेश करै सो गुरु होवै है" यह पूर्व गुरुलक्षणके प्रसंगमैं कहि आये औ उनके जो पाठक हुवे हैं सो जीव-ब्रह्मका भेद उपदेश देनैवाले हुवे हैं, यातैं उनके विषै जो गुरुशब्दका प्रयोग करै है, सो अर्हतके समान करै है ॥ जैसैं अर्हतके शिष्य अर्हतकूं गुरु कहै हैं । परंतु अर्हत गुरुपदका विषय[१२७] नहीं है । तैसैं भेदवादी पुरुषनके जो शिष्य हैं सो अपनै पाठकोंकूं गुरु कहै हैं परंतु सो गुरु नहीं हैं । यातैं रामानुजसैं आदि लेके जो भेदवादी हुवे हैं, तिनोंनै गुरुद्वारा विचार नहीं किया । इस कारणतैं भेदमैं अभिनिवेश करिके जन्ममरण-रूपी क्लेशकूं ही प्राप्त भये ॥

तैसैं और बी जो कोऊ पूर्वलक्षणयुक्त गुरुसैं विना आप ही वेदके अर्थका विचार करै अथवा भेदवादी पुरुषसैं पढ़िके विचारै, सो बी भेदरूपी क्षारकूं अनुभवकरिके जन्ममरण-रूपी क्लेशकूं अनुभव करै है । यह दोहेके पूर्वार्धका अर्थ है ॥ औ-

---

॥ १२६ ॥ विवेकादिसाधनरूप अधिकारीके लक्षण हैं, सोई पूर्व प्रथमतरंगविषै कहे ॥

॥१२७॥ विषय कहिये अर्थ नहीं है ॥

बादररूपी ब्रह्मविद्गुरुके मुखद्वारा जो सुनिके विचारै ताकूं अमृतसैं बी अधिक आनंदका हेतु वेद होवै है ॥ जैसैं समुद्रका जल स्वरूपसैं क्षार है औ बादरद्वारा मधुर होवै है तैसैं वेदका अर्थ ब्रह्मज्ञानी गुरुद्वारा आनंदका हेतु है ॥ ८ ॥

॥ ९८ ॥ ज्ञानी गुरुसैं वेदअर्थके पठन औ श्रवणकी योग्यता ॥

पूर्व दोहेमें यह बात कही जो "गुरुसैं पढ्या जो वेदका अर्थ है ताके विचारसैं मुक्तिरूपी फल प्राप्त होवै है। तासौं गुरु ज्ञानी होवै अथवा अज्ञानी होवै ऐसा विशेष नहीं कह्या, सो अब कहै हैं:-"यद्यपि ज्ञानहीन गुरु नहीं" यह पूर्व कहि आये तथापि पूर्व कही वार्ताकूं दृष्टांतसैं प्रतिपादन करै हैं:-

॥ दोहा ॥

दृतिपुट घट सम अज्ञजन,
मेघसमान सुजान।
पढ़ै वेद इही हेतुतैं,
ज्ञानीपैं तजि आन ॥ ९ ॥

टीकाः--

१ अज्ञ कहिये अज्ञानी जो जन हैं सो दृतिपुट कहिये मसक औ चरसआदि जो चर्मपात्र अथवा घटद्वारा ग्रहण किया जो समुद्रका जल सो विलक्षण स्वादका हेतु नहीं है तैसैं अज्ञानी पुरुषद्वारा ग्रहण किया जो वेदरूपी समुद्रका अर्थरूपी जल सो विलक्षण आनंदका हेतु नहीं। यातैं अज्ञानी पाठक चर्मपात्र औ घटके समान है ॥ औ-

२ सुजान कहिये ज्ञानी मेघके समान है। यह वार्ता पूर्व प्रतिपादन करी है ॥

यातैं चर्मपात्र औ घटके समान जो अज्ञानी पाठक है ताकूं त्यागिके मेघसमान जो ज्ञानी ताहीमूं वेदका अर्थ पढ़ै अथवा सुनै ॥ ९ ॥

॥ ९९ ॥ भाषाग्रंथसैं बी ज्ञान होवै है ॥

"ज्ञानवान्के पास वेद पढ़ै" या कहनैतैं यह शंका होवै है:--जो वेदकी श्रुति है तिनही द्वारा जीवब्रह्मका स्वरूप विचारनैतैं ज्ञान होवै है। अन्य संस्कृतग्रंथनसैं औ भाषाग्रंथनसैं ज्ञान होवै नहीं, यातैं भाषाग्रंथका आरंभ निष्फल होवैगा। ताके-

समाधानका

॥ दोहा ॥

ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित,
ताकी बानी वेद।
भाषा अथवा संसकृत,
करत भेदभ्रम छेद ॥ १० ॥

टीकाः-"ब्रह्मवेत्ता जो पुरुष है सो ब्रह्मरूप है" यह वार्त्ता श्रुतिविषै प्रसिद्ध है। यातैं ताकी वाणी वेदरूप है। सो भाषारूप होवै अथवा संस्कृतरूप होवै। सर्वथा भेदभ्रमका छेद करै है ॥ और-

जो कहै हैं:-"वेदके वचन विना ज्ञान होवै नहीं" सो नियम नहीं॥जैसैं आयुर्वेदमें कहे जो रोग औ तिनके निदान औ औषध तिन संपूर्णका अन्य संस्कृतग्रंथनसैं औ भाषाफारसी ग्रंथनसैं ज्ञान होय जावै है तैसैं सर्वका आत्मा जो ब्रह्म ताका ज्ञान बी भाषादिकग्रंथनसैं होवै है॥

इसवास्तै सर्वज्ञ जो ऋषि औ मुनि हुवै हैं तिनोंने स्मृति औ पुराण औ इतिहासग्रंथनमें ब्रह्मविद्याके प्रकरण कहे हैं ॥ जो वेदसैं विना ज्ञान न होवै तौ वे संपूर्ण प्रकरण निष्फल होय जावैंगे। यातैं आत्माके स्वरूपका प्रतिपादक

जो वाक्य है तासूं ज्ञान होवै है । सो वेदका होवै अथवा अन्य होवै । यातैं [128]भाषाग्रंथसैं बी ज्ञान होवै है, यह वार्त्ता सिद्ध हुई ॥ १० ॥

॥१००॥ जिज्ञासुकूं ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी सेवाकी कर्तव्यता ॥

॥ दोहा ॥

बानी जाकी वेद सम, कीजै ताकी सेव ।
ह्वै प्रसन्न जब सेवतैं, तब जानै निज भेव ॥ ११ ॥

टीकाः—जा ब्रह्मवेत्ताकी वाणी कहिये वचन वेदके समान है, ता ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी जिज्ञासु सेवा करै । काहेतैं ? सेवातैं जब आचार्य प्रसन्न होवै तब निजभेव कहिये अपना स्वरूप जानै ॥ यह कहनेतैं यह वार्त्ता जनाईः—जो आचार्यकी सेवा है सो ईश्वरकी सेवासैं बी अधिक है । काहेतैं ?

॥ १२८ ॥ "भाषाग्रथसैं ज्ञान होवै नहीं" ऐसा आग्रह करै ताकूं पूछे हैंः—१ भाषाग्रन्थ वेदके अनुसारी नहीं, यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं. २ अथवा वे भाषारूप हैं यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं. ३ वा अवतारशरीररचित नहीं, यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं. ४ वा अशुद्ध हैं यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं ? चारि विकल्प हैं । तिनमैं—

१ "वेदके अनुसारी नहीं" यह प्रथम पक्ष कहै तौ (१) वेदके पाठके अनुसारी नहीं । (२) वा वेदके अर्थके अनुसारी नहीं ?

(१) जो "पाठके अनुसारी नहीं" ऐसें कहो तौ अन्यसंस्कृतग्रथ बी वेदपाठके अनुसारी नहीं । यातैं तिनसैं बी ज्ञान न हुवा चाहिये ॥ औ—

(२) "जो वेदके अर्थके अनुसारी भाषाग्रंथ नहीं ऐसैं कहौगे तौ सो बनै नहीं । काहेतैं ? जैसैं केईक संस्कृतग्रंथ वेदअर्थके अनुसारी हैं तैसैं केईक प्राकृत-ग्रंथ बी वेदअर्थके अनुसारी हैं । यातैं जैसैं आयुर्वेदके अनुसारी अन्यसस्कृत औ प्राकृतग्रंथनमैं औषध आदिकका ज्ञान होवै है तैसैं वेदअर्थके अनुसारी सस्कृत औ प्राकृतग्रंथनसैं ज्ञान होवै है ॥

२ "जो भाषाग्रंथ भाषारूप हैं यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं " ऐसैं कहौगे तौ जैसैं संस्कृतग्रथ देव-भाषारूप हैं तैसैं प्राकृतग्रंथ नरभाषारूप हैं, भाषापना दोनूंमैं तुल्य है ॥

३ जो "भाषाग्रंथ अवतारशरीररचित नहीं, यातैं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं" ऐसैं कहोगे तौ केइक संस्कृतग्रंथ बी अवताररचित नहीं । तिनतैं बी ज्ञान न हुवा चाहिये ॥

४ जो कहो "भाषाग्रंथ अशुद्ध हैं" तो जैसैं याके ४०१ के अंकउक्तरीतिसैं प्राकृतके नियमसैं संस्कृतग्रंथ अशुद्ध हैं तैसैं संस्कृतके नियमसैं प्राकृत-ग्रंथ अशुद्ध हैं । अशुद्धता दोनूंमैं तुल्य है ॥

इस रीतिसैं भाषाग्रंथसैं ज्ञान होवै नहीं, यह मानना हठमात्र है ॥ इसी अभिप्रायतैं नानक दादूजी रामदासस्वामी एकनाथस्वामी ज्ञानूबाआदिक अनेक महात्मा पुरुषोंने प्राकृत वाणी रची है,सो जैसैं कल्याण-कारक है तैसैं आधुनिक ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं जे प्राकृत ग्रंथ किये हैं, करीते हैं औ करियेंगे, वे सर्व संस्कृतके अभ्याससैं रहित अधिकारी पुरुषनके ज्ञानद्वारा कल्याणके हेतु हैं ॥ औ—

अप्पयदीक्षितपंडितने सिद्धांतलेशनामक ग्रंथविषे अपभ्रंशितशब्दके उच्चारणकी निषेधक श्रुतिका प्रमाण देकै जो भाषाग्रंथनका निषेध किया है सो अपने पांडित्यकी प्रबलताके लिये किया है । काहेतैं ? श्रीव्यास-रचित सूतसंहिताविषे "संस्कृतप्राकृतकारि औ गद्य-पद्य अक्षरोंकारि अरु देशभाषाके अक्षरोंकारि जो बोध करै सो गुरु कहा है" इस अर्थवाले वाक्यकारि प्राकृत भाषासैं बी बोध होवै है । यह सूचन किया औ सर्वथा प्राकृतभाषा अनुचरणीय होवै तौ सर्व लौकिक व्यवहार औ शास्त्रव्याख्यान आदिक वैदिक व्यवहारका लोप होवेगा औ अनादिकालिक भाषाव्यवहारका सर्वथा निषेध बनै नहीं । यातैं परिशेषतैं उक्त-

१ जो ईश्वरकी सेवा है सो अदृष्टफलका हेतु है। औ—

२ जो आचार्यकी सेवा है सो अदृष्टफल औ दृष्टफल दोनूंका हेतु है ॥

(१) जो वस्तु धर्मअधर्मकी उत्पत्तिद्वारा फलका हेतु होवै, सो अदृष्टफलका हेतु कहिये है ॥ औ—

(२) जो वस्तु धर्मअधर्मकी उत्पत्तिसैं विना साक्षात्फलका हेतु होवै सो दृष्टफलका हेतु कहिये है ॥

१ ईश्वरकी जो सेवा है सो धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप फलका हेतु है, यातैं ईश्वरकी सेवा अदृष्टफलका हेतु है ॥ औ—

२ आचार्यकी सेवा धर्मकी अपेक्षा विना आचार्यकी प्रसन्नताकरिके उपदेशरूप फलका हेतु है। यातैं दृष्टफलका हेतु है औ धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरणकी शुद्धिरूप फलका हेतु है। यातैं अदृष्टफलका बी हेतु है ॥

इस रीतिसैं आचार्यकी सेवा ईश्वरकी सेवासैं बी उत्तम है। यातैं जिज्ञासु सर्वप्रकारसैं ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी सेवा करै ॥ ११ ॥

॥ १०१ ॥ ॥ अथ आचार्यसेवाप्रकार ॥

॥ सोरठा ॥

ह्वै जब ही गुरुसंग,
करै दंड जिमि दंडवत।
धारै उत्तमअंग,
पावन पादसरोज रज ॥ १२ ॥

टीकाः—जब गुरु प्राप्त होवै तब दंडकी न्यांई [129]सौष्टांगप्रणाम करै औ पावन कहिये पवित्र जो हैं पादरूपी सरोजकमल, तिनकी रज जो धूरि, ताकूं उत्तमअंग कहिये मस्तक ऊपर धारै ॥ १२ ॥

॥ चौपाई ॥

गुरु समीप पुनि करिये वासा।
जो अति उत्कट ह्वै जिज्ञासा ॥
तन मन धन वच अर्पी देवै।
जो चाहै हिय बंधन छेवै ॥ १३ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ १३ ॥

॥१०२॥ ॥ अथ तनअर्पणप्रकार ॥ (२)

तनकरि बहु सेवा विस्तारै।
आज्ञा गुरुकी कबहुँ न टारै ॥

॥ १०३ अथ मनअर्पणप्रकार ॥ (२)

मनमैं प्रेम[130] रामसम राखै।
ह्वै प्रसन्न गुरु इम अभिलाखै ॥१४॥

—श्रुतिका यज्ञसंबंधी व्यवहारविषै अपभ्रंशितशब्दके उच्चारणका निषेध तात्पर्यार्थ है। यह शिष्टपुरुषनका अभिप्राय है ॥

॥ १२९ ॥ दो पाद, दो जांनु, दो हस्त, हृदय औ शिर, इन अष्टअंगनकूं भूमिविषै लगायके जो दंडकी न्यांई दीर्घ नमस्कार करिये है, सो साष्टांग प्रणाम है ॥

॥ १३० ॥ प्रेम जो भक्ति सो राम कहिये परमेश्वर ताके सम कहिये तुल्य राखै ॥ अर्थ यह जो गुरुकूं परमेश्वर जानिके ताकी भक्ति करै। यामैं यह श्रुतिप्रमाण हैः—जिसकूं देवविषै परम भक्ति है औ जैसी देवविषै है तैसी गुरुविषै बी परमभक्ति है। तिस महात्माकूं ये कहे जो ब्रह्मआत्माकी एकतारूप वेदके अर्थ, वे आप ही प्रकाशते हैं ॥

दोषदृष्टि स्वपनै नहिं आनै ।
हरि हर ब्रह्म गंग रवि जानै ॥[१३१]
गुरु मूरतिको हियमैं ध्याना ।
धारै जो चाहै कल्याना ॥ १५ ॥

॥ १०४ ॥ अथ धनअर्पणप्रकार ॥ (३)

पत्नी पुत्र भूमि पसु दासी ।
दास द्रव्य गृह व्रीहि विनासी ॥
धनपद इन सबहिनकूं भाखै ।
ह्वै गुरुसरन दूरि तिहि नाखै ॥१६॥

॥ सोरठा ॥

धनअर्पनको भेव,
एक कह्यो सुन दूसरो ।
ह्वै गृहस्थ गुरुदेव,
याज्ञवल्क्य सम देह तिहिं॥१७॥

टीका:--

१ पत्नीसैं आदि लेके व्रीहि कहिये धान्यपर्यंत सारे धन कहिये हैं, तिन सर्वकूं त्यागिके त्यागी जो गुरु है ताके सरणै होवै । यह धनअर्पण कहिये है । काहेतैं ? गुरु त्यागी है, सो आप तौ अंगीकार करै नहीं परंतु तिन गुरुकी प्राप्तिवास्ते धनका त्याग किया है, यातैं ऐसा जो त्याग है सो बी गुरुकूं ही अर्पण कहिये है ॥ औ-

२ गृहस्थ जो गुरु होवैं तिनकूं समग्र चढ़ाइ देवै । यह दूसरे प्रकारका धनअर्पण कहिये है । यामैं--

कोउ शंका करै हैः-जो ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थ नहीं होवै हैं ।

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ? याज्ञवल्क्य औ उद्दालकसैं आदि लेके ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थ ही वेदविषै बहुत सुनै जावै हैं । यातैं गृहस्थ बी आचार्य संभवै है ॥ १७ ॥

॥१०५॥ अथ वाणीअर्पणविषै छंद॥(४)

भाखत गुनगन गुरुके बानी सुद्ध ।
दोष न कबहुँ अर्पन करि इम बुद्ध ॥

॥१०६॥ शिष्यका गुरुके संबंधमैं व्यवहार ॥ १०६-१०८ ॥

॥ सोरठा ॥

जो चाहै कल्यान,
तन मन धन वच अरपि इम ।
बसै बहुत गुरुस्थान,
भिच्छातैं जीवन करै ॥१९॥

टीका:-जो पुरुष अपना कल्याण चाहै सो पूर्व रीतिसैं तनआदि अर्पण करिकै आप बहुतकाल गुरु जहां होवै ता स्थानविषै वा समीपमैं वास करै औ आप भिक्षातैं[१३२] जीवन कहिये प्राण धारण करै ॥ १९ ॥

॥ १३१ ॥ इहा यह रहस्य हैः-

१ गुरु जब शिष्यके ऊपर वत्सला करै, तब ताकूं **हरिरूप** कहिये विष्णुरूप जानै ॥

२ गुरु जब क्रोध करै तब ताकूं **हररूप** कहिये शिवरूप जानै ॥

३ गुरु जब राजसी व्यवहारविषै तत्पर होवै तब ताकूं **ब्रह्मरूप** कहिये ब्रह्मारूप जानै ॥

४ गुरु जब शांतिविषै स्थित होवै तब ताकूं **गंगरूप** कहिये गंगादेवीरूप जानै ॥

५ गुरु जब वचनरूप किरणोंकारि भ्रमसंदेहसहित अज्ञानकूं दूरि करै तब **रविरूप** कहिये सूर्यरूप जानै ॥

इस रीतिसैं ब्रह्मवेत्ता गुरुविषै शिष्य सर्वदा ईश्वरभाव राखै । स्वप्नविषै बी दोषदृष्टि ल्यावै नहीं ॥

॥ १३२ ॥ यह जो रीति कही सो ब्रह्मचारी वा त्यागी शिष्यकी है । गृहस्थकी नहीं ॥

॥ १०७ ॥ ॥ चौपाई ॥

सो भिच्छा धरि दैसिक आगै।
निज भोजनकूं नहिं पुनि मागै ॥
जो गुरु देइ तु जाठर डारे।
नहिं दूजे दिन वृत्ति संभारे ॥ २० ॥

टीकाः--जो भिक्षाका अन्न शिष्य ल्यावै सो आपही भोजन नहीं करि लेवै । किंतु दैशिक जो गुरु हैं तिनके आगे धरि देवै औ भिक्षा गुरुके आगे धरिके अपनै भोजनकूं गुरुसैं मांगै नहीं औ एक दिनमें दूसरी बार भिक्षा ग्राममैं बी मांगै नहीं । किंतु गुरु जो कृपा करिके देवै तौ भोजन करै औ गुरु जो शिष्यकी श्रद्धाकी परीक्षाके निमित्त नहीं देवै तौ दूसरे दिन वृत्ति जो भिक्षा ताकूं संभारै ॥ २० ॥

॥ दोहा ॥

पुनि गुरुके आगे धरै,
भिच्छा सिष्य सुजान।
निर्वेद न जियमैं करै,
जो निज चहै कल्यान ॥ २१ ॥

टीकाः—निर्वेद नाम ग्लानिका है । अन्य अर्थ स्पष्ट ॥ २१ ॥

॥ १०८ ॥ ॥ चौपाई ॥

इम व्यवहृत अवसर जब पेखै।
मुख प्रसन्न गुरु सन्मुख लेखै ॥
विनती करै दोउ कर जोरी।
गुरुआज्ञातैं प्रश्न बहोरी ॥ २२ ॥

टीकाः--इस रीतिका व्यवहार करते जब गुरुका अवकाश देखै औ प्रसन्नमुखसैं गुरु जब अपनै सन्मुख देखै तब हाथ जोरिके गुरुकी स्तुति करै औ विनती करैः--हे भगवन् ! "मैं पूछ्या चाहूं हूं" । तब गुरु आज्ञा करै तौ प्रश्न करै ॥ औ—

कदाचित् जन्मांतरके उत्तमकर्मतैं गुरु कृपा करिकै शिष्यकूं तनअर्पणआदि सेवासैं विना ही उपदेश करि देवै तौ विशुद्ध अधिकारीका कल्याण होय जावै है । काहेतैं ? गुरुसेवाके दो फल हैं:--एक तौ गुरुकी प्रसन्नता औ दूसरा अतःकरणकी शुद्धि । सो दोनुंवाके सिद्ध हैं २२

॥ दोहा ॥

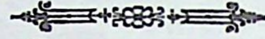
तन मन धन बानी अरपि,
जिहिं सेवत चित लाय।
सकलरूप सो आप है,
दादू सदा सहाय ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीविचारसागरे गुरुशिष्यलक्षण-
गुरुभक्तिफलप्रकारनिरूपणं नाम
तृतीयस्तरङ्गः समाप्तः ॥ ३ ॥



॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ चतुर्थस्तरंगः ॥ ४ ॥



॥ अथ उत्तमाधिकारीउपदेशनिरूपण ॥

॥ दोहा ॥

गुरुसिषके संवादकी,
कहूं व गाथ [१३३]नवीन ।
पेखि जाहि जिज्ञासु जन,
होत विचारप्रवीन ॥ १ ॥

॥१०९॥सुभसंतति राजा औ ताके तत्त्वदृष्टि, अदृष्टि औ तर्कदृष्टि नाम तीनि पुत्रोंकी गाथा ॥ १०९–१११॥

तीनि सहोदर बाल सुभ,
चक्रवती संतान ।
सुभसंततिपितु तिहिं नमैं,
स्वर्ग पताल [१३४]जहान ॥ २ ॥

॥ तीनौ बालनाम ॥

तत्त्वदृष्टि इक नाम अहि,
दूजो कहत [१३५]अदृष्ट ।
तर्कदृष्टि पुनि तीसरो,
उत्तम मध्य कनिष्ठ ॥ ३ ॥

॥ चौपाई ॥

बालपनो सब खेलत खोयो ।
तरुन पाय पुनि मदन बिगोयो ॥
धारि नारि गृह [१३६]मार प्रकासी ।
भोग लहै तिहं सब सुखरासी ॥ ४ ॥

॥ ११० ॥ ॥ दोहा ॥

स्वर्ग भूमि पातालके,
भोगहि सर्व [१३७]समाज ।
सुभसंतति निज तेजबल,
करत राजके काज ॥ ५ ॥
लहि अवसर इक तिहिं पिता,
निजहिय [१३८]रच्यो विचार ।

॥ १३३ ॥ नवीन कहिये अनादि वेदउक्त जनकयाज्ञवल्क्यकी गाथाकी नाम कथाकी न्यांई यह गुरुशिष्यके संवादकी गाथ कहिये गाथा स्वबुद्धिकरि कल्पित है । पुराणादिप्राचीनग्रंथउक्त नहीं, ताकूं व कहिये अब कहूं हूं ॥

॥ १३४ ॥ जहान कहिये मृत्युलोक ॥

॥ १३५ ॥ छंदके वास्ते अदृष्टिके स्थानमैं अदृष्ट पढ़्या है ॥

॥ १३६ ॥ मार कहिये कामदेव ॥

॥ १३७ ॥ समाज कहिये भोगकी सामग्री ॥

॥ १३८ ॥ "निज हिय रच्यो विचार" यह पाठ पलटायके "उपज्यो हिये विचार" ऐसा पाठ पीछे-

सुखस्वरूप अज आतमा,
तासूं भिन्न असार ॥ ६ ॥
इहिं कारन तजि राज यह,
जानूं आतमरूप ।
स्वर्ग भूमि पातालके,
तिहुं पुत्रहु करि भूप ॥ ७ ॥

॥ चौपाई ॥

अस विचार सुभसंतति कीना ।
मंत्रि पेखि[१३९] तिहुं पुत्र प्रबीना ॥
देस इकंत समीप बुलाये ।
निज विरागके वचन सुनाये ॥ ८ ॥
भाख्यो पुनि यह राज सँभारहु ।
इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु ॥
अपर बसहु कासीभुवि स्वामी ।
रहत जहां सिव अंतरजामी ॥ ९ ॥
जिहिं मरतहि सुनि सिव उपदेसा ।
अनयासहि तिहिं[१४०] लोक प्रवेसा ॥
गंग अंग मनु कीर्त्ति प्रकासै ।
उत्तरवाहनि अधिक उजासै ॥ १० ॥

॥ दोहा ॥

करहु राज इम भिन्न तिहुँ,
पालहु निज निज देस ।
बिन विभाग भ्रातानको,
भूमि काज है क्लेस ॥ ११ ॥

॥ इंदव छंद ॥

राजसमाज तजौं सब मैं अब
जानि हिये दुख ताहि असारा ॥
और तु लोक दुखी अपनै दुख
मैं भुगत्यो जग क्लेस अपारा ॥
जे भगवान्[१४१] प्रधान अजान
समान दरिद्रन ते जन सारा ॥
हेतु विचार हिये जगके भग[१४२]
त्यागि लखूं निजरूप सुखारा १२
॥१११॥ वाक्य अनंत कहे इम तात
सुनै तिहुँ भ्रात सुबुद्धिनिधाना ।
बैठि इकंत विचार अपार
भनै पुनि आपसमांहि सुजाना ॥
दे दुखमूल समाज हमैं यह
आप भयो चह ब्रह्म समाना ।

ग्रंथकारनैं ही धरया है ॥ याका यह अर्थ है:—विचार कहिये विवेक, हिये कहिये अपने अंतःकरणमैं, उपज्यो कहिये पूर्वकृतपुण्यपुंजके बलसैं अकस्मात् उत्पन्न भयो ॥

॥ १३९ ॥ मंत्रि पेखि कहिये मत्रीकूं नेत्रकी सैन करिके ॥

॥ १४० ॥ तिहीं लोक प्रवेसा कहिये तिस शिवके लोक कैलासविषै प्रवेश करता है । यह "काशी-मरणान्मुक्तिः" कहिये काशीविषै मरणतैं मुक्ति होवै है, इस श्रुतिका अभिप्राय है ॥

॥ १४१ ॥ इस छंदके तृतीयपादका यह अन्वय-सहित अर्थ है:—जे पुरुष भगवान्‌प्रधान कहिये ऐश्वर्यवानोंके मध्य मुख्य हैं औ अजान कहिये अज्ञानी हैं ते साराजन दरिद्रनसमान कहिये वे सर्वजन दरिद्रीजनोंके तुल्य अतरसैं दुःखी हैं ॥

॥ १४२ ॥ भग नाम ऐश्वर्यका है ॥

सो जन नागर बुद्धिकसागर
आगर दुःखतजै जु जहाना॥१३॥

॥ ११३ ॥ तीनि पुत्रोंका गृहसैं निकसना औ गुरुसैं भेटना ॥

॥ दोहा ॥

यातैं तजि दुखमूल यह,
राज करौ निज काज ।
करि विचार इम गेहतैं,
निकस्यो भ्रातसमाज ॥ १४ ॥
तिहुँ खोजत सद्गुरु चले,
धारि मोछ हिय काम ।
अर्थसहित किय तातको,
सुभसंतति यह नाम ॥ १५ ॥
खोजत खोजत देस बहु,
सुरसरितीर इकंत ॥
तरु पल्लव साखा सघन,
[१४३]बँन तामैं इक संत ॥ १६ ॥
बैठ्यो बट विटपहिं तरे,
[१४४]भद्रामुद्रा धारि ।
जीवब्रह्मकी एकता,
उपदेशत गुन टारि ॥ १७ ॥
[१४५]दोषरहित एकाग्रचित,
सिष्यसंघ परिवार ।
लखि दैसिक उपदेस हिय,
चहुधा करत विचार ॥ १८ ॥
[१४६]मनहुँ संभु कैलासमैं,
उपदेसत सनकादि ।
पेखि ताहि तिहिं लहि सरन,
करी दंडवत आदि ॥ १९ ॥
कियो वास षट्मास पुनि,
सिष्यरीति अनुसार ।
करी अधिक गुरुसेव तिहुँ,
मोछकाम हिय धार ॥ २० ॥
ह्वै प्रसन्न श्रीगुरु तबै,
ते पूछे मृदु बानि ।

॥ १४३ ॥ १ तरुकी सघनता वनकी शोभा है ।
२ शाखाकीं सघनता तरुकी शोभा है । औ–
३ पल्लवकी सघनता शाखाकी शोभा है ।
यह वन तीन प्रकारकी सघनताकरि युक्त है, यातैं अतिशय सुशोभित है ॥

॥ १४४ ॥ हस्तगत अंगुष्ठतर्जनीके संयोगतैं भद्रामुद्रा होवै है । याहीकूं लोपामुद्रा, तर्कमुद्रा औ ज्ञानमुद्रा बी कहते हैं ॥

॥ १४५ ॥ १ चोरी यारी औ हिंसा ये तीन शरीरके दोष हैं ॥
२ निंदा, झूठ, कठोरता औ वाक्चालता ये चारि वाणीके दोष हैं ॥
३ तृष्णा, चिंता औ बुद्धिमन्दता ये तीन मनके दोष हैं ॥
ये नृसिंहतापनीयउपनिषद् उक्त दश दोष हैं । तिनतैं रहित ॥

॥ १४६ ॥ मानों कैलासमैं दक्षिणामूर्तिस्वरूपधारी शिवजी चारि सनकादिकनकूं उपदेश करते हैं यह अर्थ है ॥

[१४७] किहिं कारन तुम तात तिहुँ,
बसहु कौन कह आनि ॥ २१ ॥
तत्त्वदृष्टि तब लखि हिये,
निज अनुजनकी सैन ।
कहै उभय कर जोरि निज,
अभिप्रायके बैन ॥ २२ ॥

॥ ११३॥ तत्त्वदृष्टिकरि प्रश्न करनैंकूं गुरुकी आज्ञाका मागना औ गुरुकरि आज्ञाका देना ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

भो भगवन हम भ्रात तिहु,
सुभसंतति संतान ।
लख्यो चहैं बहु भेव हिय,
दीन नवीन अजान ॥ २३ ॥
जो आज्ञा है रावरी,
तौ हैं पूछि प्रवीन ।
आप दयानिधि कल्पतरु,
हम अतिदुखित अधीन ॥ २४ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ सोरठा ॥

सुनहु सिष्य मम बात,
जो पूछहु तुम सो कहहुँ ।
लहो हिये कुसलात,
संसय कोऊ ना रहे ॥ २५ ॥

॥ ११४ ॥ तत्त्वदृष्टिकी मोक्षइच्छासूचक विनंति ॥

॥ दोहा ॥

गुरुकी लखी दयालुता,
सिष्य हिये भौ चैन ।
काज सिद्ध निज मानि हिय,
भाखे सविनय बैन ॥ २६ ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥ ॥ चौपाई ॥

भो भगवन तुम कृपानिधाना ।
हौ सर्वज्ञ महेस समाना ॥
हम अजानमति कछू न जानैं ।
जन्मादिक संसृति भय मानैं ॥२७॥
[१४८] कर्म उपासन कीने भारी ।
और अधिक जगपासी डारी ॥
आप उपाय कहौ गुरुदेवा ।
है जातैं भवदुखको छेवा ॥ २८ ॥
पुनि चाहत हम परमानंदा ।
ताको कहो उपाय सुछन्दा ॥
जब किरपा करि कहिहौ ताता ।
तब है है हमरे कुसलाता ॥ २९ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! आप कृपानिधान हो औ सदाशिवके समान आप सर्वज्ञ हो ॥ औ

॥ १४७ ॥ हे तात !

१ तुम तिहुं किहिं कारन बसहु ? यह प्रथम प्रश्न है॥
२ कौन कहिये तुम आपसमैं क्या लगतं हौ ? यह द्वितीय प्रश्न है ॥ औ—
३ कह आनि कहिये किसके पुत्र हो ? यह तृतीय प्रश्न है ॥

तत्त्वदृष्टिनैं तेवीसवें दोहाविषै इन तीन प्रश्नोंमैंसैं द्वितीय औ तृतीय प्रश्नका उत्तर पहिले दिया है औ ताके अनंतर प्रथम प्रश्नका उत्तर दिया है ॥

॥ १४८ ॥ पूर्व हमनै सकामकर्म औ उपासना बहुत किये। तिनतैं मोक्षरूप वांछितफल प्राप्त भया नहीं । उलटा संसार बढ़्या । यह अभिप्राय है ॥

हे भगवन् ! हम जन्ममरणसैं आदि लेके जो दुःखरूप संसार है तासैं डरे हैं । ताकी निवृत्तिका आप उपाय कहौ औ परमानन्दकी प्राप्तिका उपाय कहौ ? औ—

हे गुरो ! उपासना औ कर्मके अनन्त अनुष्ठान करे बी, परंतु उनसैं हमारेकूं वांछित फल प्राप्त भया नहीं औ उलटा संसार उनसैं बढ़ता गया, यातैं आप और उपाय बतावौ, जाकरिके हम कृतार्थ होवैं ॥ २९ ॥

॥११५॥ गुरुका उत्तर (मोक्षइच्छाकी भ्रांतिजन्यतापूर्वक महावाक्यका उपदेश)

॥ दोहा ॥

मोछकाम गुरु सिष्य लखि,
ताको साधन ज्ञान ।
वेदउक्त भाषण लगे,
जीवब्रह्म भिद भान ॥ ३० ॥

टीकाः—दुःखकी निवृत्ति औ परमानन्दकी प्राप्तिकूं मोक्ष कहै हैं । ताकी कामना शिष्यके हृदयमैं दखिके ताका साधन जो वेदउक्त ज्ञान है सो कहते भये ॥

यद्यपि ज्ञानका स्वरूप अनेकशास्त्रनविषै भिन्नभिन्न वर्णन किया है तथापि जीवब्रह्मकी भिद कहिये भेद, ताकूं दूरि करनैवाला जो ज्ञान है सोई वेदमैं मोक्षका साधन कह्या है। यातैं ताहीकूं कहै हैं ॥ ३० ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

परमानंद मिलाप तूं,
जो सिष चहै सुजान ।
जन्मादिक दुख नास पुनि,
भ्रांतिजन्य तिहिं मान ॥ ३१ ॥
परमानंद स्वरूप तूं,
नहिं तोमैं दुखलेस ।
अज अविनासी ब्रह्मचित्,
जिन आनै हिय क्लेस ॥ ३२ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! परमानन्दकी प्राप्तिविषै औ जन्ममरणसैं आदि लेके जो दुःखरूप संसार है, ताकी निवृत्तिविषै जो तेरेकूं इच्छा भई है, ता इच्छाकी भ्रांतिसैं उत्पत्ति हुई है। तूं ऐसैं जान । काहेतैं ?

१ तूं आप परमआनन्दस्वरूप है। यातैं ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं ॥ जो वस्तु अप्राप्त होवै ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै है औ अपना जो स्वरूप है सो सदाप्राप्त है ताकी प्राप्तिविषै जो इच्छा सो भ्रांति विना बनै नहीं ॥ औ—

२ जन्मसैं आदि लेके जो संसार है, सो जो कदाचित् होवै तौ वाकी निवृत्तिविषै इच्छा बनै । सो जन्मादिकसंसारका लेश बी तेरे विषै नहीं है। यातैं अनहुये दुःखकी निवृत्तिविषै बी इच्छा भ्रांति विना बनै नहीं ॥ औ—

हे शिष्य ! जन्म औ नाशकरिके रहित जो चेतनरूप ब्रह्म है सो तूं है। यातैं अपनै हृदयविषै जन्मादिक खेद मति भान ॥ ३२ ॥

॥११६॥ प्रश्नः—मेरा आत्मा आनंदरूप होवै तौ विषयसंबंधसे आनंदका आत्माविषै भान नहीं हुवा चाहिये ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

विषयसंग क्यूं भान है,
जो मैं आनँदरूप ।

अब उत्तर याको कहौ,
श्रीगुरु मुनिवरभूप ॥ ३३ ॥

टीकाः-हे भगवन् ! जो मेरा आत्मा आनन्दरूप होवै तौ विषयके सम्बन्धसैं आनन्दका आत्माविषै भान नहीं हुवा चाहिये । यातैं आत्मा आनन्दरूप नहीं, किंतु विषयक सम्बन्धसैं आत्माविषै आनन्द होवै है ॥ ३३ ॥

॥११७॥ उत्तरः—आत्मविमुखकूं अंतर्मुख वृत्तिमैं आनंदका भान । विषयमैं आनंद नहीं ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ चौपाई ॥

आतमविमुख बुद्धि जन जोई ।
इच्छा ताहि विषयकी होई ॥
तासूं चंचल बुद्धि बखानी ।
सुख आभास होइ तहँ हानी ॥३४॥
जब अभिलषित पदारथ पावै ।
तब मति छन विच्छेप नसावै ।
तामैं ह्वै अनंदप्रतिबिंबा ।
पुनि छनमैं बहु चाह विडंबा ॥३५॥
तातैं ह्वै थिरताकी हानी ।
सो अनंदप्रतिबिंब नसानी ॥
विषयसंग इम आनंद होई ।
बिन सतगुरु यह लखै न कोई ॥३६॥

टीकाः-हे शिष्य ! आत्मासैं विमुख है बुद्धि जाकी ऐसा जो पुरुष ताकूं विषयकी इच्छा होवै है ॥ या स्थानविषै जो भोगका साधन होवै सो विषय कहिये है । यातैं धनपुत्रादिकनका बी ग्रहण करि लेना ॥

१ ता विषयकी इच्छातैं बुद्धि चंचल रहै । ता चंचलबुद्धिमैं आत्मस्वरूपआनंदका आभास कहिये प्रतिबिंब नहीं होवै है ॥ औ—

२ जिस विषयकी इच्छा हुई होवै सो विषय याकूं प्राप्त होइ जावै । तब या पुरुषकी बुद्धि क्षणमात्र स्थित होयके अंतर्मुख बुद्धिकी वृत्ति होवै है ॥ ता अंतर्मुखवृत्तिविषै आत्माका स्वरूप जो आनंद, ताका प्रतिबिंब होवै है ॥

तिस आत्मस्वरूप आनंदके प्रतिबिंबकूं अनुभवकरिके पुरुषकूं भ्रांति होवै है जो "मेरेकूं विषयसैं आनंदका लाभ हुवा है । परंतु विषयमैं आनंद है नहीं ॥

१ जो कदाचित् विषयमैं आनंद होवै तौ एकविषयसैं तृप्त जो पुरुष ताकूं जब दूसरे विषयकी इच्छा होवै । तब बी प्रथमविषयसैं आनंद हुवा चाहिये । सो होवै तौ नहीं है औ हमारी रीतिसैं स्वरूपआनंदका तो भान बनै नहीं । काहेतैं ? जो दूसरे विषयकी इच्छाकरिके बुद्धि चंचल है । ताके विषै प्रतिबिंब बनै नहीं ॥

२ किंवा । जो विषयमैं ही आनंद होवै तौ जा पुरुषका प्रियपुत्र अथवा और कोई अत्यंत प्यारा जो अकस्मात् बहुत काल पीछे मिलि जावै तब वाकूं देखते ही प्रथम जो आनंद होवै सो आनंद फेरि सदा नहीं होता । सो सदा ही हुवा चाहिये । काहेतैं ? आनंदका हेतु जो पुरुष

॥ १४९ ॥ विडंबा कहिये आनंदके प्रतिबिंबकूं ठगनै वाली, आत्मस्वरूप आनंदके प्रतिबिंबकूं अनुभव करिके पुरुषकूं विषयमैं आनंदकी भ्रांति कही है ।

सो शुष्क हड्डीकूं चाबिके अपनै मसोड़ेके रुधिरके आस्वादनकरि श्वानकूं हड्डीमैं रुधिरकी भ्रांति होवै है ताकी न्यांई है ॥

है सो वाके समीप है औ हमारी रीतिसैं तौ प्रथम ही आनन्द बनै है। सदा बनै नहीं। काहेतैं ? एकबेरि प्यारेकूं देखिके वृत्ति स्थित होवै है, फेरि वृत्ति और पदार्थमैं लागि जावै है, यातैं चंचल है। यातैं पदार्थमैं आनन्द नहीं ॥

३ किंवा। जो विषयमैं आनन्द होवै तौ समाधिकालविषे जो योगानन्दका भान होवै है सो न हुवा चाहिये ? काहेतैं ? समाधिमैं किसी विषयका सम्बन्ध नहीं है ॥

४ किंवा। जो विषयमैं ही आनन्द होवै तौ सुषुप्तिमैं आनन्दका भान नहीं हुवा चाहिये। काहेतैं ? सुषुप्तिविषै बी किसी विषयका संबंध है नहीं।

यातैं विषयमैं आनंद नहीं, किंतु आत्मस्वरूप आनंद सारे भान होवै हैं ॥ इसी वास्ते वेदमैं लिख्या है:-"आत्मस्वरूप आनंदकूं लेके सारे आनंदवाले होवै हैं ॥ ३६ ॥

॥ दोहा ॥

विषय संगतैं है प्रगट,
आतम आनंदरूप।
सिष्य सुनायो तोहि मैं,
यह सिद्धांत अनूप ॥ ३७ ॥

॥ सोरठा ॥

सो तूं मोहि व भाख,
जो यामैं संका रही।
निज मतिमैं मति राख,
मैं ताको उत्तर कहूँ ॥ ३८ ॥

॥ ११८ ॥ प्रश्नः—ज्ञानीकूं विषयकी इच्छा औ ताके संबंधसैं पूर्व रीतिसैं सुखका भान होवै है अथवा नहीं ?

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ चौपाई ॥

भो भगवन तुम दीनदयाला।
मेट्यो मम संसय ततकाला ॥
यामैं कछुक रही आसंका।
सो भाखूं अब है निबंका ॥ ३९ ॥
आतमविमुख बुद्धि अज्ञानी।
ताकी यह सब रीति बखानी ॥
ज्ञानी जनको कहौ विचारा।
कोउ न तुम सम और उदारा ॥ ४० ॥

टीकाः—हे भगवन् ! आपनैं पूर्व विषयकै सम्बन्धसैं आत्मानन्दके भानकी जो रीति कही सो अज्ञानी पुरुषकी कही औ ज्ञानीकी नहीं कही। काहेतैं ? आत्मासैं विमुख है बुद्धि जाकी ताका आपनै नाम लिया है। सो आत्मासैं विमुख बुद्धि अज्ञानीकी होवै है, ज्ञानीकी नहीं। यातैं आप अब ज्ञानीका विचार कहो ? जो ज्ञानवानकूं विषयकी इच्छा औ ताके सम्बन्धसैं पूर्वरीति करिके सुखका भान होवै है। अथवा नहीं ? यह वार्ता आप कहो ॥ ४० ॥

॥ ११९ ॥ उत्तरः—द्विविध आत्माविमुख है॥ विषयानंद स्वरूपानंदसैं न्यारा नहीं ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

सुनहु सिष्य इक बात मम,

॥ १५० ॥ समाधिका दृष्टांत सर्वलोकनके अनुभवका विषय नहीं। इस अरुचितैं अन्य दृष्टांत कहते है ॥

सावधान मन कान ।
हैं द्वैविध आतमविमुख,
अज्ञानी रु सुजान ॥ ४१॥
ह्वै विस्मृत व्यवहारमैं,
कबहुँक ज्ञानी संत ।
अज्ञानी विमुखहि रहे,
यह तूं जान सिधंत ॥ ४२ ॥

टीकाः–हे शिष्य ! तूं चित्त औ श्रवणकूं सावधान करके सुन ॥

पूर्व जो हमनै आत्मविमुख कह्या है सो आत्मविमुख अज्ञानी ही नहीं होवै, किंतु ज्ञानवान्‌की बी बुद्धि जब[१५१] व्यवहारमैं आइ जावै तब वह तत्त्वकूं भूलि जावै है ॥ तिस कालविषै ज्ञानवान् बी आत्मविमुख ही होवै है ॥ औ ज्ञानीकी बुद्धि जो सदा आत्माकार ही रहै तौ भोजनादिक व्यवहार न होवै । यातैं आत्मविमुखबुद्धि दोनूंवांकी बनै है ॥

अज्ञानीकी तौ बुद्धि सदा आत्मविमुख है औ ज्ञानीकी बुद्धि आत्मविमुख होवै तिस कालमैं ज्ञानीकूं बी इच्छा औ विषयके संबंधसैं आत्मस्वरूप आनंदका भान अज्ञानीके समान है । परंतु इतना भेद है:–

१ विषयके संबंधसैं जो आनंदका भान होवै है ताकूं ज्ञानी तौ जानै है 'जो यह आनंद है सो मेरे स्वरूपसैं न्यारा नहीं है, किंतु ताका ही आभास है' । यातैं ज्ञानीकूं विषयभोगमैं बी [१५२]समाधि ही है ।। औ–

॥ १५१ ॥ जैसैं जब जाग्रदाकारवृत्ति होवै तब स्वप्नाकारवृत्ति होवै नहीं, जब स्वप्नाकारवृत्ति होवै तब जाग्रदाकारवृत्ति होवै नहीं, तैसैं ज्ञानवान्‌की बुद्धि बी जब आत्माकार होवै तब अनात्माकार होवै नहीं औ जब अनात्माकार होवै तब आत्माकार होवै नहीं ॥

यद्यपि एक अन्तःकरणविषे एककालमैं भिन्न-विषयाकार सामान्यविशेषरूप दो वृत्तियां होवै हैं, तथापि दोनूं विशेषवृत्तियां होवैं नहीं, यातैं अन्य व्यवहारमैं संलग्न पुरुषकूं जैसैं संदूक नाम पेटीमैं जानबूजके रखे धनकी विस्मृति होवै है, फेर व्यवहारकी समाप्तिके हुवे ता धनका स्मरण होवै है, तैसैं ज्ञानवान्‌की बी बुद्धि व्यवहारमैं विशेषसंलग्न होवै तब वाकूं तत्त्वका विस्मरण होवै है, फेर जब व्यवहारसैं उपराम होवै तब ताका ज्यूंका त्यूं स्मरण होवै है । याहीतैं भगवान् भाष्यकारनै शारीरकभाष्यके प्रथम अध्यायगत प्रथमपादमैं कहा है:–"व्यवहारविषै ज्ञानवान् बी पशु नाम अविवेकी जनकी न्यांई व्यवहार करते है" यातैं ऊपर लिख्या जो अर्थ सो घटित है ॥

॥ १५२ ॥ यह जो समाधि कहा सो जानिके संग लिये चोरकी न्यांई विषयविषै दोषदृष्टिरूप विवेकके जागरणकरि औ मिथ्यात्वबुद्धिरूप दृढ वैराग्यके विद्यमान होनैकरि औ बद्धमुक्त महिपालकी न्यांई स्वल्पभोगसैं संतोषकरि औ वध करनै योग्य पुरुषके भोगकी न्यांई परिणाममैं भोगकी दुःखहेतुताके ज्ञानके होनैकरि दृढ रागके अभावतैं औ विषयानंदकी स्वरूपानंदसैं अभिन्नताके मानतैं कहिये आत्मानंदके प्रतिबिंबसैं अतिरिक्त विषयविषै सर्वथा आनंदके अभावके ज्ञानतैं स्वरूपके अनुसंधानरूप समाधिके गुणकी समताकरि "यह पुरुष सिंह है" याकी न्यांई गौण (उपचारमात्र) है ॥

किंवाः–जैसैं बालक स्वपादके अंगुष्ठकूं धावता है औ दंतरहित वृद्धपुरुष अपनै ओष्ठमात्रका चर्वण करता है, सो अन्यविषयभोगका भागी नहीं, तैसैं ज्ञानी बी शास्त्रअविरुद्धविषय–भोगकूं करता हुवा स्वरूपके अनुसंधानतैं रागके अभावतैं ताकूं विषयभोगविषै समाधि कहियें है, सो विक्षेपयुक्त होनैतैं अतिअधम विषयसमाधि है, यातैं श्वानकी खलडीमैं

२ अज्ञानी नहीं जानै है जो मेरा ही स्वरूप आनंद है ॥ औ—

३ दोनूंका स्वरूप आनंद है, विषयसैं केवल अज्ञानीकूं भ्रांति होवै है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

॥ १२० ॥ प्रश्नः—जन्मादिकदुःख कौनविषै है ?

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ चौपाई ॥

हे प्रभु परमानंद बखान्यो ।
मेरो रूप सु मैं पहिचान्यो ॥
नहिं तोमैं भवबंधन लेसा ।
कह्यो आप पुनि यह उपदेसा ॥४३॥
यामैं संका मुहि यह आवै ।
जातैं तव बच हिय न सुहावै ॥
नहिं मोमैं यह बंध पसारो ।
कहौ कौन तौ आश्रय न्यारो ? ॥४४

टीका:—हे भगवन् ! आपनै कह्या—“ तूं परम[१५३]आनंदस्वरूप है ” सो मैं भले प्रकारसैं जान्या ॥ और—

आपनै कह्या जो “ जन्ममरणसैं आदि लेके संसाररूप दुःख तेरे विषै है नहीं । यातैं ताकी निवृत्ति बनै नहीं ”। याके विषै मेरेकूं शंका है:- जो जन्मादिक दुःख मेरे विषै नहीं हैं तौ जाविषै यह संसार है सो मेरेसैं न्यारा कहिये भिन्न आश्रय आप कृपाकारिके बतावो ? जाके विषै संसारदुःख जानिके अपनै विषै नहीं मानू ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

॥१२१॥ उत्तरः—जन्मादिक दुःख कहूँ नहीं ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ सोरठा ॥

सुनहु सिष्य मम बानि,
जातैं तव संका मिटै ।
है जगकी अति[१५४] हानि,
तो मोमैं नहिं औरमैं ॥ ४५ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ४५ ॥

॥१२२ ॥ प्रश्नः—दुःख कहूं नहीं तौ प्रत्यक्ष प्रतीत क्यूं होवै है ?

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

जो भगवन कहुं है नहीं,
जन्म मरन जग खेद ।
है प्रत्यच्छ प्रतीति क्यूं,
कहो आप यह भेद ॥ ४६ ॥

टीका:—हे भगवन् ! जो जन्ममरणसैं

डारे दुग्ध न्यांई याका विषय आदर करनै योग्य नहीं है, किंतु ज्ञानीकूं उपेक्ष्य है, क्षणिकविषयानंद होनैतैं औ देहाभिमानरूप आवरणके अभावतैं शुद्ध-चिन्मात्रवासनाके सद्भावतैं ज्ञानीका मन जहां जावै तहां पादत्राणयुक्त पुरुषकूं चर्मवेष्टित पृथिवीकी न्यांई समाधि है, यह अर्थ बालबोधके नवमउपदेश-विषै हमनै प्रमाणसहित लिख्या है. जिसकूं इच्छा होवै सो तहां देखै ॥

॥ १५३ ॥ आत्मा आनंदरूप है, यह अर्थ आगे षष्ठतरंगगत ३६०—३६३ के अंकमैं कहियेगा ॥

॥ १५४ ॥ जैसैं रज्जूमैं कल्पित सर्पका व्यावहारिक सत्ताकारिके अत्यंतअभाव है, तैसैं ब्रह्ममैं कल्पित जगत्का परमार्थसत्ताकारिके अत्यंतअभाव है, सोई जगत्की अतिहानि कहिये नित्यनिवृत्ति है ॥

आदि लेके संसारदुःख मेरे विषै तथा और विषै कहूं बी नहीं है तौ प्रत्यक्ष प्रतीत क्यूं होवै है?जो वस्तु नहीं होवै सो प्रतीत होवै नहीं । जैसैं वंध्याका पुत्र औ आकाशविषै पुष्प नहीं है तौ प्रतीत होवै नहीं, तैसैं संसार बी नहीं होवै तौ प्रतीत नहीं हुवा चाहिये औ जन्मसैं आदि लेके संसार प्रतीत होवै है, यातैं "जन्मादिकसंसार-रूपी दुःख नहीं है" यह कहना बनै नहीं ॥४६॥

॥ १२३ ॥ उत्तरः—आत्माके अज्ञानसैं प्रतीति । रज्जुसर्पका दृष्टांत ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

आत्मरूप अज्ञानतैं,
ह्वै मिथ्या परतीति ।
जगत स्वप्न नभ नीलता,
रज्जुभुजगकी रीति ॥ ४७ ॥

टीकाः—जन्मादिक जगत् परमार्थसैं नहीं है तौ बी आत्माका ब्रह्मस्वरूपकरिके अज्ञानतैं मिथ्या प्रतीत होवै है । जैसैं स्वप्नके पदार्थ, आकाशमैं नीलता औ रज्जुमैं सर्प परमार्थसैं नहीं हैं औ मिथ्या प्रतीत होवै हैं तैसैं जन्मादिकजगत् परमार्थसैं नहीं है । मिथ्या प्रतीत होवै हैं ॥ ४७ ॥

॥१२४॥ प्रश्नः—रज्जुमैं सर्प कैसै भासै है?

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ चौपाई ॥

मिथ्यासर्प रज्जुमैं जैसैं ।
भाख्यो भव आतममैं तैसैं ॥
कैसै सर्प रज्जुमैं भासै ।
यह संशय मन बुद्धि विनासै ॥४८॥

टीकाः—जैसैं रज्जुमैं सर्प मिथ्या है तैसैं आत्मामैं भवदुःख मिथ्या कह्या । तहां दृष्टांतके ज्ञान विना दार्ष्टान्तका ज्ञान होवै नहीं । यातैं "रज्जुमैं सर्प कैसैं भासै ?" यह दृष्टांतमैं प्रश्न है ॥ ४८ ॥

॥१२५॥अथ प्रश्नअभिप्राय॥१२५-१३०

॥ चौपाई ॥

असतख्याति पुनि आतमख्याती ।
ख्यातिअन्यथा अरु अख्याती ॥
सुने चारिमत भ्रमकी ठौरा ।
मानूं कौन कहो यह [१९६]ब्यौरा ॥ ४९ ॥

टीकाः—जहां रज्जुमैं सर्प औ सीपीमैं रूपा इत्यादिक भ्रम हैं तहां चारि मत सुने हैं:—

१ शून्यवादी असत्यख्याति कहै हैं ॥
२ क्षणिकविज्ञानवादी आत्मख्याति कहै हैं ॥
३ न्याय औ वैशेषिकमतमैं अन्यथा-ख्याति कहै हैं ॥
४ सांख्य औ प्रभाकर अख्याति कहै हैं ॥

॥ १२६ ॥ १ असतख्याति ॥

तहां शून्यवादीका यह अभिप्राय हैः—जेवरी-देशमैं सर्प अत्यंत असत् है । तैसैं अन्यदेशमैं बी अत्यंत असत् है । ऐसैं अत्यंत असतसर्पकी जेवरी-देशमैं प्रतीति होवै है, याकूं असत्यख्याति कहै हैं ॥ अत्यंत असत्यसर्पकी ख्याति कहिये भान औ कैथन है ॥

॥ १९५ ॥ दार्ष्टांतका कहिये सिद्धांतका ॥

॥ १९६ ब्यौरा कहिये श्रेष्ठ । याहीकूं नीका बी कहै हैं ॥

॥ १९७ ॥ असत्ख्यातिका विशेषकथन औ खंडन वृत्तिरत्नावलिके दशम रत्नमैं किया है औ वृत्ति-प्रभाकरके सप्तमप्रकाशमैं किया है ।

॥ १२७ ॥ २ ॥ आत्मख्याति ॥

विज्ञानवादीका यह अभिप्राय हैः—जेवरीदेशमैं तथा अन्यदेशमैं बुद्धिके बाहिर कहूं सर्प है नहीं। सारे पदार्थ बुद्धिसैं भिन्न नहीं किंतु सर्वपदार्थनके आकारकूं बुद्धि ही धारै है। सो बुद्धि क्षणिकविज्ञानरूप है । क्षणक्षणमैं नाश औ उत्पत्तिकूं प्राप्त होवै है जो विज्ञान, सोई सर्वरूप प्रतीत होवै है। याकूं आत्मख्याति कहै हैं ॥ आत्मा कहिये क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धि, ताका सर्परूपसैं ख्याति कहिये भान औ कथन है ॥

॥१२८॥३॥अन्यथाख्याति।१२८-१२९

नैयायिकका औ वैशेषिकका यह अभिप्राय हैः—[१५९]बंबीआदिक स्थानमैं साचा सर्प है, ताकूं नेत्रसैं देखै हैं औ नेत्रमैं दोष हैं ताके बलतैं सम्मुख समीप प्रतीत होवै है ॥ यद्यपि साचा सर्प औ नेत्रके मध्य भीतिआदिक अंतराय हैं तथापि दोषसहित नेत्रतैं अंतरायसहित बी सर्प दीखै है ॥ औ यामैं—

कोउ ऐसी शंका करैः—दोषतैं सामर्थ्य घटै है। बधै नहीं। जैसैं जठराग्निमैं पाचनसामर्थ्य वातपित्तकफदोषतैं घटै है तैसैं नेत्रमैं बी तिमिरादिदोषतैं सामर्थ्य घटी चाहिये औ बंबीआदिक स्थानमैं स्थित सर्पका दोषसहित नेत्रतैं ज्ञान कह्या। तहां शुद्धनेत्रसैं तौ परदेशमैं स्थितका प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं औ दोषसहितसैं होवै है । यातैं "दोषतैं नेत्रका सामर्थ्य अधिक होवै है" यह माननैमैं कोई दृष्टांत नहीं ॥

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं ? किसकूं पित्तदोषतैं ऐसा रोग होवै है जो चतुर्गुणभोजन कियेतैं बी तृप्ति होवै नहीं । जैसैं पित्तदोषतैं जठराग्निमैं पाचनसामर्थ्य बधै है तैसैं नेत्रमैं बी तिमिरादिदोषतैं परदेशमैं स्थित सर्पके प्रत्यक्ष करनेका सामर्थ्य बधै है ॥

इस रीतिसैं बंबीआदिक देशमैं स्थित सर्पका अन्यथा कहिये और प्रकारतैं सम्मुख जेवरीदेशमैं जो ख्याति कहिये भान औ कथन सो [१६०]अन्यथाख्याति कहियै है। औ—

॥ १२९ ॥ [१६१]चिंतामणिकारका यह मत हैः—जो दोषसहित नेत्रतैं बंबीमैं स्थित सर्पका ज्ञान होवै तौ बीचके और पदार्थनका ज्ञान बी [१६२]हुवा चाहिये। यातैं परदेशमैं स्थित वस्तुका नेत्रसैं ज्ञान होवै नहीं। किंतु दोषसहित नेत्रतैं जेवरीका निजरूपतैं भान होवै नहीं, सर्परूपतैं भान होवै है। यातैं जेवरीका ही अन्यथा कहिये और प्रकारतैं सर्परूपतैं जो ख्याति कहिये भान औ कथन सो अन्यथाख्याति कहियै है ॥

॥ १५८ ॥ आत्मख्यातिका विशेषकथनपूर्वक खंडन वृत्तिरत्नावलिके एकादश रत्नमैं तथा वृत्तिप्रभाकरके सप्तम प्रकाशमैं किया है ॥

॥ १५९ ॥ 'वल्मीक' याकूं कोई देशमैं राफडा बी कहते हैं ॥

॥ १६० ॥ यह प्राचीन मत है। या मतमैं अन्यदेशविषै स्थित वस्तुकी अन्यदेशमैं प्रतीति ही भ्रांति कहिये है। अर्थाध्यास किंवा ज्ञानाध्यासरूप भ्रांति नहीं है ॥

॥ १६१ ॥ यह चिंतामणिनामक ग्रंथके कर्त्ता नवीन नैयायिकका मत है । यामैं अन्यवस्तुकी अन्यरूपसैं प्रतीतिरूप ज्ञानाध्यासकूं ही भ्रांति कहते हैं। या अन्यथाख्यातिका विशेषकथन औ खंडन वृत्तिरत्नावलिके द्वादश रत्नविषै औ वृत्तिप्रभाकरके सप्तम प्रकाशविषै किया है।

॥ १६२ ॥ जहां सोनीके हट्टमैं स्थित रजतका शुक्तिदेशमैं भान होवै तहां हट्ट औ तामैं स्थित सर्वसामग्रीसहित सोनीकी बी दोषके बलसैं प्रतीति हुई चाहिये औ होती नहीं ॥

॥ १३० ॥ ४अख्याति ॥ औ उक्त तीनि ख्यातिका खंडन ॥

औ अख्यातिवादीका यह अभिप्राय हैः–

१ जो असत्की प्रतीति होवै तौ वंध्यापुत्र औ शशशृंगकी प्रतीति हुई चाहिये, यातैं असत्ख्याति असंगत है ॥

२ क्षणिकविज्ञानका ही आकार सर्पादिक होवै तौ क्षणमात्रसै अधिककालस्थिर प्रतीति नहीं हुई चाहिये, यातैं आत्मख्याति असंगत है ॥ औ--

३ अन्यथाख्यातिकी प्रथम रीति तौ चिंतामणिके मतसैं दूषित ही है। तैसैं चिंतामणिकी रीतिसैं बी अन्यथाख्यातिमत असंगत है। काहेतैं? ज्ञेयके अनुसार ज्ञान होवै है॥ "ज्ञेय रज्जु औ सर्पका ज्ञान" यह कहना अत्यंत विरुद्ध है। यातैं यह रीति माननी योग्य हैः–जहां रज्जुमैं सर्पभ्रम है तहां रज्जुसैं नेत्रका अपनी वृत्तिद्वारा संबंध होयके रज्जुका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान होवै है औ सर्पकी स्मृति होवै है। "यह सर्प है" यामैं दोज्ञान हैंः–

१ "यह" अंश तौ रज्जुका सामान्यप्रत्यक्षज्ञान है। औ–

२ "सर्प है" ऐसैं सर्पका स्मृतिरूप ज्ञान है ॥

इस रीतिसैं "यह सर्प है" इहां दो ज्ञान हैं। परंतु भयदोष प्रमातामैं औ तिमिरदोष प्रमाणमैं ताके बलतैं पुरुषकूं ऐसा विवेक नहीं होता जो "मेरेकूं दो ज्ञान हुवे हैं" ॥ यद्यपि "यह" अंश रज्जुका सामान्यज्ञान यथार्थ है औ पूर्व देखे सर्पका स्मृतिज्ञान बी यथार्थ ही है। तौ बी "मेरेकूं दो ज्ञान हुवे हैं,तिनमैं रज्जुका सामान्यप्रत्यक्षज्ञान है औ सर्पका स्मृतिज्ञान है" यह विवेक नहीं होवै है। तिस दोज्ञानके अविवेककूं ही सांख्यप्रभाकरमतमैं भ्रम कहै हैं। यही रीति सारे भ्रमस्थलमैं जाननी ॥

"या रीतिसैं रज्जुआदिकनमैं सर्पादिक भ्रम जहां होवै तहां चारि मत सुने हैं। तिनमैं नीका मत होई सो कहो। ताहीकूं मैं मानूं" यह शिष्यका प्रश्न है ॥ ४९ ॥

अंक १२४-१३० गत प्रश्नका उत्तर ॥ १३१-१४६ ॥

॥ १३१ ॥ अख्यातिमतखंडन ॥ ॥ १३१-१३२ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

ख्यातिअनिर्वचनीय लखि,
पंचम तिनतैं और।
युक्तिहीन मत चारि ये,
मानहु भ्रमकी ठौर ॥ ५० ॥

टीकाः–हे शिष्य! तिन चारि ख्यातिनतैं और ही भ्रमकी ठौर अनिर्वचनीय ख्याति पंचम लख ॥ औ असत्ख्याति, आत्मख्याति, अन्यथाख्याति औ अख्याति, ये चारि मत युक्तिहीन हैं ॥

जैसैं उत्तरउत्तरमतनिरूपणमैं तीनि मत असंगत कहे तैसैं अख्यातिमत बी असंगत है। काहेतैं? "यह सर्प है" या ज्ञानमैं

१ प्रथम "यह' अंश तौ रज्जुका सामान्य ज्ञान प्रत्यक्ष है। औ–

२ "सर्प है" इतना अंश पूर्वदृष्टसर्पका स्मरणज्ञान है।

यह अख्यातिवादीका मत है। तहां पूर्वदृष्ट सर्पका स्मरण ही मानैं औ सम्मुखरज्जुदेशमैं सर्पका ज्ञान नहीं मानैं तौ सम्मुखरज्जुतैं पुरुषकूं भय होयके उलटा भागै है। सो भय

औ भागना नहीं हुवा चाहिये। यातैं सम्मुखरज्जु-देशमैं ही सर्पकी प्रतीति होवै है। पूर्वदृष्टसर्पकी स्मृति नहीं ॥

॥ १३२ ॥ किंवा।

१ रज्जुका विशेषरूपतैं यथार्थज्ञान हुये तैं अनंतर ऐसा बाध होवै है:-"मेरेकूं रज्जुमैं सर्पकी प्रतीति मिथ्या होती भई" या बाधतैं बी रज्जु-मैं ही सर्पकी प्रतीति होवै है। पूर्वदृष्टसर्पकी स्मृति नहीं ॥ औ--

२ "यह सर्प है" इहां ज्ञान एक ही प्रतीत होवै है। दो नहीं ॥ औ--

३ एककालमैं अंतःकरणतैं स्मृतिरूप औ प्रत्यक्षरूप दो ज्ञान होवैं बी नहीं।

यातैं अख्यातिमत[१६३] बी अत्यंतअसंगत है ॥

इन चारूं मतनका प्रतिपादन औ खंडन, विवरण औ स्वाराज्यसिद्धिआदिकग्रंथनमैं विस्तारसैं लिख्या है ॥ प्रतिपादन औ खंडनकी युक्ति कठिन है। यातैं संक्षेपतैं जिज्ञासुकूं रीति जनाई है। विस्तार हमनैं लिख्या नहीं ॥

॥१३३॥५ सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयख्याति है। ताकी रीति ॥

सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयख्याति है। ताकी यह रीति है:-अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रादिद्वारा निक-सिके विषयके समान आकारकूं प्राप्त होवै है, तातैं विषयका आवरण भंग होयके ताकी प्रतीति होवै है। तहां प्रकाश[१६४] बी सहायक होवै है, प्रकाश विना पदार्थकी प्रतीति होवै नहीं ॥

जहां रज्जुमैं सर्पभ्रम होवै है तहां अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसै बी औ रज्जुसैं ताका संबंध बी होवै। परंतु तिमिरादिक[१६५]दोष प्रतिबंधक हैं। यातैं रज्जुके समानाकारवृत्तिका स्वरूप होवै नहीं, यातैं रज्जुका आवरण नाशै नहीं ॥

इस रीतिसैं आवरणभंगका निमित्त वृत्तिका संबंध हुयेतैं बी जब रज्जुका आवरण भंग होवै नहीं तब रज्जुचेतनमैं स्थित अविद्यामैं क्षोभ होयके सो अविद्या सर्पाकारपरिणामकूं प्राप्त होवै है ॥

१ सो अविद्याका कार्य सर्प सत् होवै तौ रज्जुके ज्ञानसैं ताका बाध होवै नहीं औ बाध होवै है। यातैं सत् नहीं ॥ औ

२ असत् होवै तौ वंध्यापुत्रकी न्यांई प्रतीति नहीं होवै औ प्रतीति होवै है, यातैं असत् बी नहीं ॥

किंतु सत्असत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीय[१६६] है ॥ शुक्तिआदिकनमैं रूपादिक बी याहि

॥ १६३ ॥ याका विशेषकथन औ खंडन वृत्ति-रत्नावलिके त्रयोदशरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकरके सप्तम प्रकाशमैं किया है।

॥ १६४ ॥ सूर्यादिकज्योति ॥

॥ १६५ ॥ तिमिरशब्दसैं मंदअन्धकारका बी ग्रहण है। काहेतैं ? निर्दोष नेत्रवालेकूं स्पष्टप्रकाशविषे रज्जुआदिकअधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान होवै नहीं औ गाढ़ अंधकारविषै अधिष्ठानके सामान्यरूप "इदंता" का ज्ञान होवै नहीं औ अधिष्ठानके विशेषरूपके अज्ञान विना औ सामान्यरूपके ज्ञान विना अध्यास होवै नहीं। यह वार्ता पूर्व द्वितीयतरंगविषै अध्यासके प्रसंगमैं कही हैं। औ मंदअन्धकारमैं विशेष रूपका अज्ञान औ सामान्यरूपका ज्ञान ये दोनूं बनते हैं। यातैं नेत्रके विषयगत अध्यासविषै मंद-अन्धकारकी अपेक्षाके होनैतैं ताका बी ग्रहण है औ नेत्रकी मन्दतारूप तिमिरदोषका बी ग्रहण है। दोनूंमैंसैं एक होवै जब भ्रम होवै है ॥ औ आदिशब्द-करि कामलआदिक नेत्ररोगका ग्रहण है ॥

॥ १६६ ॥ इहां यह शंका है:—सत्सैं विलक्षण असत् है, ताकूं असत्सैं विलक्षण कहना विरुद्ध है औ असत्सैं विलक्षण सत् है, ताकूं सत्सैं विलक्षण कहना विरुद्ध है ॥ औ सत्असत्सैं भिन्न

रीतिसैं अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै है ॥ ता अनिर्वचनीयकी जो ख्याति कहिये प्रतीति औ कथन सो अनिर्वचनीयख्याति कहिये है ॥

॥१३४॥ भ्रमस्थलमैं अन्तःकरणसैं भिन्न अविद्याका परिणाम सर्पादिक विषय औ तिनका ज्ञान एक ही समय उत्पन्न होवै है औ लीन होवै है। सो साक्षिभास्य है ॥

जैसैं सर्प अविद्याका परिणाम है तैसैं ताका ज्ञानरूप वृत्ति बी अविद्याका ही परिणाम है। अंतःकरणका नहीं । काहेतैं ? जैसैं रज्जुज्ञानतैं सर्पका बाध होवै है तैसैं ताके ज्ञानका बी बाध होवै है ॥ अंतःकरणका ज्ञान होवै तौ बाध नहीं हुवा चाहिये । यातैं ज्ञान बी सर्पकी न्याई अविद्याका कार्य सत्‌असत्‌सैं विलक्षण अनिर्वचनीय है। परंतु—

१ रज्जुउपहितचेतनमैं स्थित तमोगुणप्रधान-अविद्याअंशका परिणाम सर्प है । औ—

२ साक्षीचेतनमैं स्थित अविद्याके सत्त्वगुणका परिणाम वृत्तिज्ञान है ।

रज्जुचेतनकी अविद्याका जा समय सर्पाकार परिणाम होवै है ताही समय साक्षीआश्रित अविद्याका ज्ञानाकार परिणाम होवै है। काहेतैं? रज्जुचेतन आश्रित अविद्यामैं क्षोभका जो निमित्त है ता निमित्तसैं ही साक्षी-आश्रित अविद्याअंशमैं क्षोभ होवै है । यातैं भ्रमस्थलमैं सर्पादिक विषय औ तिनका ज्ञान एकही समय उत्पन्न होवै हैं ॥ औ रज्जुआदिक अधिष्ठानके ज्ञानतैं एकही समय लीन होवै हैं ॥ या रीतिसैं

१ सर्पादिक भ्रमविषै

(१) बाह्यअविद्याअंश सर्पादिक विषयका उपादानकारण है । औ—

(२) साक्षीचेतनआश्रित अंतरअविद्याअंश तिनके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादानकारण है ॥ औ—

२ स्वप्नमैं तौ

(१) साक्षीआश्रित अविद्याका ही तमोगुण-अंश विषयरूप परिणामकूं प्राप्त होवै है॥

(२) ता अविद्यामैं सत्वगुणअंश ज्ञानरूप परिणामकूं प्राप्त होवै है ।

यातैं स्वप्नमैं अंतर अविद्या ही विषय औ ज्ञान दोनूंका उपादानकारण है ॥

याहीतैं बाह्यरज्जुसर्पादिक औ अंतरस्वप्नपदार्थ । साक्षीभास्य कहिये है ॥

अविद्याकी वृत्तिद्वारा जाकूं साक्षी भासै कहिये प्रकाशै । सो साक्षीभास्य कहिये है॥

॥ १३५ ॥ रज्जुमैं सर्प औ ताका ज्ञान अविद्याका परिणाम औ चेतनका विवर्त है ॥

रज्जुआदिकनमैं अनिर्वचनीय सर्पादिक औ तिनका ज्ञान भ्रम कहिये है औ अध्यास कहिये है। सो भ्रम अविद्याका परिणाम है औ चेतनका विवर्त है ॥

१ उपादान कारणके समान स्वभाव वाला अन्यथा स्वरूप परिणाम कहिये है ॥औ-

२ अधिष्ठानतैं विपरीत स्वभाव वाला अन्यथास्वरूप विवर्त कहिये है ॥

तृतीयपदार्थका अभाव है यातैं अनिर्वचनीय शब्दके अर्थकी उपलब्धि ही नहीं है । या शंकाका—

यह समाधान है:—

१ त्रिकाल अबाध्य सत् कहिये है। तासैं विलक्षण कहनेकारि बाधयोग्यका ग्रहण है औ—

२ स्वरूपहीन वन्ध्यापुत्रादिक असत् कहिये है। तासैं विलक्षण कहनेकारि स्वरूपवान्‌का ग्रहण हैं। यातैं बाधयोग्य स्वरूपवान् अनिर्वचनीयपदार्थ है। तैसा प्रपंच औ रज्जसर्पादिक है ताकी उपलब्धि नाम प्रतीति वेदांतनिपुण पंडितनकूं होवै है ॥

१ उपादानकारण अविद्या सो अनिर्वचनीय है। तैसैं रज्जुमैं सर्प औ ताका ज्ञान बी अनिर्वचनीय है, यातैं रज्जुसर्प औ ताका ज्ञान अविद्याके समान स्वभाव वाला अन्यथा स्वरूप कहिये अविद्यातैं और प्रकारका आकार है सो अविद्याका परिणाम है ॥

२ तैसैं रज्जुअवच्छिन्नअधिष्ठानचेतन सत् रूप है। सर्प औ ताका ज्ञान सत्सैं विलक्षण है। यातैं रज्जुसर्प औ ताका ज्ञान अधिष्ठानचेतनतैं विपरीत स्वभाव वाला अन्यथास्वरूप कहिये चेतनसैं औरप्रकारका आकार है॥

॥ १३६ ॥ रज्जु औ अंतःकरणउपहितचेतन अधिष्ठान है। रज्जु नहीं ॥ सर्प औ ताके ज्ञानकी रज्जुज्ञानसैं निवृत्ति ॥

१ मिथ्यासर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहितचेतन है। रज्जु नहीं। काहेतें? सर्पकी न्यांई रज्जु बी कल्पित है॥ कल्पितवस्तु अन्यकल्पितका अधिष्ठान बनै नहीं यातैं रज्जुउपहितचेतन ही अधिष्ठान है। रज्जु नहीं। औ-

रज्जुविशिष्टकूं अधिष्ठान कहैं तौ बी रज्जु औ चेतन दोनूं अधिष्ठान होवैंगे। तहां रज्जुभागमैं अधिष्ठानपना बाधित है। यातैं रज्जुउपहित चेतन ही अधिष्ठान है। रज्जुविशिष्ट चेतन नहीं ॥

२ तैसैं सर्पके ज्ञानका साक्षीचेतन अधिष्ठान है ॥

या रीतिसैं भ्रमस्थानमैं विषयका औ ताके ज्ञानका उपाधिभेदसैं अधिष्ठान भिन्न है। एक नहीं ॥ औ---

१ विशेषरूपतैं रज्जुकी अप्रतीति। अविद्यामैं क्षोभद्वारा दोनूंकी उत्पत्तिमैं निमित्तहै॥

२ तैसैं रज्जुका ज्ञान दोनूंकी निवृत्तिमैं बी निमित्त कहा है। याके विषे----

॥ १३७ ॥ शंकाः--रज्जुके ज्ञानतैं सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं।

ऐसी शंका होवै है:-- रज्जुके ज्ञानतैं सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं। काहेतें? "मिथ्या वस्तुका जो अधिष्ठान होवै ता अधिष्ठानके ज्ञानतैं मिथ्याकी निवृत्ति होवै है। यह अद्वैतवादका सिद्धांत है" ॥ औ मिथ्यासर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहित चेतन है। रज्जु नहीं। यातैं रज्जुके ज्ञानतैं सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं। या शंकाका--

॥ १३८ ॥ समाधानः--रज्जुका ज्ञान ही सर्पके अधिष्ठानका ज्ञान है ॥

यह समाधान है:--"रज्जुआदिक जडपदार्थका ज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूप होवै। तहां आवरणभंग वृत्तिका प्रयोजन है। सो आवरण अज्ञानकी शक्ति है। यातैं आवरण जडके आश्रित है नहीं। किंतु जडका अधिष्ठान जो चेतन ताके आश्रित है। यातैं---

१ रज्जुसमानाकार अंतःकरणकी वृत्तितैं रज्जुअवच्छिन्न चेतनकाही आवरणभंग होवै है ॥

२ वृत्तिमैं जो चिदाभास है तातैं रज्जुका प्रकाश होवै है ॥

३ चेतन स्वयंप्रकाश है तामैं आभासका उपयोग नहीं"

यह प्रक्रिया संपूर्ण [१६७] आगे प्रतिपादन करैंगे॥

इस रीतिसैं--

॥ १६७ ॥ यह प्रक्रिया आगे इसी ही चतुर्थतरंगगत १८७ के अंक विषे आरंभकरिके निरूपण करैंगे॥

१ चिदाभाससहित अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानमैं जो वृत्तिभाग, ताका आवरण-भंगरूप फल चेतनमैं होवै है। औ-

२ चिदाभासभागका प्रकाशरूपफल रज्जुमैं होवै है।

यातैं वृत्तिज्ञानका केवल जडरज्जु विषय नहीं। किंतु अधिष्ठानचेतनसहित रज्जु साभासवृत्तिका विषय है। इसीकारणतैं सिद्धांत ग्रंथमैं यह लिख्या है:—"अंतःकरणजन्य वृत्तिज्ञान सारे ब्रह्मकूं विषय करै है"॥

या प्रकारसैं रज्जुज्ञानसैं निरावरण होयके सर्पका अधिष्ठान रज्जुअवच्छिन्नचेतनका बी निजप्रकाशतैं भान होवै है। यातैं रज्जुका ज्ञान ही सर्पके अधिष्ठानका ज्ञान है, तातैं सर्पकी निवृत्ति संभवै है॥

॥ १३९ ॥ शंकाः—रज्जुज्ञानतैं सर्प-ज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं ॥

अन्यशंकाः—यद्यपि या रीतिसैं सर्पकी निवृत्ति रज्जुके ज्ञानतैं संभवै है तथापि सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति संभवै नहीं। काहेतैं? सर्पका अधिष्ठान रज्जुअवच्छिन्नचेतन है औ सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान साक्षीचेतन है। पूर्वउक्तप्रकार-तैं रज्जुज्ञानसैं रज्जुअवच्छिन्नचेतनका ही भान होवै है। साक्षीचेतनका नहीं। यातैं रज्जुका ज्ञान हुयेतैं बी सर्पज्ञानका अधिष्ठान साक्षीचेतन अज्ञात है औ अज्ञातअधिष्ठानमैं कल्पितकी निवृत्ति होवै नहीं। किंतु ज्ञातअधिष्ठानमैं ही कल्पितकी निवृत्ति होवैहै। यातैं रज्जुज्ञानतैं सर्पज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं। ताका-

॥ १४० ॥ समाधानः—सर्पके अभावतैं सर्पज्ञानकी निवृत्ति होवै है ॥ १४०॥—१४२॥

समाधान यह है:—विषयके अधीन ज्ञान होवै है। विषय जो सर्प ताकी निवृत्ति होते ही सर्पके ज्ञानकी विषयके अभावतैं आप ही निवृत्ति होवै है॥ और-

॥ १४१ ॥ जो ऐसैं कहैः—कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञान विना होवै नहीं औ सर्पका ज्ञान बी कल्पित है, ताका अधिष्ठान साक्षी चेतन है। ताके ज्ञान विना कल्पित सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं। ताका-

॥ १४२ ॥ समाधान यह है:—निवृत्ति दो प्रकारकी होवै है॥

१ एक तो अत्यंतनिवृत्ति होवै है। औ-

२ दूसरी कारणमैं जो लय सो बी निवृत्ति कहिये है॥

कारणसहित कार्यकी निवृत्ति अत्यन्त-निवृत्ति कहिये है॥

सारे कल्पितवस्तुका कारण अधिष्ठानके आश्रित अज्ञान है॥

१ ता अज्ञानसहित कल्पितकार्यकी निवृत्ति तौ अधिष्ठानज्ञानतैं ही होवै है।

२ परंतु कारणमैं लयरूप जो निवृत्ति सो अधिष्ठानज्ञान विना बी होवै है॥

जैसैं सुषुप्ति औ प्रलयमैं सर्वपदार्थनका अज्ञानमैं लय अधिष्ठानज्ञानसैं विना होवै है। तहां सर्वपदार्थनके लयमैं निमित्त भोगके सम्मुख कर्मका अभाव है तैसैं अधिष्ठानसाक्षीके ज्ञान विना ही सर्पज्ञानका लय होवै है। तहां सर्प-ज्ञानका विषय जो सर्प ताका अभाव सर्पज्ञानके लयमैं निमित्त है॥

या प्रकारसैं सर्पकी निवृत्ति रज्जुज्ञानतैं होवै है औ सर्पज्ञानका विषय जो सर्प ताके अभावतैं सर्पज्ञानका लय होवै है॥

॥ १४३ ॥ रज्जुज्ञानसमय साक्षीका भान होवै है ॥

अथवा सर्प औ ताका ज्ञान। दोनूंकी

निवृत्ति रज्जुज्ञानतैं होवै है । काहेतैं ? जब रज्जुका प्रत्यक्षज्ञान होवै तब अंतःकरणकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसिके रज्जुदेशमैं प्राप्त होवै है औ रज्जुके समान वृत्तिका आकार होवै है, यातैं रज्जुके प्रत्यक्षसमय वृत्तिउपहितचेतन औ रज्जुउपहितचेतन दोनूं एक होवै हैं तिनका भेद रहै नहीं । यामैं यह हेतु है:—चेतनका स्वरूपसैं तौ भेद कहूं बी नहीं । किंतु उपाधिके भेदसैं चेतनका भेद होवै है ॥

वृत्तिउपहितचेतन औ रज्जुउपहितचेतनका भेदक उपाधि । वृत्ति औ रज्जु है ।

१ सो वृत्ति औ रज्जु भिन्नभिन्न देशमैं स्थित होवैं जब तौ उपाधिवाले चेतनका भेद होवै है औ–

२ दोनूं उपाधि एक देशमैं स्थित होवैं तब उपहित चेतनका भेद बनै नहीं ॥

यह वार्ता वेदांतपरिभाषादिक ग्रन्थनमैं लिखी है ॥

१ भिन्नदेशमैं स्थित उपाधितैं ही उपहित चेतनका भेद होवै है ॥

२ एक देशमैं जब दोनूं उपाधि स्थित बी होवैं तब दोनूं उपाधिसैं उपहित बी चेतन एक ही होवै है ॥

या प्रकारतैं रज्जुके प्रत्यक्षज्ञानसमय रज्जुउपहितचेतन औ वृत्तिउपहितचेतन एक हैं। तहां साक्षीचेतन ही वृत्तिउपहितचेतन है । काहेतैं ? अंतःकरण औ ताकी वृत्तिमैं स्थित जो तिनका प्रकाशक चेतनमात्र सो साक्षी कहिये है ॥ इस रीतिसैं रज्जुज्ञानसमय साक्षीचेतन औ रज्जुउपहितचेतनका अभेद होवै है ॥ औ–

१ रज्जुउपहितचेतनका रज्जुज्ञानसैं भान होवै है औ–

२ रज्जुउपहितचेतनसैं अभिन्न साक्षीका बी रज्जुरज्ञानसैं भान होवै है ॥

या प्रकारतैं रज्जुज्ञानसमय अधिष्ठानसाक्षीका भान होनैतैं कल्पित सर्पज्ञानकी निवृत्ति संभवै है ॥

॥ १४४ ॥ सर्वत्रिपुटियोंके ज्ञानमैं साक्षीका ज्ञान होवै है ॥

किंवा कूटस्थदीपमैं विद्यारण्यस्वामीनैं यह प्रक्रिया कही है:–

१ "आभाससहित अंतःकरणकी वृत्ति इंद्रियद्वारा निकसिके घटादिक विषयकूं प्रकाशै है ॥"

२ घटादिकविषय औ तैसैं अभाससहित वृत्तिरूप तिनका ज्ञान तथा अभाससहित अंतःकरणरूप ज्ञाता इन तीनिवोंकूं साक्षी प्रकाशै है ॥"

१ "यह घट है" इस रीतिसैं आभाससहित वृत्तिसै घटमात्रका प्रकाश होवै है ॥

२ "मैं घटकूं जानू हूं" या रीतिसैं

(१) 'मैं' शब्दका अर्थ ज्ञाता औ–

(२) ज्ञेय घट औ–

(३) ताका ज्ञान ।

या त्रिपुटीका साक्षीसैं प्रकाश होवै है ॥

या प्रकारतैं सर्वत्रिपुटियोंका प्रकाशक साक्षी है ॥

साक्षी आप अज्ञात होवै तौ त्रिपुटीका ज्ञान साक्षीसैं बनै नहीं । यातैं सर्वत्रिपुटियोंके ज्ञानमैं साक्षीका ज्ञान अवश्य होवै है ॥

ता साक्षीज्ञानतैं सर्पज्ञानकी निवृत्ति संभवै है। या पूर्व रीतिसैं सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान भिन्न भिन्न कह्या । तामैं इतनैं शंकासमाधान हैं ॥ या पक्षमैं शंकासमाधानरूप विवाद और बी बहुत हैं । यातैं—

॥ १४५ ॥ सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान साक्षी है ॥ १४५–१४६ ॥

'सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान एक ही है' यह पक्ष कहै हैं:—

वहां बाह्य जो रज्जुचेतन है ताकूं सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान कहै तौ बनै नहीं। काहेतें?—

१ जितनै ज्ञान होवै हैं सो प्रमाता अथवा साक्षीके आश्रित होवै हैं। बाह्य जो रज्जुचेतन ताके आश्रित ज्ञान बनैं नहीं।

२ तैसें सर्प औ सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान अंतःकरणउपहित साक्षी चेतनकूं मानै तौ शरीरके अंतर अंतःकरणदेशमैं सर्पकी प्रतीति चाहिये। रज्जुदेशमैं सर्पकी प्रतीति नहीं चाहिये ॥ अंतर उपजे सर्पकी बाहिर प्रतीति मायाके बलतें मानै तौ आत्मख्यातिमतकी सिद्धि होवैगी ॥

इस रीतिसैं—

१ रज्जुउपहितचेतन ज्ञानका अधिष्ठान बनै नहीं। औ—

२ अंतःकरणउपहित चेतन सर्पका अधिष्ठान बनै नहीं।

यातें सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान एक नहीं बनै।

तथापि रज्जुके समीप प्राप्त जो अंतःकरणकी इदमाकारवृत्ति, तामैं स्थिति चेतनके आश्रित अविद्या सर्पाकार औ ज्ञानाकार परिणामकूं प्राप्त होवै है।

१ वृत्तिउपहित चेतनमैं स्थिति अविद्याका तमोगुणअंश सर्पका उपादानकारण है।

२ ताहीमैं स्थित 'सत्त्वगुणअंश सर्पके ज्ञानका उपादानकारण है ॥

सर्प औ ताके ज्ञानका वृत्तिउपहित चेतन अधिष्ठान है।

१ वृत्ति रज्जुदेशमैं बाहिर गयी यातैं वृत्तिउपहित चेतन बी बाहिर है, यातैं सर्पका आश्रय बनै है ॥

२ जितना अंतःकरणका स्वरूप होवै, उतना ही साक्षीका स्वरूप होवै है। शरीरके अन्तर स्थित जो अंतःकरण सोई वृत्तिस्वरूप परिणामकूं प्राप्त होवै है, यातैं वृत्तिउपहित चेतन साक्षी है, यातैं ज्ञानका आश्रय बनै है।

रज्जुका जब साक्षात्कार होवै तब रज्जुचेतन औ वृत्तिचेतन दोनूं एक होवै हैं, यातैं रज्जुके ज्ञानसैं सर्प औ ताके ज्ञानकी निवृत्ति बी बनै है ॥

॥ १४६ ॥ जहां एकरज्जुमैं दशपुरुषनकूं किसीकूं सर्प, किसीकूं दंड, किसीकूं माला, किसीकूं पृथ्वीकी दरार औ किसीकूं जलधारा, इस रीतिसैं भिन्न भिन्न प्रतीति होवै अथवा सर्वकूं सर्प ही प्रतीत होवै तहां जा पुरुषकूं रज्जुका साक्षात्कार होवै है, ताकी वृत्तिचेतनमैं कल्पितअध्यासकी निवृत्ति होवै है। जाको रज्जुज्ञान नहीं होवै ताके अध्यासकी निवृत्ति होवै नहीं, यातैं वृत्तिचेतन ही कल्पितका अधिष्ठान है। रज्जुआदिकविषयउपहित चेतन नहीं ॥

जो रज्जुउपहित चेतनकूं सर्पदण्डादिकनका अधिष्ठान मानै तौ दश पुरुषनकूं प्रतीत जो होवैं दश पदार्थ, सो एककूं सारे प्रतीत हुये चाहिये, औ हमारी रीतिसैं तौ जाकी वृत्तिचेतनमैं जो पदार्थ कल्पित है, सौ ताहीकूं प्रतीत होवै, अन्यकूं नहीं।

इस रीतिसैं बाह्यसर्पादिक औ तिनके ज्ञानका वृत्तिउपहित साक्षी अधिष्ठान है। स्वप्नके पदार्थ औ तिनके ज्ञानका बी अंतःकरणउपहित साक्षी ही अधिष्ठान है ॥

या प्रकारतैं सत्असत्सैं विलक्षण जो

अनिर्वचनीय अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीय सर्पादिक, तिनकी ख्याति कहिये प्रतीति औ कथन, सो अनिर्वचनीयख्याति कहिये है ॥ ९० ॥

॥ १४७ ॥ प्रश्नः—अपारमिथ्याजगत्का आधार औ अधिष्ठान कौन है ?

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

यह मिथ्या परतीत ह्वै,
जामैं जगत अपार ।
सो भगवन मोकूं कहौ,
को याको आधार ॥ ५१ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ५१ ॥

॥ गतप्रश्नका उत्तर ॥ १४८–१४९॥

॥ १४८ ॥ मिथ्याजगत्का आधार औ अधिष्ठान तूं है ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

तव निजरूप अज्ञानतैं,
ह्वै मिथ्याजग भान ।
अधिष्ठान आधार तूं,
रज्जुभुजंग-समान ॥ ५२ ॥

टीकाः–हे शिष्य ! तेरा जो निजरूप कहिये ब्रह्मरूपकरिके अज्ञान, तिसतैं मिथ्या-जगत् प्रतीत होवै है, यातैं जगत्का आधार औ अधिष्ठान तूं है । जैसैं रज्जुके अज्ञानतैं मिथ्याभुजंग प्रतीत होवै है । तहां मिथ्याभुजंगका आधार औ अधिष्ठान रज्जु है ।

यद्यपि मिथ्यासर्पका अधिष्ठान मुख्य द्वितीयपक्षमैं वृत्तिउपहित चेतन है, औ प्रथम-पक्षमैं रज्जुउपहित चेतन है, किसी पक्षमैं रज्जु-अधिष्ठान नहीं ।

तथापि प्रथमपक्षमैं चेतनमैं अधिष्ठानपनैकी उपाधि रज्जु है, यातैं स्थूलदृष्टिसैं रज्जु अधिष्ठान कहिये है । जैसैं मिथ्याभुजंगका अधिष्ठान तथा आधार रज्जु है; तैसैं मिथ्या-जगत्का अधिष्ठान औ आधार तूं है ।

॥१४९॥ आत्माका सामान्यरूप आधार औ विशेषरूप अधिष्ठान है ।

या स्थानमैं यह रहस्य हैः-जैसैं जेवरीके दो स्वरूप हैं । १ एक तौ सामान्यरूप है औ २ एक विशेषरूप है ॥

१ सामान्यरूप 'इदं' है ।
विशेषरूप 'रज्जु' है ।

१ 'यह सर्प है' या रीतिसैं मिथ्यासर्पसैं अभिन्न होयके भ्रांतिकालमैं बी प्रतीत होवै जो 'इदंरूप' सो सामान्यरूप है ॥ औ–

२ जो सर्पकी भ्रांतिकालमैं प्रतीत न होवै; किन्तु जाकी प्रतीति हुवेतैं सर्पभ्रांति दूरि होवै सो रज्जुका विशेषरूप है ॥

तैसैं आत्माके बी दो स्वरूप हैं ।१ एक सामान्यरूप । २ दूसरा विशेषरूप ।

१ सत्‌रूप सामान्यरूप है । औ–

२ असंगता कूटस्थता नित्यमुक्ततादिक विशेषरूप हैं ।

काहेतैं ?

१'स्थूलसूक्ष्मसंघात है'इसी रीतिसैं स्थूलसूक्ष्म

॥ १६८ ॥ अनिर्वचनीयख्यातिका कछुक कथन वृत्तिरत्नावलिके अष्टम रत्नमैं किया है औ याहीका विस्तारसैं निरूपण वृत्तिप्रभाकरके सप्तम प्रकाशमैं किया है ।

संघातकी भ्रांतिसमय बी मिथ्यासंघातसैं अभिन्न होयके सत्‌रूप प्रतीत होवै है; यातैं आत्माका सत्‌स्वरूप सामान्यरूप है । औ–

२ स्थूलसूक्ष्मसंघातकी भ्रांतिसमय आत्माका असंग कूटस्थ नित्यमुक्तस्वरूप प्रतीत होवै नहीं । किंतु असंगादिस्वरूप आत्माकी प्रतीति हुवेतैं संघातभ्रांति दूरि होवै है । यातैं असंगता, कूटस्थता, नित्यमुक्तता औ व्यापकतादिक विशेषरूप हैं ।

१ सर्वभ्रांतिमैं सामान्यरूप आधार कहिये है । औ—

२ विशेषरूप अधिष्ठान कहिये है ॥

१ जैसैं सर्पका आश्रय जो जेवरी ताका सामान्य "इदं" स्वरूप सर्पका आधार है । औ–

२ विशेषरज्जुस्वरूप अधिष्ठान है ।

१ तैसैं मिथ्याप्रपंचका आश्रय जो आत्मा, ताका सामान्य सत्‌रूप प्रपंचका आधार है । औ–

२ असंगतादिक विशेषरूप अधिष्ठान है ।

इस रीतिसैं आधार औ अधिष्ठानका सर्वज्ञात्मनाम[१६९] मुनिनै किंचित् भेद प्रतिपादन किया है ॥ ९२ ॥

॥ १५० ॥ प्रश्नः—जगतद्रष्टा आत्मासैं भिन्न कह्या चाहिये ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

भगवन मिथ्याजगतको,
द्रष्टा कहिये कौन ।
अधिष्ठान आधार जो,
द्रष्टा होय न तौन ॥ ९३ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ भाव यह है:--जगत्‌का आधार औ अधिष्ठान आत्मा है; यातैं जगत्‌का द्रष्टा आत्मासैं भिन्न कह्या चाहिये । जैसैं सर्पका आधार औ अधिष्ठान जो रज्जु तासैं भिन्न पुरुष सर्पका द्रष्टा है ॥ ९३ ॥

॥ गतप्रश्नका उत्तर ॥१५१–१५२॥

॥ १५१ ॥ सारे कल्पितका अधिष्ठान ही द्रष्टा है ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ चौपाई ॥

मिथ्यावस्तु जगतमैं जे हैं ।
अधिष्ठानमैं कल्पित ते हैं ॥
अधिष्ठान सो द्विविध पिछानहु ।
इक चेतन दूजो जड़ जानहु ॥ ९४ ॥

अधिष्ठान जड़वस्तु जहां है ।
द्रष्टा तातैं भिन्न तहां है ॥
जहां होय चेतन आधारा ।
तहां न द्रष्टा होवै न्यारा ॥ ९५ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ भाव यह है:---

१ जहां जड़ अधिष्ठान होवै, तहां अधिष्ठानसैं भिन्न द्रष्टा होवै है ॥

२ जहां चेतन अधिष्ठान होवै, तहां अधिष्ठान ही द्रष्टा होवै है । भिन्न नहीं ॥ ९५ ॥

॥ १६९ ॥ संक्षेपशारीरकनामक ग्रंथके कर्त्ता श्रीशंकराचार्यके पौत्रशिष्य ॥

॥ दोहा ॥

चेतन मिथ्यास्वप्नको,
अधिष्ठान निर्धार ।
सोई द्रष्टा भिन्न नहिं,
तैसें जगत विचार ॥ ९६ ॥

टीकाः-जैसें स्वप्नका अधिष्ठान साक्षीचेतन है सोई स्वप्नका द्रष्टा है; तैसें जगत्‌का आत्मा ही अधिष्ठान है सोई द्रष्टा है । यहं शंका औ समाधान स्थूलदृष्टिसैं जेवरीकूं सर्पका अधिष्ठान मानिके कहे हैं औ सिद्धांतमतमैं तौ सर्पका अधिष्ठान साक्षीचेतन है सोई द्रष्टा है; यातैं सारे कल्पितका अधिष्ठान ही द्रष्टा है । शंकासमाधान बनै नहीं ॥ ९६ ॥

॥ १५२ ॥ मिथ्यासंसारके निवृत्तिकी चाह बनै नहीं ॥

॥ दोहा ॥

इम मिथ्या संसारदुख,
है तोमैं भ्रम भान ।
ताकी कहा निवृत्ति तूं,
चाहै सिष्य सुजान ॥ ९७ ॥

टीकाः-हे शिष्य ! इस रीतिसैं तेरे विषै संसाररूपी दुःख मिथ्या ही भ्रांतिसैं प्रतीत होवै है, ता मिथ्याकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं ॥

दृष्टांतः--जैसें बाजीगरनै किसी पुरुषकूं मिथ्याशत्रु मंत्रके बलसैं दिखाया होवै, ताके मारनैविषै वह पुरुष उद्योग नहीं करता । तैसें मिथ्यासंसारकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं ॥ ९७ ॥

॥१५३॥ प्रश्नः-जन्मादिकसंसारदुःखका हेतु है । यातैं ताकी निवृत्तिका उपाय बतावौ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ चौपाई ॥

जग यद्यपि मिथ्या गुरुदेवा ।
तथापि मैं चाहूं तिहि छेवा ॥
स्वप्न भयानक जाकूं भासै ।
करि साधन जन जिम तिहि नासै९८॥
यातैं है जातैं जग हाना ।
सो उपाव भाखो भगवाना ॥
तुम समान सतगुरु नहिं आना ।
श्रवण फूक दे वंचक नाना ॥ ९९ ॥

टीकाः-हे भगवन् ! आपनै कह्या जो "जगत् तेरेविषै मिथ्यारूपकरिके है औ सत्यरूप करिके नहीं" सो यद्यपि सत्य है, तथापि हे भगवन् ! सो मिथ्यारूपकरिके वा जा उपायकरिके मरणादिकसंसार मेरेविषै भान न होवै, सो उपाय आप कहो ? ॥ और—

आपनै कह्या था जो "मिथ्याकी निवृत्तिवास्ते साधन चाहियै नहीं" सो वार्त्ता बी सत्य है । परंतु हे भगवन् ! जाकूं मिथ्यापदार्थ बी दुःखका हेतु होवै ताकूं वह मिथ्या बी साधनसैं दूरि करना योग्य है । जैसें किसी पुरुषकूं प्रतिपादन भयानकस्वप्न आवते होवैं, सो मिथ्या बी हैं, परंतु तिनके बी दूरि करनैकूं जप औ पादप्रक्षालनादिक नानासाधन अनुष्ठान करै है; तैसें यह संसार मिथ्या बी है, परंतु जन्मादिक दुःखका हेतु मेरेकूं प्रतीत होवै है; यातैं

॥ १७० ॥ ठगनैवाला ।

संसारकी निवृत्ति चाहूं हूं । आप कृपा करिके उपाय बतावौ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

॥ गतप्रश्नका उत्तर ॥ १५४-१५५ ॥

॥ १५४ ॥ आत्माके अज्ञानतैं जगत्की प्रतीति होवै है, ताकी निवृत्तिके उपाय ज्ञानका स्वरूप ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ सोरठा ॥

सो मैं कह्यो बखानि,
जो साधन तैं पूछियो ।
निज हिय निश्चय आनि,
रहै न रंचक खेद जग ॥ ६० ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जो तैं जगत्रूपी दुःखकी निवृत्तिका साधन पूछचा सो हम तेरेकूं प्रथम ही कही दिया; तिसविषै तूं दृढ निश्चय कर; तातैं जगत्रूपी खेद रहै नहीं ॥ ६० ॥

॥ दोहा ॥

निज आतम अज्ञानतैं,
ह्वै प्रतीत जगखेद ।
नसै सु ताके बोधतैं,
यह भाखत मुनि वेद ॥ ६१ ॥
जग मोमैं नहिं 'ब्रह्म मैं',
'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान ।
सो तोकूं सिष मैं कह्यो,
नहिं उपाय को आन ॥ ६२ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! अपनै आत्मस्वरूपके अज्ञानतैं जगत्रूपी खेद प्रतीत होवै है सो आत्मज्ञानतैं मिटै है । जो वस्तु जाके अज्ञानतैं प्रतीत होवै सो ताके ज्ञानतैं मिटै है । यह नियम है । जैसैं रज्जुके अज्ञानतैं सर्प प्रतीत होवै है सो रज्जुके बोधतैं मिटै है, तैसैं आत्मज्ञानतैं जगत् मिटै है । सो आत्मज्ञान हम कहि दिया ।

जगत् तौ मेरेविषै तीनकालमैं है नहीं । काहेतैं? मिथ्या है । जो मिथ्या वस्तु होवै है सो अधिष्ठानकी हानि नहीं करै है जैसैं मरीचिकाका जो जल है सो पृथ्वीकूं गीली नहीं करै है, तैसैं जगत् प्रतीत बी होवै है, परंतु मिथ्या है । कछु मेरी हानि करनैविषै समर्थ है नहीं ॥ औ—

"मैं सत्चित्आनंदरूप ब्रह्मस्वरूप हूं" ऐसा जो निश्चय ताका नाम ज्ञान है। सोई मोक्षका साधन है । और कोई नहीं । सो ज्ञान हम प्रथम उपदेश करी दिया ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

॥ १५५ ॥ अज्ञानका नाश केवल ज्ञानसैं है, कर्मउपासनासैं नहीं ।

॥ दोहा ॥

कर्म उपासनतैं नहीं,
जगनिदान तम नास ।
अंधकार जिम गेहमैं,
नसै न बिन परकास ॥ ६३ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जगत्का निदान कहिये उपादानकारण, तम कहिये अज्ञान है । ता अज्ञानके नाशतैं जगत्का आप ही नाश होय जावै है । काहेतैं ? उपादानके नाश हुये पीछे कारज रहै नहीं है ।

ता अज्ञानका नाश केवल ज्ञानकरिके है । कर्म औ उपासनाकरिके नाश होवै नहीं ।

॥ १७१ ॥ पूर्वे इसी ही तरंगगत ११९ औ ॥ १२३ के अंकविषै कहि दिया । फेर सोई उपाय दो दोहा करिके कहते हैं ॥

काहेतैं ? अज्ञानका विरोधी ज्ञान है । कर्म उपासना विरोधी नहीं ॥

दृष्टांतः--जैसैं गृहके विषै जो अंधकार है सो काहू क्रियासूं दूरि होवै नहीं । केवल प्रकाशसैं दूरि होवै है । तैसैं अज्ञानरूपी जो अंधकार है सो ज्ञानरूपी प्रकाशसैं दूरि होवै है । और काहू साधनसैं नहीं ॥ ६३ ॥

॥ दोहा ॥

भाख्यो सिष उपदेस मैं,
जगभंजक हिय धारि ।
जो यामैं संसय रह्यो,
सो तूं पूछ विचारि ॥ ६४ ॥

प्रश्न ॥ १५६-१५८ ॥

॥ १५६ ॥ उक्तअर्थके अनुवादपूर्वक वक्ष्यमाण शंकाका सूचन ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ चौपाई ॥

भो भगवन जो कछु तुम भाख्यो ।
सो सब सत्य जानि हिय राख्यो ॥
जगनिदान अज्ञान बखान्यो ।
ताको भंजक ज्ञान पिछान्यो ॥ ६५ ॥
ज्ञानरूप बर्नन पुनि कीना ।
जगमिथ्या सो मैं भल चीना ॥
सुखस्वरूप आतम परकास्यो ।
दया तिहारी सो मुहिं भास्यो ॥ ६६ ॥
पुनि भाख्यो 'तूं ब्रह्म-स्वरूपं' ।
यह मैं लख्यो न भेद अनूपं ॥
यामैं मुहिं संका इक आवै ।
जीव ब्रह्मको भेद जनावै ॥ ६७ ॥

टीकाः-हे भगवन ! आपनै जो कह्या सो मैं आपके वचन सत्य जानूं हूं । आपनै कह्या जो "जगत्का कारण अज्ञान है, ता अज्ञानके नाश करिके जगत्की निवृत्ति ज्ञानकरिके होवै है" सो वार्ता मैं जानी ।

सो ज्ञानका स्वरूप आपनै कह्याः-" जगत् मिथ्या है औ जीव आनंदस्वरूप है, सो ब्रह्मसैं भिन्न नहीं किंतु ब्रह्मरूप है । ऐसे निश्चयका नाम ज्ञान है । ताकेविषै जगत् मिथ्या है औ जीव आनंदस्वरूप है" यह वार्ता मैं जानी ।

परंतु "जीव ब्रह्म दोनूं एक हैं" यह वार्ता नहीं जानी । काहेतैं ? जीवब्रह्मके भेदकूं जनावनैवाली शंका मेरे हृदयमैं फुरै है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

॥ १५७ ॥ ब्रह्म औ मेरा स्वरूप परस्पर विरुद्ध है, यातै तिनसैं मेरी एकता बनै नहीं ॥

॥ अथ शंकाकी चौपाई ॥

पुन्यपापका हूं मैं कर्त्ता ।
जन्ममरन औ सुखदुख धर्त्ता ॥
और अनेकभांति जग भासै ।
चहूं ज्ञान अज्ञान जु नासै ॥ ६८ ॥
जो यातैं विपरीतस्वरूपा ।
ताकूं ब्रह्म कहत मुनि भूपा ॥
कहो एकता कैसै जानूं ? ।
रूप विरुद्ध हिये पहिचानूं ॥ ६९ ॥

टीकाः-हे भगवन् !
१ मै पुण्यपाप कर्त्ता हूं । औ--

२ तिनका जो फल जन्ममरण औ सुख-दुःख तिनकूं धारण करूं हूं । औ—
३ नानाप्रकारका जगत् मेरेविषै प्रतीत होवै है ॥ औ
४ जगतका कारण जो अज्ञान है, ताके दूरि-करनैकूं मैं ज्ञान चाहूं हूं ॥ औ—
१ ब्रह्मविषै न पुण्य है, न पाप है ।
२ न जन्म है, न मरण है, न सुख है, न दुःख है । और—
३ कोई क्लेश ब्रह्मविषै नहीं है । औ—
४ ज्ञानकी इच्छा नहीं है ॥

यातैं ब्रह्मका औ मेरा स्वरूप परस्पर विरुद्ध है; यातैं दोनूंवांकी एकता बनै नहीं ॥ यद्यपि मेरे विषै बी जन्मादिक संसार परमार्थकरिके है नहीं, तथापि मिथ्या जो जन्मादिक हैं, सो मेरेकूं भ्रांतिसैं प्रतीत होवै हैं, औ ब्रह्ममैं नहीं; यातै इतना भेद है । ऐंकता बनै नहीं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

॥ १५८ ॥ पक्षिरूपतासैं विलक्षण जीव-ब्रह्मकी एकतासैं कर्मउपासनका प्रति-पादक वेद निष्फल होवैगा ।

अन्यसंशयकी चौपाई ॥

सुनहु गुरू दूजो पुनि संसै ।
जीवब्रह्म एकत्व प्रनंसै ॥
एक वृच्छमैं सम द्वै पच्छी ।
फल भोगै इक दूजो स्वच्छी ॥७०॥
भोगरहित परकास असंगा ।
वेदवचन यह कहत प्रसंगा ॥
कर्मउपासन पुनि बहु भाखै ।
जीव ब्रह्म यातैं द्वय राखै ॥ ७१ ॥

॥१७२॥ यह प्रमेयगत संशयका स्वरूप है ॥

टीकाः—हे गुरो ! मेरे एक और संशय है, सो आप सुनौ । कैसा वह संशय है ?—जासूं जीव-ब्रह्मकी एकताका निश्चय प्रनंसै काहिये दूरि होय जावै, सो संशय मैं आपकूं कहूं हूं । आप सुनिके तिस संशयकूं दूरि करौ । वेदविषै मैंने ऐसैं देख्या हैः—एक बुद्धिरूपी वृक्षमैं दो पक्षी हैं । सो दोनूं समान हैं ॥ तिनविषै—

१ एक तौ कर्मके फलकूं भोगै है ।
२ एक स्वच्छ कहिये शुद्ध है, भोगरहित है, असंग है औ ता भोगनैवालेकूं प्रकाशै है ॥

याके विषै—

१ भोगनैवाला जीव प्रतीत होवै है औ—
२ दूसरा परमात्मा प्रतीत होवै है ।

यातैं उनकी एकता बनै नहीं ॥ औ—

वेदके विषै कर्म औ उपासना बहुत प्रकारके कहे हैं, सो जीवब्रह्मकी एकताविषै निष्फल होय जावैंगे । काहेतैं ? जो आप जीवब्रह्मकी एकता कहो हौ । १ सो ब्रह्मविषै जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहो हो ? २ अथवा जीवविषै ब्रह्मके स्वरूपकूं अंतरभाव कहो हो ?

१ जो कदाचित् ब्रह्मविषै जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहोगे तौ जीवकूं ब्रह्मरूप होनैतैं अधिकारीका अभाव होवैगा; यातैं कर्म औ उपासना निष्फल होवैंगे ॥ औ—
२ जो जीवविषै ब्रह्मके स्वरूपका अंतरभाव कहोगे तौ—

१ ब्रह्मकूं जीवरूप होनैतैं जाकी उपासना करिये है ता उपास्यका अभाव होवैगा; यातैं उपासना निष्फल होवैगी । औ—
२ कर्मका फल देनैवाला जो परमात्मा ताका अभाव होवैगा; यातैं कर्म निष्फल होवैंगे ॥ औ—

मीमांसक जो कहै हैं "कर्म ही ईश्वर है। तिनसैं ही फल होवै है" सो वार्त्ता समीचीन नहीं। काहेतैं ? जो कर्म हैं सो जड़ हैं। तिनकूं फल देनैका सामर्थ्य बनै नहीं; यातैं कर्मका फल ईश्वर ही देवै है ॥

या रीतिसैं परमात्मा औ जीवकी [१७३] एकता बनै नहीं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

॥ अंक १५७ गतप्रश्नका उत्तर ॥ ॥ १५९-१७२ ॥

॥१५९॥चारि आकाश औ चारि चेतन

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

चौपाई ।

सुनहु सिष्य इक कहूं विचारा ।
ह्वै जातैं संका निस्तारा ॥
घटाकास इक जलआकासा ।
मेघाकास महाआकासा ॥ ७२ ॥
चारिभेद ये नभके जानहु ।
पुनि चेतनके तथा पिछानहु ॥
इक कूटस्थ जीव पुनि कहिये ।
ईस ब्रह्म हिय जानै रहिये ॥ ७३ ॥
जब इनको तूं रूप पिछानै ।
निज संका तब ही सब भानै ॥
यातैं सुन इनको अब भेदा ।
नसै सुनत जन्मादिक खेदा ॥ ७४॥

टीकाः—जो तेरेकूं शंका हुई हैं तिनका निस्तार कहिये निराकरण जातैं होवै सो विचार मैं कहूं हूं । तूं सुनः—

जैसैं एक आकाशमैं चारि भेद हैं—

१ एक घटाकाश है । औ—
२ एक जलाकाश है । औ—
३ मेघाकाश है । औ—
४ महाकाश है ।

तैसैं एकचेतनके चारि भेद हैं:—

१ कूटस्थ है । औ—
२ जीव है । औ—
३ ईश्वर है । औ—
४ ब्रह्म है ॥

ये चारि भेद आकाशकी न्याईं चेतनविषै हैं। हे शिष्य ! जब इनके स्वरूपकूं तूं भले प्रकारसैं पिछानैगा तब अपनी शंकाका तूं आप ही समाधान जानि लेवैगा । यातैं मैं इनका स्वरूप वर्णन करूं हूं । तूं सुन । जाकूं सुनिके संशयरहितज्ञान होइके जन्मादिकदुःखका नाश होवैगा ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

॥ १६० ॥ १ अथ घटाकाशवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

जलपूरित घटकूं जु दे,
जितनो नभ अवकास ।
युक्तिनिपुन पंडित कहै,
ताकूं घट आकास ॥ ७५ ॥

टीकाः—हे शिष्य! जलसैं भरे घटकूं जितना आकाश अवकाश देवै है तितनैं आकाशकूं पंडितजन घटाकाश कहै हैं ॥ ७५ ॥

॥ १७३॥ यह प्रमाणगत संशयका स्वरूप है।

॥ १७४ ॥ इहां यह शंका है:—घटसैं बाहिर जो आकाश हैं सो महाकाश है, तिसतैं भिन्न घटके भीतरका जो आकाश है सो घटाकाश है । यह घटाकाशका लक्षण सुगम है, ताकूं छोडिके "जलपूरित घटकूं महाकाश जितना अवकाश देवै तितना अवकाश कहिये आकाश घटाकाश है" । इस रीतिसे लक्षण करनैका क्या प्रयोजन है ? याका—

॥ १६१ ॥ २ अथ जलाकाशवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

जलपूरित घटमैं जु पुनि,
है नभको आभास ।
घटाकासयुत विज्ञजन,
भाखत जलआकास ॥ ७६ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जलसैं भऱ्या जो घट है ताके विषै नक्षत्रादिसहित आकाशका प्रतिबिंब होवै है । सो आकाशका [१७५]प्रतिबिंब औ घटाकाश, दोनूं मिलेहुये जलाकाश कहिये है ॥ ७६ ॥ याके विषै—

कोई शंका करै हैः—

आकाशका प्रतिबिंब नहीं होवै है, किंतु केवल नक्षत्रादिकनका ही प्रतिबिंब होवै है । काहेतैं?आकाश रूपकरिके रहित है, औ रूपवाले पदार्थका प्रतिविम्ब होवै है, यातैं आकाशका प्रतिविम्ब बनै नहीं । ऐसी शंका करै है ताके-- समाधानका दोहा ॥

जो जलमैं आकासको,
नहिं प्रतिबिंब लखाइ ॥
थोरैमैं गंभीरता,
है प्रतीत किहि भाइ ॥ ७७ ॥

यातैं जलमैं व्योमको,
लखि आभास सुजान ।
रूपरहित जिम सब्दतैं,
है प्रतिध्वनिको भान ॥ ७८ ॥

टीकाः--जो जलकेविषै आकाशका प्रतिबिंब नहीं होवै तौ गोडेपरिमाण जलविषै मनुष्यपरिमाण गंभीरताकी जो प्रतीति होवै है सो नहीं हुई चाहिये, यातैं आकाशका प्रतिबिंब अंगीकार करना योग्य है । और----

जो कहै है--"रूपरहितपदार्थका प्रतिबिंब नहीं होवै है" सो बी नियम नहीं है । काहेतैं ? [१७६]रूपरहित जो शब्द है, ताकी प्रतिध्वनि होवै है सो शब्दका प्रतिबिंब है; यातैं रूपरहित जो आकाश है ताका बी प्रतिबिंब बनै है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

॥ १६२ ॥ ३ अथ मेघाकाशवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

जो मेघहि अवकास दे,
पुनि तामैं आभास ।
तिन दोनूंकूं कहत हैं,
बुधजन मेघाकास ॥ ७९ ॥

टीकाः--मेघ जो बादल, तिनकूं जो आकाश अवकाश देवै है औ मेघके जलमैं जो आकाशका

यह समाधान हैः— घटाकाशका पूर्वउक्त लक्षण करैं तौ घटकी जामैं स्थिति है, सो आकाश पांचवां कपालाकाश (ठींकराकाश) कहना होवैगा । सो शास्त्रसैं विरुद्ध है, यातैं यह द्वितीयलक्षण करना उचित है ॥

॥ १७५ जलविना प्रतिबिंब होवै नहीं, यातैं यहां आकाशका प्रतिबिंब कहनैकारि घटमैं स्थित जो जल, तासहित आकाशके प्रतिबिंबका ग्रहण है ॥

॥ १७६ ॥ गुणके आश्रित गुण रहता नहीं, किंतु आकाशादिक द्रव्यके आश्रित गुण रहता है । इस नियमतैं नीलपीतादिरंगमय जो रूप है, सो रूपगुणका अनाश्रित होनैतैं रूपरहित है । ता रूपरहित नीलपीतादिरंगका दर्पणआदिक स्वच्छ उपाधिविषै प्रतिबिंब होवै है । ताकी न्याईं रूपरहित आकाशका औ रूपरहित चेतनका प्रतिबिंब बनै है ॥

प्रतिबिंब है, तिन दोनूंकूं मेघाकाश कहै हैं ॥ ॥ ७९ ॥

कोई शंका करै हैः—

जो मेघ तौ आकाशविषै हैं, तिनमैं जल औ आकाशका प्रतिबिंब दीखै विना कैसै जानैं जावै है ? ताके—

समाधानका दोहा ॥

बर्षत मेघ अनंतजल,
उदकसहित इहि हेत ।
दक नहिं नभ आभास बिन,
इम प्रतिबिंब समेत ॥ ८० ॥

टीकाः—यद्यापि मेघविषै जल औ आकाशका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष नहीं है, तथापि अनुमानकरिके जानैं जावै हैं:—

१ मेघ जो जलकी वृष्टि करै है यातैं ऐसा अनुमान होवै है जो मेघां विषै जल है। जो मेघांविषै जल न होवै तौ जलकी वृष्टि मेघांसैं नहीं होवै । औ—

२ मेघां विषै जल है सो आकाशके प्रतिबिंबसहित है । काहेतैं ? जो जल होवै है सो आकाशके प्रतिबिंब विना नहीं होवै है,यातैं मेघांविषै जो जल है सो बी आकाशके प्रतिबिंबवाला है ॥

इसरीतिसैं मेघविषै जल औ आकाशके प्रतिबिंबका अनुमान होवै है। उदक औ दक ये दोनूं जलके नाम हैं ॥ ८० ॥

॥ १६३ ॥ ४ अथ महाकाशवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

बाहिर भीतर एकरस,
व्यापक जो नभरूप ।
महाकास ताकूं कहैं,
कोविद बुद्धिअनूप ॥ ८१ ॥

टीकाः—१७७बाहिर औ भीतर सारे एकरस व्यापक जो नभ कहिये आकाशका स्वरूप है ताकूं अनूप कहिये अद्भुतबुद्धिवाले पंडित महाकाश कहै हैं ॥ ८१ ॥

॥ १६४॥ चारिचेतनके वर्णनका उपोद्घात ॥

॥ दोहा ॥

चतुभांति नभके कहे,
लच्छन श्रुतिअनुसार ।
अब चेतनके सिष्य सुन,
जासूं लहै विचार ॥ ८२ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! चारिप्रकारके आकाशके लक्षण कहे । अब चारिभांतिके चेतनके लक्षण सुन । । जाके सुनैतैं विचार कहिये विचारका फल ज्ञान प्राप्त होवै ॥ ८२ ॥

॥१६५॥ १ अथ कूटस्थवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

मति वा व्यष्टिअज्ञानको,
अधिष्ठान चैतन्य ।
घटाकास सम मानिये,
सो कूटस्थ अजन्य ॥ ८३ ॥

टीकाः—बुद्धि अथवा व्यष्टि अज्ञानका जो अधिष्ठान चेतन है सो कूटस्थ कहिये है ।

१ जा पक्षमैं बुद्धिसहितचेतन जीव है, ता पक्षमैं बुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थ कहिये है ॥ औ—

॥ १७७ ॥ ब्रह्मांडके बाहिर औ भीतर ॥

२ जा पक्षमैं व्यष्टिअज्ञानसहित चेतन जीव कहिये है, ता पक्षमैं व्यष्टिअज्ञानका जो अधिष्ठान है सो कूटस्थ कहिये है ।

या स्थानविषे यह सिद्धांत है:-जीवपनैका जो विशेषण है ताके अधिष्ठानका नाम कूटस्थ कहिये है । सो कूटस्थ अजन्य है । उत्पत्तिसैं रहित है ! याका अभिप्राय यह है:-ब्रह्मसैं न्यारा जैसैं चिदाभास उत्पन्न होवै है तैसैं यह उत्पन्न नहीं हुवा किंतु ब्रह्मरूप ही है । जैसैं घटाकाश महाकाशसैं न्यारा नहीं होयगया किंतु महाकाशरूप है ॥

यह जो कूटस्थ है सोई आत्मपदका लक्ष्यअर्थ है औ यहीकूं प्रत्यक् कहै हैं, औ याहीकूं निजरूप कहै हैं, औ यही जीव-साक्षी है ॥ ८३ ॥

॥१६६ ॥ २ अथ जीववर्णन ॥

॥ १६६-१७० ॥

॥ दोहा ॥

काम कर्मयुत बुद्धिमैं,
जो चेतनप्रतिबिंब ॥
जीव कहै विद्वान तिहिं,
जलनभ तुल्य सबिंब ॥ ८४ ॥

टीका:--नानाकाम औ कर्मसहित जो बुद्धि है, तामैं जो चेतनका प्रतिबिंब है, ताकूं विद्वान् कहिये ज्ञानी जीव कहैं हैं । सो केवल प्रतिबिंबमात्रकूं जीव नहीं कहै हैं, किंतु जैसैं घटाकाशसहित आकाशके प्रतिबिंबकूं जला-काश कहै हैं, तैसैं सबिंब कहिये बिंब जो कूटस्थ तासहित चिदाभासकूं जीव कहै हैं । यातैं यह सिद्धांत हुवा:- बुद्धिमैं जो चिदाभास औ बुद्धिका अधिष्ठानचेतन दोनूं-वांका नाम जीव है ॥ ८४ ॥

॥ १६७ ॥ ॥ दोहा ॥

अधिष्ठान कूटस्थसैं,
है आभास बहाल ॥
रक्त पुष्प ऊपर धर्यो,
स्फटिक होइ जिम लाल ॥८५॥

टीका:-पूर्व दोहेविषै बिंब जो कूटस्थ ता सहित आभासकूं जीव कह्या । यातैं-

---

॥ १७८ ॥ इहां "चिदाभास" शब्दकरिके बुद्धिसहित चिदाभासका ग्रहण है । यह वार्त्ता आगे इसीही तरंगके ११९ वें दोहाकी टीकाके आरंभमैं ग्रंथकारनै लिखी है औ पंचदशीमैं श्रीविद्यारण्यस्वामीनै बी "बुद्धि औ तिसमैं स्थित चिदाभास औ तिन दो-नूंका अधिष्ठान कूटस्थचैतन्य, इन तीनका समूह जीव कहिये है" ऐसैं लिखा है, यातैं बुद्धि वा अविद्या जौ तामैं स्थित जो चिदाभास औ तिनका अधिष्ठान कूटस्थ ये तीन मिलिके जीव कहिये है ॥

॥ १७९ ॥ कामना औ कर्मरूप जल सहित बुद्धिरूप घटमैं चेतनका प्रतिबिंब है. यह रीति दुर्गम है । यातैं स्थूलदेहरूप घटमैं नखशिखपर्यंत भर्या बुद्धिरूप जल है । तामैं चेतनका प्रतिबिंब औ कूटस्थ दोनूंवांका नाम जीव है । यह रीति सुगम है ॥

१ इहां केवल बुद्धिसहित चिदाभासकूं त्वंपदका अर्थ जीव कहैं तौ तामैं भागत्यागलक्षणा संभवै नहीं किंतु सारे वाच्यभागका त्यागरूप जहत्लक्षणा संभव । तैसैं मानना आचार्यनकी युक्तिसैं विरुद्ध है ॥ औ—

२ अधिष्ठानसैं अभिन्न होयके अधिष्ठानकूं ढापै सो आरोप्य कहिये है । अधिष्ठानतैं भिन्न होयके कहूं बी आरोप्यकी प्रतीति होवै नहीं । या अनुभवसैं विरुद्ध है ॥

यातैं चिदाभाससहित बुद्धिविशिष्ट कूटस्थचेतन जीव है, ऐसैं मानना योग्य है ॥

१ यह प्रतीति होवै हैः—जो बुद्धिमैं प्रतिबिंब है सो कूटस्थका है, औ बाहिरके ब्रह्मचेतनका नहीं। काहेतैं? जाका प्रतिबिंब होवै सो बिंब कहिये है। सो कूटस्थकूं बिंब कह्या यातैं ताका प्रतिबिंब है यह प्रतीति होवै है। सो या दोहेसैं प्रतिपादन करै हैं।

जैसैं बडे लालपुष्पके ऊपरि जो धऱ्या सुफेद स्फटिक है ताके विषै फूलकी लालीकी दमक होवै है, सो लालफूलका प्रतिबिंब है। तैसैं कूटस्थके आश्रित जो बुद्धि ताके विषै कूटस्थके प्रकाशकी दमक होवै है। जैसैं स्फटिक अत्यंत उज्ज्वल है तैसैं बुद्धि बी अत्यंतशुद्ध है। काहेतैं? बुद्धि सत्त्वगुणका कार्य है। यातैं कूटस्थकी दमकका नाम प्रतिबिंब है॥

२ अथवा ब्रह्मचेतनका प्रतिबिंब है। जैसैं महाकाशका घटके जलमैं प्रतिबिंब होवै है औ भीतरके आकाशका नहीं। काहेतैं? जितनी गंभीरता जलविषै प्रतीत होवै है उतनी गंभीरता भीतरके आकाशमैं है नहीं। सो गंभीरता आकाशका प्रतिबिंब है, यातैं बाहिरके आकाशका प्रतिबिंब है।

१ यह जो कहै हैः—"व्यापकचेतनका प्रतिबिंब बनै नहीं" सो आकाशके दृष्टांतसैं शंका दूरि होवै है। काहेतैं? जो आकाश बी व्यापक है औ ताका प्रतिबिंब होवै है। तैसैं व्यापक चेतनका बी प्रतिबिंब बनै है॥ और--

२ जो कहै हैः—"रूपवाले पदार्थका रूपवाले पदार्थमैं प्रतिबिंब होवै है" सो बी नियम नहीं है। काहेतैं? "रूपरहितशब्दका रूपरहित आकाशमैं प्रतिबिंब होवै है" यह पूर्व कहि आए यातैं चेतनका प्रतिबिंब बनै है॥

इस रीतिसैं बुद्धिमैं आभास औ बुद्धिका अधिष्ठान चेतन दोनूंवांका नाम जीव है। यह कह्या।

१ सो जीव त्वंपदका वाच्य कहिये है॥ औ--

२ ताके विषै चिदाभासका त्यागकरिके केवल जो कूटस्थ है सो त्वंपदका लक्ष्य कहिये है॥ औ--

अहंशब्दका वाच्य बी जीव है।

२ केवलकूटस्थ अहंशब्दका लक्ष्य है॥

॥ १६८ ॥ ॥ दोहा ॥

बुद्धिमाहि आभास जो,
पुन्यपाप फलभोग ॥
गमन आगमन सो करै,
नहीं चेतनमैं जोग ॥ ८६ ॥
मिथ्या नभ घट संग ज्युं,
लहै क्रिया बहु भांति ॥
घटाकास अक्रिय सदा,
रहै एकरस सांति ॥ ८७ ॥

टीकाः—यद्यपि चिदाभास औ कूटस्थ दोनूंवांका नाम जीव है, तथापि जीवपनैके जो धर्म हैं सो सारे आभासविषै हैं। पुण्य औ पाप पुण्यपापके फल सुखदुःख औ लोकांतरविषै गमन औ यालोकविषै आगमन इसतैं आदिलेके सारे आभाससहित बुद्धि करै है, औ कूटस्थ नहीं करै है॥ कूटस्थ विषै केवल भ्रांतिसैं प्रतीति होवै है॥

सो भ्रांतिसैं प्रतीति बी बुद्धिसहित आभासकूं होवै है। कूटस्थकूं नहीं। काहेतैं?

१ कूट जो लुहारका अहरन ताकी न्यांई निर्विकाररूपसैं स्थित होवैं सो कूटस्थ कहिये है॥

२ अथवा कूट कहिये मिथ्या जो बुद्धि औ चिदाभास ताके विषै असंगरूपसैं स्थित होवै सो कूटस्थ कहिये है ।

यातैं कूटस्थविषै भ्रांतिआदिक बनैं नहीं, किन्तु चिदाभासमैं बनै हैं । औ—

॥१६९॥ अत्यन्तविचारसैं देखिये तौ पुण्य, पाप, सुख, दुःख, लोकांतरमैं गमन औ आगमन, केवल बुद्धिमैं हैं। आभासमैं बी नहीं । बुद्धिके संयोगसैं आभासमैं हैं ।

जैसैं जलसहित जो घट है सो टेढा होवै है औ सीधा होवै है औ जावै आवै है औ ताके संबंधसैं व्योमका आभास संपूर्ण क्रिया करे है औ स्वतन्त्र कछु बी नहीं करै है, तैसैं कामकर्मरूपी जलसैं भऱ्या जो बुद्धिरूपी घट है सो पुण्यसैं आदिलेके सपूर्णविकार धारै है औ ताके संबंधसैं चिदाभास धारै है औ कूटस्थ सर्वविकारसैं रहित है ॥

जैसैं जलपूरितघटके विकारसैं रहित घटाकाश है, ताकी न्यांई कूटस्थकूं जान । यातैं जीवपनैके धर्म चिदाभासमैं हैं, तथापि कूटस्थमैं अज्ञानसैं प्रतीत होवै हैं। यातैं बुद्धिके विषै कूटस्थसहित जो चिदाभास सो जीव कहिये है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

॥ १७० ॥ यह जो जीवका स्वरूप वर्णन किया, याके विषै प्राज्ञकी हानि होवै है। काहेतैं ? जो सुषुप्तिके अभिमानी जीवका नाम प्राज्ञ है, ता सुषुप्तिविषै बुद्धिका अभाव होवै है, यातैं बुद्धिमैं आभास बी बनै नहीं, यातैं प्राज्ञके स्वरूपका प्रतिपादक जो शास्त्र है ताका विरोध होवेगा । इस कारणतैं जीवका, स्वरूप और प्रतिपादन करै हैः-

॥ दोहा ॥

अथवा व्यष्टि अज्ञानमैं,
जो चेतन आभास ।
अधिष्ठान कूटस्थयुत,
कहै जीवपद तास ॥ ८८ ॥

टीकाः-

१ अज्ञानके अंशका नाम व्यष्टिअज्ञान कहिये है। औ—

२ संपूर्ण अज्ञानका नाम समष्टिअज्ञान है । ता अज्ञानके अंशविषै जो चेतनका आभास औ अज्ञानके अंशका अधिष्ठान जो कूटस्थ है तिन दोनूंवाकूं जीवपद कहै हैं । यातैं प्राज्ञका अभाव नहीं होवै है। काहे तैं ? सुषुप्ति विषै अज्ञान रहै हैं। जो सुषुप्तिविषै चेतनके प्रतिबिंबसहित अज्ञानका अंश है, सोई बुद्धिरूपकूं प्राप्त होवै है। औ चेतनका प्रतिबिंब साथ हीं होवै है ॥

ता चिदाभाससहित बुद्धिमैं पुण्यादिक संसार प्रतीत होवै है। इस अभिप्रायसैं बुद्धि ही कहूं शास्त्रनविषै जीवपनैकी उपाधि वर्णन करी हैं, औ विचारदृष्टिसैं जीवपनैकी उपाधि अज्ञान है ॥ ८८ ॥

॥ १८० ॥ जैसैं लोहकी कडाईमैं तपाया जो तैल तामैं आकाशका प्रतिबिंब होवै है वह अग्निका ताप तैलकूं ही है । तद्गत आकाशके प्रतिबिंबकूं नहीं । तब तैलपूरित कडाईके अधिष्ठानरूप आकाशकूं कहांसैं होवैगा ? तैसैं पुण्यपापादिरूप जो संसार है सो केवल बुद्धिमैं है । आभासमैं बी भ्रांति विना नहीं । तब तिनके अधिष्ठान कूटस्थमैं कहांसैं होवैगा ? परंतु तिसकी कूटस्थमैं प्रतीति ही अज्ञानकृत भ्रांति है ॥

॥ १८१ ॥ इहां बुद्धि किंवा बुद्धिका संस्काररूप घट है तामैं व्यष्टि अज्ञानरूप जल भऱ्या है। तामें चेतनका प्रतिबिंब है ॥

अथवा व्यष्टिअज्ञानरूप घट है तामैं मलिनसत्त्वगुणरूप जल भऱ्या है तिनमैं चेतनका प्रतिबिंब है, सो अधिष्ठान कूटस्थसहित जीव कहिये है ॥

॥ १७१ ॥ ॥ ३ अथ ईशवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

चित्छाया मायाविषै,
अधिष्ठान संयुक्त ।
मेघव्योम सम ईस सो,
अंतरयामी मुक्त ॥ ८९ ॥

टीकाः-मायाके विषै जो चेतनकी छाया कहिये आभास[182] औ मायाका अधिष्ठानचेतन, दोनूंवांकूं ईश्वर कहै हैं, सो ईश्वर मेघाकाशके सम है ॥

१ सो ईश्वर अन्तर्यामी है । काहेतें ? सर्वके अन्तर प्रेरणा करै है, यातैं अंतर्यामी है ।

२सदा मुक्त है । काहेतैं?वाकूं अपनै स्वरूपमैं आवरण नहीं, यातैं जन्ममरणादिक बंधकी प्रतीति नहीं । इस हेतुतैं ईश्वर नित्यमुक्त है ॥ औ—

३ सर्वज्ञ है । सर्वपदार्थनके जाननैवाला है याके विषै यह हेतु हैः—माया विषै शुद्ध-सत्त्वगुण है ॥

तमोगुण औ रजोगुणसैं दब्या हुआ सत्त्व-गुण नहीं होवै, किंतु रजोगुण औ तमोगुणकूं आप दवावनैवाला होवै, सो शुद्धसत्त्वगुण[183] कहिये है ।

सत्त्वगुणसैं ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है, यातैं प्रकाशस्वभाववाला सत्त्वगुण है । ऐसी सत्त्व-गुणवाली मायाके विषै जो चेतनका आभास ताकूं स्वरूपविषै अथवा और पदार्थविषै आवरण संभवै नहीं, यातैं मुक्त है, औ सर्वज्ञ है ।

अधिष्ठान जो चेतन है सो तौ जीव औ ईश्वर दोनूं विषै बंध मोक्ष भेदसैं रहित है । आकाशकी न्याई एकरस है, परंतु आभास अंश-विषै बंधमोक्ष है । अधिष्ठानविषै आभासकूं भ्रांतिसैं प्रतीति होवै है । यातैं केवल आभासमैं बंधमोक्ष है । तिसविषै बी इतना भेद हैः—

१जा आभासमैं आवरण है ताके विषै बंध है।

२ जाविषै स्वरूपका आवरण नहीं है सो मुक्त है ।

१ ईश्वरमैं आवरण नहीं यातैं ईश्वर सदा मुक्त है, औ—

२ जीवविषै आवरण है सो बद्ध है । बद्ध कहिये बंध्या हुवा है । काहेतैं ? जा अविद्याके अंशमैं चेतनके आभासकूं जीव कह्या ता अविद्याका आवरण करनैका स्वभाव है ॥

यद्यपि १ अविद्या औ २ अज्ञान औ ३ माया एक ही वस्तुकूं कहै हैं । तथापि—

१ शुद्धसत्त्वगुणकी प्रधानतासैं माया कहिये है ॥ औ—

२-३मलिन सत्त्वगुणकी प्रधानतासैं अज्ञान औ अविद्या कहै हैं ।

रजोगुण औ तमोगुणसैं दब्या जो सत्त्व-गुण है सो मलिनसत्त्वगुण[184] कहिये है ।

यातैं तमोगुण औ रजोगुणकी अधिकता होनैतैं अविद्यामैं जो जीवका आभासअंश ताकूं अविद्या, स्वरूपका आवरण करे है । यातैं जीवमैं बंधन है औ ईश्वरमैं नहीं ।

॥ १८२ ॥ इहां आभास शब्दकरिके माया सहित आभासका ग्रहण है ।

॥ १८३ ॥ जैसैं कोई ब्राह्मणजातिवाला राजा होवै सो क्षत्रिय औ शूद्रजातिवाले दो मंत्रिनसैं आप दवता नहीं । किंतु तिन दोनूकूं आप दवावता है तैसैं रजोगुणतमोगुणसैं दवता नहीं । किंतु तिन दोनुकूं आप दबानैवाला होवै ऐसा जो सत्त्वगुण सो शुद्धसत्त्वगुण है ॥

॥ १८४ ॥ जैसैं शूद्रजातिवाले दोनूं राजपुत्रनसैं ब्राह्मणजातिवाला एकमंत्री दबता है तैसैं रजोगुण तमोगुणसैं दब्या जो सत्त्वगुण है सो मलिनसत्त्व-गुण है ॥

१ अधिष्ठानचेतनसहित जो मायामैं आभासरूप ईश्वर है सो तत्पदका वाच्य कहिये है ।

२ केवलअधिष्ठानचेतन तत्पदका लक्ष्यहै.

"जो ईश्वर है सोई जगत्की उत्पत्ति औ पालन औ संहार करै है" यह संपूर्णशास्त्रमें कह्या है । ताका यह अभिप्राय हैः—चेतनअंश तौ आकाशकी न्यांई असंग है औ आभासअंश जगत्की उत्पत्तिआदि करै है औ ताहीविषै सर्वज्ञता है औ भक्तजनके ऊपरि अनुग्रह जो करै है सो बी केवल आभासअंश करै है । और जो कछु ऐश्वर्य है सो केवल आभासमें है औ चेतनअंश एकरस है। वाकेविषै सत्तास्फूर्ति देनै विना और ऐश्वर्य बनै नहीं ॥८९॥

॥ १७२ ॥ ४ अथ ब्रह्मस्वरूपवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

अंतर बाहिर एकरस,
जो चेतन भरपूर ॥
विभुनभ सम सो ब्रह्म है,
नहिं नेरे नहिं दूर ॥ ९० ॥

टीकाः—ब्रह्मांडके अंतर कहिये भीतर औ बाहिर जो महाकाशकी न्यांई भरपूरचेतन है सो ब्रह्म कहिये है । सो ब्रह्म नेरे नहीं औ दूरि नहीं । काहेतैं? जो वस्तु अपनैसैं भिन्न होवै औ देशरूप उपाधिवाला होवै सो नेरे औ दूरि कहि जावै है । ब्रह्म भिन्न नहीं किंतु सर्वका आत्मा है औ देशादिक सर्वउपाधितैं रहित है, यातैं नेरे औ दूरि नहीं कह्याजावै ॥

यद्यपि ब्रह्मशब्दका वाच्य बी सोपाधिक है । काहेतैं ? व्यापकवस्तुका नाम ब्रह्म है । सो व्यापकता दोप्रकारकी हैः—१ एक तौ आपेक्षिक व्यापकता है औ २ एक निरपेक्षिक व्यापकता है ॥

१ जो वस्तु किसी पदार्थकी अपेक्षासैं व्यापक होवै है औ किसीकी अपेक्षासैं न होवै । ताकेविषै आपेक्षिक व्यापकता कहिये है । जैसैं पृथ्वीआदिकी अपेक्षासैं माया व्यापक है औ चेतनकी अपेक्षासैं नहीं है । यातैं माया विषै आपेक्षिक व्यापकता है ॥ औ—

२ जो वस्तु सर्वकी अपेक्षासैं व्यापक होवै ताकेविषै जो व्यापकता सो निरपेक्षिक व्यापकता कहिये है । सो निरपेक्षिप व्यापकता चेतनविषै है! काहेतैं ? चेतनके समान अथवा चेतनसैं अधिक और कोई व्यापक है नहीं । किंतु चेतन ही सर्वसैं व्यापक है, यातैं चेतनविषै निरपेक्षिक व्यापकता है ।

यह दोनूं प्रकारकी व्यापकतासहित जो वस्तु है सो ब्रह्मशब्दका वाच्य है । सो दोनूंप्रकारकी व्यापकता मायाविशिष्टचेतनविषै है । काहेतैं ?

१ विशिष्टविषै जो मायाअंश है ताके विषै तौ आपेक्षिक व्यापकता है । औ—

२ चेतनअंशविषै निरपेक्षिक व्यापकता है ।

यद्यपि मायाविशिष्टचेतनविषै निरपेक्षिक व्यापकता बनै नहीं। काहेतैं ? मायाचेतनके एकदेशविषै है । ता मायाविशिष्टचेतनसैं शुद्ध चेतनकी व्यापकता अधिक है यातैं शुद्धचेतन विषै निरपेक्षिक व्यापकता है **तथापि** मायाविशिष्ट जो चेतन है सो परमार्थदृष्टिकरिके शुद्धसैं भिन्न नहीं किंतु शुद्धरूप ही है । यातैं मायाविशिष्टमैं बी जो चेतन अंश है ताके विषै निरपेक्षिक ही व्यापकता है । इस रीतिसैं—

१ मायाविशिष्टही ब्रह्मशब्दका वाच्य बनै है । औ—

२ शुद्धचेतन ब्रह्मशब्दका लक्ष्य है । यातैं ईश्वरशब्द औ ब्रह्मशब्द दोनूंवाका समानही अर्थ प्रतीत होवै है । भिन्न अर्थ नहीं ॥ तथापि--

१ ब्रह्मशब्दका तौ यह स्वभाव है:- जो बहुतस्थानविषै लक्ष्यअर्थकूं बोधन करै है औ काहूस्थानविषै वाच्यअर्थकूं कहै है औ--

२ ईश्वरशब्दका यह स्वभाव है:-जो बहुतस्थानमैं वाच्यअर्थका बोधन करै है । इतना भेद है, यातैं लक्ष्यअर्थकूं लेके ब्रह्मशब्दका अर्थ भिन्न निरूपण किया है ॥ ९० ॥

॥ अंक १५८ गत प्रश्नका उत्तर ॥ ॥ १७३–१७५ ॥

॥ १७३ ॥ कूटस्थ प्रकाशमान है औ आभास भोगै है ॥

॥ दोहा ॥

चतुर्भांति चेतन कह्यो,
तामैं मिथ्या जीव ।
पुन्यपाप फल भोगवै,
चितकूटस्थ सु सीव ॥ ९१ ॥

टीका:--हे शिष्य ! चारिप्रकारका चेतन कह्या, तामैं-

१ जीवके स्वरूपमैं जो मिथ्याआभासअंश है सो पुण्यपाप करै है औ तिनके फलकूं भोगै है। औ-

२ कूटस्थ जो चेतन है सो सीव कहिये शिवरूप है ॥

शिव नाम कल्याणका है ।

यातैं प्रथम जो शंका करी थी " जो बुद्धिरूपी बृक्षमैं दो पक्षी हैं। एक परमात्मा औ जीव" ताका यह उत्तर कह्या:-परमात्मा औ जीवका ग्रहण नहीं करना किंतु कूटस्थ तौ प्रकाशमान है औ आभास भोगै है ॥ ९१ ॥

॥ १७४ ॥ आभास कर्म करै है औ फल देवै है । चेतन नहीं ॥

॥ दोहा ॥

कर्मी छाया देत फल,
नहीं चेतनमैं जोग ।
सो असंग इकरूप है,
जानै भिन्न कुलोग ॥ ९२ ॥

टीका:-जीवके स्वरूपमैं जो चेतनकी छाया कहिये आभास अंश है । सो कर्मी कहिये कर्म करै है । ता कर्म करनेवालेकूं छाया जो ईश्वरका आभास अंश है सो फल देवै है ॥

छायाशब्दका देहलीदीपकन्यायकरिकै पूर्व उत्तर दोनूं ओरकूं संबंध है । जैसैं देहलीके ऊपर धऱ्या जो दीपक है सो दोनूं ओरकूं प्रकाशै है । "छाया कर्मी" औ "छाया देत फल"

यातैं यह वार्त्ता सिद्ध हुई:-

१ जीवके स्वरूपमैं जो आभासअंश है सो तौ पुण्यपाप करै है औ तिनका फल भोगै है औ-

२ ईश्वरमैं जो आभासअंश है सो कर्मका फल देवै है ॥ औ-

१ दोनूंवांविषै जो चेतनअंश है तिसविषै किसी बातका जोग नहीं ।

२ जीवमैं जो चेतनअंश है ताविषै तौ कर्म औ फलका जोग नहीं ।

३ ईश्वरमैं जो चेतनअंश है तामैं फलदेनैका जोग नहीं है ॥

ता चेतनमैं जो कहै है सो मूर्ख है ।

काहेतें? चेतन दोनूंवांविषे असंग है औ एकरूप है। चेतनमैं भेद नहीं। जीवचेतनकूं जो ईश्वरचेतनसैं अथवा ईश्वरचेतनकूं जो जीवचेतनसैं भिन्न कहिये न्यारा जानैं, सो कुलांग कहिये निंदन करनैयोग्य लोक हैं।

या कहनैतें दूसरा जो प्रश्न किया था जो ' जीव औ परमात्माकी एकता अंगीकार करनैतें कर्म जौ उपासनका प्रतिपादक वेद निष्फल होवैगा " ताका उत्तर कह्याः-जो जीव औ ईश्वरमैं चेतनभाग है, तिनका तौ अभेद है औ आभासका भेद है, यातें दोनूं प्रकारके वचन बनै हैं ॥ ९२ ॥

॥ १७५ ॥ जीवब्रह्मके लक्ष्य अर्थका अभेद है ॥

॥ चौपाई ॥

अहो सिष्य तैं प्रश्न जु कीनै।
तिनके ये उत्तर मैं दीनै ॥
कहे जु तैं तरुमैं द्वै पच्छी।
इक भोगै इक आहि अनिच्छी॥९३॥
ते चेतन आभास लखाये।
नभ छाया ज्यूं भिन्न बताये ॥
कह्यो भिन्न कर्मी फलदाता।
मति माया छाया सो ताता ॥ ९४॥
जीव ईसमैं चेतनरूपं।
भेदगंधतैं रहित अनूपं ॥
यातें " अहं ब्रह्म " यह जानौ।
"अहं" सब्द कूटस्थ पिछानौ॥९५॥
"ब्रह्म" सब्दको अर्थ सु भाख्यो।
महाकास सम लच्छच जु राख्यो ॥
"अहं ब्रह्म" नहिं जौलौं जानै।
तौलौं दीन दुखित भय मानै ॥९६॥

टीकाः-हे शिष्य! जो तैंनै प्रश्न करे तिनके मैं उत्तर कहे।

जो तैं कह्या थाः-"एक वृक्षमैं दो पक्षी हैं एक भोगै है औ एक इच्छातैं रहित है, यातें जीवब्रह्मकी एकता बनै नहीं " याका-

हमनैं उत्तर कह्याः-जो " या स्थानमैं जीवब्रह्मका ग्रहण नहीं करना, किंतु कूटस्थ औ बुद्धिमैं जो आभास तिनका ग्रहण करना, सो आपसमैं घटाकाश औ आकाशकी छायाकी न्याईं भिन्न है"। औ-

३ जो तैं प्रश्न किया थाः-" जीव तौ कर्मउपासना करनेवाला है औ परमात्मा फल देनेवाला है, तिनकी एकता बनै नहीं "

याका बी हमनैं यह उत्तर कह्याः-

१ " जो कर्म करनेवाला जीव नहीं है औ फल देनेवाला ईश्वर नहीं है; किन्तु जीवमैं जो आभास-अंश है सो करै है।

२ ईश्वरमैं जो आभास अंश है सो फल देवै है। औ-

जीवईश्वरमैं जो चेतन-अंश है सो घटाकाशमहाकाशकी न्याईं भेदका जो गन्ध कहिये लेश, तासैं रहित है।

इस रीतिसैं हे शिष्य ! जीव औ ब्रह्मकी एकता बनै है, यातें " अहं कहिये ' मैं ' ब्रह्म हूं " ऐसैं तू जान।

१ अहंशब्दका अर्थ तौ कूटस्थकूं पिछान।

२ ब्रह्मशब्दका जो महाकाशके सम लक्ष्य अर्थ कह्या है सो जान।

" अहं "शब्दका औ " ब्रह्म " शब्दका वाच्यअर्थका अभेद नहीं बी है; परन्तु लक्ष्य अर्थका अभेद है। औ हे शिष्य!

१ जबलग तूं 'अहं ब्रह्मास्मि ' ऐसै नहीं जानैगा तबलग तूं अपनैकूं दीन मानैगा औ दुःखी मानैगा । औ–

२ न्यारा जो परमात्मा जान्या है, सो तेरेकूं भयका हेतु होवैगा ।

यातै "मैं ब्रह्म हूं" ऐसें जान ॥९३–९६॥

॥ १७६ ॥ प्रश्नः– "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान किसकूं होवै है ?

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

कहो गुरू है कौनकूं,
"अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ? ।
नहिं जानूं मैं आपके,
भाखै बिना सुजान ॥ ९७ ॥

टीकाः--हे गुरु ! आप कृपा करिके कहौ 'अहं ब्रह्मास्मि' ऐसा ज्ञान किसकूं होवै है ? आपके कहे विना यह वार्त्ता मैं जानूं नहीं हूं।

शिष्यके चित्तमें यह गूढ अभिप्राय है:--

१ "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान कूटस्थविषै होवै है?

२ अथवा आभाससहित बुद्धिमैं होवै है ?

१ जो कूटस्थमैं कहौगे तौ कूटस्थ विकारी होवैगा । औ--

२ आभाससहित बुद्धिमैं कहौगे तौ वाकूं 'मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान भ्रांतिरूप होवैगा । काहेतैं ? आपनै ऐसा पूर्व कह्या जो'कूटस्थकी औ ब्रह्मकी एकता है औ आभास भिन्न है" यातैं ब्रह्मसैं भिन्न जो आभास, ताका ब्रह्मरूपकरिके जो ज्ञान सो भ्रांति ही होवैगा । जैसैं सर्पसे भिन्न जो रज्जु, ताका सर्परूपकरिके ज्ञान भ्रांति है । इस रीतिसैं आभाससहित बुद्धिकूं "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान यथार्थ नहीं होवैगा, किंतु भ्रांतिरूप होवैगा । औ---

जो कदाचित् 'अहं ब्रह्मास्मि' इस ज्ञानकूं भ्रांति रूप ही अंगीकार करोगे तौ या ज्ञानतैं मिथ्याजगत्‌की निवृत्ति नहीं होवैगी । किंतु यथार्थ ज्ञानसैं मिथ्याकी निवृत्ति होवै है । जैसैं रज्जूके यथार्थ ज्ञानसैं मिथ्यासर्पकी निवृत्ति होवै है । इस रीतिसैं आभाससहित बुद्धिकूं " मैं ब्रह्म हूं " यह ज्ञान बनै नहीं ॥ ९७ ॥

॥ गतप्रश्नका उत्तर ॥ १७७-१८३ ॥

॥ १७७ ॥ आभासकी सप्तअवस्थाके नाम ॥ १७७--१७८ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ सोरठा ॥

कहूं अवस्था सात,
सुन सिष्य व आभासकी ।
नहिं चेतनकी तात,
तिनहीमैं यह ज्ञान है ॥ ९८ ॥

टीकाः--हे शिष्य ! अब आभासकी सात अवस्था मैं कहूं हूं सो तू सुनः--

[अबकी ठौर वकार पडचा है]

तिन सात अवस्थामैं कोई बी चेतन जो कूटस्थ ताकी नहीं है औ 'मैं ब्रह्म हूं ' यह ज्ञान बी तिन सातके भीतर ही है ॥ ९८ ॥

॥ १७८ ॥ अथ सप्तअवस्था नाम ॥

॥ चौपाई ॥

इक अज्ञान आवरन सु जानौ ।
भ्रांति द्विविध पुनि ज्ञान पिछानौ ॥

सोकनास अतिहर्ष अपारा ।
सप्त अवस्था इम निर्धारा ॥९९॥

अर्थ स्पष्ट ॥ ९९ ॥

॥ १७९ ॥ अथ १ अज्ञान औ २ आवरणस्वरूपवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

"नहिं जानूं मैं ब्रह्मकूं,"
याकूं कहत अज्ञान ।
"ब्रह्म है न नहिं भान है,"
यह आवरन सुजान ॥ १०० ॥

टीकाः—हे शिष्य !

१ "मैं ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" यह जो पुरुष कहैं, या व्यवहारका हेतु अज्ञान है ।

२ "ब्रह्म है नहीं औ भान नहीं होवै है" इस व्यवहारका हेतु आवरण है ।

आवरणसैं यह व्यवहार होवै है । काहेतैं ? दो प्रकारकी अज्ञानकी शक्ति हैः-(२) एक तौ असत्वापादक है; औ (२) एक अभानापादक है । तिन दोनूंकूं आवरण कहे हैं ।

(१) "वस्तु नहीं है" ऐसी प्रतीति करावनैवाली जो शक्ति सो असत्वापादक कहिये है । औ-

(२) "वस्तुका भान नहीं होवै है" ऐसी प्रतीति करावनैवाली जो अज्ञानकी शक्ति सो अभानापादक कहिये है ।

(१) इस रीतिसैं "ब्रह्म नहीं है" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी असत्वापादकशक्ति है । औ-

(२) "ब्रह्म भान नहीं होवै है" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी अभानापादकशक्ति है ।

इन दोनूंका नाम आवरण है ॥ १०० ॥

॥१८०॥ ३ अथ भ्रांतिवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

जन्ममरन गमनागमन,
पुन्यपाप सुखखेद ।
निजस्वरूपमैं भान है,
भ्रांति बखानी वेद ॥ १०१ ॥

टीकाः—जन्मसैं आदि लेके जो संसार है, ताकी जो निजस्वरूप कहिये कूटस्थमैं प्रतीति, सो वेदमैं भ्रांति कहिये है औ याहीकूं शोक कहे हैं ॥ १०१ ॥

॥१८१॥ ४-५ अथ द्विविधज्ञानवर्णन ॥
(परोक्ष औ अपरोक्ष)

॥ दोहा ॥

द्वैविध ज्ञान बखानिये,
इक परोछ अपरोछ ।
"अस्ति ब्रह्म" परोछ है,
"अहं ब्रह्म" अपरोछ ॥ १०२ ॥
"नहीं ब्रह्म" या अंसको,
करै परोछ विनास ।
सकल अविद्याजालकूं,
दूजो नसै प्रकास ॥ १०३ ॥

॥१८९॥ देह, प्राण, इंद्रिय औ अंतःकरणसहित चिदाभास, इनके जन्मादिक संबंधविशिष्ट केवलधर्मरूप सम्बंधिनकी वा सम्बंधिविशिष्ट धर्मीसहित धर्मरूप संबंधिकी आत्मामैं अपने विषयसहित प्रतीति औ आत्माके तादात्म्यसंबंधकी वा सत्यत्वादिक धर्मनके सम्बन्धकी अनात्मामैं अपने विषयसहित प्रतीति, सो **अध्यास** कहिये है । याहीकूं **भ्रांति**, **विक्षेप** औ **शोक** बी कहते हैं ।

टीका:—

१ "ब्रह्म नहीं है" या आवरणके अंशकूं "ब्रह्म है" ऐसा परोक्षज्ञान विनाशै है । काहेतैं? "सत्यज्ञानअनंतरूप ब्रह्म है"[१८६] ऐसा जो ज्ञान, ताका नाम **परोक्षज्ञान** है । सो "ब्रह्म नहीं है" ऐसी प्रतीतिका विरोधी है; औरका नहीं । औ—

२ "मै ब्रह्म हूं" ऐसा जो **अपरोक्षज्ञान**, सो सकल अविद्याजालका विरोधी है । या कारणतैं—

(१) "मैं ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" यह **अज्ञान** । औ—

(२) "ब्रह्म नहीं है" औ "भान नहीं होवै है" यह **आवरण** । औ—

(३) "मैं ब्रह्म नहीं हूं, किंतु पुण्यपापका कर्त्ता औ सुखदुःखका भोक्ता जीव हूं" यह **भ्रांति** ।

इतना जो अविद्याजाल है ताकूं अपरोक्ष ज्ञान नाश करै है ॥ १०२-३ ॥

॥ १८२ ॥ ६ अथ **भ्रांतिनाशवर्णन** ॥

॥ दोहा ॥

जन्ममरन मोमैं नहीं,
नहिं सुखदुखको लेस ।
किंतु अजन्यकूटस्थ मैं,
भ्रांतिनास यह बेस ॥ १०४ ॥

टीका:—

१ मेरेविषै जन्म औ मरण नहीं, औ—

२ सुखदुःखका लेश बी नहीं है ।

३ और कोई बी संसारधर्म मेरेविषै नहीं है । किंतु—

अजन्य कहिये जन्मसैं रहित जो कूटस्थ, "सो मैं हूं"

हे शिष्य ! इस रीतिसैं सर्व अनर्थका जो निषेध यह **भ्रांतिनाशका** बेस कहिये स्वरूप है ।

अथवा यह भ्रांतिनाश बेस कहिये उत्तम है ।

या जगै कूटस्थमैं जन्मका निषेध करनैतैं सर्वका निषेध जानि लेना । काहेतैं ? जन्मप्रतीतिसैं अनतर और अनर्थ प्रतीत होवै हैं, यातैं जन्मके निषेधतैं सर्व अनर्थका निषेध है ।

यह जो भ्रांतिनाश है, याहीकूं **शोकनाश** बी कहै हैं ॥ १०४ ॥

॥ १८६ ॥ देश काल औ वस्तुतैं जाका अन्त कहिये परिच्छेद होवै नहीं, ऐसा जो सर्वदेश, सर्वकाल औ सर्ववस्तुविषै व्यापकवस्तु, सो **अनंत** कहिये है । याहीकूं **विभु** औ **भूमा** बी कहते हैं ।

१ ब्रह्म जातैं सर्वदेशविषै **व्यापक** है यातैं ताका घटकी न्यांई किसी देशतैं अन्त नहीं । औ—

२ ब्रह्म जातैं उत्पत्ति अरु नाशतैं रहित होनैकारि **नित्य** है, यातैं ताका देहकी न्यांई कालतैं अन्त नहीं । औ—

३ ब्रह्म जातैं घटशरावादिकविषै अनुगत मृत्तिकाकी न्यांई अपनै स्वरूपमैं अध्यस्त सर्वकार्यका आत्मा है । यातैं ताका घटपटादिकके भेदकी न्यांई किसी वस्तुतैं भेदरूप अन्त नहीं ।

जातैं ब्रह्म देशकालवस्तुकृतअन्ततैं रहित है यातैं सो श्रुतिविषै **अनंतरूप** कह्या है ।

इहा अनंतरूप कहनैकारि "आनंदरूप ब्रह्म" है यह कथन अर्थतैं सिद्ध होवै है । काहेतैं ? छांदोग्यउपनिषद्विषै भूमविद्याके प्रसंगमैं नारदके प्रति सनकादिक गुरुनै कहा है:—"जो भूमा (परिपूर्ण) है, सो सुखरूप हैं । अल्प (परिच्छिन्न) विषै सुख नहीं है" इस रीतिसैं कह्या है । "यातैं जो अनन्तरूप है सो **भूमा** है औ जो भूमा है सो आनंदरूप है" यह जानना ।

॥ १८३ ॥ ७ अथ हर्षस्वरूपवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

संसयरहित स्वरूपको,
होइ जु अद्वयज्ञान ।
तब उपजै हिय मोद तव,
सो तूं हर्ष पिछान ॥ १०५ ॥

टीकाः-हे शिष्य ! जब तेरेकूं संशयराहित अपनै स्वरूपका ऐसा ज्ञान होवैगा, जो "मैं अद्वय ब्रह्मरूप हूं" तब तेरेकूं जो मोद होवैगा, ताकूं तू हर्ष पिछान ॥ १०५ ॥

॥ दोहा ॥

कही अवस्था सात मैं,
तोकूं सिष्य सुजान ।
सो सगरी आभासकी,
है तिनहीमैं ज्ञान ॥ १०६ ॥
ज्ञान होत है कौनकूं ?
यह पूछी तै बात ।
मैं ताको उत्तर कह्यो,
चहै सु पूछ व तात ॥ १०७ ॥

अर्थ स्पष्ट है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

॥ १८४ ॥प्रश्नः—ब्रह्मसैं भिन्न आभासकूं 'मैं ब्रह्म" यह ज्ञान मिथ्या होवैगा ।

(अंक १७६गतप्रश्नका गूढ अभिप्राय ।)

जा गूढ अभिप्रायत पश्न करचा था, ताकूं अब शिष्य प्रगट करै हैः—

॥ दोहा ॥

भगवन है आभासकूं,
"अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ।
तुम भाख्यो सो मैं लख्यो,
पुनि संका इक आन ॥ १०८ ॥

॥ चौपाई ॥

है आभास ब्रह्मतैं न्यारा ।
अस तुम पूर्व कियो निर्धारा ॥
"अहं ब्रह्म" सो कैसे जानै ?।
आपहि भिन्न ब्रह्मतैं मानै ॥ १०९ ॥
जो जानै तौ मिथ्याज्ञाना ।
होई जेवरी भुजग समाना ॥
श्रीगुरु यह संदेह मिटाऊ ।
युक्तिसहित निजउक्ति सुनाऊ ११०॥

टीकाः—हे भगवन् ! आपनै यह पूर्व कह्या जोः—'कूटस्थ औ ब्रह्म तौ दोनूं एक हैं औ अभास ब्रह्मतैं न्यारा है" ता ब्रह्मसैं भिन्न अभासकूं 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा ब्रह्मरूप-करिके ज्ञान बनै नहीं ॥

१ मेरा "अधिष्ठान जो कूटस्थ सो ब्रह्मरूप है' ऐसा जो अभासकूं ज्ञान होवै तौ यथार्थ-ज्ञान होवै । औ—

२ "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान यथार्थ नहीं बनै । काहेतैं ! अहं नाम अपनै स्वरूपका है । जाकूं मैं कहै है सो आभासका स्वरूप मिथ्या है, यातैं भिन्न है । यातैं ब्रह्मसैं भिन्न आभास-का जो स्वरूप वाकूं ब्रह्मरूपकरिके ज्ञान होवै तौ मिथ्याज्ञान होवै । जैसैं सर्पसैं भिन्न

॥ १८७ ॥ याही हर्षका श्रीविद्यारण्यस्वामीनै पंचदशीके तृतिदीपविषै 'निरंकुशा तृप्ति' ऐसा नाम धऱ्या है ।

जो जेवरी, ताका सर्परूपकरिके ज्ञान मिथ्या होवै है। मिथ्या नाम भ्रांतिका है। सो ब्रह्मज्ञानकूं भ्रांतिरूप कहना बनै नहीं ॥११०॥

॥ १८९ ॥ उत्तरः—'अहं' शब्दके दो अर्थ। तिनमैं कूटस्थका ब्रह्मसैं मुख्य सामानाधिकरण्य औ आभासका बाधसामानाधिकरण्य।

॥ दोहा ॥

'अहं' सब्दके अर्थको,
सुन अब सिष्य विवेक।
तव हियके जासूं नसै,
संक कलंक अनेक ॥ १११ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ १११ ॥

है यद्यपि आभासमैं,
'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान।
तथापि सो कूटस्थको,
लहै आप अभिमान ॥ ११२ ॥
ताको सदा अभेद है,
विभुचेतनतैं तात।
बाध समै निजरूपहू,
ब्रह्मरूप दरसात ॥ ११३ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! यद्यपि "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान बुद्धिसहित आभासकूं होवै है औ कूटस्थकूं नहीं, तथापि सो आभास कूटस्थकूं औ अपनै स्वरूपकूं दोनूंवांकूं अपना आत्मा जानै है। ता आत्माका "मैं" शब्द-करिके ग्रहण होवै है, सोई अहंशब्दका अर्थ है।

१ ता 'अहं' शब्दमैं भान जो होवै है कूटस्थ, ताका तौ ब्रह्मके साथ सदा अभेद है। जैसैं घटाकाशका औ महाकाशका सदा अभेद है॥ इसी कारणतैं कूटस्थका ब्रह्मके साथ मुख्य समानाधिकारण वेदांतशास्त्रमैं कह्या है॥

जा वस्तुका जा वस्तुके संग सदा अभेद होवै

॥ १८८ ॥ इहां यह प्रश्नकर्ता शिष्यके प्रति **प्रश्न है:**—

१ 'ब्रह्मज्ञानका स्वरूप मिथ्यासंसारके अन्तर्गत मिथ्याचिदाभासके आश्रित होनैतैं मिथ्या है, यातैं इस मिथ्याज्ञानतैं मृगजलकरि तृषाकी निवृत्तिकी न्याई संसारकी निवृत्ति कैसै होवैगी' यह कहते हो ?

२ अथवा तिस ज्ञानका विषय जो चिदाभास औ ब्रह्मकी एकता, सो सर्प औ जेवरीके एकताकी न्याई मिथ्या है, यातैं तिस मिथ्याविषयका ज्ञान बी मिथ्या है। यातैं तिस मिथ्याज्ञानतैं संसारकी निवृत्ति कैसैं होवैगी' यह कहते हो ?

१ तिनमैं 'ज्ञानका स्वरूप मिथ्या है' यह वार्ता हम बी अंगीकार करै हैं। परंतु तिस मिथ्याज्ञानसैं संसारकी निवृत्ति बनै है। काहेतैं ? "जैसा यक्ष तैसा बलि" इस लौकिक न्यायकरि **जैसा** मिथ्यासंसार ताकी निवृत्तिअर्थ ज्ञान बी **तैसा** मिथ्या ही चाहिये।

किंवा:—"समानसत्तावाले पदार्थ आपसमैं साधक बाधक हैं" इस नियमतैं बी मिथ्याज्ञानतैं ही मिथ्या-संसारकी निवृत्ति संभवै है।

मृगजलकी औ तृषाकी समानसत्ता नहीं किंतु विषमसत्ता है। यातैं प्रातिभासिक मृगजलसैं व्यावहारिक तृषाकी निवृत्ति संभवै नहीं। यह वार्ता आगे पंचम तरंगमैं बी कहियेगी। औ—

२ 'चिदाभास अरु ब्रह्मकी एकतारूप ज्ञानका विषय मिथ्या है, यातैं ताका ज्ञान बी मिथ्या है' यह द्वितीयपक्ष जो तुमनै प्रगट किया, सो संभवै नहीं। यह वार्ता अब १८९ के अंकविषै प्रतिपादन करै हैं॥

॥ १८९ ॥ समान विभक्तिके बलकारि **समान** कहिये एक है, अधिकरण कहिये अर्थरूप आश्रय

ता वस्तुका ताके संग मुख्य समानाधिकरण कहिये है। जैसैं घटाकाशका महाकाशके संग सदा अभेद है। यातैं घटाकाश महाकाश है। इस रीतिसैं घटाकाशका महाकाशके साथ मुख्यसमानाधिकरण है॥

इस रीतिसैं कूटस्थका ब्रह्मके संग मुख्यसमानाधिकरण है। काहेतैं? कूटस्थका ब्रह्मतैं सदा अभेद है, यातैं "मैं" शब्दमैं भान जो होवै है कूटस्थ, ताका तौ ब्रह्मके संग सदा अभेद है। औ—

२ "मैं" शब्दमैं भान जो होवै है आभास, ताका ब्रह्मसैं अपनै स्वरूपकूं बाधिके अभेद होवै है। जैसैं मुखका जो प्रतिबिंब ताका बिंबस्वरूप मुखके संग प्रतिबिंबस्वरूपकूं बाधिके अभेद होवै है। इसी कारणतैं वेदांतशास्त्रविषै आभासका ब्रह्मके संग बाधसमानाधिकरण कह्या है।

जा वस्तुका बाध होइके जाके संग अभेद होइ ता वस्तुका ताके संग बाधसमानाधिकरण कहिये है।

(१) जैसैं मुखके प्रतिबिंबका बाध होयके मुखके साथ अभेद होवै है, यातैं प्रतिबिंब मुख है, न्यारा नहीं। ऐसा प्रतिबिंबका मुखके साथ बाधसमानाधिकरण है।

(२) किंवा जैसैं—स्थाणुमैं पुरुषभ्रम होयके स्थाणुज्ञानसैं अनंतर "पुरुष स्थाणु है"। इस रीतिसैं पुरुषका स्थाणुसैं बाधसमाधिकरण होवै है। तैसैं आभासका बाध होइके ब्रह्मसाथ अभेद होवै है।

यातैं "मैं" शब्दविषै भान जो होवै आभास, सो ब्रह्म है, न्यारा नहीं। ऐसा बाधसमानाधिकरण आभासका ब्रह्मके साथ होवै है। इस रीतिसैं हे शिष्य!—

१ 'अहं' शब्दमैं भान जो होवै है कूटस्थ, ताका तौ मुख्य अभेद है। औ—

२ आभासका बाधकरिके अभेद है ॥ ११२-१३ ॥

॥ १८६ ॥ प्रश्नः—अहंवृत्तिविषै कूटस्थ औ आभासका भान क्रमसैं अथवा क्रम विना होवै है? ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

अहंवृत्तिमैं भान है,
साछी अरु आभास।
सो क्रमतैं वा क्रम विना,
याको करहु प्रकास ॥ ११४ ॥

जिनका, ऐसे जो दो शब्द, सो समानाधिकरण कहिये हैं, तिन दोनूं शब्दनका जो परसपरसम्बन्ध सो सामानाधिकरण्य नाम एकअर्थवानपना कहिये है॥

इहां 'सामानाधिकरण्य' के स्थानमैं 'समानाधिकरण' पड्या है, सो भाषाके अभ्यासी जनोंकूं सुगमउच्चारणार्थ है।

उक्त सामानाधिकरण्यरूप सम्बन्ध। जीवईश्वरकी एकताके बोधक एकविभक्तिवाले पदनकारि युक्त चारि वेदनके चारि महावाक्यनविषै तथा तिस प्रकारके अन्य लौकिक वैदिक वाक्यनविषै जानि लेना। तिनमैं

१ एकसत्ता औ एकस्वरूपवाले होनैकारि वास्तवभेदरहित दो अर्थनके बोधक वाक्यगत दो पदनका "मुख्यसामानाधिकरण्य" कहिये है। जैसैं घठाकाशपद अरु महाकाशपदका है औ कूटस्थपद अरु ब्रह्मपदका है।

२ भिन्नसत्तावाले दो पदार्थनकी एक विभक्तिके बलकारि एकताके बोधक वाक्यगत दो पदनका "बाधसामानाधिकरण्य" कहिये है। जैसैं स्थाणुपद अरु पुरुषपदका है औ जगत् अरु ब्रह्मपदका है औ बिंब अरु प्रतिबिंबपदका है।

टीकाः—हे भगवन्! आपनै कह्या जो " अहंवृत्तिमैं साक्षी अरु आभास दोनूंवांका भान होवै है "

याकेविषै मैं एक वार्त्ता नहीं जानूं हूं।

१ सो कूटस्थ औ आभासका भान अहंवृत्तिविषै क्रमसैं होवै है ?

२ अथवा क्रमसैं विना होवै है ?

याका अर्थ यह हैः—

१क्रमसैं कहिये भिन्नभिन्नकालमैं भान होवै है ?

२ अथवा दोनूंवांका एक ही कालमैं भान होवै है ?

याका आप मेरेकूं प्रकाश कहिये बोध करो ॥ ११४ ॥

॥(गतप्रश्नका उत्तर ॥१८७-२०५॥)

॥ १८७ ॥ एक ही समय साक्षीका औ आभासका भान होवै है ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

सावधान ह्वै सिष्य सुन,
भाखूं उत्तर सार।
सुनत नसै अज्ञानतम,
बोधभानु उजियार ॥ १५ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जो तैंनै प्रश्न किया मैं ताका सारभूत उत्तर कहूं हूं। तूं सावधान होइके सुन, कैसा उत्तर है ? याके सुनतै ही बोधरूपी सूर्यका प्रकाश होयके अज्ञानरूपी तमकूं नाशै है ॥ ११५ ॥

॥ दोहा ॥

एकसमय ही भान ह्वै,
साछी अरु आभास।
दूजो चेतनको विषय,
साछी स्वयंप्रकास ॥ १६ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! एक ही समय साक्षीका औ आभासका अहंवृत्तिविषै भान होवै है।

सारे प्रकरणविषै "अभास" शब्दसैं अंतःकरणसहित आभासका ग्रहण करना । यातैं—

१ दूजो कहिये अंतःकरणसहित जो आभास है सो तौ चेतन जो साक्षी ताका विषय होइके भान होवै है। औ—

२ साक्षी स्वयंप्रकाशरूपकरिके भान होवै है औ अंतःकरणकी जो आभाससहित वृत्ति, ताका विषय साक्षी नहीं। औ—

घटादिके बाहिरके पदार्थनविषै तौ ऐसी रीति हैः—जब इंद्रियका औ घटका संयोग होवै, तब इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति निकसिके घटके समान आगरकूं प्राप्त होवै है। जैसैं मूंषामैं गेर्या जो ताम्र ताका मूषाके आकारके समान आकार होवै है। तैसैं अंतः--करणकी वृत्तिका बी घटके आकारके समान आकार होवै है।

सो वृत्ति आभास विना नहीं होवै है, किंतु आभाससहित होवै है। काहेतैं ? वृत्ति अंतःकरणका परिणाम है।

अंतःकरणका जो परिणाम, ताकूं वृत्ति कहैं हैं।

जैसैं अंतःकरण सत्त्वगुणका कार्य होनैतैं स्वच्छ है, यातैं अंतःकरणविषै चेतनका आभास होवै है; तैसैं वृत्ति बी स्वच्छ अंतः–करणका कार्य है, यातैं वृत्तिविषै चेतनका आभास होवै है औ वृत्ति जो उत्पन्न होवै है सो

॥ १९० ॥ मूषा नाम लोहरचित वा मृत्तिकारचित सांचेका है।

आभाससहित अंतःकरणसैं उत्पन्न होवै है। इस कारणतैं बी वृत्ति आभाससहित ही होवै है। औ-

॥ १८८ ॥ अज्ञानका आश्रय औ विषय चेतन है।

विषय जो घट है सो तमोगुणका कार्य है, यातैं स्वरूपसैं जड है औ ताके विषै अज्ञान औ ताका आवरण है। यामैं—

यह शंका होवै हैः—अज्ञान औ ताका आवरण विचारदृष्टिसैं चेतनविषै है, घटविषै नहीं। काहेतैं ? १ अज्ञान चेतनके आश्रित है औ २ चेतनहीकूं विषय करै है। यह वेदांतका सिद्धांत है। औ—

१ सात अवस्थाके प्रसंगमैं जो अज्ञानका आश्रय अंतःकरणसहित आभास कह्या, सो अज्ञानका अभिमानी है। "मैं अज्ञानी हूं" ऐसा अभिमान अंतःकरणसहित आभासकूं होवै है। इस कारणतैं अज्ञानका आश्रय कहिये है औ मुख्य[१९१] आश्रय चेतन है। आभाससहित अंतःकरण नहीं। काहेतैं ? आभाससहित अंतःकरण अज्ञानका कार्य है। जो जाका कार्य होवै है, सो ताका आश्रय बनैं नहीं। यातैं चेतन ही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है। औ-

२ चेतनहीकूं अज्ञान विषय करै है। स्वरूपका जो आवरण करना सोई अज्ञानका विषय करना है। सो अज्ञानकृत आवरण जड-वस्तुविषै बनै नहीं। काहेतैं? जडवस्तु स्वरूपसैं ही आवृत है। वाके विषै अज्ञानकृत आवरणका कछु उपयोग नहीं।

इसरीतिसैं अज्ञानका आश्रय औ विषय चैतन्य है जैसैं गृहके मध्य जो अंधकार है सो गृहके मध्यकूं आवरण करै है, यातैं घटके विषै अज्ञान औ ताका आवरण बनै नहीं। ताका-

॥ १८९ ॥ बाहिरके पदार्थविषै वृत्ति औ आभास दोनूंवाका उपयोग है। तिसविषै अज्ञान—आवृत घटका उदाहरण ॥ १८९—१९० ॥

यह समाधान हैः—जैसैं चेतनके स्वरूपसैं भिन्न सत्असत्‌मैं विलक्षण अज्ञान चेतनके आश्रित है, ता अज्ञानसैं चेतन आवृत होवै है तैसैं घटके स्वरूपसैं भिन्न अज्ञान यद्यपि घटके आश्रित नहीं है, तथापि अज्ञाननै घटादिक स्वरूपसैं प्रकाशरहित जड-स्वरूप रचे हैं, यातैं सदा ही अंधके समान आवृत हैं। सो आवृतस्वभाव घटादिकनका अज्ञाननै किया है। काहेतैं ? तमोगुणप्रधान अज्ञानसैं भूतकी उत्पत्तिद्वारा घटादिक उपजै हैं। सो तमोगुण आवरणस्वभाववाला है। यातैं घटादिक प्रकाशरहित अंध ही होवै हैं।

इसरीतिसैं अंधतारूप आवरण घटादिकनमैं अज्ञानकृत स्वभावसिद्ध है औ घटादिकनके अधिष्ठान--चेतन--आश्रित अज्ञान चेतनकूं आच्छादित करिके स्वभावसैं आवृत घटादिक-नकूं बी आवृत करै है।

यद्यपि स्वभावसैं आवृत पदार्थके आवरण-मैं प्रयोजन नहीं है, तथापि आवरणकर्त्ता पदार्थ प्रयोजनकी अपेक्षासैं विना ही निरावरण-की न्यांई आवरणसहितमैं बी आवरण करै है। यह लोकमैं प्रसिद्ध है।

ता अज्ञानसैं आवृत घटकूं व्याप्त जो होवै है अंतःकरणकी आभाससहित घटाकारवृत्ति, तामैं—

॥ १९१ ॥ जैसैं धनका मुख्य आश्रय कोश (पेटीआदिक धनका भंडार) है औ "मैं धनी हूं" ऐसा धनका अभिमानीरूप आश्रय पुरुष है। तैसैं अज्ञानका मुख्य आश्रय चेतन है, आश्रय अभिमानीरूप आश्रय साभास अन्तःकरण है॥

१ वृत्तिभाग तौ घटके आवरणकूं दूरि करै है। औ--

२ वृत्तिमैं जो आभासभाग है सो घटका प्रकाश करै है।

इसरीतिसैं बाहिरके पदार्थविषै वृत्ति औ आभास दोनूंवांका उपयोग है।

॥ १९० ॥ ॥ दृष्टांत--॥

जैसैं अंधकारमैं कुंडेसैं मृत्तिका अथवा लोहका पात्र ढक्या धर्या होवै, तहां दंडसैं कुंडेकूं फोडि बी गेरे पीछे दीपक बिना उस निरावरण पात्रका बी प्रकाश होवै नहीं। किंतु दीपकसैं प्रकाश होवै है। तैसैं अज्ञानसैं आवृत जो घट, ताके आवरणकूं वृत्ति भंगबी करै है। तथापि घटका प्रकाश होवै नहीं! काहेतैं ? घट तौ स्वरूपसैं जड है औ वृत्ति बी जड है। ताका आवरणभंगमात्र प्रयोजन है। तासैं प्रकाश होवै नहीं। यातैं घटका प्रकाशक आभास है।

॥१९२॥ जहां श्रोत्रइंद्रियसैं शब्दविषयका प्रत्यक्ष होवै, तहां श्रोत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरणकी साभासवृत्ति, सो दूरदेशविषै वा समीपदेशविषै स्थित शब्दके आकारके समान आकारकूं पावती है। तब वृत्तिसैं शब्दका आवरण भंग होवै है औ आभासभाग शब्दका प्रकाश करै है।

२ जहां त्वक्इंद्रियसैं स्पर्शगुण औ तिसके आश्रय घटादिकका प्रत्यक्ष होवै, तहां शरीररूप गोलककूं छोडिके वृत्ति बाहिर जावै नहीं। किंतु शरीरकी क्रियासैं अथवा अन्यकी क्रियासैं शरीररूप गोलकके साथी संयोगकूं पाया जो घटादिकविषय ताकूं औ ताके आश्रित कठिनतादिरूप स्पर्शगुणकूं शरीररूप गोलकमैं ही स्थित हुई साभासअन्तःकरणकी वृत्ति विषय करै है। ता वृत्तिसैं आश्रयसहित स्पर्शका आवरण भंग होवै है, औ चिदाभास ताका प्रकाश करै है।

नेत्रका विषय जो वस्तु है, ताके प्रत्यक्षज्ञानकी यह रीति कही औ श्रवणादिकका जो विषय है, ताके प्रत्यक्षकी बी रीति ऐसे ही जानि लेनी।

१ वृत्ति औ घट दोनूं एकदेशमैं स्थित होनैतैं घटका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये हैं। औ--

२ अंतःकरणकी वृत्ति तौ घटाकार होवै औ घटके संग वृत्तिका संबंध न होवै; किंतु अंतर ही वृत्ति होवै। सो घटका परोक्षज्ञान कहिये है।

१ "यह घट है" ऐसा अपरोक्षज्ञानका आकार है। औ--

२ "घट है" अथवा "सो घट है" ऐसा परोक्षज्ञानका आकार है।

यद्यपि स्मृतिज्ञान बी परोक्षज्ञान ही है, तथापि स्मृतिज्ञान तौ संस्कारजन्य है औ अनुमितिआदिक परोक्षज्ञान प्रमाणजन्य है। इतना भेद है।

३ जहां रसनइंद्रियसैं रसविषयका प्रत्यक्ष होवै, तहां बी जिह्वारूप गोलककूं छोडिके वृत्ति बाहिर जावै नहीं, किंतु जिह्वारूप गोलकसैं जब रसविषयका संयोग होवै, तब जिह्वाके अग्रभागवर्त्ती रस इंद्रियमैं स्थित साभासवृत्ति रसकूं विषय करै है। तहां वृत्तिसैं रसका आवरण भंग होवै है औ चिदाभास मधुरादि रसका प्रकाश करै है।

४ जहां घ्राणइंद्रियसैं गंधका प्रत्यक्ष होवै, तहां बी नासिकारूप गोलकसैं पुष्पादिरूप गंधके आश्रयका वा तिसके सूक्ष्म अवयवनका जब संयोग होवै, तब नासिकाके अग्रभागवर्त्ती घ्राणइंद्रियमैं स्थित साभासअंतःकरणकी वृत्ति पुष्पादिरूप द्रव्यके आश्रित गन्धमात्रकूं ग्रहण नाम विषय करै है। तहां वृत्तिभागसैं गंधका आवरण भंग होवै है औ वृत्तिमैं स्थित चिदाभासभाग गन्धका प्रकाश करै है।

यह श्रोत्रादिकनका जो विषय है, ताके प्रत्यक्षकी रीति है।

॥ १९१ ॥ प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति औ अनुपलब्धि-प्रमाणका कथन ॥१९१-१९६॥

प्रमाणके प्रसंगसैं हम प्रमाण निरूपण करैं हैं।

१ चार्वाक[१९३] जो हैं, सो एक प्रत्यक्ष[१९४]-प्रमाण अंगीकार करैं हैं। औ—

॥ १९२ ॥ २ कणाद[१९५] औ सुगत[१९६]मतके जो अनुसारी हैं, सो दूसरा अनुमान-प्रमाण बी अंगीकार करैं हैं। काहेतैं? एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण अंगीकार करैं तौ तृप्तिके अर्थीकी भोजन विषै प्रवृत्ति नहीं होवैगी। काहेतैं? अभुक्त-भोजनविषै तृप्तिकी हेतुताका प्रत्यक्षप्रमाण-जन्य प्रत्यक्षज्ञान है नहीं। यातैं भुक्तभोजनमैं अनुभव जो करी है तृप्तिकी हेतुता, सो अभुक्त-भोजनमैं बी अनुमानसैं जानिके तृप्तिकी अर्थीकी भोजनमैं प्रवृत्ति होनैतैं अनुमानप्रमाण बी अंगीकार कऱ्या चाहिये। इस रीतिसैं कणाद और सुगतमतके अनुसारी प्रत्यक्ष औ-अनुमान[१९७] दो प्रमाण अंगीकार करै हैं। औ—

॥ १९३ ॥ ३ सांख्यशास्त्रका कर्त्ता जो कपिल है, ताके मतके अनुसारी तीसरा शब्द प्रमाण बी अंगीकार करै हैं। काहेतैं? जो प्रत्यक्ष औ अनुमान दोही प्रमाण अंगीकार करैं तौ देशांतरविषै जाका पिता मरि गया होवै, ताकूं कोई यथार्थवक्ता आनिके कहै "तेरा पिता मरि गया है" तब श्रोताकूं पिताके मरनैका निश्चय नहीं हुवा चाहिये। काहेतैं? देशांतरविषै स्थित पिताके मरणका ज्ञान प्रत्यक्ष औ अनुमान करिके बनै नहीं। इस-रीतिसैं कपिलमतके अनुसारी प्रत्यक्ष, औ अनुमान औ शब्द[१९८] तीनि प्रमाण अंगीकार करै हैं। औ—

॥ १९४ ॥ ४ न्यायशास्त्रका कर्त्ता जो गौतम है, ताके मतके अनुसारी उपमान बी चतुर्थप्रमाण अंगीकार करै हैं। काहेतैं? प्रत्यक्ष आदिक तीनि ही प्रमाण अंगीकार करैं तौ जा पुरुषनै गवय[१९९] नहीं देख्या है औ वनवासीपुरुषसैं ऐसा श्रवण किया है:—"गौके सदृश गवय होवै है" सो पुरुष जो वनमैं चल्या जावै औ गवयकूं देख लेवै तब वाकूं वनवासी पुरुषनै कह्या जो "गौके सदृश गवय होवै है" यह वाक्य, ताके अर्थका स्मरण होवै है। ता स्मृतिसैं अनंतर पुरुषकूं ऐसा ज्ञान होवै है:—"यह पशु गवय है"। ऐसा ज्ञान नहीं हुआ चाहिये। यातैं ऐसै विलक्षणज्ञानका हेतु उपमान[२००]प्रमाण बी अंगीकार करै हैं। औ—

॥ १९३ ॥ जाके मतमैं पांचभूतनका अंगीकार है ऐसै जो देहात्मवादी, वे **लोकायत** कहिये हैं। तिनतै विलक्षण जे आकाशविना चारि भूतनका ही अंगीकार करै हैं, ऐसे जे देहात्मवादी, वे **चार्वाक** कहिये हैं।

॥१९४॥ **प्रत्यक्षप्रमाण**का औ प्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके द्वितीयरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकरके प्रथमप्रकाशमैं सविस्तर किया है।

॥ १९५ ॥ वैशेषिक शास्त्रका कर्ता जाकूं कणभुक् बी कहते हैं।

॥ १९६ ॥ बौद्धमतके।

॥१९७॥ **अनुमानप्रमाण** औ अनुमितिप्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके तृतीयरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकर-के द्वितीयप्रकाशमैं किया है।

॥ १९८ ॥ **शब्दप्रमाण** औ शाब्दीप्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके पंचमरत्नमैं औ वृत्ति-प्रभाकरके तृतीयप्रकाशमैं किया है।

॥ १९९ ॥ 'रोज' नामक पशुविशेष।

॥ २०० ॥ **उपमानप्रमाण** औ उपमितिप्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके चतुर्थरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकर-के पंचमप्रकाशमैं किया है।

॥ १९५ ॥ ५ पूर्वमीमांसाका एकदेशी जो भट्टका शिष्य प्रभाकर है, सो पंचम अर्थापत्तिप्रमाण बी अंगीकार करै है । दिनमैं भोजनत्यागी पुरुषकूं स्थूल देखिके ऐसा ज्ञान होवै है:–" यह पुरुष रात्रिकूं भोजन करै है "। तहां रात्रिभोजन विना दिनमैं भोजनत्यागीके विषै स्थूलता बनै नहीं, यातैं रात्रिभोजनका स्थूलता संपाद्य हैं। रात्रिभोजन संपादक है । संपादक जो रात्रिभोजन ताके ज्ञानका हेतु स्थूलताका ज्ञान [२०१] अर्थापत्तिप्रमाण कहिये है । औ—

॥ १९६ ॥ ६ पूर्वमीमांसक जो भट्ट है, सो षष्ठ अनुपलब्धिप्रमाण बी अंगीकार करै है औ वेदांतशास्त्रविषै बी षट्प्रमाण अंगीकार किये हैं। अनुपलब्धिप्रमाणका प्रयोजन यह है:–गृहादिकनमैं घटादिकनके अभावका ज्ञान होवै है, तहां जा पदार्थकी प्रतीति नहीं होवै है, ताके अभावका ज्ञान होवै है । अप्रतीतिकूं अनुपलब्धि कहै हैं । घटकी जो अनुपलब्धि कहिये अप्रतीति, तातैं घटका अभाव निश्चय होवै है । ऐसैं पदार्थनके अभाव निश्चयका हेतु जो पदार्थनकी अप्रतीति, ताकूं [२०२] अनुपलब्धिप्रमाण करै हैं ।

॥ १९७ ॥ प्रमाण औ प्रमाज्ञानका लक्षण ॥

१ प्रमाज्ञानका जो करण है सो प्रमाण कहिये है ।

२ स्मृतिसैं भिन्न जो अबाधित अर्थकूं विषय करनैवाला ज्ञान है, सो प्रमा कहिये है । स्मृतिज्ञान जो है सो प्रमा नहीं है । काहेतैं ! जो प्रमाज्ञान है सो प्रमाताके आश्रित होवै है औ स्मृति प्रमाताके आश्रित नहीं । किंतु साक्षीके आश्रित अंगीकार करी है औ भ्रांतिज्ञान औ संशय बी साक्षीके आश्रित अंगीकार किये हैं । इसी कारणतैं स्मृति औ भ्रांति औ संशयज्ञान ये तीनूं आभाससहित अविद्याकी वृत्तिरूप हैं। अंतःकरणकी वृत्तिरूप नहीं। यातैं प्रमाताके आश्रित नहीं, किंतु साक्षीके आश्रित हैं । जो अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान होवै सो प्रमाताके आश्रित होवै है औ सोई प्रमा कहिये है । स्मृतिज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति नहीं, यातैं प्रमाताके आश्रित नहीं; औ प्रमा बी नहीं, यातैं प्रमाके लक्षणविषै स्मृतिसैं भिन्न कह्या चाहिये ।

अबाधितअर्थकूं विषय करनैवाला ज्ञान तौ स्मृतिज्ञान बी है. परंतु स्मृतिज्ञान स्मृतिसैं भिन्न नहीं है यातैं अबाधित अर्थकूं विषय करनैवाला जो स्मृतिसैं भिन्न ज्ञान है, सो [२०३] प्रमा कहिये है । या लक्षणविषै कोई दोष नहीं ।

॥ १९८ ॥ स्मृतिज्ञान औ षट्प्रमाके विचारपूर्वक करणका लक्षण ॥ १९८–१९९ ॥

और कोई स्मृति ज्ञानकूं बी प्रमारूप मानैं है तिनके मतमैं प्रमाके लक्षणविषै "स्मृतिसैं भिन्न ऐसा नहीं कहना । किंतु अबाधितअर्थकूं

॥२०१॥ अर्थापत्तिप्रमाण औ प्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके षष्ठरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकरके पंचम-प्रकाशम किया है इहां टीकाविषै दृष्टिदोषतैं संपाद्य औ संपादक शब्दका विपरीत लेख था सो वृत्तिप्रभाकर-के अनुसार हमनै यथास्थित धऱ्या है इहां संपाद्य कार्य है औ संपादक कारण है ।

॥ २०२ ॥ अनुपलब्धिप्रमाण औ अनुपलब्धि-प्रमाका नाम अभावप्रमाका निरूपण वृत्तिरत्नावलिके समरत्नमैं औ वृत्तिप्रभाकरके षष्ठप्रकाशमैं किया है ।

॥ २०३ ॥ यथार्थ अनुभव प्रमा है । यह प्रमाका लक्षण स्मृतिसैं व्यावृत्त नाम भिन्न है ।

विषय करनैवाला जो ज्ञान है सो प्रमा कहिये है।

भ्रांतिज्ञान जो है सो अबाधित अर्थकूं विषय नहीं करै है, किंतु बाधित अर्थकूं विषय करै है, यातैं प्रमाका लक्षण भ्रांतिज्ञानमैं नहीं जावै है।

जिनोंके मतमैं स्मृतिज्ञानविषै बी प्रमाव्यवहार है, तिनके मतमैं स्मृतिज्ञान अंतःकरणकी वृत्ति है। अविद्याकी वृत्ति नहीं। औ साक्षीके आश्रित बी नहीं; किंतु प्रमाताके आश्रित है। काहेतैं? अंतःकरणकी वृत्तिका आश्रय प्रमाता ही बनै है साक्षी बनै नहीं।

इस रीतिसैं स्मृतिज्ञान—

१ किसीके मतमैं तौ अंतःकरणकी वृत्ति है। यातैं प्रमारूप है। औ—

२ किसीके मतमैं अविद्याकी वृत्ति है। यातैं प्रमारूप नहीं है। औ—

भ्रांतिज्ञान औ संशयज्ञान ये दोनूं सर्वके मतमैं अविद्याकी वृत्ति है औ साक्षीके आश्रित है, यामैं कोई विवाद नहीं। औ—

विचारकरिके देखिये तौ स्मृतिज्ञान बी अविद्याकी वृत्ति है औ साक्षीके आश्रित है। प्रमारूप नहीं। काहेतैं? जो वेदांतसंप्रदायके वेत्ता हैं तिनोंनैं प्रमाज्ञान षट्प्रकारका कह्या है। ता षट्प्रकारमैं स्मृतिज्ञान है नहीं। यातैं प्रमा नहीं। औ मधुसूदनस्वामीनैं स्मृतिज्ञान साक्षीके आश्रित ही कह्या है।

॥ १९९ ॥ एक तौ प्रत्यक्षप्रमा है; दूसरी अनुमितिप्रमा है; तीसरी उपमितिप्रमा है; चतुर्थी शाब्दीप्रमा है; पंचमी अर्थापत्तिप्रमा है; औ षष्ठी अभावप्रमा है; ये षट्प्रमा हैं। औ—

पूर्व कहे जो प्रत्यक्षआदिक षट्प्रमाण हैं सो इनके क्रमतैं करण हैं।

प्रत्यक्षप्रमाका जो करण होवै सो प्रत्यक्षप्रमाण कहिये है।

१ असाधारणकारण जो होवै, सो करण कहिये है।

२ जो सर्वकार्यका कारण होवै, सो साधारणकारण कहिये है।

॥ २०४ यथार्थज्ञान प्रमा है यह प्रमाका लक्षण बी स्मृतिसाधारण है।

॥ २०५ ॥ इहां यह विवेक है:—

१ भ्रमरूप अनुभवके संस्कारसैं जन्य जो स्मृति सो बाधित अर्थकूं विषयकरनेवाली होनैतैं अयथार्थ है। याहीतैं सो अविद्याकी वृत्ति है। अन्तःकरणकी वृत्ति नहीं। औ साक्षीके आश्रित है; प्रमाताके आश्रित नहीं।

२ जो यथार्थ अनुभवके संस्कारसैं जन्य स्मृतिज्ञान है सो अबाधित अर्थकूं विषयकरनैवाला होनैतैं यथार्थज्ञान है। याहीतैं सो अन्तःकरणकी वृत्ति है। अविद्याकी वृत्ति नहीं औ प्रमाताके आश्रित है; साक्षीके आश्रित नहीं।

परंतु स्मृतिज्ञानमैं पूर्वाचार्योंनैं प्रमाव्यवहार किया नहीं। यातैं दोनूं प्रकारकी स्मृति अप्रमा है। तिनमैं अयथार्थस्मृति अयथार्थ अप्रमा है औ यथार्थस्मृति यथार्थ अप्रमा है इतना भेद है।

॥ २०६ ॥ १ जो केवल असाधारण कारणकूं करण कहैं तौ जहां दो असाधारण कारण होवै तहां कौनसा कारण करण है, यह निश्चय नहीं होवैगा। यातैं दोनूं कारणमैंसैं एककूं व्यापाररूप मानिके अवशेष रहा जो दूसरा कारण, सो व्यापारवाला असाधारणकारण करण कहिये है।

२ जो कार्यकूं किसी द्वारा उपजावै सो व्यापारवाला कारण कहिये है। सोई करण है॥ जैसैं कपाल जो है सो संयोगद्वारा घटकूं उपजावै है। यातैं कपाल घटका व्यापारवाला कारण है। सोई घटका कारण बी है॥

३ जो कार्यकूं किसीद्वारा उपजावै नहीं, किंतु साक्षात् उपजावै सो केवलकारण है, करण नहीं

१ जैसैं धर्म अधर्मादिक सर्वकार्यके कारण हैं, यातैं साधारणकारण हैं ॥

२ सर्वकार्यका कारण न होंवै । किंतु किसी कार्यका कारण होवै । सो असाधारण कारण कहिये हैं । जैसैं दंड जो है सो सर्व-कार्यका कारण नहीं, किंतु घटआदिक जो कार्य विशेष हैं तिनका कारण है । यातैं दंड असा-धारणकारण कहिये है औ घटका करण बी कहिये है ।

१ तैसैं प्रत्यक्षप्रमाके ईश्वर औ ताकी इच्छासैं आदिलेके तौ साधारणकारण हैं । काहेतैं? ईश्वरसैं आदि लेके सर्वकार्यके कारण है, तिन विना कोई कार्य होवै नहीं । यातैं ईश्वरा-दिक साधारणकारण हैं । औ-

२ नेत्रसैं आदिलेके जो इंद्रिय हैं सो प्रत्य-क्षप्रमाके असाधारणकारण हैं । यातैं नेत्र-आदिक जो इंद्रिय हैं सो प्रत्यक्षप्रमाके करण हैं । इस रीतिसैं नेत्रआदिक जो इंद्रिय हैं सो प्रत्यक्षप्रमाण कहिये है ॥

॥ २०० ॥ प्रमाता, प्रमाण, प्रमिति औ प्रमेयचेतन ॥

यद्यपि इंद्रियकूं वेदांतसिद्धांतविषै प्रमा-ज्ञानकी कारणता कहना बनै नहीं। काहेतैं? चेत-नके चारि भेद हैं:-१ एक तौ प्रमाताचेतन है औ २ दूसरा प्रमाणचेतन है औ ३ तीसरा प्रमितिचेतन है । ताहीकूं प्रमाचेतन बी कहै हैं औ ४ चौथा प्रमेयचेतन है । ताहीकूं विषय-चेतन बी कहै हैं ॥

इस रीतिसैं प्रमा नाम चेतनका है सो नित्य है । इंद्रियजन्य नहीं । यातैं इंद्रिय ताका कारण नहीं । तथापि चेतनमैं प्रमाव्यवहारका संपादक वृत्ति बी प्रमा कहिये है। ताके इंद्रिय करण है ।

१ देहके मध्य जो अंतःकरण, ताकरिके अवच्छिन्न जो चेतन, सो प्रमाता कहियेहै ।

२ सोई अंतःकरण नेत्रादिक इंद्रियद्वारा निकसिके जितने दूरि घटादि विषय स्थित होवै उतना लंबापरिणाम अंतःकरणका होवैहै औ आगे विषय जो घटादिक हैं, तिनसैं मिलिके जैसा घटादिकका आकार होवै, तैसा ही अंतः कर-णका आकार होवै है । जैसैं कोठेमैं भऱ्या जो जल सो छिद्रद्वारा निकसिके लंबे नालेका आकार होयके बगीचेके केदारमैं जावै है औ केदारमैं जाइके जैसा केदारका आकार होवै तिस आकारकूं जल प्राप्त होवै है, तैसैं अंतः-करण बी इंद्रियरूपी छिद्रद्वारा निकसिके विषय-रूपी केदारकूं जावै है । तहां शरीरसैं लेके घटादिक विषयपर्यंत जो अंतःकरणका नालेके समान परिणाम, ताकूं वृत्तिज्ञान कहै हैं । ताकरिके अवच्छिन्न जो चेतन ताकूं प्रमाण-चेतन कहै हैं ॥ औ--

---

जैसैं दो कपालोंका संयोग घटकूं साक्षात् उपजावै है, यातैं सो घटका केवल कारण है । करण नहीं।

यद्यपि उक्त करणका लक्षण प्रत्यक्ष, अनुमान औ शब्द इन तीन प्रमाणनविषै घटता है तथापि उपमान, अर्थापत्ति औ अनुपलब्धि ये तीन प्रमाण उपमितिआदिक प्रमाके निर्व्यापार कारण हैं । तिनमैं उक्त करणके लक्षणकी अव्याप्ति होवैगी यातैं "व्यापारसैं भिन्न असाधारणकारण करण कहिये है" यह करणका लक्षण निर्दोष है । काहेतैं ? कहूं व्यापार है औ कहूं व्यापार नहीं है दोनूं ठिकानै व्यापारसैं भिन्नताके होनैतैं ॥

॥ २०७ ॥ इहां आदिशब्दकरिके ईश्वरका ज्ञान, ईश्वरका प्रयत्न, काल, दिशा, अदृष्ट, प्रागभाव औ प्रतिबंधकाभाव, इन सातका ग्रहण है। वे नव सर्व कार्यनके साधारणकारण हैं ।

३ वृत्तिज्ञानरूप जो अंतःकरणका परिणाम ताकूं **प्रमा** कहै हैं जैसें केदारविषै जल जाइके केदारके समान आकार होवै है तैसें घटादिक जो विषय हैं, तिनमैं वृत्ति जाइके घटादिकके समान आकारकूं प्राप्त होवै है । ताकरिके अवच्छिन्न जो चेतन, सो **प्रमाचेतन** कहिये है ॥

४ ज्ञानके विषय जो घटादिक तिनकरिके अवच्छिन्न जो चेतन सो **विषयचेतन** कहिये है औ **प्रमेयचेतन** बी कहिये है ॥

यह वेदअर्थके जाननैंवाले जो आचार्य हैं, तिनकी परिभाषा है ।

॥ २०१ ॥ अवच्छेदवादकी रीतिसैं प्रमाता औ साक्षीसहित विशेषण औ उपाधिका लक्षण ॥

यातैं इतना भेद है:--जो अवच्छेदवाद अंगीकार करै हैं तिनके मतमैं तौ--

१ अंतःकरणविशिष्ट जो चेतन है सो प्रमाता है औ सोई कर्त्ता भोक्ता है । औ--

२ अंतःकरणउपहित साक्षी है ।

एक ही अंतःकरण प्रमाताका तौ विशेषण है औ साक्षीकी उपाधि है ॥

स्वरूपविषै जाका[२०८] प्रवेश होवै ऐसी जो व्यावर्त्तक वस्तु है, सो **विशेषण** कहिये है ॥

और पदार्थसैं भिन्नताकरिके वस्तुके स्वरूपकूं जो जनावै सो **व्यावर्त्तक** कहिये है ॥

जाकूं भिन्नताकरिके जनावै सो **व्यावर्त्य** कहिये है ॥

जैसें "नीलघट है" या स्थानमैं घटका नीलता विशेषण है काहेतैं ? नीलघटके विषै नीलताका प्रवेश है औ पीतश्वेतादिकनसैं भिन्नताकरिके जनावै है । यातैं **व्यावर्त्तक** है ॥

इस रीतिसैं नीलता घटका **विशेषण** है औ घट परिच्छेद्य है । काहेतैं ? पीतश्वेतादिकनतैं भिन्नता कहिये जुदाकरिके जनाइये है ।

जो भिन्नताकरिके जनाइये सो **परिच्छेद्य** कहिये है, व्यावर्त्य कहिये है औ **विशेष** बी कहिये है । औ "दंडी पुरुष है" या स्थानमैं बी पुरुषका दंड **विशेषण** है ।

इस रीतिसैं प्रमाताका अंतःकरण **विशेषण** है । काहेतैं ? प्रमाताके स्वरूपविषै अंतःकरणका प्रवेश है औ प्रमेय चेतनसैं भिन्नताकरिके प्रमाताके स्वरूपकूं जनावै है । यातैं व्यावर्त्तक है ।

जा वस्तुका स्वरूपविषै[२०९] प्रवेश न होवै औ व्यावर्त्तक होवै सो **उपाधि** कहिये है ।

१ जैसें नैयायिकके मतमैं करणशष्कुलीसैं अवच्छिन्न जो आकाश है सो श्रोत्र कहिये है । या स्थानमैं करणशष्कुली श्रोत्रकी उपाधि है । काहेतैं ? श्रोत्रके स्वरूपविषै तौ करणशष्कुलीका प्रवेश है नहीं औ बाहिरके आकाशतैं भिन्नताकरिके श्रोत्रकूं जनावै है । यातैं व्यावर्त्तक है । औ--

२ घटाकाश जो है सो मणपरिमाण अन्नकूं अवकाश देवै है । या स्थानमैं बी आकाशकी घट उपाधि है । काहेतैं ! मणअन्नकूं अवकाश देनैवाला जो आकाश है ताके स्वरूपविषै तौ घटका प्रवेश है नहीं। घट पार्थिव है । ताके विषै अवकाश देना बनै नहीं । यातैं घटका स्वरूपमैं प्रवेश बनै नहीं औ व्यापक आकाशतैं भिन्नता-

---

॥ २०८ ॥ कार्यसैं संबंधी ॥

॥ २०९ ॥ आश्रयके कार्यमैं असंबंधीपना "अप्रवेश" कहिये है ।

करिके जनावै है। यातैं मणअन्नकूं अवकाश देनैवाला जो आकाश ताकी घट उपाधि है।

तैसैं अंतःकरणउपहित जो चेतन है सो साक्षी है या स्थानमैं अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है। काहेतैं ? साक्षीके स्वरूपविषै तौ अंतःकरणका प्रवेश है नहीं औ प्रमेयचेतनसैं साक्षीकूं भिन्नताकारिके जनावै है। यातैं एक ही अंतःकरण साक्षीकी तौ उपाधि है औ प्रमाताका विशेषण है। इस रीतिसैं—

१ अंतःकरणउपहित जो चेतन है सो तौ साक्षी है। औ—

२ अंतःकरणविशिष्टचेतन प्रमाता है॥—

१ जो उपाधिवाला होवै सो उपहित कहिये है। औ—

२ विशेषणवाला होवै सो विशिष्ट कहिये है।

जो अंतःकरणविशिष्ट प्रमाता है सोई कर्त्ता भोक्ता सुखी दुःखी संसारी जीव है।

यह अवच्छेदवादकी रीति है। औ—

॥ २०२ ॥ आभासवादकी रीतिसैं जीव औ साक्षीआदिकका लक्षण ॥

१ आभासवादमैं आभाससहित अंतःकरण जीवका विशेषण है। औ—

२ आभाससहित अंतःकरण साक्षीकी उपाधि है। यातैं—

१ साभास अंतःकरणविशिष्ट चेतन जीव है। औ—

२ साभास अंतःकरणउपहित चेतन साक्षी है॥

यद्यपि दोनूं पक्षमैं विशेषणसहित चेतन जीव है, सोई संसारी है, तथापि विशेष्यभाग जो चेतन है ताके विषै तौ जन्ममरणसैं आदि लेके संसारका संभव है, नहीं यातैं विशेषणमात्रमैं संसार है। सोई विशिष्टचेतनमैं प्रतीत होवै है।

१ कहूं तौ विशेषणके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवै है। औ—

२ कहूं विशेष्यके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवै है। औ—

३ कहूं विशेषणविशेष्य दोनूंवांके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवै है।

जैसैं दंडकरिके घटाकाशका नाश होवै है। या स्थानमैं विशेषण जो घट है ताका दंडकरिके नाश होवै है औ विशेष्य जो आकाश है ताका नाश बनै नहीं; तौ बी विशिष्ट जो घटाकाश है ताका नाश प्रतीत होवै है। औ—

२ "कुंडली पुरुष सोवै है" या स्थानमैं कुंडल विशेषण है औ पुरुष विशेष्य है। विशेषण जो कुंडल है ताके विषे सोवना बनै नहीं। किंतु विशेष्य जो पुरुष है, ताके विषे सोवना है। औ "कुंडलविशिष्ट सोवै है" ऐसा विशिष्टमैं व्यवहार होवै है। औ—

३ "शस्त्री पुरुष युद्धमैं गया है" या स्थानमैं विशेषण जो शस्त्र औ विशेष्य पुरुष दोनूं युद्धमैं गये हैं। यातैं दोनूंवांके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवै है॥

या स्थानमैं

१ अवच्छेदवादमैं तौ अंतःकरण विशेषण है औ—

२ आभासवादमैं साभास अंतःकरण विशेषण है। औ—

दोनूं पक्षमैं चेतन विशेष्य है, ताकेविषै तौ जन्मादिसंसार बनै नहीं; किंतु विशेषण अंतःकरण अथवा साभास अंतःकरण ताका धर्म जो जन्मादिकसंसार ताका विशिष्टचेतनमैं व्यवहार करिये है॥

॥ २१० ॥ अविवेकीजनोंकरि अन्तःकरणरूप विशेषणके धर्मरूप संसारका अज्ञानकृत भ्रांतिसैं विशेषण सहित चेतनमैं प्रतीति औ कथनरूप व्यवहार करिये है।

व्यवहार नाम प्रतीति औ कहनैका है ॥ इस रीतिसैं आभासवाद औ अवच्छेदवादका भेद है ॥

॥ २०३ ॥ आभासवादकी श्रेष्ठता ॥

आभासवादमैं तौ अंतःकरण आभाससहित है औ अवच्छेदवादमैं अंतःकरण आभासरहित है। दोनूं पक्षमैं आभासवाद श्रेष्ठ है, काहेतैं ?–

१ भाष्यकारनै आभासवाद अंगीकार किया है ॥ औ–

२ अवच्छेदवादमैं विद्यारण्यस्वामीनै दोष बी कह्या हैः–जो आभासरहित अंतःकरण अवच्छिन्नचेतनकूं प्रमाता मानै तौ घट-अवच्छिन्नचेतन बी प्रमाता हुआ चाहिये।काहेतैं?

(१) जैसैं अंतःकरण भूतनका कार्य है तैसैं घट बी भूतनका कार्य है॥ औ–

(२) जैसैं अंतःकरण चेतनका अवच्छेदक कहिये व्यावर्त्तक है तैसैं घट बी चेतनका अवच्छेदक है।

यातैं अंतःकरणविशिष्टकी न्यांई घटविशिष्ट बी प्रमाता हुवा चाहिये ॥ औ––

अंतःकरणमैं आभास अंगीकार कियेतैं यह दोष नहीं। काहेतैं ?

१ अंतःकरण तौ भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है, यातैं स्वच्छ है। औ––

२ घटादिक भूतनके तमोगुणके कार्य हैं, यातैं स्वच्छ नहीं ॥

१ जो स्वच्छ पदार्थ होवै सोई आभास-के योग्य होवै है।

२ मलिन पदार्थ आभासके योग्य नहीं। जैसैं काच औ ताका ढकना दोनूं पृथिवी-के कार्य है। परंतु—

१ काच तौ स्वच्छ है, तामैं मुखका आभास होवै है ॥

२ ढकना स्वच्छ नहीं, यातैं तामैं आभास होवै नहीं ॥

१ तैसैं सत्त्वगुणका कार्य होनैतैं अंतःकरण स्वच्छ है। ताहीमैं चेतनका आभास होवै है।

२ शरीरादिक औ घटादिक तमोगुणके कार्य होनैतैं स्वच्छ नहीं । तिनमैं चेतनका आभास होवै नहीं ॥

॥ २०४ ॥ अंतःकरणमैं द्विविध प्रकाश है। यातैं सोई प्रमाता हैं। अन्य नहीं ॥

इस रीतिसैं अंतःकरणमैं द्विविध प्रकाश हैं। एक तो व्यापकचेतनका प्रकाश औ दूसरा आभासका प्रकाश होवै है ॥

शरीरादिक औ घटादिकनमैं एक व्यापक-चेतनका प्रकाश तौ है, दूसरा आभासका प्रकाश नहीं । यातैं द्विविधप्रकाशसहित अंतः-करणविशिष्ट ही चेतन प्रमाता कहिये है।

एकप्रकाशसहित जो घटादिक तिन-करिके संयुक्त चेतन प्रमाता नहीं ॥ जिनके मतमैं अंतःकरणमैं आभास नहीं, तिनके मतमैं घटादिकनकी न्यांई अंतःकरणमैं बी आभास-का दूसरा प्रकाश तो है नहीं। व्यापक चेतनका जो एकप्रकाश अंतःकरणमैं सोई व्यापक चेतनका प्रकाश घटादिकनमैं है। यातैं अंतः-करणविशिष्टकी न्यांई घटविशिष्ट वा शरीर-विशिष्ट वा भीतविशिष्टचेतन बी प्रमाता हुवा चाहिये ॥

इस रीतिसैं घटशरीरादिकनतैं अंतःकरणमैं यही विलक्षणता हैः—

१ अंतःकरण सत्त्वगुणका कार्य है, यातैं स्वच्छ होनैतैं चेतनका आभास ग्रहण करनैके योग्य है।

२ और पदार्थ स्वच्छ नहीं । यातैं आभास ग्रहण करनैके योग्य नहीं ॥

१ आभासग्रहणके योग्य जो अंतःकरण ताकरिके संयुक्त ही चेतन प्रमाता कहिये है ।

२ घटादिक औ शरीरादिक आभास-ग्रहणके योग्य नहीं । यातैं तिनकरिके विशिष्टचेतन प्रमाता नहीं ॥

इस रीतिसैं आभासवाद ही उत्तम[२११] है; अवच्छेदकवाद नहीं ॥

॥ २०५ ॥ प्रमाताआदिक चारि चेतनका स्वरूप ॥

जैसैं अंतःकरण आभाससहित है तैसैं अंतः-करणकी वृत्ति बी आभाससहित ही होवै है ।

साभासवृत्तिविशिष्ट चेतन प्रमाणचेतन कहिये है ॥

अंतःकरणकी घटादिविषयाकार जो वृत्ति तामैं आरूढ चेतनकूं प्रमा औ यथार्थज्ञान कहै हैं ॥

ताका साधन जो इंद्रिय सो प्रमाण कहिये हैं । काहेतैं ? विषयाकारवृत्तिमैं आरूढचेतनकूं प्रमा कहे हैं । तहां चेतन यद्यपि स्वरूपकरिके नित्य है, यातैं इंद्रियजन्यताके अभावतैं प्रमा-चेतनका साधन इंद्रिय नहीं, तथापि निरुपा-धिक चेतनमैं तौ प्रमाव्यवहार है नहीं; किंतु विषयाकारवृत्तिउपहित चेतनमैं प्रमाव्यवहार होवै है । यातैं चेतनविषै प्रमाशब्दकी प्रवृत्तिमैं विषयाकारवृत्ति उपाधि है । सो विषयाकार-वृत्ति इंद्रियजन्य है । इंद्रिय ताका साधन है ।

प्रमापनैकी उपाधि जो वृत्ति ताको इंद्रिय-जन्य होनैतैं उपहित जो प्रमा सो बी इंद्रिय-जन्य कहिये है । यातैं इंद्रिय प्रमाका साधन कहिये है । परंतु अंतःकरणका परिणाम सारा प्रमा नहीं कहिये है । किंतु शरीरके भीतर जो अंतःकरण ताका विषय घटादिकनतोडी परि-णाम, ताकूं प्रमाण कहै हैं ।

विषयतैं मिलिके विषयके समान जो अंतः-करणका परिणाम उतनैकूं प्रमा कहै है ।

शरीरके भीतर जो अंतःकरण तातैं लेके घठादिक विषयतोडी पहुँचा जो अंतःकरणका परिणाम, सोई प्रमारूपकूं धारै है । यातैं प्रमाका प्रमाणरूप अंतःकरणकी वृत्तिसैं अत्यंत भेद नहीं ॥

१ रीतिसैं बाहिरके पदार्थनका प्रत्यक्ष-ज्ञान जहां होवै तहां अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर जायके विषय जो घटादिक तिनके समान आकाररूपकूं धारै है । औ----

२ शरीरके अंतर जो आत्मा ताका प्रत्यक्ष होवै । तब अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर जावै नहीं । किंतु शरीरके भीतर ही वृत्ति आत्माकार होवै है॥

१ ता वृत्तिसैं आत्माके आश्रित आवरण दूरि होवै हैं । औ----

२ आत्मा अपनै प्रकाशतैं ता वृत्तिमैं प्रकाशे है । इसी कारणतैं वृत्तिका विषय आत्मा कह्या है औ चिदाभासरूप जो वृत्तिमैं फल ताका विषय आत्मा नहीं ।

या प्रकारतैं साक्षी आत्मा स्वयंप्रकाशरूप भान होवै है, यह सिद्ध हुआ ॥ ११६ ॥

॥ २११ ॥ यद्यपि आभासवादमैं आभासकी कल्पना अधिक करनी होवै है, अवच्छेदवादमैं नहीं । यातैं आभासवादमैं गौरव है, अवच्छेदवादमैं लाघव है, तथापि मंदबुद्धिवाले जिज्ञासुकी बुद्धिमैं आभासवादका आरोप ठीक बैठता है । या अभिप्राय-सैं इहां आभासवादकी स्तुति करी है । भाष्यकार-आदिकनका बी यही तात्पर्य है ॥

॥२०६॥ प्रश्नः—इंद्रियसंबंध विना "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान प्रत्यक्ष कैसै बनै ? ॥२०६-२१०॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

इंद्रियके संबंध बिन,
"अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ।
कैसै ह्वै प्रत्यच्छ प्रभु ?
मोकूं कहौ बखान ॥ ११७ ॥

टीकाः—"ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानतैं सकल-अविद्याजालका नाश होवै है, परोक्षज्ञानतैं नहीं" यह पूर्व कह्या । ताके विषै शंका करै हैः—ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष बनै नहीं । काहेतैं? इंद्रिय-जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष होवै है । ब्रह्मका ज्ञान इंद्रिय-जन्य बनै नहीं । काहेतैं ?

॥२०७॥ १ ब्रह्मकूं नेत्रकी अविषयता । (रामकृष्णादिकनके शरीर ब्रह्म नहीं ॥

नेत्रइंद्रियतैं रूपवान्‌का अथवा नीलादिक रूपका ज्ञान होवै है, ऐसा ब्रह्म नहीं । यातैं नेत्रइंद्रियजन्य ज्ञान ब्रह्मका बनै नहीं ॥

रामकृष्णादिकनकी जो मनुष्याकारमूर्ति है सो यद्यपि रूपवाली है, तथापि सो मूर्ति मायारचित है । मिथ्या है । सो मूर्ति ब्रह्म नहीं ॥ औ—

पुराणमैं रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही है सो तिनकी शरीररूप मूर्ति ब्रह्मरूप हैं, इस अभिप्रायतैं नहीं कही। किंतु तिनके शरीरन-का अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है । इस अभिप्रायतैं कही है । याके विषै—

ऐसी शंका होवै हैः—सर्वशरीरनका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है, यातैं अधिष्ठानचेतन अभिप्रायतैं रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही होवै तौ सर्वशरीरनका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म होनैतैं मनुष्यपशुपक्षीआदिक सर्व ही ब्रह्मरूप है । तिनके समान ही रामकृष्णादिक होवैंगे । यातैं रामकृष्णादिकनकूं अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है, इस अभिप्रायतैं ब्रह्मरूपता नहीं कही । किंतु तिनकूं और जीवनतैं विशेषरूपताकी सिद्धि वास्तै तिनका शरीर ही ब्रह्म है । ऐसा मानना योग्य है ॥

सो बनै नहीं । काहेतैं ? शरीरका बाध-करिके तिनके शरीरनकूं ब्रह्मरूपता मानै तौ—

१ सर्वशरीरनका बाधकरिके शरीर ब्रह्म-रूप हैं । औ—

२ बाध किये विना तौ अन्य शरीरनकी न्याईं हस्तपादादिक अवयवसहित रूपवान क्रियावान् शरीरका निरवयव नीरूप अक्रिय ब्रह्मतैं अभेद बनै नहीं, यातैं रामकृष्णादिकनका सारेई शरीर ब्रह्म नहीं । परंतु

इतना भेद हैः—१जीवनके शरीर पुण्यपापके आधीन हैं । २ भूतनके कार्य हैं औ ३ जीवनकूं देहादिक अनात्मपदार्थनविषै अविद्या-बलतैं अहंममअध्यास है । आचार्यके उपदेशतैं ता अध्यासकी निवृत्ति होवै है । औ—

१ रामकृष्णादिकनके शरीर अपनै पुण्य-पापतैं रचित नहीं । भूतनके कार्य नहीं । किंतु

(१) जैसैं सृष्टिके आदिमैं प्राणियोंके कर्म भोग देनैकूं सन्मुख होवैं तब आप्तकाम ईश्वर-मैं बी प्राणियोंके कर्मके अनुसार "मैं जगत्‌की उत्पत्ति करूं" ऐसा संकल्प होवै है । ता संकल्पतैं जगत्‌की उत्पत्तिरूप सृष्टि होवै है ।

(२) तैसैं सृष्टितैं अनंतर बी "मैं जगत्‌का पालन करूं" ऐसा ईश्वरका संकल्प होवै है । ता संकल्पतैं जगत्‌का पालन होवै है ॥

कर्मनके अनुसार सुख दुःखका संबन्ध पालन कहिये है ॥

(३)ता पालनसंकल्पके मध्य उपासक पुरुषनकी उपासनाके बलतैं ईश्वरकूं ऐसा संकल्प होवै हैः-"रामकृष्णादिकनामसहित मूर्ति सर्वकूं प्रतीत होवै" ता ईश्वरसंकल्पतैं विशेषनामरूपरहित ईश्वरमैं रामकृष्णादिकनाम पीतांबरधरादि श्यामसुंदर विग्रहरूपकी उत्पत्ति होवै है। सो विग्रह कर्मके आधीन नहीं।

यद्यपि रामकृष्णादिक विग्रहतैं साधु औ दुष्टनकूं क्रमतैं सुखदुःख होवै है। जो जाके सुखदुःखका हेतु होवै है सो ताके पुण्यपापतैं रचित होवै है।यातैं पुण्यपापआधीन काहियेहै।इसरीतिसैं-

१ अवतारनके शरीर साधु पुरुषनकूं सुखके हेतु होनैतैं साधुपुरुषनके पुण्यसमुदायतै रचित हैं।

२तैसैं असुरादिक असाधुपुरुषनकूं दुःखके हेतु होनैतैं तिनके पापतैं रचित है।

यातैं-"अवतारनके शरीर पुण्यपापके आधीन नहीं" यह कहना नहीं संभवै।

तथापि जैसैं जीवनै पूर्वशरीरमैं पुण्यपापकर्म किये हैं तिनका फल उत्तरशरीरमैं ता जीवकूं सुखदुःख होवै है। तहां शरीरअभिमानी जीवके पूर्वशरीरके अपनै पुण्यपापके आधीन उत्तरशरीर काहिये है तैसैं रामकृष्णादिकनके शरीर यद्यपि साधुअसाधुपुरुषनक पुण्यपापके आधीन हैं औ तिनकूं सुखदुःखके हेतु हैं। परंतु रामकृष्णादिकनके पुण्यपापतैं रचित अवतारशरीर नहीं औ तिनकूं अपनै शरीरतैं सुखका तथा दुःखका भोग होवै नहीं। यातैं रामकृष्णादिकनके शरीर अपनै पुण्यपापके आधीन नहीं। यह संभवै है॥

तैसैं भूतनके परिणाम बी रामकृष्णादिक शरीर नहीं, किंतु चेतनआश्रित मायाका परिणाम है॥

(१)जो पंचीकृत भूतनके परिणाम होवै तो कृष्णशरीरविषै रज्जुकृत बन्धनादिकनका अभाव शास्त्रमैं कह्या है, सो असंगत होवैगा॥

यद्यपि पंचभूतरचित सिद्धयोगीशरीरमैं बी बंधनादिक होवै नहीं। तथापि योगीशरीरमैं प्रथम बंधनादिकनका संभव होवै है। फेरि योगाभ्यासरूप पुरुषार्थतैं बन्धनदाहादिकनकी योग्यता नाश होवै है।

कृष्णादिकनके शरीरमैं योगीकी न्यांई कछु पुरुषार्थसै बंधनादिकनका अभाव नहीं। किंतु तिनके शरीर सहज ही बंधनादियोग्य नहीं। यातैं भूतनके परिणाम नहीं। औ-

(२) मांडूक्यभाष्यकी टीकामैं आनंदगिरिनै रामादिकशरीर भूतनके परिणाम कहे हैं, सो स्थूलदृष्टिसैं और शरीरनके समान वे शरीर प्रतीत होवै हैं, इस अभिप्रायतैं कहे हैं। काहेतैं ?

(३)भाष्यकारनै गीताभाष्यमैं यह कह्या हैः-"जीवनके ऊपर अनुग्रहकरिके शरीरधारीकी न्यांई मायाके बलतैं परमात्मा कृष्णरूप प्रतीत होवै है। सो जन्मादिकरहित है। ताका वसुदेवद्वारा देवकीतैं जन्म बी मायातैं प्रतीत होवै है" इस रीतिसैं भाष्यकारनै कृष्णशरीर मायाका कार्य कह्या है।

यातैं भूतनतैं अवतारशरीरनकी उत्पत्ति नहीं। किंतु तिनके शरीरनका उपादानकारण साक्षात् माया है॥

३ और जीवनकूं देहादिकनमैं आत्मभ्रांति है, रामकृष्णादिकनकूं नहीं। काहेतैं ?

(१) जीवनकी उपाधि अविद्या मलिनसत्त्वगुणवाली है। रामकृष्णादिकनकी उपाधि माया शुद्धसत्त्वगुणवाली है। यातैं जीवनकूं अविद्याकृत भ्रांति औ रामकृष्णादिकनकूं मायाकृत सर्वज्ञता होवै है॥

(२) जीवनकूं अज्ञानकृत आवरण औ भ्रांतिके नाशनिमित्त आचार्यद्वारा महावाक्यके उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा है। तैसैं रामकृष्णादिकनकूं आवरण औ भ्रांति नहीं। यातैं उपदेशजन्य ज्ञानकी अपेक्षा नहीं। किंतु जीवअंतः

करणकूं वृत्तिरूप ज्ञानकी न्यांई ईश्वरकूं माया-की वृत्तिरूप आत्माका ज्ञान तौ उपदेशादिक विना बी होवै है । परंतु ता ज्ञानतैं कछु प्रयो-जन तिनकूं सिद्ध होवै नहीं । काहेतैं ?

[१] जीवनकूं घटादिकनके ज्ञानतैं आवरण-भंग औ विषय जो घटादिक तिनका प्रकाश होवै है। औ ब्रह्मरूपतैं आत्माका ज्ञान जो जीव-नकूं होवै है । तहां--

(क) ज्ञानका विषय जो आत्मा ताका आवरण भंग तौ ज्ञानतैं होवै है औ आत्मविषय स्वयंप्रकाश है ।

(ख) यातैं आत्मज्ञानतैं विषयका प्रकाश होवै नहीं । तैसैं ईश्वरकूं मायाकी वृत्तिरूप जो " अहं ब्रह्मास्मि "ऐसा ज्ञान, ताका विषय ईश्वरकी आत्मा सो आवरणरहित स्वयंप्रकाश है।यातैं आवरणभग वा विषयका प्रकाश ईश्वरके ज्ञानका प्रयोजन नहीं ॥

[२] जैसैं जीवन्मुक्तविद्वानकूं निरावरण-आत्माकूं विषय करनैवाली अंतःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि"ऐसी वृत्ति आवरणभंगादिक प्रयोज-नरहित होवै हैं, तैसैं ईश्वरकूं बी आवरणभंगा-दिक प्रयोजनविना मायाकी वृत्तिरूप"अहं ब्रह्मा-स्मि" ऐसा ज्ञान उपदेशादिकतैं विना होवै है ॥

इस रीतिसैं रामकृष्णादिकनकूं जीवनतैं विलक्षणता ईश्वरता है, तौ बी तिनका शरीर मायारचित है, यातैं ब्रह्म नहीं; किंतु मिथ्या है। मायानै उत्पन्न कीया जो अवतारनका शरीर सो हस्तपादादिक अवयवसहित औ रूपसहित किया है।यातैं नेत्रइंद्रियका विषय तिनका शरीर होवै है । ब्रह्मकूं नेत्रइंद्रिय विषय करै नहीं ॥

॥ २०८ ॥ २ ब्रह्मकूं त्वचाइंद्रियकी अविषयता ॥

तैसै त्वचाइंद्रिय बी स्पर्शकूं औ स्पर्शके आश्रयकूं विषय करै है । ब्रह्म स्पर्शका आश्रय नहीं औ स्पर्श नहीं । यातैं त्वचाइंद्रियका विषय नहीं ॥

॥ २०९ ॥ ३-५ ब्रह्मकूं रसना, घ्राण श्रोत्रइंद्रियकी अविषयता ॥

रसनाइंद्रियतैं रसका ज्ञान, घ्राणतैं गंधका ज्ञान औ श्रोत्रतैं शब्दका ज्ञान होवै है । रसगंध-शब्दतैं ब्रह्म विलक्षण है । यातैं रसना घ्राण औ श्रोत्रतैं ब्रह्मका ज्ञान होवै नहीं ॥ औ--

॥ २१० ॥ ब्रह्मकू कर्मइंद्रियनकी अविषयता ॥

कर्मइंद्रिय ज्ञानके साधन नहीं, किंतु वचना-दिकक्रियाके साधन हैं । यातैं तिनतैं तौ किसीका ज्ञान होवै नहीं ।

इस रीतिसैं किसी इंद्रियतैं ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं ॥

औ इंद्रियतैं जो ज्ञान होवै सो ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है । प्रत्यक्षकूं ही अपरोक्ष कहै हैं ॥

यातैं ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान बनै नहीं । किंतु शब्दसैं ब्रह्मका ज्ञान होवै है । जो शब्दसैं ज्ञान होवै सो परोक्ष होवै है । यातैं ब्रह्मका ज्ञान बी परोक्ष ही होवै है ॥

(॥२०६-२१० गत प्रश्नका उत्तर ॥ २११-२१२ ॥)

॥ २११ ॥ इंद्रियसंबंध विना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं, यह नियम नहीं ॥ सुख-दुःखकी साक्षीभास्यता ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

इंद्रिय बिन प्रत्यक्ष नहिं,

सिष यह नियम न जान ।
बिन इंद्रिय प्रत्यच्छा है,
जैसैं सुखदुःख ज्ञान ॥ ११८ ॥

टीकाः-इंद्रियसंबंध विना प्रत्यक्ष ज्ञान होवै नहीं, यह नियत नहीं । काहेतैं ? जैसैं सुखका औ दुःखका ज्ञान होवै सो किसी इंद्रियतैं होवै नहीं । सो सुखदुःखका ज्ञान बी प्रत्यक्ष होवै है । यातैं इंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै सोई प्रत्यक्ष ज्ञान होवै यह नियम नहीं । किंतु विषयतैं वृत्तिका संबंध होयके विषयाकारवृत्ति जहां होवै तहां प्रत्यक्षज्ञान कहिये है ॥

१ सो विषयतैं वृत्तिका संबंध कहूं इंद्रियद्वारा होवै है । औ-

२ कहूं शब्दसैं होवै है ॥ जैसैं "दशम तूं है" इस शब्दतैं दशम जो आप तातैं अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध होयके दशमाकारवृत्ति होवै है । यातैं शब्दजन्य बी दशमका ज्ञान प्रत्यक्ष होवै है ॥

तैसैं प्रमाताविषै सुखदुःख होवै तब सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै । ता वृत्तिसैं सुखदुःखका संबंध होवै है । यातैं सुख दुःखका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है ॥

पूर्वउत्पन्न सुखदुःखका नष्ट हुये पीछे जहां पुरुषकूं याद आवै तहां सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति तौ होवै है । परंतु वृत्तिके नष्ट हुये सुखदुःखतैं संबंध नहीं । यातैं सो ज्ञान स्मृतिरूप है, प्रत्यक्षरूप नहीं ॥

१ यद्यपि अंतःकरणके धर्म सुखदुःख साक्षीभास्य हैं, तथापि सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा साक्षी सुखदुःखका प्रकाश करै है ।

२ जो साक्षीभास्य पदार्थ हैं तिनकूं बी साक्षी वृत्तिकी अपेक्षातैं ही प्रकाशै है । जैसैं शुक्तिरजत साक्षीभास्य हैं तहां अविद्याकी वृत्तिकी अपेक्षाकरिकें साक्षी रजतकूं प्रकाश है ।

१ परंतु सुखदुःखके प्रकाशमैं अंतःकरणकी वृत्ति साक्षीकी सहायक है । औ

॥ २१२ ॥ विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेदही प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण है । सो अभेद-

१ कहूं इंद्रियद्वारा होवै है ।

२ कहूं शब्दसैं होवै है औ--

३ कहूं इंद्रियादिरूप बाह्यनिमित्तसैं विना ही शरीरके भीतर उपजी वृत्तिद्वारा होवै है ।

तहां प्रत्यक्षज्ञान कहिये है-

चेतनका स्वरूपसैं तो कहूं भेद है नहीं । किंतु विषय और वृत्तिरूप उपाधिका किया भेद है । सो उपाधि जब भिन्नदेशमैं स्थित होवै । तब तिस उपाधिवाले चेतनका भेद कहिये है ।

जब विषयाकारवृत्ति होवै तब दोनूं उपाधि एक देशविषै स्थित होवै है, यातैं तिस उपाधिवाले विषयचेतन औ वृत्तिचेतनका अभेद कहिये है । सो विषयचेतनतैं वृत्तिचेतनका अभेद ही प्रत्यक्षज्ञान कहिये है । याहीकूं अपरोक्षज्ञान औ साक्षात्कार बी कहते हैं ।

यह प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण--

१ इंद्रियजन्य बाह्यघटादिकके प्रत्यक्षज्ञानविषै अनुगत है । औ-

२ महावाक्यजन्य ब्रह्मके प्रत्यक्षज्ञानविषै अनुगत है । औ-

३ बाह्यनिमित्तसैं विना अन्तर उपजे सुखदुःखके प्रत्यक्षज्ञानविषै अनुगत है । औ-

४ मायाकी वृत्तिरूप ईश्वरके ज्ञानविषै अनुगत है । औ-

५ अविद्याकी वृत्तिरूप रज्जुसर्पादिकनके ज्ञान विषै अनुगत है ॥

प्रत्यक्षज्ञानके लक्षणका विशेष निर्णय वृत्तिरत्नावलिके द्वितीयरत्नविषै किया है ॥

२ मिथ्यारजतादिकनके प्रकाशमैं अविद्याकी वृत्ति सहायक है।

इस रीतिसैं साक्षीभास्य पदार्थके ज्ञानमैं बी वृत्तिकी अपेक्षा है ॥

१ सो वृत्ति जहां इंद्रियादिक बाह्यसाधनतैं होवै ताका विषय साक्षीभास्य नहीं कहिये है।

सुखदुःखकूं विषय करनैवाली वृत्तिमैं बाह्यइंद्रियादिक हेतु नहीं। किंतु जब सुखादिक उत्पन्न होवैं तिसी कालमैं अन्यसाधनकी अपेक्षा विना सुखाकार दुःखाकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै है। ता वृत्तिमैं आरूढ साक्षी सुखदुःखकूं प्रकाशै है। यातैं सुखदुःख साक्षीभास्य कहियें हैं ॥ औ—

॥२१२॥ ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष संभवै है ॥ तत्त्वदृष्टिकूं भेदभ्रमका अंत ॥

बाह्य जो घटादिक हैं तिनसैं अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध नेत्रादिक इंद्रियद्वारा होवै है। यातैं घटादिक साक्षीभास्य नहीं।

तैसैं ब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै है सो अंतःकरणकी वृत्ति बाहिर नहीं जावै है। किंतु शरीरके अंतर ही होवै है। ता वृत्तिसैं ब्रह्मका संबंध है। यातैं ब्रह्मका ज्ञान बी सुखदुःखके ज्ञानकी न्यांई प्रत्यक्षरूप है। परंतु

१ सुखाकार दुःखाकार वृत्तिमैं बाह्यसाधनकी अपेक्षा नहीं, यातैं सुखदुःख साक्षीभास्य हैं ॥ औ—

२ ब्रह्माकार जो अंतःकरणकी वृत्ति तामैं तौ गुरुद्वारा वेदवचनका श्रोत्रसैं संबंध बाह्यसाधन चाहिये है। यातैं ब्रह्म साक्षीभास्य नहीं।

इस रीतिसैं जहां विषयतैं वृत्तिका संबंध होवै, तहां प्रत्यक्षज्ञान कहिये है ॥ "अहं ब्रह्मास्मि"

॥ २१३ ॥ जैसैं:—

१ चक्षुविषै सूर्यकी अभेदता है तिसकूं अंगुलीआदिरूप स्वल्पआवरणसैं आच्छादित भये ब्रह्मांडवर्ती सूर्यका प्रकाश दीखता नहीं। औ—

२ तिस आवरणके निवृत्त भये चक्षुगत अन्तःकरणकी वृत्तिसैं ब्रह्मांडवर्ती सूर्यका प्रकाश दीखता है।

तैसैं:—

१ साक्षीआत्माविषै ब्रह्मकी अभेदता है तिसकूं अन्तःकरणगत अज्ञानाशरूप स्वल्पआवरणसैं आच्छादित भये सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्म प्रत्यक्ष भासता नहीं।

२ जब शरीरके भीतर उपजी ब्रह्मात्माकी अभेदताके आकार वृत्तिकरि उक्त आवरणका भंग होवे तब गृहगत आकाशके असंगतादिकके ज्ञानकरि महाकाशके असंगतादिके ज्ञानकी न्यांई सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्मका स्वप्रकाशताकारिके भान होवै है ॥

॥ २१४ ॥ जैसैं ब्रह्म साक्षीभास्य नहीं तैसैं ब्रह्म चिदाभाससहित अन्तःकरणकी वृत्तिरूप प्रमाताका बी विषय नहीं। अन्यदीपककी अपेक्षासैं रहित केवल नेत्रके विषय दीपककी न्यांई अन्तःकरणकी "अहं ब्रह्मास्मि" इस आकारवाली केवलवृत्तिका विषय ब्रह्म है। यातैं ब्रह्म प्रमाताभास्य बी नहीं। किंतु अपनै प्रकाशमैं अन्यप्रकाशकी अपेक्षासै रहित सर्वका प्रकाशक ऐसा **स्वयंप्रकाशरूप** ब्रह्म है।

वृत्ति बी वस्त्रके मलकूं साबूनकी न्यांई ब्रह्मका आवरण भंग करै है। सोई ताका विषय करना है। और प्रकारका विषय करना वृत्तिका नहीं। औ—

"अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्तिरूप तत्त्वज्ञानकूं बाह्यसाधनकी अपेक्षा विना साक्षी प्रकाशता है। यातैं सो तत्त्वज्ञान साक्षीभास्य है।

या वृत्तिका विषय जो ब्रह्म तासैं संबंध है । यातैं ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष संभवै है । औ-

१ जहां धूमकूं देखिके अग्निका ज्ञान होवै है तहां धूमका ज्ञान तौ प्रत्यक्ष है औ अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं। काहेतैं ! नेत्रद्वारा अंतःकरणकी वृत्तिका धूमतैं संबंध है यातैं धूमका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है । औ-

२ अनुमानतैं अंतःकरणकी वृत्ति शरीरके अंतर अग्निके आकारकूं ग्रहण करनैवाली तौ हुई । परंतु अग्निसैं वृत्तिका संबंध नहीं । यातैं अग्निका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं ।

इस रीतिसैं जहां वृत्तिसैं विषयका संबंध होवै तहां प्रत्यक्षज्ञान कहिये है ।

जहां वृत्तिसैं विषयका संबंध नहीं होवै, विषय बाहिर दूरि होवै अथवा भूत वा भविष्यत् होवै औ अनुमानतैं अथवा शब्दतैं विषयाकारवृत्ति अंतर होवै सो ज्ञान परोक्ष कहिये है ॥

इंद्रियजन्य ज्ञान ही प्रत्यक्ष होवै है।यह नियम नहीं। जैसैं सुखदुःखका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं औ प्रत्यक्ष है। तैसैं दशमपुरुषका ज्ञान शब्दजन्य है तौ बी प्रत्यक्ष होवै है ॥

इस रीतिसैं गुरुद्वारा श्रवण किया जो महावाक्यरूप वेदशब्द तासैं उत्पन्न हुवा ब्रह्मज्ञान बी प्रत्यक्ष ही संभवै है ॥ ११८ ॥

॥ दोहा ॥

गुरुकी अस उपदेस सुनि,
तत्त्वदृष्टि बुद्धिमंत ।
ब्रह्मरूप लखि आतमा,
कियो भेदभ्रम अंत ॥ ११९ ॥
'अहं ब्रह्म' या वृत्तिमैं,
निरावरन है भान ।
दादू आदूरूप सो,
यूं हम लियो पिछान ॥ १२० ॥

इति श्रीविचारसागरे उत्तमाधिकारि-उपदेशनिरूपणं नाम चतुर्थस्तरंगः समाप्तः ॥ ४ ॥



॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ पञ्चमस्तरंगः ॥ ५ ॥



॥ अथ श्रीगुरुवेदादिव्योवहारिकप्रतिपादन ॥ २१३-२७६ ॥
औ
॥ मध्यमाधिकारिसाधननिरूपण ॥ २७७-३०३ ॥

॥२१३॥ अदृष्टिका प्रश्नः-वेदगुरु सत्य होवै वा मिथ्या होवै ? दोनूं रीतिसैं वेदगुरुतैं अद्वैत ज्ञान बनै नहीं ॥

पूर्व तरंगमैं यह कह्या:-"गुरुमुखद्वारा श्रवण किये वेदवाक्यतैं अद्वैत ब्रह्मका साक्षात्कार होवै है" ताकूं सुनिके अदृष्टिनाम द्वितीय शिष्य यह शंका करै है:-

१ वेदगुरु सत्य होवै तौ अद्वैतकी हानि।
२ असत्य होवै तौ तिनतैं पुरुषार्थकी प्राप्ति बनै नहीं।

दोनूं रीतिसैं वेदगुरुतैं अद्वैतज्ञान बनै नहीं ॥

॥ चौपाई ॥

वेद रु गुरु जो मिथ्या कहिये।
तिनतैं भवदुख नस्यो न चहिये ॥
जैसैं मिथ्या मरुथलको जल।
प्यासनासको नहिं तामैं बल ॥ १ ॥
सत्य वेद गुरु कहैं तु द्वैत।
भयो गयो सिद्धांत अद्वैत ॥
यूं संकरमत पेखि असुद्धा।
तज्यो सकल मध्वादि प्रबुद्धा ॥ २ ॥

["भयो" पदको प्रथम पादसैं अन्वय है]

यह संका भगवन् मुहि उपजै।
उत्तर देहु दयाल न कुपिजै।

(॥ उत्तर ॥ २१४-२३६ ॥)

॥ २१४ ॥ शंकरमतकी प्रमाणता ॥

गुरु बोले सिषकी सुनि बानी।
संकरको मत परम प्रमानी ॥ ३ ॥
चारयार मध्वादिक जे हैं।
वेदविरुद्ध कहत सब ते हैं ॥
यामैं व्यासवचन सुनि लीजे।
संकरमतहि प्रमान करीजे ॥ ४ ॥
कलिमैं वेदअर्थ बहु करि है।
श्रीसंकरसिव तब अवतरि है ॥
जैनबुद्धमत मूल उखारे।
गंगातैं प्रभु मूर्ति निकारे ॥ ५ ॥

जैसैं भानु-उदय उजियारो ।
दूरि करै जगमैं अँधियारो ॥
सब बस्तुहि ज्यूंको त्यूं भासै ।
संसै और विपर्यय नासै ॥ ६ ॥

वेदअर्थमैं त्यूं अज्ञाना ।
नसि है श्रीसंकरव्याख्याना ॥
करि हैं ते उपदेस यथारथ ।
नासहि संसय अरु अयथारथ ॥७॥

अयथार्थ कहिये भ्रांति ।

और जु वेदअर्थकूं करि हैं ।
ते सठ वृथा परिश्रम धरि हैं ॥
यूं पुरानमैं व्यास कही है ।
संकरमतमैं मान यही है ॥ ८ ॥

मध्वादिकको मत न प्रमानी ।
यह हम व्यासवचनतैं जानी ॥
और प्रमान कहूं सो सुनिये ।
वालमीकरिषि मुख्य जु गिनिये ॥९॥

तिन मुनि कियो ग्रंथ वासिष्ठा ।
तामैं मत अद्वैत स्पष्टा ॥
श्रीसंकर अद्वैत हि गान्यो ।
तिनको मत यह हेतु प्रमान्यो ॥१०॥

॥ २१५ ॥ भेदवादकी अप्रमाणता ॥

वालमीकरिषि वचन विरुद्ध ।
भेदवाद लखि सकल असुद्धं ॥ ११ ॥

टीकाः—सर्व प्रकरणका भाव यह हैः—व्यासभगवान्नैं पुराणमैं यह कही हैः—"जब कालिमैं वेदके अर्थकूं नानाभांति करैंगे तब कृपालु शिव श्रीशंकर नाम धारके अवतार लेके बदरीनाथकी मूर्तिका देवनदीमध्यतैं उद्धार, स्वस्थानमैं स्थापन, जैनबुद्धमतखंडन औ वेदका यथार्थव्याख्यान करैंगे"।

१ या [२१५] व्यासवचनतैं श्रीशंकर मत प्रमाण है।

२ औ मध्वादिकनका भेदमत अप्रमाण है।

और उपनिषद्, गीता व सूत्र ये तीनि जो वेदांतके प्रस्थान हैं तिनके यद्यापि मध्वादिकननै किसीतरैं खींचके स्वस्वमतके अनुसार व्याख्यान किये हैं, तथापि व्यासवचनतैं श्रीशंकरकृत व्याख्यान ही यथार्थ है ॥ औ—

आदिकवि सर्वज्ञ वाल्मीकऋषिनै उत्तररामायण वासिष्ठनाम ग्रंथ किया है तहां अद्वैतमतमैं प्रधान जो दृष्टिसृष्टिवाद है सो अनेक इतिहासनसैं प्रतिपादन किया है, यातैं वाल्मीकवचन अनुसार अद्वैतमत प्रमाण है औ वाल्मीकवचन विरुद्ध भेदमत अप्रमाण है ॥

इस रीतिसैं सर्वज्ञऋषिमुनिवचनविरोधतैं भेदवाद अप्रमाण कह्या औ युक्तिसैं बी भेदवाद विरुद्ध है, यह खंडन आदिक ग्रंथनमैं श्रीहर्षादिकननै प्रतिपादन किया है। युक्ति कठिन है। यातैं भेदमतखंडकी युक्ति नहीं लिखी ॥ औ—

॥ २१६ ॥ भेदवादका तिरस्कार ॥

ऋषिमुनिवचनतैं विरुद्ध भेदमतमैं जैनमतकी न्याई अप्रमाणता निश्चय हुयेतैं युक्तिसैं खंडनकी आस्तिक अधिकारीकूं अपेक्षा बी नहीं। यह तीनि चौपाईसौं कहै हैंः—

॥ २१५॥ या प्रकारके वायुपुराणकूर्मपुराण आदिगत व्यासभगवान्के वाक्यतैं ॥

॥ चौपाई ॥

कियो ग्रंथ श्रीहर्ष[२१६] जु खंडन ।
खंडनभेद एकतामंडन ॥
लिख्यो तहां यह बहु बिस्तारा ।
भेदवाद नहिं युक्ति सहारा ॥ १२ ॥

और भेदधिक्कार जु ग्रंथा ।
तहां भेदखंडनको पंथा ॥
कठिन दुरूहतर्क[२१७] हैं ते अति ।
नहिं पैठिहि सिष तिनमैं ते मति १३

यातैं कही न ते तुहि उक्ती ।
करै जु भेदहि खंडन युक्ती ॥
अप्रमान मत भेद लख्यो जब ।
खंडनमैं युक्ति न चहियत तब १४॥

वेदवचनसैं बी भेदमत विरुद्ध है, यह कहै हैं:-

भेदप्रतीति महादुखदाता ।
यँम[२१८] कठमैं यह टेरत ताता ॥
यातैं भेदवाद चित त्यागहु ।
इक अद्वैतवाद अनुरागहु ॥ १५ ॥

॥ १ ॥ "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति[२१९],
य इह नानेव पश्यति" इतिश्रुतेः
॥ १॥ "द्वितीयाद्वै भयं भवति" २॥
"अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति
न स वेद यथा पशुरेव स
देवानाम्" इति द्वे श्रुती ॥

अर्थः—

जो द्वितीयकूं मतिमैं धारै ।
भय ताकूं यह वेद पुकारै ॥
ज्ञेय ध्येय मोतैं कछु औरा
लखै सु पसु यह वेद-ढँढोरा ॥१६॥

सिष यातैं मध्वादिकबानी ।
सुनी सु बिसरहि अति दुखदानी ॥
द्वैतवचन तव हियमैं जौलौं ।
है साछात अद्वैत न तौलौं ॥ १७ ॥

(॥ राजाके मंत्री भर्छुकी कथा
॥ २१७-२२८ ॥)

॥ २१७ ॥ भर्छुका तपस्वी होना ।

द्वैतवचनको स्मरन जु होवै ।
है साछात तु ताहि बिगोवै ॥

॥ २१६ ॥ श्रीहर्षमिश्राचार्यनामक सरस्वतीकारि-अनुगृहीत अद्वैतवादी पंडित भये हैं । तिनोंने जु कहिये जे खंडन कहिये खंडनखंडखाद्यनामक ग्रंथ किया है, तामैं ।

॥ २१७ ॥ दुरूहतर्क कहिये जिनकी दुःखसैं बुद्धिमैं कल्पना होवै ऐसी प्रतिवादीके अनिष्टके संपादनरूप तर्क नाम युक्तियां हैं ।

॥ २१८ ॥ यम कहिये धर्मराजा, कठमैं कहिये कठवल्लीउपनिषद्मैं, यह वार्ता टेरत कहिये पुकारते हैं !

॥ २१९ ॥ अर्थः—"जो पुरुष इस परमात्माविषै नानाकी न्यांई देखता है, सौ मृत्युतैं मृत्युकूं पावता है" इति ॥

पूर्वस्मृति साछात बिनासत ।
सुन इक अस तुहि कथा प्रकासत १८

राजाको इक भर्छू मंत्री ।
राजकाज सब ताके तंत्री ॥
और मुसाहिब मंत्री जेते ।
करैं ईरषा तासूं तेते ॥ १९ ॥

[तंत्री कहिये आधीन]

करि न सकत भर्छूकी हाना ।
महाराज निजजिय प्रिय जाना ॥
तब सब मिलि यह रच्यो उपाया ।
[२२०]धौंरि दौर दंगा मचवाया ॥ २० ॥

सो सुनि राजहि करी कचहरी ।
लिये बुलाय मुसाहिब जहरी ॥
तिनसूं कह्यो बेग चढ़ि जावहु ।
दौरैत[२२१] धारि सु धूम नसावहु ॥२१॥

तब सब मिलि उत्तर यह दीना ।
सदा एक भर्छुहि तुम चीना ॥
मरनलिए अब हमहि पठावतु ।
भर्छूकूं कहु क्यूं न चढ़ावतु ? ॥२२॥

तब बोल्यो भर्छू कर जोरी ।
महाराज सुनु बिनती मोरी ॥
आज्ञा होय मोहि यह रौरी[२२२] ।
मारूं सकल धारि जो दौरी ॥ २३॥

तब भर्छूकूं बोल्यो राजा ।
तुम चढ़ि जाहु समारहु काजा ॥
ते जातहि भर्छू सब मारे ।
बनिक[२२३] कृषीबल[२२४] किये सुखारे ॥२४॥

भर्छू विजय सुन्यो तिन जबही ।
राजापै भाख्यो यह तबही ॥
" भर्छू मर्यो न सुधर्यो काजा" ।
मिथ्यावचन सुनत ही राजा ॥२५॥

और प्रधान मुसाहिब[२२५] कीनो ।
छत्र रु पीनस[२२६] पंखा दीनो ॥
बंदोबस तिन कीने अपनहु ।
सुनै न राजा भर्छू सुपनहु ॥ २६ ॥

सब वृत्तांत भर्छु तब सुनिके ।
रूप तपस्वि धर्यो यह गुनिके ॥
राजापैं मुहिं जान न दै हैं ।
गये द्वारलग प्रानहु लैं हैं ॥ २७ ॥

अबलग सबहि पदारथ भोगे ।
देह रु इंद्रिय रहे अरोगे ॥

॥ २२० ॥ दौर धारि कहिये धाड़ाकारिके ।

॥ २२१ ॥ दौरत धारि करिये धाडा करनैवालेकी । धूम कहिये लड़ाईकूं । सु कहिये अच्छीतरहसैं । नसावहु कहिये नाश करहु ।

॥ २२२ ॥ तुम्हारी ।

॥ २२३ ॥ वैश्य (धनिक) ॥

॥ २२४ ॥ खेती करनैवाले ॥

॥ २२५ ॥ और मुसाहिब कहिये वजीर (लघुमंत्री) कूं । प्रधान (मुख्यमंत्री) कीनो ।

॥ २२६ ॥ पालखी ।

तिय[२२७] जो चारि चतुर्पद[२२८] सोहत ।
च्यारि फूल फल खग मन मोहत॥२८

॥ २१८ ॥ नारीकी निंदा ॥

"तिय" आदि "खग" अंत । ये दोपदके अर्थका

॥ दोहा ॥

॥ चारि चतुर्पद ॥

करि[२२९] कर उरु मृग खुरु पुरज,
केहरिसी कटि मान ।
लोयन चपल तुरंगसैं,
बरनै परम[२३०]सुजान ॥ २९ ॥

॥ चारि फूल ॥

कमलवदन अलसी कुसुम,
चिबुकचिह्न मतिधाम ॥
तिलप्रसूनसी नासिका,
चंपक तनु अभिराम[२३१] ॥ ३० ॥

॥ चारि फल ॥

बिंब अधर दारिम दसन,
उरज[२३२] बिल्लसे धीर ।
कोहर[२३३]सी एडी कहत,
कोविद मति गंभीर ॥ ३१ ॥

॥ चारि खग ॥

है मराल[२३४]सी मंदगति,
कंठ कपोत[२३५] सुढार ।
पिकसी बानी अति मधुर,
मोरपुच्छसे बार ॥ ३२ ॥

॥ चौपाई ॥

गंग पयोनिधि कबहुँ न त्यागत॥
जातैं रसिकसुमन अनुरागत ।

॥ २२७ ॥ इहांसैं लेके ३४ वें छंदपर्यंत काव्यग्रंथनकी रीतिसैं जो स्त्रीके अंगनका वर्णनरूप आरोप किया है, सो दोषदृष्टिरूप अपवाद अर्थ है । काहेतैं ? लक्ष्य जो अमाज तिस विना बाणके प्रहारकी न्यांई आरोप विना अपवाद होवै नहीं । यातैं प्रथम विषयासक्त पामर कविजनोंके कथनका अनुवादरूप आरोप किया है । पीछे या तरंगके ३९ वें छंदसैं स्त्रीके अंजनसैं दोषदृष्टिरूप अपवाद कहेंगे ॥

जातैं पीछे अपवाद किया है, तातैं इहां स्त्रीके अंगनकी उपमामैं तात्पर्य नहीं । किंतु तैसी उपमा देनैवाले विषयलपट जनोंके उपहासमैं तात्पर्य है । सर्व काव्यग्रंथनका बी यही अभिप्राय है।

उक्त स्त्रीके अंगनकी उपमाका यथास्थित खंडन हमनै रूपकादर्शमैं शृंगारवैराग्यके प्रसंगमैं लिख्या है । तहां देख लेना ।

॥२२८॥ चारि पगवाले पशुकी न्याई ।

॥ २२९ ॥ करिकर कहिये हस्तीके सूंड जैसी । उरु कहिये साथर (जानूंसैं उपरका अंग) है ।

॥ २३० ॥ काव्यग्रंथनमैं कुशल ।

॥ २३१ ॥ तनु जो शरीर, ताका अभिराम कहिये आकार ।

॥ २३२ ॥ उरज कहिये पयोधर, बिल्लसे कहिये बिल्वफल जैसैं हैं औ धीर कहिये सघन होनैतैं स्थिर हैं। अथवा धीर कहिये हे धीर ! ।

॥ २३३ ॥ मूलेके पत्ते जैसै पत्तेवाला । तैसा ही छोटाशाकका वृक्षविशेष है । ताका नाम कोहर है। याहीकूं हिंदुस्थानमैं फारशीशब्दमैं सलगम बी कहते हैं। ताके मूलमैं प्याज जैसा लालरंगवाला गोलफल होवै है, ताका नाम कोहरफल है । तिस जैसी स्त्रीकी एडी कवि कहते हैं ।

॥ २३४ ॥ हसपक्षी जैसी ।

॥ २३५ ॥ कोकिलानाम पक्षी जैसी ।

विधि तिलोत्तमा अपर बनाई ।
हन्यो सुंद जिन[२३६] सो न सुहाई॥३३॥
मिहिंदी जावक कर पद रागा ।
तिनको मैं किय निमिष न त्यागा ॥
और[२३७] भोग तिनके उपकरना ।
भोगे सबै निकट भौ मरना ॥ ३४ ॥
[२३८]अहो मूढ को मम सम जगमैं ।
भौ लंपट अबलग मैं भगमैं ॥
गीलो मलिन मूत्रतैं निसिदिन ।
स्रवत मांसमय रुधिर जु छत[२३९] बिन३५
चर्म लपेट्यो मांसमलीना ।
ऊपरि बार असुद्ध अलीना ॥
इनमैं कौन पदारथ सुंदर ।
अति अपवित्र ग्लानीको मंदिर॥३६
तियकी[२४०] जंघ जघन्य सदा ही ।
रंभा करिकर उपमित जाही ।
आर्द्र मूतको मनु पतनारो ।
रुधिर मांस त्वक् अस्थि पसारो३७
लगत जु नीके[२४१] स्थूलनितंबा ।
तिनके मध्य मलिन मलबंबा[२४२] ॥
तट ताके ते अतिदुर्गन्धा ।
है आसक्त तहां सो अंधा ॥ ३८ ॥

॥ २३६ ॥ जिन कहिये जिस ब्रह्माकी रची हुई तिलोत्तमानै सुंद औ तिसकरि उपलक्षित निसुंदनामक दैत्य, हन्यो कहिये मरवायो है । यातैं सो तिलोत्तमा हत्यारी होनैतैं न सोहाई कहिये अच्छी नहीं औ मेरी स्त्री हत्यारी नहीं यातैं तिस ब्रह्मदेवरचित तिलोत्तमानामक अपसरातैं बी उत्तम है । यह अभिप्राय है ॥

इहां यह **महाभारतगत कथा** है:—कोई सुंदनिसुंदनामक दोनों दैत्य भ्राता थे । तिनोंनें तप करिके ब्रह्मदेवसैं ऐसा वर लिया कि:—"हम दोनूं भ्राता परस्परके हाथसैं लड़ मरैं तो मरैं, परंतु दूसरे किसीके हाथसैं मरैं नहीं" ऐसा वर पायके त्रिलोकीकूं दुःख देने लगे । तब ब्रह्मदेवनैं दोनूं भ्राताकी प्रीतिभंगके निमित्त सारे जगत्की स्त्रियनतैं अतिसुंदर ऐसी तिलोत्तमा नाम अप्सरा रचिके ब्रह्मलोकसैं पृथ्वीपर तिन दोनूं दैत्यनके पास गेरी । ताकूं देखिके वे दैत्य पृच्छा करनै लगे कि:—"तूं हम दोनूकूं वरैगी?" तब तिसनै कह्या कि:—"मैं एककूं वरौंगी दोकूं नहीं" फेर सो तिन दोनूकूं भिन्न भिन्न एकांतमैं बुलायके कहत भई कि:—"तूं दूसरे भाईकूं मार तो तुजे वरूंगी" इस रीतिसैं दोनूंसैं न्यारा न्यारा मंत्र (सलाह) किया तब वे दोनूं भ्राता परस्पर लड मरे ॥

इस रीतिसैं वह तिलोत्तमा सुंद औ निसुंद दैत्यके मारनैमैं निमित्त भई । यातैं सो हत्यारी है ॥

॥ २३७ ॥ और खानपानआदिक अन्यइंद्रियनके विषयनके भोग तिनके (स्त्रीभोगके) उपकरण कहिये सामग्री है ॥

॥ २३८ ॥ इहांसै लेके ३८ वें छंदपर्यंत जो पाठ है, सो स्त्रीके पास पुरुषकूं बांचना योग्य नहीं ॥

॥ २३९ ॥ शस्त्रादिककी चोटसैं जो अंग फटे । ता फटनैकूं छत (क्षत) कहते है, तिस विना ऋतुकालमैं स्त्रीकी योनितैं मांसमय रुधिर स्रवता है, सो ग्लानिका स्थान है ॥

॥ २४० ॥ स्त्रीकी जंघ कहिये ऊरु नाम साथर, सो सर्वकालमैं जघन्य कहिये निकृष्ट है । जाकूं रंभा कहिये कदलीका खंभा औ करिकर कहिये हाथीकी सुंड, तिनकरिके उपमित कहिये केइक विषयलंपट कवि उपमायुक्त करते हैं। सो जंघ मनु कहिये मानौ आर्द्र (गीलो) मूत्रको पतनारो कहिये वर्षाकालमैं जिसतैं गृहके ऊपरका जल गिरे ऐसा पनवारा है ॥

॥ २४१ ॥ कटिपश्चात्भाग ॥

॥ २४२ ॥गुद (मलद्वार)

अधर जो थूक लारसैं भीजत ।
तजि ग्लानी निजमुखमैं दीजत ॥
दृष्टमदा नारी मदिरा भजि ।
सुद्धअसुद्ध विवेक दियो तजि॥३९॥
[दृष्टमदा कहिये जाके देखत ही मद चढै]
कहत नारिके अंग जु नीके ।
करत विचार लगत यूं फीके ॥
कपट कूंट[२४३]को आकर नारी ।
मैं जानी अब तजन विचारी ॥४०॥
॥ २१९ ॥ ॥ भर्छुके वैराग्यका कथन॥
कलाकंद दधि पायँस[२४४] पेरा ।
तंदुल घृत व्यंजँन[२४५] बहुतेरा ॥
औरविवि धभोजन जे कीने ।
तिन सबके रसना रस लीने ॥४१॥
अबलौं भई न तृप्ति जु याकूं ।
यातैं वृथा पोषिना ताकूं ॥
छुधा विनासहि बन फल कंदा ।
है क्यूं पराधीन यह बंदा ॥ ४२ ॥
गुहा महल बन बाग घनेरा ।
क्यूं राजाको है हूं चेरौं[२४६] ॥
सैजसिला अरु निजभुज तकिया ।
निर्झरजल कर पात्रनँ[२४७] रुकिया ॥४३॥

बैठि इकंत होय सुछंदा ।
लहिये भर्छू परमानंदा ॥
बिन एकांत न आनंद कबहू ।
मिलै अब्धिलौं पृथ्वी सबहू ॥ ४४॥
॥२२०॥राजासैं लेके ब्रह्मापर्यंत सर्वसुख
एकांतमैं होवै है ॥
॥ दोहा[२४८] ॥
पृथ्वीपती निरोग युव,
दृढ स्थूल बलवंत ॥
विद्यायुत तिहि भूपमैं,
मानुष सुखको अंत ॥ ४५ ॥
॥ चौपाई ॥
जे मानव गंधर्व कहावत ।
ता नृपतैं सतगुन सुख पावत ॥
होत देव गंधर्व जु औरा ।
तिनतैं तहँ सौगुन सुख ब्यौरा॥४६॥
सुख गंधर्व देवको जो है ।
तातैं सतगुन पितरनकोहै ॥
पुनि अजानदेवनमैं तिनतैं ।
सौगुन कर्मदेवमैं जिनतैं ॥ ४७ ॥
मुख्यदेव जे हैं पुनि तिनमैं ॥
कर्मदेवतैं सौगुन जिनमैं ॥

॥ २४३ ॥ समूहको औ तजन विचारी कहिये तजनेकूं विचारकी विषय करी है ॥
॥ २४४ ॥ चावल औ दुग्धसैं बनाया जावै है ऐसा दुग्धपाक ॥
॥ २४५ ॥ भोजन ॥
॥ २४६ ॥ किंकर कहिये चाकर ॥

॥ २४७ ॥ नरुकिया कहिये मृत्तिकाका कूजा औ तिसकारि उपलक्षित लोटाआदिक पात्र नहीं । किंतु स्वतःसिद्ध कररूप पात्र है ॥
॥ २४८ ॥ इहांसैं लेके ९१ वें छंदपर्यंत जो अर्थ कहा है, सो तैत्तिरीयउपनिषद्का है । सो हमनैं ईशाद्यष्टोपनिषद्गत ता उपनिषद्की भाषाटीकामैं सविस्तर लिख्या है ॥

जो त्रिलोकपति इंद्र कहीजे ।
तामैं पुनि सौगुन गिनि लीजे ॥४८॥

[मुख्यदेव कहिये ग्यारा रुद्र । बारा-आदित्य । आठ वसु । ये इकतीस]

सबदेवनको गुरू बृहस्पति ।
लहै इंद्रतैं सतगुन सुखगति ॥
जाको नाम प्रजापति भाखत ।
गुरुतैं सुख सौगुन सो राखत ॥४९॥
ताहूतैं सौगुन ब्रह्महि सुख ।
लहै न रंचक सो कबहूं दुख ॥
इतने या क्रमतैं सुख पावत ।
तैतिरीयश्रुति यूं समुझावत ॥ ५० ॥

॥ सोरठा ॥

राजातैं ब्रह्मांत,
कह्यो जु सुख सगरो लहै ।
रहत सदा एकांत,
कामदग्ध जाको न हिय ॥५१॥

॥ चौपाई ॥

है एकांत देसमैं अस सुख ।
युवति पुत्र धन संग सदा दुख ॥

॥२२१॥ ॥ अथ युवतिसंगदुःखवर्णन ॥

युवति कुरूप कुबोलिनि जाके ।
सदा सोक हिय है यह ताके ॥५२॥
प्रभु [२४९]पुरीषपंडा यह रंडा ।
दिय मुहि कौन पापको दंडा ॥
बोलत बैन ब्याल कागनिके ।
भेड भैसि न्योरी नागनिके ॥ ५३ ॥
[२५०]भूतं भावती ऊठनिको है ।
बोल खरीको सुनि खर मोहै ॥
[२५१]रैनि जु ऊंचे स्वरहि उचारत ।
स्यार हजारन सुनत पुकारत ॥५४॥
[२५२]निरपराध तिय बिन वैरागा ।
तजत न बनत पाप जिय लागा ॥
रहत दुखित यूं निसिदिन पिय मन ।
तिय कुबोल सुनि लखि कुरूप तन५५
कामनि है जु सुरूप सुबानी ।
सो कुरूपतैं है दुखदानी ॥
चमकचामकी पियहि पियारी ।
अर्थ धर्म नसि मोछ बिगारी॥५६॥

॥२२२॥ अथ युवतिसंगसैं धनबिगार ॥

मीठे बैन जहरयुत लडवा ।
खाय गमाय बुद्धि है भडवा ॥
और कछू सुपनहु नहिं देखै ।
काम अंध इक कामनि लेखै ॥ ५७॥

॥ २४९ ॥ पुरीषपंडा कहिये विष्ठाका पिंड ॥
॥ २५० ॥ भूतनी (चुडेल) ॥
॥ २५१ ॥ श्यालनामक पशुकी स्त्री (श्यालनी)॥
॥ २५२ ॥ इहां यह अर्थ है:—व्यभिचारादि अपराधतैं अथवा बैराग्यतैं स्त्रीका त्याग होवै है। या स्त्रीका कुरूप औ कुबोल जो है सो पूर्वकर्मके संयोग-तैं ईश्वरनैं रच्या है । इसमैं याका वर्त्तमानअपराध नहीं औ मेरे चित्तमैं वैराग्य बी नहीं। तातैं निरपराध स्त्रीका वैराग्य विना त्याग कियेतैं मुजकूं पाप लगेगा । यातैं याका त्याग करना बनता नहीं । किंतु "पाप जिय लागा" कहिये मेरे जीवकूं पूर्वजन्ममैं किये पापका यह स्त्रीरूप फल प्राप्त भया है ॥

धन कछु मिलै जु बाहिर घरमैं ।
सो सब खरचै कामनि धरमैं ॥
भूषन वस्त्र ताहि पहिरावे ।
गुरु पितु मात यादिहु न आवै ॥५८॥
पायस पान मिठाई मेवा ।
देय भक्तितैं तिय निजदेवा ॥
[२९३]नेह-नाथ-नाथ्यो नहिं छूटै ।
तिय[२९४]कूंसान पियबैलहि कूटै ॥ ५९ ॥

॥२२३॥ अथ युवतिसंगसैं धर्मबिगार ॥

ज्यूं सूवा पिंजरेमैं बंधुवा ।
सिखयो बोलत सुद्ध असुद्ध वा ॥
तैसैं जो कछु नारि सिखावत ।
सो गुरु पितु मात ही सुनावत ॥६०॥
जैसैं मोर मोरनी आगै ।
नाचि रिझाय आप अनुरागै ॥
तैसैं विविध वेष करि तियको ।
मन रिझाय रीझत मन पियको ॥६१॥
[२९५]जबै दुहूंनको मन अनुराग्यो ।
तबहि मदन मदिरा मद जाग्यो ॥
भये बावरे वसनहु त्यागे ।
अतिउन्मत घूरन पुनि लागे ॥६२॥
प्रेतरूप धरि नग्न अमंगल ।
भिरि फिरि भिरत मेष मन दंगल ॥
ज्यूं लोटत मद्यपि मतवारो ।
गिनत मलीन गलीन न नारो ॥६३॥

त्यूं नरनारि मदन-मदअंधे ।
अतिगलीन अंगनमैं बंधे ॥
करत मदन मद भ्रम जे मनकूं ।
है अचरज सुनि त्यागी जनकूं ६४॥

नसै मदनमदतैं मति नरकी ।
लखत न ऊंच नीच परघरकी ॥
तियहुँ बावरी मदन बनाई ।
क्रियादुखद जिहि है सुखदाई ॥६५॥

प्रबल काममदिरा मद जागै ।
तब द्विजतिय [२९६]धौंनकतैं लागै ॥
पिये मदनमदिरा नर नारी ।
ऐसैं करत अनंत खुवारी ॥ ६६ ॥

कामदोष यूं नरहि बिगोवत ।
प्रकट सुंदरी सो तिय जोवत ॥
यातैं अतिसुरूप तिय दुखदा ।
ताको त्याग कहत मुनि सुखदा ६७॥

जो सुरूप तियमैं अनुरागत ।
विषसम दुखद पेखि नहिं भागत ॥
उभयलोकको करत सु हानी ।
मुनिजन गन गुन साख बखानी ६८॥

॥ २९३ ॥ स्नेहरूप नाथ (बैलकी नासिकाविषै डालनैके सूत्र) करिके नाथ्यो कहिये बांध्यो पतिरूप बैल सो छूटै नहीं ॥

॥ २९४ ॥ स्त्रीरूप खेतीकी करनैवाली पतिरूप बैलकूं कूटै ॥

॥ २९५ ॥ इहांसै लेके ६६ वें छन्दपर्यंत जो पाठ है सो स्त्रीके पास पुरुषनै बांचना न चाहिये।

॥ २९६ ॥ धानक नाम पारधीका वा भोयाका है॥

॥ २२४ ॥ युवतिसंगसैं बिंदुका नाश ॥

जो नानाविध भोजन खावै ।
रस ताको फल बिंदु उपावै ॥
जीवन बिंदु अधीन सबनको ।
नसत सोक बिंदुहुतैं मनको ॥ ६९ ॥

ह्वै जब जनको मन मलवासी ॥
करत सोक अति धरत उदासी ॥
रुधिर निवास धरत मन जबहू ।
चंचल अधिक रजोगुन तबहू ॥७०॥

जब मन करत बिंदुमैं वासा ।
तबै सोक चंचलता नासा ॥
पुनि आपहि बलवत जन जानै ।
ह्वै प्रसन्न सुभ कारज ठानै ॥७१॥

बिंदु अधिक होवै जा जनमैं ।
सुंदरकांतिरूप ता तनमैं ॥
बिंदुहुको तनमैं उजियारो ।
नसै बिंदु तन मनु हतियारो ॥७२॥

जाको बिंदु न कबहू नासै ।
बलि[२५७] न पलित[२५८] तिहि तन परकासै ।
योगी करत खेचरी[२५९] मुद्रा ।
तातैं बिंदु राखि ह्वै भद्रा ॥ ७३ ॥

अष्टसिद्धि जे धारत योगी ।
बिंदु खसै ह्वारत ते भोगी ।
अस अति उत्तम बिंदु जु जगमैं ।
तिहिं तिय छीनि लेत निजभगमैं ७४

ज्यूं किसान बेलैंन[२६०]मैं ऊंख[२६१]हि ।
पीरत लेत निचोरि पियूषहि ॥
बार बार बेलनमैं धारहि ।
ह्वै असार दथ्था तब जारहि ॥ ७५ ॥

[हलकी बाथ गंडेकी बँधी हुई बेलनमैं देवै । ताका नाम दथ्था पंजाबमैं प्रसिद्ध है]

त्यूं तिह भीचि भुजनमैं पीकूं ।
भरत योनि-घट खीचि अमीकूं ॥
पुनि पुनि करत क्रिया नित तौलौं ।
सेष बिंदुको बिंदु न जौलौं ॥ ७६ ॥

कियो असार नारि नरदेहा ।
खीच फुलेल फूल ज्यूं खोहा ॥

॥ २५७ ॥ बलि नाम वृद्धावस्थामैं शरीरकी त्वाचामैं वल (सल) पड़ते है तिसका है । याहीकूं जोगरी औ पेटी बी कहते हैं ॥

॥ २५८ ॥ पलित नाम केश श्वेत होवै हैं तिसका है ॥

॥ २५९ ॥ षण्मासके अभ्याससैं जिह्वाके मूलकी नाडीकूं २१ रोमपरिमित क्रमतैं छेदिके जिह्वाकूं बढ़ावते हैं, ता जिह्वाकूं योगी लंबका कहै हैं ॥ ऊर्ध्वगमनकारिके मूर्धनिमैं स्थित भये प्राण-वायुके रोकनैअर्थ तालुके छिद्रमैं ता लंबाकाकूं लगावना, ताकूं खेचरीमुद्रा कहते हैं। तातैं सारे शरीर विषै कामादिवृत्ति सहित मनके प्रचारके अभावसैं बिंदु जो वीर्य ताकी रक्षाकारिके भद्रा कहिये योगीका कल्याण होवै है ॥

॥ २६० ॥ बेलन नाम कोल्हूका है । याहीकूं किसी देशमैं चींचोडा बी कहते हैं ॥

॥ २६१ ॥ गुडशकरका उपादान ऐसा इक्षु-दंड (गन्ना) याके टुकडेकूं गंडा कहते है ॥

औ अकाम सब ताहि जरावै ।
सूके बैन मुरारि[२६२] लगावै ॥ ७७ ॥
है जु सुरूप जोर धन भारी ।
ता नरपैं नारी बलिहारी ॥
करि सुरूप धन बलको अंता ।
कहत ताहि तूं काको कंता ॥ ७८ ॥
तिहि पुनि मिलन चहै जु अनारी।
कर धरपैं धरतहु दे गारी ॥
नाक चढ़ाय आंखिहू मोरै ।
जाय न पति सैजहुके धोरै ॥ ७९ ॥
कोटिवज्र संघात जु करिये ।
सबको सार खींचि इक धरिये ॥
तियके हिय सम सो न कठोरा ।
रिषि-मुनि-गन यह देत ढंढोरा ॥८०॥
करत गुमान हटत तिय ज्यूं ज्यूं ।
चिपटत सठ मति जन मन त्यूं त्यूं ॥
कबहुक ताको वांछित करिके ।
मरन अंत छोडत न पकरिके ॥८१॥
पढ्यो पुरान वेद स्मृति गीता ।
तर्कनिपुन पुनि किनहु न जीता ॥
करत अधीन ताहि तिय ऐसैं ।
बाजीगर बंदरकू जैसैं ॥ ८२ ॥
सब कछु मन भावत करवावत ।
पढ़े-पसुहि भलभांति नचावत ॥
उक्ति युक्ति सब तबही बिसरै ।
जब पंडित पढ़ि तियपैं ढिसरै ॥८३॥
जब कबहू सुमरत यह वेदा ।
तब तियमैं मानत कछु खेदा ॥
तिहि त्यागनकी इच्छा धारै ।
पुनि तिय नैन सैन सर सारै ॥८४॥
जहरकटाछ नैनसर बोरै ।
तानि कमान भौंह जुग जोरै ॥
मारत सारत हिय सब जनको ।
विज्ञहु बचत न धन सठगन को ८५
[विज्ञ कहिये विद्वानहु न बचत । सठगन को धन कहिये कहा चीज ।]
भयो न तियमैं तीव्रविरागा ।
यूं मतिमन्द करत पुनि रागा ॥
करत विविध आज्ञा ज्यूं चाकर ।
हुकम करै बैठी मनु ठाकर ॥ ८६ ॥
जे नर नार नयनसर बीधे ।
तिनके हिये होत नहिं सीधे ॥
भलो बुरो सुखदुख सब बिसरत ।
ते कैसैं भवदुखतैं निसरत ॥ ८७ ॥
नारि[२६३] बुरी बेस्या अरु परकी ।
तीजी नरकनिसानी घरकी ॥

॥ २६२ ॥ उल्मुक (अर्धजल्या काष्ठ) ॥ इहां आगे ७९ वीं चौपाईमैं "अनारी (अनाड़ी)" याका ताकी वृद्धपुरुषमैं अरुचिकूं नहीं जाननैवाला मूर्ख । यह अर्थ है ॥ औ "कर धरपैं धरतहु" याका घर नाम धड़ जो शरीर तापै हस्त लगावतैं ही । यह अर्थ है ॥ औ "धोरै" कहिये समीप ॥

॥ २६३ ॥ इहां काव्यशास्त्रउक्त सामान्या (वेश्या) परकीया (परकी) औ स्वकीया (घरकी) इस भेदतैं तीन प्रकारकी जे नायिका हैं; तिनका त्याग बताया है ॥

तजत विवेकी तिहूमें नेहा ।
करै नेह तिह सठमुख खेहा ॥ ८८ ॥

॥ दोहा ॥

अर्थ धर्म अरु मोछकूं,
नारि बिगारत ऐनं[२६४] ।
सब अनर्थको मूल लखि,
तजै ताहि ह्वै चैन ॥ ८९ ॥

॥ २२५ ॥ पुत्रसंगदुःखवर्णन ॥

पुत्र सदा दुख देत थू,
बिना प्राप्ति दुख एक ।
गर्भसमय दुख जन्म दुख,
मरै तु दुःख अनेक ॥ ९० ॥

॥ चौपाई ॥

गर्भ धरत जौलौं नहिं नारी ।
दुख दंपति[२६५]-मन तौलौं भारी ॥
ह्वै जु गर्भ यह चिंत न नासै ।
पुत्री होय कि पुत्र प्रकासै ? ॥९१ ॥
गर्भ गिरनके हेतु अनंता ।
तिनतैं डरत करत अतिचिंता ॥
ह्वै जु पूत नव मास बिहानै ।
जननी जनक अधिक दुख सानै९२॥
नवग्रहमैं इक द्वै नहिं बिगरै ।
अस जनको जन्म न जग-सगरै ॥
बिगरै ग्रहकी निसिदिन चिंता ।
करत मातपितु बैठि इकंता ॥ ९३ ॥
सिसु उदास ह्वै जब तजि बोबा ।
तबं दोऊ मिलि लागत रोबा ॥
यूं चिंतत-कछु गये महीने ।
दांत फूतके निकसैं झीने ॥ ९४ ॥
मरत बाल बहु निकसत दंता ।
तब यह चिंता दुख तिय कंता ॥
जिये दूबरो दुखतैं वारो ।
देखि चुहारो धरत उतारो ॥ ९५ ॥
म्लेच्छ चमार चूहरे कोरी ।
तिनतैं झरवावत द्विज धोरी ॥
सइयद ख्वाजा पीर फकीरा ।
धोकत जोरत हाथ अधीरा ॥ ९६॥
जाकूं हिंदु कबहु नहिं मानै ।
पुत्रहेतु तिहि इष्ट पिछानै ॥
भैरो भूत मनावत नाना ।
धरत सिवाबल[२६६] भूमिमसाना ॥ ९७॥
धानंकको[२६७] डमरू घरि बाजै ।
कर जोरत पूजन नहिं लाजै ॥
और जंत्र ताबीज घनेरै ।
लिखि मद्दवाय पूत-गर गेरै ॥ ९८ ॥
निजकुलमैं इक अच्युतपूजा ।
किनहु न सुपनहु सुमर्‍यो दूजा ॥

॥ २६४ ॥ अच्छी तरहसैं ।

॥ २६५ ॥ स्त्री औ पतिके ।

॥२६६॥ उरदमूंग चावल आदिक रंधित अन्नका वा मांसका बलिदान ठींकरेमैं किंवा पत्रावलीमैं डालिके चौवटेमैं किंवा स्मशानमैं रखते हैं । ताका नाम शिवाबलि है ॥

॥ २६७ ॥ धानकको कहिये पारधीको । डमरु कहिये डाक घरमैं बाजता है ॥

सो कुल नेम पूतहित त्याग्यो ।
व्यभिचारन ज्यूं जहँतहँ लाग्यो ९९
होत सीतलाको जब निकसन ।
नसत मातपितु मनको बिकसन ॥
स्नानक्रिया तजि रहत मलीना ।
परमदेव गदहाकूं कीना ॥ १०० ॥
मोरि बाग बकसहु सिसु मोरा ।
गदहा मात चराऊं तोरा ॥
यूं कहि चना गोदमैं धारैं ।
बिनती करि गदहाकूं चारैं ॥ १०१॥
अस अनंतदुखतैं सिसु पारन ।
जुवा होत लौं और हजारन[२६८] ॥
उमर पूतकी ह्वै जो थोरी ।
मरि है करहु उपाय करोरी ॥१०२॥
मरै मातपित कूटहि माथा ।
मानि आपकूं दीन अनाथा ॥
हाय हाय करि निसदिन रोवैं ।
करि धिकधिकनिजजन्म बिगोवैं १०३
पूतमरनको ह्वै दुख जैसो ।
लखत सपूत अपूत न तैसो ॥
जो जीवै तौ होतहि तरुना ।
लगत नारिके पोषन भरना ॥१०४॥

सपूत कहिये जाका पूत जीवै है औ अपूत कहिये जाके पूत नहीं हुआ ॥

जिन अनेक यत्ननि प्रतिपारौ ।
तिनकूं जल प्यावन है भारौ ॥
रजनि-सेजपै सिखवै नारी ।
तव पितमात देहु मुहिं गारी ॥१०५॥
ह्वै सुपूत तौ प्रातहि उठिके ।
नवैं दूरतैं माथ न गठिके ॥
चहै मातपित आवैं नेरैं ।
पूत न सन्मुख आंखिहु हेरै ॥१०६॥
ह्वै कुपूत तौ उठतहि प्राता ।
वचन गारिसम बकि असुहाता ॥
जुदो होय ले सब घरको धन ।
दे पितमातहि इक तिनको तन १०७
फेरि सँभारत कबहुँ न तिनकूं ।
पोषत सबदिन तिय-निज-तिनकूं ॥
देखि लेत पितमात उसासा ।
याविधि पुत्र सदा दुखरासा॥१०८॥

॥ २६८ ॥

१ युवाअवस्थासैं पूर्व बालककी खेलमैं रुचि विशेष होवै है, ताकूं बलसैं प्रवृत्ति करावनैसैं प्रतिदिन दुःख होवै है । और—

२ विद्याशालामैं अन्यबालकनकूं मारि आवै किंवा आप मार खाइ आवै तो बी क्लेश होता है ।

३ फेर मंदसंस्कारतैं पढ़ै नहीं तौ बी चिंता होवै है पढ़ै अरु व्यवहारनिपुण न होवै तो बी चिंता होवै है ।

४ फिर जुगारआदिक दुर्व्यसनमैं लगै तौ बी चिंता होवै है ।

६ फेर तिसकी सादीके निमित्त बड़ी चिन्ता होवै है ।

७ फेर तिसके विवाहके निमित्त बी चिंता होवै है ।

इससैं आदि लेके युवाअवस्थापर्यंत मातापिताकूं अनन्त दुःख होवै हैं यह भाव है ।

॥ दोहा ॥

करि विचार यूं देखियें,
पुत्र सदा दुखरूप ।
सुख चाहत जे पूततैं,
ते मूढनके भूप ॥ १०९ ॥

॥ २२६ ॥ धनसंगदुःखवर्णन ॥

तजि तिय पूत जु धन चहै,
ताके मुखमैं धूर ।
धन जोरन रच्छाकरन,
खरच नास दुखमूर ॥ ११० ॥

॥ चौपाई ॥

जो चाहै माया बहु जोरी ।
करै अनर्थ[269] सु लाख करोरी ॥
जातिधर्म कुलधर्म सु त्यागै ।
जो धनकूं जोरन जन लागै ॥१११॥
बिना भाग तदपि न धन जुरि हैं ।
जुरै तु रच्छा करिकरि मरि हैं ॥
खरचत धन घटि है यह चिंता ।
नासै निसिदिन ताप अनंता ११२॥
सदा करत यूं दुख धन मनकूं ।
चहै ताहि धिक धिक तिहि जनकूं॥
युवति पूत धन लखि दुखदाता ।
वज्यो भर्तृ ममताको नाता ॥ ११३॥

॥ २६९ ॥ पंचदश अनर्थ होवैं तब एक अर्थ (धन) होवै । ऐसा एकादशस्कंधके २३ वें अध्यायविषै कदर्यके आख्यानमैं कह्या है । इसकारि उपलक्षित अनंत अनर्थ करै ॥

॥२२७ ॥ राजाकूं भर्तृमैं प्रेतबुद्धि होनी औ राजाका भागना ॥

॥ कुंडलिया छंद ॥

भर्तृ बन एकांतमैं,
गयो कियो चित सांत ।
भयो नयो दीवान तिन,
सुन्यो सकल वृत्तांत,
सुन्यो सकल वृत्तांत[270] ॥
चित यह उपजी ताके ।
जो नृप जीवत सुनै,
मिलै वा काहू नाके[271] ॥
तौ झूठे हम होहिं,
भूप दे सबकूं दंडा ।
यातैं अब मिलि कहौ,
भर्तृ भौ प्रेत प्रचंडा ॥ ११४ ॥

॥ दोहा ॥

करि सलाह यह परस्पर,
गये कचहरी बीच ।
सबहिं कही यह भूपतैं
भर्तृ प्रेत भौ नीच ॥ ११५ ॥
राख लगाये देहमैं,
मिलै जाहि बतरात[272] ।
तिहि मारत सो नर बचत,
जो तिहि देखि परात ॥ ११६ ॥

॥ २७० ॥ गतअर्थ (पूर्व हो गयी वार्ता) ।
॥ २७१ ॥ वनकी गलीमैं ।
॥ २७२ ॥ बात करै ।

[परात कहिये भाग जावै]

सुनि भूपहु निश्चय कियो,
भर्छु मरी भौ प्रेत ।
सांच झूठ भूप न लखत,
है जु प्रमाद अचेत ॥ ११७ ॥
कछु दिन बीते भूप तब,
मारन गयो सिकार ।
पैठ्यो गिरि वनसघनमैं,
जहँ मृगराज हजार ॥ ११८ ॥
तपत तहां इक तरुतरै,
भर्छू निजदीवान ।
पेखि ताहि भाज्यो उलटि,
मानि प्रेत दुखदान ॥ ११९ ॥

॥ १२८ ॥ अंक २२७ उक्तदृष्टांतकूं सिद्धांतमैं जोड़ना ॥ भेदवादकी धिक्कारपूर्वक त्याज्यता ॥

॥ इंदव छंद ॥

भर्छु मर्यो ऽरु परेत भयो यह,
वाक्य असत्यहु सत्य पिछाना ।
देखि लियो निज आंखिन जीवत,
तौहु परेत हु मानि भगाना ॥
वंचकतैं सुनि द्वैत तथा मति-,
मैं बिसवास करै जु अजाना ।
ब्रह्म अद्वैत लखै परतच्छहु,
तौहु न ताहि हिये ठहराना ॥१२०॥

॥ दोहा ॥

भेदवचन विस्वास करि,
सुनत जु कोउ अजान ।
सो जन दुख भुगतै सदा,
है न ब्रह्मको ज्ञान ॥ १२१ ॥
यातैं सुनै जु भेदके,
वचन लखै सु असत्य ।
तबही ताकूं ज्ञान है,
महावाक्यतैं सत्य ॥ १२२ ॥

॥ चौपाई ॥

सिष तैं सुनी जु भेदकहानी ॥
जानि झूठ ते नरकनिसानी ॥
तिनके कहनहार सब झूठे ।
पुरुषारथ सुखतैं सठ रूठे ॥ १२३ ॥
तिनको संग न कबहूं कीजे ।
है जो संग न वचन सुनीजे ॥
जो कहुँ सुनै तु सुनतहि त्यागहु ।
म्लेछ जैन वच सम लखि भागहु १२४

॥ २२९ ॥ मिथ्यादुःखका मिथ्यासैं नाश एक भूपकूं स्वप्नकी प्राप्ति । तिसकूं गादरीकरि दुःखका होना औ मिथ्यावैद्यसैं मिटना ॥

जो मिथ्या है दैसिक वेदा ।
कैसैं करही नवदुख छेदा ? ॥
याको अब उत्तर सुनि लीजै ।
मिथ्यादुख मिथ्यातैं छीजै ॥ १२५॥
वेदऽरु गुरू सत्य जो होवै ।

तौ मिथ्याभवदुख नहिं खोवै ॥
यामैं इक दृष्टांत सुनाऊँ ।
जातें तव संदेह नसाऊं ॥ १२६ ॥
सुरपति इंद्र स्वर्गमें जैसो ।
प्रबलप्रताप भूप इक ऐसो ।
भीम समान सूर बहुतेरे ।
तिनके चहुँघा डेरे गेरे ॥ १२७ ॥
जोधाले निजनिज हथियारन ।
खरे रहे तिहि द्वार हजारन ॥
अंदिर मंदिर ड्योढी ठाढे ।
लिये खडग कोसनतें काढ़े ॥१२८॥
[कोस कहिये म्यान]
ऊंचो महल अटारी जामैं ।
फूलसैज सोवै नृप तामैं ॥
पंछी हू पौचन नहिं पावै ।
तहां और कैसै चलि जावै ॥१२९॥
तहां भूप देख्यो अस सुपना ।
पकर्‍यो पैर गादरी[273] अपना ॥
भूप छुड़ायो चाहत निजपग ।
तजत न गादरि पकरि जु पगरग १३०
तब राजा यूं खरो पुकारै ।
है को अस जो गादरि मारै ॥
जोधा जो ठाढ़े निजद्वारा ।
तिन रंचकहु न दियो सहारा॥१३१॥
तब नृप दंड लियो निजकरमैं ।
आपुहि मार्‍यो स्यारनि सिरमैं ॥
लगत दंड भौ ताको अंता ।
तब निसरै पगरगतैं दंता ॥ १३२ ॥
दांत लगे गाढे नृप पगमैं ।
यूं लँगरात सु चालत पगमैं ॥
तब चाल्यो ले लाठी करमैं ।
पहुँच्यो घावरियाके[274] घरमैं ॥ १३३ ॥
ताहिं कह्यो फोहा[275] अस दीजे ।
घाव पांवको तुरत भरीजे ॥
घावरिया नृपतैं यह भाख्यो ।
फोहा नहिं तयार घर राख्यो ॥१३४॥
जो तूं दै पैसा इक मोकूं ।
तौ तयार करि देहूं तोकूं ॥
तब उलट्यो नृप लाठी टेका ।
नहीं दैनकूं कौड़िहु एका ॥ १३५ ॥
लाग्यो सोच करन टरि घरतैं ।
बूझै बात कौन बिन जरतैं[276] ॥
जो मैं होत धनी बड़भागा ।
आवतु घर घावरिया भागा ॥१३६॥
मोहिं निकंमा जानि कंगाला ।
घरतैं तुरत रोग ज्यूं टाला ॥
याहीकूं कछु दोष न दीजै ।
बिन स्वारथको किहि न पतीजै[277] १३७
मातपिता बांधव सुत नारी ।
करत प्यार स्वारथतैं भारी ॥

॥ २७३ ॥ शियालिनी स्वानतुल्य पशुविशेषकी स्त्री ।
॥ २७४ ॥ मलहमपट्टी करनेवालेके ।
॥ २७५ ॥ मलहम ।
॥ २७६ ॥ द्रव्यतैं ।
॥ २७७ ॥ स्वार्थ विना कोई किसीकी न पतीजै कहिये प्रतीति (विश्वास) करता नहीं ।

जो नहिं स्वारथ सिद्धी पावै ।
तौ इनकूं देख्योहु न भावै ॥ १३८ ॥
जा बिन घरी एक नहिं रहते ।
दुख अपार बिछुरे सब लहते ॥
जब देखैं आयो घर पौरी[२७८] ।
घरके मिलत भाँजि[२७९] भरि कौरी १३९
विधि अधीन कोढी सो होवै ।
सब अंगनिमैं पानी चोवै ॥
अरु जरि परी आंगुरी जाके ।
भिनभिनात मुख माखी ताके॥१४०
कहत ताहि ते घरके प्यारे ।
मरि पापी अब तौ हतियारे ॥
जिहि देखत अखियां न अघानी ।
तिहि लखि ग्लानि वमन ज्यूं आनी ॥
जो तिय हिय लागत पति प्यारो ।
किय न चहत पल उरतैं न्यारो ॥
ताकी पवन बचायो लौरैं[२८०] ।
भिरै जु वैसन[२८१] तु नाक सकौरै॥१४२
जिहि पितुमात गोदमें लेते ।
सचुकत तिहि करते कछु देते ॥
मिलन भ्रात जो भरि भुज कोरी ।
सो बतरात बीच दै डोरी ॥ १४३ ॥
ऐसैं जग स्वारथको सारो ।
बिन स्वारथको काको प्यारो ॥

मुहि स्वारथयोग्य न विधि कीनो ।
यातैं इन फोहा नहिं दीनो ॥ १४४ ॥
यूं चिंतत इक मुनि[२८२] तिहिं भेट्यो।
तिन दै जरी घावदुख मेट्यो ॥
निद्रातैं जाग्यो नृप जब ही ।
घाव दरद मुनि नासै तब हीं॥१४५
सिष यह तुहि दृष्टांत प्रकास्यो ।
लखि मिथ्यातैं मिथ्या नास्यो ॥
मिथ्यादुख देख्यो जब राजा ।
साचसमाज न किय कछु काजा १४६
॥२३०॥अंक२२९उक्त प्रसंगकी टीका ॥

टीकाः—सर्वप्रकरणका अर्थ स्पष्ट ।

भाव यह हैः—संसाररूप दुःख मिथ्या है, यातैं तिसके दूरि करनैके साधन वेदगुरु मिथ्या ही चाहिये हैं। मिथ्याके नाशमैं सत्यसाधनकी अपेक्षा नहीं । औ---

सत्यसाधन होवै तौ तिनतैं मिथ्याका नाश होवै नहीं । जैसैं राजाके समीप मिथ्यागादरी स्वप्नमैं पहुँची । किसी सत्यजोधासैं रुकी नहीं औ राजा पुकारयो जब काहूसैं बी मरी नहीं औ राजाके पास अनेक साचे शस्त्र धरे रहे तौ बी मिथ्यादंडसैं मरी। औ राजाके मिथ्याघाव भया तब कोई वैद्यजर्राह[२८३] साचा पाया नहीं। मिथ्याजर्राहके पास गया। तानै पैसा माग्या । तौ अनंतखजानै साचे धरे ही रहे । एक पैसा बी राजाकूं मिल्या नहीं । कोई बी सत्यसाधन राजाके दुःखके नाश करनैमैं

॥ २७८ ॥ पगतिया (सोपान) ।

॥ २७९ ॥ भाजि कहिये सम्मुख दौरिके । कौरी भरि कहिये बाथ भराइके घरके आदमी मिलते हैं ।

॥ २८० ॥ इच्छै ।

॥ २८१ ॥ वस्त्र ।

॥ २८२ ॥ संन्यासी ।

॥ २८३ ॥ वैद्य किंवा जर्राह कहिये मलहमपट्टी मात्रका करनैवाला ।

समर्थ हुआ नहीं। किंतु मिथ्यामुनिनै मिथ्या-जरी देके मिथ्यादुःखका नाश किया।

इस रीतिके स्वप्न सर्वकूं अनुभवसिद्ध हैं। जाग्रत्पदार्थका स्वप्नमैं काहूकूं कदे बी उपयोग होवै नहीं, तैसैं मिथ्या जो संसारदुःख, ताका नाश मिथ्यावेदगुरुसैं होवै है। साचे वेदगुरु अपेक्षित नहीं ॥

॥ २३१ ॥ मरुस्थलके जल औ प्यासमैं सत्ताका भेद।

"जैसैं मरुस्थलके मिथ्याजलतैं तृषाका नाश होवै नहीं, तैसैं मिथ्यावेदगुरुतैं संसार-दुःखका नाश होवै नहीं औ मिथ्यावेदगुरु मानिके संसारदुःखका तिनतैं नाश अंगीकार करौगे तौ मरुभूमिके जलतैं बी तृषाका नाश हुया चाहिये" यह शंका शिष्यनै करी थी ताका समाधान ॥

॥ चौपाई ॥

यद्यपि मिथ्या मरुथलपानी।
तातैं किनहु न प्यास बुझानी ॥
तदपि विषमदृष्टांत सु तेरो।
सत्ताभेद दुहनमैं हेरो ॥ १४७ ॥

टीकाः—यद्यपि मिथ्या जो मरुभूमिका पानी, तातैं किसीनै प्यास नहीं बुझाई औ मिथ्यागुरुवेदतैं दुःखके नाशकी न्यांई मिथ्या-जलसैं प्यासका नाश हुवा चाहिये औ प्यास-नाश होवै नहीं। तैसैं मिथ्यागुरुवेदतैं संसारका नाश बनै नहीं। तदपि कहिये तौ बी तेरा दृष्टांत विषम है। काहेतैं? दुहुनमैं कहिये मरु-स्थलका जल औ प्यास इन दोनूंमैं सत्ताका भेद है, ताकूं हेरो कहिये देखो ॥ १४७ ॥

॥ २३२ ॥ समसत्ताकी आपसमैं साधकबाधकता ॥

॥ चौपाई ॥

समसत्ता भवदुख गुरुवेदा।
यूं गुरुवेद करत भवछेदा ॥
आपसमैं [२८४]समसत्ता जिनकी।
लखि साधकबाधकता तिनकी १४८

॥ २८४ ॥ इहां यह शंका हैः—समसत्तावाले पदार्थ ही आपसमैं साधक बाधक हैं। यह नियम घटित नहीं। किंतु विषमसत्तावाले पदार्थ बी कहींक आपसमैं साधकबाधक होवै हैं काहेतैं?

१ सर्वत्र आरोपकी अधिष्ठानतैं **विषमसत्ता है। ताकी साधकता** अधिष्ठानमैं है। **जैसैं** कल्पित-रजतका अधिष्ठान शुक्ति है, ताकी व्यावहारिक सत्ता है रजतकी प्रतिभाससत्ता है। तिस प्रतिभाससत्ता-वाले रजतकी साधकता (कारणता) शुक्तिमैं है।

२ **किंवा** जगत्का अधिष्ठान ब्रह्म है ताकी परमार्थसत्ता है औ जगत्की व्यावहारिक सत्ता है, तिस व्यावहारिक सत्तावाले जगत्की साधकता ब्रह्ममैं है। यातैं **विषमसत्तावाला बी साधक होवै है** ॥ औ—

३ अन्तःकरणकी वृत्तिरूप शुक्तिके यथार्थज्ञानसैं ज्ञानसहित रजतका बाध होवै है। तहां ज्ञानसहित रजतकी प्रतिभाससत्ता है औ शुक्तिके ज्ञानकी व्यावहारिक सत्ता है। यातैं **विषमसत्तावाला बी बाधक** होवै है ॥

तातैं विषमसत्तावाले पदार्थ आपसमैं साधक-बाधक होवैं नहीं। यह नियम असंगत है। याका—

यह समाधान हैः—केवल (शुद्ध) शुक्ति किंवा ब्रह्म क्रमतैं रजतकी औ जगत्की कल्पनाके अधिष्ठान नाम पवर्त उपादानकारण नहीं। किंतु तूलअविद्या-सहित शुक्ति रजतका अधिष्ठान है औ मूलअविद्या-सहित ब्रह्मचेतम जगत्का अधिष्ठान है। कहुं विशेषणके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवै है। इस नियमतैं प्रातिभासिक तूलअविद्यासहित शुक्ति किंवा शुक्ति-

टीकाः—भवदुःख औ गुरुवेदकी समसत्ता कहिये एकसत्ता है, यातैं गुरुवेदतैं भवदुःखका छेद होवै है ॥

जिनकी आपसमैं समसत्ता होवै तिनकी आपसमैं साधकता औ बाधकता होवै है। जैसैं

१ मृत्तिका औ घटकी समसत्ता है, यातैं मृत्तिका घटका साधक है।

२ अग्नि औ काष्ठकी समसत्ता है। तहां अग्नि काष्ठका बाधक है ॥

१ साधक कहिये कारण। औ—

२ बाधक कहिये नाशक।

मरुस्थलके जलकी औ प्यासकी समसत्ता नहीं। यातैं मरुस्थलका जल प्यासका बाधक नहीं ॥

या स्थानमैं यह रहस्य हैः—चेतनमैं परमार्थसत्ता है औ चेतनसैं भिन्न जो मिथ्या-पदार्थ तिनमैं दो प्रकारकी सत्ता हैः—एक तौ व्यवहारसत्ता है औ दूसरी प्रतिभाससत्ता है।

॥ २३३ ॥ १ व्यावहारिक, २ प्राति-भासिक औ ३ पारमार्थिक सत्ता ॥ २३३-२३५ ॥

१ जा पदार्थका ब्रह्मज्ञान विना बाध होवै नहीं, किंतु ब्रह्मज्ञानसैं ही बाध होवै; ता पदा-र्थमैं व्यवहारसत्ता कहिये है।

सो व्यवहारसत्ता ईश्वरसृष्टिसैं है। काहेतैं ? देहइंद्रियादिक प्रपंच जौ ईश्वरसृष्टि ताका ब्रह्मज्ञानसैं विना बाध होवै नहीं। ब्रह्मज्ञानसैं ही बाध होवै है ॥

यद्यपि ईश्वरसृष्टिके पदार्थनका ब्रह्मज्ञानसैं विना नाश तौ होवै बी है। परंतु ब्रह्मज्ञानसैं विना बाध होवै नहीं ॥

अपरोक्षमिथ्यानिश्चयका नाम बाध है।

सो अपरोक्षमिथ्यानिश्चय ईश्वरसृष्टिके पदार्थनमैं ब्रह्मज्ञानसैं प्रथम किसीकूं होवै नहीं, ब्रह्मज्ञानसैं अनन्तर ही होवै है। यातैं मूल-

---

अवच्छिन्नचेतन प्रातिभासिक कहिये है औ व्याव-हारिक मूलअविद्याअवच्छिन्न ब्रह्मचेतन बी व्यावहारिक कहिये है ॥

यद्यपि इहां अविद्या उपाधि है, विशेषण नहीं। तथापि अविवेकी जनोंकी दृष्टिसैं विशेषणकी न्याई प्रतीत होवै है। यातैं विशेषण कहिये है। याहीतैं तिन अविद्याके धर्मके प्रातिभासिकता औ व्यावहारिकता, ताका अपनै विशेष्य (आश्रय) शुक्ति औ ब्रह्ममैं व्यवहार होवै है। यातैं इहां विषमसत्तावाला साधक नहीं, किंतु समसत्तावाला ही साधक है ॥ औ—

पंचपादिकाकारकी रीतिसैं मूलअविद्यासैं भिन्न तूलअविद्या नहीं। यातैं ताकी निवृत्ति शुक्तिके ज्ञानसैं होवै नहीं, किंतु ब्रह्मज्ञानसैं होवै है। परन्तु व्यावहारिक अन्तःकरणकी वृत्तिरूप शुक्तिके यथार्थ ज्ञानसैं शुक्तिनिष्ठ तूलअविद्याका तिरस्कार होवै है। तातैं ताके कार्य ज्ञानसहित रजतका बी तिरस्कार होवै है। यातैं इहां विषमसत्तावाला बाधक नहीं।

यह प्रसंगानुसारि समाधान है। औ—

विचारदृष्टिसैं देखिये तौ अधिष्ठानरूप साधकमैं औ अधिष्ठानके ज्ञानरूप बाधकमैं समानसत्ताका नियम नहीं। किंतु—

१ अधिष्ठानरूप साधक तौ विषमसत्तावाला ही होवै है। समसत्तावाला नहीं। औ—

२ ज्ञानरूप बाधक तौ कहीं विषमसत्तावाला होवै है। जैसैं शुक्तिरजतका बाधक शुक्ति-ज्ञान है औ स्वप्नजगत्का बाधक जाग्रत्का ज्ञान है। औ—

३ कहीं समसत्तावाला बी होवै है। जैसैं व्याव-हारिक जगत्का बाधक ब्रह्मज्ञान है। परंतु—

४ मिथ्याज्ञान ही मिथ्यावस्तुका बाधक है। यह नियमित है।

यातैं इहां कह्या जो नियम सो अधिष्ठानरूप साधक औ ज्ञानरूप बाधककूं छोडिके अवशिष्ट रहे पदार्थनकूं विषय करनैहारा है ॥

अविद्याके कार्य जो जाग्रत्‌के पदार्थ ईश्वरसृष्टि तामैं व्यवहारसत्ता है ।

जन्म मरण बंध मोक्ष आदिक व्यवहारके सिद्ध करनैवाली जो सत्ता कहिये होना सो व्यवहारसत्ता कहिये है । औ—

॥ २३४ ॥ २ ब्रह्मज्ञानसैं विना ही जिनका बाध होवै तिन पदार्थनमैं प्रतिभाससत्ता कहिये है । जैसै ब्रह्मज्ञानसैं विना ही शुक्ति-जेवरीमरुस्थल आदिकनके ज्ञानतैंरूपा सर्प जल-आदिकनका बाध होवै है, तिनमैं प्रतिभास सत्ता है ।

प्रतिभास कहिये प्रतीतिमात्र जो सत्ता कहिये होना सो प्रतिभाससत्ता कहिये है ।

तूलअविद्याके कार्य रूपाआदिक पदार्थनका प्रतीतिमात्र ही होना है, यातैं तिनकी प्रति-भाससत्ता है ॥

॥ २३५ ॥ जाका तीनकालमैं बाध होवै नहीं ताकी परमार्थसत्ता कहिये है । चेतन-का बाध कदे होवै नहीं, यातै परमार्थसत्ता चेत-नकी है ॥

॥ २३६ ॥ वेदगुरु औ संसारदुःखकी व्यावहारिक सत्ता है, यातैं तिनतैं भवदुःखका नाश बनै है ॥

इस रीतिसैं वेदगुरु औ संसारदुःख इनकी एक व्यवहारसत्ता होनैतैं आपसमैं समसत्ता है । यातैं मिथ्यावेदगुरुतैं मिथ्याभवदुःखका नाश बनै है । औ—

॥ २८५ ॥ घटादिजडपदार्थउपहित चेतनकूं आच्छादन करनैवाली (ढांपनैवाली) जो अविद्या सो तूलअविद्या कहिये है । याहीकूं अवस्थाअज्ञान औ सादिदोषवाली अविद्या बी कहते हैं ।

सो तूलअविद्या अंशभेदतैं नाना है औ भिन्न-भिन्नपदार्थनकूं आवरण करै है । जिस घटादिपदार्था-कार अन्तःकरणकी वृत्ति होवै, तिस पदार्थका आच्छादक तूलअविद्याका अंश नष्ट होवै है । फेर जब वृत्ति अन्यदेशविषै जावै तब तहां और अविद्याअंश उपजै है । इस तूलअविद्याके नाशनिमित्त ब्रह्मज्ञानकी अपेक्षा नहीं । किंतु ताकूं प्रातिभासिक सत्तावाली होनैतै घटादिकके ज्ञानसै ही ताका नाश होवै है । औ

पंचपादिकाके कर्त्ता पद्मपादाचार्य 'मूलअविद्या सोई तूलअविद्या है तिसतैं भिन्न नहीं' ऐसैं मानते हैं । इनके मतमैं जैसै लोकसमूहके मध्य विजली-के पतनकारि सर्वलोक हट जाते हैं फेर एकत्र होते हैं । तैसैं जिस पदार्थाकार अन्तःकरणकी वृत्ति होवै तिस पदार्थाकार अविद्या तहांतै तिरोहित (तिरोधानकूं प्राप्त) होवै है । फेर जब वृत्ति अन्यदेशमैं जावै तब वह अविद्या फेर तहां प्रसरती है । परंतु ब्रह्मज्ञान विना ताका नाश होवै नहीं औ स्वप्न तथा कल्पित सर्पादिकनका अविद्याके नाश विना बी विरोधि-पदार्थके ज्ञानतैं वा अविद्याके तिरोधानतैं अविद्याविषै लयरूप नाश वा तिरोधान होवै है ।

यह प्रसंगसैं तूलअविद्याका वर्णन किया ।

॥ २८६ ॥ यद्यपि मिथ्यावेदगुरुतैं मिथ्याभय-दुःखका नाश संभवै है औ ऐसैं माननैतैं सिद्धांतकी बी हानि नहीं । तथापि—

१ वेदगुरुरूप इष्टकूं मिथ्या कहना अयोग्य है । औ—

२ जगत्सायत्ववादिनके उपहास्यका विषय है । औ

३ जिज्ञासुनकी विचित्तताका बी कारण ।

यातैं इस उक्तिका खंडनकारिके सिद्धांतका भंग न होवै तैसैं अन्य प्रकारकी उक्तिका निरूपण करै हैं:—

वेदगुरुकूं मिथ्या कहनैवालेके प्रति पूछते हैं किः—

१ शिष्यकी दृष्टिसैं वेदगुरु मिथ्या है ? २ किंवा गुरुकी दृष्टिसैं ? ।

१ जो शिष्यकी दृष्टिसैं कहैं तौ (१) सो शिष्य ज्ञानी है ? (२) वा अज्ञानी है ? ।

(१) 'सो शिष्य ज्ञानी है' ऐसैं कहैं तो ताकूं शिष्यपना संभवै नहीं । यद्यपि उपदेष्टा गुरुकी अपेक्षातैं सर्वज्ञानीनकूं शिष्यपना है तथापि तिनकूं अधिकार होयके शिक्षाके योग्य शिष्यपना नहीं है । औ—

क्षुधापिपासा प्राणके धर्म हैं । प्राण औ ताके धर्मनका ब्रह्मज्ञानसैं विना बाध होवै नहीं। यातैं पिपासाकी व्यवहारसत्ता है । मरुस्थलके जलका ब्रह्मज्ञानसैं विना ही मरुस्थलके ज्ञानतैं बाध होनैतैं मरुस्थलके जलकी प्रतिभाससत्ता है। यातैं प्यास औ मरुस्थलके जलकी समसत्ता नहीं होनैतैं ता जलतैं प्यासका नाश होवै नहीं ।

१ याप्रकारतैं दार्ष्टांतविषै बाधक वेदगुरु औ बाध्य संसारदुःख तिनकी सत्ता एक है औ–

२ दृष्टांतविषै जल औ प्यास सत्ताका भेद है ।

यातैं दृष्टांत विषम कहिये दार्ष्टांतके सम नहीं ॥ १४८ ॥

॥ १३७ ॥ शंकाः–शुक्तिरूपाआदिकका ब्रह्मज्ञान विना ही बाध औ संसारदुःखका ब्रह्मज्ञानसैं अनंतर बाध यह भेद कौन हेतुसैं राखौ हौ ?

॥ चौपाई ॥

ब्रह्मभिन्न मिथ्या सब भाखौ ।
तिनको भेद हेतु किहि राखौ ॥
उपज्यो यह मोकूं संदेहा ।
प्रभु ताको अब कीजै छेहा॥१४९॥

टीकाः–हे प्रभु ! ब्रह्मसैं भिन्न आप सर्वकूं मिथ्या कहौ हौ तिन मिथ्यापदार्थमैं–

१ शुक्तिरूपा रज्जुसर्प मरुस्थलजलआदिकनका ब्रह्मज्ञानसैं विना ही बाध ? औ–

२ संसारदुःखका ब्रह्मज्ञानसैं अनंतर बाध । यह भेद कौन हेतुसैं राखौ हौ ?

॥ २३८ ॥ उत्तरः–जाके अज्ञानसैं जो उपजै तिसका ताके ज्ञानसैं बाध होवै है ॥

॥ चौपाई ॥

सकल अविद्याकारज मिथ्या ।
सिष तामैं रंचकहु न तथ्या ॥

---

(२) 'सो शिष्य अज्ञानी है' ऐसैं कहैं तो ताकी मिथ्या जाने हुये वेदगुरुविषै श्रद्धापूर्वक प्रवृत्तिके अभावतैं बोधकी प्राप्ति दुष्कर है । किंवा अज्ञानी पुरुषकूं वेदांतश्रवणतैं पूर्व किसी बी जगत्‌के पदार्थविषै मिथ्यात्वबुद्धि संभवै बी नहीं ।

यातैं शिष्यकी दृष्टितैं वेदगुरु मिथ्या हैं । यह कथन बनै नहीं ॥ औ

२ जो गुरुकी दृष्टिसैं वेदगुरु मिथ्या हैं। ऐसैं कहैं तौ (१) गुरु अज्ञानी है (२) किंवा ज्ञानी है ?

(१) अज्ञानी कहैं तौ ताकूं गुरु कहना वेदसैं विरुद्ध है। यद्यपि केईक अज्ञानी पुरुष बी जगत्‌विषै मूर्खनकी दृष्टिसैं गुरु कहलाते हैं, तथापि वेदवेत्ताविद्वानोंकी दृष्टिसैं वे गुरुशब्दके विषय (वाच्य) नहीं। यह वार्त्ता तृतीयतरंगमैं स्पष्ट निरूपण करी हैं यातैं तिस अज्ञानीकी दृष्टिसैं तौ वेदगुरु मिथ्या हैं। यह कथन बनै नहीं। किंतु वेदगुरुसहित सर्वजगत सत्य है । यह कथन बनै है

(२) जो कहैं "गुरु ज्ञानी है' तौ [१] तिस ज्ञानीकूं वेदगुरुसहित सर्वजगत् ब्रह्मतैं भिन्न प्रतीत होवै है ? [२] किंवा अभिन्न प्रतीत होवै है ?

[१] प्रथमपक्ष कहैं तौ तिस भेदवादीकूं ज्ञानी किंवा गुरु कहना अयुक्त है । औ–

[२] द्वितीयपक्ष कहैं तौ सर्वजगत् औ आपकूं परमार्थसत्तामय ब्रह्मरूप जाननैवाले अद्वैतवादी गुरुकी दृष्टिसैं 'वेदगुरु मिथ्या है' यह कथन बनै नहीं।

यातैं वेदगुरु मिथ्या है यह उक्ति अतत्त्वज्ञकी नहीं। किंतु अर्धदग्धकाष्ठकी न्यांई वेदांतश्रवणमनन करनैहारे अर्धप्रबुद्ध पुरुषकी, किंवा बाह्यव्यवहाररत बहिर्मुखज्ञानीनकी है ।

इस रीतिसैं 'वेदगुरु सत्य हैं' यह उक्ति युक्तिसहित है ॥

जा अज्ञानसैं उपजत जोई ।
ताके ज्ञान बाध तिहि होई ॥१५०॥

टीका:-हे शिष्य! यद्यपि ब्रह्मसैं भिन्न सकल अविद्याका कार्य है, यातैं मिथ्या है। तामैं रंचक बी तथ्या कहिये सत्य नहीं। परंतु जाके अज्ञानसैं जो उपजै है ताके ज्ञानसैं तिसका बाध होवै।

१ शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिनके अज्ञानतैं रूपा सर्प जल आदि उपजै हैं, तिनका बाध शुक्ति रज्जु मरुस्थल आदिकनके ज्ञानतैं होवै है। औ---

२ ब्रह्मके अज्ञानसैं जो जन्ममरणादिक संसारदुःख उपजै है, ताका बाध ब्रह्मज्ञानतैं होवै है ॥ १५० ॥

॥ २३९ ॥ प्रश्नः--ब्रह्मके अज्ञानसैं संसार कौन क्रमतैं उपजै है।

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

भगवन् ब्रह्म-अज्ञानतैं,
जो उपजै संसार।
सो किहि क्रमतैं होत है,
कहो मोहिं निरधार ॥ १५१ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥ १५१ ॥

॥गतप्रश्नका उत्तर ॥ २४०-२७१ ॥

॥२४०॥ स्वप्नसमान विना क्रमतैं जगत्का भासना ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ चौपाई ॥

जैसैं स्वप्न होत बिन क्रमतैं ।
त्यूं मिथ्याजग भासत भ्रमतैं ॥
जो ताको क्रम जान्यो लौरैं।
सो मरुथलजल वैंसन निचौरै १५२

अर्थ स्पष्ट ॥ १५२ ॥

॥ दोहा ॥

उपनिषदनमैं बहुत विधि,
जगउत्पत्ति प्रकार।
अभिप्राय तिनको यही,
चेतनभिन्न असार ॥ १५३ ॥

टीका:-यद्यपि उपनिषदनमैं जगत्की उत्पत्ति अनेक प्रकारसैं कही है।

१ छांदोग्यमैं तौ 'सत्‌रूप परमात्मातैं अग्नि-जलपृथ्वी क्रमतैं उपजै हैं' यह कह्या है॥ औ तैत्तिरीयमैं आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी क्रमतैं होवै हैं। इस रीतिसैं पांचभूतकी उत्पत्ति कही है। औ---

२ कहूं सर्वकी परमेश्वर उत्पत्ति करै है ॥ इस रीतिसैं क्रमसैं विना ही उत्पत्ति कही है।

ऐसैं जगत्की उत्पत्ति वेदमैं अनेक प्रकारसैं कही है।

तहां वेदका यह अभिप्राय है:---जगत् मिथ्या है। जो जगत् कछु पदार्थ--होता तौ ताकी उत्पत्ति अनेक प्रकारसैं वेद नहीं कहता। अनेक प्रकारसैं जगत्की उत्पत्ति कही है। यातैं जगत्की उत्पत्तिप्रतिपादनमैं वेदका अभिप्राय नहीं, किंतु अद्वैतब्रह्म लखावनैकूं जगत्के निषेध करनैवास्तै मिथ्या जगत्का किसी रीतिसैं आरोप किया है।

दृष्टांतः-जैसैं विनोदके निमित्त दारूका

हस्ती उडावनैकूं बनावै हैं, ताके कान पूछ टेढे होवैं तो सूधे करनैवास्तै यत्न नहीं करते तैसें अद्वैतज्ञानके निमित्त प्रपंचके निषेधनकूं प्रपंचका आरोप किया है। यातैं वेदनै प्रपंचकी उत्पत्तिक्रम एकरूप कहनैमैं यत्न नहीं किया ॥

प्रपंचकी उत्पत्ति एकरूपसैं वेदनै नहीं कही यातैं यह जानै हैंः—वेदका अभिप्राय प्रपंचनिषेधनमैं है, ताकी उत्पत्तिमैं अभिप्राय नहीं। और

॥ २४१ ॥ सूत्रकारभाष्यकारका श्रुतिवचनसैं जगत्‌उत्पत्तिकथनका अभिप्राय ॥

१ सूत्रकारभाष्यकारनै द्वितीय अध्यायमैं उत्पत्ति कहनैवाले श्रुतिवचनका विरोध दूरि करिके जो एकरूपसैं तैत्तिरीय श्रुतिके अनुसार उत्पत्तिमैं सर्वउपनिषद्‌नका अभिप्राय कह्या है। सो मंदजिज्ञासुके निमित्त कह्या है। जो उत्पत्तिवाक्यनके पूर्व कहे अभिप्रायकूं नहीं जानै ता मंदजिज्ञासुकूं उपनिषद्‌नमैं नानाप्रकारसैं जगत्‌की उत्पत्ति देखिके आपसमैं उपनिषद्‌नका विरोध है। यह भ्रांति होय जावैगी। ताके दूरि करनैकूं सर्वउपनिषद्‌नमैं एकरूपसैं जगत्‌की उत्पत्तिप्रतिपादनका प्रकार कह्या है। औ—

२ जाकूं ब्रह्मविचारसैं यथार्थज्ञान नहीं होवै ताकूं लयचिंतनके निमित्त बी उत्पत्तिक्रम कह्या है। जा क्रमतैं उत्पत्ति कही है तासैं विपरीत क्रमतैं लयचिंतन करै। ता लयचिंतनसैं अद्वैतमैं बुद्धि स्थित होवै है। सो लयचिंतनका प्रकार पंचीकरणमैं वार्तिककार सुरेश्वराचार्यनै कह्या है।

३ यह ग्रंथ उत्तमजिज्ञासुके निमित्त है। यातैं जगत्‌की उत्पत्ति औ लयका प्रकार नहीं लिख्या औ सागररूप है, यातैं संक्षेपतैं दिखावै हैंः—शुद्धब्रह्मसैं जगत्‌की उत्पत्ति होवै नहीं। काहेतैं? शुद्धब्रह्म असंग है औ अक्रिय है। किंतु मायाविशिष्ट जो ईश्वर तासैं जगत्‌की उत्पत्ति होवै है। यातैं माया औ ईश्वरका स्वरूप प्रतिपादन करै हैं ॥ १९३ ॥

॥ २४२ ॥ प्रसंगसैं मायास्वरूपप्रतिपादन ॥

॥ कवित्त ॥

जीवईस भेदहीन
चेतनस्वरूपमांहि,
माया सो अनादि एक
सांत ताहि मानिये।

॥ २८९ ॥ दृष्टिसृष्टिवादकी रीतिसैं ब्रह्मविषै प्रपंचका आरोप करिके फेर ताके अपवादपूर्वक पंचमभूमिकामैं आरूढ होनैयोग्य जो उत्तमसंस्कारवान् जिज्ञासु हैं वे इहां उत्तमजिज्ञासु कहिये हैं ॥

॥ २९० ॥ यद्यपि जगत्‌का विवर्तउपादानरूप अधिष्ठान मायाउपहितचेतन है, मायाविशिष्टचेतन नहीं; तथापि मायाविशिष्टकूं विवर्तउपादान कहिये तासैं जगत्‌की उत्पत्ति कही है। सो अविवेकी पुरुषनकी दृष्टिके अनुसार है।

१ विवेकी पुरुषनकी दृष्टिसैं तौ जगत्‌की परिणामीउपादानता विवर्त्तउपादानता मायाविशिष्टचेतनमैं नहीं है, किंतु—

(१) जगत्‌की परिणामीउपादानता केवल मायामैं है। औ—

(२) विवर्तउपादानता मायाउपहितचेचनमैं है।

२ अविवेकी जनोंकू दोनूं धर्मनकी मायाविशिष्टचेतनमैं भ्रांतिसैं प्रतीति होवै है

यातैं शास्त्रकारोंनै इस अविवेकी जनोंकी दृष्टिक अनुवादमात्र किया है।

सत औ असततैं
विलच्छन स्वरूप ताको,
ताहिकूं अविद्या औ
अज्ञान हू बखानिये ॥
चेतनसामान्य न
विरोधी ताको साधक है,
वृत्तिमैं आरूढ वा
विरोधी वृत्ति जानिये।
मायामैं आभास अधि-
-ष्ठान अरु माया मिल,
ईस सरवज्ञ जग-
हेतु पहिचानिये ॥१५४॥

टीका:-जीवईश्वरभेदरहित जो शुद्धचेतन, ताके आश्रित माया है । सो माया अनादि कहिये आदिरहित है ॥

आदि नाम उत्पत्तिका है ।

जो मायाकी उत्पत्ति अंगीकार करैं तौ मायाके कार्य प्रपंचसैं तौ पुत्रसैं पिताकी न्यांई मायाकी उत्पत्ति बनै नहीं। चेतनसैं ही मायाकी उत्पत्ति माननी होवैगी ॥ तहां---

२ जीवभाव औ ईश्वरभाव तौ मायाके कार्य हैं। मायाकी सिद्धि हुए विना जीवईश्वरका स्वरूप असिद्ध है । यातैं जीवचेतन वा ईश्वरचेतनसैं मायाकी उत्पत्ति कहना असंभव है। औ---

३ शुद्धचेतन असंग है, अक्रिय है, निर्विकार है, तातैं मायाकी उत्पत्ति माने विकारी होवैगा । औ शुद्धचेतनसैं मायाकी उत्पत्ति होवै तौ मोक्षदशाविषै माया फेरि उपजैगी। यातैं मोक्षनिमित्तसाधन निष्फल होवैंगे ॥

इस रीतिसैं माया-

१ उत्पत्तिरहित है, यातैं अनादि है। औ-

२ एक है।

३ सांत कहिये अंतवाली है । ज्ञानतैं मायाका अंतः होवै है । औ---

४ सत्‌असत्‌सैं विलक्षण है ।

(१) जाका तीनि कालमैं बाध होवै नहीं सो सत् कहिये है । ऐसा चेतन है ।

(२) मायाका ज्ञानतैं बाध होवै है यातैं सत्‌सैं विलक्षण है ॥

(३) जाकी तीनि कालमैं प्रतीति होवै नहीं सो शशशृंग, वंध्यापुत्र, आकाशफूल-आदिक असत् कहिये हैं ।

(४) ज्ञानसैं पूर्व माया औ ताका कार्य प्रतीत होवै है ॥

[१] जाग्रत्‌विषै "मैं अज्ञानी हूं । ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" । इस रीतिसैं माया प्रतीत होवै है। औ---

[२] स्वप्नके विषै जो नानापदार्थ प्रतीत होवै हैं तिनका उपादानकारण माया है। औ---

[३] सुषुप्तिसैं अनंतर अज्ञानकी इस रीतिसै स्मृति होवै है:-"मैं सुखसैं सोया, कछु बी न जानता भया" सो स्मृति अज्ञात वस्तुकी होवै नहीं । यातैं सुषुप्तिमैं अज्ञानका भान होवै है । सो अज्ञान औ माया एक ही है। तिनका भेद नहीं ।

या प्रकारतैं तीनूं अवस्थाविषै मायाकी प्रतीति होवै है। यातैं असत्‌सैं विलक्षण है ॥

इस रीतिसैं सत्‌असत्‌सैं विलक्षण जो माया ताका कार्य बी सत्‌असत्‌सैं विलक्षण है ॥

सत्‌असत्‌सैं विलक्षणकूं ही अद्वैतमतमैं मिथ्या कहै हैं औ अनिर्वचनीय कहै हैं ॥

यातैं माया औ ताके कार्यतैं द्वैतकी सिद्धि होवै नहीं। काहेतैं ? जैसैं चेतन सत्‌रूप है,

तैसैं माया औ ताका कार्य सत्रूप होवै तौ द्वैत होवै। सो माया औ ताका कार्य सत्-असत्सैं विलक्षण होनैतैं मिथ्या है। मिथ्या-पदार्थसैं द्वैत होवै नहीं। जैसैं स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं तिनतैं द्वैत होवै नहीं।

॥ २४३॥ अज्ञानकी स्वाश्रयता औ स्वविषयता ॥

१ जीव-ईश्वर-विभागरहित शुद्धब्रह्मके आश्रित माया है। औ--

२ शुद्धब्रह्मकूं ही आच्छादन करै है।

जैसैं गेहके आश्रित अन्धकार गेहकूं आच्छादन करै है।

या पक्षकूं स्वाश्रयस्वविषयपक्ष कहै हैं।

१ स्व काहिये शुद्धब्रह्म ही आश्रय है। औ--

२ स्व कहिये शुद्धब्रह्म ही विषय कहिये मायातैं आच्छादित है। अर्थ यह ढक्या है।

संक्षेपशारीरक, विवरण, वेदांतमुक्तावली, अद्वैतसिद्धि, अद्वैतदीपिका आदिक ग्रंथकारोंनै स्वाश्रयस्वविषय ही अज्ञान अंगीकार किया है। औ--

॥२४४॥उक्त अर्थमैं वाचस्पतिका मत ॥

वाचस्पतिका यह मत हैः-

१"अज्ञान जीवके आश्रित है औ २ ब्रह्मकूं विषय करै है।

१ 'मैं अज्ञानी ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं'। या प्रतीतिसैं 'मैं' शब्दका अर्थ जीव 'अज्ञानी' कहनैतैं अज्ञानका आश्रय भान होवै है। औ—

२ 'ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं' यातैं अज्ञानका विषय ब्रह्म प्रतीत होवै है।"

इस रीतिसैं अज्ञान जीवके आश्रित औ ब्रह्मकूं विषय कहिये आच्छादन करै है।

"सो अज्ञान एक नहीं; किंतु अनंत हैं। काहेतैं?

१ जो एक अज्ञान मानैं तौ एक अज्ञानकी एकके ज्ञानतैं निवृत्ति हुयेतैं औरनकूं अज्ञान औ ताका कार्य संसार प्रतीत नहीं हुवा चाहिये।

२ जो ऐसे कहैः-आजतोरी किसीकूं ज्ञान हुवा नहीं तौ आगे बी किसीकूं ज्ञान नहीं होवैगा। यातैं श्रवणादिक साधन निष्फल होवैंगे।

यातैं अनतजीवनके आश्रित अज्ञान अनंत हैं। अनंतजीवनके अनन्तअज्ञानकल्पित ईश्वर अनंत औ ब्रह्मांड अनंत हैं। जा जीवकूं ज्ञान होवै ताका अज्ञान ईश्वर ब्रह्मांडकी निवृत्ति होवै है। जाकूं ज्ञान नहीं होवै ताकूं बंध रहै है"

यह वाचस्पतिका मत है सो समीचीन नहीं। काहेतैं?

॥ २४५ ॥ वाचस्पतिके मतकी असमीचीनता औ अज्ञानकी एकता ॥

१ "ईश्वर जीवके अज्ञानसैं कल्पित है"। यह कहना श्रुतिस्मृतिपुराणतैं विरुद्ध है।

२ "ईश्वर अनंत औ जीवजीवमैं सृष्टिका भेद" यह बी विरुद्ध है।

यातैं नानाअज्ञान माननै असंगत है। औ-

नानाअज्ञान मानिके ईश्वर औ सृष्टि एक मानै तौ बनै नहीं। काहेतैं? जीवईश्वरप्रपंच अज्ञानकल्पित हैं। अनंतअज्ञान मानैंतैं एकएक अज्ञानकल्पित जीवकी न्यांई ईश्वर औ प्रपंच बी अनंत ही होवैंगे। याहीतैं वाचस्पतिनै अनंत-ईश्वर औ अनंतसृष्टि कही है। यातैं "अज्ञान एक है" यह मत समीचीन है॥

॥ २४६ ॥ स्वाश्रयस्वविषयपक्षका अंगीकार ॥

सो ऐसैं अज्ञान बी जीवके आश्रित नहीं, किंतु शुद्धब्रह्मके आश्रित है। काहेतैं ?

१जीवभाव अज्ञानका कार्य है। सो अज्ञान स्वतंत्र कदे बी रहै नहीं। यातैं निराश्रय अज्ञानसैं तौ जीवभाव बनै नहीं। प्रथम किसीके आश्रित अज्ञान होवै तब अज्ञानका कार्य जीवभाव होवै।

२ जीवपनेंकी न्याई ईश्वरता बी अज्ञानका कार्य है ताके आश्रित बी अज्ञान नहीं॥

किंतु शुद्धब्रह्मके आश्रित अनादि अज्ञान है अनादि जो चेतन औ अज्ञान तिनका संबंध बी अनादि चेतन अज्ञानके अनादि-संबंधसैं जीवभाव ईश्वरभाव बी अनादि हैं। परंतु जीवभाव औ ईश्वरभाव अज्ञानके आधीन हैं। यातैं अज्ञानकार्य कहिये है।

यद्यपि "मैं अज्ञानी हूं" इस रीतिसैं जीवके आश्रित अज्ञान प्रतीत होवै है; तथापि शुद्धब्रह्मके आश्रित जो अज्ञान, ताका जीवकूं "मैं अज्ञानी हूं" यह अभिमान होवै है औ—

१ जीव अज्ञानका कार्य है। यातैं अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय जीव बनै नहीं। किंतु शुद्धब्रह्म ही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है।

२ शुद्धब्रह्मअधिष्ठानके आश्रित जो अज्ञान सो ता ब्रह्मकूं ही आच्छादन करै है। तिसतैं अनंतर "मैं अज्ञानी हूं" इस रीतिसैं अज्ञानका अभिमानीरूप आश्रय जीव होवै है।

या प्रकारतैं स्वाश्रयस्वविषय अज्ञान है।

॥२४७॥ एक अज्ञानपक्षमैं बंधमोक्षकी व्यवस्था। सर्वशक्तियाकी श्रेष्ठतापूर्वक मायाका नामभेदसैं स्वरूप ॥

सो अज्ञान यद्यपि एक है औ ज्ञानतैं निवृत्ति होवै है, परंतु जा अंतःकरणमैं ज्ञान होवै ता अंतःकरण अवच्छिन्नचेतनमैं स्थित जो अज्ञानका अंश, ताकी निवृत्ति ता ज्ञानसैं होवै है। सोई मुक्त होवै है। जा अंतःकरणमैं ज्ञान नहीं होवै, तहां अज्ञानका अंश रहै है औ बंध रहै है। या रीतिसैं एक अज्ञानपक्षमैं बंधमोक्षव्यवहार बनै है। औ—

किसीकूं वाचस्पतिकी रीतिसैं नानाअज्ञान-वाद ही बुद्धिमैं प्रवेश होवै तौ वह बी अद्वैत-

॥ २९१ ॥ याका यह अभिप्राय है:—जैसैं अंशीरूप अंधकार एक है, ताके अंशरूप नाना-अंधकार प्रतिगृहविषै स्थित है। जा गृहमैं दीपक होवै ता गृहके अंशरूप अंधकारका नाश होवै है। तैसैं अंशी अज्ञान एक है ताके अंशरूप नानाअज्ञान नाना अंतःकरणदेशमैं गत साक्षीचेतनविषै स्थित हैं। जा अंतःकरणदेशमैं ज्ञान होवै ता अंतःकरण-देशगत अज्ञानांशका नाश होवै है, यातैं एककूं ज्ञान होवै तिसतैं सर्वकूं अज्ञानतत्कार्यकी निवृत्तिद्वारा मुक्ति प्रतीत होवै नहीं। इस रीतिसैं एक अज्ञानके अंगीकार किये वी बंधमोक्षकी व्यवस्था बनै है। औ जीवके अज्ञानसैं कल्पित ईश्वर अनंत हैं औ जीव जीवमैं सृष्टिका भेद है। इस श्रुतिस्मृतिपुराणनतैं विरुद्धपक्षका अंगीकार करना बी नहीं होवै है। यातैं यह पक्ष समीचीन है॥

॥ २९२ ॥ "मैं अज्ञानी हूं" इस अनुभवकारि वाचस्पतिमिश्रनै अज्ञानका आश्रय जीव कह्या है। सो सुगम रीतिसैं मुमुक्षुकी बुद्धिमैं घटै इस निमित्त कहा है। परंतु वाचस्पतिमिश्रका गूढ अभिप्राय यह है:— "मैं" शब्दका वाच्य जो अंतःकरणविशिष्टचेतन रूप जीव है, ताका विशेष्यभाग जो साक्षीचेतन सो ब्रह्म है। सो अज्ञानका आश्रय है। ताका (विशेष्यके धर्मका) विशिष्टमैं व्यवहार होवै है।

ज्ञानका उपाय है । ताके खंडनमें कछु आग्रह नहीं । जिसैं रीतिसैं जिज्ञासुकूं अद्वैत बोध होवै तैसैं बुद्धिकी स्थिति करै ॥

शुद्धब्रह्मके आश्रित जो माया ताकूं अविद्या औ अज्ञान कहै हैं ।

१ अचिंत्यशक्ति औ युक्तिकूं नहीं सहारै, यातैं माया कहै हैं ।

२ विद्यातैं नाश होवै है, यातैं अविद्या कहै हैं ।

३ स्वरूपका आच्छादन करै है, यातैं अज्ञान कहै हैं ॥

१ जा चेतनके आश्रित है सो सामान्य-चेतन ताका विरोधी नहीं । किंतु सामान्य-चेतन मायाका साधक है । सत्तास्फुरण देवै है ॥ औ—

२ वृत्तिमें आरूढ कहिये स्थित सो चेतन अथवा चेतनसहित वृत्ति, ताकी विरोधी जानिये ।

कवित्तके तीनिपादनतैं मायाका स्वरूप कह्या ।

॥ २४८ ॥ प्रसंगसैं ईश्वरका स्वरूप, द्विविधकारणका लक्षण, जगत्का उपादान औ निमित्तकारण ईश्वर है ॥ ॥ २४८–२४९ ॥

"मायामैं आभास" इत्यादि चतुर्थपादसैं ईश्वरका स्वरूप कहै हैं:—

१ शुद्धसत्त्वगुणसहित माया । औ—

२ मायाका अधिष्ठान चेतन ।

३ मायामैं आभास ।

तीनूं मिले ईश्वर कहिये हैं ॥

सो ईश्वर सर्वज्ञ है । सो जगत्का हेतु कहिये कारण है ।

कारण दो प्रकारका होवै है— १ एक तौ उपादानकारण होवै है । एक निमित्तकारण होवै है ॥

१(१) जाका कार्यके स्वरूपमैं प्रवेश होवै । औ
(२)जा विना कार्यकी स्थिति होवै नहीं
सो उपादानकारण कहिये है ॥
जैसैं मृत्तिका घटका उपादानकारण है
(१)घटके स्वरूपमैं ताका प्रवेश है । औ
(२)मृत्तिका विना घटकी स्थिति नहीं ॥

२(१)जाका स्वरूपमैं प्रवेश नहीं । किंतु
(२)कार्यकूं भिन्न स्थित होयके करै । औ
(३)जाके नाशतैं कार्य बिगरै नहीं ।
सो निमित्तकारण कहिये है ॥

जैसैं घटके कुलालदंडचक्रआदिक निमित्त-कारण हैं ।

(१) घटके स्वरूपमैं तिनका प्रवेश नहीं ।
(२) घटसैं भिन्न कहिये किनारै स्थित होयके उत्पत्ति करै हैं । औ
(३) उत्पत्ति हुये पीछे कुलाल दंड चक्र आदिकनके नाशतैं घट बिगरै नहीं ।

इस रीतिसैं उपादान औ निमित्त दो प्रकारका कारण होवै है । औ—

॥ २९३ ॥ इहां यह नैष्कर्म्यसिद्धिकारका वचन है:—

"यया यया भवेत्पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि । सा सैव प्रक्रियेह स्यात्साध्वी सा च व्यवस्थितिः" ॥१॥

अर्थः—पुरुषनकूं जिस जिस प्रक्रियाकरि प्रत्यगात्माविषै बोध होवै, सोई सोई प्रक्रिया इहा (वेदांत-सिद्धांतविषै) श्रेष्ठ है औ सोई व्यवस्था है ।

॥ २९४ ॥ कार्यकी उत्पत्ति, स्थिति औ लय इन तीनका जो कारण सो उपादानकारण कहिये है । यह बी उपादानका लक्षण है ॥

॥ २९५ ॥ कार्यकी उत्पत्तिमात्रका जो कारण सो निमित्तकारण कहिये है । यह निमित्तकारण अनेक प्रकारका होवै है ।

॥ २४९ ॥

जगत्का उपादान औ निमित्त दोनूं प्रकारतैं ईश्वर ही कारण है । जैसैं एक ही मकरी[२९६] जालेका उपादानकारण औ निमित्तकारण है ॥ औ जो ऐसैं कहैं:-

१ मकरीका जडशरीर जालेका उपादानकारण है । औ--

२ मकरीके शरीरमैं जो चेतनभाग सो निमित्तकारण है ।

यातैं एक ईश्वरकूं निमित्तकारण औ उपादानकारण माननैमैं कोई दृष्टांत नहीं ।

तो मकरीकी न्यांई

१ ईश्वरका शरीर जडमाया जगत्का उपादानकारण है । औ---

२ चेतनभाग निमित्तकारण है ।

इस रीतिसैं एक ही ईश्वर जगत्का उपादान औ निमित्तकारण है । तामैं मकरीका दृष्टांत औ मुख्यदृष्टांत स्वप्न है ॥

१ जा समय जीवनके कर्म फल देनैकूं सम्मुख नहीं होवैं तब प्रलय होवै है । औ

२ जीवनके कर्म फल देनैकूं सम्मुख होवैं तब सृष्टि होवै है ।

इस रीतिसैं जीवकर्मके आधीन सृष्टि है। यातैं

॥ २५० ॥ जीवका स्वरूप कहै हैं:-

॥ दोहा ॥

मलिनसत्त्व अज्ञानमैं,
जो चेतनआभास ।
अधिष्ठानयुत जीव सो,
करत कर्मफल आस ॥ १९९ ॥

टीका:---

१ रजोगुण औ तमोगुणकूं दाबि लेवै, सो शुद्धसत्त्वगुण कहिये है ॥ औ---

२ रजोगुणतमोगुणसैं आप दबै, सो मलिनसत्त्वगुण कहिये है ।

॥ २९६ ॥ मकरी नाम छूतातंतुका है । याहीकूं ऊर्णनाभि बी कहते हैं ॥

॥ २९७ ॥

१ जैसैं मकरीका शरीर जालेका उपादानकारण है औ-

२ अंतःकरणसहित चेतनभाग निमित्तकारण है।

१ तैसैं तमःप्रधानप्रकृतिरूप माया जगत्का उपादान है । औ-

२ शुद्धसत्त्वप्रधान मायासहित चेतनभाग जगत्का निमित्तकारण है ।

केवलचेतनभागमैं कारणता नहीं। यह अभिप्राय है॥

॥ २९८ ॥

१ न्यायमतमैं घटके साथ ईश्वरके संयोगविषे ईश्वरकूं अभिन्ननिमित्तउपादानकारण मान्या है औ जीवात्मगत ज्ञानादिगुणविषे जीवात्माकूं अभिन्न निमित्तउपादानकारण मान्या है। औ-

२ श्रीमद्भागवतविषे जब ब्रह्माजीनै वत्स औ वत्सपाल हरण किये थे तब श्रीकृष्णपरमात्मा वत्स औ वत्सपालादिसर्वरूप आप ही बन्या है। तहां बी श्रीकृष्णपरमात्मा तिनका अभिन्ननिमित्तउपादानकारण है । औ-

३ सूर्य जो है, सो अष्टमासपर्यंत पृथ्वीके रसका शोषण करै है । फेर ग्रीष्म औ वर्षाऋतुके चारिमासपर्यंत जलकूं छोड़ता है । तिस जलका सूर्य अभिन्ननिमित्तउपादानकारण है ॥ औ-

४ कोई कमांगर नखरूप कलमसैं स्वशरीरपर चित्र लिखता है । फेर ताकूं देखिके मुदित होता है । फेर ताकूं नाश करता है । तिस चित्रका वह कमांगर (चित्रकार) अभिन्ननिमित्तउपादानकारण है । औ-

जैसैं साक्षीचेतन स्वप्नप्रपंचका अभिन्ननिमित्तउपादानकारण है, तैसैं ईश्वर जगत्का अभिन्ननिमित्तउपादानकारण है ॥--

१ ता मलिनसत्त्वगुणसहित अज्ञानके अंशमैं जो चेतनका आभास । औ---

२ अज्ञान औ--

३ ताका अधिष्ठान कूटस्थ ।

तीनूं मिलै जीव कहिये है ।

सो जीव कर्म करै है औ फलकी आशा करै है ॥ १५५ ॥

॥ २५१ ॥ ईश्वरमैं विषमदृष्टि औ क्रूरता नहीं ।

ता जीवके कर्मनके अनुसार ऊंचनीच-भोगके निमित्त ईश्वर सृष्टि रचै है । यातैं ईश्वरमैं विषमदृष्टि औ क्रूरता नहीं । और---

जो ऐसैं कहैं:--सर्वसैं प्रथम सृष्टिसैं पूर्व कर्म नहीं औ प्रथमसृष्टिमैं ऊंचनीचशरीर औ भोग ईश्वरनै रचे हैं । यातैं ईश्वर विषमदृष्टि है ।

सो बनै नहीं । काहेतैं ? संसार अनादि है । उत्तरउत्तरसृष्टिमैं पूर्वपूर्वसृष्टिके कर्म हेतु हैं । सर्वसैं प्रथम कोई सृष्टि नहीं । यातैं ईश्वरमैं दोष नहीं ।

॥२५२॥ जीवनके भोगनिमित्त ईश्वरकूं जगत्के उपजावनैकी इच्छा ।

॥ कबित्त ॥

जीवनके पूर्व सृष्टि
कर्म अनुसार ईस,
इच्छा होय जीव भोग
जग उपजाइये ।
नभ वायु तेज जल
भूमि भूत रचैं तहां,
शब्द स्पर्श रूप रस
गंध गुन गाइये ॥
सत्त्वअंस पंचनको
मेलि उपजत सत्त्व,
रजोगुनअंस मिलि
प्रान त्यूं उपाइये ।
एक एक भूत सत्त्व-
-अंस ज्ञानइंद्रि रचै,
कर्मइंद्रि रजोगुन-
अंसतैं लखाइये ॥ १५६ ॥

टीकाः---

१ जब जीवनके कर्म भोग देनैसैं उदासीन होवैं तब प्रलय होवै है । प्रलयमैं सर्वपदार्थनके संस्कार मायामैं रहै हैं । यातैं जीवनके कर्म बी जो बाकी रहे थे सो सूक्ष्म होयके मायामैं रहे हैं ।

२ जब कर्म भोग देनैकूं सम्मुख होवैं तब ईश्वरकूं यह ईच्छा होवै है:--"जीवनके भोग-निमित्त जगत् उपजाइये" ॥

॥ २९९ ॥ इहां यह शंका है:--

१ दुःख औ दुःखके साधनकी निवृत्तिके निमित्त किंवा सुख औ सुखके साधनकी प्राप्तिके निमित्त इच्छा होवै है । अन्यवस्तुकी इच्छा होवै नहीं । यह नियम है ॥ ईश्वरकूं दुःख औ दुःखके साधनका अभाव है । यातैं ईश्वरकूं दुःख औ दुःखके साधनकी निवृत्तिके निमित्त इच्छा बनै नहीं औ--

२ जातैं ईश्वर पूर्णकाम है यातैं ताकूं सुख औ सुखके साधनकी प्राप्तिके निमित्त बी इच्छा बनै नहीं ॥

जो कहो बालककूं विनोदकी इच्छा होवै है । ताकी न्याईं ईश्वरकूं जगद्रचनारूप विनोदकी इच्छा निर्निमित्त बी होवै है सो कहना बी बनै नहीं । काहेतैं ? जैसैं बालकके चित्तके आह्लादरूप सुखकी प्राप्तिके निमित्त इच्छा होवै है तैसैं पूर्णकाम ईश्वरकूं आह्लादरूप सुखप्राप्तिकी इच्छा संभवै नहीं ।

(॥सूक्ष्मसृष्टिनिरूपण॥२५३-२५७)

॥ २५३ ॥ पंचभूत औ तिनके गुणनकी उत्पत्ति ॥

ऐसी ईश्वरकी इच्छातैं माया तमोगुणप्रधान होवै है। ता तमोगुणप्रधान मायातैं नभ वायु तेज जल भूमि, ये पंचभूत रचै जावै हैं । तिन भूतनमैं क्रमतैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस औ गंध, ये पांच गुण होवै हैं ॥

१ मायातैं शब्दसहित आकाशकी उत्पत्ति। औ—

२ आकाशतैं वायुकी उत्पत्ति ।

(१) वायु आकाशका कार्य है । यातैं आकाशका शब्दगुण वायुसैं होवै है।

(२) अपना गुण स्पर्श होवै है ॥

३ वायुतैं तेजकी उत्पत्ति । औ---

(१) तेजमैं आकाशका शब्द ।

(२) वायुका स्पर्श होवै है ।

(३) अपना रूप होवै है ।

४ तेजतैं जलकी उत्पत्ति ।

(१) आकाशका शब्द ।

(२) वायुका स्पर्श ।

(३) तेजका रूप जलमैं होवै है ।

(४) अपना रस होवै है ।

५ जलसैं पृथ्वीकी उत्पत्ति औ---

(१) आकाशका शब्द ।

(२) वायुका स्पर्श ।

(३) तेजका रूप ।

(४) जलका रस पृथिवीमैं होवै है ।

(५) पृथिवीका गंध होवै है ॥

१ आकाशमैं प्रतिध्वनिरूप शब्द है ॥

२ वायुमैं

(१) सीसी शब्द । औ---

(२) उष्ण शीत कठिनतैं विलक्षण स्पर्श है ॥

३ अग्निरूपतेजमैं

(१) भुकभुक शब्द । औ----

(२) उष्ण स्पर्श । औ---

(३) प्रकाश रूप है ।

४ जलमैं

(१) चुलचुल शब्द ।

(२) शीत स्पर्श ।

या शंकाका समाधान है:—जैसैं कल्पवृक्ष अन्यपुरुषके संकल्परूप निमित्तसैं स्वस्वभावकरि वांछित फलकूं देता है, तैसैं ईश्वर बी फल देनैकूं सम्मुख भये जीवनके अदृष्टरूप निमित्तसैं स्वस्वभावकरि इच्छा ज्ञान औ प्रयत्नकूं करता है ॥ सो ईश्वरके इच्छादिककी एक एक ही व्यक्ति सृष्टिके आरंभकालमैं उपजै है औ प्रलयपर्यंत स्थायी है। यातैं नित्य कहिये है । औ भूतभविष्यत्वर्त्तमानकालगत सफलपदार्थनकूं विषय करै है । यातैं सदा सृष्टि किंवा प्रलय, शीत किंवा उष्ण किंवा वर्षा होवै नहीं । किन्तु समयके अनुसार ही होवै है ॥

॥ ३०० ॥ जैसैं स्वपतिके शुक्ररूप बीजकूं धारनैवाली औ कृमिआदिक अनेकजन्तुयुक्त पुत्ररूप गर्भवाली सुगर्भा स्त्री प्रसवतैं पूर्व संततिके लाभरूप निमित्तसैं सदा प्रसन्न रहती है, यातैं सत्त्वगुणप्रधानकी न्याई है । पीछे प्रसवकालमैं वेदनारूप निमित्तसैं प्रसन्नताका तिरोधानकरिके शून्यचित्तवाली होनैतैं तमोगुणप्रधानकी न्याई होवै है । औ जैसैं पूर्व श्वेतरंगवाला बादल है सो वर्षाकालमैं श्यामरंगकाला होवै है, तैसैं सृष्टितैं पूर्व ब्रह्मके प्रतिबिंबरूप जगत्के बीज (कारण) कूं धारनैवाली औ अविद्योपाधिकअनंतजीवयुक्त प्रपंचरूप गर्भवाली शुद्धसत्त्वप्रधानमाया (ईश्वरकी उपाधि) है । सो सृष्टिके आरंभकालमैं शुद्धसत्त्वप्रधानस्वरूपका तिरोधान करिके सृष्टिके योग्य तमोगुणप्रधानप्रकृतिरूप होवै है ॥

(३) शुक्ल रूप।
(४) मधुर रस है। औ क्षार तथा कटु पृथिवीके संबंधसैं जल प्रतीत होवै है। जलका रस मधुर ही है। सो मधुरता हरीतकीआदिक भक्षणकारिके जलपान किये प्रगट होवै है।

५ पृथिवीमैं
(क) कटकट शब्द है।
(२) उष्णशीतसै विलक्षण कठिन स्पर्श है।
(३) श्वेत नील पीत रक्त हरित आदि रूप हैं।
(४) मधुर अम्ल क्षार कटु कषाय तिक्त रस हैं।
(५) सुगंध औ दुर्गंध दो प्रकारका गंध है॥ इस रीतिसैं:—

१ आकाशमैं एक।
२ वायुमैं दोय।
३ तेजमैं तीनि।
४ जलमैं चारि। औ—
५ पृथिवीमैं पांच गुण हैं।

तिनमैं एक एक अपना है। अधिक कारणके हैं। औ—

सर्वका मूलकारण ईश्वर है। तामैं माया औ चेतन दो भाग हैं।

१ मिथ्यापना मायाका भाग है। औ—
२ सत्तास्फूर्ति सर्वभूतनमैं चेतनका भाग है। कवित्तके दो पादका यह अर्थ है॥

॥ २५४ ॥ अंतःकरणकी चारि भेदसहित उत्पत्ति।

पंचभूतनका सत्त्वगुण अंश मिलिके सत्त्व कहिये अंतःकरणकूं उपजावै है। अंतःकरण ज्ञानका हेतु है औ ज्ञानकी उत्पत्ति सत्त्वगुणतैं अंगीकार करी है; यातैं अंतःकरण भूतनके सत्त्वगुणका कार्य हैं औ पंचभूतनके कार्य पंचज्ञानइंद्रिय, तिन सबका सहायक है। यातैं पंचभूतनके मिले सत्त्वगुणतैं अंतःकरणकी उत्पत्ति कही है।

१ देहके अंतर कहिये भीतर है औ करण कहिये ज्ञानका साधन है, यातैं अंतःकरण कहिये है। औ—
२ भूतनके सत्त्वगुणका कार्य है, यातै अंतःकरणका सत्त्व बी नाम है।

अंतःकरणका जो परिणाम ताकूं वृत्ति कहै हैं। सो अंतःकरणकी वृत्ति चारि हैं॥

१ पदार्थके भलेबुरेस्वरूपकूं निश्चय करनेवाली वृत्ति बुद्धि कहिये है।
२ संकल्पविकल्पवृत्ति मन कहिये है।
३ चिंतावृत्ति चित्त कहिये है।
४ "अहं" ऐसी अभिमानवृत्ति अहंकार कहिये है।

॥२५५॥ प्राणकी पंचभेदसहित उत्पत्ति।

पंचभूतनके मिले रजोगुणके अंशतैं प्राणकी उत्पत्ति होवै है। सो प्राण क्रियाभेदतैं औ स्थानभेदतैं पांच प्रकारका है।

१(१) जाका हृदय स्थान है। औ—
(२) क्षुधापिपासा क्रिया है।
सो प्राण कहिये है। औ—

२(१) जाका गुद स्थान है
(२) मूत्रमल अधोनयन क्रिया है
सो अपान कहिये है।

३ (१) जाका नाभि स्थान। औ—
(२) भुक्तपीत अन्नजलकूं पाचनयोग्य सम करनैकी क्रिया है
सो समान है।

४ (१) जाका कंठ स्थान है। औ—
(२) श्वास क्रिया है
सो उदान कहिये है।

५ (१) जाका सर्वशरीर स्थान है,
(२) रसमेलन क्रिया है,
सो व्यान कहिये है। औ—

कहूं नाग कूर्म कृकल देवदत्त औ धनंजय ये पंचप्राण अधिक कहे हैं। तिनकी उद्गार निमेष छीक जृंभा औ मृतशरीरफुलावन इस क्रमतैं क्रिया कही हैं। पृथिवी जल तेज वायु आकाश पंचनके रजोगुणअंशतैं एक एककी क्रमतैंउत्पत्ति कही है। औ अपान समान प्राण उदान व्यान इनकी बी पृथिवी आदिक एकएकके रजोगुण अंशतैं उत्पत्ति कही है। सर्वके मिले रजोगुणअंशतैं नहीं। परंतु अद्वैतसिद्धांतमैं यह प्रक्रिया नहीं। काहेतें ? विद्यारण्यस्वामीनै तथा पंचीकरणमैं वार्तिककारनैं सूक्ष्मशरीरमैं औ पंचकोशनमैं नागकूर्म आदिकनका ग्रहण किया नहीं औतिननैं अपान आदिक पंचप्राणकी उत्पत्ति बी भूतनके मिले रजोगुणअंशतैं कही है। यातैं—

१ एकएकके रजोगुणअंशतैं अपान आदिकनकी उत्पत्तिकथन असंगत। औ—
२ सूक्ष्मशरीरमैं नाग कूर्म आदिकनका ग्रहण असंगत।

पंच प्राणका ही सूक्ष्म शरीरमैं ग्रहण है ॥

प्राण विक्षेपरूप हैं औ विक्षेपस्वभाव रजोगुणका है। यातैं भूतनके रजोगुण अंशतैं प्राण की उत्पत्ति कही है।

यह तृतीयपादका अर्थ है।

॥२५६॥ ज्ञानेंद्रिय औ कर्मेंद्रियकी उत्पत्ति ॥

१ एकएकभूतका सत्त्वगुणअंश पंचज्ञानइंद्रिय रचै है।
२ एकएकका रजोगुणअंश एकएककर्मइंद्रिय रचै है।

१ आकाशके सत्त्वगुणतैं श्रोत्र।
२ वायुके सत्त्वगुणअंशतैं त्वक्।
३ तेजके सत्त्वगुणअंशतैं नेत्र।
४ जलके सत्त्वगुणअंशतैं रसना। औ—
५ पृथिवीके सत्त्वगुणतैं घ्राण होवै है।

ये पंचेंद्रिय ज्ञानके साधन है। यातैं ज्ञानेंद्रिय कहिये हैं ॥ औ—

ज्ञान सत्त्वगुणतैं होवै है, यातैं भूतनके सत्त्वगुणतैं उत्पत्ति कही है।

श्रोत्रेंद्रिय आकाशके गुणकूं ग्रहण करै है यातैं श्रोत्रेंद्रियकी आकाशतैं उत्पत्ति कही। तैसैं जा भूतके गुणकूं जो इंद्रिय ग्रहण करै ता भूतसैं ता इंद्रियकी उत्पत्ति कही है ॥

१ आकाशके रजोगुणअंशतैं वाक्इंद्रियकी उत्पत्ति होवै है।
२ वायुके रजोगुणअंशतैं पाणिकी।
३ तेजके रजोगुणअंशतैं पादकी।
४ जलके रजोगुणअंशतैं उपस्थकी।
५ पृथिवीके रजोगुणअंशतैं गुदाकी उत्पत्ति होवै है।

स्त्रीकी योनि औ पुरुषके मेढ्रमैं जो विषयानंदका साधन इंद्रिय सो उपस्थ कहिये है।

कर्म नाम क्रियाका है ॥

ये पांच इंद्रिय क्रियाके साधन हैं। यातैं कर्मेंद्रिय कहिये हैं ॥

क्रिया रजोगुणतैं होवै है। यातैं भूतनके रजोगुणअंशतैं इनकी उत्पत्ति कही है ॥१५६॥

इति सूक्ष्मसृष्टिनिरूपण ॥

॥ २५७ ॥ ॥ सवैया छंद ॥

भूत अपंचीकृत औ कारज,
इतनी सूछमसृष्टि पिछान।
पंचीकृत भूतनतैं उपज्यो,
स्थूल पसारो सारो मान ॥

कारन सूछम थूलदेह अरु ।
पंचकोस इनहीमैं जान ॥
करि विवेक लखि आतम न्यारो।
मुंज इषीकातैं ज्यूं भान ॥१६७॥

टीकाः-अपंचीकृतभूत औ तिनका कार्य अंतःकरण, प्राण, कर्मइंद्रिय, औ ज्ञानइंद्रिय, इतनी सूक्ष्मसृष्टि कहिये है।

सूक्ष्मसृष्टिका ज्ञान इंद्रियतैं होवै नहीं। नेत्र-नासिकादिक गोलक तौ इंद्रियनके विषय हैं। परंतु तिन गोलकनमैं स्थित जो इंद्रिय सो काहूके इंद्रियनके विषय नहीं ॥

सूक्ष्मसृष्टिकी उत्पत्तिसैं अनंतर ईश्वरकी इच्छातैं स्थूलसृष्टिके निमित्त भूतनका पंचीकरण होता भया ॥

(॥ पंचीकरण ॥ २५८-२५९ ॥

॥ २५८ ॥ पंचीकरणप्रकार ॥

पंचीकरण दो भांतिसैं कह्या हैः----

१ एक एक भूतके दो दो सम भाग होयके एक एक भागके चारि चारि भाग भये। पांच भूतनका आधा आधा भाग प्रथम ज्यूंका त्यूं रह्या है। आधे आधे भागके जो चारि चारि भाग सो पृथक् रहे। बडे अर्धभागनमैं अपनै अपनै भागकूं छोडिके मिलेतैं अर्धभाग सबभूतनमैं अपना औ अर्धभाग अपनैसैं इतर चारिभूतनका मिलिके पंचीकरण कहा है।

२ दूसरा यह प्रकार हैः-एक एक भूतके दो दो भाग भये सो सम नहीं। किंतु एकभाग चारि अंशका औ पंचम अंशका एक भाग इस रीतिसैं न्यून अधिक दो दो भाग भये; तिनमैं सबके अधिकभाग ज्यूंके त्यूं पृथक् स्थित रहे औ पंचभूतनके न्यून जो पंच भाग तिनके एक एक भागके पंच पंच भाग करिके पृथक् स्थित अधिक पंच भागनमैं एक एक भाग मिलिके पंचीकरण होवै है।

१ प्रथमपक्षमैं एकभागके चारि भाग पृथक् रहे। आधे आधे भागनमैं अपनै भागकूं छोडिके मिले। औ—

२ दूसरे पक्षमैं न्यूनभागके पंच भाग पृथक् रहे। अधिक पंच भागनमैं अपनै भाग-सहितमैं मिले ॥ औ---

१ प्रथमपक्षमैं पंचीकृत भूतनमैं अपना अंश अर्ध औ अर्ध अंश औरनका ॥

२ दूसरे पक्षमैं पंचीकरण कियेतैं अपनै अंश इकीस, औरनके अंश चारि। औ-

दूसरे पक्षकी सुगम रीति यह हैः-एक एक भूतके पचीस पचीस भाग होयँ ॥ इकीस इकीस भाग औ चारि चारि भाग पृथक् भये॥ चारि चारि भागनमैं एक एक भाग इकीस इकीस भागनमैं मिले अपनै इकीस भागकूं छोडिके।

इस रीतिसैं दोप्रकारका पंचीकरण कह्या है ॥

एक एक भूतमैं पांच पांच भूत मिलायके करनैका नाम पंचीकरण है।

जिन भूतनका पंचीकरण किया है तिनकूं पंचीकृत कहै हैं ॥

॥ ३०१ ॥ पंचीकरणकी प्रथमरीतिसैं सर्वभूतनमैं अर्ध अर्ध भाग आप आपका है, औ अर्धभाग जितनै चारि भाग अन्य भूतनके मिले हैं। यातैं अन्य भूतनके चारिभागनसैं आप आपके अर्ध अर्ध भागके तिरोधानके होनैतैं आकाशादिक प्रत्येक भूतका पृथक् पृथक् भान न हुवा चाहिये, औ होवै है। यातैं उक्त पंचीकरणकी रीति अघटित है। ऐसी शंका किसी मुमुक्षुके चित्तमैं होवै तौ निवारणार्थ यह पंचीकरणका दूसरा प्रकार कहै हैं ॥

॥ २५९ ॥ ॥ स्थूलब्रह्मांडादिककी उत्पत्ति ॥

तिन पंचीकृत भूतनतैं

१ इंद्रियनका विषय स्थूल ब्रह्मांड होता भया ।

२ ता ब्रह्मांडके अंतर भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक औ सत्यलोक, ये सात भुवन ऊपरके होते भये ॥ औ--

३ अतल, सुतल, पाताल, वितल, रसातल, तलातल औ महातल ये सात लोक नीचेके होते भये ।

४ तिन चतुर्दश लोकनमैं जीवनके भोगयोग्य अन्नादिक औ भोगका स्थान देवमनुष्यपशुआदि स्थूलशरीर होते भये

यह संक्षेपतैं सृष्टिका निरूपण किया । औ-मायाके कार्यका विस्तारसैं निरूपण कियेतैं कोटिब्रह्माकी उमरतैं बी मायाकृत पदार्थनिरूपणका अंत होवै नहीं । यह वाल्मीकिनै अनेक इतिहासनतैं वासिष्ठमैं निरूपण किया है ।

(यह सवैयाके दो पादनका अर्थ है) ॥

(आत्मविवेक अथवा पंचकोशविवेक ॥ २६०-२७१ ॥)

॥ २६० ॥ पंचकोश औ तिनकरि आत्माका आच्छादन करना ॥

तृतीय पादका अर्थ यह है:--इनहीमैं कहिये माया औ ताके कार्यमैं तीनि शरीर औ पंच कोश हैं ।

१ (१) शुद्धसत्त्वगुणसहित माया ईश्वरका कारणशरीर है । औ--

(२) मलिनसत्त्वगुणसहित अविद्याअंश जीवका कारणशरीर है ।

२ (१) उत्तरशरीरके आरंभक पंच सूक्ष्म भूत, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंच प्राण, पंच कर्म इंद्रिय औ पंच ज्ञान इंद्रिय, यह जीवका सूक्ष्म शरीर है ॥ औ-

२ सर्वजीवनके सूक्ष्मशरीर ही मिलिके ईश्वरका सूक्ष्मशरीर है ॥

३ (१) संपूर्ण स्थूल ब्रह्मांड ईश्वरका स्थूलशरीर है ॥ औ--

(२) जीवनके व्यष्टिस्थूलशरीर प्रसिद्ध हैं ॥

इन तीनि शरीरनमैं ही पंच कोश हैं ॥

१ कारणशरीरकूं आनंदमयकोश कहै हैं ॥

२-४ विज्ञानमय, मनोमय, औ प्राणमय ये तीनि कोश सूक्ष्मशरीरमैं हैं ॥

(१) पंचज्ञानेंद्रिय औ निश्चयरूप अंतःकरणकी वृत्ति बुद्धि विज्ञानमयकोश कहिये है ॥

(२) पंच ज्ञानेंद्रिय औ संकल्पविकल्प अंतःकरणकी वृत्ति मन मनोमय कोश कहिये है ।

(३) पंच प्राण औ पंच कर्मेंद्रिय प्राणमयकोश है ।

५ स्थूलशरीरकूं अन्नमयकोश कहै हैं ।

इस रीतिसैं तीनि शरीरनमैं ही पंचकोश हैं ॥

१ [३०२] ईश्वरके शरीरमैं ईश्वरके कोश हैं । औ-

॥ ३०२ ॥

१ समष्टि अज्ञानरूप माया ईश्वरका कारणशरीर है, सो ईश्वरका आनंदमय कोश है । औ

२-४ जीवनके सूक्ष्मशरीरकी समष्टिरूप हिरण्यगर्भ ईश्वरका सूक्ष्मशरीर है । तामैं (१) विज्ञानमय (२) मनोमय औ (३) प्राणमयरूप ईश्वरके तीनि कोश हैं, तिनमैं-

(१) दिक्पाल, वायु, सूर्य, वरुण अरु अश्विनी-

२ जीवके शरीरनमैं जीवके कोश हैं।
कोश नाम म्यानका है।

म्यानकी न्यांई पंचकोश आत्माके स्वरूपकूं आच्छादित करै हैं, यातैं अन्नमयादिक कोश कहिये हैं ॥

अनेक मंदमति पुरुष पंच कोशनमैं जो अनात्मपदार्थ हैं;तिनमैं किसी एककूं आत्मा मानिके मुख्यसाक्षी आत्मस्वरूपतैं विमुख ही रहे हैं। यातैं अन्नमयादिक आत्मस्वरूपकूं आच्छादित करै हैं। तहां---

॥ २६१ ॥ विरोचनका सिद्धांत ॥
(अन्नमयकोश आत्मा)

कितनै पामर विरोचनमतके अनुसारी स्थूलशरीररूप अन्नमयकोशकूं ही आत्मा कहै हैं। औ यह युक्ति कहै हैं:---

१ जामैं अहंबुद्धि होवै सो आत्मा है । सो अहंबुद्धि स्थूलशरीरमैं होवै है।

(१) 'मैं मनुष्य हूं, मैं ब्राह्मण हूं' ऐसी प्रतीति सर्वकूं होवै है। औ---

(२) मनुष्यपना, ब्राह्मणपना, औ स्थूलशरीरमैं ही हैं।

यातैं स्थूलशरीर ही अहंबुद्धिका विषय होनैतैं आत्मा है ॥

२ किंवा जामैं मुख्यप्रीति होवै सो आत्मा है ॥

(१) स्त्री पुत्र धन पशु आदिक स्थूलशरीरके उपकारक होवैं तौ तिनमैं प्रीति होवै है। औ---

(२) स्थूलशरीरके उपकारक नहीं होवैं तौ प्रीति होवै नहीं ॥

जाके निमित्त अन्यपदार्थनमैं प्रीति होवै ता स्थूलशरीरमैं मुख्यप्रीति है । यातैं स्थूलशरीर ही आत्मा है ॥

स्थूलशरीरका वस्त्र, भूषण, अंजन, मंजन, नानाविधि भोजनसैं शृंगार पोषण ही परमपुरुषार्थ है।

यह असुरस्वामी विरोचनका सिद्धांत है ॥

कुमार, ये पांच ईश्वरकी ज्ञानइंद्रिय औ समष्टिबुद्धिमय महत्तत्त्वरूप वा सर्वबुद्धिनका अभिमानी ब्रह्मारूप ईश्वरकी बुद्धि मिलिके **ईश्वरका विज्ञानमयकोश** है। औ--

(२)उक्त श्रोत्रादिकके अधिष्ठाता देवतारूप पांच ईश्वरके ज्ञानइंद्रिय औ समष्टिमनरूप अहंकारमय वा सर्वके मनका अभिमानी चंद्रमामय ईश्वरका मन मिलिके **ईश्वरका मनोमयकोश** है। औ--

(३)अग्नि, इंद्र, उपेंद्र, प्रजापति अरु मृत्यु (यम) ये पांच ईश्वरके कर्मइंद्रिय औ समष्टिप्राण वा वायुका अभिमानी देवतारूप ईश्वरका प्राण मिलिके **ईश्वरका प्राणमयकोश** है। औ--

(४)समष्टिस्थूलसृष्टिरूप विराट् **ईश्वरका स्थूल शरीर** है सो **ईश्वरका अन्नमयकोश** है।

जैसैं जीवके शरीरमैं जीवके कोश हैं, वे कोशकार नाम कृमि (कीडे)के कंटकरचित गृहरूप कोशकी न्यांई जीवकी दृष्टिसैं ताके निजरूप प्रत्यगात्माके आच्छादक हैं, **तैसैं** ईश्वरके शरीरनमैं जो ईश्वरके कोश हैं, वे ईश्वरकी दृष्टिसैं ताके निजरूप ब्रह्मके आच्छादक नहीं, किंतु जीवकी दृष्टिसैं ब्रह्मके आच्छादक हैं। यातैं जीवकूं व्यष्टिपंचकोशनतैं **जैसैं** प्रत्यगात्माका विवेचन कर्त्तव्य है **तैसैं** समष्टिपंचकोशनतैं ब्रह्मका विवेचन बी जीवकूं ही कर्त्तव्य है। ईश्वरकू आवरणके अभावतैं नित्यमुक्त होनैकारि कछु बी कर्त्तव्य नहीं है ॥

॥ ३०३ ॥ १ "मैं देखूं हूं" "सुनू हूं" इस रीतिसैं इंद्रियनमैं बी अहंबुद्धिके देखनेतैं औ स्थूलदेहतैं इंद्रियनविषे अधिक प्रीतिके देखनेतैं स्थूलदेहविषै अहबुद्धि औ मुख्यप्रीतिके व्यभिचारतैं। औ--

॥ २६२ ॥ इंद्रियआत्मवादीका मत ॥
(इंद्रियआत्मा)

और कोऊ ऐसै कहै हैः-स्थूलशरीर ही आत्मा नहीं। किंतु-

१ स्थूलशरीरमैं जाके होनैतैं जीवनव्यवहार होवै है औ जाके नहीं होनैतैं मरणव्यवहार होवै है सो आत्मा स्थूलशरीरसै भिन्न है। जीवन मरण इंद्रियनके आधीन है। जितनै काल शरीरमैं इंद्रिय होवै उतनै काल जीवन है। औ कोऊ इंद्रिय न होवै तब मरण कहिये है। औ-

२ "मैं देखूं हूं," "मैं सुनूं हूं?" "मैं बोलूं हूं" इस रीतिसैं अहंबुद्धि बी इंद्रियनमैं होवै है।

यातैं इंद्रिय ही आत्मा है। औ--

॥ २६३ ॥ हिरण्यगर्भके उपासकका मत ॥
(प्राण आत्मा)

हिरण्यगर्भके उपासी प्राणकूं आत्मा कहै हैं। तामैं यह युक्ति कहै हैंः--

१ जब मरणसमय मूर्च्छा होवै है तब ताके संबन्धी पुत्रादिक प्राण शेष होवै तौ जीवन जानै हैं औ प्राण शेष न होवै तौ मरण जानै हैं। किंवा शरीरमैं नेत्रइंद्रिय नहीं होवै तौ अंधाशरीर रहै है, श्रोत्रसैं विना बधिर रहै है। वाक् विना मूक रहै है। ऐसैं जो इंद्रिय नहीं होवै ताके व्यापारसैं विना शरीर स्थित ही रहै औ प्राणसैं विना तिसी क्षणमैं श्मशानके समान अमंगल भयंकर होयके गिरै है॥ औ-

३ "मैं देखूं हूं"। "सुनूं हूं" या प्रतीतिसैं बी इंद्रियनतैं भिन्न ही आत्मा सिद्ध होवै है। काहेतें? "नेत्रस्वरूप मैं देखूं हूं। श्रवणस्वरूप मैं सुनूं हूं"। जो ऐसी प्रतीति होवै तौ इन्द्रियरूप आत्मा सिद्ध होवै। किंतु "मैं नेत्रवाला देखूं हूं। श्रोत्रवाला मैं सुनूं हूं"। ऐसी प्रतीति होवै है॥

यातैं इन्द्रियनतैं भिन्न ही आत्मा है। औ--

४ सुषुप्तिमैं सर्वइंद्रियनका अभाव है। तौ बी प्राणके होनैतैं जीवनव्यवहार होवै है। यातैं जीवनमरण बी इन्द्रियके आधीन नहीं। किंतु स्थूलशरीर औ प्राणके वियोगकूं मरण कहै हैं।

यातैं जीवनमरण प्राणके ही आधीन हैं सोई आत्मा है॥

---

२ "मेरा देह है" औ "मुजकूं धिक्कार है" इस रीतिसैं स्थूलदेहकूं उलटा मन, बुद्धि औ द्वेषका विषय होनेतैं।

यह स्थूल देह आत्मा नहीं है।

इस देहात्मवादीके मतका विशेषकरिके खंडन हमनै श्रीपंचदशीके चित्रदीपके ६१ वें श्लोकके टिप्पणविषे लिख्या है।

॥ ३०४ ॥

१ इंद्रियके अभावतैं बधिर-अंध-मूक-पंगुरूप होयके बी शरीर जीवै है, यातैं जीवनमरण इंद्रियनके आधीन नहीं ॥ औ-

२ "मैं क्षुधावान् हूं" "मैं तृषावान् हूं" ऐसैं क्षुधातृषारूप धर्मवाले प्राणविषै बी अहं बुद्धिके होनैतैं। औ-

३ "मेरी चक्षु" "मेरी वाणी" ऐसैं इंद्रियनकूं ममबुद्धिके विषय होनैसैं इंद्रियगत अहंबुद्धिका व्यभिचार है।

यातैं इंद्रिय आत्मा नहीं।

इंद्रियआत्मवादीके मतका विशेष खंडन हमनै श्रीपंचदशीके चित्रदीपके ६९ वें श्लोकके टिप्पणविषै लिख्या है॥

॥ ३०५ ॥ प्राण आत्मा नहीं है यह अर्थ पंचदशीके चित्रदीपके ६७ वें श्लोकके टिप्पणविषै सविस्तर लिख्या है।

॥ २६४॥ मनआत्मवादीका मत ॥

(मन आत्मा)

और कोई ऐसैं कहै हैं:-

१ प्राण जड है, यातैं घटकी न्यांई अनात्मा है। औ-

२ बंधमोक्ष मनके आधीन हैं।

(१) विषयमैं आसक्त जो मन सो बंधनका हेतु है।

(२) विषयवासनारहित मन मोक्षका हेतु है। औ-

३ मनके संबंधतैं ही इंद्रिय ज्ञानके हेतु हैं। मनके संबंध विना इंद्रियतैं ज्ञान होवै नहीं।

यातैं सर्वव्यवहारका हेतु मन है। सोई आत्मा[306] है। औ-

॥ २६५) विज्ञानवादी बौद्धका मत ॥

(बुद्धि आत्मा)

क्षणिकविज्ञानवादी बौद्ध यह कहै हैं:-मनका व्यापार बुद्धिके आधीन है। काहेतें? बुद्धिका ही आकार मन होवै है। यातैं क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धि ही आत्मा है। मन नहीं॥

यह तिनका अभिप्राय है:-

१ संपूर्णपदार्थ विज्ञानके ही आकार हैं।

२ सो विज्ञान प्रकाशरूप है। औ-

३ क्षणक्षणमैं विज्ञानके उत्पत्तिनाश होवै हैं।

पूर्वविज्ञानके समान अन्यविज्ञानकी उत्पत्ति हुयेतैं पूर्वविज्ञानका नाश होवै है। तैसें तृतीयविज्ञानकी उत्पत्ति औ द्वितीयविज्ञानका नाश, चतुर्थकी उत्पत्ति, तृतीयका नाश होवै है। या रीतिसैं नदीके प्रवाहकी न्यांई विज्ञानकी धारा बनी रहै है। सो विज्ञानकी धारा दो प्रकारकी है। १ एक तौ आलयविज्ञानधारा है। औ २ दूसरी प्रवृत्तिविज्ञानधारा है।

१ "अहं अहं" ऐसी विज्ञानधाराकूं **आलयविज्ञानधारा** कहै हैं। ताहीकूं बुद्धि कहै हैं।

२ "यह घट है, यह शरीर है"। ऐसी विज्ञानधाराकूं **प्रवृत्तिविज्ञानधारा** कहै हैं।

आलयविज्ञानधारासैं प्रवृत्तिविज्ञानधाराकी उत्पत्ति होवै है। मनका स्वरूप बी प्रवृत्तिविज्ञानधारामैं है। यातैं आलयविज्ञानधारारूप बुद्धिका कार्य है। सो बुद्धि ही आत्मा है।

आलयविज्ञानधाराविषै प्रवृत्तिविज्ञानधाराका बाधचिंतनतैं निर्विशेषक्षणिकविज्ञानधाराकी स्थिति ही तिनके मतमैं मोक्ष है।

इस रीतिसैं विज्ञानवादी बुद्धिकूं[307] ही क्षणिकरूप औ स्वयंप्रकाशरूप कल्पनाकरिके आत्मा कहै हैं॥ औ-

॥ २६६ ॥ भट्टका मत ॥

(आनंदमयकोश आत्मा)

पूर्वमीमांसाका वार्त्तिककारभट्ट यह कहै हैं:- विद्युत्की न्यांई क्षणिकरूप आत्मा नहीं। किंतु स्थिरस्वरूप आत्मा १ जड़स्वरूप औ २ चेतनरूप है।

यह ताका अभिप्राय है:-

१ सुषुप्तिसैं जागिके पुरुष यह कहै है:-"मैं जड होयके सोवता भया" यातैं आत्मा जडरूप है। औ-

॥ ३०६ ॥ 'मन आत्मा नहीं है' यह अर्थ पंचदशीके चित्रदीपके ६८ वें श्लोकके टिप्पणविषै विस्तारसैं लिख्या है।

॥ ३०७ ॥ क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धि ही आत्मा है। ऐसैं माननैवाले क्षणिकविज्ञानवादीके मतका प्रतिपादन औ खंडन चित्रदीपके ७४ वें श्लोकके टिप्पणविषै हमने विस्तारसैं लिख्या है॥

२ जागेकूं स्मृति होवै है, अज्ञातकी स्मृति होवै नहीं । आत्मस्वरूपसैं भिन्न ज्ञानके सुषुप्तिमैं और साधन नहीं । यातैं स्मृतिका हेतु सुषुप्तिमैं ज्ञान है । सो आत्माका स्वरूप ही है ।

इस रीतिसैं खद्योतकी न्यांई आत्मा प्रकाश औ अप्रकाशरूप है ।

१ ज्ञानरूप है, यातैं प्रकाशरूप है । औ–
२ जड है, यातैं अप्रकाशरूप है ।

सो प्रकाशरूप औ अप्रकाशरूप आनंदमय कोश है । काहेतैं ? सुषुप्तिमैं चेतनके आभाससहित जो अज्ञान, ताकूं आनंदमयकोश कहै हैं । तहां आभास तौ प्रकाशरूप औ अज्ञान अप्रकाशरूप है । यातैं भट्टके मतमैं आँनंदमय कोश ही आत्मा है ॥

॥ २६७ ॥ माध्यमिक बौद्धका मत ॥ (आनंदमयकोश आत्मा)

शून्यवादी बौद्ध यह कहै हैं:–आत्मा निरंश है, यातैं एक आत्माकूं प्रकाशरूप औ अप्रकाशरूप कहना बनै नहीं औ खद्योतका तौ एक अंश प्रकाशरूप है औ दूसरा अंश अप्रकाशरूप है । ताकी न्यांई अंशरहित आत्माविषै उभयरूप कहना असंगत है । यातैं–

१ उभयरूपकी सिद्धिवास्तै आत्मा अंशसहित ही मानना होवैगा ।
२ जो अंशवाले पदार्थ घटादिक हैं सो उत्पत्ति औ नाशवाले होवै हैं । तैसैं आत्मा बी अंशसहित होनैतैं उत्पत्तिनाशवाला ही मानना होवैगा ।
१ जो उत्पत्तिनाशवाला पदार्थ होवै सो उत्पत्तिसैं पूर्व औ नाशतैं अनंतर असत् होवै है । जो आदिअंतमैं असत् होवै सो मध्य बी सत् होवै नहीं । किंतु मध्य बी असत् ही होवै है । यातैं आत्मा असत् रूप है ।
तैसैं आत्मासैं भिन्न बी संपूर्णपदार्थ उत्पत्तिनाशवाले हैं । यातैं असत् रूप हैं ।

इस रीतितैं आत्मा औ अनात्मा समग्रवस्तु असत् रूप होनैतैं शून्य ही परमतत्त्व है । यह शून्यवादी माध्यमिक बौद्धका मत है ॥

सो बी अज्ञानरूप आनंदमयकोशकूं प्रतिपादन करै है । काहेतैं ? अज्ञान तीनि रूपसैं प्रतीत होवै है ।

१ अद्वैतशास्त्रके संस्काररहित जो मूढ तिनकूं तौ जगत्‌रूप परिणामकूं प्राप्त अज्ञान सत्य प्रतीत होवै है । औ
२ अद्वैतशास्त्रके अनुसार युक्तिनिपुण पंडितनकूं सत्‌असत्‌सैं विलक्षण अनिर्वचनीयरूप अज्ञान औ ताका कार्य जगत् प्रतीत होवै है ।
३ ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त जो जीवन्मुक्त विद्वान् तिनकूं कार्यसहित अज्ञान तुच्छरूप प्रतीत होवै है ।

तुच्छ, असत् औ शून्य, ये तीनि शब्द एक ही अर्थकूं कहै हैं ॥

इस रीतिसैं जीवन्मुक्तनकूं तुच्छरूप जो प्रतीत होवै अज्ञान, ताके विषै मोहित शून्यवादी परमपुरुषार्थकूं नहीं जानै हैं । किंतु तुच्छरूप आँनंदमयकोशकूं ही आत्मा कहै हैं । औ

॥ ३०८ ॥ आत्माकूं जड़चेतन उभयरूप माननैहारे भट्टके मतका खंडन चित्रदीपके ९८ वें श्लोकके टिप्पणविषै हमनै लिख्या हैं ।

॥ ३०९ ॥ शून्यवादी माध्यमिकके मतका खंडन चित्रदीपके ७६ वें श्लोकके टिप्पणविषै लिख्या है ॥

॥२६८॥ प्रभाकर औ नैयायिकका मत॥ (आनंदमयकोश आत्मा)

पूर्वमीमांसाका एकदेशी प्रभाकर औ नैयायिक यह कहै हैं:-आत्मा शून्यरूप नहीं। काहेतैं ? जो शून्यरूप आत्मा मानै ताकूं यह पूछै हैं:-१ शून्यरूपका तैंनैं अनुभव किया है २ अथवा नहीं ?

१ जो कहै "शून्यका अनुभव किया है" तौ जानै शून्यका अनुभव किया है।सो आत्मा शून्यसैं विलक्षण सिद्ध होवै है॥

२ जो ऐसें कहैं-"शून्यरूपका अनुभव नहीं किया" तौ शून्य नहीं है। यह सिद्ध हुआ॥

इस रीतिसैं शून्यतैं विलक्षण आत्मा है।

१ ताके विषै मनके संयोगतैं ज्ञान होवै है।

२ या ज्ञानगुणतैं आत्मा चेतन कहिये है। औ

३ स्वरूपसैं आत्मा जड है।

४ तैसैं सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्मआदिक गुण आत्माविषै हैं।

तिनके मतमैं बी आनन्दमय कोश ही आत्मा है। औ----

विज्ञानमयकोशमैं जो बुद्धि है सो आत्माका ज्ञानगुण कहै हैं। काहेतैं ? आनन्दमयकोशमैं चेतन गूढ है। विवेकहीनकूं प्रतीत होवै नहीं औ प्रभाकर तथा नैयायिक आत्माकूं सुषुप्तिमैं ज्ञानहीन मानिके स्वरूपसैं जड कहै हैं। यातैं गूढचेतन आनन्दमयकोशमैं ही तिनकूं आत्मभ्रांति है। औ-

आत्मस्वरूप नित्यज्ञानकूं तौ जीवमैं मानै नहीं, किंतु अनित्यज्ञान मानै है। सो अनित्यज्ञान सिद्धांतमैं अंतःकरणकी वृत्ति बुद्धिरूप है।

यारीतिसैं प्रभाकरनैयायिकमतमैं आनंदमयकोश आत्मा है औ बुद्धि ताका गुण है॥ तिनका मत बी समीचीन नहीं। काहेतैं?--

॥ २६९ ॥ जीवका पंचकोशकी न्यांई ईश्वरके पंचकोशनसैं ताके स्वरूपका अच्छादन ॥

१ ज्ञानसैं भिन्न जो जडवस्तु घटादिक हैं सो अनित्य हैं। तैसैं आत्मा बी ज्ञानस्वरूप नहीं होवै तौ घटादिकनकी न्यांई जड होनैतैं अनित्य होवैगा।

२ जो आत्मा अनित्य होवै तौ मोक्षके अर्थ साधन निष्फल होवैगा।

इस रीतिसैं वेदांतवाक्यनमैं विश्वासहीन अनेकबहिर्मुख पंचकोशनमैं ही किसी पदार्थकूं आत्मा मानै हैं। औ मुख्यआत्मस्वरूप साक्षीकूं नहीं जानै हैं। यातैं अन्नमयादिक आत्माके आच्छादक होनैतैं कोश कहिये हैं॥

जैसैं जीवके पंचकोश जीवके यथार्थस्वरूप साक्षीकूं आच्छादन करै हैं तैसैं ईश्वरके समष्टिपंचकोश ईश्वरके यथार्थस्वरूपकूं आच्छादन करै हैं। काहेतैं ? ईश्वरका यथार्थस्वरूप तौ तत्पदका लक्ष्य है, ताकूं त्यागिके---

१ कोई तौ मायारूप आनंदमयकोशविशिष्ट जो अन्तर्यामी तत्पदका वाच्य ताकूं ही परमतत्त्व कहै हैं॥

२ तैसैं हिरण्यगर्भ, वैश्वानर, विष्णु, ब्रह्मा,

॥ ३१० ॥ नैयायिक औ प्रभाकरके मतका प्रतिपादन चित्रदीपके ८८ सैं ९४ वें श्लोकपर्यंत किया है औ तिनके मतका खंडन चित्रदीपके ९४ वें श्लोकके टिप्पणविषै लिख्या है। इहां "गूढचेतन" या शब्दका गूढ है चेतन जिसविषै ऐसा आनंदमयकोश तामैं यह अर्थ है--

शिव, गणेश, देवी औ सूर्यसैं आदिलेके असि, कुदाल, पीपल, अर्क वंशपर्यंत पदार्थनमैं परमात्मभ्रांति करै है ।

यद्यपि सर्वपदार्थनमैं लक्ष्यभाग परमात्मासैं भिन्न नहीं, तथापि तिसतिस उपाधिसहितकूं जो परमात्मा मानै हैं सो तिनकूं भ्रांति है । या रीतिसैं—

१ पंचकोशनतैं आवृत जो जीवईश्वरका परमार्थस्वरूप, तासैं विमुख होयके देहादिकनमैं आत्मभ्रांतिकरिके पुण्यपापकर्म करै है। औ—

२ अंतर्यामीसैं आदिलेके वंशपर्यंतकूं ईश्वररूप मानिके आराधनकरिके सुख चाहै हैं जैसी उपाधिका आराधन करै हैं, ताके अनुसार ही तिनकूं फल होवै है। काहेतैं ? कारण सूक्ष्मस्थूलप्रपंच सारा ईश्वरके तीनि शरीरनके अंतर्भूत है। तामैं उपासनाके अनुसार फल बी सर्वसैं ही होवै है ।

परंतु ब्रह्मज्ञान विना मोक्ष होवै नहीं । जो मोक्षकी इच्छा होवै तौ विवेकतैं जीवईश्वरके स्वरूपकूं पंचकोशनतैं पृथक् करै ॥

दृष्टांतः—जैसैं मुंज औ इषीका कहिये तूली³¹¹ मिली होवै है तिनकूं तोरिके पृथक् करै हैं, तैसैं विवेकतैं जीवईश्वरके स्वरूपकूं पंचकोशनतैं पृथक् जानै ।

यह सवैयाका अर्थ है ॥ १५७ ॥

॥ २७० ॥ सो पंचकोशविवेकका प्रकार दिखावै हैं:—

॥ सवैया ॥

स्थूलदेहको भान न होवै,
स्वप्नमाहिं लखि आतमज्ञान ।
सूछमज्ञान सुषुप्ति समै नहिं,
सुखस्वरूप है आतम भान ॥
भासै भये समाधि अवस्था,
निरावरनआतम न अज्ञान ।
ऐसै तीनि देह व्यभिचारी,
आतम अनुगत न्यारोजान १५८

टीकाः—

१ स्वप्नअवस्थामाहीं स्थूलदेहका भान होवै नहीं औ आत्माका भान होवै है ।

२ तैसैं सुषुप्तिअवस्थामैं सूक्ष्मशरीरका ज्ञान होवै नहीं औ सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाशरूपतैं भान कहिये प्रतीत होवै है। सुखका ज्ञान सुषुप्तिमैं नहीं होवै तौ " मैं सुखसैं सोवता भया " ऐसी स्मृति जागिके नहीं हुई चाहिये । यातैं सुखका ज्ञान सुषुप्तिमैं होवै है। सो सुख विषयजन्य तौ सुषुप्तिमैं है नहीं, किंतु आत्मस्वरूप ही है । सो आत्मा स्वयंप्रकाश है। यातैं सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकाशरूपतैं सुषुप्तिमैं भासै है । औ—

३ निदिध्यासनके फल निर्विकल्पसमाधिअवस्थामैं निरावरण कहिये अज्ञानकृत आवरणरहित आत्मा भासै है, औ न अज्ञान कहिये कारणशरीरअज्ञान नहीं भासै है ।

१ ऐसैं तीनि देह व्यभिचारी हैं । एक अवस्थाकूं छोडिके दूसरी अवस्थामैं भासैं नहीं ।

२ आत्मा अनुगत है। सर्वअवस्थामैं भासै यातैं व्यापक है ।

या विवेकतैं तीनि शरीरनतैं आत्माकूं न्यारो जान ॥

॥ ३११ ॥ मुंजनामक तृणविशेषके लंबे पर्णोंके मध्यमैं गुप्त होयके स्थित जो तूल (कपास) करि वेष्टित लंबी शलाका सो इषीका औ तूली कहिये है। यह वृक्ष वृंदावनगत मुंजाटवीमैं प्रसिद्ध है ।

१ स्थूलशरीर तौ अन्नमयकोश है। औ-
२ कारणशरीर आनंदमयकोश है औ-
३-५ सूक्ष्मशरीरमैं प्राणमय, मनोमय औ विज्ञानमय, ये तीनि कोश हैं।

यातैं तीनि शरीरके विवेकतैं पंचकोशका ही विवेक होवै है।

जैसैं जीवका स्वरूप पंचकोशनतैं पृथक् है। तैसैं ईश्वरका स्वरूप बी समष्टिपंचकोशनतैं पृथक् है। औ—

चतुर्थतरंगमैं चतुर्विध आकाशके दृष्टांतसैं जीवईश्वरके लक्ष्यस्वरूपका विवेक विस्तारसैं करि आये हैं। औ उत्तरतरंगमैं अस्तिभातिप्रियरूपके निरूपणमैं तथा महावाक्यनके अर्थनिरूपणमैं आत्माका परमार्थस्वरूप प्रतिपादन करैंगे। यातैं इहाँ संक्षेपतैं ही आत्मविवेक कह्या है।

॥ २७१॥ महावाक्यके अर्थका उपदेश।

इस रीतिसैं पंचकोशनतैं आत्माकूं न्यारा जानैसैं बी कृतकृत्य होवै नहीं। किंतु जीव-ब्रह्मके अभेदनिश्चयवास्तै फेरि बी विचार कर्त्तव्य रहै है। यातैं कर्त्तव्यका अभावरूप कृत-कृत्यताकी सिद्धिवास्तै महावाक्यका अर्थ उपदेश करै हैं:-

॥ सवैया ॥

पंचकोसतैं आतम न्यारो,
जानि सु जानहु ब्रह्मस्वरूप।
तातै भिन्न जु दीखै सुनिये,
सो मानहु मिथ्या भ्रमकूप॥
मिथ्या अधिष्ठान न बिगारै,
स्वप्नभीख न दरिद्री भूप।
सब कछु कर्त्ता तऊ अकर्त्ता,
तव अस अद्भुतरूप अनूप १५९

टीकाः--हे शिष्य! पंचकोशतैं आत्माकूं न्यारा जानिके सु कहिये सो आत्मा ब्रह्म-स्वरूप है यह जानौ॥ याके विषै----

॥ २७२ ॥ प्रश्नः—आत्मा पुण्यपाप करै है, सुखदुःख भोगै है, यातैं ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै नहीं॥

ऐसी शंका होवै हैः--आत्मा पुण्यपाप करै है। तातैं स्वर्गनरक औ मृत्युलोकमैं नाना-प्रकारके सुखदुःख भोगै है। ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै नहीं।

(॥गत प्रश्नका उत्तर॥२७३-२०३॥)

॥ २७३ ॥ अकर्त्ता अभोक्ता औ नित्य-मुक्त आत्माका सदा ब्रह्मसैं अभेद॥

ताका समाधानः-" तातैं भिन्न जु दीखै" इत्यादि तीनिपादनतैं कहै हैं:--

ता ब्रह्मरूप आत्मासैं भिन्न जो दीखै है औ सुनिये है शास्त्रसैं स्वर्गनरक पुण्यपाप, सो संपूर्ण मिथ्याभ्रम है ऐसैं मानो। औ--

मिथ्यावस्तु अधिष्ठानकूं बिगारै नहीं। जैसैं
१ स्वप्नकी मिथ्याभीख कहिये भिक्षा मागनैतैं भूप दरिद्री नहीं होवै है। औ--
२ मरुस्थलके मिथ्याजलतैं भूमि गीली होवै नहीं।
३ मिथ्यासर्पतैं रज्जु विषसहित होवै नहीं।

यातैं सबकुछ कर्त्ता कहिये संपूर्णमिथ्या शुभ अशुभ क्रियाका कर्त्ता है। तऊ कहिये तौ बी अकर्त्ता कहिये परमार्थसैं कर्त्ता नहीं। ऐसा तव कहिये तेरा अद्भुतआश्चर्यरूप अनूप कहिये उपमारहित है॥

याका भाव यह है:----

१ ब्रह्मसैं अभिन्न तेरे स्वरूपविषै स्थूल-सूक्ष्मशरीर औ तिनकी शुभअशुभाक्रिया

औ ताका फल जन्ममरण स्वर्गनरक सुखदुःख संपूर्ण अविद्यासैं कल्पित है ।

२ ता कल्पित सामग्रीसें तेरा ब्रह्मभाव बिगरै नहीं । यातैं ज्ञानतैं प्रथम बी आत्मा ब्रह्मस्वरूप ही है ।

३ ताके विषै तीनि कालमैं शरीर औ ताके धर्मनका संबंध नहीं । किंतु आत्मा सदा ही नित्यमुक्त है । ताका ब्रह्मसैं कदै बी भेद नहीं ॥ १५९ ॥

॥ २७४ ॥ जीवन्मुक्तका निश्चय ॥

वेदांतश्रवणका फल ॥

जो ऐसै कहैः—आत्मा सदा ही नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूप होवै तौ श्रवणादिक ज्ञानके साधन निष्फल होवैंगे ।

ताका समाधान ।

॥ इंदव छंद ॥

नाहिं खपुष्पसमान प्रपंच तु,
ईस कहा करता जु कहावै ।
साछ्य नहीं इम साछिस्वरूप न,
दृश्य नहीं दृक काहि जनावै ।
बंधुहु होइ तु मोछ बनै अरु,
होय अज्ञान तु ज्ञान नसावै ॥
जानि यही करतव्य तजे सब,
निश्चल होत हि निश्चल पावै १६०

टीकाः—जीवन्मुक्त विद्वान्‌की दृष्टिमैं अज्ञान औ ताका कार्य तुच्छ है। सो जीवन्मुक्तका निश्चय बतावै हैंः—हे शिष्य !

१ यह प्रपंच खपुष्पसमान कहिये आकाशके फूलकी न्याईं होनेतैं है नहीं, यातैं ताका कर्त्ता ईश्वर बी नहीं है ।

२ साक्षीका विषय अज्ञानादिक साक्ष्य कहिये है । सो साक्ष्य नहीं । यातैं साक्षी बी नहीं ॥

३ तैसैं दृश्यका प्रकाशक दृक् कहिये है औ प्रकाशनै योग्य देहादिक दृश्य कहिये है । सो देहादिक दृश्य है नहीं । यातैं दृक् बी नहीं । यद्यपि केवल कूटस्थचेतनकूं साक्षी औ दृक् कहे हैं ताका निषेध बनै नहीं, तथापि साक्ष्यकी अपेक्षातैं साक्षी नाम, औ दृश्यकी अपेक्षातैं दृक् नाम है । साक्ष्य औ दृश्यका अभाव है, यातैं साक्षी औ दृक् नामका निषेध करै हैं; स्वरूपका नहीं ॥ औ—

४ बंध होवै तौ बंधकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवै । बंध नहीं, यातैं मोक्ष बी नहीं ॥ औ—

५ अज्ञान होवै तौ ताका ज्ञानसैं नाश होवै । अज्ञान है नहीं, यातैं ताका नाशक ज्ञान बी नहीं ॥

यह जानिके कर्तव्य तजै कहिये "मेरेकूं यह करनै योग्य है" या बुद्धिकूं त्यागै । काहेतैं ?

१ यह लोक तथा परलोक तौ तुच्छ हैं । तिनके निमित्त कछु कर्त्तव्य नहीं ॥

२ आत्मामैं बंध नहीं, यातैं मोक्षके निमित्त बी कर्त्तव्य नहीं ॥

या रीतिसैं आत्माकूं नित्यमुक्त ब्रह्मरूप जानिके जब निश्चल होवै, सब कर्त्तव्य त्यागै, तब निश्चल कहिये अक्रियब्रह्मस्वरूप विदेहमोक्षकूं प्राप्त होवै ॥

याका अभिप्राय यह हैः—

यद्यपि आत्मा ज्ञानसैं प्रथम बी नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूप ही है । परंतु ज्ञानसैं पूर्व आत्माकूं कर्त्ताभोक्ता मिथ्या मानिके सुखप्राप्ति औ दुःखकी निवृत्तिवास्तै अनेक साधन करै हैं । तासैं क्लेशकूं ही प्राप्त होवै हैं ।

जब उत्तम आचार्य मिलै तौ वेदांतवाक्यनका

उपदेश करै है ॥ तिन वेदांतवाक्यनके श्रवणतैं ऐसा ज्ञान होवै हैः–"मैं कर्त्ता भोक्ता नहीं, किंतु मैं ब्रह्मस्वरूप हूं; यातैं मेरेकूं किंचित् बी कर्त्तव्य नहीं" ऐसा जानना ही श्रवणादिकनका फल है। औ ब्रह्मकी प्राप्ति वेदांतश्रवणका फल नहीं। काहेतैं ? ब्रह्म अपना स्वरूप है। यातैं नित्यप्राप्त है ॥ १६० ॥

॥ २७५ ॥ ज्ञानी औ अज्ञानीका चिह्न (अकर्त्तव्य औ कर्त्तव्य)

॥ दोहा ॥

यही चिह्न अज्ञानको,
जो मानै कर्त्तव्य।
सोई ज्ञानी सुघरनर,
नहिं जाकूं भवितव्य ॥ १६१ ॥

टीकाः–जो कर्त्तव्य मानै सो अज्ञानका चिह्न है औ जाकूं भवितव्य नहीं कहिये अन्यरूप हुआ नहीं चाहै है सो नर ज्ञानी कहिये है ॥ १६१ ॥

॥ २७६ ॥ गोप्यतत्त्वका उपदेश।

॥ इंदव छंद ॥

एक अखंडित ब्रह्म असंग,
अजन्म अदृस्य अरूप अनामैं।
मूलअज्ञान न सूछम थूल,
समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामैं॥
ईस न सूत्र विराट न प्राज्ञ न,
तैजस विस्वस्वरूप न जामैं।
भोग न जोग न बंध न मोछ,
नहीं कछु वामैं रु है सब वामैं १६२
जाग्रतमैं जु प्रपंच प्रभासत,
सो सब बुद्धिविलासं बन्यो है।
ज्यूं सुपनेमहिं भोग्य न भोग,
तऊं इक चित्र विचित्र जन्यो है॥
लीन सुषूपतिमैं मति होत हि,
भेद भगे इकरूप सुन्यो है।
बुद्धि रच्यो जु मनोरथमात्र सु,
निश्चल[312]बुद्धिप्रकास भन्यो है१६३

॥ सवैयाछंद ॥

जाके हिये ज्ञान उजियारो,
तम अँधियारो खरो विनास।
सदा असंग एकरस आतम,
ब्रह्मरूप सो स्वयंप्रकास॥
ना कछु भयो न है नहिं ह्वै है,
जगत मनोरथ मात्र विलास।
ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चाहत,
ज्यूं ज्ञानीके कोउ न आस॥१६४॥
देखै [313]सुनै न सुनै न देखै,
सब रस गहै रु लेत न स्वाद।

॥ ३१२ ॥ निश्चल कहिये ब्रह्म, सो बुद्धिको प्रकाशक सिद्धांतमैं कह्यो है। यातैं क्षणिकविज्ञानवादीके मतमैं अतिव्याप्ति नहीं। काहेतैं ? तिसके मतमैं बुद्धिसैं भिन्न पदार्थ (प्रकाशक) के अभावतैं।

॥ ३१३ ॥ इहां जिन गीताके पंचम अध्यायगत ७ सैं ९ पर्यंत श्लोकनका अभिप्राय लेके ग्रन्थकर्त्तानै यह सवैयेका युगल लिख्या है तिन तीन श्लोकनकूं मुमुक्षुनकी बुद्धिमैं सम्यक्बोध (अविपरीतबोध) वास्ते अर्थ सहित लिखे हैं:–

॥ श्लोकः ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

अस्यार्थः—

१ जो कर्मरूप **योगकरि** वा ब्रह्मनिष्ठारूप संन्यासयोगकारि **युक्त** है औ ताहीतैं **शुद्ध** (रागद्वेषादिरहित) है **आत्मा** (मन) जिस का। औ—

२ ताहीते **जीते** (विषयकी ग्रहणतातैं विमुखताकूं प्राप्त किये) हैं दोनूं प्रकारके **इंद्रिय जिसनै** ।

३ याहीतैं जीत्या है आत्मा **बाह्यवासनारूप स्वभाव** जिसनै ।

४ ताहीतैं ब्रह्मासैं आदिलेके स्तंबपर्यंत **सर्वभूतनका आत्मभूत (स्वरूपभूत) भया है** प्रत्यकूरूप **आत्मा जिसका** ।

ऐसा सर्वात्मभावकूं प्राप्त भया जो ब्रह्मवित्तम है सो शरीरकी यात्रा (निर्वाह) अर्थ कछुक विधिपूर्वक वा अविधिपूर्वक कर्मकूं करता हुआ बी तिस पुण्य वा अपुण्यरूप **कर्मकरि लेपकूं पावता नहीं** कहिये कर्म विषै अकर्मताकी दृष्टिकारि संबंधकूं पावता नहीं ॥७॥

अब योगयुक्तताआदिक विद्वानूके पांचलक्षणकारि विशिष्ट औ आहारआदिकविषै प्रवृत्त भये ब्रह्मवेत्ताकूं दर्शनआदिक इंद्रियनके व्यापारनविषै "मैं कर्त्ता नहीं" ऐसी बुद्धिकरिके स्थित होना योग्य है । ऐसैं दो श्लोककरिके कहै हैं:—

॥ श्लोकौ ॥

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन् ॥ ८ ॥
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्त्तंत इति धारयन् ॥ ९ ॥

अनयोरर्थः—आत्माके स्वभावकूं जाननैवाला जो **तत्त्ववित्** (ब्रह्मवित्) सो अपनी कूटस्थता असंगता औ अन्तरबाहिरपूर्णताके दर्शनरूप प्रज्ञाकारि **युक्त हुया, आप बाहिर देखता हुया सुनता हुया, स्पर्श करता हुया, सूंघता हुया, खाता हुया, चलता हुया, निद्राकूं करता हुया, उच्छ्वास अरु निःश्वासकूं करता हुया, बोलता हुया मलत्यागकूं करता हुया, लेनदेन करता हुया औ निमेष अरु उन्मेषकूं करता हुया** बी "शब्दादिविषयरूप **इंद्रियनके अर्थनविषै इंद्रिय ही वर्त्तते हैं** । मैं द्रष्टा, श्रोता, स्प्रष्टा, घ्राता (सूंघनैवाला), भोक्ता औ गंता नहीं हूं ।" **इस प्रकारके लक्षणवाली ही वृत्तिकूं सर्वदा धारता हुया** "तिनतिन कर्मनकूं इंद्रिय ही करै हैं। मैं तौ अविक्रिय होनैतैं **कछु बी नहीं करता हूं** । किंतु तिसतिस क्रियाका साक्षी होनैकारि निष्क्रियरूपसैं तूष्णीं ही स्थित हूं" । ऐसैं **मानै** कहिये आपकूं तिसतिस क्रियांविषै निष्क्रिय ही देखै ॥

अर्थ यह जो देहइंद्रियनके व्यापारनविषै "मैं औ मेरा" इस भावनाकूं त्यागिके विद्वानूनै तूष्णीं स्थित होना योग्य है । (यह दोनूं श्लोकनका इकट्ठा अर्थ है) ८॥९

इहां यह रहस्य है:—जातैं ज्ञानीकूं "मैं असग औ निर्विकार (अक्रिय) ब्रह्मचेतन हूं" यह निश्चय है। यातैं ज्ञानी वास्तवतैं कछु बी क्रिया करता नहीं। औ प्रारब्धके बलसैं ज्ञानीके देहइंद्रियआदिककारि दर्शनादि व्यापाररूप क्रिया होवै है, सो प्रारब्धके फलका भोग है । परंतु तिस भोगविषै जो दृढ आसक्तिरूप राग होवै है ।

१ सो राग **इंद्रियनका किया नहीं** होवै है । काहेतैं ? इंद्रियनकूं दर्शनादिक्रियामात्रकारि कृतार्थ होनैतैं । औ—

२ सो राग **आत्माका किया बी नहीं** होवै है। काहेतैं ? आत्माकूं सदा सर्वका साधारण निर्विकार प्रकाशक होनैतैं ।

३ **परिशेषतैं** विषयनके गुणदोषके विचारके कारण मनकूं ही अनुकूलताके ज्ञानसैं राग होवै है ।

४ सो राग ज्ञानीके **अन्तःकरणमैं होवै नहीं** । काहेतैं ? ज्ञानीके अन्तःकरणकूं शांत (अन्तर्मुख) होनैतैं यह वार्ता "राग अबोधका लिंग है" इत्यादिरूप शास्त्रके वाक्यविषै स्पष्ट है ।

यद्यपि सर्वथा रागके अभाव हुये भोजनादिरूप शरीरयात्राके हेतु व्यापारविषै बी प्रवृत्तिके अभावतैं

ज्ञानीकूं प्रारब्धका भोग बी नहीं होवैगा औ ईश्वर-संकल्पके विषय प्रारब्धके भोगका अभाव ज्ञानीकूं बी संभवै नहीं ।

१ तथापि प्रारब्धफलके भोगविषै विचारसैं निवृत्त नहीं होने योग्य ऐसा रोगादिककी न्यांई प्रारब्ध-जनित अदृढ (अहंकार औ चिदात्माके भ्रमज-तादात्म्यके अभावतैं आभासरूप) राग ज्ञानीकूं बी होवै है। परंतु सो अदृढराग **स्वाधीन होनैतैं** औ दग्धबीजकी न्यांई **निर्बल होनैतैं** देहनिर्वाहके हेतु शास्त्रविहितभोगका हेतु है। व्यसनके उत्पादक शास्त्र-निषिद्धभोगका हेतु नहीं।

२ किंवाः—ज्ञानीकूं विषयनविषै सत्यताकी भ्रांतिके अभावतैं औ मिथ्यापनैकी बुद्धिसैं जन्य **दृढ-वैराग्यके सद्भावतैं** बी दृढराग होवै नहीं। यह अर्थ आगे षष्ठतरंगविषै ग्रन्थकारनै ही निरूपण किया है।

३ किंवाः—दोरपर खेल करनैवाले नटके अग्र-देशमैं संलग्नचित्तकी न्यांई। किंवा परस्पर वार्त्तालाप करनैवाली पनियारिके बीडामैं संलग्नचित्तकी न्यांई ज्ञानीके अन्तःकरणकूं **आपातकारि विषयनविषै प्रवृत्त होनैतैं** औ **विशेष (मुख्यता) करि स्वरूप विषै संलग्न (अन्तर्मुख) होनैतैं** औ ताके जड़ (चिदाभासरहित) देह अरु इंद्रियनकूं रागसैं विना ही प्रारब्धके फलभूत दर्शनादिक्रियाकरि **कृतार्थ होनैतैं** बी निष्ठायुक्त साभासअन्तःकरणरूप ज्ञानीकूं विषयभोगविषै दृढराग संभवै नहीं।

४ यद्यपि किसी प्रवृत्तिके हेतु प्रारब्धवाले ज्ञानीका मनरूप हस्ती विषयनविषै किंचित् विक्षिप्त (प्रमादकूं प्राप्त) होवै है। **तथापि विवेक** (दोषदृष्टि औ मिथ्यात्वबुद्धि) **रूप केसरी** (सिंह) **के जागरणतैं** सो मनरूप हस्ती झटिति प्रमादरूप विक्षेपकूं छोडिके शांत होवै है।

जातैं ज्ञानीके चित्तविषै दृढ राग नहीं। यातैं—

१ भोगके हेतु प्रारब्धके होते सो काकाक्षीकी न्यांई औ गंगाभग्नार्धकायकी न्यांई **मुख्यताकरि** स्वरूपसुखमैं रमता है। औ-

२ अ॰मुख्यताकरि विष्टिगृहीतकी न्यांई क्लेशकूं पावताहुया तीव्रप्रारब्धके फलकूं भोगता है। औ—

शिथिलप्रारब्धके फलरूप निषिद्धविषयकूं प्रयत्नसैं त्यागता है। तौ बी तिस भोग किंवा त्यागविषै विकळ (पागल) पुरुषके चित्तकी न्यांई ज्ञानीके चित्तकी अमुख्यताके अभिप्रायतैं औ ताके जड़इंद्रियकरि ही भोग औ त्यागके करनैके अभिप्रायसैं ऊपर कहे गीताके श्लोकमैं "इंद्रियनके अर्थनविषै इंद्रिय वर्त्तते हैं" ऐसैं कहा ॥ औ—

याके १६६ वें सवैयेमैं बी "त्यागहु विषय कि भोगहु इंद्रिय" इस वचनकरि निषिद्ध किंवा दृष्टदोष। विषयनके त्यक्ता औ अदृढरागतैं प्राप्त विहितविषयनके भोक्ता इंद्रियनकूं कहा है। अन्तःकरणकूं नहीं। औ—

याके १६९ वें सवैयेके चतुर्थपादविषै "भोगै युवति सदा संन्यासी" ऐसैं कहैं है। ताका यह अभिप्राय है किः—

त्यागी ज्ञानीकूं तौ स्त्रीभोग प्राप्त बी नहीं तौ ताकूं स्त्रीभोगके होते संन्यासके निरूपणरूप निषेध-का संभव बी कहांसैं होवैगा? औ जो त्यागी होयके स्त्रीभोगविषै प्रवृत्त होवै तौ सो वांताशी (वमनभक्षक) पुरुष त्यागी नहीं। किन्तु त्यागीके वेषके धारनैवाले नटकी न्यांई दंभी होनैतैं गृहस्थतैं बी अधम है। पूजाका पात्र नहीं।

२ यातैं परिशेषतैं गृहस्थज्ञानीविषै स्त्रीभोग प्राप्त है। सो गृहस्थज्ञानी बी घृतभक्षणके अभ्यासीकूं तैलभक्षणकी न्यांई शास्त्ररीतिसैं संततिके निमित्त ऋतुआदिकालमैं परिणीत स्त्रीका संग करता है, विषया-सक्तिसैं नहीं। जो विषयविषै आसक्तिवान् वेदांत-वार्तानिपुणगृहस्थ होवै तौ सो दृढरागरूप अज्ञान-के चिह्नकरि युक्त होनैतैं ज्ञानी नहीं, किन्तु अज्ञानी है।

इहां स्त्रीरूप विषयका जो विचार है सो अन्य सर्वविषयनके विचारका बी उपलक्षण है। औ रागकी दृढताका अभाव जो कहा है सो द्वेषआदिककी दृढताके अभावका बी उपलक्षण है।

सूंघि परसि परसै न न सूंघै,
बैन न बोलै करै विवाद ॥
ग्रहि न ग्रहै मल तजै न त्यागै,
चलै नहीं अरु धावत पाद ।
भोगै युवति सदा संन्यासी,
सिष लखि यह अद्भुतसंवाद १६५

याका अभिप्राय कहै हैं:–

निजविषयनमैं इंद्रिय वर्तें,
तिनतैं मेरो नाहीं संग ।
मैं इंद्रिय नहिं मम इंद्रिय नहिं,
मैं साछी कूटस्थ असंग ॥
त्याग हु विषय कि भोग हु इंद्रिय,
मोकूं लगै न रंचक रंग ।
यह निश्चय ज्ञानीको जातैं,
कर्त्ता दीखै करै न अंग ॥१६६॥

हे अंग ! प्रिय ! ॥ अन्य अर्थ स्पष्ट॥१६६

(लयचिंतन ॥२७७-२८० ॥)

॥ २७७ ॥ सर्वप्रपंचकी ईश्वररूपता ॥

इस रीतिसैं आचार्यनैं शिष्यकूं गोप्यतत्त्वका उपदेश किया तौ वी शिष्यका मुख अत्यन्त प्रसन्न नहीं देखिके यह जान्याः––शिष्य कृतार्थ नहीं हुवा । जो कृतार्थ हांता तौ याका [314]मुख प्रसन्न होता । यातैं फेरि स्थूलरीतिसैं उपदेश करनैंकूं––

[315]लैयचिंतन कहै हैं:–

॥ सवैया छंद ॥

माटीको कारज घट जैसैं,
माटी ताके बाहरि मांहि ।
जलतैं फैन तरंग बुदबुदा,
उपजत जलतैं जुदे सु नाहिं ॥
ऐसैं जो जाको है कारज,
कारनरूप पिछानहु ताहि ।
कारन ईस सकलको "सो मैं",
लयचिंतन जानहु विध याहि १६७

टीकाः–जैसैं माटीके कारजके बाहिर भीतरी माटी है । यातैं माटीका सर्वकार्य माटी स्वरूप ही है । फैनआदिक जलके कार्य जल-रूप हैं । ऐसैं जो जाका कार्य है सो ता कारणस्वरूपसैं भिन्न नहीं । किंतु कार्य कारण-स्वरूप ही है । औ––

सकल प्रपंचका मूलकारण ईश्वर है, यातैं सर्वकार्यप्रपंच ईश्वरस्वरूपसैं भिन्न नहीं । किंतु सर्वप्रपंचका स्वरूप ईश्वर ही है ।

"सो ईश्वर मैं हूं" या रीतिसैं लयचिंतन जानिके तूं कर ॥

॥ ३१४ ॥ वांछितपदार्थकी प्राप्तिसैं चित्तकी चंचलताके हेतु इच्छारूप वृत्तिके नाशरूप निमित्ततैं स्थिरदर्पणकी न्यांई अन्तर्मुख उदय भई सात्त्विकी वृत्ति विषै स्वरूपभूत आनंदका प्रतिबिंब होवै है । ता आनंदकूं अनुभवकरिके मुखकी प्रसन्नता होवै है ।

शिष्यकूं ज्ञानद्वारा वांछित जो कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष सो सिद्ध भया नहीं । यातैं इच्छाकी निवृत्ति भई नहीं । तातैं अन्तर्मुखवृत्तिके अनुदयतैं स्वरूपानंदके प्रतिबिंब-का अभाव है । याहीतैं तिस प्रतिबिंबगोचर अनुभवके अभावतैं मुखकी प्रसन्नता नहीं भई । तिस मुखकी अप्रसन्नतारूप लिंगतैं इष्ट वस्तुकी अप्राप्ति-रूप अकृतार्थताकी अनुमिति होवै है ॥

॥ ३१५ ॥ कार्यकूं कारणरूप जानिके जो चिंतन सो **लयचिंतन** कहिये है ॥

॥ २७८॥ सारी सूक्ष्मसृष्टिकी अपंचीकृत भूतरूपता ॥

लयचिंतनका संक्षेपतैं यह क्रम हैः--

१ स्थूलब्रह्मांड सारा पंचीकृतभूतनका कार्य है। तहां जो पृथ्वीका कार्य सो पृथ्वीस्वरूप औ जलका कार्य जलस्वरूप या रीतिसैं जा भूतनका जो कार्य सो ताका ही स्वरूप है। इस रीतिसैं सारा स्थूलब्रह्मांड पंचीकृतभूतस्वरूप है।

२ तैसैं पंचीकृतभूत बी अपंचीकृतभूतनके कार्य हैं। यातैं अपंचीकृतस्वरूप ही पंचीकृत हैं, भिन्न नहीं। औ-

३ अंतःकरणआदिक सूक्ष्मसृष्टि बी अपंचीकृतभूतनका कार्य होनैतैंअपंचीकृतभूतस्वरूप है। तामैं--

(१ २) अंतःकरण सारे भूतनके सत्त्वगुणके कार्य हैं । यातैं सत्त्वगुणस्वरूप हैं। औ-

(३-७) भूतनके रजोगुणअंशके कार्य प्राण रजोगुणस्वरूप हैं ॥

(८-९) गुदाइंद्रिय पृथ्वीके रजोगुणअंशका कार्य सो पृथ्वीका रजोगुणस्वरूप है । घ्राणइंद्रिय पृथ्वीके सत्त्वगुणका कार्य सो सत्त्वगुणस्वरूप है।

(१०-११) ऐसै रसना औ उपस्थ जलके सत्त्वगुणरजोगुणस्वरूप ।

(१२-१३)नेत्र औ पाद तेजके सत्त्वगुणरजोगुणस्वरूप ।

(१४-१५) त्वक् औ पाणि वायुके सत्त्वगुणरजोगुणस्वरूप ।

(१६-१७)श्रोत्र औ वाक् आकाशके सत्त्वगुणरजोगुणस्वरूप।

या रीतिसैं सारी सूक्ष्मसृष्टि अपंचीकृतभूतस्वरूप है।

॥ २७९ ॥ सर्वअनात्मपदार्थनका क्रमसैं ब्रह्मविषै लयचिंतन ॥

यह चिंतनकरिके अपंचीकृतभूतनका बी लयचिंतन करै।

१ पृथ्वी जलका कार्य है । यातैं जलस्वरूप है ॥

२ तेजका कार्य जल तेजस्वरूप है ॥

३ तेज वायुका कार्य होनैतैं वायुस्वरूप है।

४ आकाशका कार्य वायु आकाशस्वरूप है ॥

५ तमोगुणप्रधान प्रकृतिका कार्य आकाश प्रकृतिस्वरूप है। औ-

६ मायाकी अवस्थाविशेष ही प्रकृति है। यातैं प्रकृति मायास्वरूप है ॥

एकवस्तुके (१) प्रधान । (२) प्रकृति (३) माया। (४) अविद्या। (५) अज्ञान (६) शक्ति ये नाम हैं ॥

(१) सर्वकार्यकूं अपनैमैं लीनकरिके प्रलयमैं स्थित उदासीनस्वरूपकूं प्रधान कहै हैं।

(२) सृष्टिके उपादानयोग्य तमोगुणप्रधान स्वरूपकूं [३१६]प्रकृति कहै हैं ॥

(३) जैसैं देशकालादिक सामग्री विना दुर्घट पदार्थकी इंद्रजालसैं उत्पत्ति होवै है।

॥ ३१६ ॥ १ जिससैं प्रकर्षकारि सर्वजगत् करिये है ऐसी जो सृष्टिका उपादानकारण सो प्रकृति है ॥

२ किंवा "प्र" जो सत्त्वगुण औ "कृ" जो रजोगुण तिनकारि सहित "ति" जो तमोगुण सो तमोगुणप्रधानस्वरूप प्रकृति है।

तहां इंद्रजालकूं माया कहै हैं । तैसैं असंगअद्वितीयब्रह्ममैं इच्छादिक दुर्घट हैं तिनकूं करै है, यातैं माया कहै हैं ॥

(४) स्वरूपकूं आच्छादन करै है, यातैं अज्ञान कहै हैं ॥

(५) ब्रह्मविद्यातैं नाश होवै है, यातैं अविद्या कहै हैं । औ--

(६) स्वतंत्र कदै बी रहै नहीं, किंतु चेतनके आश्रित ही रहै है । यातैं शक्ति बी कहै हैं ॥

इस रीतिसैं प्रकृतिआदिक प्रधानके ही भेद हैं । यातैं प्रधानरूप हैं ॥

७ सो प्रधान ब्रह्मचेतनकी शक्ति है ॥ जैसैं पुरुषमैं सामर्थ्यरूप शक्ति पुरुषसैं भिन्न नहीं । तैसैं चेतनमैं प्रधानरूप शक्ति ब्रह्मचेतनसैं भिन्न[३१७] नहीं ।

या प्रकारतैं सर्वअनात्मपदार्थनका ब्रह्मविषै लयचिंतनकरिकै "सो अद्वयब्रह्म मैं हूं" यह चिंतन करै ।

॥२८०॥ ध्यान औ ज्ञानका भेद । अहंग्रहध्यान ॥

जाकूं महावाक्यविचार कियेतैं बी बुद्धिकी मंदता[३१८]दिक किसी प्रतिबंधकतैं अपरोक्षज्ञान होवै नहीं ताकूं यह लयचिंतनरूप ध्यान कह्या है ॥

ध्यान औ ज्ञानका इतना भेद हैः-

१ ज्ञान[३१९] तौ प्रमाण औ प्रमेयके आधीन है ।

॥ ३१७ ॥ यद्यपि ब्रह्मकी शक्ति ब्रह्मसैं भिन्न कहैं तौ अद्वैतश्रुतिसैं विरुद्ध होवैगा । औ अभिन्न कहैं तौ ताकूं ब्रह्मरूप होनैतैं ब्रह्मसैं भिन्नताका शक्ति नामसैं कथन व्यर्थ होवैगा । यातैं शक्तिकों ब्रह्मसैं भेदअभेद दोनूं कहनै होवैंगे । औ भेदअभेद दोनूं धर्म तमप्रकाशकी न्यांई एकआश्रयविषै रहैं नहीं । परंतु शक्तिका ब्रह्मके साथि रज्जुसैं सर्पके संबंधकी न्यांई कल्पितभेद औ वास्तवअभेदरूप अनिर्वचनीय-तादात्म्यसंबंध है । तातैं शक्तिका अपनै शक्ति-(आश्रय) सैं वास्तवभेदके अभावतैं औ कोई प्रमाण करि भिन्नप्रतीतिके अभावकरि सो शक्ति ब्रह्मसैं भिन्न नहीं । किंतु जैसैं कल्पितसर्प परमार्थसैं रज्जु-रूप है । तैसैं शक्ति परमार्थसैं ब्रह्मरूप ही है ॥

॥ ३१८ ॥ इहां आदिशब्दकरिकै

१ बुद्धिमंदताके सहवर्ति विषयाशक्ति कुतर्क औ विपर्ययदुराग्रहरूप त्रिविधवर्त्तमानप्रति-बंधका ग्रहण करना ॥ औ-

२ धनपुत्रादिरूप प्रियवस्तुके नाश भये पीछे बी तिनके अनुसंधान (अविस्मरण) रूप भूत-प्रतिबंधका ग्रहण करना ॥ औ-

३ ब्रह्मलोकादिककी इच्छा किंवा जन्मांतरके हेतु शेषप्रारब्धरूप भविष्य (आगामी) प्रतिबंधका ग्रहण करना ॥

इन ज्ञानकी उत्पत्तिके प्रतिबंधका निरूपण **पंचदशी** के ध्यानदीपनाम नवमप्रकरणके ३८ सैं ९३ वें श्लोकपर्यंत तथा वेदांतपदार्थमंजूषाविषै किया है । जाकूं जिज्ञासा होवै सो तहां देखै ॥

॥ ३१९ ॥ इहां यह रहस्य हैः-१ भ्रांतिज्ञान । २ स्मृतिज्ञान औ ३ प्रमाज्ञान । इस भेदतैं ज्ञान तीन भांतिका है । तिनमैं-

१ **भ्रांतिज्ञान** केवल वस्तु (भ्रमरूपविषय) के आधीन है । औ-

२ **स्मृतिज्ञान** तौ अपनै विषयके सदृश वा तत्संबंधवस्तुके ज्ञानकरिकै वा अपनै विषय (पूर्वदृष्टवस्तु) के चिन्तनकरिकै उदय भये पूर्वदृष्टवस्तुके मनोमयआकारके आधीन है । औ

३ **प्रमाज्ञान**के अंतर्गत जो सुखादिकका ज्ञान सो न्यायमतमैं औ वाचस्पतिमिश्रके मतमैं तौ मनरूप प्रमाण औ सुखादिरूप प्रमेयके आधीन है ।

परंतु सिद्धांतमैं मनविषै प्रमाणताके अनंगीकारतैं सुखादिकका ज्ञान केवलप्रमेय (सुखादिरूप वस्तु)के

[३२०] विधि औ पुरुषकी इच्छाके आधीन नहीं। औ-

२ ध्यान विधिके तथा पुरुषकी इच्छा औ विश्वास तथा हठके आधीन है।

१ जैसैं प्रत्यक्षज्ञानमैं प्रमाणनेत्र औ प्रमेयघटादिक है। तहां नेत्रका औ घटका संबंध हुयेतैं पुरुषकी इच्छा विना बी घटका प्रत्यक्षज्ञान होवै है। भाद्रपदशुद्धचतुर्थीके दिन चंद्रदर्शनका निषेध है; विधि नहीं, औ पुरुषकूं यह इच्छा होवै है:-"मेरेकूं आज चंद्रदर्शन नहीं होवै" तौ बी किसी रीतिसैं नेत्रप्रमाणका जो प्रमेयचंद्रसैं संबंध होय जावै तौ चंद्रका प्रत्यक्षज्ञान अवश्य ही होवै है ॥ इस रीतिसैं प्रमाणप्रमेयके आधीन ज्ञान है। विधि औ इच्छाके आधीन नहीं ॥ औ---

२ "शालग्राम विष्णुरूप है" यह ध्यान करै ताकूं उत्तमफल प्राप्त होवै है। तहां शास्त्रप्रमाणसैं विष्णुकूं तौ चतुर्भुजमूर्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मीसहित जानै है। औ-नेत्रप्रमाणतैं शालग्रामकूं शिला जानै है। तथापि विधिविश्वासइच्छातैं "शालग्राम विष्णु है" यह ध्यान होवै है। परंतु सो ध्यान नानाप्रकारका है---

(१) कहूं तौ अन्यवस्तुका अन्यरूपसैं ध्यान। जैसैं शालग्रामका विष्णुरूपसैं ध्यान, याकूं [३२१] प्रतीकध्यान कहै हैं। औ०--

---

आधीन है औ अन्य जे प्रमाज्ञान हैं वे इंद्रिय-अनुमानादिरूप प्रमाणका जो प्रमेयरूप वस्तुके साथि संबंध होवै है, तिसके आधीन होवै है। तिनमैं--

१ शब्दप्रमाणसैं जन्य ब्रह्मज्ञानरूप जो शाब्दी प्रमा है सो महावाक्यरूप शब्दप्रमाणका, औ प्रत्यक्‌अभिन्नब्रह्मरूप प्रमेयका लक्षणवृत्तिरूप जो परंपरासंबंध है, ताकें ज्ञानके आधीन है। औ-

२ अन्यलौकिक पदार्थनका शाब्दीप्रमारूप जो ज्ञान है, सो-

(१) कहूं शक्तिवृत्तिरूप संबंधके ज्ञानक आधीन है।

(१) कहूं लक्षणावृत्तिरूप संबंधके ज्ञानके आधीन है ॥

इस रीतिसैं

(१) कोई ज्ञान ज्ञेयरूप वस्तुमात्रके आधीन है। औ-

(२) कोई ज्ञान प्रमाण औ प्रमेयरूप वस्तुके संबंधके वा तत्संबंधके ज्ञानके आधीन है।

भ्रमप्रमा साधारणज्ञानके विषयकूं ज्ञेय कहै है। तामैं प्रमेयपना नहीं है। औ-

केवलप्रमाज्ञानके विषयकूं प्रमेय कहै हैं, तामैं ज्ञेयपना बी है।

इस प्रकारका सर्वज्ञान वस्तुके आधीन हैं॥

१ इहां "वस्तु" शब्दकारिके ईश्वररचित वा मनोमय (परोक्षज्ञानके विषय) वा भ्रमरूप वस्तुके साथि प्रमाणद्वारा वा साक्षात् वृत्तिके संबंधका ग्रहण है। यातैं ज्ञान विधिआदिकके आधीन नहीं। औ—

२ ध्यान जो उपासना सो वस्तुके आधीन नहीं, किंतु कर्त्ताके आधीन है।

यद्यपि ध्यान बी मनकी वृत्तिरूप है, तथापि सो पुरुषकरि किये इच्छाआदिकके आधीन है, वस्तुके आधीन नहीं। यातैं सो मानसज्ञान नहीं। किंतु मानसक्रिया है॥

॥ ३२० ॥ तहां विधि औ पुरुषकी इच्छा, विश्वास औ हठका उपलक्षण (सूचक) है ॥ जिस प्रकारसैं विधिआदिक चारिके आधीन ज्ञान नहीं। सो प्रकार पंचदशीगत ध्यानदीपके ७४ वें श्लोकके टिप्पणविषै हमनै लिख्या है। यातैं इहां लिख्या नहीं।

॥ ३२१ ॥ जाकी वृत्ति शास्त्रद्वारा परोक्षध्येयविषै स्थित होवै नहीं, सो पुरुष। पुरुषके प्रेरक शास्त्रके वचनरूप विधिकरिके बोधित (अन्यध्येयके प्रतिनिधिरूप) वस्तुविषै अन्य (ध्येय) की बुद्धिकरिके उपासना करै। ता अन्यविषै अन्यकी बुद्धिकरिके उपासना (ध्यान) कूं प्रतीक ध्यान कहै हैं॥

(१)वैकुंठलोकवासी विष्णुका शंखचक्रादिक सहित चतुर्भुजमूर्तिरूपसैं ध्यान है। तहां अन्य-का अन्यरूपसैं ध्यान नहीं। किंतु ध्येयरूपके **अनुसार** यह ध्यान है ॥ वैकुंठवासी विष्णुका स्वरूप प्रत्यक्ष तौ है नहीं। केवल शास्त्रसैं जानिये है, औ शास्त्रनै शंखचक्रादिकसहित ही विष्णुका स्वरूप कह्या। यातैं ध्येयस्वरूपके[३२२] अनुसार ही यह ध्यान है।

विधिविश्वासइच्छा विना ध्यान होवै नहीं।

(१) "यह उपासना करै" ऐसा पुरुषका प्रेरकवचन **विधि** कहिये है।

(२) ता वचनमैं श्रद्धाकूं **विश्वास** कहै हैं। औ--

(३) अंतःकरणकी कामनारूप रजोगुणकी वृत्ति **इच्छा** कहिये है ॥

ध्यानके हेतु ये तीनि हैं। ज्ञानके नहीं।

(४) ध्यान हठसैं होवै है। ज्ञानमैं हठकी अपेक्षा नहीं। काहेतैं निरंतर ध्येयाकार चित्तकी वृत्तिकूं **ध्यान** कहै हैं। तहां वृत्तिमैं विक्षेप होवै तौ हठसैं वृत्तिकी स्थिति करै। औ---

ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्तिसैं तत्काल आवरणभंग हुयेतैं वृत्तिकी स्थितिका उपयोग नहीं। यातैं हठकी अपेक्षा नहीं।

वैकुंठवासी चतुर्भुज विष्णुके ध्यानकी न्यांई "मैं ब्रह्म हूं" यह ध्यान बी ध्येयके अनुसार है। प्रतीक नहीं। परंतु यह **अहंग्रहध्यान** है ॥

ध्येयस्वरूपका अपनैसैं अभेदकरिके चिंतन **अहंग्रहध्यान** कहिये है ॥

जा पुरुषकूं अपरोक्षज्ञान नहीं होवै औ वेदकी आज्ञारूप विधिमैं विश्वासकरिके हठतैं निरंतर "मैं ब्रह्म हूं" या वृत्तिकी स्थितिरूप अहंग्रहध्यान करै। ताकूं बी ज्ञान प्राप्त होयके मोक्षकी प्राप्ति होवै है ॥ १६७ ॥

(॥प्रणवकी उपासना॥२८१-३०३॥)

॥ २८१ ॥ प्रणवका अहंग्रहध्यान ॥

और रीतिसैं अहंग्रहउपासना कहै हैं:-

॥ सवैया छंद ॥

ध्यान अहंग्रह प्रनवरूपको,
कह्यो सुरेश्वर श्रुतिअनुसार।
अच्छर प्रनव ब्रह्म मम रूप सु,
यूं अनुलव निजमति गति धार॥
ध्यानसमान आन नहिं याके,
पंचीकरनप्रकार विचार।
जो यह करत उपासन सो मुनि,
तुरत नसै संसार अपार ॥१६८॥

टीकाः-हे शिष्य ! प्रणवरूपका कहिये

॥ ३२२ ॥ तैसैं "मैं ब्रह्म हूं" इस आकारवाला जो निर्गुणउपासनारूप अहंग्रहध्यान है, सो बी **ध्येयानुसार ध्यान** है ॥

॥ ३२३ ॥ **जैसैं** संवादीभ्रांतिकरिके प्रवृत्त भये पुरुषनकूं यथार्थज्ञानद्वारा इष्टवस्तुका लाभ होवै है, **तैसैं** "मैं ब्रह्म हूं" या वृत्तिकी स्थितिरूप अहंग्रहध्यान करै, ताकूं बी ज्ञानद्वारा मोक्षकी प्राप्ति होवै है ॥

यद्यपि ध्यानका विषय जो ब्रह्म सो परमार्थरूप नहीं, किंतु मनःकल्पित है; यातैं भ्रमरूप है। याहीतैं ताकूं विषय करनैवाली वृत्तिरूप ध्यान बी भ्रांतिज्ञान ही है, यथार्थज्ञान नहीं। **तथापि** मणिकी प्रभाविषै मणिबुद्धिरूप संवादीभ्रांतिकरिके दौड़े पुरुषकूं मणिके ज्ञानद्वारा मणिकी प्राप्तिकी न्यांई उक्तध्यानसैं ब्रह्मका ज्ञान होयके मोक्षकी प्राप्ति संभव है ॥

संवादिभ्रमका वर्णन **पंचदशीगत** ध्यानदीपके आरंभविषै लिख्या है ॥

ओंकारस्वरूपका अहंग्रहध्यान मांडूक्य[324]-प्रश्न-आदिक श्रुतिके अनुसार सुरेश्वराचार्यनैं कह्या है, सो तूं कर । ताका संक्षेपतैं प्रकार यह है:- प्रणव अक्षर ब्रह्मस्वरूप है ॥ "सो प्रणवरूप ब्रह्म मैं हूं" या रीतिसैं अनुलव कहिये क्षणमात्र अंतरायरहित निजमतिकी गति कहिये वृत्ति धार कहिये स्थित कर । याके समान आन ध्यान नहीं है औ या ध्यानका प्रकार कहिये विशेष-रीति सुरेश्वरकृत पंचीकरणनाम ग्रंथसैं विचार। चतुर्थपाद स्पष्ट ॥ १६८ ॥

॥ २८२ निर्गुण औ सगुणप्रणवकी उपासनाका फलसहित कथन ।

यद्यपि प्रणवउपासना बहुत उपनिषदनमैं है । तथापि मांडूक्यउपनिषदमैं विशेष है। ताके व्याख्यानमैं भाष्यकार औ आनंदगिरिनै ताकी रीति स्पष्ट लिखी है । सोई रीति वार्तिक-कारनैं पंचीकरणमैं लिखी है । तथापि तिन ग्रंथनके विचारनैमैं जिनकी बुद्धि समर्थ नहीं है, तिनके अर्थ प्रणवउपासनाकी रीति हम लिखै हैं--दो प्रकारसैं प्रणवका चिंतन उपनिषदन-मैं कह्या है । १ एक तौ परब्रह्मरूपतैं प्रणवका चिंतन कह्या है औ २ दूसरा अपरब्रह्मरूपतैं कह्या है ।

१ निर्गुण ब्रह्मकूं परब्रह्म कहै हैं । औ--
२ सगुण ब्रह्मकूं अपरब्रह्म कहै हैं ।
१ परब्रह्मरूपतैं प्रणवका चिंतन करै । सो मोक्षकूं प्राप्त होवै है । औ--
२ अपरब्रह्मरूपतैं प्रणवका चिंतन करै सो ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवै है ।

ऐसैं निर्गुण सगुणभेदतैं प्रणवउपासना दो-प्रकारकी है । तामैं--

॥ २८३ ॥ निर्गुणरूप प्रणवउपासनाके प्रकारका प्रारंभ ।

निर्गुणउपासनाकी रीति लिखै हैं । सगुणकी नहीं । काहेतैं ?

१ जाकूं ब्रह्मलोककी कामना होवै ताकूं निर्गुणउपासनातैं बी कामनारूप प्रतिबंधक-तैं ज्ञानद्वारा तत्काल मोक्ष होवै नहीं, किंतु ब्रह्मलोककी ही प्राप्ति होवै है । तहां हिरण्यगर्भ-के समान भोगनकूं भोगिके ज्ञान होवै तब मोक्ष होवै । औ---

२ जाकूं ब्रह्मलोककी कामना नहीं होवै ताकूं इस लोकमैं ही ज्ञान होयके मोक्ष होवै है ।

इस रीतिसैं सगुणउपासनाका फल बी निर्गुणउपासनाके अंतर्भूत है । यातैं निर्गुण-उपासनाका प्रकार कहै हैं:--

जो कछु कारणकार्यवस्तु है सो ओंकार-स्वरूप है । यातैं सर्वरूप ओंकार है ।

१ सर्वपदार्थनमैं नाम औ रूप दो भाग हैं । तहां रूपभाग अपनै अपनै नाम भागसैं न्यारा नहीं । किंतु नामस्वरूप ही रूपभाग है। काहेतैं ? पदार्थका रूप कहिये आकार, ताका नामसैं निरूपणकरिके ग्रहण वा त्याग होवै है । नाम जानै विना केवल आकारतैं व्यवहार सिद्ध होवै नहीं । यातैं नाम ही सार है ॥ औ आकार-के नाश हुयेतैं बी नाम शेष रहै है । जैसैं घटका नाश हुयेतैं मृत्तिका शेष रहै है । तहां घट मृत्तिकासैं पृथक् वस्तु नहीं, मृत्तिकास्वरूप है । तैसैं आकारका नाश हुयेतैं मृत्तिकाकी न्यांई शेष रहे जो नाम तासैं आकार पृथक् नहीं । नाम स्वरूप ही आकार है ॥

किंवा जैसैं घटशरावादिकनमैं मृत्तिका

॥ ३२४ ॥ इहां "मांडूक्य" शब्दकरिके गौडपादाचार्य-कृत मांडूक्यउपनिषद्की कारिकाका बी ग्रहण है ॥

अनुगत है औ घटशरावादिक[325] परस्परव्यभिचारी हैं। यातैं घटशरावादिक मिथ्या। तिनमैं अनुगत मृत्तिका सत्य[326] है। तैसैं घट आकार अनेक हैं। तिन सबका "घट" यह दो अक्षरनाम एक है। सो आकार परस्परव्यभिचारी औ सर्वघटके आकारनमैं नाम एक अनुगत है। यातैं मिथ्याआकार सत्यनामतैं[327] पृथक् नहीं।

इस रीतिसैं सर्वपदार्थनके आकार अपनै अपनै नामसैं भिन्न नहीं, किंतु नामस्वरूप ही आकार हैं।

२ सो सारे नाम ओंकारसैं भिन्न नहीं। किंतु **ओंकारस्वरूप ही नाम हैं**। काहेतैं? वाचक शब्दकूं नाम कहै हैं। औ लोकवेदके सारे शब्द ओंकारसैं उत्पन्न हुये हैं। यह श्रुतिमैं प्रसिद्ध है। संपूर्णकार्य कारणस्वरूप होवै हैं। यातैं ओंकारके कार्य जो वाचकशब्दरूप नाम सो ओंकार स्वरूप हैं॥

इस रीतिसैं रूपभाग जो पदार्थनका आकार सो तौ नामस्वरूप है। औ सर्वनाम ओंकारस्वरूप है। यातैं सर्वस्वरूप ओंकार है॥

॥ २८४ ॥ ओंकार औ ब्रह्मका अभेद॥

३ जैसैं--

(१) सर्वस्वरूप ओंकार है तैसैं सर्वस्वरूप ब्रह्म है। यातैं **ओंकार ब्रह्मरूप है**।

(२) किंवा ओंकार ब्रह्मका वाचक है। ब्रह्म वाच्य है। वाच्यका औ वाचकका अभेद होवै है। यातैं बी ओंकार ब्रह्मरूप है। औ----

(३) विचारदृष्टितैं जो अक्षर ब्रह्मविषै अध्यस्त है। ब्रह्म तिसका अधिष्ठान है। अध्यस्तका स्वरूप अधिष्ठानतैं न्यारा होवै नहीं। यातैं बी ओंकार ब्रह्मस्वरूप है॥

यातैं ओंकारकूं ब्रह्मरूपकरिके चिंतन करै॥

॥ २८५ ॥ चारिपादनके कथनपूर्वक आत्माका ब्रह्मसैं औ विश्वका विराट्सैं अभेद। विराट्विश्वके सप्त अंग औ उन्नीस मुख ॥

४ ब्रह्मरूप ओंकारका आत्मासैं बी अभेद चिंतन करै। काहेतैं? आत्माका ब्रह्मसैं मुख्य अभेद है। औ----

ब्रह्मके चारि पाद[328] हैं। तैसैं आत्माके बी चारि पाद हैं॥

पाद नाम भागका है। ताहीकूं अंश बी कहै हैं।

(१) विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर औ तत्पदका लक्ष्य ईश्वर साक्षी, ये चारि पाद ब्रह्मके हैं।

(२) विश्व, तैजस, प्राज्ञ औ त्वंपदका लक्ष्य जीव साक्षी। ये चारि पाद आत्माके हैं।

॥ ३२५ ॥ शराव नाम कूंडेका है औ। आदि-शब्दकरि अन्य मृत्तिकाके पात्रनका ग्रहण है।

॥ ३२६ ॥ घटशरावादिकनकी अपेक्षातैं मृत्तिका बहुकालस्थायिनी है यातैं सो **अपेक्षिकसत्य** कहिये है।

॥ ३२७ ॥ घटकी अपेक्षातैं "घट" ऐसा दोअक्षरवाला नाम बहुकालपर्यंत स्थायी है। यातैं पुण्यके क्षयतैं मरनैवाला बहुकालस्थायी देव **जैसैं** अमर कहिये है तैसैं वह नाम बी सत्य (नित्य) कहिये है।

॥ ३२८ ॥ इहां पादशब्द जो है सो धान्यके पादकी न्यांई विभागरूप अर्थका बोधक है। गौके पादकी न्यांई अवयव (अंग) रूप अर्थका बोधक नहीं।

जीवसाक्षीकूं ही तुरीय कहै हैं।

(१) समष्टिस्थूलप्रपंचसहित चेतन विराट् कहिये है।

(२) व्यष्टिस्थूलअभिमानी विश्व कहिये है।

विराट्की औ विश्वकी उपाधि स्थूल है। यातैं विराट्रूप ही विश्व है। विराट्तैं न्यारा नहीं।

विराट्रूप विश्वके सात अंग हैं:---

(१) स्वर्गलोक मूर्धा है।

(२) सूर्य नेत्र हैं।

(३) वायु प्राण है।

(४) आकाश धड़ है।

(५) समुद्रादिरूप जल मूत्रस्थान है।

(६) पृथ्वी पाद है।

(७) जा अग्निमैं होम करिये सो अग्नि मुख है। ये सातअंग विश्वके कहै हैं।

मांडूक्यमैं यद्यपि स्वर्गलोकादिक विश्वके अंग बनैं नहीं, तथापि विराट्के अंग हैं। ता विराट्सैं विश्वका अभेद है। यातैं विश्वके अंग कहै हैं॥

तैसैं विराट्विश्वके उन्नीस मुख हैं:---पंच प्राण, पंच कर्मइंद्रिय, पंच ज्ञानइंद्रिय औ चारि अंतःकरण, ये उन्नीस मुखकी न्यांई भोगके साधन हैं। यातैं मुख कहिये हैं।

इन उन्नीसतैं स्थूलशब्दादिकनकूं बाह्यवृत्ति करिके जाग्रत्अवस्थाविषै भोगै है। यातैं विराट्रूप विश्व स्थूलका भोक्ता औ बाह्य[३२९]वृत्ति कहिये है औ जाग्रत्अवस्थावाला कहिये है।

॥ २८६ ॥ चतुर्दश त्रिपुटी ॥

प्राणादिक उन्नीस जो भोगके साधन हैं तिनविषै श्रोत्रादिक इंद्रिय औ अंतःकरण चारि ये चतुर्दश अपनै अपनै विषय औ अपनै अपनै देवताकी सहाय चाहै हैं। देवताविषयकी सहाय विना केवल इनतैं भोग होवै नहीं। यातैं पंचप्राण औ चतुर्दशत्रिपुटी विराट्रूप विश्वके मुख कहिये हैं। तिनके समुदायका नाम त्रिपुटी है।

सो त्रिपुटी इस रीतिसैं कही है:–

(१) [१] श्रोत्रइंद्रिय अध्यात्म है। औ–
[२] ताका विषय शब्द अधिभूत है।
[३] दिशाका अभिमानी देवता अधिदेव है।

(क) या प्रकरणमैं क्रियाशक्तिवाले औ ज्ञानशक्तिवाले इंद्रिय औ अंतःकरण अध्यात्म कहिये हैं।

(ख) तिनके विषय अधिभूत कहिये हैं। औ

(ग) तिनके सहायक देवता अधिदैव कहिये हैं।

(२) [१] त्वचाइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] ताका विषय स्पर्श अधिभूत है।
[३] वायुतत्त्वका अभिमानी देवता अधिदैव है।

(३) [१] नेत्रइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] रूप अधिभूत है।
[३] सूर्य अधिदैव है।

(४) [१] रसनाइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] रस अधिभूत है।
[३] वरुण अधिदैव है।

(५) [१] घ्राणइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] गंध अधिभूत है।
[३] अश्विनीकुमार अधिदैव है॥ औ

वार्त्तिककार सुरेश्वराचार्यनै पृथिवीका अभिमानी देवता घ्राणका अधिदैव कह्या है। सो बी

॥ ३२९ ॥ बहिःप्रज्ञ।

बनै है। काहेतैं ? पृथिवीसैं घ्राणकी उत्पत्ति है, यातैं पृथिवी अधिदैव कह्या है औ सूर्यकी वडवाकी नासिकातैं अश्विनीकुमारकी उत्पत्ति कही है। यातैं नासिकाका अधिदैव कहूं अश्विनीकुमार ही कहै हैं।

(६) [१] वाक्इंद्रिय अध्यात्म है।
[२] वक्तव्य अधिभूत है।
[३] अग्निदेवता अधिदैव है।

(७) [१] हस्तइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] पदार्थका ग्रहण अधिभूत है।
[३] इंद्र अधिदैव है॥

(८) [१] पादइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] गमन अधिभूत है।
[३] विष्णु अधिदैव है॥

(९) [१] गुदाइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] मलका त्याग अधिभूत है।
[३] यम अधिदैव है॥

(१०) [१] उपस्थइंद्रिय अध्यात्म है।
[२] ग्राम्यधर्मके सुखकी उत्पत्ति अधिभूत है।
[३] प्रजापति अधिदैव है।

(११) [१] मन अध्यात्म है।
[२] मननका विषय अधिभूत है।
[३] चंद्रमा अधिदैव है॥

(१२) [१] बुद्धि अध्यात्म है।
[२] बोद्धव्य अधिभूत है।
[२] बृहस्पति अधिदैव है। ज्ञानका विषय बोद्धव्य कहिये है॥

(१३) [१] अहंकार अध्यात्म है।
[२] अहंकारका विषय अधिभूत है।
[३] रुद्र अधिदैव है॥

(१४) [१] चित्त अध्यात्म है।
[२] चिंतनका विषय अधिभूत है।
[३] क्षेत्रज्ञ जो साक्षी सो अधिदैव है॥

ये चतुर्दश त्रिपुटी औ पंच प्राण ये उन्नीस विराट्रूप विश्वके मुख हैं॥

॥ २८७ ॥ विश्व विराट् औ अकारका अभेदचिंतन ॥

जैसैं विराट्तैं विश्वका अभेद है तैसैं ओंकारकी प्रथममात्रा जो अकार ताका बी विराट्रूप विश्वतैं अभेद है। काहेतैं ?

(१) ब्रह्मके चारि पादनमैं प्रथम पाद विराट् है। औ—
(२) आत्माके चारिपादनमैं प्रथम विश्व है।
(३) तैसैं ओंकारकी चारिमात्रारूप पादनमैं प्रथमपाद अकार है।

यातैं प्रथमता तीनूंमैं समानधर्म होनैतैं विश्व-विराट्-अकारका अभेदचिंतन करै। जो सात अंग उन्नीस मुख विश्वके कहे।

॥ २८८ ॥ विश्व औ तैजसकी विलक्षणता ॥

सोई सात अंग औ उन्नीस मुख तैजसके बी जाननैकूं योग्य हैं॥ परंतु इतना भेद है—

॥ ३३० ॥ वचनक्रियाका विषय पदार्थ वक्तव्य कहिये है। सो पचनक्रियाद्वारा वाक्इंद्रियका अधिभूत है। ऐसैं सर्वइंद्रियनके आपआपकी क्रियाद्वारा जो विषयरूप अधिभूत है, वे जानि लेने॥ कहूं वचनादिक्रियाकूं अधिभूत कहै हैं सो स्थूलदृष्टिवाले जनोंके ज्ञानअर्थ है। श्रुतिअर्थके विचारसैं कहा नहीं।

॥ ३३१ ॥ मैथुनक्रियारूप पशुधर्मके॥

॥ ३३२ ॥ साक्षीचेतन, जातैं चित्तका आश्रय होनैकारि चित्तके तांई अनुग्रह करै है, यातैं ताका **अधिदैव** कहिये है। याहीतैं किसी आचार्यनैं चिंतनरूप स्मृतिज्ञान साक्षीके आश्रित कहा है। कहूं चित्तका अधिदैव नारायण (वासुदेव) कहा है।

(१) विश्वके जो अंग औ मुख हैं सो तौ ईश्वररचित हैं। औ--

(२) तैजसके जो इंद्रिय देवता विषयरूप त्रिपुटी औ मूर्धादिअंग सो मनोमय हैं।

तैजसका भोग सूक्ष्म है।

(१) यद्यपि भोग नाम सुख अथवा दुःखके ज्ञानका है ताके विषै स्थूलता औ सूक्ष्मता कहना बनै नहीं, तथापि बाह्य जो शब्दादिक विषय हैं तिनके संबंधतैं जो सुख अथवा दुःखका साक्षात्कार सो स्थूल कहिये है। औ--

(२) मानस जो शब्दादिक तिनके संबंधतैं जो भोग होवै सो सूक्ष्म कहिये॥

इसी कारणतैं--

(१) विश्व तौ स्थूलका भोक्ता श्रुतिविषै कह्या है। औ--

(२) तैजस सूक्ष्मका भोक्ता कह्या है। काहेतैं ?

(१) तैजसके भोग्य जो शब्दादिक हैं सो तौ मानस हैं। यातैं सूक्ष्म हैं। औ--

(२) तिनकी अपेक्षाकरिके विश्वके भोग्य बाह्यशब्दादिक हैं सो स्थूल हैं॥ औ-

विश्व बहिःप्रज्ञ है। तैजस अंतःप्रज्ञ है। काहेतैं? जो विश्वकी अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रज्ञा है सो बाहिर जावै है औ तैजसकी नहीं जावै है॥

॥ २८९ ॥ तैजस हिरण्यगर्भ औ उकारका अभेदचिंतन ॥

२ जैसैं विश्वका औ विराटका अभेद है तैसैं तैजसकूं बी हिरण्यगर्भरूप जानै। काहेतैं! सूक्ष्मउपाधि तैजसकी है औ सूक्ष्म ही हिरण्यगर्भकी है। यातैं दोनूंवाकी एकता जानै॥

तैजसहिरण्यगर्भकी एकता जानिके ओंकारकी द्वितीयमात्रा उकारसैं तिनका अभेदचिंतन करै। काहेतैं ?

(१) आत्माके चारिपादनमैं द्वितीयपाद तैजस है।

(२) ब्रह्मके पादनमैं हिरण्यगर्भ दूसरा पाद है॥

(३) ओंकारकी मात्रामैं द्वितीयमात्रा उकार है॥

द्वितीयता तीनूंमैं समानधर्म है। यातैं तीनूंकी एकता चिंतन करै॥

॥ २९० ॥ प्राज्ञ ईश्वर औ मकारका अभेद ॥ प्राज्ञके विशेषण ॥

३ औ प्राज्ञकूं ईश्वररूप जानै। काहेतैं ?

(१) प्राज्ञकी कारण उपाधि है। औ-

(२) ईश्वरकी बी कारण उपाधि है।

ईश्वर औ प्राज्ञ पादनमैं तृतीय हैं॥

(३) ओंकारकी तृतीयमात्रा मकार है॥

तीसरापना तीनूंमैं समानधर्म है। यातैं तीनूंकी एकता जानै॥ औ--

(१) यह प्राज्ञ प्रज्ञानघन है। काहेतैं?जाग्रत् औ स्वप्नके जितने ज्ञान हैं। सो सुषुप्तिविषै घन कहिये[३३३] एक अविद्यारूप होय जावैहैं। यातैं प्रज्ञानघन कहिये है। औ-

(२) आनंदभुक् बी यह प्राज्ञ श्रुतिनै कह्या है। काहेतैं? अविद्यासैं आवृत जो आनंद है ताकूं यह प्राज्ञ भोगै है। यातैं आनंदभुक् कहिये है

॥ ३३३ ॥ जैसैं पिष्ट (अन्नका चूर्ण)। जलसैं पिंडके बांधे हुये एकरूप होवै है औ वर्षाके अनंत बिंदु तडाग (तलाव) विषै एकरूप होवै हैं। तैसैं जाग्रत्स्वप्नके ज्ञान सुषुप्तिविषै एकअविद्यारूप होवै हैं। तिस अविद्याविषै स्थित जो अधिष्ठान कूटस्थसहित चेतनका प्रतिबिंबरूप प्राज्ञजीव सो "प्रज्ञानघन" कहिये है॥

जैसैं तैजस औ विश्वका भोग त्रिपुटीसैं होवैहै तैसैं प्राज्ञके भोगकी बी त्रिपुटी कहियेहै:--

(१) चेतनके प्रतिबिंबसहित जो अविद्याकी वृत्ति है सो अध्यात्म है ।

(२) अज्ञानसैं आवृत जो स्वरूप आनंद सो अधिभूत है । औ--

(३) ईश्वर अधिदैव है ॥

इस रीतिसैं---

(१) विश्व तौ बहिःप्रज्ञ है । औ--

(२) तैजस अंतःप्रज्ञ है । औ-

(३) प्राज्ञ प्रज्ञानघन है ॥

॥ २९१ ॥ वास्तव विश्वआदिक तीनूंकी एकता ॥ तुरीयका ईश्वरसाक्षीसैं अभेद ॥

४ ऐसा जो तीनूंका भेद है सो उपाधिकरिके है ।

(१) विश्वकी स्थूल सूक्ष्म अज्ञान तीनि उपाधि हैं । औ---

(२) तैजसकी सूक्ष्म अज्ञान उपाधि है औ-

(३) प्राज्ञकी एक अज्ञान उपाधि है ॥

इस रीतिसैं उपाधिकी न्यूनताअधिकतासैं तीनूंका भेद है । परमार्थकरिके स्वरूपसैं भेद नहीं ॥

विश्व, तैजस औ प्राज्ञ, इन तीनूंविषै अनुगत चेतन है सो परमार्थसैं तीनूं उपाधिके संबंधसैं रहित है ॥ तीनूं उपाधिका अधिष्ठान तुरीय है ।

(१) सो बहिःप्रज्ञ नहीं । औ-

(२) अंतःप्रज्ञ नहीं, औ-

(३) प्रज्ञानघन बी नहीं ।

(४) कर्मइंद्रियका औ ज्ञानइंद्रियका विषय नहीं । औ-

(५) बुद्धिका विषय नहीं ।

(६) किसी शब्दका विषय नहीं ॥

ऐसा जो तुरीय है ताकूं परमात्माका चतुर्थपाद ईश्वर साक्षी शुद्धब्रह्मरूप जानै ॥

॥२९२॥ दोस्वरूपवाले ॐकार औ आत्माका मात्रा औ पादरूपसैं अभेदचिंतन ॥

इस रीतिसैं दो प्रकारका आत्माका स्वरूप कह्या । एक तौ परमार्थरूप है औ एक अपरमार्थरूप है ॥

(१) तीनिपाद तौ अपरमार्थरूप हैं । औ

(२) एकपाद तुरीय परमार्थरूप है ॥

२ जैसैं आत्माके दो स्वरूप हैं, तैसैं ओंकारके बी दो स्वरूप हैं ॥

(१) अकार उकार औ मकार ये तीनिमात्रारूप जो वर्ण हैं सो तौ अपरमार्थरूप हैं औ--

(२) तीनूंमात्राविषै व्यापक जो अस्तिभातिप्रियरूप अधिष्ठानचेतन है सो परमार्थरूप है ॥

जा ओंकारका परमार्थरूप है ताकूं श्रुतिविषै अमात्र शब्दकरिके कह्या है । काहेतें !ता परमार्थस्वरूपविषै मात्राविभाग है नहीं । यातैं अमात्र कहिये है ॥

इस रीतिसैं दोस्वरूपवाला जो ओंकार है, ताका दोस्वरूपवाले आत्मासैं अभेद जानै ॥

१ व्यष्टि औ समष्टि जो स्थूलप्रपंच तासहित विश्व औ विराट्का आकारसैं अभेद जानै ॥ आत्माके जो पाद हैं । तिनविषै

(१) विश्व आदि हैं, औ--

(२) ओंकारकी मात्राविषै अकार आदि हैं, यातै दोनूंकूं एक जानै ॥

३ सूक्ष्मप्रपंचसहित जो हिरण्यगर्भ तैजस है । ताकूं उकाररूप जानै ॥

(१) तैजस बी दूसरा है औ--

(२) उकार बी दूसरा है ।

यातैं दोनूंकूं एक जानै ॥

३ कारणउपाधिसहित जो ईश्वररूप प्राज्ञ है ताकूं मकाररूप जानै ॥

(१) जैसैं ईश्वररूप प्राज्ञ तीसरा है ।

(२) तैसैं मकार बी तीसरा है ।

यातैं ईश्वररूप प्राज्ञ औ मकारकूं एक जानै ॥

४ तीनूविषै अनुगत जो परमार्थरूप तुरीय है ताकूं ओंकारवर्णकी तीनिमात्राविषै अनुगत जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है तासैं अभिन्न जानै ॥

(१) जैसैं विश्वादिकविषै तुरीय अनुगत है ।

(२) तैसैं अकारादिक तीनि मात्राविषै अमात्र अनुगत है ।

यातैं ओंकारके अमात्ररूपकूं औ तुरीयकूं एक जानै ॥

इस रीतिसैं आत्माके पाद औ ओंकारकी जो मात्रा है तिनकी एकता जानिके लयचिंतन करै ॥

॥२९३॥ लयचिंतनका अनुवाद॥ (एक-एकमात्रारूप विश्वआदिककी अन्यमात्रारूपता)

सो लयचिंतन कहिये हैः—

१ विश्वरूप जो अकार है सो तैजसरूप उकारसैं न्यारा नहीं, किंतु उकाररूप ही है । ऐसा जो चिंतन करना सो या स्थानमैं लय कहिये है ॥ ऐसा ही और मात्राविषै बी जानि लेना ॥ और—

२ जा उकारविषै अकारका लय किया है । ता तैजसरूप उकारका प्राज्ञरूप जो मकार है ताके विषै लय करै ॥ औ—

३ प्राज्ञरूप जो मकार है ताकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है ताके विषै लीन करै । काहेतैं ? स्थूलकी उत्पत्ति औ लय सूक्ष्मविषै होवै है । यातैं—

१ विश्वरूप जो अकार है ताका तैजसरूप उकारमैं लय बनै है ॥ औ—

२ सूक्ष्मकी उत्पत्ति औ लय कारणमैं होवै है । यातैं तैजसरूप जो उकार है ताका कारण प्राज्ञरूप जो मकार है ताके विषै लय बनै है ॥

या स्थानविषै विश्वआदिनके ग्रहणतै समष्टि जो विराट् आदिक हैं तिनका औ अपनी अपनी जो त्रिपुटी है, तिन सर्वका ग्रहण जानना ॥

३ जा प्राज्ञरूप मकारविषै उकार लय किया है ता मकारकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, ताके विषै लीन करै । काहेतैं ? ओंकारके परमार्थस्वरूपका तुरीयसै अभेद है ॥ सो तुरीय ब्रह्मरूप है औ शुद्धविषै ईश्वर प्राज्ञ दोनूं कल्पित हैं ॥ जो जाके विषै कल्पित होवै है सो ताका स्वरूप होवै है । यातैं ईश्वरसहित प्राज्ञरूप मकारका लय बनै है ॥

इस रीतिसै जो ओंकारके परमार्थस्वरूप अमात्रविषै सर्वका लय किया है "सो मैं हूं" ऐसा एकाग्रचित्त होयके चिंतन करै ॥

स्थावरजंगमरूप, असंग, अद्वय, असंसारी, नित्यमुक्त, निर्भय औ ब्रह्मरूप जो ओंकारका परमार्थस्वरूप "सो मैं हूं" ऐसा चिंतन करनेसै ज्ञान उदय होवै है । यातैं ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप फलका देनैवाला यह ओंकारका निर्गुणउपासन है सो सर्वसैं उत्तम है ॥

॥२९४ ॥ॐकारचिंतनमैं परमहंसका अधिकार ॥

जो पूर्व रीतिसैं ओंकारके स्वरूपकूं जानै है सो मुनि है । जो नहीं जाने है, सो मुनि नहीं। काहेतैं मुनि नाम मनन करनैवालेका है । यह ओंकारका चिंतन मननरूप है । जाके ओंकारका चिंतनरूप मनन नहीं सो मुनि नहीं ॥

यह मांडूक्यउपनिषद्की रीतिसैं संक्षेपतै ओंकारका चिंतन कह्या है ॥ और बी नृसिंहतापिनी आदिक उपनिषदनमैं याका प्रकार है ॥ यह ओंकारका चिंतन परमहंसोंका गोप्यधन है ॥ बहिर्मुखपुरुषका याविषै अधिकार नहीं। अत्यंतअंतर्मुखका अधिकार है । गृहस्थका यामैं अधिकार नहीं । धनपुत्रस्त्रीसंगादिकराहित परमहंसका अधिकार है ।

॥२९५॥ ॐकारके ध्यानवालेकूं फल ॥ २९५–२९६ ॥

१ पूर्वप्रकारतैं ओंकारका ब्रह्मरूपतैं ध्यान कियेतैं ज्ञानद्वारा मोक्ष होवै है।

२ परंतु जा पुरुषकी इस लोकके भोगनमैं अथवा ब्रह्मलोकके भोगनमैं कामना होवै तीव्र बैराग्य नहीं होवै औ हठसैं कामनाकूं रोकिके धनपुत्रादिकनकूं त्यागिके परमहंसगुरुके उपदेशतैं ओंकाररूप ब्रह्मका ध्यान करै ताकूं भोगकी कामना ज्ञानमैं प्रतिबंध है । यातैं ज्ञान नहीं होवै है । किंतु ध्यान करते ही शरीरत्यागतैं अनंतर अन्यशरीरकी प्राप्ति होवै ॥

(१)जो इस लोककी भोगनकी कामना रोकिके ध्यानमैं लगा होवै तौ इस लोकमैं अत्यंतविभूतिवाले पवित्रसत्संगीकुलमैं जन्म होवै है ॥ तहां पूर्वकामनाके विषै सारे भोग प्राप्त होवै हैं । औ पूर्वजन्मके ध्यानके संस्कारनतैं फेरि विचारमैं अथवा ध्यानमैं प्रवृत्ति होवै है । तातैं ज्ञान होयके मोक्ष होवै है ॥ औ–

॥ २९६ ॥ (२) ब्रह्मलोकके भोगनकी कामना रोकिके ओंकाररूप ब्रह्मके ध्यानमैं लग्या होवै तौ शरीर त्यागिके ब्रह्मलोककूं जावै है ॥ तहां मनुष्यनकूं, पितरनकूं, देवनकूं दुर्लभ जो स्वतंत्रता है ताके आनंदकूं भोगै है ॥ जितनी हिरण्यगर्भकी विभूति हैं, सो सारी सत्य संकल्पादिक विभूति इसकू प्राप्त होवै है ॥

॥२९७॥ ब्रह्मलोकके मार्गका क्रम ॥

जा मार्गतैं ब्रह्मलोककूं जावै है सो मार्ग[334]का क्रम यह हैः–जो पुरुष ब्रह्मकी उपासनामैं तत्पर है ताके मरणसमय इंद्रिय अंतःकरण यद्यपि सारे मूर्छित[335] हैं । कहीं जानैमैं समर्थ नहीं । औ यमके दूत ताके समीप आवैं नहीं जो ताके लिंगशरीरकूं ले जावैं । परंतु–

१ अग्निका अभिमानी देवता ताकूं मरणसमय शरीरसैं निकासिके अपनै लोककूं ले जावै हैं ॥

२ ता अग्निलोकतैं दिनका अभिमानी देवता ले जावै है ॥

३ तिसतैं शुक्लपक्षका अभिमानी देवता अपनै लोककूं ले जावै है ।

४ तिसतैं आगे उत्तरायण जो षट्मास है तिनका अभिमानी देवता ले जावै है।

५ तिसतैं आगे संवत्सरका अभिमानी देवता ले जावै है ।

६ तिसतैं आगे देवलोकका अभिमानी देवता ले जावै है ।

७ तिसतैं आगे वायुका अभिमानी देवता ले जावै है ।

८ तिसतैं आगे सूर्यदेवता ले जावै है ।

९ तिसतैं आगे चंद्रदेवता ले जावै है ।

॥ ३३४ ॥ यह मार्गका क्रम यजुर्वेदकी ईशावास्यउपनिषद्के अंतविषै औ छांदोग्यविषै लिख्या है ।

॥ ३३५ ॥ मरणसमय स्थूलशरीरसैं लिंगशरीरके वियोगतैं चतनाके अभावकरि उपासकके इंद्रिय औ अंःतकरण अन्यप्राणिनकी न्याई मूर्छित होवै हैं ।औ यातैं स्वतः कहीं जानैमैं समर्थ नहीं । औ क्रियाशक्तिवाले प्राणकूं स्वरूपतैं अचेतन होनैकारि इच्छाके अभावतैं तिसकरि तिनका गमन संभवै नहीं।

१० तिसतैं आगे बिजलीका अभिमानी देवता अपनै लोकमैं ले जावै है।

११ तहां बिजलीके लोकमैं तिस उपासकके सामनै हिरण्यगर्भकी आज्ञातैं दिव्यपुरुष हिरण्यगर्भलोकवासी हिरण्यगर्भसमानरूप ताके लेनैकूं आवै है। सो पुरुष बिजलीके लोकतैं वरुणलोककूं ले जावै है। बिजलीका अभिमानी देवता साथि आवै है॥

१२ वरुणलोकतैं इंद्रलोककूं ले जावै है। औ वरुणदेवता बी इंद्रलोकतोडी हिरण्यगर्भलोकवासी पुरुष औ उपासकके साथि रहै है।

१३ तिसतैं आगे इंद्रदेवता प्रजापतिके लोकतोडी दोनूंके साथि रहै है।

१४ तिसतैं आगे प्रजापति तिन दोनूंके साथ ब्रह्मलोक ले जानैविषै समर्थ नहीं यातैं ब्रह्मलोकमैं ता दिव्यपुरुषके साथि सो उपासक प्राप्त होवै है॥

ब्रह्मलोकका अधिपति हिरण्यगर्भ है। सूक्ष्मसमष्टिका अभिमानी चेतन हिरण्यगर्भ कहिये है। ताहीकूं कार्यब्रह्म कहै हैं॥ कार्यब्रह्मके निवासस्थानकूं ब्रह्मलोक कहै हैं॥

॥ २९८ ॥ सायुज्यमोक्षका वर्णन ॥

यद्यपि पूर्व रीतिसैं ओंकारकी उपासना शुद्धब्रह्मरूपकरिके कही है। शुद्धब्रह्मके उपासककूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति चाहिये तथापि शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति ज्ञानतैं ही होवै है औ कामनारूप प्रतिबंधतैं जाकूं ज्ञान हुया नहीं ताकूं कार्यब्रह्मकी प्राप्तिरूप सायुज्यरूप मोक्ष होवै है॥

१ ब्रह्मलोकमैं प्राप्त जो उपासक है ताकूं हिरण्यगर्भके समान विभूति प्राप्त होवै है

२ सत्यसंकल्प होवै है॥

३ जैसैं शरीरकी इच्छा करै तैसाई उसका शरीर होवै है॥

४ जिन भोगनकी वांछा करै सो सारे भोग संकलपतैं ही प्राप्त होवै हैं॥

जो एक समय हजारशरीरनसैं जुदेजुदे भोगनकी इच्छा करै तौ ताही समय हजारशरीर औ उनके भोगनकी जुदी जुदी सामग्री उपजै है॥ औ—

बहुत क्या कहैं? जो कछु संकलप करै सोई सिद्ध होवै है परंतु जगत्की उत्पत्तिपालनसंहार छोडिके और सारी विभूति ईश्वरके समान होवै है। याहीकूं [३३६] सायुज्यमोक्ष कहै हैं॥

ऐसैं हिरण्यगर्भके समान हुवा बहुतकाल संकलपसिद्ध दिव्यपदार्थनकूं भोगिके प्रलयकालमैं जब हिरण्यगर्भके लोकका नाश होवै तब ज्ञान होयके उपासककूं विदेहमोक्षकी प्राप्ति होवै है॥

॥ २९९ ॥ ॐकारके अहंग्रहध्यानतैं ब्रह्मलोककी प्राप्तिका नियम ॥

जैसैं ॐकाररूप ब्रह्मकी उपासना करने-

॥ ३३६ ॥

१ राजाके प्रजाकी न्यांई ईश्वरके लोकविषै वासका नाम **सालोक्यमुक्ति** है।

२ तिसतैं श्रेष्ठ राजाके किंकरकी न्यांई ईश्वरके समीप वास करनैका नाम **सामीप्यमुक्ति** है।

३ तिसतैं श्रेष्ठ राजाके अनुजकी न्यांई ईश्वरके समानरूपकी प्राप्तिका नाम **सारूप्यमुक्ति** है।

४ तिसतैं श्रेष्ठ राजाके ज्येष्ठपुत्रकी न्यांई ईश्वरके समान सत्यसंकल्पादि ऐश्वर्य (विभूति) की प्राप्तिका नाम **सार्ष्टिमुक्ति** है।

इस रीतिसैं शास्त्रविषै फलरूप चारिप्रकारकी मुक्ति कही है। तिनमैं अंत्यकी **सार्ष्टिमुक्ति** श्रेष्ठ है। तिस सार्ष्टिमुक्तिकूं ही **सायुज्यमोक्ष** बी कहै हैं॥

वाला ब्रह्मलोककी प्राप्तिद्वारा मोक्षकूं प्राप्त होवै है । तैसैं और बी उपनिषदनमैं ब्रह्मकी उपासना कही है तिनतैं यही फल होवै है । परंतु अहंग्रहउपासना विना और उपासनातैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै नहीं । यह वार्ता सूत्रकारनै औ भाष्यकारनै चतुर्थअध्यायमैं प्रतिपादन करी है॥

१ जैसैं नर्मदेश्वरका शिवरूपतैं औ शालग्रामका विष्णुरूपतैं ध्यान कह्या है सो **प्रतीकध्यान** है । अहंग्रह नहीं । औ

२ मनका ब्रह्मरूपतैं औ आदित्यका ब्रह्मरूपतैं ध्यान कह्या है सो बी **प्रतीकध्यान** है। अहंग्रह नहीं ।

तिनतैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै नहीं ॥ सगुण अथवा निर्गुणब्रह्मकूं अपनैतैं अभेदकरिके चिंतन करै ताकूं **अहंग्रहध्यान** कहै हैं, ताहीतैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है ।

॥ ३०० ॥ उत्तरायणमार्गसैं ब्रह्मलोकमैं गयेकूं फेरि संसारकी अप्राप्ति औ ज्ञानद्वारा मोक्षकी प्राप्ति ।

पूर्व कह्या जो मार्गहै ताकूं **उत्तरायणमार्ग** कहै हैं औ देवमार्ग बी कहै हैं ।

ता देवमार्गतैं ब्रह्मलोककूं जो उपासक जावै हैं तिनकूं फेरि संसार नहीं होता । किंतु ज्ञान होयके विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवै हैं ।

तहां ज्ञानके साधन जो गुरुउपदेशादिक हैं तिनकी बी अपेक्षा नहीं । किंतु ब्रह्मलोकमैं गुरुउपदेशादिक साधन विना ही ज्ञान होवै है । काहेतैं ? ब्रह्मलोकमैं तमोगुणरजोगुणका तौ लेश बी नहीं । केवल सत्त्वगुणप्रधान वह लोक है ।

१ **तमोगुण नहीं**, यातैं जड़ता आलस्यादिक नहीं ।

२ **रजोगुण नहीं**, यातैं कामक्रोधादिरूप रजोगुणका कार्य विक्षेप नहीं ।

३ **केवलसत्त्वगुण है**, यातैं सत्त्वगुणका कार्य ज्ञानरूप प्रकाश ता लोकमैं प्रधान है ।

॥ ३०१ ॥ हिरण्यगर्भवासीकूं असंग निर्विकार ब्रह्मरूप आत्माका भान होवै है, तामैं कारण ।

ओंकारकी ब्रह्मरूपतैं जो पूर्व उपासना करी है तब ओंकारकी मात्राका अर्थ इसरीतिसैं चिंतन किया है:—

१ "स्थूलउपाधिसहित विराट्विश्वचेतन अकारका वाच्य है ॥

२ सूक्ष्मउपाधिसहित चेतन हिरण्यगर्भतैजस उकारका वाच्य है ।

३ कारणउपाधिसहित चेतन ईश्वरप्राज्ञ मकारका वाच्य है ॥"

ऐसा अर्थ जो पूर्व चिंतन किया है ताकी ब्रह्मलोकमैं स्मृति होवै है औ सत्त्वगुणप्रभावतैं ऐसा विवेचन होवै है:—

१ स्थूलउपाधिकरिके चेतनमैं **विराट्पना औ विश्वपना** प्रतीत होवै है ॥

(१) स्थूलसमष्टिकी दृष्टितैं **विराट्पना** है ॥ औ—

(२) स्थूलव्यष्टिकी दृष्टितैं **विश्वपना** है औ समष्टिव्यष्टिस्थूलकी दृष्टि विना विराट्भाव औ विश्वभाव प्रतीत होवै नहीं । किंतु चेतनमात्र ही प्रतीत होवै है ।

२ तैसैं सूक्ष्मउपाधिसहित हिरण्यगर्भ तैजसचेतन उकारका वाच्य है ॥ तहां

(१) समष्टिसूक्ष्मउपाधिकी दृष्टितैं चेतनमैं **हिरण्यगर्भता** प्रतीत होवै है । औ—

(२) व्यष्टिसूक्ष्मउपाधिकी दृष्टितैं **तैजसता** प्रतीत होवै है ॥

सूक्ष्मउपाधिकी दृष्टि विना हिरण्यगर्भता औ तैजसता प्रतीत होवै नहीं ॥

३ तैसैं मकारका वाच्य ईश्वर प्राज्ञ है ॥ तहां---

(१) समष्टिअज्ञानउपाधिकी दृष्टितैं चेतनमैं ईश्वरता प्रतीत होवै है । औ--

(२) व्यष्टिअज्ञानउपाधिकी दृष्टितैं चेतनमैं प्राज्ञता प्रतीत होवै है ।

अज्ञानउपाधिकी दृष्टि विना ईश्वरता औ प्राज्ञता प्रतीत होवै नहीं ।

जो वस्तु जाके विषै अन्यकी दृष्टितैं प्रतीत होवै सो ताके विषै परमार्थसैं होवै नहीं। जो जाका रूप अन्यकी दृष्टि विना प्रतीत होवै सो ताका परमार्थरूप होवै है। जैसैं एक पुरुषमैं पिताकी दृष्टिसैं पुत्रता औ दादाकी दृष्टितैं पौत्रतादिक रूप भान होवै हैं सो परमार्थसैं नहीं। पुरुषका पिंड ही परमार्थ है। तैसैं स्थूलसूक्ष्मकारणउपाधिकी दृष्टितैं जो विराट् विश्वादिक रूप भान होवै हैं सो मिथ्या हैं । चेतनमात्र ही सत्य है ॥

सो चेतन सर्वभेदरहित है । काहेतैं !

१ विराट् औ विश्वका जो भेद है सो उपाधि तौ दोनूंकी यद्यपि स्थूल है तथापि समष्टिउपाधि विराट्की औ व्यष्टिउपाधि विश्वकी। सो समष्टिव्यष्टिउपाधितैं तिनका भेद है, यातैं स्वरूपतैं भेद नहीं ॥

२ तैसैं तैजसका हिरण्यगर्भतैं भेद बी समष्टिव्यष्टिउपाधितैं है, स्वरूपतैं नहीं ।

३ तैसैं ईश्वरतैं प्राज्ञका भेद बी समष्टिव्यष्टिउपाधिके भेदतै है । स्वरूपतैं नहीं ।

१ ऐसैं प्राज्ञका ईश्वरतैं अभेद है । औ-

२ तैजसका हिरण्यगर्भतैं अभेद है ।

३ तथा विश्वका विराट्तैं अभेद है ।

या प्रकारतैं स्थूलउपाधिवालेका सूक्ष्मउपाधिवालेतैं वा कारणउपाधिवालेतैं भेद नहीं । काहेतैं ? स्थूलसूक्ष्मकारणउपाधिका दृष्टि त्यागेतैं चेतनस्वरूपमैं किसी प्रकारका भेद प्रतीत होवै नहीं ॥ औ--

अनात्मासैं बी चेतनका भेद नहीं । काहेतैं ? अनात्मदेहादिक अविद्याकालमैं प्रतीत होवै हैं । परमार्थसैं नहीं । तिनका बी चेतनसैं भेद बनै नहीं ।

ऐसैं सर्वभेदरहित, असंग, निर्विकार, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप आत्मा ओंकारका लक्ष्य स्वयंप्रकाशरूप तिस उपासककूं भान होवै है । तातैं हिरण्यगर्भलोकवासीकूं संसार होवै [३३७]नहीं ।

॥ ३०२ ॥ ॐ औ महावाक्यके अर्थकी एकता ॥

यद्यपि महावाक्यके विवेक विना ज्ञान होवै नहीं, तथापि ओंकारका विवेक ही महावाक्यका विवेक है ।

१(१) स्थूलउपाधिसहित चेतन अकारका वाच्य है ।

(२) स्थूलउपाधिकूं त्यागिके चेतनमात्र अकारका लक्ष्य ।

२(१) तैसैं सूक्ष्मउपाधिसहित चेतन उकारका वाच्य है ।

(२) सूक्ष्मउपाधिकूं त्यागिके चेतनमात्र उकारका लक्ष्य है ।

३(१) कारणउपाधिसहित चेतन मकारका वाच्य है ।

॥ ३३७ ॥ ज्ञानद्वारा मोक्षरूप फल होवै है ।

(२) कारणउपाधिकूं त्यागिके चेतनमात्र मकारका लक्ष्य है ।

इस रीतिसैं---

१ उपाधिसहित विश्वादिक अकारादि-मात्राका वाच्य है । औ---

२ उपाधिरहित चेतन सर्वमात्राओंके लक्ष्य हैं ॥

१ तैसैं नामरूप सकलउपाधिसहित चेतन ॐकारवर्णका वाच्य है औ--

२ नामरूपसकलउपाधिरहित चेतन ॐकार वर्णका लक्ष्य है ।

ऐसैं ॐकारका औ महावाक्यनका अर्थ एक ही है । यातैं ओंकारके विवेकतैं अद्वैतज्ञान होवै है ॥

ऐसैं आचार्यके मुखतैं श्रवणकरिके अदृष्टि नाम जो मध्यमशिष्य सो उपासनामैं प्रवृत्त होयके ज्ञानद्वारा परमपुरुषार्थमोक्षकूं प्राप्त हुवा ॥ १६८ ॥

॥३०३॥ निर्गुणउपासनाके अनधिकारीकूं कर्तव्य ।

निर्गुणउपासनामैं जाका अधिकार नहीं, ताकूं कर्त्तव्य[३३८] कहै हैं:---

॥ सवैयाछंद ॥

जो यह निर्गुनध्यान न ह्वै तौ,
सगुनईस[३३९] करि मनको धाम[३४०] ।

॥ ३३८ ॥ इहां यह अभिप्राय है:-जो जिज्ञासुकी वेदांतके श्रवणमननरूप विचारविषै प्रवृत्ति भई है ताकूं विचार छोड़िके अन्यसाधन कर्त्तव्य नहीं ।

१ जो कदाचित् सो विचारशील पुरुष विचारकूं छोड़िके अन्यसाधनविषै प्रवृत्त होवैगा तौ आरूढपतित होवैगा ।

२ किंवा ताकूं "करं लेढि न्याय" (लड्डू गमायके हाथ चाटनैका दृष्टांत) प्राप्त होवैगा ।

यातैं सो विचारशील पुरुष दृढबोधपर्यंत विचार करै । औ---

१ जाकी विचारविषै प्रवृत्ति होवै नहीं ताकूं निर्गुणउपासना कर्त्तव्य है । औ--

२ जाका निर्गुणउपासनामैं अधिकार नहीं ताकूं "उपवासतैं भिक्षा श्रेष्ठ है" इस न्याय-करि सगुणउपासनादिरूप कर्त्तव्य कहै हैं ॥

॥ ३३९ ॥

१ मायाविशिष्टचेतनरूप कारणब्रह्म सगुणईश

२ किंवा ताके उपलक्षण जे हिरण्यगर्भ, वैश्वानर, हरि, हर, गौरी, गणेश, सूर्य अरु तिनके अवताररूप कार्यब्रह्म सगुणईश कहिये है ।

३ किंवा तिनकी प्रतिमादिरूप प्रतिनिधि (तिनके ठिकाने स्थापित) सो इहां सगुणईश कहिये है ।

उक्त उपास्यनमैं पूर्वपूर्व श्रेष्ठ है ।

यद्यपि आगे सप्तमतरंगउक्त रीतिकरि माया-विशिष्टचेतनरूप कारणब्रह्म ही ईशपदका मुख्यअर्थ है औ सोई उपास्य है । **तथापि** "मायाकूं प्रकृति (सारे जगत्का उपादान) जानै । औ ब्रह्मकूं महे-श्वर जानै" इस श्रुतिकरि मायाविशिष्टचेतनतैं भिन्न वस्तुके अभावतैं श्रीविद्यारण्य स्वामीनै सर्वमतसैं अविरुद्ध ईश्वरका चित्रदीपविषैं निरूपण किया है । ताके अनुसार हिरण्यगर्भादिक सर्वउपास्यवस्तु बी ईश कहिये है । तामैं--

॥ ३४० ॥ मनको धाम कहिये स्थानक (निवास) कर ॥

सगुनउपासनहू नहिं है तौ,
करि निष्कामकर्म[२४१] भजि राम ॥
जो निष्कामकर्महु नहि है,
तौ करिये सुभकर्म सकाम ।
जो सकाम कर्महु नहीं होवै,
तौ सँठ[*] बारबार मरि जाम ॥१६९॥

॥ दोहा ॥

ओंकारको अर्थ लखि,
भयो कृतार्थ अदृष्टि ॥
पढ़ै जु याहि तरंग तिहि,
दादू करहु सुदृष्टि ॥ १७० ॥

इति श्रीविचारसागरे गुरुवेदादिव्यावहारिकप्रतिपादन—मध्यमाधिकारिसाधनवर्णनं नाम पंचमस्तरंगः समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ २४१ ॥ फलकी कामनासैं रहित स्ववर्णाश्रमके कर्मकूं ईश्वरार्पणबुद्धिसैं कर औ तिसके साथि नामकीर्तनादिकरिके रामकूं भज ।

अथवा निष्कामकर्मकरिके राम भजि कहिये सो कर्म रामकूं अर्पण कर । फलकी कामनासैं रहित होयके रामके अर्थ किया जो पुण्यकर्म सो बी रामकी प्रसन्नताका हेतु होनैतैं रामका ही भजन है ।

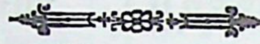
* इहां "सठ" कहिये हे दुष्ट ! औ 'मरि जाम' कहिये मरिके जन्मकूं पाव ॥





॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ षष्ठस्तरंगः ॥ ६ ॥



॥ अथ श्रीगुरुवेदादिसाधनमिथ्यावर्णनम् ॥

॥ ३०४ ॥ ॥ उपोद्घात ॥

॥ दोहा ॥

चेतन भिन्न अनात्म सब,
मिथ्या स्वप्नसमान ।
यूं सुनि बोल्यो तीसरो,
तर्कदृष्टि मतिमान ॥ १ ॥

टीकाः—

१ चतुर्थतरंगमैं उत्तम अधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कह्या ।

२ पंचमतरंगमैं मध्यमअधिकारीकूं कह्या

३ या तरंगमैं कनिष्ठअधिकारीकूं उपदेशका प्रकार कहे हैं:—

जाकूं शंका बहुत उपजे ताकी यद्यपि बुद्धि तीव्र होवै है, तथापि वह कनिष्ठ-अधिकारी है ।

यह तरंग युक्तिप्रधान है, यातैं सुनै-अर्थमैं जाकूं कुतर्क उपजै ताकूं इस तरंगका उपयोग है।

कुतर्कदूषितबुद्धि कनिष्ठ अधिकारी होवै है । ताकूं उपदेशका प्रकार या तरंगमैं है ॥

पहले तरंगमैं प्रणवउपासना औ जगत्की उत्पत्तिनिरूपणसैं पूर्व यह कह्याः—"जो चेतन-सैं भिन्न अज्ञान औ ताका कार्य अनात्म कहिये है । सो अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्याई मिथ्या हैं" इस वार्ताकूं सुनिके दोनूं भायूंकूं प्रश्नतैं उपराम देखिकै—

॥ ३४२ ॥ नैयायिक स्वप्नकूं जाग्रत्विषै अनुभव किये पदार्थनकी स्मृतिरूप मानसविपर्यास कहे हैं। तिनके मतके अनुसार शिष्य प्रश्न करै है ॥

(तर्कदृष्टिका प्रश्न ॥ ३०५-३०६ ॥)

॥ ३०५ ॥ प्रश्नः—स्वप्नदृष्टांतसैं जाग्रत्-पदार्थ मिथ्या संभव नहीं ।

तर्कदृष्टि प्रश्न करै है:—

॥ दोहा ॥

पहिली जानै वस्तुकी,[३४२]
स्मृते स्वप्नमैं होय ।
जाग्रतमैं अज्ञात अति ।
ताहि लखै नहिं कोय ॥ २ ॥

टीकाः—पूर्व जो अत्यंत अज्ञात पदार्थ है ताका स्वप्नमैं ज्ञान होवै नहीं । किंतु जाग्रत्मैं जाका अनुभवज्ञान होवै ताकी स्वप्नमैं स्मृति होवै है। यातैं स्मृतिज्ञानके विषय जाग्रतके पदार्थ सत्य होनैतैं तिनका स्वप्नमैं स्मृतिरूप ज्ञान बी सत्य है। यातैं स्वप्नके दृष्टांतसैं जाग्रत्के पदार्थनकूं मिथ्या कहना संभवै नहीं ।

॥ ३०६॥ प्रश्नः—स्वप्न मिथ्या नहीं ॥

अन्य प्रकारतैं स्वप्नज्ञानके विषय पदार्थनकूं सत्यता प्रतिपादन करै हैं:—

॥ दोहा ॥

अथवा स्थूलहि लिंग तजि,
बाहरि देखत जाय ।
गिरि समुद्र वन वाजि गज,
सौ मिथ्या किहिं भाय ॥ ३ ॥

टीकाः—अथवा कहिये और प्रकारतैं स्वप्नका ज्ञान औ ताके विषय पदार्थ सत्य हैं, मिथ्या नहीं । काहेतैं ? स्वप्नअवस्थामैं स्थूलशरीरकूं त्यागिके लिंगशरीर बाहरि निकसिके साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखै हैं, यातैं स्वप्न मिथ्या नहीं ॥

(अंक ३०५-३०६ गत प्रश्नके उत्तर ॥ ३०७-३२८ ॥)

॥ ३०७ ॥ जाग्रत्के पदार्थनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं ॥

॥ दोहा ॥

यह हस्ती आगै खरो,
ऐसो होवै ज्ञान ।
स्वप्नमांहि स्मृतिरूप सो,
कैसै होय सुजान ॥ ४ ॥

टीकाः—

१ पूर्वकालसंबंधी पदार्थका ज्ञान स्मृति होवै है । जैसैं पूर्व देखे हस्तीकी "सो हस्ती" ऐसी स्मृति होवै है । औ—

२ "यह हस्ती सम्मुख स्थित है ऐसा ज्ञान स्मृति नहीं, किंतु प्रत्यक्ष कहिये है औ—

स्वप्नमैं तौ "यह हस्ती आगे स्थित है, यह पर्वत है, यह नदी है" ऐसा ज्ञान होवै है, यातैं जाग्रत्मैं देखे पदार्थनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं । किंतु हस्तीआदिकनका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है ॥ और—

जो ऐसैं कहैं:—"जाग्रत्मैं जानै पदार्थनका ही स्वप्नमैं ज्ञान होवै है । अज्ञातपदार्थका ज्ञान नहीं होवै । यातैं जाग्रत्पदार्थनके ज्ञानके संस्कारनतैं स्वप्नके ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है ॥ संस्कारजन्य ज्ञान स्मृति कहिये है । यातैं स्वप्नका ज्ञान स्मृतिरूप है" ।

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं? प्रत्यक्षज्ञान दो प्रकारका होवै है:—१ एक अभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवै है । २ दूसरा प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवै है ।

१ केवलइंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै सो अभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है । जैसैं नेत्रके संबंधतैं हस्तीका "यह हस्ती है" ऐसा ज्ञान अभिज्ञाप्रत्यक्ष है ॥ औ—

२ पूर्वज्ञानके संस्कारनतैं औ इंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै सो [३४३]प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है । जैसैं पूर्व देखे हस्तीका "सो हस्ती यह है" ऐसा ज्ञान होवै सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है ॥

तहां पूर्व हस्तीके ज्ञानके संस्कार औ हस्तीसैं नेत्रका संबंध प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षका हेतु है,

॥ ३४३ ॥ प्रत्यक्षज्ञानकी सामग्रीसहित संस्कारजन्यज्ञान, प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है । जो ताकूं संस्कारसहित इंद्रियसंबंधतैं जन्य कहैं तौ सो लक्षण बाह्यप्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षमैं तौ घटेगा । परंतु आंतरप्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षमैं ता लक्षणकी अव्याप्ति होवैगी । यातैं प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षका प्रथम कहा जो लक्षण सोई निर्दोष है । बाह्य आंतर साधारण है ।

यातैं "संस्कारजन्यज्ञान स्मृतिरूप ही होवै है" यह नियम नहीं। किंतु प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष बी संस्कारजन्य होवै है। परंतु इंद्रियसंबंध विना केवलसंस्कारजन्य ज्ञान होवै सो स्मृतिज्ञान कहिये है।

१ स्वप्नमैं हस्तीआदिकनका ज्ञान केवल-संस्कारजन्य नहीं; किंतु निद्रारूप दोषजन्य है औ हस्तीआदिकनकी न्याई स्वप्नमैं कल्पित इंद्रिय बी हैं। यातैं इंद्रियजन्य है।

यद्यपि स्वप्नके पदार्थ साक्षीभास्य हैं, इंद्रियजन्यज्ञानके विषय नहीं। तथापि अविवेकीकी दृष्टितैं स्वप्नका ज्ञान इंद्रियजन्य कहिये है॥

इस रीतिसैं स्वप्नका ज्ञान जाग्रत्के पदार्थ-नकी **स्मृति नहीं** ॥ औ—

२ निद्रासैं जागिके पुरुष ऐसैं कहे हैं:—"मैं स्वप्नमैं हस्तीआदिकनकूं देखता भया"। जो हस्तीआदिकनकी स्वप्नमैं स्मृति होवै तौ जागिके ऐसा कह्या चाहिये "मैं स्वप्नमैं हस्ती-आदिकनकूं स्मरण करता भया" ऐसैं कोई नहीं कहता। यातैं जाग्रत्के पदार्थनकी स्वप्नमैं **स्मृति नहीं**। औ—

३ "जाग्रत्मैं जो देखे सुने पदार्थ हैं तिनका ही स्वप्नमैं ज्ञान होवै" यह नियम नहीं। किंतु जाग्रत्मैं अज्ञातपदार्थनका बी स्वप्नमैं ज्ञान होवै है। कदाचित् स्वप्नमैं ऐसै विलक्षणपदार्थ प्रतीत होवै हैं, जो सारे जन्मविषै कदी देखे-सुने होवैं नहीं, यातैं तिनका ज्ञान **स्मृति नहीं** ॥

४ यद्यपि "इस जन्मके पदार्थनके ज्ञानके संस्कार ही स्मृतिके हेतु हैं" यह नियम नहीं, किंतु अन्य जन्मके ज्ञानके संस्कारनतैं बी स्मृति होवै है। काहेतैं? अनुकूलज्ञानतैं प्रवृत्ति होवै है, अनुकूलज्ञान विना प्रवृत्ति होवै नहीं। यातैं बालककी स्तनपानमैं जो प्रथमप्रवृत्ति होवै है ताका हेतु बालककूं बी "स्तनपान मेरे अनुकूल है" ऐसा ज्ञान होवै है। तहां अन्यजन्मविषै जो स्तनपानमैं अनुकूलता अनुभव करी है। ताके संस्कारनतैं बालककूं प्रथमअनुकूलताकी स्मृति होवै है। यातैं जन्मांतरके ज्ञानसंस्कारनतैं बी स्मृति होवै है। तैसैं इस जन्मविषै अज्ञात-पदार्थनकी वा अन्यजन्मके ज्ञानके संस्कारनतैं स्वप्नविषै स्मृति संभवै है॥

तथापि कोई पदार्थ स्वप्नमैं ऐसे प्रतीत होवै हैं, जिनका जाग्रत्मैं किसी जन्मविषै ज्ञान संभवै नहीं। जैसैं अपनै मस्तकछेदनकूं आप नेत्रनसैं स्वप्नमैं देखै है। तहां अपना मस्तकछेदन नेत्रनसैं जाग्रत्मैं देखै नहीं। यातैं जाग्रत्पदार्थन-के ज्ञानके संस्कारनतैं स्वप्नमैं **स्मृति नहीं**।

५ ऐसैं स्वप्नकूं स्मृतिरूप खंडनमैं अनेकयुक्ति ग्रंथकारोंने कही हैं, परंतु स्वप्नकूं स्मृति माननैमैं पूर्वउक्तदूषण अतिप्रबल हैः—जो स्मृतिज्ञानका विषय सम्मुख प्रतीत होवै नहीं। औ स्वप्नके हस्तीआदिक सम्मुख प्रतीत स्वकालमैं होवै हैं। यातैं हस्तीआदिकनकी स्वप्नमैं **स्मृति नहीं**।

॥ ३४४ ॥ इहां यह विशेष है:-

१ संस्कारजन्य ज्ञानकूं जो स्मृति कहैं तौ प्रत्यभिज्ञाज्ञान बी संस्कारजन्य है, तामैं स्मृतिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ताके निवारण-अर्थ स्मृतिके लक्षणमैं **मात्रपद**का निवेश किया चाहिये।

२ जो संस्कारमात्रजन्य ज्ञानकूं स्मृति कहैं तौ संस्कारमात्ररूप सामग्रीकूं अनुभवनाशके अनतर सदा विद्यमान होनैतैं सदा स्मृति हुई चाहिये। इस दोषके निवारणअर्थ स्मृतिके लक्षणमैं **उद्भूतपद**का बी निवेश किया चाहिये॥

इस रीतिसैं "उद्भूतसंस्कारमात्रजन्यज्ञान" **स्मृति** है। यह **स्मृतिका लक्षण** निर्दोष है

॥ ३०८॥ स्वप्नमैं लिंगशरीर बाहिर जायके जाग्रत्‌के पदार्थोंकूं देखता नहीं ।

"लिंगशरीर बाहरि निकसिके साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखै है" याका—

उत्तर ॥ दोहा ॥

बाहरि लिंग जु नीकसै,
देह अमंगल होय ।
प्रानसहित सुंदर लसै,
यातैं लिंगहि जोय ॥ ९ ॥

टीकाः—जो स्थूलशरीरतैं निकसिके लिंगशरीर बाहरि साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखै तौ लिंगशरीरके निकसनैतैं जैसैं मरणअवस्थामैं शरीर भयंकररूप प्रतीत होवै है, तैसैं स्वप्नअवस्थाविषे बी लिंगके अभावतैं स्थूलशरीर अमंगल कहिये भयंकर हुवा चाहिये । तैसैं प्राणरहित मृतकसमान हुवा चाहिये । औ स्वप्नअवस्थामैं ऐसा होवै नहीं, किंतु स्वप्नअवस्थामैं स्थूलशरीर प्राणसहित होवै है । औ जाग्रत्‌की न्याई सुंदर कहिये मंगलरूप होवै है। यातैं स्थूलशरीरके बाहरि लिंगशरीर स्वप्नावस्थामैं निकसै नहीं । औ—

जो ऐसैं कहैः—स्वप्नअवस्थामैं प्राण तौ जावै नहीं, किंतु अंतःकरण औ इंद्रिय बाहरि पर्वतादिकनमैं जायके तिनकूं देखै हैं; बाहरि नहीं जावै यातैं स्थूलशरीर मरणअवस्थाके समान भयंकर होवै नहीं । औ प्राणका बाहरि जानैका कछु प्रयोजन बी नहीं । काहेतैं ? प्राणमैं ज्ञानशक्ति नहीं । किंतु क्रियाशक्ति है । यातैं बाहरिके पदार्थनके ज्ञानकी जिनमैं सामर्थ्य है सोई जावै हैं। ज्ञानशक्ति अंतःकरण औ ज्ञानइंद्रियनमैं है । प्राणकी न्याई कर्मइंद्रियनमैं बी ज्ञानशक्ति नहीं । क्रियाशक्ति है । यातैं प्राण औ कर्मइंद्रिय शरीरमैं रहै हैं। यातैं मरणनिमित्ततैं दाहादिकनकी रिछा होवै है। औ बाहरि अंतःकरण ज्ञानइंद्रिय जावै हैं। साचे पर्वतादिकनकूं देखिके प्राण औ कर्मइंद्रियनके समीप आवै हैं ।

सो बी बनै नहीं । काहेतैं ?

१ स्थूलसूक्ष्मसमाजमैं सर्वका स्वामी प्राण है । प्राण विना शरीरकूं देखिके क्षणमात्र बी रहनै नहीं देते; बाहरि ले जावै हैं, दाह करै हैं, स्पर्शतैं स्नान करै हैं । यातैं स्थूलशरीरका सार प्राण है, तैसैं सूक्ष्मशरीरमैं बी प्रधान प्राण हैं।

प्राण[३४९]इंद्रियादिक परस्पर श्रेष्ठताविवादकरिके प्रजापतिके समीप जायके कह्या 'हे भगवन् ! हमारे विषे कौन श्रेष्ठ है?' तब प्रजापतिनै कह्या 'तुम सारे स्थूलशरीरमैं प्रवेश करिके एक एक निकसते जावो । जिसके निकसेतैं शरीर अमंगलरूप होइके गिरि पडै, सो तुमारेमैं श्रेष्ठ है' प्रजापतिके वचनतैं नेत्रादिक इंद्रियनतैं एकएकके अभावतैं अधादिरूप शरीरकी स्थिति देखी औ प्राणके निकसनैका उद्योग करतैं ही शरीर गिरनै लगा । तब सर्वनै यह निश्चय किया । हमारा सर्वका स्वामी प्राण है ।

इस कारणतैं जितनै शरीरमैं प्राण रहै । उतनै रहै हैं । शरीरतैं प्राणके निकसतैं ही सारे निकस जावै हैं । यातैं सूक्ष्मसमाजका राजाकी न्याई प्राण ही प्रधान है ।ताकै निकसै विना अंतःकरण ज्ञानइंद्रिय बाहरि निकसैं नहीं ।

२ किंवा अंतःकरण औ ज्ञानइंद्रिय भूतनके सत्त्वगुणके कार्य हैं । तिनमैं ज्ञानशक्ति है । क्रियाशक्ति नहीं । प्राणमैं क्रियाशक्ति है । ताके बलतैं मरणसमय लिंगशरीर इस स्थूलकूं

॥ ३४९ ॥ इहां प्राण औ इंद्रियशब्दकरिके तिनके अभिमानी देवनका ग्रहण है ॥

त्यागिके लोकांतरकूं जावैहै। औ प्राणके ही बलतैं इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति बाहरि घटादिकनके समीप जावै है। औ प्राणके सहारे विना अंतःकरणादिकनका बाहरि गमन संभवै नहीं॥ इसी कारणतै योगशास्त्रमैं कह्या हैः—"प्राणनिरोधके विना मनका निरोध होवै नहीं। [३४६]प्राणके संचारतैं मनका संचार होवै है। प्राणनिरोधतैं मनका निरोध होवै है"। यातैं मनका निरोधरूप जो राजयोग ताकी जिसकूं इच्छा होवै, सो प्राणनिरोधरूप हठयोगका अनुष्ठान करै। यातै बी प्राणके अधीन अंतःकरणका गमन। ताके निकसै विना अंतःकरण ज्ञानइंद्रिय बाहरि निकसै नहीं। औ—

३ स्वप्नअवस्थामैं स्थूलशरीर प्राणसमेत प्रतीत होवै है। यातैं "बाहरि जायके साचे पदार्थनकूं स्वप्नमैं देखै है" यह संभवै नहीं॥

४ किंवा कोई पुरुष अपने संबंधीसैं स्वप्नमैं मिलिके जो व्यवहार करै तौ जागिके वह संबंधी मिलै। तब ऐसैं नहीं कहता जो रात्रिकूं हम मिले थे औ अमुक व्यवहार किया था। औ पूर्वपक्षकी रीतिसैं तौ बाहरि निकासिके ता संबंधीसैं मिलिके व्यवहार साचा किया है। ता मिलनैका औ व्यवहारका ज्ञान संबंधीकूं चाहिये औ मिले। जब संबंधीनै कह्या चाहिये औ सिद्धांतमैं तौ संबंधी औ ताका मिलाप सब अंतर् ही कल्पित है॥

५ किंवा जो बाहरि जायके साचे पदार्थनकूं देखै तौ रात्रिमैं सोया पुरुष हरिद्वारमैं मध्याह्नके सूर्यतैं तपे [३४७]महैल गंगातैं पूर्व औ नीलपर्वत गंगातैं पश्चिम देखै है। तहां रात्रिमैं मध्याह्नका सूर्य नहीं। गंगातैं पूर्वदिशामैं हरिद्वारपुरी नहीं औ गंगातैं पश्चिम नीलपर्वत नहीं। यातैं बी साचे पदार्थनका देखना स्वप्नमैं असंभव है॥ औ

जाग्रत्‌की स्मृति अथवा ईश्वरकृत पर्वतादिकनका बाहरि निकसिके स्वप्नमैं ज्ञान होवै है। इन दोनूं पक्षनका निराकार किया॥

(सिद्धांतः-जाग्रतस्वप्नकी तुल्यता ॥ ३०९-३२८ ॥)

॥३०९॥ सारा त्रिपुटीसमाज स्वप्नमैं उपजै है॥

सिद्धांत कहै हैः—

॥ दोहा ॥

यातैं अंतर ऊपजै,
त्रिपुटी सकलसमाज।
वेद कहत या अर्थकूं,
सब प्रमान सिरताज॥ ६॥

टीकाः—जाग्रत्‌के पदार्थनकी स्मृति औ बाहरि लिंगका निकसना तौ संभवै नहीं। तथापि जाग्रत्‌की न्याईं ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय त्रिपुटी स्वप्नमैं प्रतीत होवै है। यातैं कंठकी नाडीके अंतर् ही सब कुछ उत्पन्न होवै है।

सबप्रमाणका सिरताज कहिये प्रधान जो वेद है तानै यह कह्या है। [३४८]उपनिषद्‌मैं यह

॥ ३४६ ॥ "हे सौम्य (प्रियदर्शन)! प्राण (रूप खंभे विषै) है (पक्षीकी न्याईं) बंधन जिसका ऐसा मन है" इस श्रुतिकरिके मन प्राणके आधीन है। यह स्पष्ट जानिये है॥

॥ ३४७ ॥ इहां महल कहिये हरिद्वारपुरीमैं स्थित मंदिर॥

॥ ३४८ ॥ "न तत्र रथा न रथयोगा न पंथानो भवंत्यथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते" अर्थः—"तहां (स्वप्नविषै) रथ नहीं हैं। अरु घोड़े नहीं हैं औ मार्ग नहीं है [किन्तु स्वप्नका अधिष्ठान साक्षी किंवा ब्रह्मचेतन है]। जाग्रत्‌के अंतर ही रथ घोडे औ मार्गनकूं सृजता है" इस श्रुतिमैं स्वप्नकालमैं रथादि

प्रसंग है:-"जाग्रत्के पदार्थ स्वप्नमैं नहीं प्रतीत होवै हैं। किंतु रथ औ घोडे तथा मार्ग वैसैं रथमैं बैठनैवाले स्वप्नमैं नवीन उत्पन्न होवै हैं यातैं पर्वत, समुद्र, नदी, वन, ग्राम, पुरी, सूर्य, चंद्र जो कुछ स्वप्नमैं दीखै हैं सो नवीन उपजै हैं ॥

जो स्वप्नमैं पर्वतादिक नहीं होवैं तौ तिनका प्रत्यक्षज्ञान स्वप्नमैं होवै है सो नहीं हुवा चाहिये। काहेतैं? विषयतैं इंद्रियका संबंध वा अंतःकरणकी वृत्तिका संबंध प्रत्यक्षज्ञानका हेतु है। यातैं पर्वतादिकविषय औ तिनके ज्ञानके साधन इंद्रिय तथा अंतःकरण, सारे अंतर उत्पन्न होवै हैं ॥

यद्यपि स्वप्नके पदार्थ शुक्तिरजतादिकनकी न्यांई साक्षीभास्य हैं । अंतःकरणइंद्रियनका स्वप्नके ज्ञानमैं उपयोग नहीं। यातैं ज्ञेय जो पर्वतादिक हैं तिनकी ही उत्पत्ति स्वप्नमैं माननी योग्य है। ज्ञाता, ज्ञान औ इंद्रियनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं ॥

१ तथापि जैसैं स्वप्नमैं पर्वतादिक प्रतीत होवै हैं तैसैं इंद्रिय अंतःकरणप्राणसहित स्थूलशरीर बी स्वप्नमैं प्रतीत होवै हैं, यातैं तिनकी बी उत्पत्ति माननी चाहिये।

२ किंवा स्वप्नके पदार्थनविषै नेत्रादिकनकी विषयता भान होवै है सो व्यावहारिक नेत्रादिकनकी विषयता तौ स्वप्नके प्रातिभासिक पदार्थनविषै बनै नहीं। काहेतैं? समसत्तावाले पदार्थ ही आपसमैं साधकबाधक होवै हैं। यह पंचमतरंगमैं प्रतिपादन करी है। यातैं व्यावहारिक नेत्रादिक शरीरमैं हैं बी, तिनैं स्वप्नके पदार्थनकी विषमसत्ता होनैतैं । तिनके ज्ञानकी विषयता स्वप्नके पर्वतादिकनकूं बनै नहीं ॥

३ किंवा व्यावहारिक जो इंद्रिय हैं सो अपनै अपनै गोलकोंकूं त्यागिके कार्य करनैमैं समर्थ होवैं नहीं। औ स्वप्नअवस्थामैं हस्तपादवाक्के गोलक तौ निश्चल दूसरेकूं दीखै हैं औ हस्तमैं द्रव्य ग्रहणकरिके पुकारता धावन करै है। यातैं स्वप्नमैं इंद्रियनकी उत्पत्ति अवश्यमाननी चाहिये।

तैसैं सुख, दुःख औ तिनका ज्ञान तथा सुखदुःखज्ञानका आश्रय प्रमाता स्वप्नमैं प्रतीत होवै है औ विना हुये पदार्थकी प्रतीति होवै नहीं ।

यातैं सारा त्रिपुटीसमाज स्वप्नमैं उत्पन्न होवै है ॥

अनिर्वचनीयख्यातिकी यह रीति है:— जितनै भ्रमज्ञान हैं, तिनके विषय सारे अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै हैं ॥ विषय विना कोई ज्ञान होवै नहीं। यह सिद्धांत है ॥

और शास्त्रनके मतमैं तौ अन्यपदार्थका अन्यरूपतैं भान होवै सो भ्रम कहिये है । सिद्धांतमैं तौ जैसा पदार्थ होवै तैसा ही ज्ञान होवै है। यातैं भ्रमस्थलमैं बी विषयकी उत्पत्ति अवश्य होवै है। विषय विना ज्ञान होवै नहीं ॥

इस रीतिसैं स्वप्नमैं त्रिपुटीकी प्रतीति होनैतैं सारा समाज उत्पन्न होवै है ॥ याके विषै—

॥ ३१० ॥ स्वप्नके उत्पत्तिकी शंका करिके अन्तःकरण वा अविद्याके परिणाम औ चेतनके विवर्त्त स्वप्नकी सिद्धि ॥ ३१०-३११ ॥

ऐसी शंका होवै है:-स्वप्नके जो पदार्थ

तीनकारि उपलक्षित सारे जगत्की नवीनसृष्टि (उत्पत्ति) कही है औ "संध्ये सृष्टिराह हि (उक्तश्रुति जाग्रत् औ सुषुप्तिकी संधिविषै सृष्टिकू कहै है)" यह उक्त श्रुतिरूप मूलवाला व्याससूत्र है। सो उक्तश्रुतिके अर्थ (स्वप्नसृष्टि) कूं दृढ करै है। यातैं स्वप्नविषै जाग्रतके पदार्थनकी स्मृति किंवा लिंगशरीरका बाहरि निर्गमन होयके तिसकारि साचे गिरिसमुद्रादिकनका दर्शन संभवे नहीं ॥

प्रतीत होवै हैं, तिनकी उत्पत्ति अंगीकार होवै तौ जैसैं स्वप्नदृष्टांतसैं जाग्रत्के पदार्थ मिथ्या सिद्धांतमैं कहे हैं, तैसैं जाग्रत्के पदार्थनकी न्यांई उत्पत्तिवाले होनेतैं स्वप्नके पदार्थ ही सत्य हुये चाहिये। औ स्वप्नके मांहि पदार्थनकी उत्पत्ति नहीं मानै तब यह दोष नहीं । काहेतैं?जाग्रतके पदार्थ तौ उत्पन्न-हुये प्रतीत होवै हैं औ स्वप्नमैं पदार्थ विना हुये प्रतीत होवै हैं । यातैं स्वप्नमैं विना हुये पदार्थनका ज्ञान भ्रमरूप होवै है । तिनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं ॥ ता-

॥ ३११ ॥ शंकाका समाधान ॥

॥ दोहा ॥

साधन सामग्री विना,
उपजै झूठ सु होय ।
बिन सामग्री ऊपजै,
यूं तिहि मिथ्या जोय ॥ ७ ॥

टीकाः-१ जिस वस्तुकी उत्पत्तिमैं जितना देशकालादिसामग्री साधन कहिये कारण है, उतनी सामग्री विना उपजै सो मिथ्या कहिये है। औ स्वप्नके हस्तीआदिकनकी उत्पत्तिके योग्य देशकाल है नहीं । बहुत कालमैं औ बहुत देश-मैं उपजनै योग्य हस्तीआदिक क्षणमात्र कालमैं सूक्ष्मकंठदेशमैं उपजै हैं । यातैं मिथ्या हैं ।

२ यद्यपि स्वप्नअवस्थामैं कालदेश बी अधिक प्रतीत होवै हैं तथापि अन्यपदार्थनकी न्यांई स्वप्नमैं अधिककाल औ अधिकदेश बी अनिर्वचनीय प्रातिभासिक उत्पन्न होवै हैं । काहेतैं ? विषय विना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं औ स्वप्नमैं अधिकदेशकालका ज्ञान होवै है। व्याव-हारिक देशकाल न्यून हैं यातैं प्रातिभासिकउत्पन्न होवै हैं । परंतु स्वप्नअवस्थामैं उपजै जो प्रातिभा-सिक देशकाल हैं सो स्वप्नअवस्थाके हस्तीआदि-कनके कारण नहीं । काहेतैं?कारण होवै सो पहली उपजै है औ कार्य पीछे उपजै है ॥ स्वप्नके देश-काल औ हस्तीआदिक एक ही समयमैं होवै हैं । यातैं तिनका कार्यकारणभाव बनै नहीं ॥ औ व्यावहारिक देशकाल न्यून हैं । हस्ती-आदिकनके योग्य नहीं । यातैं देशकालरूप सामग्री विना उपजै हैं । यातैं स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं ।

३ और बी मातासैं आदि लेके हस्तीआदि कनकी सामग्री स्वप्नमैं नहीं हैं । यद्यपि स्वप्न-मैं प्राणी पदार्थनके माता पिता बी प्रतीत होवै हैं। तथापि स्वप्नके माता पिता पुत्रकी उत्पत्ति-के कारण नहीं । काहेतैं ? माता पिता औ पुत्र एक क्षणमैं साथ उपजै हैं। यातैं तिनका कार्य-कारणभाव नहीं ॥ जा निद्रासहित अविद्यासैं स्वप्नके पदार्थ उपजै हैं सो अविद्या तिन पदा-र्थनविषै मातापना पितापना औ पुत्रपना उप-जावै है ॥ इस रीतिसैं स्वप्नके पदार्थनकी उत्प-त्तिमैं और कोई सामग्री नहीं, किंतु अविद्या ही निद्रारूप दोषसहित कारण है । जो दोषसहित अविद्यासैं जन्य होवै सो शुक्तिरजतकी न्यांई मिथ्या होवै है । यातैं स्वप्नके पदार्थ सत्य नहीं । मिथ्या हैं ॥

तिनका उपादानकारण अंतःकरण है अथवा साक्षात् अविद्या ही तिनका उपादानकारण है ॥

१ पहले पक्षमैं साक्षीचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है । औ--

२दूसरे पक्षमैं ब्रह्मचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है॥

॥ ३४९ ॥ इहां यह कछु विशेष है:--

१ स्थूलसूक्ष्मदेहद्वयअवच्छिन्न कूटस्थचेतनरूप पारमार्थिकजीव है । औ--

२ मायासैं आवृत कूटस्थविषै कल्पित अंतःकरणमैं चिदाभासरूप देहद्वयमैं अभिमानका कर्त्ता व्यावहारिकजीव है । औ--

इस रीतिसैं अंतःकरणका अथवा अविद्याका परिणाम औ चेतनका विवर्त्त स्वप्न है ॥ याके विषै—

॥ ३१२ ॥ त्रिविधसत्तापक्षमैं विलक्षण जाग्रत्स्वप्नकी दोसत्ताके मानैतैं अविलक्षणता ॥ ३१२—३१८ ॥

ऐसी शंका होवै हैः—दूसरे पक्षमैं ब्रह्मचेतन स्वप्नका अधिष्ठान कह्या औ अविद्या उपादानकारण कही । तहां अधिष्ठानज्ञानसैं कल्पितकी निवृत्ति होवैहै । औ स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म है । यातैं ब्रह्मज्ञान विना अज्ञानीकूं जागरणमैं स्वप्नकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये ।

॥ ३१३ ॥ अन्यशंकाः—जैसैं स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म औ उपादानकरण अविद्या है । तैसैं वेदांतसिद्धांतमैं जाग्रत्के व्यावहारिक पदार्थनका बी अधिष्ठान ब्रह्म है औ उपादानकारण अविद्या है । यातैं—

१ जाग्रत्के पदार्थनकूं व्यावहारिक कहै हैं । औ—

---

२ निद्रारूप मायासैं आवृत व्यावहारिक जीवरूप अधिष्ठानमैं कल्पित **प्रातिभासिकजीव है** ॥

इस भेदतैं जीव त्रिविध है । तिसके वादी जे विद्यारण्यस्वामीआदिक हैं तिनूंनै स्वप्नका अधिष्ठान व्यावहारिक जीव औ जगत् कह्या है । तिनमैं—

१ स्वप्नके जीव (द्रष्टा) का अधिष्ठान **जाग्रत्का जीव** (द्रष्टा) है । औ—

२ स्वप्नके जगत् (दृश्य) का अधिष्ठान **जाग्रत्का जगत्** (दृश्य) है । अरु—

३ स्वप्नअध्यासका उपादान व्यावहारिक जीव जगत्का आवरक निद्रारूप **अवस्थाज्ञान** (तूलाज्ञान) हैं ।

व्यावहारिक द्रष्टा औ दृश्य जड हैं ताकूं सत्तास्फूर्ति देनैरूप अधिष्ठानता संभवै नहीं । यातैं १ अहंकारावच्छिन्नचेतन २ वा अहंकारअनवच्छिन्न चेतन स्वप्नका अधिष्ठान है । यह दो मत समीचीन हैं । तिनमैं—

१ प्रथममत मानैं तौ अहंकारअवच्छिन्नका आच्छादक तूलाज्ञान ही स्वप्नका उपादान संभवै है । जाग्रत्के बोधसैं ब्रह्मज्ञान विना ताकी निवृत्ति बी संभवै है । औ—

२ अविद्यामैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतन वा बिंबरूप ईश्वरचेतन विवरणकारकी रीतिसैं व्यापक होनैतैं अहंकारअनवच्छिन्नचेतन है ताकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानैं तौ ताका आच्छादक मूलाज्ञान ही स्वप्नका उपादान मानना होवै है । जाग्रत् बोधसैं ता स्वप्नकी बाधरूप निवृत्ति होवै नहीं । किंतु उपादानमैं विलयरूप निवृत्ति होवै है । परंतु अहंकारअनवच्छिन्न चेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानैं बी शरीरके अंतरदेशस्थ चेतन ही अधिष्ठान संभवै है । बाह्यदेशस्थ चेतन नहीं ॥ अविद्यामैं प्रतिबिंब जीवचेतन वा अविद्यामैं बिंबमैं ईश्वरचेतन दोनूं अहंकारअनवच्छिन्न हैं औ व्यापक होनैतैं शरीरके अंतर बी हैं ॥ अंतरदेशस्थ चेतनमैं ही जो स्वप्नकी अधिष्ठानता है । ताका अंतःकरणकूं अवच्छेदक मानै तौ अहंकारअवच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवै है ॥ तिसी चेतनमैं स्वप्नकी अधिष्ठानताका अन्तःकरणकूं अवच्छेदक (व्यावर्तक) नहीं मानै तौ अहंकारअनवच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवै है । अहंकारअनवच्छिन्न, अविद्याप्रतिबिंब औ बिंब दोनूं हैं औ मतभेदसैं दोनूंकूं स्वप्नकी अधिष्ठानता है, **तथापि** अविद्यामैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतनकूं अधिष्ठानता कहना ही समीचीन है ॥

किंवा अविद्यामैं प्रतिबिंबकूं कल्पित होनैतैं अधिष्ठानताकी अयोग्यता है । यातैं अन्तःकरणउपहित वा अविद्याउपहित साक्षीचेतन ही स्वप्नका अधिष्ठान मानना उचित है । ये सर्व **त्रिसत्तावादिनकी रीतियां** हैं ॥ औ—

दृष्टिसृष्टिवादकी रीतिसैं सर्व अनात्मपदार्थनकी एक (प्रातिभासिक) सत्ताके होनैतैं जाग्रत्स्वप्न दोनूंकूं ब्रह्मचेतन ही अधिष्ठान मान्या है ॥

स्वप्नकूं प्रातिभासिक कहै हैं ।

ऐसा भेद नहीं हुवा चाहिये । काहेतैं? दोनूंका अधिष्ठान ब्रह्म है औ उपादानकारण अविद्या है । यातैं—

१ जाग्रत् स्वप्न दोनूं व्यावहारिक हुये चाहिये ।

२ अथवा दोनूं प्रातिभासिक हुये चाहियें।

॥ ३१४ ॥ सो दोनूं शंका बनै नहीं। काहेतैं ?

प्रथमशंकाका समाधान यह हैः— निवृत्ति दो प्रकारकी होवै है यह पूर्व ख्याति-निरूपणमैं कही है ॥

१ कारणसहित कार्यका विनाशरूप अत्यंत निवृत्ति तौ स्वप्नकी जाग्रत्मैं ब्रह्मज्ञान विना बनै नहीं ।

२ परंतु दंडके प्रहारतैं जैसैं धटका मृत्तिका-मैं लय होवै है । तैसैं स्वप्नकी हेतु जो निद्रा-दोष ताके नाशतैं वा स्वप्नकी विरोधी जाग्रत् की उत्पत्तितैं अविद्यामैं लयरूप निवृत्ति स्वप्नकी ब्रह्मज्ञान विना संभवै है ।

॥ ३१५ ॥ और जो शंका करीः—"जाग्रत् स्वप्न दोनूं समान हुये चाहिये" सो बनै नहीं। काहेतैं ?

१ जाग्रत्के देहादिक पदार्थनकी उत्पत्तिमैं तौ अन्यदोषरहित केवल अनादि अविद्या ही उपादानकारण है । औ—

२ स्वप्नके पदार्थनमैं तौ सादिनिद्रादोष बी अविद्याका सहायक है ।

१ यातैं अन्यदोषरहित केवल अविद्याजन्य व्यावहारिक कहिये है । औ—

२ सादिदोषसहितैं[३५०] अविद्याजन्य प्राति-भासिक कहिये है ।

१ स्वप्नके पदार्थ निद्रादोषसहित अविद्या जन्य होनैतैं प्रातिभासिक हैं । औ—

२ जाग्रत्के पदार्थ अन्यदोषरहित अविद्या-जन्य होनैतैं व्यावहारिक कहिये हैं ।

इस रीतिसैं स्वप्नके पदार्थनमैं जाग्रत्पदार्थ-नतैं विलक्षणता है । परतु यह संपूर्ण तीन प्रकार की सत्ता मानिके स्थूलदृष्टिसैं कही है ।

विचारदृष्टिसैं तौ—

१ तीनि प्रकारकी सत्ता बनै नहीं । औ—

२ जाग्रत्स्वप्नकी परस्परविलक्षणता बी बनै नहीं ।

॥ ३१६ ॥ यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं पूर्वप्रकारतैं व्यावहारिक औ प्राति-भासिकपदार्थनका भेद कह्या है । यातैं तीनि सत्ता मानी हैं ।

तैसैं विद्यारण्यस्वामीनैं बी तीनि सत्ता मानी हैं । काहेतैं ? यह प्रसंग तिन्होंनै लिखा हैः—दो प्रकारके देहादिक पदार्थ हैंः—

१(१) एक तौ ईश्वररचित हैं । सो बाह्य हैं । औ—

(२) दूसरे जीवके संकल्परचित हैं । सो मनोमय कहिये हैं । औ अंतर हैं ॥

तिन दोनूंमैं—

२(१) जीवसंकल्पतैं रचित अंतरमनोमय साक्षीभास्य हैं । औ—

(२) ईश्वररचित बाह्य हैं, सो प्रमाता-प्रमाणके विषय हैं ॥ औ—

३(१) अंतरमनोमय देहादिक ही जीवकूं सुखदुःखके हेतु हैं । औ—

(२) बाह्य जो ईश्वररचित हैं, । सो सुख-दुःखके हेतु नहीं ।

४(१) यातैं अंतरमनोमयपदार्थनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अपेक्षित है ॥ औ—

॥ ३५० ॥ तूलाविद्याजन्य ॥

(२) बाह्यप्रपंच सुखदुःखका हेतु नहीं। यातैं ताकी निवृत्ति अपेक्षित नहीं ॥

जैसैं दो पुरुषनके दो पुत्र विदेशमैं गये होवैं तिनमैं एकका पुत्र मरि जावै। एकका जीवता होवै। सो जीवता पुत्र बडी विभूतिकूं प्राप्त होयके किसी पुरुषद्वारा अपनै पिताकूं अपनी विभूति-प्राप्तिका औ द्वितीयके मरणका समाचार भेजै। तहां समाचार सुनावनैवाला दुष्ट होवै। यातैं—

१ जीवते पुत्रके पिताकूं कहै:—तेरा पुत्र मरिगया। औ—

२ मरे पुत्रके पिताकूं कहै:—तेरा पुत्र शरीरतैं नीरोग है। बडी विभूतिकूं प्राप्त हुवा है। थोड़े कालमैं हस्तीआरूढ बड़े समाजतैं आवैगा ॥

ता वंचकवचनकूं सुनिके—

१ जीवते पुत्रका पिता रोवै है। बड़े दुःखको अनुभव करै है। औ—

२ मरे पुत्रका पिता बडे हर्षकूं प्राप्त होवै है। इस रीतिसैं देशांतरविषै—

१ (१) ईश्वररचित पुत्र जीवैं है तौ बी मनोमयपुत्र मरि गया। यातैं दुःख होवै है॥

(१) ईश्वररचित जीवतेका सुख होवै नहीं।

२ (१) तैसैं दूसरेका ईश्वररचित पुत्र मरि गया है। ताका दुःख होवै नहीं।

(२) मनोमय जीवै है। ताका सुख होवै है॥ यातैं—

१ जीवसृष्टि ही सुखदुःखकी हेतु है।

२ ईश्वरसृष्टि सुखदुःखकी हेतु नहीं ॥

इस रीतिसैं विद्यारण्यस्वामीनैं जीवसृष्टि औ ईश्वरसृष्टि दो प्रकारकी कही है ॥ तहां—

जीवसृष्टि प्रातिभासिक है। औ—

२ ईश्वरसृष्टि व्यावहारिक है ॥

ऐसैं और ग्रंथकारोंनै बी सत्ता तीनि प्रकारकी कही है ॥

१ चेतनकी परमार्थसत्ता है। औ—

चेतनसैं भिन्न जडपदार्थनकी दो प्रकारकी सत्ता है ॥ एक व्यावहारिकसत्ता औ दूसरी प्रातिभासिकसत्ता है ॥

२ सृष्टिके आदिकालमैं ईश्वरसंकल्पतैं उपजे जो केवलअविद्याके कार्य पंचभूत औ तिनके कार्यकी व्यावहारिकसत्ता है।

३ दोषसहित अविद्याके कार्य स्वप्नशुक्तिरजतादिकनकी प्रातिभासिकसत्ता है ॥

इस रीतिसैं

१ जाग्रत्पदार्थनकी व्यावहारिकसत्ता। औ—

२ स्वप्नकी प्रातिभासिकसत्ता कही है।

॥ ३१७ ॥ तथापि[३५१] अनात्मपदार्थनकी सर्वकी प्रातिभासिक ही सत्ता है। यातैं दो प्रकारकी ही सत्ता है ॥

१ चेतनकी परमार्थसत्ता है। औ—

२ चेतनसैं भिन्न सकलअनात्माकी प्रातिभासिक ही सत्ता है।

जाग्रत्स्वप्नके पदार्थनकी किंचित्मात्र बी विलक्षणता सिद्ध होवै नहीं। या उत्तमसिद्धांतकूं प्रतिपादन करै हैं:—

॥ चौपाई ॥

बिन सामग्री उपजत यातैं,
स्वप्नसृष्टि सब मिथ्या तातैं।
देशकालको लेस न जामैं,
सर्वजगत उपजत है तामैं ॥ ८ ॥

॥ ३५१ ॥ इहां ३१७ सैं लेके ३२९ पर्यंत दृष्टिसृष्टिवादका ही प्रतिपादन किया है ॥

स्वप्नसमान झूठ जग जानहु,
लेस सत्य ताकूं मति मानहु ।
जाग्रतमांहि स्वप्न नहिं जैसें,
स्वप्नमांहि जाग्रत नहिं तैसें ॥ ९ ॥

टीकाः-देशकालसामग्री बिना स्वप्नके हस्तीपर्वतादिक उपजै हैं। यातैं मिथ्या कहिये हैं॥ तैसें आकाशादिप्रपंचकी सृष्टि ब्रह्मतैं होवै है, ता ब्रह्मविषै देशकालका लेश बी नहीं है ॥ स्वप्नविषै हस्तीपर्वतादिकनके योग्य तौ देश-काल नहीं है। तथापि अल्पदेशकाल हैं। तैसें आकाशादिकनकी सृष्टिमैं अल्पदेशकाल बी नहीं हैं। काहेतैं? देशकालरहित परमात्मासैं आकाशा-दिकनकी सृष्टि कही है ॥ इस कारणतैं-

१ तैत्तिरीयश्रुतिमैं आकाशादिकनकी क्रमतैं सृष्टि कही है। देशकालकी सृष्टि नहीं कही ॥ औ-

२ सूत्रकार भाष्यकारनै बी देशकालकी सृष्टि नहीं कही ॥

सृष्टि नाम उत्पत्तिका है ॥

तहां तैत्तिरीयश्रुतिका औ सूत्रकारभाष्यकार-का यही अभिप्राय हैः-आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति देशकालसामग्री बिना होवै है । यातैं [३९२]आकाशादिक स्वप्नकी न्यांई मिथ्या हैं ॥

॥ ३९२ ॥ इहां यह रहस्य हैः-जैसैं कोई दो बलिष्ठपुरुष शून्यवनमैं अपनी अपनी बलिष्ठताका विवादकरिके स्वस्वबलकी परीक्षाअर्थ "जो अन्यकूं मारे सो बलिष्ठ" ऐसी प्रतिज्ञा करिके उभयफलयुक्त-शक्ति (शस्त्रविशेष) कूं बीचमैं धरिके तिसके एक-एक फलकूं हृदय देशमैं लगायके परस्परके सम्मुख बलके करनैकरिके दोनूं मृत्युकूं पावैं । तैसें ब्रह्मरूप शून्यवनमैं जाग्रत्प्रपंच औ स्वप्नप्रपंचरूप दो बली पुरुष हैं। तिनका परस्परविषै पस्परके दृष्टांतसैं परस्परका प्रहार होवै है। सो दिखावै हैंः-

१ देशकालादि सामग्रीसैं बिना उपजै सो झूठ होवै है। जैसैं देशरूप सामग्रीके पूर्ण होते बी कालरूप सामग्रीकी न्यूनतासैं उपजे पांखका परेवा, ठीकरी-की अशरफी, चमड़ेका सर्प, इत्यादिक ऐंद्रजालिक-(बाजीगररचित) पदार्थ मिथ्या कहिये हैं॥

तैसें हितानामक कंठकी नाडीरूप अल्पदेश औ अल्पकालविषै उपज्या स्वप्नप्रपंच मिथ्या है । ताके दृष्टांतसैं (तिसके सदृश होनैतैं) जाग्रत्प्रपंच मिथ्या है॥ ऐसैं स्वप्नके दृष्टांतसैं जाग्रत्का प्रहार है॥

२ तैसें ही देशकालरूप सामग्रीके लेशतैं रहित ब्रह्मविषै जाग्रत्प्रपंच प्रतीत होवै है। यातैं सो असत् है। काहेतैं? प्रतीयमान देश काल तौ जाग्रत्प्रपंचके अन्तर्गत हैं। तिनतैं भिन्न देश काल प्रपंचके कारण कहै। ताकूं पूछया चाहियेः-(१) वे देशकाल ब्रह्मसैं अभिन्न हैं। (२) वा भिन्न हैं?

(१) अभिन्न कहै तौ ब्रह्मसैं भिन्न देशकालके अभावतैं देशकालरहित ब्रह्मविषै प्रपंचकी प्रतीति सिद्ध भई ॥ औ-

(२) जो ब्रह्मसैं भिन्न देशकाल कहै तौ (१) वे सत्य हैं। (२) किंवा मिथ्या हैं?

[१] सत्य कहै तौ अद्वैतश्रुतिसैं विरोध होवैगा । औ-

[२] मिथ्या कहै तौ तिनकूं बी प्रपंचकी न्यांई कार्य होनैतैं तिनके कारण बी कोई देश-काल कहे चाहिये ॥

(क) जो आपके कारण आप ही हैं तौ आत्माश्रय होवैगा। औ-

(ख) जो प्रथमदेशकालके कारण द्वितीय औ द्वितीयके प्रथम कहै तौ परस्परकी उत्पत्तिविषै परस्परकी अपेक्षाके होनैतैं अन्योन्याश्रय होवैगा। औ-

(ग) जो द्वितीयके तृतीय, फेर तृतीयके प्रथम-देशकाल कारण कहै तौ चक्रकी न्यांई भ्रमण-रूप चक्रिका होवैगी।

(घ) जो तृतीयदेशकालके कारण चतुर्थ औ चतुर्थके कारण पंचम कहै तौ अनन्तदेश

॥ ३१८ ॥ यद्यपि मधुसूदनस्वामीनै देशकाल साक्षात् अविद्याके कार्य कहे हैं।यातैं मायाविशिष्ट परमात्मासैं पहली मायाके परिणाम देशकाल होवैं हैं।तिसतैं अनन्तर आकाशादिकनकी उत्पत्ति होवै हैं । यातैं योग्यदेशकालतैं आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्ति संभवै है ॥

तथापि मधुसूदनस्वामीका यह अभिप्राय नहीं:-जो देशकाल प्रथम होवै हैं औ आकाशादिक उत्तर होवै हैं । काहेतैं ?

१ अतीतकालमैं होवै सो प्रथम औ पूर्व कहिये है ॥

२ भविष्यकालमैं होवै सो उत्तर कहिये है । जाकूं पाछे कहे है ॥

आकाशादिकनकी उत्पत्तितैं प्रथम देशकाल उपजै हैं । या कहनैतैं आकाशादिकनकी उत्पत्ति कालतैं पूर्वकालउपहित परमात्मा देशकालका अधिष्ठान है । यह सिद्ध होवैगा यातैं देशकालकी उत्पत्तिमैं पूर्वकालकी अपेक्षा होवैगी । औ-कालकी उत्पत्ति विना पूर्वकाल असिद्ध है । यातैं आकाशादिकनतैं पूर्वकालमैं देशकालादिक होवै हैं । यह कहना बनै [३५३] नहीं । किंतु

मधुसूदनस्वामीका यह अभिप्राय है:-

१जैसैं भूतभौतिकप्रपंच प्रतीत होवैं है ।औ-तैसैं देशकाल बी प्रतीत होवै है । औ-

(१) आत्मासैं भिन्न कोई नित्य है नहीं । यातैं देशकाल नित्य नहीं। औ--

(२) विना हुयेकी प्रतीति होवै नहीं । यातैं आकाशादिकनकी न्यांई देशकालकी बी उत्पत्ति होवै है ॥

सो देशकाल मायाके परिणाम हैं औ चेतनके विवर्त हैं । जो विवर्त होवै सो किसीका कारण होवै नहीं । यातैं आकाशादिक प्रपंचकी उत्पत्तिमैं देशकालकूं कारणता बनै नहीं ॥

२ किंवा कारण प्रथम होवै है, कार्य उत्तर होवै है ॥ आकाशादिक प्रपंचतैं देशकाल प्रथम होवै है । यह कहना बनै नहीं । यह वार्ता

कालकी धारारूप अनवस्था होवैगी ।

यातैं ब्रह्मविषै कोई बी देशकाल सिद्ध होवै नहीं ॥

इस रीतिसैं देशकालरहित ब्रह्मतैं जाग्रत्जगत्की उत्पत्ति प्रतीत होवै है । यातैं जाग्रत्प्रपंच असत् (तुच्छ) है ॥

किंवा जाग्रत्कालमैं स्वप्नपदार्थनकी स्मृति होवै है औ स्वप्नमैं बहुत करिके जाग्रत्के पदार्थनकी स्मृति होवै नहीं । यातैं बी जाग्रत्प्रपंच असत् है । ताके दृष्टांतसैं (तिसके सदृश होनेकरि) स्वप्नप्रपंच बी असत् (वंध्यापुत्रके समान) है । औ जब जाग्रत्का अभाव है। तब ताके अन्तर्गत समाधिअवस्थाका बी चेतनमैं अभाव है। औ जब जाग्रत्स्वप्नका अभाव है तब दोनूं अवस्थाविषै वर्तमान बुद्धिके अभावतैं ताका विलयरूप सुषुप्ति औ सुषुप्तिके अन्तर्गत मरण मूर्छाका बी अभाव है ।

इस रीतिसैं ब्रह्मविषै सारे प्रपंचकी असिद्धितैं अजातवाद सिद्ध होवै है ।

॥ ३५३ ॥ देशकालकी उत्पत्तिमैं पूर्वकाल (भूतकाल) कूं कारण मानै तौ ता (पूर्वकाल) की उत्पत्तिमैं किसी कालकूं कारण मान्या चाहिये ।

१ जो सो आपकी उत्पत्तिमैं आप ही कारण है तो आत्माश्रय होवैगा । औ--

२ ताका अन्य पूर्वकाल औ अन्यका आप कारण कहै तौ अन्योन्याश्रय होवैगा ।

३ जौ द्वितीय पूर्वकालका कारण तृतीय पूर्वकाल औ तृतीयपूर्वकालका कारण प्रथमपूर्वकाल कहै तौ चक्रिका होवैगी ॥

४ जो तृतीयपूर्वकालका कारण चतुर्थपूर्वकाल औ चतुर्थका कारण पंचमपूर्वकाल कहै ! तौ अनवस्था होवैगी ॥

इस रीतिसैं दोषसमूहके सद्भावतैं देशकालकी उत्पत्तिमैं पूर्वकालकूं कारण मानना अयुक्त है ॥

नेडै ही कहि आये हैं । यातैं बी देशकालकूं आकाशादिक प्रपंचकी कारणता बनै नहीं । किंतु स्वप्नके पितापुत्रकी न्याई देशकालसहित आकाशादिक प्रपंच मायाविशिष्ट परमात्मातैं उत्पन्न होवै हैं ॥ औ--

कोई पदार्थ किसी देशमैं किसी कालमैं उपजै है, अन्यदेशमैं अन्यकालमैं नहीं उपजै है । इस रीतिसैं सारे पदार्थ प्रलयकालमैं नहीं उपजै हैं । सृष्टिकालमैं उपजै हैं । यातैं देशकालकूं कारणता प्रतीत बी होवै है तौ बी जा मायातैं देशकालसहित प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है । ता मायातैं ही देशकालमैं कारणता औ अन्यप्रपंचमैं कार्यता प्रतीत होवै है ।

आकाशादिप्रपंचके देश काल कारण नहीं । याकै विषै

॥ ३१९ ॥ ब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवै है इत्यादिस्थलमैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार ॥ ३१९-३२१ ॥

ऐसी शंका होवै हैः-[पूर्वपक्षी] विना हुये पदार्थनकी तौ प्रतीति होवै नहीं । औ सिद्धांतमैं अंगीकार नहीं । जो विना हुयेकी प्रतीति मानै ! तौ--

१ असत्ख्यातिका अंगीकार होवैगा ॥ औ-
२ विना हुये वंध्यापुत्र शशशृंगादिकनकी प्रतीति हुई चाहिये ।

यातैं विना हुयेकी प्रतीति होवै नहीं ॥

यातैं देशकालमैं कारणता नहीं होवै तौ देशकालमैं सर्वपदार्थनकी कारणता मायाके बलतैं बी प्रतीत नहीं हुई चाहिये । औ कारणता देशकालमैं प्रतीत होवै है । यातैं देश काल सर्वप्रपंचके कारण हैं । औ--

जो सिद्धांती ऐसै कहैः-सर्वप्रपंचका कारण ब्रह्म है । ब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवै है । औ देशकालमैं कारणता नहीं॥ सो बी बनै नहीं । काहेतैं--

१ जैसैं देशकालका अधिष्ठान ब्रह्म है तैसै सर्वप्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है । देशकालमैं ही ब्रह्मकी कारणता प्रतीत होवै। अन्यमैं नहीं । या कहनैमैं कोई हेतु नहीं । यातैं अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवै तौ ब्रह्म सर्वप्रपंचका अधिष्ठान है। यातैं सर्वप्रपंचमैं कारणता प्रतीत हुई चाहिये । किसीमैं कारणता औ किसीमैं कार्यता ऐसा भेद नहीं चाहिये ।

२ किंवा देशकालमैं कारणता नहीं है औ ब्रह्ममैं कारणता है । सो ब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवै है । या कहनेतैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवैगा । काहेतैं ? अन्यवस्तुकी अन्यरूपतैं प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहै हैं । देश काल कारण नहीं । यातैं कारणतैं अन्य अकारण है ॥ तिनकी अन्यरूपतैं कहिये कारणरूपतैं प्रतीति माननैमैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवैगा । औ सिद्धांतमैं अन्यथाख्याति अंगीकार नहीं ।

जो या स्थानमैं अन्यथाख्याति मानै तौ शुक्तिमैं अनिर्वचनीय रूपेकी उत्पत्ति सिद्धांतमैं मानी है सो निष्फल होवैगी । काहेतैं ? अन्यथाख्यातमैं दो मत हैंः-

(१) एक तौ अन्यदेशमैं स्थित पदार्थकी अन्यदेशमैं प्रतीति अन्यथाख्याति है। जैसैं कांताकरमैं स्थित रजतकी सम्मुख शुक्तिदेशमैं प्रतीति अन्यथाख्याति है ।

(२) अथवा अन्यपदार्थनकी अन्यरूपतैं प्रतीति अन्यथाख्याति है । जैसै शुक्तिकी ही रजतरूपतै प्रतीति अन्यथाख्याति कहिये है ॥

ऐसैं सारे भ्रमस्थलमैं अन्यथाख्यातिसैं निर्वाह संभवै है। अनिर्वचनीय रजतादिकनकी उत्पत्तिकथन असंगत होवैगा ॥ औ----

जो सिद्धांती ऐसैं कहैः-विषयके समानाकार ज्ञान होवै है। अन्यवस्तुका अन्यरूपतैं ज्ञान संभवै नहीं । यातैं रजताकार ज्ञानका विषय बी अनिर्वचनीय रजत उत्पन्न होवै है । या अद्वैतसिद्धांतमैं कारणतैं अन्य जो देशकाल, तिनविषै ब्रह्मकी कारणताका ज्ञान संभवै नहीं। यातैं देशकालमैं कारणता जो प्रतीत होवै है ताका विनाहुयेका अथवा ब्रह्ममैं स्थितका भान संभवै नहीं। किंतु देशकालमैं ही कारणता है। ताका भान होवै है ॥

इस रीतिसैं "आकाशादिक प्रपंचके कारण देश काल नहीं"। यह कथन असंगत है ॥

॥ ३२० ॥ [सिद्धांतीः-] सो शंका बनै नहीं। काहेतैं ? ब्रह्मकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवै है।

जैसैं जैंपापुष्पसंबंधी[३५४] स्फटिकमैं पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है। अधिष्ठानकी सत्यता स्वप्नकालमैं मिथ्याहस्तीपर्वतादिकनमैं प्रतीत होवै है। तहां स्फटिकमैं अनिर्वचनीय रक्तताकी उत्पत्तिका अंगीकार नहीं । किंतु पुष्पकी रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवै है, यातैं श्वेतस्फटिककी रक्तरूपतैं प्रतीति होनैतैं रक्तताके ज्ञानमैं अन्यथाख्याति ही मानी है ॥

तैसैं स्वप्नमैं मिथ्यापदार्थनविषै सत्यता प्रतीत होवै। तहां अनिर्वचनीयसत्यता तिन पदार्थनविषै उत्पन्न होवै। यह कथन तौ "सत्य। मिथ्या है"। इस [व्याघातदोषवाले] वचनकी न्याईं संभवै नहीं औ विना हुयेकी प्रतीति होवै नहीं। किंतु स्वप्नके अधिष्ठानचेतनकी सत्यता मिथ्यापदार्थनमैं प्रतीत होवै है। यातैं मिथ्यापदार्थनकी सत्यरूपतैं प्रतीति होनैतैं सत्यताके ज्ञानमैं अन्यथाख्याति ही मानी है । तैसैं अधिष्ठानब्रह्मकी कारणता देशकालमैं अन्यथाख्यातिसैं प्रतीत होवै है । और--

॥ ३२१ ॥ जो ऐसैं कहैः-इतनै स्थानमैं अन्यथाख्याति मानै तौ सारे भ्रममैं अन्यथाख्याति ही माननी चाहिये ॥

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ? शुक्तिरजतादिकनमैं अन्यथाख्याति माननैमैं यह दोष कह्या हैः-विषयतैं विलक्षण ज्ञान बनै नहीं ॥ औ-

जहां स्फटिकमैं रक्तताका ज्ञान होवै, तहां रक्तपुष्पका स्फटिकतैं संबंध है । यातैं स्फटिकसंबधी पुष्पकी रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवै है। काहेतैं ? अंतःकरणकी वृत्ति जब रक्तपुष्पाकार होवै, ताही वृत्तिका विषय रक्तपुष्पसंबंधी स्फटिकहै यातैं पुष्पकी रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवै है ॥ औ [तैसैं] शुक्तिका तौ रजतरूपतैं ज्ञान संभवै नहीं। काहेतैं ? शुक्तिदेशमैं अनिर्वचनीय तथा व्यावहारिकरजत तौ अन्यमतमैं है नहीं। किंतु शुक्ति है। ता शुक्तिके संबंधसैं शुक्तिके समानाकार ही अंतःकरणकी वृत्ति होवैगी। रजताकार अंतःकरणकी वृत्ति होवै नहीं। यातैं अविद्याका परिणाम। चेतनका विवर्त अनिर्वचनीयरजत औ ताका ज्ञान। दोनूं उत्पन्न होवै हैं। औ--

स्फटिकमैं रक्तता प्रतीत होवै। तहां वृत्तिका संबंध स्फटिक औ रक्तपुष्प दोनूंसैं होवै है। रक्तपुष्पके संबंधतैं रक्ताकारवृत्ति होवै है। ता वृत्तिका स्फटिकतैं बी संबंध है औ स्फटिकमैं रक्तताकी छाया है। यातैं पुष्पका धर्म रक्तता स्फटिकमैं ताही वृत्तिका विषय है ॥

॥ ३५४ ॥ जावकके पुष्प । जाहीकूं किसी देशमैं जावलीके, किंवा जासूदके पुष्प बी कहते हैं यह पुष्प लालरंगवाला होवै है।

इस रीतिसैं

१ जहां दो पदार्थनका संबंध है तहां एकके धर्मकी दूसरेमैं प्रतीति संभवै है। तहां अन्यथाख्याति ही संभवै है ॥

२ जहां दोनूं पदार्थनका संबंध नहीं, तहां अन्यथाख्याति नहीं; किंतु अनिर्वचनीयख्याति है।

जैसैं पुष्पसंबंधी स्फटिकमैं पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है तैसैं स्वप्नके हस्तीपर्वतादिकनका बी अधिष्ठानचेतनतैं संबंध है। यातैं चेतनका धर्म सत्यता बी चेतनसंबंधी हस्तीपर्वतादिकनमैं प्रतीत होवै है। सो अन्यथाख्याति है ॥ तैसैं अधिष्ठानचेतनका धर्म कारणता अधिष्ठानचेतनसंबंधी देशकालमैं प्रतीत होवै है ॥

॥ ३२२ ॥ जाग्रत्प्रपंच सामग्री विना होवै है। यासैं स्वप्नसमान मिथ्या है।

और जो पूर्व शंका करीः—"अधिष्ठानचेतनका संबंध सर्वप्रपंचतैं है। जो संबंधीका धर्म अन्यथाख्यातिसैं अन्यमैं प्रतीत होवै तौ चेतनकी कारणता सर्वप्रपंचमैं प्रतीत हुई चाहिये'।

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं ?

१ जैसैं स्वप्नमैं दो शरीर उत्पन्न होवै हैं।

(१) एकशरीर पितारूप प्रतीत होवै है। औ

(२) दूसरा शरीर पुत्ररूप प्रतीत होवै है ॥

तहां दोनूं शरीरनका स्वप्नके अधिष्ठानचेतनतैं संबंध बी है । तथापि पिताशरीरमैं अधिष्ठानचेतनकी कारणता प्रतीत होवै है औ पुत्रशरीरमैं कारणता प्रतीत होवै नहीं। किंतु पिताजन्य पुत्र है। इस रीतिसैं पुत्रशरीरमैं कार्यता प्रतीत होवै है ॥ इस रीतिसैं यद्यपि अधिष्ठानचेतनसैं संबंध तौ सर्वका है। तथापि देशकालमैं चेतनधर्म कारणताकी प्रतीति होवै है। औरनमैं कार्यताकी प्रतीति होवै है ॥

२ अथवा अधिष्ठानचेतन असंग है सो किसीका परमार्थतैं कारण नहीं । मायामैं आभास यद्यपि कारण है, तथापि आभासका स्वरूप मिथ्या होवै है ॥ जो आप ही मिथ्या होवै सो दूसरेका कारण बनै नहीं । यातैं परमात्माविषै प्रपंचकी कारणता होवै तौ ताकी देशकालमैं भ्रमतैं प्रतीति संभवै । सो परमात्माविषै कारणता है नहीं । परमात्मा कारणतादिक धर्मरहित असंग है, ताकी कारणता देशकालमैं प्रतीत होवै है, यह कहना संभवै नहीं। किंतु मायाकृत अनिर्वचनीयदेशकाल अनिर्वचनीय कारणतावाले होवै हैं ॥ औ—

परमार्थसैं देशकाल कारण नहीं । जैसैं पुत्रहीन पुरुष स्वप्नमैं पुत्र पौत्र दोनूंवाकूं देखै। तहां पुत्रपौत्रशरीर अनिर्वचनीय होवै है। औ पुत्रशरीरमैं पौत्रशरीरकी अनिर्वचनीयकारणता होवै है ॥ तहां परमार्थसैं पुत्रशरीर औ पौत्रशरीरका परस्परकार्यकारणभाव नहीं होवै है। तैसैं अनिर्वचनीयकारण देशकाल प्रतीत होवै है। परमार्थसैं देशकाल औ आकाशादिक प्रपंचका कार्यकारणभाव है नहीं ॥

इस रीतिसैं देशकालसामग्री विना जाग्रत्प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है। यातैं स्वप्नकी न्यांई जाग्रत बी मिथ्या है ॥ और—

जैसैं स्वप्नके स्त्रीपुत्रादिक स्वप्नमैं ही सुखदुःखके हेतु हैं। जाग्रत्‌मैं तिनका अभाव है। तैसैं जाग्रत्‌के पदार्थनका स्वप्नमैं अभाव होवै है। दोनूं सम हैं ॥ और—

॥ ३२३ ॥ जाग्रत्‌के पदार्थ ज्ञानके साथि ही उत्पन्न होवै हैं। यातैं दूसरीजाग्रत्‌मैं रहै नहीं ॥ ३२३–३२४ ॥

जो ऐसैं कहैः—'जाग्रत्‌सैं स्वप्न होयके फिरि जाग्रत् होवै, तहां पहली जाग्रत्‌के जो

पदार्थ हैं सोई स्वप्नव्यवहित दूसरे जाग्रत्मैं रहै हैं औ प्रथमस्वप्नके पदार्थ दूसरे स्वप्नमैं नहा रहै हैं। यातैं स्वप्नके पदार्थनतैं जाग्रत्के पदार्थ विलक्षण हैं।

सो शंका बी सिद्धांतके अज्ञानी मूढनकी दृष्टितैं होवै है। काहेतैं ? ऐसी मूर्खनकी दृष्टि है। संसारप्रवाह अनादि है, तामैं जीवनकूं जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति होवै हैं॥

१ जाग्रत्कालमैं स्वप्न सुषुप्ति नष्ट होवै हैं। औ–

२स्वप्नकालमैं जाग्रत् सुषुप्ति नष्ट होवै हैं॥

३ तैसैं सुषुप्तिकालमैं जाग्रत् स्वप्न नष्ट होवै हैं॥

परंतु "स्वप्न सुषुप्ति होवै तब जाग्रत्कालके स्त्रीपुत्रपशुधनादिक दूरि होवैं नहीं किंतु बनै रहैं। तिनका ज्ञान ही दूरि होवै है॥ फिरि जाग्रत् होवै तब प्रथमजाग्रत्के विद्यमानपदार्थनका ज्ञान होवै है" यह अज्ञानी मूर्खनकी दृष्टि है॥ औ–

॥ ३२४ ॥ सिद्धांत यह है:–

१ सारे पदार्थ चेतनका विवर्त है।

२ अविद्याका परिणाम है।

यातैं शुक्तिरजतकी न्यांई जिस कालमैं जो पदार्थ प्रतीत होवै तिस कालमैं अधिष्ठानचेतनआश्रित अविद्याका द्विविध परिणाम होवै है॥

१ अविद्याके तमोगुणअंशका घटादिविषयरूप परिणाम होवै है। औ–

२ अविद्याके सत्त्वगुणका ज्ञानरूप परिणाम होवै है।

यद्यपि चेतनकूं ज्ञान कहै हैं। यातैं सत्त्वगुणका परिणाम ज्ञान है। यह कहना बनै नहीं। तथापि सारे व्यापकचेतन ज्ञान नहीं। किंतु साभासवृत्तिमैं आरूढ चेतनकूं ज्ञान कहै हैं। यातैं चेतनमैं ज्ञानव्यवहारकी संपादक वृत्ति है। इस रीतिसैं चेतनमैं ज्ञानपनैकी संपादक वृत्ति है।

इस रीतिसैं चेतनमैं ज्ञानपनैकी उपाधि वृत्ति है, ताके विषै बी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवै है॥ जैसैं लोकमैं कहै हैं:–"घटका ज्ञान उत्पन्न हुआ, पटका ज्ञान नष्ट हुआ" तहां वृत्तिमैं आरूढ चेतनका तौ उत्पत्तिनाश संभवै नहीं। वृत्तिके उत्पत्तिनाश होवै हैं। औ ज्ञानके उत्पत्तिनाश कहैं हैं। यातैं वृत्तिमैं बी ज्ञानशब्दका प्रयोग होवै है॥

सो वृत्तिरूप ज्ञान सत्त्वगुणका परिणाम है। यह कहना संभवै है॥

१ता वृत्तिरूप परिणाममैं चेतनका आभास होवै है।

२ घटादिक विषयरूप परिणाममैं चेतनका आभास होवै नहीं॥

काहेतैं ? विषय औ वृत्ति यद्यपि दोनूं अविद्याके परिणाम हैं। तथापि–

१घटादिक विषय तौ अविद्याके तमोगुणका परिणाम हैं, यातैं मलिन हैं, तिनमैं आभास होवै नहीं॥ औ–

२ वृत्ति सत्त्वगुणका परिणाम स्वच्छ है। तामैं आभास होवै है॥

इस रीतिसैं—

१ वृत्तिकूं चेतनके आभासग्रहणकी योग्यता होनैतैं वृत्तिअवच्छिन्नचेतनकूं ज्ञान कहै हैं औ साक्षी कहै हैं॥

२घटादिक विषयकूं आभासग्रहणकी योग्यता नहीं। इस कारणतैं विषयअवच्छिन्नचेतन ज्ञान नहीं औ साक्षी बी नहीं॥

इस रीतिसैं जाग्रत्के पदार्थ औ तिनका ज्ञान दोनूं साथि ही उत्पन्न होवै हैं औ साथि ही नष्ट होवै हैं। यह वेदका गूढसिद्धांत है। यातैं

जाग्रत्के पदार्थ दूसरी जाग्रत्मैं रहै हैं । यह कहना संभवै नहीं ॥

॥३२२॥ जाग्रत्के पदार्थनका परस्पर कार्यकारणभाव नहीं

॥ ३२५--३२७ ॥

यद्यपि स्वप्नतैं जागे पुरुषकूं ऐसी प्रत्यभिज्ञा होवै हैः-"जो पूर्व पदार्थ थे वे ही ये पदार्थ हैं"। यातैं जाग्रत्के पदार्थनका ज्ञानके समकाल उत्पत्तिनाश नहीं होवै है। किंतु ज्ञानसैं प्रथम विद्यमान होवै है। औ ज्ञाननाशतैं अनंतर बी रहै हैं। तथापि जैसैं स्वप्नके पदार्थ तिस क्षणमैं उत्पन्न होवै हैं औ ऐसै प्रतीत होवैं हैः-"मेरे जन्मसैं बी प्रथम उपजे ये पर्वतसमुद्रादिक हैं" तहां तत्काल उपजे पदार्थनमैं बहुकालस्थिरताकी भ्रांति होवै है । यातैं जा अविद्यानै मिथ्यापर्वतसमुद्रादिक उपजाये हैं, तिसी अविद्यासैं बहुकालस्थिरता औ स्थिरताकी प्रतीति अनिर्वचनीय उपजै है तैसैं जाग्रत्के पदार्थनविषै बी अनेक दिन स्थिरता है नहीं किंतु अविद्यावलसैं मिथ्यास्थिरता बी पदार्थनके साथि उपजिके प्रतीत होवै है ॥ औ-

जो ऐसैं कहैः-

स्वप्नके पदार्थ साक्षात् अविद्याके परिणाम हैं। औ-

२ जाग्रत्के पदार्थ साक्षात् अविद्याके परिणाम नहीं।

किंतु घटकी उत्पत्ति दंडचक्रकुलालसै होवै है। तैसैं सर्वपदार्थनकी उत्पत्ति अपनैअपनै कारणतैं होवै है। साक्षात् अविद्यासैं नहीं। जो साक्षात्अविद्याके परिणाम होवैं तो आकाशादिक क्रमतैं पंचभूतनकी उत्पत्ति औ पंचीकरण तिनसैं ब्रह्मांडकी उत्पत्ति श्रुतिसैं कही है सो असंगत होवैगी । यातैं ईश्वरसृष्टि जाग्रत्के पदार्थ अपने अपने उपादानके परिणाम हैं। अविद्याके साक्षात् परिणाम नहीं ॥

१ स्वप्नके तौ सारे पदार्थ अविद्याके परिणाम हैं। तिनका एक अविद्या उपादान होनेतैं तिनपदार्थनकी औ तिनके ज्ञानकी एकअविद्यासैं एककालमैं उत्पत्ति संभवै है।

२ जाग्रत्के पदार्थ भिन्न भिन्न कारणसैं उत्पन्न होवै हैं। कार्यतैं पहली कारण होवै है औ कारणमैं कार्यका लय होवै है । यातैं घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम औ घटनाशतैं आगे मृत्पिण्ड रहै है । इस रीतिसैं कोई पदार्थ अल्पकाल स्थिर औ कोई अधिककाल स्थिर कार्य कारण हैं। तैसैं स्वप्नके नहीं ॥

॥ ३२६ ॥ सो शंका बनै नहीं । काहेतैं? जाग्रत्के पदार्थनकी न्याई स्वप्नके पदार्थनविषै बी कार्यकारणभाव प्रतीत होवै है ॥ जैसैं किसीकूं ऐसा स्वप्न होवैः-मेरी गऊके वत्स हुवा है अथवा मेरी स्त्रीके पुत्र हुवा है। तहां गऊ औ स्त्री विषै कारणताकी प्रतीति औ बहुकालस्थायिताकी प्रतीति होवै है ॥ वत्स औ पुत्रविषै कार्यता औ अल्पकालस्थिरता प्रतीत होवै है औ सारे समकाल हैं । कोई किसीका कारण नहीं । किंतु गऊ वत्स स्त्री आदिकनका अविद्या ही उपादान है।तिसैं जाग्रत्विषै बी कोई

॥ ३९९ ॥ जाग्रत्के पदार्थनका "वे पूर्वजाग्रत्विषै देखे हुये पदार्थ ये हैं" इस आकारवाला प्रत्यभिज्ञाज्ञान निद्रातैं उठे पुरुषकूं होवै है। सो ज्ञान नदी प्रवाह, दीपशिखा, आकाशगत ताराकी स्थिति औ वृक्षके फल, इनके प्रत्यभिज्ञाज्ञानकी न्याई भ्रमरूप है। यामैं मुख्यदृष्टांत स्वप्न है। सो ऊपर ग्रन्थकारनै ही लिख्या है ॥

अधिककालस्थायिकारणस्वरूपतैं कोई न्यूनकालस्थायिकार्यरूपतैं स्वप्नकी न्यांई प्रतीत होवै है। कोई किसीका परस्पर कार्यकारण नहीं । किंतु साक्षात् अविद्याके कार्य हैं । और--

॥३२७॥ श्रुतिविषै जो क्रमतैं सृष्टि कही है तहां सृष्टिप्रतिपादनमैं श्रुतिका अभिप्राय नहीं । किंतु अद्वैतबोधनमैं अभिप्राय है ॥

सारे पदार्थ परमात्मासैं उपजे हैं, यातैं ताके विवर्त हैं । जो जाका विवर्त होवै सो ताका ही स्वरूप होवै है। यातैं सारा नामरूप ब्रह्मतैं पृथक् नहीं । ब्रह्म ही है ।इस अर्थका बोधन करनेकूं सृष्टि कही है । सृष्टिका और प्रयोजन नहीं ।

तहां क्रमका जो कथन है सो स्थूलदृष्टिकूं विपरीतक्रमतैं लयचिंतनके निमित्त है । ताका बी अद्वैतबोध ही प्रयोजन है । यातैं क्रमकथनमैं बी अभिप्राय नहीं ॥

सृष्टिमैं क्रम नहीं है, किंतु सारे पदार्थ एक अविद्यासैं उपजै हैं । तिनका परस्परकार्यकारणभाव औ पूर्वउत्तरभाव अविद्याकृतस्वप्नकी न्यांई मिथ्या प्रतीत होवै है ॥ औ-

श्रुतिनै तिनकी आपसमैं कार्यकारणता औ पूर्वउत्तरता कही है । सो लयचिंतनके निमित्त कही है । ध्यानमैं यह नियम नहीं:- जैसा स्वरूप होवै तैसा ही ध्यान होवै है ॥

यातैं जाग्रत्‌के पदार्थनका आपसमैं कार्यकारणभाव नहीं । किंतु-

॥ ३२८ ॥ दृष्टिसृष्टिवादका अंगीकार ॥

सारे पदार्थ साक्षात् अविद्याके कार्य हैं । शुक्तिरजतकी न्यांई वा स्वप्नकी न्यांई अविद्याकी वृत्तिउपाहित साक्षीतैं तिनका प्रकाश होवै है । यातैं सारे पदार्थ साक्षीभास्य हैं ॥ औ-

ज्ञानाकार औ ज्ञेयाकार अविद्याका परिणाम एक ही कालमैं उपजै है । साथ ही नष्ट होवै है । यातैं जब पदार्थकी प्रतीति होवै तब ही प्रतीतिका विषय पदार्थ होवै है । अन्यकालमैं नहीं होवै है । याहीकूं दृष्टिसृष्टिवाद कहै हैं ॥

या पक्षमैं पदार्थकी अज्ञातसत्ता नहीं । ज्ञातसत्ता है । अद्वैतवादमैं यह सिद्धांतपक्ष है । या पक्षमैं दो सत्ता हैं, तीनि नहीं । काहेतैं?अनात्मपदार्थ सारे स्वप्नकी न्यांई प्रातिभासिक हैं । प्रतीतिकालसैं भिन्नकालमैं अनात्माकी सत्ता नहीं, यातैं तीसरी व्यावहारिक सत्ता नहीं ॥

या पक्षमैं सारे अनात्मपदार्थ साक्षीभास्य हैं । प्रमाताप्रमाणका विषय कोई बी नहीं । काहेतैं ? अंतःकरण औ इंद्रिय तथा घटादिक सारी त्रिपुटी औ ज्ञान, स्वप्नकी न्यांई एककालमैं उपजै हैं । तिनका विषयविषयीभाव बनै नहीं । जो घटादिक विषय औ नेत्रादिक इंद्रिय । तैसैं अंतःकरण । ये ज्ञानतैं प्रथम होवैं तौ नेत्रादिद्वारा अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान प्रमाणजन्य होवै सो अंतःकरण इंद्रिय औ विषय तीनूं ज्ञानके पूर्वकालमैं हैं नहीं । किंतु ज्ञानसमकाल ही स्वप्नकी न्यांई त्रिपुटी उपजै हैं । यातैं त्रिपुटीजन्य ज्ञान कोई बी नहीं, तथापि ज्ञानविषै स्वप्नकी न्यांई त्रिपुटीजन्यता प्रतीत होवै है । यातैं जाग्रत्‌के पदार्थ साक्षीभास्य हैं ॥ प्रमाणजन्य ज्ञानके विषय नहीं । यातैं बी स्वप्नके समान मिथ्या हैं । किंवा-

१ जाग्रत्‌मैं कितनें पदार्थनकूं मिथ्यारूपकरिके जानै हैं ।

२ औरनकूं सत्यरूपकरिके ऐसैं जानै हैं:-

(१) अनादिकालके पदार्थ हैं, तिनमैं कोई

॥ ३९६ ॥ दृष्टि कहिये अविद्याकी वृत्तिरूप ज्ञान, तांके समसमयमैं ही सृष्टि कहिये प्रपचकी उत्पत्ति, ताका जो कथन सो दृष्टिसृष्टिवाद कहिये याहीकूं अजातवाद बी कहते हैं॥

नष्ट होवै हैं और तिनके समान उत्पन्न होवै हैं। एसैं प्रपंचधाराका उच्छेद कदे होवै नहीं ॥

(२) जाकूं ज्ञान होवै है ताकूं प्रपंचकी प्रतीति होवै नहीं। औरनकूं प्रपंचकी प्रतीति होव है।

(३) ता ज्ञानके साधन वेदगुरु हैं। तिनतैं परमसत्यकी प्राप्ति होवै है।

ऐसी प्रतीति जाग्रत्‌मैं होवै है। तहां–

१ किसी पदार्थमैं मिथ्यापना।

२ किसीमैं नाश।

३ किसीमैं उत्पत्ति।

४ वेदगुरुतैं परमपुरुषार्थकी प्राप्ति।

ये सारी अविद्याकृत स्वप्नकी न्यांई मिथ्या हैं ॥

वासिष्ठमैं ऐसैं अनंत इतिहास कहै हैं।

१ क्षणमात्रके स्वप्नमैं बहुकाल प्रतीत होवै है। औ–

२ जाग्रत्‌की न्यांई स्थायी पदार्थ प्रतीति होवै है औ–

३ तिनतैं बहुकालभोग होवै है ॥

यातैं जाग्रत्‌पदार्थकी स्वप्नतैं किंचित् विलक्षणता नहीं। किंतु आत्मभिन्न सर्व मिथ्या है ॥

॥३२९॥ प्रश्नः—स्वप्नकी न्यांई स्वल्पकालस्थायी संसार होवै तौ अनादिकालका बंध नहीं होवैगा ॥ बंधनिवृत्तिरूप मोक्षके निमित्त श्रवणादिक साधन निष्फल होवैंगे।

॥शिष्य उवाच॥

॥ दोहा ॥

लाख हजारन कल्पको,
यह उपज्यो संसार।
तामैं ज्ञानी मुक्त है,
बंधे अज्ञ हजार ॥ ११ ॥
झूठो स्वप्नसमान जो,
छन घटिका है जाम ॥
बद्ध कौन, को मुक्त है,
श्रवणादिक किह काम ॥ १२ ॥

टीकाः–ईश्वरसृष्टि अनंतकल्पतैं अनादि है, तामैं ज्ञानी मुक्त होवै है। अज्ञानीकूं बंध रहै है।

जो स्वप्नसमान होवै तौ स्वप्न एकक्षण घडी तथा प्रहर होवै है। तैसैं संसार बी क्षण अथवा

॥ ३९७ ॥ यह दृष्टिसृष्टिवादका निष्कर्ष (निचोड) है ॥ या पक्षका प्रतिपादन बृहदारण्यक उपनिषद्‌के व्याख्यानमैं भाष्यकार औ वार्त्तिककारनै किया है। औ शांकरभाष्य अरु आनंदगिरिकृत व्याख्यान-सहित मांडूक्यउपनिषद्‌की कारिकामैं किया है। ताकी वेदांतदीपिकानामक भाषाटीकाविषै हमनै स्पष्ट लिखा है औ वासिष्ठग्रन्थमैं तथा वेदांतमुक्तावलीमैं तथा वृत्तिप्रभाकरके अष्टमप्रकाशमैं तथा आत्मपुराणमैं औ अद्वैतसिद्धिआदिकआकरग्रंथनमैं बी याका प्रतिपादन है। जाकूं विशेष जिज्ञासा होवै सो तिन ग्रंथनमैं देखै ॥ परंतु "अर्क (गृहके कोण) विषै जो मधु मिलै तौ पर्वतविषैं किसअर्थ जाना ?" इस न्यायकरि जा जिज्ञासुकूं याही ग्रथविषै या दृष्टिसृष्टिवादरूप उत्तमसिद्धांतका ज्ञान होवै, ताकूं अन्य बहुतग्रंथनके देखनैका बुद्धिके विनोद विना और प्रयोजन नहीं ॥

घडी वा प्रहरकाल वा किंचित् अधिककाल होवैगा ।

१ स्वप्नकी न्यांई स्वल्पकालस्थायि संसार होवै तौ अनादिकालका बन्ध नहीं होवैगा ।

२ बंधनिवृत्तिरूप मोक्षके निमित्त श्रवणादिकसाधन निष्फल होवैंगे ।

[गुरुः–] यद्यपि पूर्वउक्तसिद्धांतमैं–

१ बंधमोक्ष वेदगुरु अंगीकार नहीं ।

२ किंतु चेतन नित्यमुक्त है ।

३ अविद्याके परिणाम चेतनमैं नानाविवर्त होवै हैं, तातैं आत्मरूपकी किंचिन्मात्र बी हानि नहीं ॥

४ आत्मा सदा असंग एकरस है ।

५ आजतोडी कोई मुक्त हुवा नहीं । आगे होवै नहीं । किंतु चेतन नित्यमुक्त है ।

६ अविद्याके औ ताके परिणामका चेतनसैं किसी कालमैं संबंध नहीं, यातैं बंध औ वेदगुरु श्रवणादिक औ समाधि तथा मोक्ष इनकी प्रतीति बी स्वप्नकी न्यांई अविद्याजन्य है । यातैं मिथ्या है ॥

७ इनविषै बहुकालस्थायिका बी अविद्याजन्य है ॥

तथापि या सिद्धांतकूं नहीं जानिके स्थूलदृष्टिका प्रश्न है ॥

(अगृधदेव [इच्छारहित आत्मदेव]-का स्वप्न ॥ ३३०–४६२ ॥)

(॥ गतप्रश्नका उत्तर ॥ ३३०– ३३८ ॥)

॥ ३३० ॥ अगृधदेवकूं स्वप्नकी प्रतीति ॥ ३३०--३३१ ॥

॥ गुरुवाक्य ॥

॥ दोहा ॥

अगृधदेवकूं स्वप्नमैं,
भ्रम उपज्यो जिहि रीति ॥
सिष तोकूं यह ऊपजी,
बंधमोछ परतीति ॥ १२ ॥

टीकाः–हे शिष्य ! जैसैं निद्रादोषतैं स्वप्नमैं अध्यापक, अध्ययन, वेदशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, अध्ययनकर्त्ता, कर्म औ तिनका फल प्रतीत होवै है औ तिन सर्वपदार्थनमैं सत्यताकी भ्रांति होवै है

॥ ३९८ ॥ इहां यह अभिप्राय हैः–इस दृष्टिसृष्टिवादमैं एकजीवके अंगीकारतैं अन्यजीवरूप गुरु किंवा शिष्यका अंगीकार नहीं । किंतु स्वप्नगत एकमुख्यजीवतैं भिन्न अन्यजीवाभासकी न्यांई अन्यजीवाभास प्रतीत होते हैं । तैसैं ही आभासरूप गुरु किंवा शिष्य है तिस गुरुविषै ईश्वरभावपूर्वक भक्ति करीती है सो बी स्वप्नगुरुके भक्तिकी न्यांई मिथ्या (प्रातिभासिक सत्तावाली) है ॥ या पक्षमैं जीवईश्वरादिकषट्पदार्थ स्वरूपसैं माने हैं । तिनके मध्य–

१ ब्रह्मकी परमार्थसत्ता है ॥ औ–

२ ब्रह्मसैं भिन्न प्रपंचकी व्यावहारिकसत्ता है ॥ औ–

३ अन्य प्रवाहरूपसैं अनादि सकलकार्यप्रपचकी प्रातिभासिकसत्ता है ।

यातैं उत्तर उत्तर अध्यासके कारण पूर्वपूर्व अध्यासके ज्ञानजन्य संस्कारकी आश्रयभूत अविद्याके विद्यमान होनैतैं औ ईश्वरके विद्यमान होनैतैं क्षणिकविज्ञानवादकी किंवा अनीश्वरवादकी प्राप्तिआदिक दोष नहीं यह अर्थ अद्वैतसिद्धिमैं मधुसूदनस्वामीनै लिख्या है । यह वार्त्ता जीवके प्रसंगसैं कही ॥

तथापि सो स्वप्नके सारे पदार्थ मिथ्या हैं। तैसैं जाग्रत्के सारे पदार्थ मिथ्या हैं। तिन विषै सत्यताप्रतीति भ्रम है।

दोहेमैं बंधमोक्षग्रहणतैं सर्व अनात्माका ग्रहण है जैसैं तेरेकूं हम गुरु प्रतीत होवै हैं, बेद-अर्थका बंधविघातक उपदेश करै हैं, सो तेरेकूं मिथ्या प्रतीति है ॥

जैसैं अगृधदेवकूं स्वप्नमैं मिथ्याप्रतीतिके विषय गुरुवेदादिक अनिर्वचनीय उपजे हैं, तैसैं तेरी प्रतीतिके विषै मेरेसैं आदि लेके सारे अनिर्वचनीय मिथ्या हैं ॥

॥ ३३१ ॥ सो [359]अगृधदेवका ऐसा स्वप्न हुवा हैः—एक अगृध नाम देवता अनादिकालका निद्रामैं सोवताहुवा [360]स्वप्नकूं देखता भया। ता स्वप्नमैं तिस पुरुषकूं ऐसी प्रतीति हुई जोः——

१ मैं चंडाल[361] हूं।

२ महादुःखी हूं।

३ अस्थि मज्जा रुधिर त्वचा मांस मेद वीर्य-रूप सप्तधातुसैं मेरा मुख भऱ्या है। औ—

४ महाघोर भयंकर सर्प हस्ती आदिकसैं युक्त जो वन[362] ताके विषै मैं भ्रमण करूं हूं।

सो देवता भ्रमण करता हुआ ता वनमैं अनंतस्थान देखता हुवा ॥

१ [363]कहूं नाना भयंकर प्राणी सन्मुख भक्षण करनेकूं धावन करै हैं। औ——

२ कहूं [364]रौंधिरुधिरसैं भरे कुंड हैं। तिन्हमैं पडे प्राणी हाहाकारशब्द करे हैं। औ—

३ कहूं लोहेके तप्तस्तंभ हैं तिन्हसैं बंधे पुरुष रोवै हैं। औ—

४ कहूं तप्तबालुयुक्त मार्ग होइके नग्नपाद-पुरुष जावै हैं औ तिन्ह पुरुषनकूं राज-भट लोहमय दंडनसैं ताडना करै हैं।

इस रीतिसैं——

१ नाना जो भयंकर स्थान हैं, तिनकूं सो देवता देखता हुवा। औ——

२कदाचित् आप बी अपराधकरिके स्वप्नमैं तिन्ह दुःखनकूं प्राप्त होता भया। औ—

[365]कहूं दिव्यस्थान देखता हुवा।

१ तिन्ह स्थानमैं उत्तमदेव विराजै हैं।

२ तिन्ह देवनके दिव्य भोग हैं।

३ अमृतके दर्शनमात्रसैं तिन्हकूं तृप्ति रहै है।

४ क्षुधातृषाकी बाधा तिन्ह देवनकूं होवै नहीं। औ——

५ मलमूत्ररहित जिनका प्रकाशमान शरीर है। औ—

६ उत्तम विमानमैं स्थित होयके कोई देव रमण करै है। सो विमान ता देवकी इच्छाके अनुसार गमन करै। औ——

७ कहूं रंभा उर्वशीसैं आदि लेके अप्सरा नृत्य

॥ ३५९ ॥ गृधा कहिये इच्छा, तातैं रहित औ देव कहिये स्वप्रकाश, ऐसा जो शुद्धचेतन सो इहां अगृधदेवपदका गूढ अर्थ है। ताकूं जाग्रत्स्वप्नरूप विलक्षणतारहित अनादिनिद्राकारि कल्पित यह प्रतीय-मानप्रपंचरूप स्वप्न भया हैं। ता प्रपंचकी विलक्षणता के अभावतैं जाग्रदादिअवस्थाके भेदका अभाव है। यातैं तिस एक ही प्रपंचकूं दृष्टांतरूपता औ दार्ष्टांत-रूपता यद्यपि बनै नहीं। तथापि ग्रंथकारनै तिसी अर्थकूं गोप्य राशिके एक ही चेतनमैं दृष्टांतदार्ष्टांत-का आरोप किया है। इस गोप्यअर्थकी प्रगटता हम आगे बी टिप्पणविषै प्रसंगसैं जहांतहां करैंगे ॥

॥ ३६० ॥ संसारकूं ॥

॥ ३६१ ॥ देहद्वयका अभिमानी जीव हूं ॥

॥ ३६२ ॥ संसार (जगत्)

॥ ३६३ ॥ इहांसैं नरकनका वर्णन है ॥

॥ ३६४ ॥ पिरू (पूय) ॥

॥ ३६५ ॥ इहांसैं स्वर्गलोकका वर्णन है।

करै हैं तिन्हके संपूर्णअंग दोषरहित हैं । औ संपूर्ण [366]स्त्री गुणयुक्त हैं ॥

८ उत्तमसुगंध तिन्हके शरीरसैं कामकी प्रकाशक आवै हैं औ कहूं तिन्हसैं देव रमण करै हैं । औ–

९ कदाचित् [367]आप वी देवभावकूं प्राप्त होयके तिन्हसैं बहुतकाल रमण करै है ।औ–

१०कदाचित् तिन्ह अप्सरानसैं दिव्यस्थानमैं रमण करता हुवा [368]अकस्मात् रुधिरमलपूरित जो कुंड हैं । तिन्हविषै मज्जन करै है । औ

एकस्थानमैं सर्वका [369]अधिपति पुरुष स्थित है। ताके आज्ञाकारी [370]अनुचर ताके आगै स्थित हैं ।

१ कितनै [371]पुरुषनकूं सो अधिपति औ ताके अनुचर सौम्यरूप प्रतीत होवै हैं । औ

२ कितनै [372]पुरुषनकूं महाभयंकररूप प्रतीत होवै हैं। औ

३ ता वनमैं स्थित पुरुषनकूं कर्मके अनुसार फल देवै हैं ॥

इस रीतिसैं अगृधनाम देवता स्वप्नकालमैं नाना जो स्थान हैं तिन्हकू देखता हुवा । औ

१ कहूं अन्यस्थानमैं ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करै हैं । औ––

२ कहूं [373]यज्ञशालामैं उत्तमकर्म करै हैं । औ–

३ कहूं उत्तमनदी बहै है । तिन्हमैं पुण्यके निमित्त लोक स्नान करै हैं । औ–––

४ कहूं ज्ञानवान् आचार्य शिष्यनकूं ब्रह्मविद्याका उपदेश करै है । ता ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होयके वा वनसैं निकसि जावै हैं ॥

इस रीतिसैं स्वप्नविषै अगृधनाम देवता क्षणमात्रमैं नानाआश्चर्यरूप पदार्थ ता वनमैं देखता हुवा । ताकूं ऐसी प्रतीति स्वप्नमैं हुई जोः–

१ मै अनंतकालका या वनमैं स्थित हूं ।

२ या वनका कदी उच्छेद होवै नहीं ॥

३ (१) कदाचित् [374]बागवान् चारि मुखनसैं [375]नानाबीज निकासिके वनकी उत्पत्ति करै है । औ–––

(२) [376]जलसेचनसैं पालन करै है । औ–

(३) कदाचित् घोरहास्यकरिके मुखसैं अग्नि निकासिके वनका [377]दाह करै है ॥

४ वनकी उत्पत्तिके संगि मेरी उत्पत्ति होवै है औ वनके दाहसंगि मेरा दाह होवै है । औ–

५ सर्ववनका दाह करिके सो बागवान् एक ही रहै है ।

६ ताके शरीरमैं वनके बीज रहै हैं ॥

यह प्रतीति स्वप्नवेदके श्रवणसैं ता अगृधदेवताकूं स्वप्न ही विषै हुई ॥

॥ ३६६ ॥ काव्यअलंकारादिसाहित्यग्रन्थनमैं जो स्त्रियांके सुन्दरता आदिक ३२ गुण कहै हैं । तिनकरिके युक्त ऐसी ।

॥ ३६७ ॥ अगृधदेव ।

॥ ३६८ ॥ पुण्यके क्षीण भये औ पापरूप अदृष्टके उदय भये ।

॥ ३६९ ॥ धर्मराजा ।

॥ ३७० ॥ यमदूत ।

॥ ३७१ ॥ पुण्यवानोंकूं

॥ ३७२ ॥ पापिष्ठजनोंकूं ।

॥ ३७३ ॥ इहांसैं मृत्युलोक [गत भरतखंड] का वर्णन है ।

॥ ३७४ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवरूपसैं जगत्की उत्पत्ति, पालन औ संहारका कर्त्ता ईश्वर ।

॥ ३७५ ॥ जीवनके परिपक्व भये अदृष्ट ।

॥ ३७६ ॥ कर्मके अनुसार सुखदुःखके अनुभवरूप भोगके देनैसैं ।

॥ ३७७ ॥ प्रलय (संहार) ।

॥ ३३२ ॥ अगृधदेवका स्वप्नमैं गुरुसैं मिलाप ॥

तब बारंबार अपना जन्ममरण सुनिके ता अगृधदेवनै विचार किया जोः---

१ किसी प्रकारसैं वनके बाहरि निकसि जाऊं । औ---

१ वनके बाहरि नहीं बी निकसूं तौ बी चांडॉलभाव मेरा दूरि होय जावै औ देवभाव सदा बन्या रहै ॥

३ सो और तौ कोई उपाय वनतैं निकसनैका है नहीं । ब्रह्मविद्याके उपदेश करनैवाले आचार्य अपनैं शिष्यनकूं वनके बाहरि निकासै हैं ॥

यह विचारिके आचार्यकूं स्वप्नकालमैं ही सो अगृधदेवता प्राप्त हुवा । सो विधिपूर्वक प्राप्त हुवा जो शिष्य ताकूं आचार्य देववाणीरूप मिथ्याग्रंथ उपदेश करता हुवा ॥

॥ ३ ३ ३ ॥ मिथ्याआचार्यका मिथ्याशिष्यकूं मिथ्यासंस्कृतग्रंथसैं उपदेश ॥ ग्रन्थके मंगलाचरण ॥ ३३३–३३८ ॥

संस्कृतग्रंथ[३७९] जो मिथ्याआचार्यनै मिथ्याशिष्यकूं उपदेश किया, ता ग्रंथकूं भाषाकरिके लिखै हैं ॥

संस्कृतग्रंथके भाषाकरनैमैं मंगल करै हैं। काहेतैं

१ मंगल करनैतैं जो ग्रंथकी समाप्तिके प्रतिबंधक विघ्न हैं तिन्हका नाश होवै है । विघ्न नाम पापका है । पापतैं शुभकार्यकी समाप्ति होवै नहीं । ता पापका मंगलतैं नाश होवै है ॥ औ-

२ जो पापरहित होवै सो बी ग्रंथके आरंभमैं मंगल अवश्य करै । काहेतैं ? जो ग्रंथआरंभमैं मंगल नहीं किया होवै, तौ ग्रंथकर्ताविषै पुरुषनकूं नास्तिकभ्रांति होयके ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥

सो मंगल तीनि प्रकारका हैः--एक वस्तुनिर्देशरूप है । औ दूसरा नमस्काररूप है । औ तीसरा आशीर्वादरूप है ।

सगुण अथवा निर्गुण जो परमात्मा सो वस्तु कहिये है, ताके कीर्तनका नाम वस्तुनिर्देश कहिये है ॥

अपना अथवा शिष्यनका जो वांछितवस्तु, ताके प्रार्थनका नाम आशीर्वादरूप मंगल कहिये है । सो अपनै वांछितका प्रार्थन चतुर्थ दोहेमैं स्पष्ट है, शिष्यके इष्टका प्रार्थन पंचम दोहेमैं स्पष्ट है ॥

॥ ३३४ ॥ गणेश औ देवीकूं ईश्वरता पुराणमैं प्रसिद्ध है । यातैं अनीश्वरका चिंतन नहीं । औ पुराणमैं गणेशका जो जन्म है सो जीवकी न्यांई कर्मका फल नहीं । किंतु रामकृष्णादिकनकी न्यांई भक्तजनके अनुग्रहवास्तै परमात्माका ही आविर्भाव होवै है । यह व्यासभगवान्‌का परम अभिप्राय है ॥

या स्थानमैं यह रहस्य हैः--परमार्थदृष्टिसैं जीव बी परमात्मासैं भिन्न नहीं । परंतु जन्ममरणादिक बंधका आत्माविषै जो अध्यास सो जीवका जीवपना है । सो जन्मादिक बंध गणेशादिकनकूं आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं । यातैं जीव नहीं ॥ इस रीतिसैं गणेशादिकनकूं ईश्वरता है । यातैं ग्रंथके आरंभमैं तिन्हका चिंतन योग्य है ॥

॥ ३७८ ॥ चांडालभाव कहिये जीवभाव औ देवभाव कहिये ब्रह्मभाव ॥

॥ ३७९ इहां संस्कृतग्रन्थके कथनकरि कोई-एक अगृधदेवके दृष्टांतकरि युक्त संस्कृतग्रंथका ग्रहण नहीं, किंतु इस ग्रंथके मूलरूप अनेक संस्कृतग्रंथनका ग्रहण है ॥

नानारूप ईश्वरका जो कथन है, सो सर्वकूं[३८०] ईश्वरता द्योतन करनै वास्ते है। औ ईश्वरभक्ति औ गुरुभक्ति विद्याकी प्राप्तिका मुख्य साधन है। इस अर्थकूं बी द्योतन करनैवास्ते है ॥

॥ ३३५ ॥ अथ निर्गुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल ॥

॥ दोहा ॥

जा विभु सत्य प्रकासतैं,
परकासत रवि चन्द ।
सो साछी मैं बुद्धिको,
सुद्धरूप आनंद ॥ १ ॥

॥ अथ सगुणवस्तुनिर्देशरूप मंगल ॥

॥ दोहा ॥

नासै विघ्न समूलतैं,
श्रीगणपतिको नाम ।
जा चिंतन बिन ह्वै नहीं,
देवनहूके काम ॥ २ ॥

टीकाः—त्रिपुरवधमैं[३८१] यह वार्ता प्रसिद्ध है ॥

॥ अथ नमस्काररूप मंगल ॥

॥ सोरठा ॥

असुरनको संहार,
लछमी पारवतीपती ।
तिन्हें प्रनाम हमार,
भजतनकूं संतत भजै ॥ ३ ॥

॥ अथ स्ववांछितप्रार्थनारूप आशीर्वाद ॥

॥ मंगल ॥ दोहा ॥

जा सक्तीकी सक्ति लहि,
करै ईस यह साज ।
मेरी बानीमैं बसहु,
ग्रंथ-सिद्धिके काज ॥ ४ ॥

॥अथ शिष्यवांछितप्रार्थनरूप आशीर्वाद॥

॥ दोहा ॥

बधहरन सुखकरन श्री,
दादू दीनदयाल ।
पढ़ै सुनै जो ग्रंथ यह,
ताके हरहु जंजाल[३८२] ॥ ५ ॥

॥ ३८० ॥ गणेश विष्णु शिव देवी औ आचार्य इनकूं ॥

॥ ३८१ ॥ मयदानवरचित तीनपुरके नाशमैं प्रवृत्त भये महादेवका जब विजय भया नहीं, तब सो सर्वदेवसहित होयके विघ्नराज जो गणेश ताकूं पूजतां भया। तिसकरि महादेवके विजयद्वारा देवनका कार्य (निर्भयपना) सिद्ध भया । यह प्रसंग पुराणमैं प्रसिद्ध है ॥

॥ ३८२ ॥ जन्मादिदुःख ॥

॥३३६॥ अथ वेदांत[383]शास्त्रकर्त्ता आचार्य[384]-नमस्कार[385] ॥ ३८५ ॥

॥ कवित्व ॥

वेदवादवृक्ष बन
भेदवादी वायु आय,
पकर हलाय क्रिया
कंटक पसारिके।
सरल सुसुद्ध सिप्य
कंज पुनि तोरि गिरि,
सूलनमैं फेरत
फिरत फेरि फारिके।
पेखी सु पथिक भग-
वान जानि अनुचित,
अंकमैं उठाय ध्याय
व्यासरूप धारिके।
सूत्रको बनाइ जाल
बनको विभाग कीन्ह,
करत प्रनाम ताहि
निश्चल पुकारिके ॥ ६ ॥

टीकाः-(१) जैसैं वायु, (२) वनमैं पैठिके, वृक्षनकूं हलायके, (३) तिन्हकें कंटक पसारिके, (४) सुंदर (५) कमलनके पुष्पनकूं (६) स्वस्थानसैं तोरिके (७) कंटकन विषै भ्रमावै तिन्ह भ्रमते पुष्पनकूं देखिके ।

(८) पथिक[386]के चित्तमैं ऐसी आवैः-(९)जो ये सुंदरकमल या स्थानयोग्य नहीं (१०) किंतु उत्तमस्थानयोग्य हैं । यह विचारिके

॥ ३८३ ॥ वेदांत जो उपनिषद्, तिनके तात्पर्यका निर्णायक होनैतैं तिनका अनुसारी जो ब्रह्मसूत्ररूप उत्तरमीमांसा, सो बी वेदान्तशास्त्र कहिये है। ताके कर्त्ता श्रीवेदव्यास ।

॥ ३८४ ॥

॥ श्लोकः ॥

आचिनोति च शास्त्रार्थ-माचारे स्थापयत्यपि ॥
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन कथ्यते ॥ १ ॥

अस्यार्थः-

लोकनकूं शास्त्रउक्तआचारविषै स्थापन बी करै औ जातैं आप बी शास्त्रोक्त आचारकूं आचरता हैं । तिस हेतुकरि सो आचार्य कहिये है । इस शास्त्रउक्तलक्षणकरि संपन्न श्रीवेदव्यासजी हैं । यातैं सो साधारण (सर्वआस्तिक संप्रदायोंके) आचार्य हैं । तिनका नमस्काररूप मंगल ग्रन्थकार करै हैं ।

इहां गुरुशिष्यके संवादके मिषकरि ग्रंथकर्त्तानै जो मंगल किया है सो आदिअन्तकी न्यांई शास्त्रके मध्यविषैं बी मंगल किया चाहिये । इस विधिके अनुसार है ॥

॥ ३८५ ॥ मनकरि किंवा वाणीकरि वा शरीरकरि अपनी निकृष्टतापूर्वक इष्टकी उत्कृष्टताके क्रमतैं चिंतन कथन औ करनैका नाम नमस्कार है ॥ यद तीनिभांतिका नमस्कार क्रमतैं उत्तम मध्यम कनिष्ठरूप है । तिनमैं—

१ मनका नमस्कार बीज है । औ—
२ जो वाणीका है सो अंकुर है । औ—
३ जो शरीरका है सो वृक्ष है ।
४ तिसतैं गुरुआदिकको प्रसन्नता रूप फल होवै है ॥

॥ ३८६ ॥ पथिक कहिये पांथ । याहीकूं बटाऊ बी कहते हैं ॥

(११)तिन्ह पुष्पनकूं उठाइ लेवै औ (१२) फेरि विचार करैः—जो आगे बी पवन कंटकनविषै पुष्पनकूं तोडिके भ्रमण करावेगा, यातैं ऐसा उपाय करूं, जातैं फेरि वायु कंटकनमैं पुष्पनकूं भ्रमावै नहीं । (१३) यह विचारिके सूत्रके जालसैं कंटकयुक्त वृक्षनका विभाग करि देवै, ता जालसैं पुष्पनका कंटकनमैं प्रवेश होवै नहीं ॥

॥ ३३७ ॥ (१) तैसैं भेदवादी आचार्य-रूप जो वायु है, (२) सो वेदरूपी वनमैं (३) वाद कहिये अर्थवादरूप जो कंटकसहित वृक्ष हैं, तिन्हतैं सकामकर्मरूप कंटक प्रवर्त करिके, (४)सरल कहिये कपटरहित औ सुशुद्ध कहिये अतिशुद्ध, रागादिदोपरहित (५) जो शिष्यरूप कमलपुष्प, (६)तिन्हकूं शमादिरूप जो स्वस्थान, तासौं तोरके,(७)सकामकर्मरूप कंटकनविषै भ्रमावते देखिके, (८) पथिक-समान व्यापकविष्णुनै विचार कियाः-(९) जो यह सुंदरकमलरूप शुद्धपुरुष या स्थान-जोग नहीं है, (१०) किंतु मेरे स्वरूपकूं प्राप्त होनैयोग्य है । यह विचारिके व्यासरूप धारिके (११) तिन्ह शिष्यनकूं उपदेशरूप अंकमैं स्थापन किया । जैसैं पुरुषके अंकमैं स्थित पुष्पकूं वात उडावनैविषै समर्थ नहीं तैसैं ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके उपदेशमैं स्थित पुरुषनकूं भेदवादी बँहँकावनैमैं समर्थ नहीं, यातैं उपदेश ही अंक कहिये गोद है, (१२) फेरि व्यास-भगवान्‌नै विचार कियाः—जो भेदवादी और पुरुषनकूं आगै बी सकामकर्मरूप कंटकवनमैं भ्रमावैंगे । यातैं ऐसा उपाय होवै । जातैं आगे शिष्य भ्रमैं नहीं । (१३) यह विचारिके सूत्र-रूपी जालसैं वेदके वाक्यरूप वृक्षनका विभाग करि दिया ॥

जैसैं वनमैं दो प्रकारके वृक्ष होवैंः—

१ सकंटक । औ—
२ कंटकरहित ।

तिन्हका जालसैं विभाग करि देवै औ जालतैं पुष्पनका कंटकसहित वृक्षनमैं प्रवेश होवै नहीं ॥

तैसैं वेदमैं दो प्रकारके वाक्य हैं ।

१ एक तौ कर्मकी स्तुति करिके कर्मविषै बहिर्मुख पुरुषकी प्रवृत्ति करावै हैं । औ

२ दूसरे कर्मके फलकूं अनित्य बोधन करिके पुरुषकी निवृत्ति करावै हैं ।

तिन्ह वाक्यनका—

॥३३८॥ वेदव्यासनै विभागकरिके सूत्रनसैं यह बोधन कियाः—जो सर्ववाक्यनका निवृत्तिमैं तात्पर्य है, प्रवृत्तिमैं किसी वाक्यका बी तात्पर्य नहीं ।

जो प्रवृत्तिबोधक वाक्य हैं, तिन्हका बी स्वाभाविक औ निषिद्ध जो प्रवृत्ति है, तासैं निवृत्तिकरिके विहितप्रवृत्तिमैं अंतःकरण शुद्ध होयके तासैं बी निवृत्ति होयके ज्ञाननिष्ठ-पुरुष होवै । इस रीतिसैं निवृत्तिमैं तात्पर्य है । औ— अर्थवादवाक्यने जो कर्मका फल बोधन

॥ ३८७ ॥ इहां भेदवादिनकूं आचार्य कहा है सो "देवदत्त सिंह है" इस वाक्यकी न्यांई गौणी वृत्तिसैं कहा है। मुख्य (शक्तिवृत्तिवृत्तिसैं) नहीं । यातैं पूर्व (तृतीयतरंग) औ उत्तर (इस तरंग) का विरोध नहीं ।

॥३८८॥ संशययुक्त करिके निष्ठातैं डिगावनैमैं ।

किया है सो गुडजिह्वान्यायतैं किया है। फलमैं तिनका तात्पर्य नहीं। यह अर्थ सूत्रनसैं व्यासजीने बोधन किया है। या अर्थकूं सूत्रनसैं जानिके पुरुषकी सकाम कर्ममैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥

जैसैं सूतका जाल पुष्पनकूं कंटकनसैं निरोध करै है तैसैं व्यासभगवान्‌के सूत्र सकाम कर्मनसैं विरोध करै हैं। यातैं जालरूप कहे ॥ ६ ॥

॥ ३३९ ॥ अगृधदेवके तीन प्रश्न——

१ "मैं कौन हूं ?
२ संसारका कर्त्ता कौन है ?
३ मुक्तिका हेतु ज्ञान है, अथवा
कर्म है, अथवा उपासना है,
अथवा दोनों हैं ?"

॥ दोहा ॥

कोउक शिष्य उदारमति,
गुरुके सरनै जाइ।
प्रश्न कियो कर जोरिके,
पादपद्म सिर नाइ ॥ ७ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

भो भगवन् मैं कौन यह,
संसृति कातैं होइ।
हेतु मुक्तिको ज्ञान वा,
कर्म उपासन दोइ ॥ ८ ॥

टीकाः——

१ हे भगवन् ! मैं कौन हूं ?

(१) देहस्वरूप हूं?

(२) अथवा देहसैं भिन्न हूं ?

मैं मनुष्य हूं औ मेरा शरीर है। यह दो प्रतीति होवै हैं। यातैं मेरेकूं संशय है। औ— देहसैं भिन्न बी जो आप कहो तौ——

(३) मैं कर्त्ता भोक्ता हूं ? ॥

(४) अथवा अक्रिय हूं ?

जो अक्रिय कहो तौ बी—

(५) सर्वशरीरविषै एक हूं ?

(६) अथवा नाना हूं ?

यह प्रथम प्रश्नका अभिप्राय है ॥ औ——

२ यह संसृति कहिये संसार, ताका कर्त्ता कौन है ? याका यह अभिप्राय हैः—

(१) या संसारका कोई कर्त्ता है ?

(२) अथवा आप ही होवै है ?

॥ ३८९ ॥ किसी बालककूं अपनी माता जिह्वामैं गुडकी अंगुली लगायके कटुऔषधमैं मधुर-रसकी बुद्धि उपजायके कटुऔषध पिलाय देवै। ताकूं शास्त्रमैं "गुडजिह्वान्याय" कहे हैं। ताकी न्यांई श्रुतिरूप जो माता है, सो पामरजीवरूप बालककूं अपनै जे कर्मफलके स्तावकवचनरूप अर्थवादवाक्य हैं, तिसरूप गुडकी अंगुली चटायके कर्मके स्वर्गादिककी प्राप्तिरूप फलका बोधन करिके तिस कर्मविषै प्रवृत्ति करावै है। परंतु जैसैं तिस माताका बालककी रोगनिवृत्तिमैं तात्पर्य है, गुडकी अंगुलीके स्वादमैं नहीं; तैसैं श्रुतिरूप माताका पापकी निवृत्तिद्वारा चित्तकी शुद्धिमैं तात्पर्य है, स्वर्गादिफलमैं नहीं।

जो कर्त्ता कहो तौ बी–
(३) कोई जीव कर्त्ता हैं ?
(४) अथवा ईश्वर कर्त्ता है ?
जो ईश्वर कहा तौ बी–
(५) एकदेशमैं सो ईश्वर स्थित है ?
(६) अथवा सो ईश्वर व्यापक है ?
जो व्यापक है तौ बी–
(७) जैसैं व्यापकआकाशतैं जीव भिन्न है तैसैं ता ईश्वरतैं जीव भिन्न है ?
(८) अथवा ईश्वरतैं जीव अभिन्न है ? औ–

२ मुक्तिका हेतु
(१) ज्ञान है ?
(२) अथवा कर्म है ?
(३) अथवा उपासना है ?
(४) अथवा दो हैं ?
जो दो कहो तौ बी–
(५) ज्ञान कर्म है ?
(६) अथवा ज्ञान उपासना है ?
(७) अथवा कर्म उपासना है ?

(१ "मैं कौन हूं ?" याका उत्तर ॥ ३४०–३६९ ॥)

॥३४०॥ आत्मा संघातका साक्षी है ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

(अर्धदोहा)

सत चित् आनंद एक तू,
ब्रह्म अजन्म असंग ॥

टीकाः–प्रथम जो शिष्यनै प्रश्न किया, ताका उत्तर कहै हैंः–"तूं सत्‌चित्‌आनंदस्वरूप है" या कहनैतैं देहतैं भिन्न कह्या । काहेतैं ! देह असद्रूप है औ जडरूप है औ दुःखरूप है औ कर्त्ताभोक्ता बी नहीं । काहेतैं ?–

१ जाके विषै दुःख होवै सो दुःखकी निवृत्ति औ सुखकी प्राप्तिवास्तै क्रिया करै, सो कर्त्ता कहियै है ।
(१) सो तेरे विषै दुःख है नहीं, यातैं दुःखकी निवृत्तिवास्ते क्रियाका कर्त्ता नहीं ॥
(२) तूं आनंदस्वरूप है, यातैं सुखकी प्राप्तिके निमित्त बी तूं क्रियाका कर्त्ता नहीं ॥

२ जो कर्त्ता होवै सोई भोक्ता होवै है । तूं कर्त्ता नहीं, यातैं भोक्ता बी नहीं ।

पुण्यपापका जनक जो कर्म है ताका कर्त्ता औ सुखदुःखका भोक्ता स्थूलसूक्ष्मसंघात है, तूं नहीं । तूं संघातका साक्षी है ॥ याहीतैं–

॥ ३४१ ॥ आत्मा, सुखदुःखादिधर्मसैं रहित व्यापक एक है ॥ सांख्यमतका औ त्रिविध न्यायमतका कथन औ खंडन ॥ ३४१–३५४ ॥

आत्मा एक है, नाना नहीं । जो आत्मा कर्त्ताभोक्ता होवै तब तौ नाना होवै । काहेतैं ? कोई सुखी है, कोई दुःखी है । औ कर्त्ता भोक्ता एक ही अंगीकार होवै तौ एकके सुख होनैतैं तथा दुःख होनैतैं सर्वकूं सुख तथा दुःख हुवा चाहियै । यातैं भोक्ता नाना हैं औ आत्मा भोक्ता है नहीं । यातैं एक है ॥

॥ ३४२ ॥ [पूर्वपक्षीः–] सांख्यके मतमैं आत्मा कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करिके नानापुरुष जो अंगीकार किये, सो अत्यंत विरुद्ध है । काहेतैं ? यह सांख्यका सिद्धांत हैः–

१ (१) सत्त्वरजतमगुणकी समअवस्थाका नाम प्रधान कहै हैं, सो प्रधान प्रकृति है, विकृति नहीं ॥

[१] विकृति नाम कार्यका है । औ--
[२] प्रकृति नाम उपादानकारण है ।
[१] सो प्रधान महत्तत्त्वका उपादानकारण है यातैं प्रकृति है । औ-
[२] अनादि है, यातैं विकृति नहीं । औ
(२-८) महत्तत्त्व अहंकार औ पंच तन्मात्रा । ये सात प्रकृति विकृति हैं ।
[१] उत्तरउत्तरके प्रकृति हैं । औ-
[२] पूर्वपूर्वके विकृति हैं ।

तन्मात्रा बी भूतनके प्रकृति हैं इस रीतिसैं सात प्रकृति विकृति हैं । औ-

(९-२४) पंच भूत औ दश इंद्रिय औ मन ये सोलह विकृति हैं । प्रकृति नहीं ॥ औ--
(२५) पुरुष प्रकृति विकृति नहीं । काहेतैं ?
[१] जो हेतु किसी पदार्थनका होवै तो प्रकृति होवै औ-
[२] कार्य होवै तौ विकृति होवै ।
[१] सो पुरुष किसीका हेतु नहीं । यातैं प्रकृति नहीं । औ----
[२] कार्य नहीं । यातैं विकृति नहीं । यातैं पुरुष असंग है ॥

इस रीतिसैं सांख्यमतमैं पचीस तत्त्व हैं ॥ तत्त्व नाम पदार्थका है ॥

२ सांख्यमतमैं ईश्वरका अंगीकार नहीं ।
३ स्वतंत्रप्रकृति जगत्का कारण है । औ--
४ पुरुषके भोगमोक्षके निमित्त प्रकृति ही प्रवृत्त होवै है । पुरुष नहीं ।
५ प्रकृतिके विषयरूप परिणामतैं पुरुषकूं भोग होवै है । औ----
६ बुद्धिद्वारा विवेकरूप प्रकृतिके परिणामतैं मोक्ष होवै है ।
७ यद्यपि पुरुष असंग है, ताके विषै भोग-मोक्ष बनै नहीं तथापि ज्ञान सुख-दुःख रागद्वेषसैं आदि लेके बुद्धिके परिणाम हैं । ता बुद्धिका आत्मासैं अविवेक है, विवेक नहीं । यातैं आत्मासैं

॥ ३९० ॥ १ सेश्वरीसांख्य औ २ निरीश्वरी सांख्य भेदतैं सांख्यमत द्विविध है ।

१ कर्दम औ देवहूतीका पुत्र जो भगवत्का अवतार कपिलदेव, तिसनैं सेश्वरीसांख्य मान्या है ॥

२ अन्य कोई कपिल भया है, तिसनैं निरीश्वरी सांख्य मान्या है । ताके मतमैं ईश्वरका अंगीकार नहीं । किन्तु प्रधान (प्रकृति) कूं जगतका कारण मानिके पुरुषके भोगमोक्षका हेतु कह्या है ।

सो बनै नहीं । काहेतैं ? प्रलयकालमैं सत्त्वादिगुणनकी साम्य (मिलित) अवस्थाकूं प्रधान कहै हैं । सो जब सृष्टिकालमैं साम्यअवस्थाकूं त्याग करै, तब जगत्की उत्पत्ति होवै । सो प्रधान जातैं जड है, तातैं स्वतः साम्यअवस्थाके त्यागविषै प्रवीण होवै नहीं औ चेतनपुरुषकूं तिसके मतमैं असंग होनैतैं तिसका प्रधानके साथि संबंध नहीं है औ चेतनके संबंध विना जडतैं कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं । तातैं प्रधानरूप मायाकारि विशिष्ट चेतन अन्तर्यामी ईश्वर है ।

सोई जगत्का कर्त्ता है । ऐसैं मानना योग्य है ॥ औ-सांख्यमतमैं आत्माके नानात्व औ प्रकृतिकी नित्यताके अंगीकारकारि आत्माविषै सजातीयसम्बन्ध औ विजातीय-सम्बन्धकी प्राप्तितैं नानाआत्माके असंगपनैका कथन बी व्याघातदोषयुक्त है, औ एक व्यापक आत्माके अंगीकार किये नानाअन्तःकरणकारि भोगआदिकके असंकरकी व्यवस्था होवै है । फिर आत्माके नानात्वके अंगीकारसैं अद्वैतश्रुतिके औ वक्ष्यमाण टिप्पणउक्त भेदबाधक-युक्तिके साथ विरोधसैं विना अन्य फल मिलै नहीं । इस रीतिसैं सांख्यमत असंगत है ।

आरोपित बंध मोक्ष हैं । परमार्थसैं नहीं ॥

८ अविवेकासिद्ध जो आत्मामैं भोग, तासैं ही आत्माकूं सांख्यमतमैं भोक्ता कहै हैं । औ—

९ परमार्थसैं आत्मा भोक्ता नहीं । बुद्धि ही भोक्ता है ॥

१० बुद्धि आत्मासैं भिन्न है ।

११ इस ज्ञानका नाम विवेक है ।

१२ ताके अभावका नाम अविवेक है ॥

इस रीतिसैं सांख्यमतमैं—

१३ आत्मा असग है । औ—

१४ सुखादिक बुद्धिके परिणाम हैं । यातैं बुद्धिके धर्म हैं । औ—

१५ आत्मा नाना हैं ।

[सिद्धांती:-]सो वार्त्ता अत्यंत विरुद्ध है । जो सुखदुःख आत्माके धर्म होवैं तौ सुखदुःखके प्रतिशरीर भेद होनैतैं आत्माका भेद होवै । सो सुख दुःख आत्माके धर्म तौ हैं नहीं । किंतु बुद्धिके धर्म हैं। यातैं सुखदुःखके भेदसैं बुद्धिका ही भेद सिद्ध होवै है । आत्माका भेद सिद्ध होवै नहीं ॥

जैसैं एक ही व्यापक आकाशमैं नानाउपाधिके धर्म, उपाधि औ आकाशके अविवेकसैं प्रतीत होवै हैं; तैसैं एक ही व्यापक आत्मामैं नानाबुद्धिके धर्म अविवेकसैं प्रतीत होवै हैं । यह वार्त्ता सांख्यमतमैं अंगीकार करनी उचित है॥

आत्माकूं असंग मानिके नाना अंगीकार करना निष्फल है ॥ औ—

कोई आत्मा मुक्त है । औरनकूं बंध है । इस रीतिसैं बंधमोक्षके भेदसैं जो आत्माका भेद अंगीकार करैं सो बी बनै नहीं । काहेतैं ? जो बंधमोक्ष आत्मामैं अंगीकार करैं तौ बंध मोक्षके भेदसैं आत्माका भेद सिद्ध होवै, सो बंधमोक्ष सांख्यमतमैं असंग आत्मामैं अंगीकार किये नहीं । किंतु बुद्धिके अविवेकसैं बंध अंगीकार किया है औ बुद्धिके विवेकसैं बंधका मोक्ष अंगीकार किया है ॥

जो वस्तु अविवेकसैं होवै औ विवेकसैं दूरि होवै सो वस्तु रज्जुसर्पकी न्यांई मिथ्या होवै है । आत्माविषै बी बुद्धिके अविवेकसैं बंध है औ विवेकसैं दूरि होवै है । यातैं बंध मिथ्या है। जैसैं बंध मिथ्या है, तैसैं आत्माका मोक्ष बी मिथ्या है । जामैं बंध सत्य होवै, ताका ही मोक्ष सत्य होवै है।औ आत्मामैं बंध मिथ्या है यातैं मोक्ष बी मिथ्या ही है ॥

इस रीतिसैं मिथ्या जो बंध मोक्ष सो आकाशकी न्यांई एक आत्मामैं बी बनै है ॥ तिन्हके भेदसैं आत्माका भेद सिद्ध होवै नहीं । यातैं सांख्यमतमैं आत्माका भेद असंगत है ॥

॥३९१॥ इहां यह भेदकी बाधक युक्ति है— 'एक आत्माका भेद अन्यआत्माविषै वर्त्तता है' ऐसैं कहनैवाले प्रतिवादीकूं पूछा चाहियेः—१ सो भेद क्या भेदरहित आत्माविषै वर्त्तता है ? २ किंवा भेद सहित आत्माविषै ?

१ प्रथमपक्षको कहैं तौ व्याघातदोष होवैगा । काहेतैं ? तिस भेदके आश्रय आत्माकूं भेदरहित बी कहता है । फेर तिसविषै भेद वर्त्तता है ऐसैं बी कहता है । यातैं "मेरा पिता बालब्रह्मचारी है" इस वाक्यकी न्यांई यह तेरा वचन व्याघातदोषयुक्त होवैगा । औ-

२ 'जो भेदसहित आत्माविषै आत्माका भेद वर्त्तता है' यह द्वितीयपक्ष कहैं, तौ (१) जिस भेदकरि सहित आत्मा है सो भेद औ यह भेद क्या परस्पर एक हैं ? किंवा दो हैं ?

(१) जो एक ही कहैं तौ आपहीकरिसहित आत्माविषै आपहीके वर्त्तनैतैं आत्माश्रयदोष होवैगा । औ—

(२) जो जिस भेदकरि सहित आत्मा है सो

॥३४३॥ [पूर्वपक्षीः--] तैसें न्यायमतमैं बी आत्माका भेद असंगत है । काहेतें ? यह न्यायका सिद्धांत हैः----

१ सुख, दुःख, ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, ज्ञानके संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग औ विभाग, ये चतुर्दशगुण जीवरूप आत्माविषै हैं ।

२ संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा औ प्रयत्न ये अष्टगुण ईश्वरमैं हैं ।

इतना भेद हैः--

(१) ईश्वरके ज्ञान, इच्छा औ प्रयत्न नित्य हैं । औ----

(२) जीवके तीनूं अनित्य हैं ।

(१) ईश्वर व्यापक है औ नित्य है ।

(२) जीव नाना हैं औ संपूर्ण व्यापक हैं । नित्य हैं । औ जीवका ज्ञान अनित्य है। यातैं जब ज्ञान गुण होवै तब तौ जीव चेतन है औ ज्ञानगुणका नाश होवै तब जडरूप रहै हैं ॥

३ ईश्वरजीवकी न्यांई आकाश, काल, दिशा औ मन नित्य हैं ॥ औ--

४ पृथिवीजलतेजवायुके परमाणु नित्य हैं । जो झरोखेमैं सूक्ष्मरज प्रतीति होवै हैं, ताके छठे भागका नाम परमाणु है । सो परमाणु आत्माकी न्यांई नित्य हैं ।

५ और बी जातिसैं आदिलेके कितने पदार्थ न्यायमतमैं नित्य हैं ।

वेदविरुद्धसिद्धांतका बहुत लिखनैका जिज्ञासुकूं उपयोग नहीं । यातैं लिखे नहीं ॥

६ "मैं मनुष्य हूं, ब्राह्मण हूं" ऐसी जो देहविषै आत्मभ्रांति तासैं रागद्वेष होवै हैं । ता रागद्वेषतैं धर्मअधर्मके निमित्त प्रवृत्त होवै है तिन्हतैं ? शरीरके संबंधद्वारा सुखदुःख होवै है । इस रीतिसैं न्यायमतमैं आत्माकूं संसारका हेतु भ्रांतिज्ञान है ॥

७ सो भ्रांतिज्ञान तत्त्वज्ञानसैं दूरि होवै है ।

आत्माका विशेषणरूप भेद, ये दोनूं परस्पर भिन्न हैं ऐसैं कहैं तौ--

[१] तिस आत्माके विशेषणरूप भेदकूं बी भेदरहित आत्माविषै तौ रहना संभवै नहीं । किंतु भेदसहित आत्माविषै रहना कहा चाहिये । यातैं आत्माविषै प्रथमभेदकी स्थितिअर्थ द्वितीयभेदकूं विशेषण कहै औ फेर द्वितीयभेदकी स्थितिअर्थ प्रथमभेदकूं विशेषण कहै तौ परस्परकी स्थितिअर्थ परस्परकी अपेक्षा होनैतैं **अन्योन्याश्रयदोष** होवैगा । औ---

[२] जो आत्माविषै द्वितीयभेदकी स्थितिअर्थ ताके आश्रय आत्माकूं भेदसहित करनैकूं ताका विशेषण तृतीयभेद मानैं तौ तिस तृतीयभेदकी स्थितिअर्थ बी पूर्वकी न्यांई आत्माकूं भेदसहित किया चाहिये । जो तिस तृतीयभेदकी स्थितिअर्थ ताके आश्रय आत्माका विशेषण प्रथमभेद कहैं तौ प्रथमभेदकूं द्वितीयकी औ द्वितीयकूं तृतीयकी । फेर तृतीयकूं प्रथमभेदकी अपेक्षाके होनैतैं चक्रकी न्यांई भ्रमणरूप **चक्रिकादोष** होवैगा । औ---

[३] जो तृतीयभेदकी स्थितिअर्थ भेदके आश्रय आत्माकूं भेदसहितत करनैकूं ताका विशेषणरूप अन्य चतुर्थभेद कहै । फेर चतुर्थभेदकी स्थितिअर्थ पंचमभेद कहै तौ प्रमाणरहित भेदकी धारणरूप **अनवस्थादोष** होवैगा ।

यातैं आत्माका परस्परभेद (नानात्व) असंगत है, यह **भेदबाधकयुक्ति** नैयायिकआदिक सर्वभेदवादीकारि समत भेदकी खंडक है।

८ देहादिक संपूर्ण पदार्थनसैं आत्मा भिन्न[३९२] है। या निश्चयका नाम तत्त्वज्ञान है ॥

(१) ता तत्त्वज्ञानसैं "मैं ब्राह्मण हूं, मनुष्य हूं" यह भ्रांति दूरि होवै है।

(२) भ्रांतिके नाशतैं रागद्वेषका अभाव होवै है।

(३) तिन्हके अभावतैं धर्मअधर्मके निमित्त प्रवृत्तिका अभाव होवै है।

(४) प्रवृत्तिके अभावतैं शरीरसंबंधरूप जन्मका अभाव होवै है। औ प्रारब्धका भोगतैं नाश होवै है।

(५) शरीरसंबंधके अभावतैं इक्कीस दुःखोंका नाश होवै है ॥

सो दुःखका नाशरूप ही न्यायमतमैं मोक्ष है।

एक शरीर औ श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण,

॥३९२ इहां यह विशेष हैः—नैयायिक मतमैं तत्त्वज्ञानका हेतु मनन कहा है। "आत्मा इतरपदार्थनतैं भिन्न है, आत्मा होनैतैं। जो इतरपदार्थनतैं भिन्न नहीं, किंतु इतरपदार्थरूप है, सो आत्मा नहीं। जैसैं घट है" ॥ इस व्यतिरेकि अनुमानतैं आत्मामें इतरपदार्थनके भेदका अनुमितिज्ञान होवै, सो मनन कहिये है औ—

इतरपदार्थनके ज्ञान विना आत्मामैं इतरपदार्थनके भेदका ज्ञान संभवै नहीं। काहेतैं? जिसका अन्यविषै भेद होवै सो भेदका प्रतियोगी है। तिस प्रतियोगीके ज्ञान विना भेदज्ञान होवै नहीं। यातैं आत्मामें इतरपदार्थनके भेदकी अनुमितिरूप मननका उपयोगी इतरपदार्थनका निरूपण बी तत्त्वज्ञानका उपयोगी है, ऐसैं मानते हैं।

सो संभवै नहींः। काहेतैं? श्रवण किये अर्थके निश्चयके अनुकूल जे प्रमेयमतसंदेहकी निवर्तक युक्तियां हैं, तिनके चिंतनकूं मनन कहै हैं औ भेदज्ञानसैं अनर्थ होवै है। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादिश्रुतिवाक्यनतैं अभेदमैं सकलवेदका तात्पर्य है। **'द्वितीयाद्वै भयं भवति' 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति'** इत्यादि वाक्यनतैं भेदज्ञानकी निंदा करी है। यातैं भेदज्ञानकूं साक्षात वा तत्त्वज्ञानद्वारा पुरुषार्थजनकता संभवै नहीं ॥ औ—

मननपदसैं बी आत्मासैं इतरपदार्थनके भेदकी प्रतीतिरूप अर्थ होवै नहीं। किन्तु मननपदका चिंतनमात्र अर्थ है। वाक्यांतरके अनुसारसैं अभेदचिंतनमैं मननशब्दका पर्यवसान (परिसमाप्ति) होवै है। किसी प्रकारकरि आत्मासैं इतरपदार्थनका भेद मननशब्दका अर्थ संभवै नहीं ॥

किंवा १ इतरपदार्थनके ज्ञानसैं ही जो पुरुषार्थके (मोक्षके) साधन तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होवै तौ सकलपुरुषनकूं तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हुई चाहिये।
२ अथवा किसीकूं नहीं होवैगी। सो दिखावै हैं—

१ जो इतरपदार्थनका सामान्यज्ञान तत्त्वज्ञान (आत्मज्ञान) विषै अपेक्षित होवै तौ सामान्यज्ञान सर्वपुरुषनकूं है। यातैं इतरपदार्थनके ज्ञानपूर्वक इतरपदार्थनके भेदज्ञानतैं सर्वकूं तत्त्वज्ञान हुया चाहिये। औ—

२ सर्वपदार्थनका असाधारणधर्म (एकधर्मीविषै धर्मस्वरूप जो विशेषरूप) है तिस विशेषरूपतैं इतर ईश्वर विना असाधारणधर्मतैं सकलइतरपदार्थनका किसीकूं बी ज्ञान संभवै नहीं। यातैं सर्व इतरपदार्थनके ज्ञानतैं आत्माके इतरपदार्थनतैं भेदज्ञानके अभावतैं सकलअनात्म पदार्थनतैं भिन्न आत्माका ज्ञानरूप तत्त्वज्ञान किसीकूं नहीं होवैगा।

यातैं नैयायिक मतमैं मान्या जो आत्माका अन्यआत्मातैं औ अनात्मातैं भेदज्ञान सो संभवै नहीं। याहीतैं देहादिकविषैं आत्मभ्रांतिका अभाव, तातैं रागद्वेषका अभाव, तातैं धर्मअधर्मके निमित्त प्रवृत्तिके अभाव, तातैं शरीरसम्बन्धरूप जन्मका अभाव, तातैं इक्कीस प्रकारके दुःखका नाशरूप मोक्ष नैयायिकोंके अनुसारीकूं नहीं होवैगा, किंतु महावाक्यरूप श्रुतिअर्थके गोचर अभेदज्ञान ही कारण सहित अनर्थकी निवृत्तिपूर्वक परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षका हेतु है।

औ मन ये षट् इंद्रिय औ षट् इंद्रियोंके विषय औ षट् इंद्रियके ज्ञान औ सुखदुःख, ये इक्कीस दुःख हैं।

शरीरादिक बी दुःखके जनक हैं, यातैं दुःख कहिये है। औ—

स्वर्गादिकनका सुख बी नाशके भयतैं दुःखका हेतु है। यातैं दुःख कहिये है।

यद्यपि न्यायमतमैं श्रोत्र औ मन नित्य[३९३] हैं, तिन्हका नाश बनै नहीं, तथापि जिस रूप

॥ ३९३ ॥ न्यायमतमैं श्रोत्रकूं आकाशरूप मानिके नित्य मान्या है।

सो बनै नहीं:—काहेतैं ?

१ श्रुतिविषै नेत्रादिकनकी न्याईं आकाशतैं श्रोत्रकी उत्पत्ति कही है। जो उत्पत्तिवान् वस्तु होवै ताकी नित्यता संभवै नहीं ॥ औ——

२ श्रोत्रकूं आकाशरूप बी कहना संभवै नहीं। काहेतैं ? कर्णगोलकवृत्ति जो आकाश है ताकूं न्यायमतमैं श्रोत्र कहै हैं, सो अयुक्त है। काहेतैं ? कर्णगोलकवृत्ति आकाशके होते बी कदाचित् श्रवणक्रियाका मंदपना किंवा अभाव होवै है, सो नहीं हुवा चाहिये। यातैं पंचीकृतभूतरूप जो कर्णगोलकवृत्ति आकाश है, तिसतैं भिन्न अपंचीकृतभूतरूप आकाशका कार्य श्रोत्रइंद्रिय उत्पत्तिनाशवाला होनैतैं अनित्य है ॥

३ किंवा दुर्जनतोषन्यायकरि ताकूं आकाशरूप मानैं तौ बी ताकी नित्यता संभवै नहीं। काहेतैं ? 'आत्मन आकाशः संभूतः'(आत्मासैं आकाश होता भया) इस तैत्तिरीयके वाक्यमैं आकाशकी उत्पत्ति कहिके अनित्यता सूचन करी है। जब आकाशकी बी अनित्यता सिद्ध भई तब तिसके एकदेशरूप श्रोत्रकी अनित्यता है यामैं क्या कहना है ?

इस रीतिसैं श्रोत्रकी नित्यता संभवै नहीं।

तैसैं मनकी नित्यता बी बनै नहीं। काहेतैं ?

१ मनकूं परमाणुरूप मानिके नित्य कहैं तिनकूं पूछया चाहियेः—(१) मन निरवयव है ? (२) किंवा सावयव है ?

(१) जो निरवयव कहैं तौ तिसविषै अवयवरूप देशके अभावतैं तिसका आत्माके साथि संयोग संभवै नहीं। यातैं स्वतः जडआत्मा विषै मनके संयोगसैं जन्य ज्ञानगुणकी उत्पत्तिके अभावतैं जगत्की अन्धताका प्रसंग होवैगा। औ—

(२) जो मन सावयव है तौ तिसविषै घटपटादिककी न्याईं अनित्यता निर्विवादतैं सिद्ध भई।

किंवा मन नित्य होवै तौ ताका सुषुप्तिविषै विशेषज्ञानकी जनकतारूप लिंगके अभावतैं गम्य अपनै उपादान अज्ञानमैं लय होवै है सो नहीं हुवा चाहिये। यातैं भी मन अनित्य है ॥ औ——

३ जो नैयायिक हैं:—आत्मा औ मनका संयोग ज्ञानका हेतु है सो संयोग एकको क्रियातैं किंवा दोकी क्रियातैं होवै है ? विभुआत्मामैं तौ क्रिया कदै बी होवै नहीं। औ मोक्षकालमैं किंवा सुषुप्तिकालमैं भोगके सम्मुख अदृष्टके अभावतैं मनमैं बी क्रिया होवै नहीं यातैं आत्माके साथि मनके संयोगके अभावतैं सुषुप्ति आदिकविषै विशेष ज्ञान होवै नहीं।

सो कथन बनै नहीं। काहेतैं ? व्यापक जो वस्तु है तिसके साथि सर्ववस्तुनका क्रियासैं विना बी सदा संयोग रहै है। जैसैं व्यापक आकाशके साथि क्रियारहित पर्वतका किंवा वृक्षपाषाणआदिकनका सदा ही संयोग रहै है। तैसैं मोक्षकालमैं किंवा सषुप्तिमैं जो क्रियारहित बी मन विद्यमान होवै तौ तिसके विभुआत्माके साथि संयोगकी सिद्धितैं विशेषज्ञान हुया चाहिये औ होता नहीं। यातैं सुषुप्ति आदिक कालविषैं अवश्य मनका विलय होवै है। फेरि जाग्रत्कालमैं ताकी उत्पत्ति होवै है।

इस रीतितैं उत्पत्ति नाशवान् होनैतैं मन अनित्य है। ताकी नित्यताका कथन प्रलापमात्र है।

करिके श्रोत्र मन दुःखके हेतु हैं। तिस रूपका नाश होवै है।

पदार्थनके ज्ञानकी उत्पत्तिकरिके दुःखके हेतु हैं, सो पदार्थनका ज्ञान मोक्षकालमैं श्रोत्र औ मन करे नहीं। काहेतैं? जो कर्णगोलकमैं स्थित आकाश है, सो श्रोत्र कहिये है। ता कर्णगोलकका मोक्षकालमैं अभाव है। यातैं आकाशरूप श्रोत्रइंद्रिय है बी। परंतु गोलकके अभावतैं ज्ञान होवै नहीं।

इस रीतिसैं ज्ञानका जनक जो श्रोत्रइंद्रियका स्वरूप, सोई दुःख है औ ताका ही नाश होवै है॥ औ--

१० आत्माके साथि मनके सयोगतैं ज्ञान होवै है। सो मनका संयोग न्यायसिद्धांतमैं (१) एककी क्रियातैं होवै है (२) अथवा दोकी क्रियातैं संयोग होवै है॥

(१) जैसैं बाजवृक्षका संयोग एक बाजकी क्रियातैं होवै है। औ--

(२) दो मेषनका संयोग दोकी क्रियातैं होवै है॥

तैसैं विभुआत्मामैं तौ क्रिया कदे बी होवै नहीं औ मोक्षकालमैं मनमैं बी क्रिया होवै नहीं यातैं संयोगवान् मनका ही मोक्षकालमैं अभाव होवै है॥ औ--

॥ ३४४ ॥ कोई एकदेशी त्वचाके साथ मनके संयोगकूं ज्ञानका हेतु कहै है। आत्माके संयोगकूं नहीं॥ सुषुप्तिमैं पुरीतत् नाम नाडीविषै मन प्रवेश करै है। त्वचासैं मनका संयोग है नहीं। यातैं सुषुप्तिमैं ज्ञान होवै नहीं। तिन्हके मतमैं त्वचासैं संयोगवाला मन ही ज्ञानद्वारा दुःखका हेतु होनैतैं दुःख है। केवल मन नहीं॥ मोक्षमैं त्वचाके नाश होनैतैं ताके साथि संयोग

॥ ३९४ ॥ १ आत्माके साथि मनके संयोगतैं ज्ञान होवै तौ सुषुप्तिविषै तिस संयोगके अभाव हुये जागरणकालमैं (उत्थानसमयमैं) होनैवाली सुख औ अज्ञानकी स्मृतिका मूलभूत अनुभव सिद्ध होवै है। सो नहीं हुया चाहिये।

२ किंवाः--आत्माके साथि मनके संयोगसैं जो ज्ञान होवै तौ न्यायमतमैं मनकूं अणुरूप मानै हैं। यातैं ताके संजोगसैं जन्य ज्ञान बी शरीरके एकदेशमैं ही होवैगा। सारे शरीरमैं नहीं। यातैं सारे शरीरविषै भये कंटकवेधकी पीडाका भान न हुआ चाहिये। औ--

३ जो मनकूं सिद्धांतकी न्याईं सारे शरीरविषै वर्त्तनैवाला मानै तौ यद्यपि सारे शरीरविषै पीड़ाका असंभव नहीं तथापि सुषुप्तिविषै सुख औ अज्ञानका सामान्यज्ञान है ताका असंभव होवैगा।

यातैं आत्माके साथि मनके संयोगतैं ज्ञान होवै नहीं। किंतु आत्माका स्वरूपभूत उत्पत्तिनाशसैं रहित ज्ञान नित्य है। ऐसैं मानना योग्य है।

॥३९५॥ कोई न्यायका एकदेशी त्वचाके साथि मनके संयोगकूं ज्ञानका हेतु कहै है।

सो बी असंगत है। काहेतैं?--

१ जैसैं 'मनके साथि आत्माका संयोग ज्ञानका हेतु है' इस अर्थके माननैमैं कोई प्रमाण नहीं। तैसैं 'त्वचाके साथि मनका संयोग ज्ञानका हेतु है' इस अर्थके माननैमैं कोई श्रुतिआदिकप्रमाण नहीं।

२ जो प्रमाणकरि असिद्ध स्वकपोलकल्पित अर्थ माननै योग्य होवै तौ किसीनै कह्या किः--"मैंनै मृगतृष्णाके जलमैं स्नानकरिके आकाशके पुष्पका मुकुट करिके औ शशशृंगका धनुषकरिके वंध्याका पुत्र सग्राममैं जाता देख्या" इस वचनका अर्थ बी मानना योग्य है। यातैं त्वचाके साथि मनका सयोग ज्ञानका हेतु नहीं।

३ किंवाः- सुषुप्तिविषै त्वचा औ मनके संयोगके अभाव हुये बी बुद्धिमानोंकी बुद्धिकरि गम्य सुख औ अज्ञानका सामान्यज्ञान होवै है। सो नहीं हुआ चाहिये॥

यातैं त्वचा औ मनका संयोग ज्ञानका हेतु नहीं।

किंतु आत्माका स्वरूपभूत ही ज्ञान है। यह मानना योग्य है।

है नहीं। यातैं ज्ञान होवै नहीं। मोक्षकालमैं मन है बी। परंतु दुःखका हेतु जो ज्ञानका जनक त्वचासैं संयोगवाला मन, ताका संयोगके नाशतैं नाश होवै है।

११ इस रीतिसैं मोक्षकालमैं परमात्मासैं भिन्न ही दुःखरहित होयके व्यापक आत्मा जड[३९६]रूप स्थित होवै है। काहेतैं? ज्ञानगुणतैं आत्माका प्रकाश होवै है सो जीवका ज्ञान संपूर्ण इंद्रियजन्य ही है। नित्य है नहीं। ता इंद्रियजन्य ज्ञानका मोक्षकालमैं नाश होवै है, यातैं प्रकाशरहित जडरूप होयके आत्मा मोक्षकालमैं स्थित होवै है।

यह न्यायका सिद्धांत है। औ—

॥३४९॥ न्यायमतमैं पूर्वउक्तप्रकारसैं सुख दुःख औ बंधमोक्ष आत्माकूं होवै हैं, यातैं आत्मा नाना हैं औ संपूर्ण व्यापक हैं।

सर्व अल्पपदार्थनसैं जो संयोग, सोई न्यायमतमैं व्यापकका लक्षण है औ सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेदका अभाव, व्यापकका लक्षण नहीं। काहेतैं? न्यायमतमैं यद्यपि आत्मा निरवयव है यातैं स्वगतभेदका तौ ताके विषै अभाव है बी। परंतु सजातीय औ विजातीयके भेदका अभाव नहीं। किंतु—

१ सजातीय जो दूसरा आत्मा, ताका भेद आत्मामैं है। औ—

२ विजातीय घटादिकनका भेद बी आत्मामैं है॥

यातैं सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेदका अभाव व्यापकका[३९७] लक्षण नहीं। किंतु सर्वअल्प[३९८]-

॥ ३९६ ॥ न्यायमतमैं आत्माकूं व्यापक मानिके जड मान्या है।

१ सो श्रुतिविरुद्ध है। काहेतैं?

(१) "इहां (स्वप्नविषै) यह पुरुष स्वयंज्योति (स्वप्रकाश) होवै है (तहां सूर्यादि ज्योतिनके अभावतैं स्पष्ट जान्या जावै है)"। औ—

(२) "जो यह प्राणोंविषै हृदयमैं अंतर्ज्योति प्रकाश रूप पुरुष है" औ—

(३) "सत्यज्ञानअनंतरूप ब्रह्म (परिपूर्णवस्तु) है"

इत्यादि अनेक श्रुतिवाक्यनमैं व्यापक आत्माकी चेतनरूपता सुनिये है। औ—

यामैं युक्ति है, सो आगे ३९६ सैं ३९९ पर्यंतके अंकविषै ग्रंथकारनै कही है, यातैं 'आत्मा स्वरूपसैं जड है' यह न्यायकी उक्ति असंगत है॥

॥ ३९७ ॥ सिद्धांतमैं सजातीय विजातीय-स्वगत-भेदका अभाव व्यापकका लक्षण मान्या है, सो **"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"** (एकही अद्वितीय ब्रह्म है)" इस छांदोग्यके षष्ठ अध्यायके वचनअनुसार हैं। इहा

१ **"एकं"** पदकरि सजातीयभेदका निषेध है।

२ **"एव"** पदकरि विजातीयभेदका निषेध है।

३ **"अद्वितीयं"** पदकरि स्वगतभेदका निषेध है।

इसी ही लक्षणके अनुसार देशकालवस्तुकृत अंततैं रहित बी व्यापकका लक्षण है॥ इहां—

"एकं" पदकरिके देशकृत अंतका निषेध है। काहेतैं? जो वस्तु परिच्छिन्न है सो नाना होवै है औ जो व्यापक है सो नाना नहीं। किंतु आकाशकी न्यांई एक है। आत्मा जातैं एक है यातैं परिच्छिन्न नहीं। किंतु व्यापक है। याहीतैं आत्मा देशकृत अंततैं रहित है औ न्यायमतमैं नानाव्यापक कहे हैं सो अद्वैतश्रुति औ वक्ष्यमाणयुक्ति औ लोकानुभवसैं विरुद्ध है। उक्तश्रुतिगत एकपदकरि आत्माविषै देशकृत अंतका निषेध किया। औ—

२ जो निश्चयके वाचक "एव" पदकरि आत्माकी निरपेक्षव्यापकताके कथनतैं आत्माविषै कालकृत अंतका निषेध किया। औ—

३ "अद्वितीय" पदकरि भेदके प्रतियोगी (निरूपक) अन्यवस्तुके निषेधतैं आत्माविषै वस्तुकृत अंतका निषेध किया।

इस रीतिसैं सिद्धांतउक्त उभयविध व्यापकका लक्षण श्रुतिअनुसार है॥

॥ ३९८ ॥ यह न्यायमतउक्त व्यापकका लक्षण श्रुति, युक्ति औ लोकानुभवसैं विरुद्ध है॥

पदार्थनसैं संयोग ही व्यापक लक्षण है याके विषै—

कोई शंका करै है:—न्यायमतमैं आत्माकी न्यांई आकाश काल दिशा बी व्यापक हैं औ परमाणु सूक्ष्म हैं। निरवयव हैं। तिनसैं सर्व-व्यापक पदार्थनका संयोग बनै नहीं। काहेतैं ? जो परमाणु सावयव होवैं तब तौ किसी देशमैं आत्माका संयोग होवै औ किसी देशमैं अन्य-व्यापक पदार्थनका संयोग होवै। सो परमाणु सावयव हैं नहीं। किंतु निरवयव हैं औ अति-सूक्ष्म हैं। तिन्हके साथि एक ही देशमैं सर्व-व्यापक पदार्थनका संयोग होवैगा। सो बनै नहीं। काहेतैं ? जो एकके संयोगसैं स्थान निरुद्ध है। ता देशमैं अन्यपदार्थका संयोग बनै नहीं। यातैं नानापदार्थनकूं व्यापकता बनै नहीं। एक ही कोई पदार्थ व्यापक बनै है ॥

यह शंका बनै नहीं। काहेतैं? जो सावयववस्तुका संयोग है, सो तौ अन्यके संयोगका विरोधी है।

१ जैसैं जा पृथिवीदेशमैं हस्तका संयोग होवै ता देशमैं पादका संयोग होवै नहीं औ निरवयवका संयोग स्थानकूं रोकै नहीं। यातैं अन्यके संयोगका विरोधी नहीं। यह वार्त्ता अनुभवसिद्ध है ॥

२ जैसैं घटके जा देशमैं आकाशका संयोग है, ता देशमैं ही कालका औ दिशाका संयोग बी है। जो कोई घटका देश आकाश काल दिशासैं बाहिर होवै तौ ता देशमैं आकाश काल दिशाका संयोग होवै नहीं। सो बाहरि तौ कोई देश है नहीं। किंतु सर्वपदार्थनके सर्वदेश आकाश काल दिशामैं ही हैं। यातैं सर्वपदार्थनके सर्वदेशनविषै आकाशकालदिशाका संयोग है।

इस रीतिसैं परमाणुविषै बी एक ही देशमैं नाना निरवयव विभुका संयोग बनै है। कोई दोष नहीं। यातैं आत्मा नाना हैं औ संपूर्ण व्यापक हैं ॥

॥३४६॥[सिद्धांती:—]सर्वकौं सर्वपदार्थनसैं संयोग है। यह न्यायका सिद्धांत है। सो समीचीन नहीं। काहेतैं? जो व्यापकआत्मा नाना अंगीकार करैं तौ सर्वशरीरमैं सर्वआत्माका संबंध अंगीकार करना होवैगा। यातैं कौन शरीर किसका है। यह निश्चय नहीं होवैगा। किंतु एक एक आत्माके सर्वशरीर हुये चाहिये।

जो ऐसैं कहै:—जाके कर्मसैं जो शरीर उत्पन्न हुआ है ता आत्माका सो शरीर है।

सो बी बनै नहीं। काहेतैं? कर्म जा शरीरसैं होवै है ता कर्म करनैवाले पूर्वशरीरमैं बी सर्वआत्माका संबंध है। यातैं कर्म बी सर्व-आत्माके ही होवैंगे। एकके नहीं।

और ऐसैं कहै:—जा आत्माके मनसहित शरीर है, ता आत्माका सो शरीर है ॥

सो बी बनै नहीं। काहेतैं ?

१ शरीरकी न्यांई मनके साथ बी सर्व-आत्माका संबंध है। ताके विषै यह निश्चय होवै नहीं। जो कौनसा मन किस आत्माका है। किंतु सर्वआत्माके सर्वमन हुए चाहिये।

२ तैसैं इंद्रिय बी सर्व आत्माके सर्व ही होवगे।

३ बाहरिके पदार्थनविषै "यह मेरा है। यह औरका है" ऐसा व्यवहार बी शरीरनिमित्तक है। सो शरीर सर्व-आत्माके सर्व हैं। यातैं बाहरिके पदार्थ बी सर्वआत्माके सर्व हुए चाहिये। और

॥ ३९९ ॥ सर्वव्यापक।

॥ ४०० ॥ सर्वआत्माका व्यापक वस्तुमैं भिन्न सर्व परिच्छिन्न देह इंद्रिय मन परमाणु आदिक वस्तुनसैं संयोग है। यह इस वाक्यका अर्थ है ॥

जो ऐसैं कहैः–जा आत्माकूं जा शरीरमैं अहंबुद्धि औ ममबुद्धि होवै ता आत्माका सो शरीर है, सो अहंबुद्धि औ ममबुद्धि एक है। यासैं सर्व आत्मासैं रहै नहीं। किंतु एक धर्म एक ही धर्मीविषै रहै है। यातैं एक ही आत्माका शरीर है। जा आत्माका जो शरीर है ता शरीरके संबंधी मनइंद्रिय औ बाहिरके पदार्थ ता आत्माके हैं। यातैं व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करनैमैं बी दोष नहीं।

सो वार्त्ता बी बनै नहीं। काहेतैं? यद्यपि अहंबुद्धि एकदेहमैं एक ही आत्माकूं होवै है तथापि सो न्यायमतमैं बनै नहीं। किंतु सर्व-आत्माकूं एक देहमैं अहंबुद्धि हुई चाहिये। काहेतैं न्यायमतमैं बुद्धि नाम ज्ञानका है सो ज्ञान आत्मा औ मनके संयोगतैं होवै है सो मनके साथि सयोग सर्वआत्माका है। यातैं मनके संयोगसैं जैसैं एक देहमैं एकआत्माकूं अहंबुद्धि होवै है तैसैं एक देहमैं सर्वआत्माकूं अहंबुद्धि हुई चाहिये।

जो ऐसैं कहैः--यद्यपि मनका संयोग तौ सर्वआत्मासैं है तथापि जा आत्मामैं ज्ञानका जनक अदृष्टहै ता आत्माकूं ही अहंबुद्धि होवै है।

तौ बी सर्वकूं ही ज्ञान हुवा चाहिये। काहेतैं? जो व्यापक नाना आत्मा अंगीकार करैं तौ एक शरीरकी शुभअशुभक्रियातैं शरीरमैं स्थित सर्वआत्मामैं ही अदृष्ट हुये चाहिये। यह वार्त्ता पूर्व कहि आये; यातैं व्यापक जो नाना आत्मा अंगीकार करैं तौ एक देहमैं सर्वकूं सुखदुःखका भोग हुया चाहिये।

यातैं 'व्यापक नाना कर्त्ता भोक्ता आत्मा है' यह न्यायका सिद्धान्त समीचीन नहीं। औ

॥३४७॥ हमारे सिद्धांतमैं तौ कर्त्ता भोक्ता अंतःकरण है, सो अंतःकरण नाना हैं। व्यापक औ अणु नहीं। किंतु शरीरके समान ता अंतःकरणका परिमाण है॥ दीपकके प्रकाशकी न्यांई बडे शरीरकूं प्राप्त होवै, तब अंतःकरण का विकास होवै है औ न्यूनशरीरमैं संकोच होवै है। यह वार्त्ता सिद्धांतबिंदुके व्याख्यानमैं मधुसूदनस्वामीनै प्रतिपादन करी है। जा अंतः-करणका जा शरीरसैं संबंध है ता अंतःकरणकूं ता शरीरसैं भोग होवै है।

जो अंतःकरणकूं व्यापक अंगीकार करैं तौ सर्वशरीर सर्वके होवैं औ भोग बी सर्वकूं होवै, सो व्यापक अंतःकरण नहीं। यातैं दोष नहीं॥ औ अंतःकरणकूं अणु अंगीकार करैं तौ शरीर-के एकदेशमैं अंतःकरण रहै है ऐसा अंगीकार करना होवैगा सो वार्त्ता बनै नहीं। काहेतैं? जो एक कालमैं ही पाद औ मस्तकमैं कंटक-वेध होवै तौ दोनूं स्थानमैं एक ही कालमैं पीडा होवै है। सो नहीं हुई चाहिये। काहेतैं? जो अंतःकरण अणु होवै तौ एक ही स्थानमैं एक कालमैं रहै। यातैं जा स्थानमैं अंतःकरण होवै ता स्थानमैं ही पीडा हुई चाहिये। दोनूं स्थानमैं नहीं॥

यातैं अंतःकरण अणु औ व्यापक नहीं; किंतु शरीरके समान है। यातैं कोई दोष नहीं।

अणु औ व्यापकसैं विलक्षण जो है, ताकूं ही मध्यमपरिमाण कहै हैं॥ औ–

॥ ३४८॥ [पूर्वपक्षीः–] न्यायमतमैं किसी नवीननै ऐसा अंगीकार किया हैः–

॥ ४०१ ॥ जैसैं नानाघटकूं व्यापक कहना निष्फल है तैसैं देहदेहविषै ही कर्त्ता भोक्ता नाना आत्माकूं व्यापक कहना निष्फल है।

किंवा नानाअन्तःकरणके अंगीकार किये भोगकी असंकरकी सिद्धितैं व्यापक आत्माकूं नाना कहना निष्प्रयोजन है॥

१ आत्मा नाना हैं, कर्त्ता भोक्ता हैं । व्यापक नहीं, यातैं भोगका संकर नहीं ॥
२ अणु बी नहीं, यातैं दो स्थानमैं पीडाका असंभव बी नहीं ।

किंतु जैसैं वेदांतमतमैं अंतःकरण मध्यमपरिमाण है तैसैं आत्मा बी मध्यमपरिमाण है, ताके विषै चतुर्दशगुण रहै हैं ।

॥ ३४९ ॥ [सिद्धांतीः-] सो बी समीचीन नहीं । काहेतैं ?

१ जो आत्माकूं संकोचविकासवाला अंगीकार करैं तौ दीपकी प्रभाकी न्यांई आत्मा विकारी औ विनाशवाला होवैगा । यातैं मोक्षप्रतिपादक शास्त्र औ साधन निष्फल होवैंगे। औ--

२ मध्यमपरिमाण अंगीकार करिके संकोचविकार अंगीकार नहीं करैं तौ कौनसै शरीरके समान आत्माकूं अंगीकार करैं, यह निश्चय होवै नहीं ॥

३ जो मनुष्यशरीरके समान अंगीकार करैं तौ जब आत्मा हस्तीके शरीरकूं प्राप्त होवै, तब सर्वशरीरमैं आत्मा नहीं होवैगा । यातैं जा देशमैं हस्तीके आत्मा नहीं है ता देशमैं पीडा नहीं हुई चाहिये । औ---

४ हस्तीके शरीरके समान अंगीकार करै तौ तासैं और शरीर बड़े हैं, तिन्हके एकदेशमैं पीडा नहीं हुई चाहिये औ सर्वसैं बड़ा किसीका शरीर है नहीं । जाके समान आत्मा अंगीकार करैं । औ---

५ सर्वसैं बड़ा विराट्का शरीर है; ताके समान जो आत्मा अंगीकार करैं तौ विराट्के शरीरके अंतर्भूत सर्व शरीर हैं । यातैं सर्व-आत्माका सर्वशरीरसैं संबंध होवैगा, ताके विषै पूर्वदोष कहे ही हैं । औ--

यह नियम हैः-जो मध्यमपरिमाणवस्तु होवै सो शरीरकी न्यांई अनित्य होवै है । यातैं आत्मा बी अनित्य होवैगा औ अंतःकरणका तौ हमारे मतमैं ज्ञानतैं नाश होवै है । यातैं अनित्य है । मध्यमपरिमाण अंगीकार कियेसैं दोष नहीं ॥

इस रीतिसैं नवीन तार्किकका मत बी समीचीन नहीं । औ—

॥ ३५० ॥ [पूर्वपक्षीः-] जो कोई ऐसैं कहैः-आत्मा नाना हैं औ अणु हैं ।

[सिद्धांतीः-] सो वार्त्ता बी बनै नहीं । काहेतैं ?

१ जो आत्माकूं कर्त्ता भोक्ता अंगीकार करैं तौ अंतःकरणके अणुपक्षमैं जो दोष कह्या सो दोष होवैगा ॥ औ—
२ कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करैं तौ नानाआत्मा अंगीकार निष्फल होवैगा ।

एक ही व्यापक सर्वशरीरमैं अंगीकार करना योग्य है । औ-

कर्त्ता भोक्ता अंगीकार नहीं करैं तौ अपनै सिद्धांतका बी त्याग होवैगा । काहेतैं ? अणुवादीका यह सिद्धांत हैः-ज्ञानसुखदुःखधर्मसैं आदि लेके आत्माके धर्म हैं। यातैं जो आत्माकूं अणु अंगीकार करैं तौ जा शरीरदेशमैं आत्मा नहीं है, सो देश मृतसमान है । ताके विषै पीडादिक नहीं हुई चाहिये ॥

॥ ३५१ ॥ और जो ऐसैं कहैंः-यद्यपि आत्मा तौ शरीरके एकदेशमैं है । परंतु कस्तूरीके गंधकी न्यांई ताका ज्ञान सारे शरीरमैं

॥ ४०२ ॥ इहां यह रहस्य हैः--जातैं शरीरके अन्तर्गत मनइंद्रियआदिक सर्वअल्पपदार्थनसैं आत्माका संयोग है । यातैं मध्यमपरिमाणवाले आत्माविषै बी, न्यायसंप्रदायउक्त व्यापकका लक्षण संभवै है ।

व्याप्त है। यातैं सर्वशरीरविषै अनुकूलप्रतिकूलके संबंधकूं अनुभव करै हैं ॥

सो बी बनै नहीं । काहेतैं ? यह नियम हैः-जितनै देशमैं गुणवाला रहै तासैं बाहरि गुण रहै नहीं । किंतु गुणीमैं ही गुण रहै है ॥ जैसैं रूप घटादिकनतैं बाहरि रहै नहीं, तैसैं आत्मासैं बाहरि ज्ञानी बी बनै नहीं । औ कस्तूरीके सूक्ष्मभाग जितनै देशमैं व्याप्त होवैं, उतनै देशमैं ही गंध व्याप्त होवै है । यातैं कस्तूरीका दृष्टांत बी बनै नहीं । यातैं "आत्मा अणु है" । यह पक्ष बी बनै नहीं ॥ औ--

कहूं श्रुतिमैं आत्मा अत्यंतअणुसैं बी अणु जो कह्या है सो दुर्विज्ञेय है, यातैं कह्या है ॥ जैसैं अत्यंतअणुवस्तुका मंददृष्टिपुरुषकूं ज्ञान होवै नहीं। तैसैं बहिर्मुखपुरुषकूं आत्माका बी ज्ञान होवै नहीं । यातैं अणुके समान है । यह श्रुतिका अभिप्राय है औ "आत्मा अणु है" यह अभिप्राय नहीं । काहेतैं ? [४०३]बहुत स्थानमैं व्यापकरूप आप ही वेदनै प्रतिपादन किया है । यातैं अणु नहीं ॥

इस रीतिसैं "व्यापक तथा मध्यमपरिणाम अथवा अणु आत्मा नाना हैं" यह कहना संभवै नहीं ॥

॥ ३६२ ॥ [४०४]परिशेषतैं एक व्यापक आत्मा है, ताके विषै धर्मअधर्म सुखदुःख औ बंधमोक्ष जो अंगीकार करैं । तौ किसीकूं सुख औ किसीकूं दुःख, किसीकूं बंध, किसीकूं मोक्ष, ऐसा व्यवहार नहीं होवैगा । यातैं धर्मादिक बुद्धिके धर्म हैं ॥

यद्यपि बुद्धि जड है । यातैं ताके विषै बी धर्मसुखादिक बनै. नहीं । **तथापि** आत्माके धर्म नहीं हैं । इस अभिप्रायतैं बुद्धिके धर्म कहिये हैं औ "बुद्धिके धर्म हैं" याके विषै अभिप्राय नहीं ॥

बुद्धि औ सुखादिक आत्मामैं अध्यस्त हैं ॥

१ जो वस्तु जामैं अध्यस्त होवै, सो तामैं परमार्थसैं होवै नहीं । जैसैं सर्प रज्जुमैं अध्यस्त है, सो परमार्थसैं रज्जुमैं है नहीं ॥ तैसैं बुद्धि औ सुखादिक आत्मामैं हैं नहीं ॥ औ-

२ अध्यस्तवस्तु बी किसीका आश्रय होवै नहीं । यातैं बुद्धि बी सुखादिकनका आश्रय है नहीं । परंतु-

(१) अज्ञान तौ शुद्धचेतनमैं अध्यस्त है । औ--

(२) अंतःकरण अज्ञानउपहितमैं अध्यस्त है। औ-

(३) अंतःकरणउपहितमैं धर्मअधर्म सुख दुःख बंधमोक्ष अध्यस्त हैं ॥

इस रीतिसैं आत्मामैं धर्मादिकनके अधिष्ठान-

॥ ४०३ ॥ "अणोरणीयान् महतो महीयान्" या श्रुतिका यह अर्थ हैः-

१ **पृथिवीतैं** जल सूक्ष्म है औ व्यापक है।
२ **जलतैं** तेज सूक्ष्म है औ व्यापक है।
३ **तेजतैं** वायु सूक्ष्म है औ व्यापक है।
४ **वायुतैं** आकाश सूक्ष्म है औ व्यापक है ।
५ **आकाशतैं** माया सूक्ष्म है औ व्यापक है।
६ **मायातैं** आत्मा सूक्ष्म है औ व्यापक है । औ
७ इत्यादि श्रुतिनविषै आत्माकी **सर्वतैं** सूक्ष्मता औ व्यापकता कही है ॥

यह अर्थ उपदेशसहस्रीमैं भगवान्भाष्यकारनै प्रतिपादन किया है औ तिसके अनुसार हमनै विचारचन्द्रोदयकी दशमकलाविषै युक्ति सहित लिख्या है । यातैं 'आत्मा अणु है' यह कथन निष्फल है ।

॥ ४०४ ॥ बहुत अर्थनके प्राप्त हुये अन्योंके निषेध भये अवशेष रहे एकअर्थविषै जो निश्चय होवै सो **परिशेष** कहिये है। तिस परिशेषतैं ॥

पनैंका अंतःकरण उपाधि है । यातैं अंतःकरणके धर्म कहिये हैं ॥

॥ ३९३ ॥ जो अंतःकरणविशिष्टमैं धर्मादिक अध्यस्त कहैं तौ बनै नहीं । काहेतैं? विशेषणयुक्तकानामविशिष्ट है । धर्मादिक अध्यासका अधिष्ठान जो आत्मा, ताका अंतःकरण जो विशेषण अंगीकार करैं तौ अंतःकरण बी धर्मसुखादिकनका अधिष्ठान होवैगा ॥ सो वार्त्ता बनै नहीं। काहेतैं?मिथ्यावस्तु अधिष्ठान होवै नहीं। यातैं आत्मामैं धर्मादिकनके अध्यासका अंतःकरण विशेषण नहीं। किंतु उपाधि है ॥

१ उपाधिका यह स्वभाव हैः– आप तटस्थ होयके जितनै देशमैं आप होवै । उतनै देशमैं स्थित वस्तुकूं जनावै ॥ औ–
२ विशेषणका यह स्वभाव हैः–– जितनै देशमैं आप होवै उतनै देशमैं स्थित वस्तुकूं अपनै सहित जनावै ॥
१ विशेषणकूं विशिष्ट कहै हैं। औ––
२ उपाधिवालेकूं उपहित कहै हैं ॥

इस रीतिसैं अंतःकरणविशिष्टमैं जो धर्मादि अध्यस्त कहैं तौ जितनै देशमैं अंतःकरण हैं ता देशमैं स्थित चेतनभाग औ अंतःकरण दोनूंवाकूं अधिष्ठानता होवैं। सो अंतःकरण आप बी अध्यस्त है । यातैं अधिष्ठान बनै नहीं इस अभिप्रायतैं अंतःकरणउपहितमैं धर्मादिक अध्यस्त कहे ॥

यातैं "जितनै देशमैं अंतःकरण है उतनै देशमैं स्थित चेतनभागमात्रमैं अधिष्ठानता है। अंतःकरणमैं नहीं" यह वार्त्ता बनै है ॥

॥ ३९४ ॥ तैसैं अंतःकरण बी अज्ञानउपहितमैं अध्यस्त है । अज्ञानविशिष्टमैं नहीं ॥

इस रीतिसैं अध्यस्त जो धर्मादिक तिन्हका अधिष्ठान आत्मा है ॥

१ अध्यासके अधिष्ठानपनैकी अंतःकरण उपाधि है। यातैं बुद्धिके धर्म कहै हैं। औ–
२ अविवेकसैं अंतःकरण–आत्मा दोनूंवांविषै प्रतीत होवै है । यातैं अंतःकरणविशिष्ट जो प्रमाता, ताके धर्म कहै हैं।
१ धर्मादिकविशिष्ट अंतःकरणके धर्म होवैं।
२ अथवा अंतःकरणविशिष्ट प्रमाताके धर्म होवैं ।
३ अथवा रज्जुसर्प, स्वप्नके पदार्थ गंधर्वनगर, नभनीलताकी न्याई किसीके धर्म ना होवैं ।

सर्व प्रकारसैं आत्माके धर्म नहीं ॥

यद्यपि आत्मामैं अध्यस्त हैं तथापि जो वस्तु जामैं अध्यस्त होवै सो ताहीमैं परमार्थसैं होवै नहीं । यातैं राग द्वेष, धर्म अधर्म, सुख दुःख औ बंध मोक्षसैं रहित एक व्यापक आत्मा है ॥

अध्यस्त नाम कल्पितका है ॥

॥ २५५ आत्मा सत् है ॥

सो आत्मा सत् है ॥

१ जा वस्तुका ज्ञानतैं अभाव होवै सो असत् कहिये है ॥
२ जाकी निवृत्ति किसी कालमैं बी नहीं होवै सो सत् कहिये है ॥

सर्व पदार्थनका औ तिनकी निवृत्तिका आत्मा अधिष्ठान है ॥

जो आत्माकी निवृत्ति होवै तौ ताका और अधिष्ठान कह्या चाहिये । काहेतैं?–

१ शून्यमैं निवृत्ति होवै नहीं ॥
२ जो आत्मा औ ताकी निवृत्तिका अन्य अधिष्ठान अंगीकार करै तौ ताका और अधिष्ठान अंगीकार करना होवैगा, इस रीतिसैं अनवस्था होवैगा ॥ औ–

आत्माकी जो निवृत्ति अंगीकार करै, ताकूं यह पूछे हैं:—१ जो आत्माकी निवृत्ति किसीनै अनुभव करी है ? २ अथवा नहीं ?

१जो ऐसें कहैः—अनुभव करी है ।

सो बनै नहीं । काहेतें? जो अनुभव करनै वाला है सोई आत्मा है औ अपना स्वरूप है, ताकी निवृत्तिका अनुभव अपनै मस्तकछेदनके अनुभवसमान है । यातें आत्माकी निवृत्तिका अनुभव बनै नहीं ॥ औ—

२ ऐसें कहै जोः— आत्माकी निवृत्ति तौ होवै है । परंतु ताकी निवृत्तिका अनुभव किसीकूं नहीं ॥

तौ यह वार्त्ता सिद्ध हुई । जो आत्माकी निवृत्ति तौ होवै नहीं । काहेतें ? जो वस्तु किसीनै अनुभव नहीं करी, सो वंध्यापुत्रके समान होवै है ।

यातें आत्माकी निवृत्ति होवैं नहीं । याहीतें आत्मा सत् है ॥ औ—

॥ ३५६ ॥ आत्मा चित् (चैतन्य) है ॥ ३५६-३५९ ॥

आत्मा चित् है ॥

प्रकाशरूप जो ज्ञान सो "चित्" कहिये है ॥

१ जो अप्रकाशरूप आत्मा अंगीकार करैं तौ अनात्मजडवस्तुका प्रकाश कदे होवै नहीं ॥

२ जो अंतःकरण औ इंद्रियनसैं पदार्थनका प्रकाश कहैं तौ बनै नहीं। काहेतें ? अंतःकरण औ इंद्रिय परिच्छिन्न हैं । यातैं कार्य हैं ॥

१ जो परिच्छिन्न होवै सो घटकी न्यांई कार्य होवै है औ अंतःकरण इंद्रिय बी परिच्छिन्न हैं, यातैं कार्य हैं ॥

२ देशकालतैं जाका अंत होवै सो परिच्छिन्न कहिये है ॥

३ जो कार्य होवै सो जड होवै है ॥

अंतःकरण औ इंद्रिय बी जड हैं । तिनतैं किसी वस्तुका प्रकाश बनै नहीं । यातैं जो आत्मा सर्वका प्रकाश करै है । सो प्रकाशरूप है ॥ औ—

॥ ३५७ ॥ जो ऐसें कहैः—आत्मा प्रकाशरूप नहीं किंतु आत्मा तौ जड है औ ताके विषै ज्ञानगुण है, ता ज्ञानतैं आत्मा औ अनात्माका प्रकाश होवै है ॥ ताकूं यह पूछे हैं:— १ आत्माका ज्ञानगुण नित्य है ? २ अथवा अनित्य है ?

१ जो नित्य कहै—

तौ आत्माका स्वरूप ही ज्ञान सिद्ध होवैगा। काहेतें ? यह नियम हैः—जो आत्मासें भिन्न होवै, सो अनित्य होवै है ॥ जो ज्ञानकूं आत्मासैं भिन्न अंगीकार करैं तौ अनित्य ही होवैगा । यातैं नित्य मानिके आत्मासैं भिन्न ज्ञान है । यह कहना बनै नहीं । औ—

जो अनित्य अंगीकार करैं—

तौ घटादिकनकी न्यांई जड होवैगा ॥ जो अनित्यवस्तु होवै सो जड होवै है । यातैं "ज्ञान अनित्य है" यह कहना बनै नहीं किंतु ज्ञान नित्य ही है ॥ सो नित्यज्ञान आत्मस्वरूप ही है ॥ जो अनित्य अंगीकार करैं तौ कदाचित् आत्मामैं ज्ञान होवै औ कदाचित् नहीं। यातैं आत्मासैं भिन्न बी ज्ञान होवै औ नित्य अंगीकार कियेसैं तौ भिन्न होवै नहीं ॥

॥ ४०९ ॥ अलुप्तप्रकाशकूं चित् कहै है ॥ चेतनरूप ज्ञानका लोप नहीं है । इस अर्थ विषै यह श्रुति हैः—द्रष्टाकी (स्वरूपभूत) दृष्टिका लोप (नाश) नहीं है। अविनाशी होनैतैं ॥

जो गुण होवै सो गुणवान्‌विषे कदाचित् रहै औ कदाचित् नहीं बी रहै । जैसैं वस्त्रका नीलपीतगुण कदाचित् रहै औ कदाचित् नहीं रहै यातैं जो गुण होवैं सो आगमापायी होवै है ॥ औ--

ज्ञानकूं नित्यता होनैतैं आगमापायी है नहीं, यातैं आत्माका स्वरूप ही ज्ञान है । औ--

॥ ३५८ ॥ ज्ञानकूं अनित्य कहैं तौ 'इंद्रिय अथवा अंतःकरणसैं ज्ञान उत्पन्न होवै है, यह कहना होवैगा ।

सो बनै नहीं । काहेतैं ? सुषुप्तिमैं इंद्रियादिक तौ हैं नहीं औ सुखका ज्ञान होवै है सो नहीं हुवा चाहिये ।

जो सुषुप्तिमैं सुखका ज्ञान अंगीकार नहीं करैं तौ जागिके 'मैं सुखसैं सोया' यह सुषुप्तिके सुखकी स्मृति होवै है, सो नहीं हुई चाहिये । जा वस्तुका पूर्व ज्ञान होवै ताकी स्मृति होवै है औ अज्ञात वस्तुकी स्मृति होवै नहीं औ सुषुप्तिके सुखकी जागिके स्मृति होवै है, यातैं सुषुप्तिमैं सुखका ज्ञान होवै है । ता ज्ञानके जनक इन्द्रियादिक सुषुप्तिमैं हैं नहीं । यातैं नित्य है ।

ज्ञानकूं त्यागिके आत्मा कदै बी रहै नहीं, यातैं ज्ञान आत्माका स्वरूप है । जैसैं उष्णताकूं त्यागिके अग्नि कदै बी रहै नहीं, यातैं उष्णता वह्निका स्वरूप है, तैसैं ज्ञान बी आत्माका स्वरूप है । जो आगमापायी होवै सो गुण होवै है । उष्णता औ ज्ञान आगमापायी हैं नहीं, यातैं अग्नि औ आत्माके स्वरूप हैं ।

जो वस्तु कदाचित् होवै औ कदाचित् न होवै सो आगमापायी कहिये है ।

॥ ३५९ ॥ उत्पत्ति औ विनाश अंतःकरणकी वृत्तिके होवै हैं, ज्ञानके नहीं ॥

१ आत्मस्वरूप जो ज्ञान है सो विशेषव्यवहारका हेतु नहीं । किंतु ज्ञानसहित वृत्ति अथवा वृत्तिमैं आरूढ ज्ञान व्यवहारका हेतु है । यह अवच्छेदवादकी रीति है । औ--

आभासवादमैं आभाससहित वृत्तिसैं व्यवहार होवै है । आभासद्वारा अथवा साक्षात्वृत्तिद्वारा आत्मस्वरूपज्ञानसैं ही सर्व व्यवहारसिद्ध होवै है । नहीं तौ होवै नहीं ।

इस रीतिसैं सर्वका प्रकाशक ज्ञानस्वरूप आत्मा है । यातैं चित् है । औ--

॥ ३६० ॥ आत्मा आनंदरूप है ।

॥ ३६०--३६३ ॥

आत्मा आनन्दरूप है ।

जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै तौ विषयसंबंधसैं स्वरूपआनंदका भान होवै है, सो नहीं हुया चाहिये । विषयमैं आनंद नहीं । यह वार्त्ता पूर्व कही है ।

जो विषयमैं आनंद होवै तौ जा विषयतैं एक पुरुषकूं सुख होवै तासैं ही अन्यकूं दुःख होवै है । जैसैं अग्निके स्पर्शतैं अग्निकीटकूं औ सर्पसिंहके रूप देखनैतैं सर्पनी सिंहनीकूं आनंद होवै है औ अन्यपुरुषनकूं दुःख होवै है सो नहीं हुँया चाहिये औ सिद्धांतमैं तौ अग्निकीटकूं

॥ ४०६ ॥ जातैं एक ही विषयतैं किसीकूं सुख होवै है औ किसीकूं दुःख होवै है यातैं सो विषय नियमतैं अपनी इच्छातैं रहित किंवा इच्छासहित सर्व पुरुषनकूं सुखका हेतु नहीं । किंतु विषयकी इच्छासहित पुरुषकूं ही अपनी प्राप्तिसैं इच्छाके तिरस्कारद्वारा अन्तर्मुख भई वृत्तिमैं प्रियमोदप्रमोदके पर्यायरूप आत्मस्वरूप आनंदके प्रतिबिंबमैं निमित्त है । यातैं विषयमैं आनंदकी कारणताका व्यभिचार है । औ-

अग्निस्पर्शकी इच्छा होवै, तब चंचल-बुद्धिमैं स्वरूपआनंदका भान होवै नहीं । अग्नि-सम्बन्धतैं क्षणमात्र इच्छा दूरि होयके निश्चल-बुद्धिमैं स्वरूपआनंदका भान होवै है । अन्य-पुरुषनकूं अग्निसंबन्धकी इच्छा है नहीं किंतु अन्यपदार्थनकी इच्छा है। तिन पदार्थनकी इच्छा अग्निसम्बन्धसैं दूरि होवै नहीं, यातैं चंचल-अंतःकरणमैं अग्निसंबन्धसैं आनन्द होवै नहीं। याके विषै—

॥ ३६१ ॥ यह शंका होवै है:—जो इच्छारूप अंतःकरणकी वृत्ति है सो तौ विषय-प्राप्तिसैं नाशकूं प्राप्त होय गयी औ अन्यवृत्तिका कोई निमित्त है नहीं, यातैं उत्पत्ति हुई नहीं औ वृत्तिसैं विना स्वरूपआनंद भान होवै नहीं; यातैं विषयमैं ही आनंद है ॥

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ?

१ यद्यपि इच्छारूप तौ अंतःकरणकी वृत्तिका अभाव है सो इच्छारूप वृत्ति होवै तौ बी ताके विषै आनंद प्रकाश होवै नहीं। काहेतैं? इच्छारूप वृत्ति राजस है औ आनंदका प्रकाश सात्त्विकवृत्तिमैं होवै है। तथापि वांछित पदार्थ जो मिल्या है ताके स्वरूपकूं विषय करनै वास्ते जो ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्ति है सो सात्त्विक है । काहेतैं ? सत्त्वगुणसैं ज्ञान होवै है यह नियम है । ता सात्त्विक वृत्तिमैं आनंदका भान होवै है। परंतु सो ज्ञानरूप वृत्ति बहिर्मुख है। ताके पृष्ठभागमैं स्थित जो अंतः-करणउपहित चेतनस्वरूप आनंद, ताका तिस वृत्तिसैं ग्रहण होवै नहीं । यातैं विषयउपहित चेतनरूप आनंदका भान होवै है, सो विषय उपहितचेतन आत्मासैं भिन्न नहीं। यातैं आत्मा-नंदका ही विषयमैं भान कहिये है। ता ज्ञानरूप वृत्तिविषै विषयके साथ नेत्रादिकनका संबंध ही निमित्त है॥

२ अथवा ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति तासैं अन्य अंतर्मुख[४०७]वृत्ति होवै है। ताके विषै अंतःकरण-उपहित चेतनरूप आनंदका ही भान होवै है। यह उत्तमसिद्धांत है । ता वृत्तिकी उत्पत्तिमैं इच्छादिकनका अभाव ही निमित्त है । जैसैं इच्छादिकनतैं रहित जो एकांतमैं उदासीन-पुरुष स्थित है, ताकूं बाहिर्मुखज्ञानरूपतैं कोई वृत्ति होवै नहीं। आनंदका भान होवै है । यातैं इच्छादिकनके अभावरूप निमित्ततैंअंतर्मुखवृत्ति आनंद ग्रहण करनेवाली होवै है। तासैं वांछित विषयके लाभसैं इच्छादिकनका अभाव होनेतैं ज्ञानसैं अनंतर अंतर्मुखवृत्ति होवै है । तिसतैं अंतःकरणउपहित आनंदका ही ग्रहण होवै है।

सो स्वरूपआनंदका ग्रहण औ विषयका ज्ञान अत्यंत अव्यवहित है, यातैं, पुरुषकूं ऐसी भ्रांति होवै है:—"मैंनें विषयमैं आनंद अनुभव

विषयकी प्राप्तिसैं किंवा एकांतदेशके सेवनतैं होता जो है इच्छाका अभाव, सो प्रतिबिंबरूप सुखका नियमित कारण है ।

जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै तौ अन्तर्मुख-वृत्तिविषै जो आनंद होवै है सो नहीं हुया चाहिये। यातैं आत्मा आनंदरूप है यह सारे प्रकरणका निष्कर्ष (निचोड) है।

॥ ४०७ ॥ एकाग्रतायुक्त सात्विकीवृत्ति । याही-कूं प्रियमोद औ प्रमोदवृत्ति बी कहते हैं।

॥ ४०८ ॥ जैसैं श्वान हड्डीकूं चाबता है, तिस कारि अपनै मुखके मसोडेआदिक टूटे अवयवनसैं रुधिर निकसता है ताकूं प्राशन करिके "यह रुधिर मुझकूं हड्डीमैसैं प्राप्त भया है" ऐसैं मानता है। तैसैं वांछित विषयकी प्राप्तिरूप निमित्तसैं इच्छाकी निवृत्ति

किया है"। प्रथमपक्षसैं यह पक्ष उत्तम है। काहेतैं ? जो विषयका ज्ञानरूप वृत्ति है तासैं अंतःकरणउपहित आनंदका तौ भान बनै नहीं। यातैं विषयउपहित आनंदका भान होवैगा तौ मार्गमैं वृक्षका जो ज्ञानरूप वृत्ति है सो बी सात्त्विक है। तासैं बी वृक्षउपहित चेतनस्वरूप आनंदका भान हुवा चाहिये। तैसैं सर्वज्ञानसैं ज्ञेयउपहित चेतनरूप आनंदका भान हुवा चाहिये यातैं अनात्मवस्तुका ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति तासैं ज्ञेयउपहित चेतनस्वरूप आनंदका ग्रहण होवै नहीं।

इस रीतिसैं विषयके संबंधसैं आत्मस्वरूपानंदका भान होवै है। जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै तौ विषयसंबंधसैं आनंदका भान बनै नहीं। यातैं आत्मा आनंदरूप है ॥ औ——

॥ ३६२ ॥ आत्माका संबंधी जो वस्तु है ताके विषै प्रेम होवै है। तासैं सन्निहितमैं अधिक प्रेम होवै है ॥ इस रीतिसैं बाहिरबाहिरके पदार्थनकी अपेक्षातैं अंतरअंतरके पदार्थनमैं अधिक प्रीति है।

१ परंपरातैं आत्माका संबंधी जो पुत्रका मित्र तामैं प्रीति होवै है।

२ पुत्रके मित्रकी अपेक्षातैं पुत्रमैं अधिक प्रीति होवै है ॥ औ——

३ पुत्रसैं बी स्थूलसूक्ष्मशरीरमैं अधिक प्रीति है। औ—

४ स्थूलसूक्ष्मशरीरमैं बी स्थूलतैं सूक्ष्ममैं अधिक प्रीति है।

पूर्वपूर्वसैं उत्तरउत्तर आत्माके समीप हैं ॥

१ आत्माका आभास सूक्ष्मशरीरमैं है, औरमैं नहीं। यातैं आभासद्वारा आत्माका सूक्ष्मशरीरसैं संबंध है। औरसैं नहीं।

२ स्थूलशरीरसैं सूक्ष्मशरीरका संबंध है। यातैं स्थूलशरीरसैं सूक्ष्मशरीरद्वारा आत्माका संबंध है। औ——

३ पुत्रसैं स्थूलशरीरद्वारा संबंध है। औ

४ पुत्रके मित्रसैं पुत्रद्वारा संबंध है।

इस रीतिसैं उत्तरउत्तर जो आत्माके समीप ताके विषै अधिक प्रीति है।

जा आत्माके संबंध होनेतैं पदार्थमैं प्रीति होवै ता आत्मामैं ही मुख्य प्रीति है और पदार्थमैं नहीं। जैसैं पुत्रके मित्रमैं पुत्रके संबंधसैं प्रीति है, यातैं पुत्रमैं ही प्रीति है, पुत्रके मित्रमैं नहीं, तैसैं आत्माके अधिकसमीपमैं अधिक प्रीति होवै है। यातैं आत्माविषै ही सर्वकी प्रीति है ॥

द्वारा अन्तर्मुख भई वृत्तिविषै प्रतिबिंबित स्वरूपआनंदका अनुभवकरिके "मैंने विषयमैं आनंद अनुभव किया है" ऐसी अविवेकी पुरुषकूं भ्रांति होवै है।

तिस भ्रांतिकरि सो फेर बी अधिकअधिक विषयकी प्राप्तिके निमित्त प्रयत्न करता है औ विवेकी पुरुषकूं उक्त भ्रांति नहीं है। यातैं सो निरुपाधिक आनंदकी प्राप्तिके निमित्त वेदांतविचारआदिकविषै प्रयत्न करता है ॥

१ यद्यपि विषयमैं जो आनंदका भान होवै है, सो बी स्वरूपका आनंद है। तथापि श्वानकी खड्डीविषै स्थित दुग्धकी न्यांई निषिद्ध होनेतैं सो विषयानंद उपादेय नहीं। किंतु अनेक विक्षेपनका हेतु होनेतैं हेय है।

२ विषयके अभावपूर्वक विचारआदिक साधनतैं जो आनंदका भाव होवै है सो सुवर्णआदिकके पात्रविषै स्थित दुग्धकी न्यांई शास्त्रविहित होनेतैं उपादेय है ॥

॥४०९॥ "विषयाकारवृत्तिसैं विषयउपहित चेतनरूप आनंदका भान होवै है" इस प्रथमपक्षसैं "अन्य अन्तर्मुखवृत्तिविषै अन्तःकरणउपहित चेतनआनंदका ही भान होवै है" यह द्वितीयपक्ष उत्तम है। यह ही पक्ष पूर्व चतुर्थतरंगविषै बी कहा है।

सो प्रीति आनंदमैं औ दुःखके अभावमैं होवै है, औरमैं नहीं । और पदार्थनमैं जो प्रीति होवै सो आनंद औ दुःखके अभावके निमित्त होवै है । यातैं आनंद औ दुःखके अभावसैं औरमैं प्रीति नहीं । यातैं सर्वकी प्रीतिका विषय जो आत्मा सो आनंदरूप है । औ--

दुःखका अभाव आत्मारूप है । कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप होवै है । जैसैं सर्पका अभाव रज्जुरूप है यातैं कल्पित जो दुःख ताका अभाव बी आत्मारूप है ।

इस रीतिसैं आत्मा आनंदरूप है । औ--

॥ ३६३ ॥ न्यायमतमैं आत्माका आनंदगुण है सो समीचीन नहीं । काहेतैं ?

जो आनंदगुणकूं नित्य अंगीकार करैं तौ आगमापायी नहीं होवै । यातैं आत्माका स्वरूप ही आनंद सिद्ध होवैगा औ नित्यआनंद न्यायमतमैं है बी नहीं ॥ औ--

अनित्य जो कहैं, तौ अनुकूलविषय औ इंद्रियके संबंधसैं आनंदकी उत्पत्ति अंगीकार करनी होवैगी । यातैं सुषुप्तिमैं आनंदका भान नहीं हुवा चाहिये । काहेतैं ? सुषुप्तिमैं विषयका औ इंद्रियका संबंध है नहीं । यातैं आत्माका आनंदगुण नहीं किंतु आत्मा आनंदरूप है ।

इस रीतिसैं आत्मा सत्‌चित्‌आनंदरूप है ॥

॥ ३६४ ॥ सच्चिदानंद परस्पर भिन्न नहीं ॥ ३६४-३६५ ॥

सो सच्चिदानंद परस्पर भिन्न नहीं किंतु एक ही है । जो आत्माके गुण होवैं तौ परस्पर भिन्न बी होवैं । औ आत्मस्वरूप है । यातैं भिन्न नहीं ।

१ एक ही आत्मा निवृत्तिरहित है । यातैं सत् कहिये है । औ---

२ जडसैं विलक्षण प्रकाशरूप है । यातैं चित् कहिये है । औ---

३ दुःखसैं विलक्षण मुख्यप्रीतिका विषय है । यातैं आनंद कहिये है ।

जैसैं उष्णप्रकाशरूप अग्नि है तैसैं सच्चित् आनंदरूप आत्मा है । औ----

सच्चित् आनंदस्वरूप ही शास्त्रमैं ब्रह्म कह्या है । यातैं ब्रह्मस्वरूप आत्मा है ॥ औ----

ब्रह्म नाम व्यापकका है ।

१ देशतैं जाका अंत नहीं होवै सो व्यापक कहिये है । तासैं आत्मा जो भिन्न होवै तौ देशतैं अंतवाला होवैगा ॥

२ 'जाका देशतैं अंत होवै ताका कालसैं बी अंत होवै है' यह नियम है । यातैं अनित्य होवैगा । जाका कालसैं अंत होवै सो अनित्य कहिये है । यातैं ब्रह्मसैं भिन्न आत्मा नहीं ॥ औ----

आत्मासैं भिन्न जो ब्रह्म होवै तौ अनात्मा होवैगा । जो अनात्म घटादिक हैं सो जड हैं, यातैं आत्मासैं भिन्न ब्रह्म बी जड ही होवैगा । यातैं आत्मासैं भिन्न ब्रह्म बी नहीं । किंतु ब्रह्मस्वरूप ही आत्मा है ॥

॥ ३६९ ॥

१ एक ही चेतन सर्वप्रपंच औ मायाका अधिष्ठान है, यातैं ब्रह्म कहिये है ।

२ अविद्या औ व्यष्टिदेहादिकनका अधिष्ठान है, यातैं आत्मा कहिये है ।

१ तत्पदका लक्ष्य ब्रह्म कहिये है । औ-

२ त्वंपदका लक्ष्य आत्मा कहिये है ।

१ ईश्वरसाक्षी तत्पदका लक्ष्य है । औ-

२ जीवसाक्षी त्वंपदका लक्ष्य है ।

१ व्यष्टिसंघातउपहित चेतन जीवसाक्षी है । औ-

२ समष्टिसंघातउपहित चेतन ईश्वरसाक्षी कहिये है।

यद्यपि जीवकी औ ईश्वरकी एकता बनै नहीं **तथापि** जीवसाक्षी औ ईश्वरसाक्षीका उपाधिके भेदसैं भेद है औ स्वरूपसैं एक ही है। जैसैं मठमैं स्थित जो घटाकाश औ मठाकाश तिन्हका उपाधिके भेद विना स्वरूपसैं भेद नहीं, तैसैं आत्मा औ ब्रह्मका उपाधिभेद विना भेद नहीं। एक ही वस्तु है।

॥ ३६६ ॥ ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा है ॥ ३६६-३६८ ॥

सो ब्रह्मरूप आत्मा अजन्मा कहिये जन्मरहित है।

जो आत्माका जन्म अंगीकार करैं तौ अनित्य होवैगा। सो वार्त्ता परलोकवादी जो आस्तिक हैं तिन्हकूं इष्ट नहीं। काहेतें ? जो आत्मा उत्पत्तिनाशवान् होवै तौ प्रथमजन्मविषै पूर्वकर्म विना ही सुखदुःखका भोग औ किये कर्मका भोगसैं विना नाश होवैगा। यातैं कर्त्ता भोक्ता जो आत्मा अंगीकार करैं तौ बी जन्मनाशरहित ही अंगीकार करना होवैगा। औ–

आत्माका जन्म जो अंगीकार करैं तौ हेतुसैं विना तौ किसी वस्तुका जन्म होवै नहीं। यातैं किसी हेतुसैं ही जन्म कहना होवैगा। सो बनै नहीं। काहेतें ? जो आत्माका हेतु है सो आत्मासैं भिन्न ही कहना होवैगा। सो आत्मासैं भिन्न संपूर्ण आत्मामैं कल्पित हैं। यातैं आत्माका हेतु बनै नहीं। जैसैं रज्जुमैं कल्पित सर्प रज्जुका हेतु नहीं तैसैं आत्मामैं कल्पित वस्तु आत्माका हेतु बनै नहीं।

॥३६७॥ जैसैं एक रज्जुविषै नानापुरुषनकूं दंड, सर्प, पृथिवीरेखा, जलधाराकी भ्रांति होवै है ता भ्रांतिमैं दो अंश हैं॥

१ एक तौ सामान्यइदम्अंश है औ–

२ एक सर्पादिक विशेषअंश है॥

सो सामान्यइदम्अंश सर्पादिक विशेष अंशनमैं सारे व्यापक है।

१ "यह सर्प है।

२ यह दंड है।

३ यह पृथिवीकी रेखा है।

४ यह जलकी रेखा है।"

इस रीतिसैं सर्पादिक विशेषअंशमैं इदम्अंश सारे व्यापक है। सो व्यापक सामान्यइदम्अंश रज्जुस्वरूप है। सामान्यइदम्अंशके ज्ञानकूं ही भ्रांतिका हेतु रज्जुका सामान्यज्ञान कहै हैं।

सो सामान्य इदम् अंश सत्य है। काहेतें ? रज्जुका ज्ञान हुयेसैं अनंतर बी ता इदम्अंशकी प्रतीति होवै है।

१ जैसैं भ्रांतिकालमैं "यह सर्प है" या रीतिसैं सर्पादिकनसैं मिलिके इदम्अंशकी प्रतीति होवै है।

२ तैसैं भ्रांतिकी निवृत्तिसैं अनंतर बी "यह रज्जु है" या रीतिसैं रज्जुके साथि मिलिके इदम्अंशकी प्रतीति होवै है॥

जो इदम्अंश बी मिथ्या होवै तौ सर्पादिकनकी न्यांई भ्रांतिकी निवृत्तिसैं अनंतर ताकी बी प्रतीति नहीं हुई चाहिये। यातैं सर्पादिक भ्रांतिमैं व्यापक जो इदम्अंश सो सत्य है औ अधिष्ठान रज्जुरूप है औ परस्परव्यभिचारी जो सर्पादिक सो कल्पित हैं।

॥ ३६८ ॥ तैसैं सर्वपदार्थनमैं पांचअंश हैं ॥ १ एक नाम, २ रूप, ३ अस्ति, ४ भाति औ ५ प्रिय।

१ "घट" यह दो अक्षरका नाम। औ–

२ गोल रूप है।

३ घट "है" यह अस्ति॥ औ–

४ "घट प्रतीत होवै यह भाति। औ–

५ "घट प्रिय है" यह आनंद। (सर्पादिक बी सर्पनीआदिकनकूं प्रिय हैं)

इस रीतिसैं सर्वपदार्थनमैं पांच अंश हैं।

१-३ तिन्हविषै अस्ति-भाति-प्रियरूप तीनि-अंश सर्वपदार्थनमैं व्यापक हैं। औ-

४-५ नाम-रूप व्यभिचारी हैं।

जो वस्तु कहूं होवै औ कहूं नहीं होवै सो व्यभिचारी कहिये है।

१-२ 'घट'नाम औ 'गोल'रूप पटविषै नहीं हैं। 'पट'नाम औ ताका रूप घटविषै नहीं है। इस रीतिसैं सर्वपदार्थनाविषै नामरूपअंश व्यभिचारी हैं। औ-

३-५ अस्ति-भाति-प्रियरूप सर्वविषै अनुगत हैं। जैसैं सर्पदंडादिकनमैं अनुगत इदम्अंश सत्य औ अधिष्ठान है। तैसैं सर्वपदार्थनमैं अनुगत अस्ति-भातिप्रियरूप सत्य है औ अधिष्ठान रूप हैं। औ-

१-२ सर्पदंडादिकनकी न्याईं व्यभिचारी नामरूप कल्पित हैं। औ-

३-५ अस्ति-भाति-प्रिय सच्चित्आनंदरूप हैं। यातैं आत्मस्वरूप हैं॥

इस रीतिसैं सच्चित्आनंदरूप आत्माविषै संपूर्ण नामरूपप्रपंच कल्पित है। सो कल्पित-पदार्थ कोई आत्माके जन्मका हेतु बनै नहीं। यातैं आत्मा अजन्मा है॥[410]

जा वस्तुका जन्म होवै ताहीके सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय औ विनाशरूप पांच विकार औैर होवै हैं। आत्माका जन्म होवै नहीं। यातैं उत्तर पांच विकार बी होवैं नहीं।

इस रीतिसैं अजन्मा कहिये जन्मादिक षट्विकारसैं रहित आत्मा है।

सत्ता[411] नाम प्रगटताका है। औ-

अपक्षय नाम घटनैका है।

॥ ३६९ ॥ आत्मा असंग है।

सो अत्मा असंग है।

संग नाम संबंधका है। सो सजातीय-विजातीय-स्वगत-पदार्थनसैं होवै है ॥ जैसैं:-

१ घटका घटसैं जो संबंध है सो सजातीयसैं संबंध है। औ-

२ घटका पटसैं जो संबंध सो विजातीयसैं संबंध है।

३ स्वगत नाम अवयवका है। यातैं पटका तंतुसैं जो संबंध सो स्वगतसैं संबंध है।

१ आत्मा दो अथवा अनंत होवैं तौ सजातीयसैं आत्माका संबंध होवै सो आत्मा एक है। यातैं सजातीय आत्मासैं आत्माका संबंध नहीं ॥ औ-

२ आत्मासैं विजातीय अनात्मा है सो मृगतृष्णाके जलकी न्याईं आत्मामैं कल्पित है। ता कल्पितसैं आत्माका संबंध बनै नहीं। जैसैं मृगतृष्णाके जलसैं पृथिवीका संबंध होवै नहीं, जो संबंध होवै तौ ऊषरभूमि ता जलसैं गीली हुई चाहिये॥ जैसैं मृगतृष्णाके जलसैं ऊषरभूमिका संबंध नहीं तैसैं आत्मामैं कल्पित जो विजातीय अनात्मा तासैं आत्माका संबंध नहीं॥

३ जो आत्माके अवयव होवैं तौ आत्माका

---

[410] ॥ ४१० ॥ जन्मसैं रहित है।

[411] ॥ ४११ ॥ "घटो जायते (घट होता है)" इस व्यवहारका हेतु जन्म है। तिसके अनंतर "घटो जातः (घट जन्मकूं पाया)" इस व्यवहारका हेतु अस्तितारूप विकार है। याहीकूं प्रगटता बी कहते हैं औ सत्ता बी कहते हैं॥

स्वगतसैं संबंध होवै। आत्मा नित्य है। यातैं निरवयव है, ताका स्वगतसैं संबंध बनै नहीं।

इस रीतिसैं सजातीय-विजातीय-स्वगतसंबंध आत्माविषै नहीं। यातैं आत्मा असंग है ॥

इस रीतिसैं हे शिष्य ! सच्चित्आनंदब्रह्म-रूप, जन्मादिकविकाररहित औ असंग आत्मा है। "सो तूं है" यह प्रथमप्रश्नका अर्धदोहेसैं आचार्यनै उत्तर कह्या ॥

(२"संसारका कर्त्ता कौन है" याका उत्तर ॥ ३७०-३७४ ॥)

॥ ३७० ॥ जगत्का कर्त्ता ईश्वर है ॥

"जगत्का कर्त्ता कौन है" यह द्वितीय-प्रश्नका उत्तर अर्धदोहेसैं कहे हैं:

॥ दोहा ॥

विभु चेतन माया करै,
जगको उत्पति भंग।

टीकाः—विभु कहिये व्यापक जो चेतन, ताके आश्रित औ ताकूं विषय करनैवाली माया कहिये सत्असत्सैं विलक्षण अद्भुत-शक्तिरूप अज्ञान, तासैं जगत्की उत्पत्ति, भंग होवै है।

उत्पत्ति औ भंग कहनैतैं स्थितिका ग्रहण अर्थतैं होवै है।

यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवाः—
१ मायायुक्त जो चेतन सो ईश्वर कहिये है।
२ सो ईश्वर जगत्की उत्पत्तिपालननाशका हेतु है।
या कहनैतैं—

१ "जगत्का कोई कर्त्ता है अथवा आपसै होवै है ?" याका उत्तर कह्या ॥ औ—

२ "जगत्का कर्त्ता कोई जीव है अथवा ईश्वर है" याका वी उत्तर कह्या।

॥ ३७१ ॥ ईश्वर १ सर्वज्ञ, २ सर्व-शक्तिमान् औ ३ स्वतंत्र है ॥

॥ ३७१-३७२ ॥

जगत्का कर्त्ता ईश्वर है। आपसैं होवै नहीं। जो कर्त्तासैं विना जगत् होवै तौ कुलाल विना घट हुवा चाहिये। यातैं जगत्का कोई कर्त्ता है।

२ सो कर्त्ता सर्वज्ञ है। काहेतैं ? जो कार्यका कर्त्ता होवै सो ता कार्यकूं औ ताके उपादानकूं जानिके करै है। यातैं जगत्का कर्त्ता वी जगत्कूं औ जगत्के उपादानकूं जानिके करै है। इस रीतिसैं जगत्का कर्त्ता जगत्कूं औ जगत्के उपादानकूं जानै है। यातैं सर्वज्ञ है ॥ औ—

२ सर्वशक्तिमान् है। काहेतैं ? जो अल्प-शक्तिवाले जीव हैं तिन्हसैं या जगत्की रचना मनसैं वी चिंतन होवै नहीं। यातैं अद्भुत-जगत्का कर्त्ता अद्भुतशक्तिवाला है ॥ इस रीतिसैं जगत्का कर्त्ता सर्वशक्तिमान् है ॥ औ—

३ स्वतंत्र है। काहेतैं ? जो न्यूनशक्तिवाला होवै सो पराधीन होवै है औ सर्वशक्तिवाला पराधीन होवै नहीं। यातैं स्वतन्त्र है ॥

इस रीतिसैं जगत्का कर्ता सर्वज्ञ सर्वशक्ति-मान् स्वतंत्र है। ताहीकूं ईश्वर कहे हैं। औ—

॥३७२॥ अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् पराधीनकूं जीव कहै हैं।

यद्यपि अल्पज्ञतादिक जीवमैं वी परमार्थसैं नहीं तथापि अविद्याकृत मिथ्या अल्पज्ञतादिक जीवमैं प्रतीत होवै हैं। यातैं जीवमैं कहिये हैं। अविद्याकृत अल्पज्ञतादिकनकी जो भ्रांति सोई जीवता है।

सो अल्पज्ञतादिकनकी भ्रांति ईश्वरमैं है नहीं । किंतु मायाकृत सर्वज्ञतादिक ईश्वरमैं हैं । यह वार्ता विस्तारसैं आगै प्रतिपादन करैंगे ।

इस रीतिसैं जगत्‌का कर्त्ता जीव नहीं । ईश्वर है ।

॥३७३॥ ईश्वर व्यापक औ नित्य है ॥

सो ईश्वर एकदेशमैं स्थित नहीं किंतु सर्वत्र व्यापक है । जो एकदेशमैं अंगीकार करैं तौ जा वस्तुका देशतैं अंत होवै ताका कालसैं बी अंत होवै है यातैं अनित्य होवैगा ॥

जो अनित्य होवै सो कर्त्तासैं जन्य होवै है । यातैं ईश्वरका बी कर्त्ता अंगीकार करना होवैगा ॥

सो ईश्वरका कर्त्ता बनै नहीं । काहेतैं ?

१ आप तौ अपना कर्ता बनै नहीं । जो अपना कर्ता आप ही अंगीकार करै तौ आत्माश्रयदोष होवैगा ॥

आप ही क्रियाका कर्त्ता(आश्रय)औ आप ही क्रियाका कर्म (क्रियाका विषयरूप कार्य) होवै तहां आत्माश्रय होवै है । जैसैं कुलाल क्रियाका कर्त्ता है औ घट कर्म है तैसैं क्रियाका कर्त्ता औ कर्म भिन्न होवै हैं । एक बनै नहीं । यातैं आत्माश्रय दोष है ॥

कर्म नाम कार्यका है । औ--

कार्यके विरोधीका नाम दोष हैं ॥

आत्माश्रय कार्यका विरोधी है । यातैं दोष है । यातैं--

२ ईश्वरका कर्त्ता अन्य अंगीकार करना होवैगा । सो अन्य बी प्रथम कर्त्ताकी न्यांई कर्त्ताजन्य ही कहना होवैगा ॥ सो ताका कर्त्ता बी प्रथमकी न्यांई तासैं भिन्न ही कहना होवैगा सो प्रथम जो ईश्वर है, ताकूं द्वितीयकर्त्ताका कर्त्ता अंगीकार करैं तौ अन्योन्याश्रय-दोष होवैगा । यातैं--

तृतीयकर्त्ता और अंगीकार करना होवैगा । तब तृतीयका कर्ता जो द्वितीय मानैं तब तौ अन्योन्याश्रयदोष होवै औ प्रथम मानैं तब चक्रिकादोष होवैगा ॥

जैसैं चक्रका भ्रमण होवै है तैसैं-

(१) प्रथमकर्त्ता द्वितीयजन्य औ---

(२) द्वितीयकर्त्ता तृतीयजन्य । औ---

(३) तृतीय प्रथमजन्य ।

(४) सो प्रथम फेरि द्वितीयजन्य ।

इस रीतिसैं कार्यकारणभावका भ्रमण होवैगा । चक्रिकास्थानमैं कोई बी सिद्ध होवै नहीं । सर्वकी परस्पर अपेक्षा है ।

४ अन्योन्याश्रयमैं दोकी परस्पर अपेक्षा है । एककी सिद्धि हुये विना अन्यकी सिद्धि होवै नहीं । यातैं---

(१) जैसैं कुलालका कर्त्ता आप नहीं, किंतु ताका पिता है । तैसैं प्रथमईश्वर-कर्ताका अन्यकर्त्ता है ॥ औ--

(२) कुलालका पिता अपनै पुत्रसैं उत्पन्न होवै नहीं । किंतु अन्यपितासैं उत्पन्न होवै है । तैसैं द्वितीयकर्ता प्रथमकर्तासैं उत्पन्न होवै नहीं । किंतु अन्यकर्तासैं ही कहना होवैगा ॥ औ----

(३) कुलालका पितामह, कुलाल औ ताके पितासैं उत्पन्न होवै नहीं किंतु चतुर्थ जो कुलालका प्रपितामह, तासैं उत्पन्न होवै है ॥

(४) तैसैं तृतीयकर्त्ता बी प्रथम औ द्वितीय-कर्त्तासैं उत्पन्न होवै नहीं । यातैं चतुर्थकर्त्ता और अगीकार करना होवैगा ।

(५) ता चतुर्थका कर्त्ता और पंचम मानना होवैगा ।

यातैं अनवस्थादोष होवैगा ।

धाराका नाम अनवस्था है ।

जो कर्त्ताकी धारा अंगीकार करैं तौ 'कौनसा कर्त्ता जगत् करै है' यह निर्णय नहीं होवैगा ।

५ किसी एककूं जगत्का कर्त्ता माननैमैं कोई युक्ति नहीं । ता युक्तिके अभावका नाम ही विनिगमनाविरह कहै हैं ॥ औ–

६ धाराकी कहूं विश्रांति अंगीकार करैं तौ जा कर्त्तामैं धाराका अंत अंगीकार किया, सोई कर्त्ता जगत्का माननै योग्य है ॥ पूर्व सारे निष्फल होवैंगे। याका नाम ही प्राग्लोप कहै हैं ॥

पीछलेके अभावका नाम प्राग्लोप है ॥

इस रीतिसैं ईश्वरका देशतैं अंत अंगीकार करैं तौ उत्पत्ति अंगीकार करनी होवैगी औ उत्पत्ति अंगीकार करैं तौ आत्माश्रयादिषट्दोष होवैंगे। यातैं ईश्वरका देशतैं अंत नहीं । किंतु व्यापक है । याहीतैं नित्य है ॥

॥ ३७४ ॥ ईश्वर औ जीवका स्वरूपसैं भेद नहीं ॥

ता व्यापक ईश्वरका औ जीवका स्वरूपसैं भेद नहीं किंतु उपाधिसैं भेद है । काहेतैं ?

१ अवच्छेदवादमैं–

(१) मायाविशिष्ट चेतन ईश्वर कहै है। औ-

(२) अविद्याविशिष्ट चेतन जीव कहै हैं ॥

२ आभासवादमैं–

(१) माया औ आभासविशिष्ट चेतन ईश्वर कहै हैं । औ–

(२) आभाससहित अविद्याविशिष्टचेतनकूं जीव कहै हैं ॥

१ आभासवादमैं आभाससहित अविद्या औ मायाका भेद है । चेतनका नहीं ॥

२तैसैं अवच्छेदवादमैं बी अविद्या औ माया का भेद है। स्वरूपसैं चेतनका भेद नहीं। औ–

३ (१) अज्ञानमैं चेतनका प्रतिबिंब जीव है । औ–

(२) बिंब ईश्वर है ।

या पक्षमैं बी चेतनका स्वरूपसै भेद नहीं । किंतु एक ही चेतनमैं जीवपना औ ईश्वरपना आरोपित है । यह वार्त्ता ⁽⁴¹²⁾आगे कहैंगे ।

इस रीतिसैं जगत्का कर्त्ता सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् स्वतंत्र ईश्वर है ॥

सो ईश्वर व्यापक है ताका औ जीवका विशेषणमात्रसैं भेद है औ स्वरूपसैं अभेद है । यह द्वितीयप्रश्नका उत्तर कह्या ।

(३ "मुक्तिका हेतु कौन ?" याका उत्तर ॥ ३७५–४०६ ॥)

३७५ मुक्तिका हेतु ज्ञान है ॥

"मोक्षका साधन ज्ञान है अथवा कर्म है अथवा उपासना है अथवा दो हैं ?" याका उत्तर कहै हैं:–

॥ दोहा ॥

हेतु मोछको ज्ञान इक,
नहीं कर्म नहिं ध्यान ।
रज्जुसर्प तब ही नसै,
होय रज्जुको ज्ञान ॥ १० ॥

टीका:–मुक्तिका हेतु कर्म औ ध्यान कहिये उपासना नहीं किंतु ज्ञान ही हेतु है ।

॥४१२॥ यह वार्त्ता आगे ४३८सैं ४४३ पर्यंतके अंकविषे कहैंगे ॥ यह तीसरा बिंबप्रतिबिंबवाद है॥

काहेतैं ? जो आत्मामैं बंध सत्य होवै तौ ताकी निवृत्तिरूप मोक्ष ज्ञानसैं होवै नहीं । किंतु कर्म अथवा उपासनातैं होवै ॥ सो बंध आत्मामैं सत्य है नहीं किंतु रज्जुसर्पकी न्यांई मिथ्या है ॥ ता मिथ्याकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानसैं ही बनै है । कर्म अथवा उपासनासैं नहीं ॥ जैसैं रज्जुका सर्प किसी क्रियातैं दूरि होवै नहीं, केवल रज्जुके ज्ञानसैं दूरि होवै । तैसैं आत्माके अज्ञानसैं प्रतीत जो होवै है बंध, ता बंधकी प्रतीति औ अज्ञान आत्माके ज्ञानसैं ही दूरि होवै है ॥

॥ ३७६ ॥ कर्म औ उपासना मुक्तिके हेतु नहीं ॥ ३७६-३७९ ॥

१ जो कर्मका फल मोक्ष होवै तौ मोक्ष अनित्य होवैगा । काहेतैं ? यह नियम हैः-जो कृषिआदिकर्मका फल अन्नादि है सो अनित्य है औ यज्ञादिकर्मका फल स्वर्गादिक बी अनित्य है ॥ जो मोक्ष बी कर्मका फल अंगीकार करैं तौ अनित्य होवैगा । यातैं [४१३] कर्मका फल मोक्ष नहीं ॥

२ तैसैं उपासनाका फल जो अंगीकार करैं तौ बी मोक्ष अनित्य होवैगा । काहेतैं ? उपासना बी मानसकर्म ही है औ कर्मका फल अनित्य होवै है । यातैं उपासनारूप कर्मका फल बी मोक्ष नहीं ॥ औ-

॥ ३७७ ॥ कर्मकर्त्ताकूं कर्मसैं पांच प्रकारका उपयोग होवै हैः-१ पदार्थकी उत्पत्ति । २ पदार्थका नाश । ३ पदार्थकी प्राप्ति । ४ वा पदार्थका विकार । ५ तैसैं संस्कार ॥

अन्यरूपकी प्राप्तिका नाम **विकार** है ।

संस्कार दो प्रकारका होवै हैः-मलकी निवृत्ति औ गुणकी उत्पत्ति ॥

यह पांचप्रकारका कर्मसैं उपयोग होवै है ॥ सो मुमुक्षुकूं कोई बी बनै नहीं । यातैं मुमुक्षु ज्ञानके साधन श्रवणादिकविषै ही प्रवृत्त होवै औ कर्ममैं नहीं ॥

१ जैसैं कुलालके कर्मतैं कुलालकूं घटकी उत्पत्ति उपयोग होवै है । तैसैं मुमुक्षुकूं कर्मतैं मोक्षकी उत्पत्ति उपयोग बनैं नहीं । काहेतैं ? जो अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष है ।

(१) सो अनर्थकी निवृत्ति आत्मामैं नित्य[४१४]-सिद्ध है ॥ जैसैं रज्जुमैं सर्पकी निवृत्ति नित्यसिद्ध है ॥ औ-

(२) आत्मा परमआनंदस्वरूप है यातैं परमानंदकी प्राप्ति बी नित्यसिद्ध[४१५] है ॥

॥ ४१३ ॥ "जैसैं यह कर्मरचित लोक क्षीण होवै है तैसैं वह पुण्यरचित लोक क्षीण होवै है । ऐसैं कर्मरचित लोकनकूं अनित्य जानिके तिनतैं ब्राह्मण (ब्रह्म होनेकी इच्छावाला मुमुक्षु) वैराग्यकूं पावै । कृत जो कर्म तासैं अकृत जो मोक्ष, सो नहीं है" इस श्रुतिकरि औ "भावना (उपासना) तैं जन्य जो फल है औ जो कर्मका फल है, सो स्थिर है । ऐसैं माननै योग्य नहीं । द्रविडदेशवासीजनोंविषै संगतिकी न्यांई" इस सुरेश्वराचार्यके वाक्यरूप स्मृतिकरि कर्मका किंवा उपासनाका फल मोक्ष नहीं । यह अर्थ निश्चित है ॥

॥ ४१४ ॥ जैसैं रज्जुविषै व्यावहारिक सत्तावाले सर्पका अभावरूप सर्पकी निवृत्ति नित्यसिद्ध है तैसैं आत्मामैं परमार्थसत्तावाले कार्यसहित अज्ञानरूप अनर्थकी अत्यन्ताभावरूप निवृत्ति नित्यसिद्ध है ॥

॥ ४१५ ॥ जैसैं विस्मृतकंठमणिकी प्राप्ति किंवा गृहविषै गाढ (गाढ़ी) निधिकी प्राप्ति नित्यसिद्ध है तैसैं निजरूप परमानंदकी प्राप्ति बी सर्वकूं नित्यसिद्ध है ॥

इस रीतिसैं स्वभावसिद्ध मोक्षकी कर्मसैं उत्पत्ति बनै नहीं ॥

जो वस्तु आगै सिद्ध नहीं होवै ताकी कर्मसैं उत्पत्ति होवै है औ सिद्धवस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं ॥ औ----

॥ ३७८ ॥ वेदांतश्रवण बी मोक्षकी उत्पत्तिके निमित्त नहीं कह्या । किंतु "आत्मा नित्यमुक्त है । किंचित्मात्र बी कर्त्तव्य नहीं" । इस वार्त्ताके जाननै वास्तै श्रवण है ॥ यह जानिके कर्त्तव्यभ्राति दूरि होवै है ॥ औ----

वेदांतश्रवणसैं अनंतर बी जिनकूं कर्त्तव्य प्रतीति होवै है, तिन्हनै तत्त्व जांन्या नहीं[४१६] ॥ इसी कारणतैं नित्यनिवृत्त जो अनर्थ, ताकी निवृत्ति औ नित्यप्राप्तआनंदकी प्राप्ति । वेदांतश्रवणका फल देवैगुरुनै नैष्कर्म्यसिद्धिमैं कह्या है ।

यातैं मोक्षकी उत्पत्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं ॥

॥ ३७९ ॥ २ जैसैं दंडके प्रहाररूप कर्मका घटका नाशरूप उपयोग होवै है तैसैं मुमुक्षुकूं कर्मतैं किसी पदार्थका नाशरूप उपयोग बी बनै नहीं । काहेतैं ? अन्य पदार्थका नाश तो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं । बंधका नाश ही कर्मसैं उपयोग कहना होवैगा ॥ सो बंध आत्मामैं है नहीं । मिथ्या प्रतीत होवै है ॥ ता मिथ्याप्रतीतिका नाश कर्मतैं बनै नहीं औ आत्माके यथार्यज्ञानसैं तौ मिथ्याप्रतीतिका नाश बनै है । यातैं मुमुक्षुकूं पदार्थका नाशरूप उपयोग बी कर्मसैं बनै नहीं ॥

३ जैसैं गमनरूप कर्मतैं ग्रामकी प्राप्ति होवै है तैसैं मोक्षकी प्राप्तिरूप उपयोग कर्मसैं बनै नहीं । काहेतैं ? जो आत्मा नित्यमुक्त है ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै नहीं । जाकूं बंध होवै ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै औ आत्मामैं बंध है नहीं । यातैं मोक्षकी प्राप्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं ॥

४ जैसैं पाकरूप कर्मसैं अन्नका विकार[४१८]रूप उपयोग पाचक[४१९]कूं होवै है तैसैं मुमुक्षुकूं कर्मसैं विकाररूप उपयोग बी बनै नहीं,काहेतैं ? और तौ कोई विकार बनै नहीं । जो आत्मामैं प्रथम बंध अंगीकार करै औ मोक्षदशामैं चतुर्भुजादिक विलक्षणरूपकी प्राप्ति अंगीकार करै तौ अन्यरूपकी प्राप्तिरूप विकार कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै ॥ सो अन्यरूपकी प्राप्ति आत्मामैं अंगीकार नहीं । यातैं कर्मसैं विकाररूप उपयोग बी मुमुक्षुकूं बनैं नहीं ॥

५ जैसैं वस्त्रके क्षालन[४२०]रूप कर्मका मलकी निवृत्तिरूप संस्कार होवै है । तैसैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बी मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग नहीं । काहेतैं ?

(१) अन्यके मलकी निवृत्ति तौ मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं । आत्माके मलकी निवृत्ति कहनी होवैगा । सो आत्मा नित्यशुद्ध है ।

॥ ४१६ ॥ इहां यह स्मृति है:-

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
नैवास्ति किंचित्कर्त्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥

अस्यार्थः–ज्ञानरूपअमृतकरि तृप्त औ याहीतैं कृतकृत्य (कृतार्थ) भया जो योगी (ज्ञानी) है । ताकूं मोक्षके अर्थ किंवा ज्ञानके अर्थ किंचित् कर्त्तव्य नहीं है औ जाकूं कर्त्तव्य है सो तत्त्ववेत्ता नहीं ॥

॥ ४१७ ॥ मंडनमिश्र है नाम जिसका ऐसैं शंकराचार्यके शिष्य सुरेश्वराचार्यनै ॥

॥ ४१८ ॥ पूर्वरूपकूं त्यागिके अन्यरूपकी प्राप्ति सो **विकार** कहिये है । सोई **विक्रिया** औ **परिणाम** बी कहिये हैं ॥

॥ ४१९ ॥ पाकका कर्त्ता (रसोइया) ॥

॥ ४२० ॥ धोवनैरूप ॥

ताके विषै मल है नहीं। यातैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बनै नहीं ॥ औ--

(२) अंतःकरणविषै पापरूप जो मल है ताकी निवृत्ति जो कर्मसैं उपयोग कहै तौ यह वार्त्ता सत्य है । परंतु शुद्धअन्तःकरणवाला जो मुमुक्षु है, ताका विचार करै हैं । ताके अन्तःकरणमैं बी पाप है नहीं । यातैं पापरूप मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बी मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग बनै नहीं औ--

(३) अज्ञानकूं जो मल कहैं तौ अज्ञान आत्मामैं है बी । परंतु ताकी निवृत्ति कर्मसैं होवै नहीं । काहेतैं ? अज्ञानका विरोधी ज्ञान है । कर्म नहीं । यातैं मुमुक्षुकूं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार कर्मसैं उपयोग बनै नहीं ॥

(४)जैसैं वस्त्रका कुसुंभमैं [४२१] रंजनरूप कर्मका रक्तगुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार उपयोग होवै है। तैसैं गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग बनै नहीं । काहेतैं ? अन्यविषै ता गुणकी उत्पत्ति कहना बनै नहीं । आत्माविषै ही कहना होवैगा। सो आत्मा निर्गुण है । ताके विषै गुणकी उत्पत्ति बनै नहीं । यातैं मुमुक्षुकूं गुणकी उत्पत्तिरूप संस्कार बी कर्मका उपयोग बनै नहीं ॥

या प्रकरणमैं उपयोग नाम फलका है ॥

कर्मका पांच ही प्रकारका फल होवै है । और नहीं ॥ सो पांचप्रकारका फल कर्मका मुमुक्षुकूं बनै नहीं । यातैं कर्मकूं त्यागिके ज्ञानके साधन श्रवणविषै ही मुमुक्षु प्रवृत्त होवै ॥

उपासना बी मानसकर्म ही है । यातैं ताके खंडनमैं पृथक्युक्ति नहीं कही ॥

इस रीतिसैं केवलकर्म अथवा उपासना मोक्षका हेतु नहीं । किंतु केवलज्ञान है ॥ औ--

॥ ३८० ॥ आक्षेपः--कर्म औ उपासना ज्ञानके औ मोक्षके हेतु हैं । ॥ ३८०-३८३ ॥

[पूर्वपक्षीः--][४२२]कोई कर्मउपासनासहित ज्ञानकूं मोक्षका हेतु अंगीकार करै हैं औ ताके विषै युक्तिदृष्टांत बी कहै हैं ॥

१ दृष्टांतः--जैसैं आकाशमैं पक्षीका एकपक्षसैं गमन होवै नहीं । किंतु दो पक्षसैं गमन होवै है । तैसैं मोक्षलोककूं बी एक ज्ञानरूप पक्षसैं गमन होवै नहीं । किंतु एकपक्ष तौ उपासनासहितकर्म है औ द्वितीयपक्ष ज्ञान है ॥ उपासना बी मानसकर्म ही है । यातैं एक ही पक्ष है ॥

॥ ३८१ ॥ २ अन्यदृष्टांतः--जैसैं सेतुके दर्शनसैं पापका नाश होवै है, सो सेतुका दर्शन बी प्रत्यक्षरूप ज्ञान है औ श्रद्धाभक्तिसहित गमनादिनियमकी अपेक्षा करै है ॥ जो श्रद्धादिकरहित पुरुष होवै ताकूं सेतुदर्शनसैं फल होवै नहीं ॥ जैसैं सेतुका प्रत्यक्षज्ञान श्रद्धानियमादिकनकी फलकी उत्पत्तिमैं अपेक्षा करै है। तैसैं ब्रह्मज्ञान बी मोक्षरूप फलकी उत्पत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै है ॥ औ-

केवलज्ञानसैं जो मोक्ष अंगीकार करै हैं सो बी ज्ञानका हेतु तौ कर्मउपासना मानै है ॥ शुद्ध औ निश्चलअंतःकरणमैं ज्ञान होवै है ॥ सो अंतःकरण शुभकर्मसैं शुद्ध होवै है औ उपासनासैं निश्चल होवै है ॥

इस रीतिसैं अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलता द्वारा कर्मउपासना ज्ञानके हेतु अंगीकार किये हैं॥

॥ ४२१ ॥ डुबावनैरूप ॥

॥ ४२२ ॥ कोई भर्तृप्रपंचनामक प्राचीनवृत्तिकार (ब्रह्मसूत्रकी टीकाकी कर्त्ता) समुच्चयवादी भया है ताके अनुसारी ॥

॥ ३८२ ॥ जैसैं ज्ञानके हेतु कर्मउपासना अंगीकार किये तैसैं ज्ञानके फल मोक्षके हेतु बी अंगीकार करनै योग्य हैं ॥

१ दृष्टांतः-जैसैं जलका सेचन वृक्षकी उत्पत्तिका हेतु है औ वृक्षके फलकी उत्पत्तिका बी हेतु है ॥ जो वनके वृक्षनके जलसेचन विना फल होवै है सो बी वृक्षके मूलमैं नीचे जलका संबध है ! यातैं फल होवै है औ जलके संबंध विना वृक्षही सूक जावै । फल होवै नहीं । तैसैं कर्म उपासना ज्ञानकी उत्पत्तिके हेतु हैं औ ज्ञानका फल जो मोक्ष ताके बी हेतु हैं ॥

इस रीतिसैं कर्म उपासना ज्ञान तीनूं मोक्षके हेतु हैं । यातैं ज्ञानवान् बी कर्म करै ॥

॥३८३॥ २ अथवा कर्मउपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतु हैं । काहेतैं ? जो कर्मउपासनाका ज्ञानवान् त्याग करै तौ उत्पन्न हुवा ज्ञान बी जलसैं विना वृक्षकी न्यांई नष्ट होय जावैगा । काहेतैं ? शुद्ध अंतःकरणमैं ज्ञान होवै है औ शुभकर्म नहीं करै तौ ज्ञानवानकूं पाप होवैंगा औ उपासनाके त्यागसैं अंतःकरण फेरि चंचल होय जावैगा । ता मलिन औ चंचल अंतःकरणमैं ज्ञान रहै नहीं । जैसैं सूकी भूमिमैं उत्पन्न हुवा वृक्ष बी रहै नहीं

३ अन्यदृष्टांतः-जैसैं संस्कारसैं शुद्ध किये स्थानमैं वेदपाठी ब्रह्मचारी निवास करै है औ शुद्ध किया स्थान बी किसी निमित्तसैं फेरि मलिन होय जावै, तौ ता स्थानकूं त्यागी देवै है ॥ तैसैं कर्मके त्यागसैं मलिन औ उपासनाके त्यागसैं चंचल हुवा जो अंतःकरण ताके विषै ज्ञान रहैं नहीं । यातैं कर्म औ उपासना ज्ञानकी रक्षाके हेतु हैं ॥

इस रीतिसैं--

१ कर्म, उपासना औ ज्ञान तीनूं मोक्षके हेतु अंगीकार करै ।

२ तथा ज्ञानकी रक्षाके हेतु कर्मउपासना अंगीकार करैं औ केवलज्ञान मोक्षका हेतु अंगीकार करैं ।

दोनूंप्रकारसैं ज्ञानवान्कूं कर्मउपासना कर्त्तव्य हैं । याकूं समुच्चयवाद कहै हैं ॥

॥ ३८४ ॥ कर्मउपासनासैं ज्ञानका विरोध है ॥ ३८४--३८६ ॥

[सिद्धांती:-] सो समीचीन नहीं । काहेतैं ? देहसैं भिन्न जो आत्मा नहीं जानै, तासैं कर्म होवै नहीं । काहेतैं ? जन्मांतरके भोगके निमित्त कर्म करै हैं औ देहका अग्निविषै दाह होवै है । तासैं जन्मांतरका भोग बनै नहीं । यातैं--

१ शरीरतैं भिन्न आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है । सो शरीरसैं भिन्न बी आत्माका कर्त्ताभोक्तारूपकरिके ज्ञान कर्मका हेतु है ॥ "मैं पुण्यपापका कर्त्ता हूं औ पुण्यपापका फल मेरेकूं होवैगा" ऐसा जाकूं ज्ञान है, सो कर्म करै है ॥ औ ज्ञानवान्कूं ऐसा आत्माका ज्ञान है नहीं । किंतु " पुण्यपाप औ सुखदुःखतैं रहित असंग-ब्रह्मरूप आत्मा है " ऐसा वेदांतवाक्यसैं ज्ञान होवै है । सो ज्ञान कर्मका हेतु नहीं । उलटा विरोधी है । यातैं ज्ञानवान्सैं कर्म होवै नहीं ॥ औ--

२ कर्त्ताकर्मफलका भेदज्ञान कर्मका हेतु है ॥ सो कर्त्ताकर्मफलकी ज्ञानवान्कूं आत्मासैं भिन्न प्रतीति होवै नहीं । सपूर्ण आत्मा स्वरूप ही प्रतीत होवै हैं । यातैं बी ज्ञानवान्सैं कर्म होवै नहीं ॥ औ--

---

॥ ४२३ ॥ या मतका प्रतिपादन वृत्तिप्रभाकरके तृतीयप्रकाशमैं सम्यक् किया है ॥

भाष्यकारनै बहुत प्रकारसैं ज्ञानवान्कूं कर्मका अभाव प्रतिपादन किया है। कर्मका औ ज्ञानका फलसैं विरोध है। यातैं बी ज्ञानकर्मका समुच्चय बनै नहीं ॥

१ कर्मका फल अनित्यसंसार है औ-

२ ज्ञानका फल नित्यमोक्ष है ॥ औ-

॥ ३८९ ॥ ३ आत्मामैं जातिआश्रम-अवस्थाका अध्यास कर्मका हेतु है। काहेतैं? जातिआश्रमअवस्थाके योग्य भिन्नभिन्न कर्म कहे हैं। यातैं जातिआदिकनका अध्यास कर्मका हेतु है ॥

यद्यपि जातिआश्रमअवस्था देहके धर्म हैं औ कर्मीकूं देहमैं आत्मबुद्धि है नहीं। किंतु देहसैं भिन्न कर्त्ताआत्मा कर्मी जानै है। यह वार्त्ता पूर्व कही। यातैं जातिआश्रमअवस्थाकी प्रतीति आत्मामैं कर्मीकूं बी बनै नहीं। तथापि देहसैं भिन्न आत्माका कर्मीकूं अपरोक्षज्ञान नहीं। किंतु शास्त्रसैं परोक्षज्ञान है औ देहमैं आत्मज्ञान अपरोक्ष है॥ जो देहमैं भिन्न आत्माका अपरोक्षज्ञान होवै तौ देहमैं अपरोक्षआत्मज्ञानका विरोधी होवै औ परोक्षज्ञानका अपरोक्षज्ञानसैं विरोध है नहीं। यातैं देहसैं भिन्न कर्त्ता-आत्माका ज्ञान औ देहमैं आत्मबुद्धि दोनूं एककूं बनै है ॥

दृष्टांतः-मूर्तिमैं ईश्वरज्ञान शास्त्रसैं परोक्ष है औ पाषाणबुद्धि अपरोक्ष है; तिन्हका विरोध नहीं। दोनूं एककूं होवै हैं ॥ औ रज्जुमैं जाकूं सर्पसैं अपरोक्षभेदज्ञान है ताकूं अपरोक्ष-सर्पभ्रांति दूरि होवै है। यातैं--

यह नियम सिद्ध हुवाः-अपरोक्षभ्रांतिका अपरोक्षज्ञानसैं विरोध है। परोक्षसैं नहीं। यातैं देहसैं भिन्न आत्माका परोक्षज्ञान औ देहमैं अपरोक्षज्ञान बनै है। सो दोनूं कर्मके हेतु हैं ॥

१ देहसैं भिन्न बी कर्त्तारूपकरिके आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है ॥ सो कर्त्तारूपकरिके आत्माका ज्ञान भ्रांतिरूप है औ भ्रांति विद्वानकूं है नहीं। यातैं कर्मका अधिकार नहीं ॥ औ--

२ देहमैं अपरोक्षआत्मबुद्धि होवै तब देहके धर्म जातिआश्रमअवस्था प्रतीत होवैं। सो देहमैं आत्मबुद्धि बी विद्वानकूं है नहीं। किंतु ब्रह्मरूपकरिके आत्माका अपरोक्षनज्ञान है यातैं जातिआश्रमअवस्थाकी भ्रांतिके अभावतैं बी विद्वानकूं कर्मका अधिकार नहीं ॥ औ

उपासना बी "मैं उपासक हूं। देव उपास्य हैं" या बुद्धिसैं होवै है सो विद्वान्कूं उपास्य-उपासकभाव प्रतीत होवै नहीं ॥ "देहादिक-संघात तौ मेरा औ देवका स्वप्नकी न्यांई कल्पित है औ चेतन एक है" यह विद्वान्का निश्चय है। यातैं ज्ञानका उपासनासैं विरोध है ॥ औ--

॥ ३८६ ॥ पक्षीके गमनका दृष्टांत बनै नहीं। काहेतैं? पक्षीके तौ दोपक्ष एककालमैं रहै हैं। तिनका

॥ ४२४ ॥ यद्यपि वेदमैं बी कहूं ज्ञानकर्मका समुच्चय लिख्या है तथापि समसमुच्चय औ क्रम-समुच्चयके भेदतैं समुच्चय दो प्रकारका है ॥

१ ज्ञानके साधन श्रवणादिक औ कर्मके साधन अग्निहोत्रआदिकनका एक ही कालमैं अनुष्ठान करनैका नाम समसमुच्चय है ॥ औ—

२ प्रथम अन्तःकरणशुद्धिके अर्थ जिज्ञासापर्यंत कर्म करना। पीछे कर्मकी विधिका अनादर-करिके ज्ञानके साधन श्रवणआदिकद्वारा ज्ञानकूं संपादन करनैका नाम क्रमसमुच्चय है ॥

तिनमैं—

१ समसमुच्चय त्याज्य है। औ—

२ क्रमसमुच्चय ग्राह्य है।

यह वेदका तात्पर्य है। यातैं इहां समसमुच्चयका खंडन किया। क्रमसमुच्चयका नहीं ॥

परस्परविरोध नहीं औ ज्ञानका तौ कर्मउपासनासैं विरोध है। एककालमैं बनै नहीं ॥ औ—

॥ ३८७ ॥ ज्ञानमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा नहीं ३८७ ॥ ३९० ॥

सेतुके ज्ञानका दृष्टांत बी बनै नहीं। काहेतैं? सेतुं[४२५]का दर्शन दृष्टफलका हेतु नहीं। किंतु अदृष्टफलका हेतु है ॥

१ प्रत्यक्ष जो फल प्रतीत होवै सो दृष्टफल कहिये है ॥ जैसैं भोजनका फल तृप्ति प्रत्यक्ष है। यातैं भोजन दृष्टफलका हेतु है ॥

तैसैं सेतुके दर्शनसैं प्रत्यक्षफल प्रतीत होवै नहीं। किंतु पापका नाशरूप फल शास्त्रसैं जान्या जावै है। जो शास्त्रसैं फल जानिये औ प्रत्यक्ष प्रतीत होवै नहीं सो अदृष्टफल कहिये है ॥

यातैं जैसैं यज्ञादिककर्म स्वर्गादिक अदृष्टफलके हेतु हैं तैसैं सेतुका दर्शन बी पापके नाशरूप अदृष्टफलका हेतु है ॥ जो अदृष्टफलका हेतु होवै है सो तौ जितना फलकी उत्पत्तिमैं शास्त्रनै सहाय बोधन किया है, तासहित फलका हेतु होवै है। केवल नहीं। यातैं श्रद्धानियमादिकसहित सेतुका दर्शन पापनाशरूप फलका हेतु है। श्रद्धानियमादिकरहित हेतु नहीं। काहेतैं? सेतुके दर्शनसैं प्रत्यक्ष तौ कोई फल प्रतीत होवै नहीं केवलशास्त्रसैं जान्या जावै है। सो शास्त्र श्रद्धादिकसहित सेतुके दर्शनसैं फल बोधन करै है। केवलदर्शनसैं फलकी उत्पत्तिमैं कोई प्रमाण नहीं। यातैं सेतुका दर्शन फलकी उत्पत्तिमैं श्रद्धानियमभक्तिकी अपेक्षा करै है।॥ औ

॥ ३८८ ॥ ब्रह्मविद्या अपनै फलकी उत्पत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै नहीं। काहेतैं? जो ब्रह्मविद्याका फल बी स्वर्गकी न्यांई लोकविशेष अदृष्ट होवै, सो लोकविशेष बी केवल ब्रह्मविद्यासैं शास्त्रनै बोधन नहीं किया होवै। किंतु कर्मउपासनासहितसैं बोधन किया होवै तौ ब्रह्मविद्या बी सेतुके दर्शनकी न्यांई फलकी उत्पत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै सो ब्रह्मविद्याका फल मोक्ष, स्वर्गकी न्यांई लोकविशेषरूप अदृष्ट तौ है नहीं। किंतु मोक्ष नित्यप्राप्त है औ भ्रांतिसैं बंध प्रतीत होवै है। ता भ्रांतिकी निवृत्ति ही ब्रह्मविद्याका फल है ॥ सो भ्रांतिकी निवृत्ति केवलब्रह्मविद्यासैं हमारे[४२६]कूं प्रत्यक्ष है औ रज्जुज्ञानसैं सर्पभ्रांतिकी निवृत्ति सर्वकूं प्रत्यक्ष है। यातैं अधिष्ठानज्ञानका भ्रांतिकी निवृत्ति दृष्टफल है ॥

दृष्टफलकी उत्पत्ति जितनी सामग्रीसैं प्रत्यक्षप्रतीत होवै है, सो सामग्री दृष्टफलकी हेतु कहिये है ॥

१ जैसैं तुरी तंतु वेमसैं पटकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष है। यातैं [४२७]तुरी तंतु वेम पटके हेतु हैं ॥ औ—

२ केवलभोजनसैं तृप्तिरूप फल प्रत्यक्षप्रतीत होवै है। यातैं केवलभोजन तृप्तिका हेतु है ॥

तैसैं केवल अधिष्ठानज्ञानतैं भ्रांतिकी निवृत्ति प्रत्यक्षप्रतीत होवै है। यातैं केवलअधिष्ठानका ज्ञान ही भ्रांतिकी निवृत्तिका हेतु है ॥ जैसैं रज्जुका ज्ञान भ्रांतिकी निवृत्तिमैं

॥ ४२५ ॥ रामचन्द्रनै रामेश्वरसैं लेके लंकाके प्रति समुद्रकी पांज बांधी है ताका दर्शन ॥

॥ ४२६ ॥ ब्रह्मवेत्ता ज्ञानिनकूं ॥

॥ ४२७ ॥

१ तुरीनाम जिस लकड़ी पर कपड़ा बनबनके वीटया जावै है तिस लकड़ीका है। औ—

२ तंतुनाम पटके उपादानसूत्रका है।

३ वेमनाम जिस नलिकाविषै सूत्र रहता है तिस नलिकाका है। याहीकूं कहीं केनडा बी कहते हैं॥

अन्यकी अपेक्षा करै नहीं, तैसैं बंधकी भ्रांतिका अधिष्ठान जो नित्यमुक्त आत्मा, ताका ज्ञान बी बंधभ्रांतिकी निवृत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेक्षा करै नहीं ॥ औ--

॥ ३८९ ॥ १ ज्ञानके फल मोक्षकूं जो स्वर्गकी न्यांई लोकविशेष अदृष्ट अंगीकार करै हैं सो वेदवाक्यसैं विरुद्ध है । काहेतैं? ज्ञानवान्‌के प्राण किसी लोककूं गमन नहीं करते । यह वेदमैं कह्या है ॥ औ--

२ लोकविशेष अंगीकार करनैतैं स्वर्गकी न्यांई मोक्ष अनित्य होवैगा । यातैं लोकविशेषरूप मोक्ष नहीं ॥ औ--

३ लोकविशेष[४२८] जो मोक्ष अंगीकार करैं ताकूं बी केवलज्ञानसैं ही मोक्षलोककी प्राप्ति अंगीकार करनी योग्य है । काहेतैं ? जो शास्त्रनै प्रतिपादन किया अर्थ होवै सो शास्त्रके अनुसार ही अंगीकार करिये है ॥ सो शास्त्र केवलज्ञानसैं मोक्ष कहै है । यातैं केवलज्ञान मोक्षका हेतु है । कर्म, उपासना, ज्ञान तीनूं नहीं ॥ औ--

॥ ३९० ॥ वृक्षका दृष्टांत बी बनै नहीं । काहेतैं ? यद्यपि जलका सेचन वृक्षकी उत्पत्ति औ रक्षामैं हेतु है तथापि वृक्षके फलकी उत्पत्तिमैं नहीं ॥ वृद्ध जो वृक्ष है ताके विषै जलका सेचन वृक्षकी रक्षाके निमित्त है । फलके निमित्त नहीं ॥ जलसैं पुष्ट जो वृक्ष सोई फलका हेतु है । जलसेचन नहीं ॥ तैसैं कर्मउपासनाका बी ज्ञानकी उत्पत्तिमैं उपयोग है । मोक्षमैं नहीं । यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्व ही अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलताके निमित्त कर्म उपासना करै । ज्ञानसैं अनंतर मोक्षके निमित्त नहीं ॥

ज्ञानकी उत्पत्तिमैं पूर्व बी जितनै[४२९] अंतःकरणमैं मल औ विक्षेप होवै तबपर्यंत ही करै । शुद्ध औ निश्चलअंतःकरण जाका होवै सो जिज्ञासु श्रवणके विरोधी कर्मउपासनाका त्याग करै ॥ मल नाम पापका है । सो अशुभ वासनाका हेतु है ॥ जबपर्यंत मल होवै तब पर्यंत अशुभवासना होवै है ॥ जब अशुभवासना होवै नहीं तब मलका अभाव निश्चय करै ॥ अंतःकरणकी चंचलता औ एकाग्रता अनुभवसिद्ध है यातैं उत्तम जिज्ञासु औ विद्वान्‌कूं कर्म उपासना निष्फल है ॥ औ--

॥३९१॥ कर्मउपासनातैं ज्ञानकी रक्षा होवै नहीं ।

पूर्व जो कह्या "ज्ञानकी रक्षाके निमित्त कर्म उपासना करै ॥ जैसैं जलसैं उत्पन्न हुवा जो वृक्ष ताकी जलसैं रक्षा होवै है । जो जलका संबंध नहीं होवै तौ वृद्धवृक्ष बी सूक जावै हैं ॥ तैसैं कर्मउपासनासैं उत्पन्न हुआ जो ज्ञान ताकी कर्मउपासनासैं रक्षा होवै है ॥ जो ज्ञानी कर्म उपासना नहीं करै तौ अंतःकरण मलिन औ चंचल फेरि होय जावैगा ॥ ता मलिन औ चंचल अंतःकरणमैं सूकी भूमिमैं वृक्षकी न्यांई उत्पन्न हुवा ज्ञान बी नष्ट होय जावैगा । यातैं ज्ञानवान् बी कर्म उपासना करै ॥"

सो बनै नहीं । काहेतैं ? आभाससहित अथवा चेतनसहित जो अंतःकरणकी

॥ ४२८ ॥ इहां दुर्जनतोषन्यायकरिके दो लोकविशेषकूं मोक्ष मानैं तो बी सो मोक्ष ज्ञान विना होवै नहीं । यह वार्त्ता सिद्धांती प्रतिपादन करै है ॥ जैसैं किसीका प्रबलशत्रु होवै सो अपनै निर्बलशत्रुकूं प्रथम प्रहार करनैकी आज्ञा देकै संतोषकूं प्राप्त करै । पीछे ताकूं मारै । ताका नाम दुर्जनतोषन्याय है ॥

॥ ४२९ ॥ जबपर्यंत ॥

"मैं असंग ब्रह्म हूं" यह वृत्ति सो वेदांतका फलरूप ज्ञान है, ताका कर्मउपासनासैं विना नाश होवैगा अथवा चेतनस्वरूप ज्ञानका नाश होवैगा।

जो ऐसैं कहैः-स्वरूपज्ञान तौ नित्य है, यातैं ताका तौ नाश औ रक्षा बनै नहीं। परंतु वेदांतका फल जो ब्रह्मविद्यारूप ज्ञान है, ताकी कर्मउपासनासैं उत्पत्ति होवै है औ कर्म-उपासनाके त्यागसैं उत्पन्न हुई विद्या बी नष्ट होय जावैगी। यातैं ताकी रक्षाके निमित्त कर्मउपासना करै।

सो बनै नहीं। काहेतैं?-

१ एकवार उत्पन्न हुई जो अंतःकरणकी ब्रह्माकारवृत्ति, तासैं अज्ञान औ भ्रांतिका नाशरूप फल तिस ही समय सिद्ध होवै है। अज्ञान औ भ्रांतिके नाशतैं अनंतर फेरि वृत्तिकी रक्षाका उपयोग नहीं। औ-

२ अंतःकरणकी वृत्तिकी कर्मउपासनासैं रक्षा बनै बी नहीं। काहेतैं? जब कर्मउपासनाका अनुष्ठान करैगा, तब कर्मउपासनाकी सामग्रीका ही वृत्तिरूप ज्ञान होवैगा। ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं। और वृत्ति हुयेतैं प्रथमवृत्ति रहै नहीं। यातैं कर्मउपासना ज्ञानकी उत्पत्तिके तौ परंपरातैं हेतु हैं औ उत्पन्न हुई वृत्तिके विरोधी हैं। यातैं कर्मउपासनातैं ज्ञानकी रक्षा होवै नहीं। औ-

॥ ३९२ ॥ ज्ञानीकूं पाप औ चंचलताके अभावतैं कर्म औ उपासनाका उपयोग नहीं ॥ ३९२---३९३ ॥

पूर्व जो कह्या "ज्ञानवान्कूं कर्मके त्याग सैं पाप होवै है" सो वार्ता बनै नहीं। काहेतैं?

१ जो शुभकर्मका त्याग है, सो पापका हेतु नहीं। किंतु निषिद्धकर्मका अनुष्ठान ही पापका हेतु है। यह वार्ता भाष्यकारनै बहुत-प्रकारसैं प्रतिपादन करी है। यातैं कर्मके त्यागसैं पाप होवै नहीं॥ औ—

२ ज्ञानवान्कूं तौ सर्व प्रकारसैं पापका असंभव है। काहेतैं? पुण्य, पाप औ तिनका आश्रय अंतःकरण परमार्थसैं हैं नहीं, अविद्यासैं मिथ्याप्रतीति होवै है। सो अविद्या औ मिथ्या-प्रतीति ज्ञानवान्के है नहीं। यातैं ज्ञानवान्कूं शुभकर्मके त्यागसैं अथवा अशुभके अनुष्ठानसैं पाप बनै नहीं॥

॥ ३९३ ॥ या स्थानमैं यह सिद्धांत है:—

१ मंद औ २ दृढ, दो प्रकारका ज्ञान है।

१ संशयादिकसहित जो ज्ञान, सो मंदज्ञान कहिये है। औ—

२ संशयादिकरहित ज्ञान दृढ कहिये है। जाकूं दृढज्ञान होवै, ताकूं किंचित्मात्र बी कर्त्तव्य नहीं। एक वार उत्पन्न हुवा जो संशयादिकरहित अन्तःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान, सोई अविद्याका नाश करि देवै है। सो ज्ञान आप बी दूरि होयजावै तौ बी भले प्रकारसैं जाने आत्मामैं फेरि भ्रांति होवै नहीं। काहेतैं? जो भ्रांतिका कारण अविद्या है, सो अविद्या एकवार उत्पन्न हुये ज्ञानसैं नष्ट होय गयी। यातैं भ्रांति औ अविद्याके अभावतैं वृत्तिज्ञानकी आवृत्तिका कुछ उपयोग नहीं॥ औ-

जीवन्मुक्तिके आनन्दके वास्ते जो वृत्तिकी आवृत्ति अपेक्षित होवै तौ वारंवार वेदांतके अर्थका चिंतन ही करै। वेदांतके अर्थचिंतन-सैं ही वारंवार ब्रह्माकारवृत्ति होवै है औ कर्म-उपासनातैं नहीं। काहेतैं? कर्म औ उपासनाका अन्तःकरणकी शुद्धि औ निश्चलताद्वारा ही ज्ञानमैं उपयोग है और रीतिसैं नहीं। औ विद्वान्के अन्तःकरणमैं पाप औ चंचलता है

नहीं । रागद्वेषद्वारा पाप औ चंचलताका हेतु अविद्या है, ता अविद्याका ज्ञानसैं नाश होवै है । यातैं विद्वान्‌के पाप औ चंचलताके अभावतैं कर्मउपासनाका उपयोग नहीं । और

॥ ३९४ ॥ ज्ञानिनके प्रारब्धकी विलक्षणता औ तिनकी जीवन्मुक्तिके सुखअर्थ बी उपासनामैं अप्रवृत्ति ॥

जो कदाचित् ऐसैं कहैं:—रागद्वेषादिक अन्तःकरणके सहजधर्म हैं । जितनै अन्तःकरण हैं, उतनै रागद्वेषका सर्वथा नाश ज्ञानवान्‌के बी होवै नहीं । तिन्ह रागद्वेषतैं ज्ञानवान्‌का बी अन्तःकरण चंचल होवै है । यातैं चंचलता दूरि करनैवास्ते ज्ञानवान् बी उपासना करै ॥

यद्यपि ज्ञानवान्‌कूं अंतःकरणकी चंचलतासैं विदेहमोक्षमैं हानि नहीं तथापि चंचल-अंतःकरणमैं स्वरूपआनंदका भान होवै नहीं यातैं चंचलता जीवन्मुक्तिकी विरोधी है । यातैं जीवन्मुक्तिके निमित्त चंचलता दूरि करनैवास्ते उपासना करै ।

सो बनै नहीं । काहेतैं ? यद्यपि दृढबोध जाके अंतःकरणमैं हुवा है, ताके समाधि औ विक्षेप समान हैं । यातैं अंतःकरणकी निश्चलता के निमित्त किसी यत्नका आरंभ विद्वान्‌कूं बनै नहीं । तथापि विद्वान्‌की प्रवृत्ति औ निवृत्ति प्रारब्धके आधीन है ॥ प्रारब्धकर्म सर्वका विलक्षण है ।

१ किसी विद्वान्‌का जनकादिकनकी न्याईं भोगका हेतु प्रारब्ध है । औ—

२ किसीका शुकदेव वामदेवादिकनकी न्याईं निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है ॥

१ जाके भोगका हेतु प्रारब्ध है ताकूं तौ प्रारब्धसैं भोगकी इच्छा औ भोगके साधनका यत्न होवै है । औ—

२ जाके निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध होवै, ताकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवै है औ भोगमैं ग्लानि होवै है ।

जाकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इच्छा होवै सो ब्रह्माकारवृत्तिकी अवृत्तिके निमित्त वेदांतअर्थका चिंतन ही करै । उपासना नहीं । काहेतैं ? अंतःकरणकी निश्चलतामात्रसैं ब्रह्मानंदका विशेषरूपसैं भान होवै नहीं । किंतु ब्रह्माकार वृत्तिसैं ही होवै है सो ब्रह्माकारवृत्ति वेदांतचिंतनसैं ही होवै है । उपासनासैं नहीं ॥ औ—

अंतःकरणकी चंचलता बी विद्वान्‌कूं वेदांतके चिंतनसैं दूरि होय जावै है । यातैं अंतःकरणकी निश्चलताके निमित्त बी उपासनामैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥

इस रीतिसैं दृढबोध जाके हुवा है ताकी कर्मउपासनामैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥ औ—

॥ ३९५ ॥ दृढअदृढज्ञानी औ उत्तममंदजिज्ञासुकूं कर्मउपासनामैं अधिकार नहीं ॥ ३९५—२९६ ॥

१ जाके मंदबोध है सो बी मनन औ निदिध्यासम ही करै । कर्मउपासना नहीं । काहेतैं ? मंदबोध जाकूं हुवा है सो उत्तमजिज्ञासु है । ता उत्तमजिज्ञासुकूं मनन निदिध्यासनसैं विना अन्य कर्तव्य नहीं । यह वार्ता शारीरकमैं सूत्रकार औ भाष्यकारनै प्रतिपादन करी है औ—

२ विद्वानकूं मननिदिध्यासन बी कर्त्तव्य नहीं । जो जीवन्मुक्तिके आनंदके वास्ते विद्वान् मनन निदिध्यासनमैं प्रवृत्त होवै है सो बी अपनी इच्छासैं प्रवृत्त होवै है औ "मैं वेदकी आज्ञा नहीं करूंगा तो मेरेकूं जन्ममरणसंसार होवैगा" इस बुद्धिसैं जो क्रिया करै सो कर्त्तव्य कहिये है ॥ सो जन्मादिकनकी बुद्धि विद्वान्के होवै नहीं । यातैं अपनी इच्छातैं जो विद्वान् मनन निदिध्यासन करै सो कर्त्तव्य नहीं॥

इस रीतिसैं मंदबोध अथवा दृढबोध जाके हुवा है तिसकूं कर्मउपासना कर्त्तव्य नहीं॥ औ-

॥ ३९६ ॥

३ जाके बोध नहीं हुआ है । किंतु आत्माके जाननैकी तीव्र इच्छा है । भोगकी नहीं। ताका अंतःकरण शुद्ध है । यातैं सो बी उत्तम ही जिज्ञासु है । ताकूं बी बोधके वास्ते श्रवणादिक ही कर्त्तव्य हैं । कर्मउपासना नहीं। काहेतैं ? जो कर्मउपासनाका फल है सो ताके सिद्ध है ॥ औ---

४ ज्ञानकी सामान्यइच्छातैं जो श्रवणमैं प्रवृत्त हुवा है औ अंतःकरण भोगनमैं आसक्त है सो मंदजिज्ञासु है । सो बी श्रवणकूं त्यागिके फेरि कर्मउपासनामैं प्रवृत्त होवै नहीं । जो कर्मउपासनाका फल अंतःकरणकी शुद्धि औ निश्चलता है । सो ताकूं श्रवणसैं ही होय जावैगा । श्रवणकी आवृत्तितैं अंतःकरणका दोष दूरि होयके इस जन्मविषै अथवा अन्य जन्मविषै अथवा ब्रह्मलोकविषै ज्ञान होवै है ।

आवृत्ति नाम बारंवारका है औ-

श्रवणकूं त्यागिके जो कर्मउपासनामैं प्रवृत्त होवै है सो आरूढपतित कहिये है ।

१-२ इस रीतिसैं ज्ञानवान् औ उत्तम जिज्ञासुका कर्मउपासनाविषै अधिकार नहीं ॥ औ---

३ मंदजिज्ञासु बी जो वेदांतश्रवणमैं प्रवृत्त हुआ है ताका अधिकार नहीं । औ-

४ ज्ञानकी जाकूं इच्छा तौ है परंतु भोगमैं बुद्धि आसक्त है । यातैं श्रवणमैं प्रवृत्त नहीं हुवा ऐसा जो मंदजिज्ञासु ताका निष्कामकर्म औ उपासनामैं अधिकार है । औ---

५ जाकी भोगविषै ही आसक्ति है । ज्ञानकी इच्छा नहीं । ऐसा जो बहिर्मुख है ताका सकामकर्मविषै बी अधिकार है ।

यातैं ज्ञानवान्कूं कर्मउपासनाका अधिकार नहीं ॥ कर्मउपासनाका ज्ञान विरोधी है ॥ औ-

---

॥ ४२० ॥

१ "जे अज्ञाततत्त्व होवैं वे श्रवणकूं करहु । मैं तत्त्वकूं जानता हुया किसकारणतैं श्रवणकूं करूं?" औ---

२ "जे संशयकूं प्राप्त भये हैं वे मननकूं करहु । संशयरहित मैं मननकूं करता नहीं ॥"

३ "जो विपर्ययकूं पाया होवैं सो निदिध्यासनकूं करै । मैं देहविषै आत्माके ज्ञानरूप विपर्ययकूं कदाचित् भजता नहीं । यातैं मेरेकूं विपर्ययके अभावतैं कौन ध्यान है?" कोई बी नहीं ॥

इस रीतिसैं पंचदशीके तृप्तिदीपमैं विद्यारण्यस्वामीनै विद्वान्कूं कर्त्तव्यका अभाव सविस्तर लिख्या है ॥

॥ ४३१ ॥ मोक्षकी सीढ़ीपैं चढ़िके फेर तहांसैं गिरै ताकूं "करलेढिन्याय (प्राप्तलड्डूकूं गमायके हाथ चाटनैका दृष्टांत)" प्राप्त होवै है । यह अर्थ पंचदशीके ध्यानदीपनाम नवमप्रकरणके व्याख्यानविषै हमनै स्पष्ट लिख्या है ॥

॥ ३९७ ॥ दृढबोधके कर्मउपासना विरोधी नहीं । परन्तु मंदबोधके विरोधी हैं ॥ ३९७--३९९ ॥

कर्मउपासना बी अंतःकरण शुद्धि औ निश्चलताद्वारा ज्ञानकी उत्पत्तिके तौ हेतु हैं, परंतु ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर जो कर्मउपासना करै तौ उत्पन्न हुवा ज्ञान नष्ट होय जावैगा । यातैं ज्ञानके विरोधी हैं, रक्षाके हेतु नहीं । काहेतैं ?

१ ,"मैं कर्त्ता हूं और यज्ञादिक मेरेकूं कर्तव्य हैं । यज्ञादिकनका स्वर्गादि फल है" या भेदबुद्धिसैं कर्म होवे है । औ––

२ "मैं उपासक हूं । देव उपास्य है" या भेदबुद्धिसैं उपासना होवै है ॥

सो दोनूं प्रकारकी बुद्धि "सर्व ब्रह्म है" या बुद्धिकूं दूरि करिके होवै है, यातैं कर्म उपासना ज्ञानके विरोधी हैं ॥

यद्यपि ज्ञानवान् आत्माकूं असंग जानै है तौ बी देहका भोजनादिक व्यवहार अथवा जनकादिकनकी न्याई अधिकराज्यपालनादिक व्यवहार करै है । ता व्यवहारका ज्ञान विरोधी नहीं औ व्यवहार ज्ञानका बी विरोधी नहीं । काहेतैं ? जो आत्मस्वरूप ज्ञानसैं असंग जान्या है ता आत्मविषै जो व्यवहार प्रतीत होवै तौ व्यवहारका विरोधी ज्ञान, तथा ज्ञानका विरोधी [४३२]व्यवहार होवै सो विद्वान्कूं आत्माविषै व्यवहार प्रती होवै नहीं । किंतु संपूर्ण व्यवहार देहादिकनके आश्रित है औ आत्माविषै व्यवहारसहित देहादिकनका संबंध है नहीं । या बुद्धिसैं संपूर्ण व्यवहार करै है । इसी कारणतैं विद्वान्की प्रवृत्ति बी निवृत्ति ही कही है ॥

॥ ३९८ ॥ जैसैं अन्यव्यवहार ज्ञानका विरोधी नहीं तैसैं कर्मउपासना बी अन्य बहिर्मुखपुरुषनके करावनै वास्तै आत्माकूं असंग जानिके औ देहवाक्अंतःकरणके आश्रित क्रिया जानिके जो कर्मउपासना करै तौ ज्ञानके विरोधी नहीं । काहेतैं ? जो आत्मा विद्वान्नै असंग जान्या है ताकूं कर्त्ता जानिके जो कर्मउपासना करै तौ ज्ञानके विरोधी होवैं । सो आत्माका असंगरूप दृढनिश्चय कर्मउपासनासैं विद्वान्का दूरि होवै नहीं । यातैं [४३३]आभासरूप कर्म उपासना दृढज्ञानके विरोधी नहीं । इसी कारणतैं जनकादिकननै आभास रूप कर्म करे हैं ।

जो आत्माकूं असंग जानिके और व्यवहारकी

॥ ४३२ ॥ यह अर्थ विद्यारण्यस्वामीनै तृप्तिदीपविषै बी ऐसैं लिख्या है:–

१ "प्रारब्ध जब जगत्की सत्यताकूं संपादन करिके भोगकूं देवै तब विद्याका विरोधी होवै, भोगमात्रतैं विषयकी सत्यता होवै नहीं ॥"

२ "विद्या (ज्ञान) जब जगत्कूं विलय करै तब प्रारब्धकी विरोधी होवै औ मिथ्यापनैके बोधसैं तौ तिस (जगत्) का विलय नहीं होवै है" । इहां प्रारब्धशब्दकरि ताके कार्य व्यवहारका बी ग्रहण है ॥

३ तैसैं ध्यानदीपविषै बी कहा है:––"व्यवहार जो है सो प्रपंचकी सत्यताकूं औ आत्माकी जडताकूं बी अपेक्षा करता नहीं । किंतु यह साधनोंकूं ही अपेक्षा करता है ॥"

४ "मन, वाणी, शरीर औ तिनतैं बाह्य पदार्थ (गृह क्षेत्र आदिक) जो हैं वे व्यवहारके साधन हैं, तिनकूं तत्त्ववित् मिथ्या जानता है । परंतु स्वरूपतैं नाश करता नहीं । यातैं इस (ज्ञानी) का व्यवहार काहेतै नहीं होवैगा ?" किंतु होवैगा ही ॥

इस रीतिसैं ज्ञानका औ प्रारब्धजनित व्यवहारका विरोध नहीं ॥

॥ ४३३ ॥ आत्माकूं असंग जानिके औ देह, वाणी मनके आश्रित क्रिया जानके जो कर्म उपासना करिये हैं सो आभासरूप हैं ॥

न्यांई देहादिकनके धर्म जानिके विद्वान् शुभक्रिया करै सो आभासरूप कर्म कहिये है। ताका ज्ञानसैं विरोध नहीं औ भाष्यकारनै कर्मउपासनाका जो ज्ञानसैं विरोध कह्या है, सो आत्मामैं कर्त्ताबुद्धिसैं जो कर्मउपासना करैं हैं ताका विरोध कह्या है औ आभासरूपसैं नहीं ॥

॥३९९॥ **तथापि मंदबोधके आभासरूप कर्म औ आभासरूप उपासना बी विरोधी हैं।** काहेतैं ? जो संशयादिकसहित बोध है सो मंदबोध कहिये है। जाके अंतःकरणमैं "आत्मा असंग है, अथवा नहीं है ?" ऐसा कदाचित् संशय होवै सो पुरुष जो वारंवार "आत्मा असंग है, मेरेकूं किंचितमात्र बी कर्त्तव्य नहीं" या अर्थकूं चिंतन करै, तब तौ संशय दूरि होयके दृढबोध होय जावै औ कर्म उपासना करैगा तौ मंदबोध जो उत्पन्न हुवा है, सो दूरि होयके "मैं कर्त्ता भोक्ता हूं" यह विपरीतनिश्चय होय जावैगा। यातैं मंदबोधकी उत्पत्तिसैं पूर्व ही कर्म उपासना करै औ अनंतर नहीं ॥

जो मंदबोधवाला कर्म उपासना करैगा तौ उत्पन्न हुवा बोध नष्ट होय जावैगा ॥

दृष्टांतः—जैसैं पक्षी अपनै अंडेकूं पक्षकी उत्पत्तिसैं पूर्व सेवन करै है औ पक्षकी उत्पत्तिसैं अनंतर नहीं। जो पक्षकी उत्पत्तिसैं अनंतर बी अंडेकूं सेवन करै तो बालपक्षीके ता अंडेके जलसैं पक्ष गलि जावैं। तैसैं ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्व ही कर्मउपासनाका सेवन करै औ ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर नहीं ॥ जो ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर बी कर्मउपासनाका सेवन करै तौ बालपक्षीकी न्यांई मंदज्ञानका नाश होय जावै औ वृद्धपक्षकी जैसैं अंडेके संबधसैं हानि होवै नहीं तैसैं दृढबोधकी तौ हानि होवै नहीं। औ वृद्धपक्षीकी न्यांई दृढबोधकूं कर्मउपासनासैं उपयोग बी नहीं ॥

इस रीतिसैं ज्ञानवान्कूं मोक्षके निमित्त किंचिन्मात्र बी कर्त्तव्य नहीं। यह तृतीयप्रश्नका उत्तर कह्या ॥

॥ ४०० ॥ उक्तअर्थ सर्ववेदका सार है।

जो शिष्यकूं आचार्यनै उत्तर कहे सो वेदके अनुसार कहे, यातैं यथार्थ हैं। यह वार्त्ता कहै हैं:—

॥ दोहा ॥

सिष्य कह्यो जो तोहिं मैं,
सर्व वेदको सार।
लहै ताहि अनयास ही,
संसृति नसै अपार ॥ ११ ॥

हे शिष्य ! जो मैं तेरेकूं कह्या सो सर्व वेदका सार है। यातैं याविषै विश्वास कर औ याके जाननैतैं अनायास कहिये खेद विना अपार जो संसृति कहिये जन्ममरणरूप संसार, ताका नाश होवै है ॥

॥ ४०१ भाषाकी संप्रदाय ॥

यद्यपि खेदका नाम आयास है, ताके अभावका नाम अनायास है तथापि छंदके वास्ते अनायास पढ्या है ॥

भाषामैं छंदके वास्ते गुरुके स्थानमैं लघु औ लघुके स्थानमैं गुरु पढनैका दोष नहीं। औ- मोक्षके स्थानमैं मोछ ही भाषामैं पाठ होवै है। काहेतैं ? यह भाषाकी संप्रदाय है ॥

॥ दोहा ॥

लघु गुरु गुरु लघु होत है,
वृत्ति हेतु उच्चार।

रू ह्वै अरुकी ठौरमैं,
अबकी ठौर वकार ॥ १ ॥
संयोगौ क्ष न क पर ख न,
नहीं टवर्ग णकार।
भाषामैं ऋ लृ हू नहीं,
अरु तालव्य शकार ॥ २ ॥

टीकाः—इतनै अक्षर भाषामैं नहीं। कोई लिखै तौ कवि अशुद्ध कहे ॥

१ क्षके स्थानमैं छ।
२ षके स्थानमैं ख।
३ णकारके स्थानमैं नकार।
४ ऋ-लृके स्थानमैं रि लि हैं।
५ शकारके स्थानमैं सकार

भाषामैं लिखनै योग्य है ॥

॥४०२॥उक्तअर्थका संग्रह॥४०२-४०४

"जगत्‌का कर्त्ता ईश्वर है सो तेरेसैं भिन्न नहीं औ सत्‌चित्‌आनंदरूप ब्रह्म तूं है" यह आचार्यनै कह्या। सोई कृपातैं फेरि कहै हैं:—

॥ कवित्व ॥

दीनताकूं त्यागि नर
अपनो स्वरूप देखि।
तू तो सुद्ध ब्रह्म अज
दृश्यको प्रकासी है ॥
आपनै अज्ञानतैं
जगत सब तू ही रचै।
सर्वको संहार करै
आप अविनासी है ॥
मिथ्यापरपंच देखि
दुःख जिन आनि जिय।
देवनको देव तू तौ
सब सुखरासी है ॥
जीव जग ईस होय
मायासैं प्रभासैं तूहि।
जैसैं रज्जु साप सीप
रूप ह्वै प्रभासी है ॥ १२ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥

॥ ४०३ ॥ ॥ कवित्व ॥

राग जारि लोभ हारि
द्वेष मारि मार वारि।
वारवार मृगवारि
पारवार पेखिये ॥
ज्ञानभान आनि तम
तम तारि भागत्याग।
जीव सीव भेद छेद
वेदन सु लेखिये ॥
वेदको विचार सार
आपकूं सँभारि यार।
टारि दासपास आस
इसकी न देखिये ॥
निश्चल तू चल न अचल
चलदल छल।
नभ नील तन मल
तासूं न बिसेखिये ॥ १३ ॥

टीकाः—ज्ञानके साधन कहै हैं:—हे शिष्य ! राग जो पदार्थनमैं दृढआसक्ति है ताकूं जारिके लोभकूं हारि कहिये नाश करि, द्वेषकूं मारि, मार कहिये कामकूं वारि कहिये दूरि कर।

रागलोभद्वेषकामके[434] ग्रहणतैं सर्व राजसी तामसीवृत्तिका ग्रहण है यातैं सर्वराजसीतामसीवृत्तिका नाश कर। यह अर्थ सिद्ध हुवा ॥ राजसी वृत्ति औ तामसी वृत्ति ये ज्ञानकी विरोधिनी हैं। तिन्हके नाश विना ज्ञान होवै नहीं, यातैं तिन्हकी निवृत्ति जिज्ञासुकूं अपेक्षित है।

विवेक, वैराग्य, शमादिषट्संपत्ति औ मुमुक्षुता, ये चारि जो ज्ञानके साधन हैं, तिन्हमैं विवेक प्रधान है। काहेतें? विवेकसैं वैराग्यादिक उत्पन्न होवैं हैं। यातैं विवेकका उपदेश आचार्य करै हैंः—

हे शिष्य! **पारवार** जो संसार है ताकूं वारंवार मृगवारि कहिये मृगतृष्णाके जलसमान मिथ्या जान ॥

१ **पारवार** नाम संसारका है। औ—

२ **अपारवार** नाम आत्माका है ॥

'पारवार मिथ्या है' या कहनैतैं अपारवार मिथ्या नहीं किंतु सत्य है। यह वार्त्ता अर्थसैं कही ॥

जैसैं बाजीगरके तमासैं देखते पुत्रकूं पिता कहैः—"हे पुत्र! यह आम्रवृक्षसैं आदि लेके जो बाजीगरनै बनाये हैं, सो सब मिथ्या हैं" या कहनैतैं बाजीगरकूं मिथ्या नहीं जानै है। किंतु सत्य जानै है ॥ तैसैं जगत्कूं मिथ्या कहनैतैं आत्माकूं सत्य जानि लेवैगा। या अभिप्रायतैं आचार्यनै पारवार मिथ्या कह्या ॥

इस रीतिसैं 'जगत् मिथ्या है औ आत्मा सत्य है' या विवेकका उपदेश कर्‌या ॥

ता विवेकसैं अन्य साधन आप ही उत्पन्न होवै है। यातैं विवेकके उपदेशतैं सर्वसाधनका उपदेश अर्थसैं कह्या ॥

ज्ञानके बाहिरंगसाधन कहे ॥

अंतरगसाधन कथन करै हैंः—हे शिष्य! ज्ञानरूपी जो भानु है ताकूं आनि कहिये श्रवणसैं संपादन करिके, तम कहिये अज्ञानरूपी जो तम कहिये अंधेरा है ताकूं तारि कहिये नाश कर ॥

तम नाम अंधेरे औ अज्ञानका है।

अंधेरा उपमान है औ अज्ञान उपमेय है ॥

प्रथम जो तम शब्द है सो उपमेयका वाचक है औ दूसरा उपमानका वाचक है ॥

॥ दोहा ॥

जाकूं उपमा दीजिये,
सो उपमेय बखानि।
जाकी उपमा दीजिये,
सो कहिये उपमानि ॥ ३ ॥

॥ ४०४ ॥ ज्ञानका स्वरूप अन्यशास्त्रनमैं[435] नानाप्रकारका अंगीकार किया है। यातैं महावाक्यके अनुसार ज्ञानका स्वरूप कहै हैंः— हे शिष्य!

॥ ४३४ ॥

१ विषयनविषै दोषके दर्शनतैं रागका नाश होवै है। औ—

२ अर्थविषै अनर्थके ईक्षणतैं लोभका नाश होवै है।

३ कामके अभावतैं क्रोधरूप द्वेषकी उत्पत्ति होवै नहीं। औ—

४ पदार्थनके चिंतनरूप संकल्पके अभावतैं इच्छारूप कामकी उत्पत्ति होवै नहीं।

इस रीतिसैं अन्य राजसीतामसीवृत्तिनके नाशका उपाय बी शास्त्रसैं जानि लेना ॥

किंवा एकादशस्कंधके १३ वें अध्यायविषै उक्त देशकालादिरूप दश सात्विकी पदार्थनके सेवनतैं सत्त्वगुणकी वृद्धिद्वारा सर्वराजसीतामसीवृत्तिनका नाश (तिरस्कार) होवै है ॥

॥ ४३५ ॥ सांख्यन्यायआदिकशास्त्रमैं ॥

१ जीव औ ईश्वरविषै अविद्या औ माया-भागकूं त्यागिके तिन्हका जो भेद प्रतीत होवै ताकूं छेद कहिये दूरि कर। औ—

२ जीवईश्वरमैं जो वेदन कहिये चेतनभाग है ताकूं भेदरहित जान ॥

या कहनैतैं यह वार्त्ता कही:—महावाक्यनमैं भागत्यागलक्षणातैं जीवईश्वरकी एकता जान ॥

शिवके स्थानमैं सीव पड्या है।

तृतीयपादका अर्थ स्पष्टहै।

पूर्व कहे अर्थकूं संक्षेपतैं चतुर्थपादसैं कहै हैं॥ हे शिष्य ! चल कहिये विनाशी जो देहादिक संघात, सो तू नहीं । किंतु अचल कहिये अविनाशी जो ब्रह्म सो तूं है। औ चलदल कहिये वृक्ष[४३६]रूप जो संसार सो छल कहिये मिथ्या है ॥ जैसैं नभविषै नीलता औ तल-मल कहिये कटाहरूपता है नहीं । किंतु मिथ्या प्रतीत होवै है तैसैं संसार बी आत्माविषै है नहीं। मिथ्या प्रतीत होवै है ॥

वृक्षरूपकरिके संसार श्रुतिस्मृतिमैं कह्या है। यातैं वृक्षके वाचक चलदलशब्दका संसारमैं प्रयोग कह्या है ॥ १३ ॥

॥ ४०५ ॥ अन्यप्रकारसैं मोक्षका साधन ज्ञान है, यह कथन ॥ ४०५-४०६ ॥

मोक्षका साधन ज्ञान है। या अर्थकूं अन्य प्रकारसैं कहै हैं ॥

॥ कबित्त ॥

बंध मोक्ष गेह देह-
वान ज्ञानवान जान।
राग रु विराग दोइ
धजा फररात हैं ॥
विषै विषै सत्यभ्रम
भ्रम मति वात तात।
हललात प्रात रात
घरी न ठहरात है ॥
साछ्य साछी पूतरी
अनूज री रु ऊजरी द्वै।
देखि रागी त्यागी
ललचात जन जात हैं ॥

॥ ४३६ ॥

१ सर्वसैं उत्कृष्ट होनैतैं ऊंचा ऐसा मायाविशिष्ट परब्रह्म है **मूल** जिसका । औ—

२ महत्तत्व है **अंकुर** जिसका। औ——

३ अहंकार है **स्कंध** (पेड) जिसका । औ——

४ पंचतन्मात्रा हैं **शाखा** जिसकी।—

५ ये कहे जे महत्तत्वआदिक त्रे सर्व कार्यताकरि निकृष्ट होनैतैं जिसकी **नीची शाखा** कहिये हैं। औ—

६ वेदआदिक जे शास्त्र हैं वे प्ररोचनरूप वाक्यनसैं याके अनित्यताआदिक दोषनकूं ढांपते हैं। यातैं वे शास्त्र जिसके **पर्ण** (पत्ते) हैं औ—

७ चारिपुरुषार्थरूप जाके **रस** हैं औ—

८ धर्मअधर्मरूप जिसके **पुष्प** हैं । औ——

९ जन्ममरणआदिक दुःख जिसका **फल** है। औ

१० अज्ञजीवरूप पक्षी जिसके **भोक्ता** हैं। औ—

११ वैराग्यसैं तीक्ष्ण हुया ज्ञानरूप कुठार जिसका **छेदक** है।

ऐसा यह संसाररूप अश्वत्थवृक्ष है।

इत्यादि अनेकप्रकारसैं शास्त्रनमैं संसाररूप वृक्षका वर्णन किया है ॥

चंचल अचल भ्रम
ब्रह्म लखि रूप निज ।
दुःखकूप आनन्द
स्वरूपमैं समात है ॥ १४ ॥

टीकाः–हे शिष्य !

देहवान् कहिये देहअभिमानी अज्ञानी औ ज्ञानवान, बंध औ मोक्षके गेह कहिये धाम हैं॥

१ अज्ञानी तौ बंधका धाम है । औ–
२ ज्ञानी मोक्षका धाम है ।

राग औ विराग तिनकी ध्वजा है। जैसैं ध्वजा राजाके नगरका चिह्न होवै है तैसैं राग औ विराग तिन्हके चिह्न हैं ।

१ अज्ञानीका राग चिह्न है ॥ औ--
२ ज्ञानीका विराग चिह्न है ।

अज्ञानीविषै बी विराग होवै है, यातैं ज्ञानीका अज्ञानीसैं विलक्षण विराग कहै हैं:--हे तात ! विषय जो शब्दादिक हैं तिन्हविषै सत्यभ्रम कहिये सत्यपनैकी भ्रांति औ भ्रममति कहिये रज्जुसर्पकी न्यांई विषय भ्रमरूप हैं । यह जो मति निश्चय सो वातकी न्यांई राग औ विरागकूं हलावै है । जैसैं वायु ध्वजाकी चंचलता करै है तैसैं विषयमैं सत्यबुद्धि औ भ्रमबुद्धि राग औ विरागकूं चंचल करै है। शिथिल होनै देवै नहीं ॥

१ विषयमैं सत्यबुद्धिसैं रागकी शिथिलता दूरि होवै है। औ--
२ विषयमैं भ्रमबुद्धिसैं विरागकी शिथिलता दूरि होवै है ॥

॥ ४०६ ॥ विषय असत्य हैं । यातैं तिन्हमैं सत्यबुद्धि भ्रांतिरूप है ।इस वार्त्ताके जनावनैकूं कवित्तमैं सत्यभ्रम कह्या । सत्यबुद्धि नहीं कही। भ्रांतिज्ञान औ भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु, सो दोनूं भ्रम कहिये है । या कहनै तैं अज्ञानीके विरागतैं ज्ञानीके विरागका भेद कह्या । काहेतैं ? जो अज्ञानीका विराग है सो विषयमैं मिथ्याबुद्धिसैं उत्पन्न नहीं हुवा । यातैं मंद है । "विषय मिथ्या हैं" यह बुद्धि अज्ञानीकूं होवै नहीं ॥

१ यद्यपि शास्त्रयुक्तिसैं अज्ञानी बी मिथ्या जानै हैं तथापि "विषय मिथ्या हैं" यह अपरोक्षमति ज्ञानवान्कूं ही होवै है । अज्ञानीकूं नहीं । यातैं अज्ञानीकूं विषयमैं परोक्ष जो मिथ्याबुद्धि, तासैं अपरोक्षसत्यभ्रांति दूरि होवै नहीं । इस रीतिसैं अज्ञानीकूं विषयमैं जब विराग होवै है, ता कालमैं परोक्षमिथ्याबुद्धि है बी परंतु परोक्षमिथ्याबुद्धिसैं प्रबल अपरोक्षसत्यबुद्धि है । यातैं अज्ञानीकी परोक्षमिथ्याबुद्धि विरागकी हेतु नहीं । किंतु प्रबल जो सत्यबुद्धि, तासैं विषयमैं राग ही होवै है औ जो विराग होवै तौ बी मिथ्याबुद्धिसैं नहीं । किंतु विषयमैं दोषदृष्टिसैं होवै है ॥ औ--

२ ज्ञानवान् सर्वप्रपचकूं अपरोक्षरूप करिके मिथ्या जानै है। ता अपरोक्षमिथ्याबुद्धिसैं अपरोक्षसत्यबुद्धि दूरि होवै है । यातैं रागकी हेतु विषयमैं सत्यबुद्धि तौ ज्ञानीकूं है नहीं । विरागकी हेतु विषयमैं मिथ्याबुद्धि ज्ञानवान्कूं है । जो ज्ञानीकूं विषयमैं सत्यबुद्धि फेरि होवै तौ राग बी फेरि होवै औ विराग दूरि होवै । सो अपरोक्षरूपतैं मिथ्या जाने पदार्थमैं फेरि सत्यबुद्धि होवै नहीं । जैसैं अपरोक्षरूपतैं मिथ्या जान्या जो रज्जुमैं सर्प, ताके विषै सत्यबुद्धि फेरि होवै नहीं, तैसैं ज्ञानीकूं फेरि सत्यबुद्धि होवै नहीं । इस रीतिसैं रागकी उत्पत्ति औ विरागकी निवृत्ति ज्ञानीके होवै नहीं । यातैं ज्ञानीका विराग दृढ है ॥ औ–

दोषदृष्टिसैं जो अज्ञानीकूं विराग होवै है,

सो तौ दूरि होय जावै है । काहेतें ? जा पदार्थन मैं दोषदृष्टि होवै है ता पदार्थनमैं ही अन्यकालमैं सम्यक्बुद्धि बी होय जावै है । जैसैं सर्वपुरुषनकूं पशुधर्मके अंतमैं स्त्रीविषै दोषदृष्टि होवै है औ कालांतरमैं फेरि सम्यक्बुद्धि होवै है । इस रीतिसैं दोषदृष्टि जब दूरि होवै तब अज्ञानीका विराग बी दूरि होय जावै है । यातैं अज्ञानीकूं [४३७]दृढविराग होवै नहीं ॥

इस रीतिसैं राग औ विराग अज्ञानीके औ ज्ञानीके चिह्न कहे ॥

और बी चिह्न कहे हैंः—हे शिष्य ! जैसैं धामके ऊपरि पूतरि कहिये हस्तीआदिकनकी मूर्ति होवै है तैसैं बंधमोक्षका धाम जो अज्ञानी औ ज्ञानीका अंतःकरण है ताके विषै साक्ष्यसाक्षी पूतरी है ॥

१ अज्ञानीके अंतःकरणविषै तौ साक्ष्यरूपी पूतरी है ॥ औ—
२ ज्ञानीके अंतःकरणमैं साक्षीरूपी पूतरी है ॥

साक्षीका विषय जो प्रपंच है ताकूं साक्ष्य कहै हैं ॥

१ साक्ष्यरूप पूतरी अनूजरि कहिये मलिन है औ——
२ साक्षीरूपी पूतरी ऊजरि कहिये शुद्ध है॥ आगे अर्थ स्पष्ट है ॥

चंचलभ्रम निजरूप लखि औ अचलब्रह्म निजरूप लखि । या क्रमतैं अन्वय है ॥

॥ ४०७॥ लक्षणा तीनि प्रकारकी हैं ॥४०७--४०९ ॥

भागत्यागलक्षणाका जो कवित्वमैं विशेषकरिके ग्रहण किया है, ताविषै हेतु कहनैकूं लक्षणाका भेद कहै हैं ॥

॥ दोहा ॥

त्रिविधलच्छना कहत हैं,
कोविद बुद्धिनिधान ।
जहती अरु अजहती पुनि,
भागत्याग जिय जान ॥ १५ ॥
आदि दोइ नहिं संभवै,
महावाक्यमैं तात ।
भागत्यागतैं रूप निज,
ब्रह्मरूप दरसात ॥ १६ ॥

अर्थ स्पष्ट ॥

॥ ४०८ ॥ शिष्य उवाच ॥

॥ अर्धशंकर छंद ॥

अब लच्छना प्रभु कहत काकूं ।
देहु यह समुझाय,
पुनि भेद ताके तीनि तिनके ।
लच्छनहु दरसाय॥ १७ ॥

टीकाः—सामान्यज्ञानसैं अनंतर विशेषका ज्ञान होवै है । जैसैं सामान्यब्राह्मणका ज्ञान

॥ ४३७ ॥ अज्ञानीकूं दृढविराग होवै नहीं, इसी अभिप्रायतैं गीताविषै भगवान्नें कहा हैः—निराहार (बाहिरतैं विषयनका त्यागी) जो देही (जिज्ञासु) है, ताके रसवर्जित जैसैं होवै तैसैं विषय निवृत्त होवै है कहिये ताकूं विषयनविषै जो स्थूलराग है सो निवृत्ति होवै है । परतु रसशब्दका वाच्य जो वासनारूप सूक्ष्मराग सो मनमैं रहता है । इस पुरुषका सो रस (सूक्ष्मराग) बी परब्रह्मकूं देखिके (अपरोक्षकरिके) निवृत्त होवै है ॥

हुयेसैं अनंतर सारस्वतआदिक विशेषका ज्ञान होवै है ॥ तैसैं लक्षणासामान्यका ज्ञान होवै तौ जहतीआदिक विशेषरूपनका ज्ञान होवै ॥ लक्षणाका सामान्यरूप जानै विना जहती-आदिक विशेषरूपनका ज्ञान होवै नहीं । इस अभिप्रायतैं--

शिष्य कहै हैः-हे प्रभो! लक्षणा काकूं कहते हैं, यह मैं नहीं जानूं हूं । यातैं लक्षणाका सामान्यरूप दिखायके तिसतैं अनंतर जो जहती आदिक लक्षणाके तीनि भेद कहिये विशेष है, तिन्हके जुदे जुदे लक्षण दिखावो ॥

छंदवास्तै प्रभोकूं प्रभु पढ्या । औ--

भाषाकी संप्रदायतैं लक्षणाके स्थान लच्छना पढचा ।

लक्षणके स्थान लच्छन पढचा ॥

॥ ४३८ ॥

१ जैसैं वत्सका गौसैं सम्बन्ध है तब ताकी अनेक गौके मध्यस्थित अपनी मातारूप गो-विषै प्रवृत्ति होवै है, सम्बन्ध विना प्रवृत्ति होवै नहीं, यातैं ता वत्सका औ गौका जो पर-स्पर जन्यजनकभावसम्बन्ध जानिये है तिस जन्यजनकभावरूपके ज्ञानकी हेतु जो वत्सकी गोविषै प्रवृत्ति है सो बी संबंध कहिये है ॥

२ तैसैं शब्दकी अपनै अपनै अर्थविषै जो प्रवृत्ति होवै है सो बी किसी सम्बन्ध विना बनै नहीं । यातैं शब्दका अपनै वाच्यरूप किंवा लक्ष्यरूप अर्थके साथि वाच्यवाचकभावरूप किंवा लक्ष्यलक्षकभावरूप सम्बन्ध जानिये है ॥

इस द्विविधसम्बन्धकूं ही स्मार्यस्मारकभावरूप सम्बन्ध बी कहते हैं ॥

(१) वाच्यरूप किंवा लक्ष्यरूप जो अर्थ सो पदकरिके स्मरण करनै योग्य है । यातैं सो स्मार्य कहिये है ॥ औ-

(२) वाचकरूप किंवा लक्षकरूप जो पद, सो तिस अर्थका स्मरण करावनैहारा है। यातैं सो स्मारक कहिये है ।

॥ ४०९ ॥ गुरुवाक्य ॥

शंकरछंद ॥

श्रुति चित्त निज एकाग्र करि ।
अब सिष्य सुनि मम बानि ॥
ज्यूं लच्छना अरु भेद ताके ।
लेहु नीके जानि ॥
सुनि वृत्ति है द्वै भांति पदकी ।
सक्ति तामैं एक ॥
तहां लच्छना पुनि जानि दूजी ।
सुनहु सो सविवेक ॥ १८ ॥

टीकाः-पदका जो अर्थसैं संबंध[४३८] सो वृत्ति कहिये है ॥

तिन दोनूंका आपसमैं स्मार्यस्मारकरूप सम्बन्ध है । तिस संबन्धके ज्ञान करनेकी हेतु जो शब्दकी अपनै अर्थविषै प्रवृत्ति सो बी शब्दका अर्थसैं संबंध कहिये है । तिसी प्रवृत्तिरूप संबंधकूं शब्दकी वृत्ति बी कहते हैं ॥

सो वृत्तिरूप संबंध कहूं शक्तिरूप होवै है । कहूँ लक्षणारूप होवै है, यह प्रसंगसैं जानि लेना ॥

१ शास्त्रविषै वृत्ति नाम अन्तःकरणके वा अविद्याके परिणामका बी है ।

२ तैसैं वर्त्तनैवालेका नाम बी वृत्ति है ।

३ तैसैं जीविकाका नाम बी वृत्ति है ।

४ तैसैं प्राणोंकी क्रियाका नाम बी वृत्ति है ।

५ तैसैं किसी व्याकरणके विभागका नाम बी वृत्ति है ।

तिनमेंसैं कोई बी वृत्तिशब्दका अर्थ इहां जाननै योग्य नहीं । किंतु शब्दका अर्थसैं जो सबन्ध सो इहां वृत्तिशब्दका अर्थ जाननै योग्य है ॥

इस शब्दकी वृत्तिका कछुक वर्णन हमनै वेदस्तुतिकी सान्वयार्थदीपिका करी है तामैं तथा वृत्तिरत्नावलिमैं बी लिख्या है ॥

सो वृत्ति दो प्रकारकी है । ता दो प्रकारमैं एक शक्तिवृत्ति है औ दूजी लक्षणावृत्ति है ।

॥ ४३९ ॥ शब्दमैं अपनै अर्थके ज्ञान करनैकी जो सामर्थ्य है सो **शब्दकी शक्ति** कहिये है ।

सो शब्दकी शक्ति दो कपालनके मध्यमैं स्थित कपालसयोगकी न्यांई औ कार्यकारणआदिकनके मध्यमैं स्थित समवायसम्बन्ध किंवा तादात्म्यसंबन्धकी न्यांई शब्द औ अर्थ इन दोनूंके मध्यमैं स्थित है। यातैं सो शक्ति शक्तिवृत्तिरूप शब्दका अर्थके साथि **साक्षात्संबंध** कहिये है ।

इस रीतिसैं कही जो शब्दकी अर्थके साथि साक्षात्संबंधरूप शक्तिवृत्ति सो १ योगा, २ रूढि, औ ३ योगारूढि उभयरूप, इस भेदतैं तीनि भांतिकी है।

१ जिस शब्दविषैं अपनै अवयवनके योग (मिलाप) तैं अर्थके ज्ञान करनैकी सामर्थ्य है तिस शब्दका अपनै अर्थके साथि **योगशक्तिरूप संबंध** है । सोई शब्दकी **योगवृत्ति** कहिये है। जैसैं "पगरखा" शब्द है। तिसविषै तिसके "पग" औ "रखा" ये दो अवयव हैं, तिनके योग (मिलाप) तैं पादत्राण (कांटारखी) रूप अर्थका ज्ञान करनैका सामर्थ्य है । यातैं "पगरखा" शब्दका अपनै पादत्राणरूप अर्थके साथि योगशक्तिरूप सवन्ध है। औ—

२ जिस पदके अवयवनसैं अर्थका ज्ञान होवै नहीं, किंतु "इस पदका यह ही अर्थ होवै" ऐसा अर्थ करनैका संकेत (परिभाषा) जिस पदविषै होवै तिस पदका अपनै अर्थके साथि **रूढिशक्तिरूप संबंध** है। सोई शब्दकी **रूढिवृत्ति** कहिये है । जैसैं "पगडी" शब्द है, तिसके अवयवनसैं कुछ अर्थका ज्ञान होता नहीं । किंतु "पगडी" शब्दका शिरोवेष्टनरूप ही अर्थ होवै । ऐसा जो लोकनका संकेत है सोई "पगडी" शब्दका अपने शिरोवेष्टनरूप अर्थके साथि **रूढिशक्ति** है । औ—

३ जिस पदके अवयवनसैं बी अर्थका ज्ञान होवै औ तहां लोकनका बी संकेत होवै तिस शब्दका अपने अर्थके साथि **योगारूढि उभयरूप शक्ति** है। जैसैं "अगरखा" शब्द जो है तिसके अवयव जो

तिनकूं सविवेक कहिये विवेकसहित । याका अर्थ लक्षणसहित सुनि ।

"अग" औ "रखा" तिनके योगतैं कंचुक (पहिरण) रूप अर्थका ज्ञान होवै है औ "पगरूप अंगकी रक्षा करनेवाले पगरखेकूं अगरखा नहीं कहना किन्तु इसी (कंचुक) कूं ही अगरखा कहना" ऐसा इस अंगरखेशब्दविषै लोकनका संकेत बी है। यातैं अंगरखेशब्दविषै अपनै अर्थके साथि **योगारूढिउभयरूपशक्तिमय संबंध** है।

यह कही जो तीन भांतिकी शब्दकी शक्तिवृत्ति, याहीकूं **मुख्यवृत्ति** वी कहते हैं ॥

॥ ४४० ॥

१ जो शब्दकी शक्तिवृत्तिरूप संबंधसैं जानिये है ऐसा जो शब्दका साक्षात्सम्बन्धी अर्थ सो **शक्यअर्थ** कहिये है ॥

२ तिस शक्यअर्थके सम्बन्धी वक्ताके तात्पर्यके विषय अन्यअर्थके विषै जो शब्दका परंपरासम्बन्ध, सो शब्दकी **लक्षणावृत्ति** है। औ—

३ तिस लक्षणावृत्तिसैं जानिये है ऐसा जो शब्दका परंपरासैं (शक्यअर्थद्वारा) सम्बन्धी जो अर्थ, सो शब्दका **लक्ष्यअर्थ** कहिये है ।

१ जैसैं पिताशब्दका शक्तिवृत्तिरूप साक्षात्सम्बन्ध जनकरूप अर्थसैं है। यातैं पिताशब्दकी शक्तिवृत्तिरूप सम्बन्धतैं जानिये है ऐसा जो पिताशब्दका साक्षात्सम्बन्धी जनकरूप अर्थ सो पिताशब्दका **शक्यअर्थ** कहिये है ॥

२ तिस जनकरूप शक्यअर्थका सम्बन्धी औ किसी वड़े दिनमैं "सर्वसैं प्रथम पिताके तांई नमस्कार कर" ऐसैं पौत्रके प्रति बोधन करनैहारे वक्ता पुरुषके तात्पर्यका विषय जो पितामहरूप अन्य अर्थ है, तिसविषै जो पिताशब्दका परंपरासम्बन्ध सो पिताशब्दकी **लक्षणावृत्ति** है। औ—

३ तिस लक्षणावृत्तिसैं जानिये है ऐसा जो पिताशब्दका परंपरासैं (जनकरूप शक्यअर्थद्वारा) सम्बन्धी पितामहरूप अर्थ सो पिताशब्दका **लक्ष्यअर्थ** है।

जिस अर्थके साथि जिसका साक्षात्सम्बन्ध न होवै

॥४१०॥ न्यायरीतिसैं शक्तिलक्षण॥
(ईशइच्छा)

॥ अथ शक्तिलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

या पदतैं या अर्थकी,
है सुनतेहि प्रतीति ।
ऐसी इच्छा ईसकी,
सक्ति न्यायकी रीति ॥ १९ ॥

टीकाः—या पदतैं कहिये घटपदतैं या अर्थकी कहिये कलसअर्थकी सुनतै ही प्रतीति कहिये ज्ञान सर्वपुरुषनकूं होवै, ऐसी जो ईश्वरकी इच्छा, ताकूं न्यायशास्त्रमैं शक्ति कहै हैं ॥

॥४११॥ अथ स्वरीति शक्तिलक्षण॥
(पदमैं अर्थके ज्ञानकी सामर्थ्य)

॥ अर्धशंकरछंद ॥

सामर्थ्य पदकी सक्ति जानहु ।
वेदमत अनुसार ॥
सो वह्निमैं जिम दाहकी
है सक्ति त्यूं निरधार ॥ २० ॥

टीकाः—

१ घटपदकें श्रोताकूं कलशरूप अर्थके ज्ञान करनैका जो घटपदविषै सामर्थ्य, सोई घटपदमैं शक्ति है ॥

२ तैसैं पटपदके श्रोताकूं वस्त्ररूप अर्थके ज्ञान करनैका जो पटपदविषै सामर्थ्य, सोई पटपदमैं शक्तिवृत्ति है ॥

ऐसैं सर्वपदनमैं जानि लेनी ॥

दृष्टांतः—जैसैं वह्निमैं अपनैसैं मिलतै ही वस्तुके दाह करनैकी सामर्थ्यरूप शक्ति है, तैसैं श्रोताके कर्णसैं मिलतै ही वस्तुके ज्ञान करनैकी जो पदविषै सामर्थ्य, सो शक्ति कहिये है ।

सामर्थ्य नाम समर्थपनैका है। जाकूं समर्थाई कहै हैं औ बल बी कहै हैं, जोर बी कहै हैं ॥

जैसैं अग्निमैं दाहकी शक्ति है तैसैं जलविषै गीला करनेकी, तृषा दूरि करनेकी औ पिंड बांधनेकी जो समर्थाई है, सो शक्ति है ॥

इस प्रकारसैं सर्वपदार्थनविषै अपना अपना कार्य करनैकी सामर्थ्य है, सोई शक्ति है ॥ यह वेदका सिद्धांत है ॥ ताहीकूं निर्धार कहिये निश्चय कर औ न्यायकी रीति त्यागनैकूं योग्य है ॥

किंतु किसीद्वारा सम्बन्ध होवै, तिस अर्थके साथि तिसका **परंपरासंबंध** कहिये है ॥

जैसैं पौत्ररूप तृतीयपुरुषका अपनै पितामहरूप प्रथमपुरुषके साथि साक्षात्सम्बन्ध (जन्य जनकभाव) नहीं है, किन्तु पुत्रका अपनै पितासैं संबंध (जन्य-जनकभाव) है औ पिताका पितामहसैं सम्बन्ध है। यातैं पौत्रका पितामहसैं पिताद्वारा सम्बन्ध है, सो **परंपरासम्बन्ध** है।

तैसैं शब्दका अपनै साक्षात्सम्बन्धी शक्यअर्थसैं भिन्न जो शक्यअर्थका सम्बन्धी, ताके साथि साक्षात् सम्बन्ध नहीं। किन्तु शब्दका शक्तिरूप सम्बन्ध शक्य-अर्थसैं है औ शक्यअर्थका संयोगादिरूप किसी बी प्रकारका संबंध वक्ताके तात्पर्यके विषयरूप अपनै सम्बन्धी अन्यअर्थसैं है। यातैं तिस शक्यके सम्बन्धी अन्यअर्थसैं शब्दका शक्यअर्थद्वारा संबंध है । यातैं सो **परंपरासंबंध** कहिये है ॥

यह शब्दका परंपरासंबंध ही **लक्षणावृत्ति** है, सो शब्दका परंपरासम्बन्ध जिस अर्थके साथि होवै, सो शब्दका **लक्ष्यअर्थ** है । यह लक्षणावृत्तिका सामान्यलक्षण औ उदाहरण कहा । याके जहती-आदिक त्रिविधभेदके अनेक उदाहरण आगे (४३० सैं ४३२ वें अंकपर्यंत) त्रिविधलक्षणाके प्रसंगमैं टिप्पण-विषै हम लिखैंगे ॥

॥४१२॥प्रश्नः–वर्णसमुदायसैं जुदी शक्ति नहीं, यातैं ईशइच्छा शक्ति है ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ शंकरछंद ॥

ननु वह्निमैं नहिं सक्ति भासे।
वह्नि बिन कछु और ॥
है हेतुता जो दाहकी।
सो वह्निमैं तिहि ठौर ॥
इम पदनहूमैं वर्ण बिन कछु।
सक्ति भासत नाहिं।
या हेतुतैं जो ईसइच्छा।
सक्ति मो मतिमाहिं ॥ २१ ॥

टीकाः–नंनुशब्द संदेहका वाचक है। वन्हिमैं ताके स्वरूपसैं जुदी शक्ति भासैं कहिये प्रतीत होवै नहीं औ पूर्व कह्या दाहका हेतु जो वह्निमैं सामर्थ्य, सोई वह्निमैं शक्ति है। सो बनै नहीं। काहेतैं ? दाहकी हेतुता कहिये जनकता कारणपना केवल वह्निमैं ही है ॥ अप्रसिद्धसामर्थ्य वन्हिमैं मानिके ताके विषै हेतुता माननैका औ प्रसिद्धवह्निमैं हेतुता त्यागनेका कछु प्रयोजन नहीं ॥ जैसैं दृष्टांतमैं शक्ति नहीं संभवै। इम कहिये इस रीतिसैं पदनके विषै बी वर्णका समुदाय जो पदनका स्वरूप, तासैं जुदी शक्ति भासै नहीं औ ताका प्रयोजन बी नहीं ॥ या हेतुतैं ईश्वरकी इच्छारूप जो न्यायकी रीतिसैं शक्ति सोई मेरी मतिमांहि भासै है ॥

(गतप्रश्नका उत्तर ॥ ४१३–४२७ ॥)

॥ ४१३ ॥ सिद्धांतरीतिसैं अग्निआदिकमैं दाहादिकार्यकी सामर्थ्यरूप शक्तिका प्रतिपादन ॥ ४१३–४१४ ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

॥ शंकरछंद ॥

प्रतिबंध होते वह्नितैं नहिं।
दाह उपजै अंग ॥
उत्तेजक रु जब धरै तब।
फिरि दहै वह्नि स्वसंग ॥
ह्वै वह्निमैं जो हेतुता।
तौ दाह ह्वै सब काल ॥
जो नसै उपजै वह्नि होते।
हेतु सक्ति सु बाल ॥ २२ ॥

टीकाः–हे अंग प्रिय ! प्रतिबंधके होते अग्निसैं दाह होवै नहीं औ उत्तेजक समीप धरै। तब स्वसंग कहिये अग्निसैं मिल्या जो पदार्थ, ताका दाह प्रतिबंध होते बी होवै है ॥ जो शक्तिसैं विना केवल अग्निकूं दाहकी हेतुता होवै तौ सर्वकाल कहिये उत्तेजकसहित प्रतिबंधकाल औ प्रतिबंधरहित कालकी न्यांई उत्तेजकरहित प्रतिबंधकालमैं बी दाह हुवा चाहिये। काहेतैं ? दाहका हेतु केवल अग्नि ताकालमैं बी है औ स्वमतमैं तौ यह दोष नहीं। काहेतैं ? स्वमतमैं अग्निकी शक्ति अथवा शक्तिसहित अग्नि दाहका हेतु है। केवल अग्नि नहीं ॥

जहां प्रतिबंध है तहां यद्यपि प्रतिबंधसैं

॥ ४४१ ॥ यह "ननु" ऐसा जो शब्द है, सो सन्देहका वाचक है। कहिये शंकारूप अर्थका बोधक है। यातैं शिष्य इहां शंका करै है। यह जानना ॥

अग्निका तौ नाश वा तिरोधान नहीं बी होता। तथापि अग्निकी शक्तिका नाश वा तिरोधान होवै है, यातैं दाहका हेतु शक्ति अथवा शक्तिसहित अग्निका अभाव होनैतैं दाह होवै नहीं ॥ औ-

जा स्थानमैं प्रतिबंधके समीप उत्तेजक आया है। तहां प्रतिबंधनै तौ अग्निकी शक्तिका नाश वा तिरोधन करि दिया, परंतु उत्तेजकनै फेरि शक्तिकी उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव किया है। यातैं प्रतिबंधके होते वी उत्तेजकके माहात्म्यतैं दाहका हेतु शक्ति वा शक्तिसहित अग्निके होनैतैं दाह होवै है।

चतुर्थपादका अक्षरार्थ यह है:-हे बाल! अज्ञाततत्त्व जो नसै कहिये नाशकूं प्राप्त होवै प्रतिबंधतैं, औ उपजै उत्तेजकतैं, सु कहिये सो शक्ति दाहका हेतु है ॥

१ कारजका जो विरोधी सो प्रतिबंधक कहिये है ॥ औ-

२ प्रतिबंधकके होते कारजका साधक उत्तेजक कहिये है।

१ अग्निके स्थान प्रतिबंध औ उत्तेजक मणि मंत्र औषध हैं। जा मणि वा मंत्र वा औषधके सन्निधानसैं दाह होवै नहीं सो प्रतिबंधक औ-

२ जा मणि मंत्र[४४३] औषधके सन्निधानसै प्रतिबन्धक होते बी दाह होवै सो उत्तेजक है।

॥ ४१४ ॥ गुरुवाक्य ॥

॥ अर्धशंकरछंद ॥

सिष रीति यह सब वस्तुमैं तूं।
सक्ति लेहु पिछानि ॥
बिन सक्ति नहिं कछु काज होवै।
यहै निश्चै मानि ॥ २३ ॥

टीकाः-हे शिष्य! वह्निकी न्याईं जलआदिक सर्वपदार्थनविषै तूं शक्ति पिछान। शक्तिसैं विना किसी हेतुसैं कोई कार्य होवै नहीं ॥

सार्द्धशंकरछंदसैं शक्तिका प्रयोजन कह्या ॥

पूर्व जो शिष्यनै प्रश्न किया थाः-"शक्ति वह्निसैं भिन्न प्रतीत होवै नहीं" ताका समाधान कहनैकूं अर्द्धशंकरसैं शक्तिका अनुभव दिखावै हैं:-

॥ अर्धशंकरछंद ॥

[४४३] अब सक्ति यामैं है नहीं वह।
सक्ति उपजी और।
यह सक्तिको परसिद्ध अनुभव।
लोपिहै किस ठौर ॥ २४ ॥

[अर्थ स्पष्ट]

॥ ४४२ ॥ इहां प्रतिबन्धरूप जे मणि मंत्र औषध है औ तिनकरिके जो अग्निकी दाह करनकी शक्तिका नाश वा तिरोधान होवै है, तैसैं उत्तेजकरूप जे मणि मंत्रऔषध हैं औ तिनकरिके जो अग्निकी शक्तिकी उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव होवै है, सो ठीकरनाथआदिकनविषै प्रसिद्ध है ॥

॥४४३॥ इस ऊपर कहे अर्धशंकरछदका यह अर्थ है:-अब कहिये प्रतिबन्धके सद्भावकालमैं शक्ति कहिये दाह करनैका सामर्थ्य, यामैं कहिये प्रज्वलित अग्निमैं नहीं है औ फेर उत्तेजकके सद्भावकालमैं वह और शक्ति उपजी है। यह शक्तिका प्रसिद्ध अनुभव ठीकरनाथआदिकनके कौतुकके देखनैवारे सर्वलोकनकूं है। तिस लोकनके अनुभवकूं हे शिष्य! तू किस ठिकानै लोपैगा? अनुमितिप्रमारूप इस अनुभवका किसी प्रकारसैं लोप (बाध) संभवै नहीं। यह अर्थ है ॥

सिद्धांतकी रीतिसैं शक्तिका स्वरूप औ शक्तिमैं प्रमाण निरूपण किया ॥

॥४१५॥अन्यमतकी शक्तिका खंडन ॥ ४१५-४२७ ॥

॥ अर्धशंकरछंद ॥

जो सक्ति इच्छा ईसकी सो।
पदनके न नजीक ॥
मत न्यायको अन्याय या विधि।
सक्ति जानि अलीक ॥ २५ ॥

टीकाः--जो ईश्वरकी इच्छारूप पदशक्ति[४४४] कही, सो बनै नहीं। काहेतैं ? ईश्वरकी इच्छा ईश्वरका धर्म है। यातैं ईश्वरमैं रहै ॥ जो इच्छा सो पदकी शक्ति है। यह कहना बनै नहीं ॥ जो पदका धर्म शक्ति होवै तौ पदकी शक्ति है, यह कहना बनै। यातैं पदकी सामर्थ्य-रूप ही पदकी शक्ति है। ईशकी इच्छा[४४५] पदके नजीक बी नहीं, सो पदकी शक्ति है। यह कहना बनै नहीं ॥

अलीक नाम झूठका है।

॥४१६॥ अथ वैयाकरणरीतिशक्ति-लक्षण ॥

(पदमैं अर्थकी योग्यता)

॥ अर्धशंकरछंद ॥

योग्यता जो अर्थकी पद-
-मांहि सक्ति सु देखि।
यूं कहत वैयाकरनभूषन।
कारिका हरि लेखि ॥ २६ ॥

टीकाः--पदके विषै जो अर्थकी योग्यता कहिये अर्थके ज्ञानकी हेतुता हेतुपना, सो पदमैं शक्ति है। जैसैं घटपदविषै कलशरूप अर्थके ज्ञानकी हेतुतारूप योग्यता है, सोई शक्ति है। इस रीतिसैं वैयाकरणभूषणग्रन्थमैं हरिकी कारिका[४४६] प्रमाण लिखिके शक्ति कही है ॥

अथवा वैयाकरणके जो भूषण कहिये उत्तमवैयाकरण ते हरिकी कारिका कहिये श्लोककूं देखिके कहत[४४७] हैं।

॥४४४॥ नैयायिकोंनै पदशक्ति कहिये पदकी शक्ति कही है ॥

॥ ४४५ ॥ ईशकी इच्छा ईशका धर्म है। यातैं सो ईशके आश्रित होनैतैं (ईशके समीप है। याहीतैं सो ईशके संबंधी होनैतैं) ईशकी शक्ति है। सो इच्छा घटादिपदनका धर्म नहीं यातैं पदनके समीप नहीं। याहीतैं पदनकी असम्बन्धी होनैतैं सो पदनकी शक्ति नहीं ॥ जैसैं कुलालकूं घट करनैकी इच्छा है, सो कुलालका धर्म है, घटका धर्म नहीं। तैसैं "इस (घट) पदका यह (कलशरूप) अर्थ होवै" इस संकल्प-पूर्वक जो ईश्वरकी इच्छा है, सो ईश्वरके आश्रित धर्म है। यातैं ईश्वरकी शक्ति है। पदनका धर्म नहीं। यातैं सो पदनकी शक्ति नहीं यह जानना ॥

॥४४६॥ हरिकी कारिका कहिये हरिपंडित-कृत ७०० के सुमारमैं श्लोकबद्ध व्यकरणका ग्रन्थ है तिसरूप प्रमाणकूं लिखिके वैयाकरणभूषण-नामक ग्रन्थमैं शक्ति कही है।

॥ ४४७ ॥ यह वैयाकरणभूषणकारका मत है औ मंजूषाग्रन्थमैं योगभाष्यकी रीतिसैं वाच्य-वाचकभावका मूल जो पदअर्थका तादात्म्यसम्बन्धी सोई शक्ति मानी है। यही शक्ति योगमतमैं बी मानी है, तिस वाच्यवाचकके तादात्म्यरूप शक्तिका खण्डन आगे भट्टमतके प्रसंगमैं किया है ॥

॥ ४१७ ॥ वैयाकरणरीतिका शक्तिका खंडन ॥ ४१७-४१८ ॥

॥ गुरुवाक्य ॥

॥ सार्धशंकरछंद ॥

सुन सिष्य वैयाकरनमतमैं ।
प्रबल दूषन एक ।
सामर्थ्य पदमैं है न वा यह ।
पूछि ताहि विवेक ॥
भाखै जु है तौ सक्ति मानहु ।
ताहि लोकप्रसिद्ध ॥
कहि नाहिं जो असमर्थ पद सो ।
योग्य ह्वै यह सिद्ध ॥ २७ ॥
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रु ।
कहत ही सविरोध ।
जो और दूषन देखनो तौ ।
ग्रंथदर्पन सोध ॥ २८ ॥

टीकाः-प्रथमपाद स्पष्ट ॥

हे शिष्य ! अर्थज्ञानकी हेतुतारूप योग्यताकूं जो शक्ति मानै है, ताकूं यह विवेक पूछ्या चाहियेः-तेरे मतमैं पदविषे सामर्थ्य है अथवा नहीं है ? प्रथमपक्ष कहै तौ हमारे मतकी शक्ति बलसैं सिद्ध होवै है। यह तृतीयपादसैं कहै हैंः-"भाखै जु है तौ" इति । याका अन्वयः-जु कहिये जो भाखै है तौ लोकप्रसिद्ध शक्ति ताहि मानहु । अर्थ-जो वैयाकरण कहै। पदमैं सामर्थ्य है तौ लोकमैं प्रसिद्ध जो सामर्थ्यरूप शक्ति है, ताहि पदमैं बी मानहु । पदमैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यताकूं शक्ति मति मान ॥

अभिप्राय यह हैः-जो पदमैं सामर्थ्य अंगीकार करै, ताकूं सामर्थ्यसैं भिन्नरूप शक्तिका मानना योग्य नहीं । किंतु सामर्थ्यरूप ही शक्ति है, यह मानना योग्य है । काहेतैं ? सामर्थ्य, बल, जोर औ शक्ति, ये चारि नाम एकवस्तुके लोकमैं प्रसिद्ध हैं ॥

जोरहीनकूं लोक कहै हैं:-यह सामर्थ्यहीन है, बलहीन है औ शक्तिहीन है। और भूंजे[448] अन्नकूं कहै हैंः--याके विषै अंकुरउत्पत्तिकी सामर्थ्य नहीं है, बल नहीं है, शक्ति नहीं है, जोर नहीं है ॥

इस रीतिसैं सामर्थ्य औ शक्तिकी एकता लोकमैं प्रसिद्ध है। औ—

वह्निमैं बी सामर्थ्यरूप ही शक्ति निर्णीत है। यातैं पदमैं सामर्थ्यरूप ही शक्ति माननी योग्य है । औ पदमैं सामर्थ्य मानिके तासैं भिन्न योग्यताकूं शक्ति कहनैका लोकप्रसिद्धिके विरोध विना और फल नहीं । केवल लोकप्रसिद्धिका विरोध ही फल है ॥ औ—

॥ ४१८ ॥ जो ऐसैं कहैंः-सामर्थ्यकूं ही हम योग्यता कहै हैं तौ हमारा ही मत सिद्ध होवै है ॥ औ-

ऐसैं कहैंः-हम सामर्थ्य अंगीकार करैं तौ सामर्थ्यरूप शक्ति पदमैं संभवै, सो सामर्थ्यकूं अंगीकार ही नहीं करते । यातैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यता ही पदमैं शक्ति है, ताकूं यह पूछ्या चाहियेः-

सामर्थ्यका अभाव केवल पदमैं ही अंगीकार करै हैं । अथवा वह्निआदिक सर्व पदार्थनमैं सामर्थ्यका अभाव अंगीकार करै है ?

---

[448] ॥ ४४८ ॥ भूंजे (दग्ध)

जो अंत्यपक्ष कहै तौ वह्निआदिक पदार्थनमैं सामर्थ्यरूप शक्तिके प्रतिपादनमैं उक्त जो युक्ति, तिन्हतैं खंडित है ॥ औ--

प्रथमपक्ष कहै तौ ताके विषै अंत्यपक्षउक्त दोष तौ यद्यपि नहीं है। काहेतैं ? जो वह्नि-आदिक सर्वपदार्थनमैं सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं मानैं तौ प्रतिबंधकतैं दाहका अभाव बनै नहीं। यह अंत्यपक्षमैं दोष है। सो दोष प्रथम-पक्षमैं नहीं। काहेतैं? वह्निआदिक सर्वपदार्थनमैं तौ सामर्थ्यरूप शक्ति है। यातैं प्रतिबंधकतैं दाहके अभावका असंभव नहीं, परंतु पदके विषै अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यतासैं भिन्न सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं। किंतु पदमैं अर्थकी योग्यता ही शक्ति है। यह प्रथमपक्ष है॥ ताके विषै प्रतिबंधकतैं दाहका असंभवरूप दोष तौ नहीं ॥

तथापि पदविषै बी वह्निकी न्याई सामर्थ्यका अंगीकार अवश्य किया चाहिये। यह प्रतिपादन करै हैं। शंकरके दो पादनतैं:- "नाहीं जो असमर्थ" इत्यादि "सविरोध" पर्यंत ॥ अर्थ नाहिं कहिये पदमैं सामर्थ्यका अंगीकार नहीं तौ जो असमर्थपद सो योग्य कहिये अर्थज्ञानका जनक है। यह सिद्ध कहिये मतका निश्चय है। सो असंगत है। काहेतैं? पद असमर्थ है औ अर्थयोग्य कहिये अर्थज्ञानका जनक है। यह वाक्य नपुंसकका अमोघवीर्य है इस वाक्यकी न्याई कहते ही सविरोध है। विरोधसहित है ॥

१ सामर्थ्यसहितका नाम समर्थ है। औ--

२ सामर्थ्यरहितका नाम असमर्थ है।

असमर्थसैं कोई कार्य होवै नहीं, यह लोकमैं प्रसिद्ध है। यातैं असमर्थपदसैं बी अर्थका ज्ञानरूप कार्य बनै नहीं। यातैं पदमैं सामर्थ्य मानना योग्य है। जब सामर्थ्य पदमैं अंगीकार किया तब शक्ति बी पदमैं सामर्थ्यरूप ही माननी योग्य है ॥

इस रीतिसैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यता पदमैं शक्ति नहीं। किंतु सामर्थ्यरूप ही शक्ति है ॥

जो वैयाकरणमतमैं और दूषण देखना होवै तौ शक्तिके निरूपणमैं दर्पणग्रंथकूं शोध कहिये देख। दूषण क्लिष्ट है। यातै दर्पणउक्तदूषण लिख्या नहीं ॥

॥ ४१९ ॥ अथ भट्टरीतिशक्तिलक्षण ॥ ४१९-४२१ ॥

(पदका अर्थसैं भेदाभेदरूप तादात्म्य।)

॥ अर्धशंकरछंद ॥

संबंध पदको अर्थसैं।
तादात्म्यसक्ति सु वेद ॥
इम भट्टके अनुसारि भाखत।
ताहि भेदाभेद ॥

टीकाः--पदका अर्थसैं जो तादात्म्यसंबंध, ताकूं भट्टके अनुसारी शक्ति कहै हैं। सो वेद कहिये तू जान। ताहि कहिये तिस तादात्म्यकूं भेदाभेदरूप कहै हैं॥ यह तिन्हका अभिप्राय है:--

१ अग्निपदका अंगारअर्थसैं अत्यंत भेद नहीं। जो अत्यंतभेद होवै तौ जैसैं अग्निपदसैं अत्यंत-भिन्न जलआदिक हैं, तिन्हकी अग्निपदसैं

॥ ४४९ ॥ भर्जितबीजकी न्याई सामर्थ्यहीन पदविषै अर्थज्ञानकी जनकताके बी अभावतैं सो योग्यता पदमैं शक्ति नहीं। किंतु सो योग्यता जिस सामर्थ्यकारिके होवै है सो सामर्थ्य ही लोकप्रसिद्ध शक्ति है ॥

प्रतीति होवै नहीं, तैसैं अग्निपदसैं अंगाररूप अर्थकी प्रतीति नहीं होवैगी । पदसैं अत्यंतभिन्न अर्थकी प्रतीति होवै नहीं ॥

२ जैसैं पदका अपनै अर्थसे अत्यंतभेद नहीं, तैसैं अत्यंतअभेद बी नहीं ॥ जो अत्यंतअभेद वाच्यवाचकका होवै तौ जैसैं अग्निपदके वाच्य अंगारसैं मुखका दाह होवै है तैसैं अंगारका वाचक अग्निपदके उच्चारण कियेतैं बी मुखका दाह हुवा चाहिये औ पदके उच्चारणतैं दाह होवै नहीं । यातैं अत्यंतअभेद बी नहीं । किंतु––

अग्निपदका अंगाररूप अर्थसैं भेदसहित अभेद है ॥

१ भेद है, यातैं दाह होवै नहीं । औ––

२ अभेद है, यातैं अग्निपदतैं जलआदिकनकी न्यांई अंगारकी प्रतीतिका असंभव बी नहीं ॥

जैसैं अग्निपदका अंगाररूप अर्थसैं भेदसहित अभेद है, तैसैं उदक, वन, जल, दक, इन जीवनपदनका पानीरूप अर्थसैं भेदसहित अभेद है ॥

जो अत्यंतभेद होवैं तौ जैसैं उदकआदिकपदनतैं अत्यंतभिन्न अग्निआदिक हैं, तिन्हकी उदकआदिकपदनतैं प्रतीति होवै नहीं, तैसैं पानीरूप अर्थकी बी उदकआदिक पदनतैं प्रतीति नहीं होवैगी । यातैं अत्यंतभेद नहीं । औ––

२ अत्यंतअभेद बी नहीं । जो अत्यंत अभेद होवै तौ जैसैं पानीतैं मुखमैं शीतलता होवै है, तैसैं उदकआदिक पदनके उच्चारणतैं बी मुखमैं शीतलता हुई चाहिये औ पदनतैं शीतलता होवै नहीं । यातैं अत्यंतअभेद नहीं ।

किंतु भेदसहित अभेद होनैतैं दोऊ दोष नहीं ॥

इस रीतिसैं सर्वत्र ही अपनै अपनै वाच्यतैं वाचकपदनका भेदसहित अभेद है । ता भेदसहित अभेदकूं ही भट्टके अनुसारी तादात्म्यसंबंध कहै हैं औ भेदाभेद कहै हैं सो भेदभिद्रूप तादात्म्यसंबंध ही सर्वपदनमें अपनै अपनै अर्थकी शक्ति है । तादात्म्यसम्बन्धसैं जूदी सामर्थ्यरूप शक्ति नहीं । भेदाभेदमैं युक्ति कही ॥

॥ ४२० ॥ ॥ अब प्रमाण कहै हैं:––

॥ अर्धशंकरछंद ॥

यह ॐअच्छर ब्रह्म है यूं ।
कहत वेद अभेद ॥
पुनि बानिमैं पद अर्थ बाहिर ।
देखियत यह भेद ॥ ३० ॥

टीकाः–मांडूक्य आदिक वेदवाक्यनमैं "ॐअक्षर ब्रह्म है" यह कह्या है । तहां व्याकरणकी रीतिसैं प्रकाशरूप सर्वकी रक्षा करताॐअक्षरका अर्थ है । ऐसा ब्रह्म है । यातैं ॐअक्षर ब्रह्मका वाचक है औ ब्रह्म वाच्य है ॥

१ जो वाच्यवाचकका आपसमैं अत्यंतभेद होवै तौ वाचक ॐअक्षरका औ वाच्यब्रह्मका मांडूक्यआदिकनमैं अभेद नहीं कहते । औ "ॐ अक्षर ब्रह्म है" इस रीतिसैं अभेद कह्या है। यातैं वाच्यवाचकके अभेदमैं वेदवचन प्रमाण हैं ॥ औ––

२ सर्वलोककी प्रतीतिसैं वाच्यवाचकका भेद सिद्ध है । काहेतैं ? अग्निआदिकपद वाणीमैं हैं औ अंगारआदिक तिनका अर्थ वाणीतैं बाहरि चुल्हिआदिकनमैं है ॥ तैसैं ॐअक्षररूप पद वाणीमैं है औ ताका अर्थ ब्रह्म वाणीमैं नहीं है किंतु वाणीमैं बाहरि कहिये अपनै महिमामैं है । यद्यपि ब्रह्म व्यापक है, यातैं वाणीमैं ब्रह्मका

अभाव नहीं। तथापि[४५०] ब्रह्ममैं वाणी है औ वाणीमैं ब्रह्म नहीं। इस रीतिसैं सर्वलोकनकूं पद वाणीमैं औ अर्थ वाणीतैं बाहरि प्रतीत होवै हैं। यातैं पदका औ अर्थका भेद लोकमैं प्रसिद्ध है ॥

१ इस रीतिसैं वाच्यवाचकके भेदमैं सर्वलोकका अनुभव प्रमाण है। औ—

२ तिन्हके अभेदमैं वेदवचन प्रमाण हैं।

यातैं पदका अर्थसैं भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध अप्रमाण नहीं। किंतु प्रमाणसिद्ध है ॥

॥ ४२१ ॥ प्रसंगतैं अन्य स्थानमैं बी भेदाभेदतादात्म्यसंबंध दिखावै हैं:—

॥ अर्धशंकरछंद ॥

जो गुन गुनी औ जाति व्यक्ती।
क्रिया अरु तद्वान।
संबंध लखि तादात्म्य इनको।
कार्य कारण सान ॥ ३१ ॥

टीका:—

१ रूपरसगंधआदिक गुण हैं, तिन्हका आश्रय गुणी कहिये है। जैसैं रूपआदिकनका आश्रय भूमि गुणी है ॥

२ अनेकनके मांहि रहै जो एकधर्म सो जाति कहिये है। जैसैं सर्व ब्राह्मणशरीरनके मांहि एक ब्राह्मणत्व है औ सर्वशूद्रमांहि शूद्रत्व है औ सर्वजीवनमांहि जीवत्व है। पुरुषनमैं पुरुषत्व है। सर्वघटनमांहि घटत्व है ॥ जाकूं लोकमांहि ब्राह्मणपना, शूद्रपना, जीवपना, पुरुषपना, घटपना कहते हैं, सोई ब्राह्मणआदिक शरीरनमाहि ब्राह्मणत्वआदिक जाति हैं॥ जातिका आश्रय जो ब्राह्मणआदिक, सो व्यक्ति कहिये है ॥

३ गमनआगमनआदिक क्रिया कहिये हैं। औ तद्वान् कहिये तिसवाला ॥ अर्थ यह, क्रियाका आश्रय ॥

इतनै पदार्थनका तादात्म्यसंबंध है। यह लखि कहिये जानि ॥ औ कारणकार्यकूं सान कहिये गुणगुणीआदिकविषै मिलाव।

अभिप्राय यह है:—

१ कारणकार्यका बी गुणगुणीकी न्यांई तादात्म्यसंबंध है।

२ गुणका औ गुणीका आपसमैं तादात्म्यसंबंध है ॥

३ जातिका औ व्यक्तिका आपसमैं तादात्म्यसंबंध है।

४ तैसैं क्रिया औ क्रियावान्का तादात्म्यसंबंध है।

कारणका औ कार्यका बी तादात्म्यसंबंध है ॥

तादात्म्य[४५१] नाम भेदसहित अभेदका है।

॥ ४५० ॥ जो न्यूनदेशमैं होवै सो व्याप्य कहिये है औ जो अधिकदेशमैं होवै सो व्यापक कहिये है। जैसैं घट न्यूनदेशमैं है यातैं व्याप्य है औ आकाश अधिकदेशमैं है यातैं व्यापक है ॥

जो व्याप्य होवै सो व्यापकके भीतर है औ जो व्यापक होवै सो व्याप्यसैं बाहिर होवै है ॥ जैसैं घट आकाशके भीतर ही है औ आकाश घटके बाहिर बी है। तैसैं वाणी ब्रह्मतैं न्यूनदेशमैं है। यातैं व्याप्य होनैतैं ब्रह्मके भीतर है औ ब्रह्म वाणीतैं अधिकदेशमैं है; यातैं व्यापक होनैतैं वाणीतैं बाहिर बी कहिये है ॥

॥ ४५१ ॥ गुणगुणीआदिक इन चारि ठिकानै भट्टकी न्यांई वेदांती बी तादात्म्यसम्बन्ध मानते हैं। परंतु वेदांतमततैं तादात्म्यसम्बन्धका लक्षण भट्टमततैं विलक्षण किया है। सो आगे नेडे ही कहियेगा। औ इतने चारि ठोर नैयायिक समवायसम्बन्ध मानते हैं ॥ नित्यसम्बन्धकूं समवाय कहै हैं ॥

यद्यपि निमित्तकारणका औ कार्यका तौ भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं है, किंतु अत्यंत भेद है तथापि उपादानकारणका औ कार्यका भेदाभेदरूप तादात्म्यही सम्बन्ध है ॥ जैसैं घटके निमित्तकारण कुलालदंडआदिक हैं, तिनका घटरूप कार्यसैं अत्यंतभेद बी है। परंतु उपादानकारण मृत्तिकापिंड औ घट-कार्यका भेदसहित अभेद है ॥

१ जो मृत्तिकापिंडसैं घट अत्यंतभिन्न होवै तौ जैसैं मृत्तिकापिंडसैं अत्यंतभिन्न तैलकी उत्पत्ति होवै नहीं । तैसैं घटकी बी उत्पत्ति नहीं होवैगी ॥ औ–

२ उपादानकारणका कार्यतैं अत्यंतअभेद होवै तौ बी मृत्पिंडसैं घटकी उत्पत्ति होवै नहीं। काहेतैं ? अपनै स्वरूपसैं अपनी उत्पत्ति होवै नहीं।

१ यातैं उपादानकारणका कार्यतैं भेदसहित अभेद है। यातैं अभेद है । अत्यंत भेदपक्षका दोष नहीं । औ–

३ भेद है, यातैं अभेदपक्षका दोष नहीं ।

इस रीतिसैं उपादानकारणका कार्यतैं भेदा-भेद युक्तिसिद्ध है ॥ औ–

१ प्रतीतिसैं बी उपादानतैं कार्यका भेदा-भेद ही सिद्ध है ॥ "यह मृत्पिंड है, यह घट है" इस रीतिकी भिन्नप्रतीतिसैं भेद सिद्ध होवै है । औ–

२ विचारतैं देखैं तौ घटके बाहरिभीतर मृत्तिकासैं भिन्न कुछ वस्तु प्रतीत होवै नहीं। किंतु मत्तिका ही प्रतीत होवै है यातैं अभेद सिद्ध होवै है ।

इस रीतिसैं उपादानकारणका कार्यतैं भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है ॥

तैसैं गुण औ गुणीका बी भेदाभेद है ॥

१ जो घटके रूपका घटसैं अत्यंतभेद होवै तौ जैसैं घटतैं पटका अत्यंतभेद है, सो पट घटके आश्रित नहीं किंतु स्वतंत्र है। तैसैं घटका रूप बी घटके आश्रित नहीं होवैगा । औ–

२ गुणगुणीका अत्यंत अभेद होवै तौ बी घटका रूप घटके आश्रित बनै नहीं। काहेतैं ? अपना आश्रय आप होवै नहीं।

यातैं गुणगुणीका भेदाभेदरूप तादात्म्य-संबंध है ॥

यह युक्ति, जाति औ व्यक्ति तथा क्रिया औ क्रियावालेके भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधमैं जाननी । औ खंडन करना जो मत ताके विषै बहुत युक्ति कहनैका प्रयोजन नहीं । यातैं और युक्ति नहीं लिखी ॥

॥ ४२२ ॥ अथ भट्टमतखंडन ॥

॥ ४२२–४२७ ॥

॥ दोहा ॥

एक वस्तुको एकमैं,
भेदअभेद विरुद्ध ।
जुक्तिजुक्त यातैं कहत,
यह मत सकल असुद्ध ॥ ३२ ॥

टीकाः–अक्षरअर्थ स्पष्ट ॥

अभिप्राय यह हैः–यद्यपि एकघटमैं अपना अभेद है औ परका भेद है तथापि–

१ जाका अभेद है ताका भेद नहीं औ

॥ ४९२ ॥ जाका शंकरदिग्विजयपैं कुमारिल-भट्ट किंवा भट्टपाद ऐसा नाम लिख्या है औ मंडन-मिश्र अरु प्रभाकर आदिक जाके शिष्य भये हैं औ जो जैमिनिकृत पूर्वमीमांसाका वार्तिककार भया है सो इहां भट्ट कहिये है ॥

जाका भेद है ताका अभेद नहीं। इस अभिप्रायतैं एकवस्तुका भेदअभेद विरुद्ध कह्या है ॥

२ तथा एक वस्तुका कहिये घटका ही अपनैमैं अभेद औ परमैं भेद है, परंतु जामैं अभेद है तामैं भेद नहीं औ जामैं भेद है तामैं अभेद नहीं। इस अभिप्रायतैं एकवस्तुका भेद अभेद एकमैं विरुद्ध कह्या है।

भेदअभेद आपसमैं विरोधी हैं। एकवस्तुमैं जाका भेद होवै ताका अभेद औ जाका अभेद होवै ताका भेद विरुद्ध है। यातैं वाच्यवाचक, गुणगुणी, जातिव्यक्ति, क्रियाक्रियावान्, उपादानकारण कार्यका जो भेदाभेदरूप तादात्म्य अंगीकार किया, सो अशुद्ध है।

॥ ४२३ ॥ पूर्व वाच्यवाचकके भेदाभेदमैं प्रमाण जो कह्याः-

१ "वाणीमैं वाचक औ बाहरि वाच्य। यातैं भेद। औ--

२ श्रुतिमैं ॐअक्षर ब्रह्म कह्या है। यातैं अभेद"

ताका समाधानः-

॥ दोहा ॥

प्रनववर्न अरु ब्रह्मको,
कह्यो जु वेद अभेद।
तामैं अन्यरहस्य कछु,
लख्यो न भट्ट सु भेद ॥ ३३ ॥

टीकाः-प्रणववर्ण कहिये ॐअक्षर अरु ब्रह्मका जो वेदमैं अभेद कह्या है, ता वेदवचनका वाच्यवाचकके अभेदमैं तात्पर्य नहीं, किंतु तामैं अन्य ही रहस्य कहिये गोप्यअभिप्राय है॥ सो भेद कहिये अभिप्राय भट्टनै लख्या नहीं ॥

जहां ॐअक्षर ब्रह्म कह्या है तिस वाक्यका ॐअक्षर औ ब्रह्मके अभेदमैं तात्पर्य नहीं है। किंतु "ॐअक्षरकूं ब्रह्मरूपकरिके उपासना करै" इस अर्थमैं तात्पर्य है। उपासना जाकी विधान करी है, ता उपास्यके स्वरूपका यह नियम नहीं हैः-जैसी उपासना विधान करी है तैसा ही उपास्यका स्वरूप होवै है। किंतु जैसा वस्तुका स्वरूप है, ताकूं त्यागिके अन्यस्वरूपकी बी ताके विषै उपासना करिये है ॥

१ जैसैं शालग्राम औ नर्मदेश्वरकी विष्णुरूप औ शिवरूपकरिके उपासना कही है तहां शंखचक्रआदिकसहित चतुर्भुजमूर्ति शालग्रामकी नहीं है औ गंगाभूषित जटाजूटडमरूचर्मकपालिकासहित भद्रामुद्रासैं शरणागतनकूं त्रिगुणरहित आत्माका उपदेश देनैवाली मूर्ति नर्मदेश्वरकी नहीं है। किंतु दोनुं शिलारूप हैं। औ शास्त्रकी आज्ञातैं तिन शिलारूपकी दृष्टि त्यागिके दोनुंविषै क्रमतैं विष्णुरूप औ शिवरूपकी उपासना करिये हैं। यातैं उपास्यके स्वरूपके आधीन उपासना नहीं होवै है। किंतु विधिके आधीन है। जैसैं शास्त्रका वचन विधान करै तैसी उपासना करै ॥

२ जैसैं छांदोग्यउपनिषद्मैं पंचाग्निविद्याप्रकरणमैं स्वर्गलोक, मेघ, भूमि, पुरुष औ स्त्री, इन पांचपदार्थनकी अग्निरूपकरिके उपासना कही है औ श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न औ वीर्य, इन पांच पदार्थनकी पंचअग्निकी आहुतिरूप उपासना कही है। तहां स्वर्गआदिक अग्नि नहीं है औ श्रद्धासोमआदिक आहुति नहीं है। तथापि वेदकी आज्ञातैं स्वर्गलोकादिकनकी अग्निरूपतैं औ श्रद्धाआदिकनकी आहुतिरूपतैं उपासना[४५३] करिये है ॥

॥ ४५३ ॥ यह पंचाग्निविद्याका सारा प्रसंग हमनै पंचदशीके ध्यानदीपके भाषाटीकाके टिप्पणविषै तथा छांदोग्यविषै लिख्या है, तहां देख लेना ॥

इस रीतिसैं ॐअक्षरकी ब्रह्मरूपकरिके उपासना कही है, तहां ॐअक्षर ब्रह्मरूप नहीं है तौ बी ब्रह्मरूपकरिके उपासना बनै है । उपासनावाक्यमैं वस्तुके अभेदकी अपेक्षा नहीं । किंतु भिन्नवस्तुकी बी अभिन्नरूपतैं उपासना होवै है ॥ औ--

विचारतैं देखिये तौ ब्रह्मका वाचक जो ॐअक्षर है, ताका तौ अपनै वाच्य ब्रह्मतैं अभेद बनै बी है । घटआदिक अन्यपदनका अपनै अपनै जडरूप अर्थसैं अभेद बनै नहीं । काहेतैं ? सर्व नामरूप ब्रह्ममैं कल्पित हैं । ब्रह्म अधिष्ठान है । ॐअक्षर बी ब्रह्मका नाम है । यातैं ब्रह्ममैं कल्पित है । कल्पितवस्तु अधिष्ठानसैं भिन्न होवै नहीं । किंतु अधिष्ठानरूप ही होवै है । यातैं ॐअक्षर ब्रह्मरूप है ॥ औ--

घटआदिकपदनका जो जडरूप अपना अर्थ सो अधिष्ठान नहीं । किंतु वाच्यसहित घटआदिकपद ब्रह्ममैं कल्पित हैं औ ब्रह्म तिनका अधिष्ठान है । यातैं ब्रह्मसैं तौ सर्वका अभेद बनै बी है । परंतु घटआदिक पदनका अपनै जडरूप वाच्यअर्थसैं अभेद किसी रीतिसैं बनै नहीं । यातैं भट्टमतमैं वाच्यवाचकका अभेद असंगत है ॥ औ--

॥ ४२४ ॥ केवलभेद जो वाच्यवाचकका अंगीकार करै हैं, तिन्हके मतमैं यह दोष भट्टनै किया हैः-जो घटपदका वाच्य घटपदस अत्यंत भिन्न होवै तौ जैसैं घटपदसैं अत्यंतभिन्न वस्त्ररूप अर्थकी प्रतीति होवै नहीं, तैसैं घटपदसैं अत्यंतभिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीति बी नहीं होवैगी औ घटपदसैं वाच्यकूं भिन्न मानिके ताकी घटपदसैं प्रतीति मानोगे तौ जैसैं घटपदतैं अत्यंतभिन्न कलशरूप अर्थकी प्रतीति होवै है, तैसैं अत्यंत भिन्नवस्त्रकी बी घटपदसैं प्रतीति हुई चाहिये । यह दोष बी जो सामर्थ्य अथवा इच्छारूप शक्ति नहीं मानैं तिन्हके मतमैं है ॥

जो शक्ति अंगीकार करैं तिन्हके मतमैं दोष नहीं । काहेतैं ? जो घटपदका वाच्य कलश औ ताका अवाच्य वस्त्रादिक, सो दोनों घटपदसैं भिन्न हैं। परंतु घटपदमैं कलशरूप अर्थके ज्ञान करनैकी शक्ति है औ अन्यअर्थके ज्ञान करनैकी शक्ति नहीं । यातैं घटपदतैं कलशरूप अर्थतैं भिन्नअर्थकी प्रतीति होवै नहीं ।

इस रीतिसैं जा पदमैं जिस अर्थकी शक्ति है, ताहि अर्थकी तिस पदसैं प्रतीति होवै है । अन्यअर्थकी नहीं । यातैं वाच्यवाचकके अत्यंतभेदमैं दोष नहीं ॥ तिनका भेदसहित अभेदरूप तादात्म्यसंबंध बनै नहीं ॥

॥ ४२५ ॥ भेद औ अभेद आपसमैं विरोधी हैं । तैसैं उपादानकारणका कार्यतैं भेदसहित अभेद नहीं, केवलभेद है ॥ औ केवल भेदमैं जो दोष कह्या है, सो नैयायिक औ शक्तिवादीके मतमैं नहीं । काहेतैं ? कारणकार्यके अत्यंतभेदमैं यह दोष हैः-जो मृत्पिंडसैं अत्यंतभिन्न घटकी उत्पत्ति होवै तौ अत्यंतभिन्न तैलकी बी मृत्पिंडसैं उत्पत्ति हुई चाहिये औ

॥ ४९४ ॥ शक्तिवादी जो सिद्धांती ताके मतमैं उपादानकारण कार्यतैं केवलभेद नहीं । किंतु अनिर्वचनीयतादात्म्य है । तथापि इहां कार्य कारणका जो केवलभेद कहा है, सो प्रौढिवाद है । प्रौढि कहिये अपनी उत्कर्षताके लिये वाद कहिये कथन, सो प्रौढिवादका स्वरूप है औ ताका लक्षण यह हैः-प्रतिवादीकी उक्ति मानिके बी स्वमतमैं दोषका परिहार करै, ताकूं **प्रौढिवाद** कहै है ॥

इहां कार्य कारणके भेदपक्षमैं भट्टमैं दोष कह्या था तिस भट्टउक्त दोषसहित पक्षकूं मानिके बी स्वमतमैं दोषका परिहार किया है । यातैं यह **प्रौढिवाद** है ॥

अत्यंतभिन्न तैलकी उत्पत्ति नहीं होवैगी, तौ अत्यंतभिन्न घटकी बी मृत्पिंडसैं उत्पत्ति नहीं हुई चाहिये ॥

॥ ४२६ ॥ यह दोष नैयायिकमतमैं नहीं । काहेतें ? सर्ववस्तुकी उत्पत्तिमैं नैयायिक प्रागभावकूं कारण मानै हैं ॥ जैसैं घटकी उत्पत्तिमैं दंड चक्र कुलाल कारण हैं, तैसैं घटका प्रागभाव बी घटका कारण है ॥ तैसैं ही सर्वका प्रागभाव सर्वकी उत्पत्तिमैं कारण है ।

१ सो घटका प्रागभाव घटके उपादानकारण मृत्पिंडमैं रहै है । अन्यमैं नहीं ॥

२ तैलका प्रागभाव तिलनमैं रहै है । अन्यमैं नहीं ॥

ऐसैं सर्वकार्यनका प्रागभाव अपनै अपनै उपादानकारणमैं रहै है ॥ जिस पदार्थमैं जाका प्रागभाव होवै तिस पदार्थसैं ताकी उत्पत्ति होवै है । अन्यकी नहीं ।

१ जैसैं मृत्पिंडमैं घटका प्रागभाव है, यातैं मृत्पिंडसैं घटकी ही उत्पत्ति होवै है। तैलकी नहीं ॥ औ---

२ तैलका प्रागभाव तिलनमैं रहै है । यातैं तिलनतैं तैलकी ही उत्पत्ति होवै है । घटकी नहीं ॥

ऐसैं सर्वकार्यमैं प्रागभाव कारण है । यातैं कारणकार्यका अत्यंतभेद माननैतैं नैयायिकमतमैं दोष नहीं ॥ औ---

॥ ४२७ ॥ सामर्थ्यरूप शक्तिवादीके मतमैं दोष नहीं। काहेतें ? मृत्पिंडमैं घटकी सामर्थ्यरूप शक्ति है। तैलकी नहीं । तिलनमैं तैलकी सामर्थ्य है । घटकी नहीं । यातैं मृत्पिंडतैं घटकी ही उत्पत्ति होवैहै। तैलकी नहीं। तैसैं तिलनतैं तैलकी ही उत्पत्ति होवैहै।घटकी नहीं॥

इस रीतिसैं उपादानकारणका औ कार्यका अत्यंतभेद माननैमैं दोष नहीं ॥ भेदाभेद असंगत है ॥ औ--

भेदमैं तथा अभेदमैं जो दोष भट्टनै कहे हैं सो दोनूं पक्षके दोष भट्टके मतमैं अवश्य रहै हैं। काहेतें ? भट्टनै भेदसहित अभेद अंगीकार किया है । यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवाः-कारणकार्यका भेद बी है औ अभेद बी है ॥

१ भेद है, यातैं भेदपक्षउक्त दोष होवैंगे । औ--

२ अभेद है, यातैं अभेदपक्षउक्त दोष होवैंगे ॥

जैसैं चोरीका दोष औ द्यूतका दोष जो एक एक करनैवालेकूं कहै हैं, सो दोऊ व्यसन जाके होवैं ताके चोरी द्यूत दोनूंके दोष होवै हैं । तैसैं गुणगुणीआदिकनके भेदाभेद माननैतैं बी भेदपक्ष औ अभेदपक्षके दोनूं दोष होवैंगे ॥ औ---

शक्तिवादीके मतमैं केवलभेद अंगीकार कियेतैं दोष नहीं । काहेतें ? गुणीमैं गुणके धारनै की शक्ति है । अन्यकी नहीं । यातैं भेदपक्षमैं जो दोष कह्या थाः-घटके रूपादिक जैसैं घटसैं भिन्न हैं तैसैं पटआदिक बी घटसैं भिन्न हैं ॥ रूपादिकनकी न्याई पटआदिक बी घटमैं रहे चाहिये । अथवा पटआदिकनकी न्याईं रूपादिक बी नहीं रहे चाहियें ॥ सो दोष शक्ति नहीं अंगीकार करै ताके मतमैं केवलभेद माननैतैं बी दोष नहीं । उलटा---

१ भट्टमतमैं भेदअभेद दोनों माननैतैं दोनूंपक्षके दोष उक्तदृष्टांतसैं हैं ॥ औ--

२ भेदअभेद विरोधीधर्मका असंभवदोष है ॥

तैसैं जातिव्यक्तिका औ क्रियाक्रियावान्का बी केवलभेद है । तथापि व्यक्तिमैं जातिके

धारनैकी शक्ति है औ क्रियावान्‌मैं क्रिया धारनैकी शक्ति है। अन्य धारनैकी शक्ति नहीं।

इस रीतिसैं उपादान औ कार्यका तथा गुण-गुणीआदिकनका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध असंगत है।

सर्वका आपसमैं भेद माननैमैं भट्टउक्तदोषनकूं शक्ति ग्रसै है ॥

यद्यपि वेदांतसिद्धांतमैं बी कार्य गुण जाति क्रियाका उपादान गुणी व्यक्ति क्रियावान्‌तैं अत्यंतभेद नहीं। किंतु तादात्म्यसंबंध ही अंगीकार किया है तथापि वेदांतमतमैं भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं। किंतु भेद औ अभेदसैं विलक्षण अनिर्वचनीयरूप तादात्म्यसंबंध है ॥

१ भेदसैं विलक्षण है, यातैं अभेदपक्षके दोष नहीं। औ--

२ अभेदसैं विलक्षण है, यातैं भेदपक्षके दोष नहीं ॥

इस रीतिसैं भेदाभेदसैं विलक्षण अनिर्वचनीय तादात्म्यसंबंध है ॥

परंतु भेदाभेदरूप तादात्म्य असंगत है। यातैं "वाचकवाच्यका भेदाभेदरूप तादात्म्य संबंध ही शक्ति है" यह भट्टअनुसारीका पक्ष समीचीन नहीं। किंतु पदके सुनतैं ही अर्थके ज्ञान करनैकी जो पदमैं सामर्थ्य सोई पदमैं शक्ति है।

इति शक्तिनिरूपण ॥

॥ ४२८ ॥ शक्यका लक्षण ॥

लक्षणाके ज्ञानमैं शक्यका ज्ञान उपयोगी है। काहेतैं? शक्यसंबंध लक्षणका स्वरूप है, शक्य जाने विना शक्यसंबंधरूप लक्षणका ज्ञान होवै नहीं। यातैं शक्यका लक्षण कहै हैं:--

॥ दोहा ॥

है पदमैं जा अर्थकी,
सक्ति सक्य सो जानि।
वाच्यअर्थ पुनि कहत तिहि,
वाचक पदहि पिछानि ॥ ३४ ॥

टीकाः--जा पदमैं जा अर्थकी शक्ति होइ, ता पदका सो अर्थ शक्य जानि औ शक्यअर्थकूं ही वाच्यअर्थ बी कहै हैं ॥

जैसैं अग्निपदमैं अंगाररूप अर्थकी शक्ति है। यातैं अग्निपदका अंगार शक्यअर्थ औ वाच्यअर्थ कहिये है ॥ औ--

वाच्यअर्थका बोधकपद वाचक कहिये है ॥

॥ ४९९ ॥ यद्यपि जहां केवलभेद होवै तहां तादात्म्य बनै नहीं। काहेतैं? अभेदप्रतीतिके विषयका नाम ही तादात्म्य है। यातैं केवलभेदके होते अभेदप्रतीति संभवै नहीं। तातैं तादात्म्यसम्बन्धमैं अभेदकी अपेक्षा है औ जहां केवल अभेद होवै तहां सम्बन्ध होवै नहीं। काहेतैं? दोनूं पदार्थनका सम्बन्ध संभवै है। अपने स्वरूपसैं अपना सम्बन्ध संभवै नहीं। यातैं सारे सम्बन्धमैं भेदकी बी अपेक्षा है॥ जातैं तादात्म्य बी सम्बन्ध है, यातैं तामैं भेदकी बी अपेक्षा है॥ इस रीतिसैं भेद अभेद दोनूं विना तादात्म्यसम्बन्ध बनै नहीं। औ भेदअभेदका एक ठिकानै रहनैका विरोध है। तथापि इहां कल्पितभेदसहित वास्तवअभेदका नाम तादात्म्यसंबंध है औ इहां भेदअभेदसैं विलक्षण तादात्म्य कह्या है। ताका यह अभिप्राय है:--

१ भेदसैं विलक्षण कहनैकारि वास्तवभेदसैं रहित कह्या, यातैं कल्पितभेदसहित जनाया। औ--

२ अभेदसैं विलक्षण कहनैकारि कल्पित अभेदसैं रहित कह्या, यातैं वास्तव अभेद जनाया।

इस रीतिसैं सिद्धांतमैं कल्पितभेदसहित वास्तवअभेद तादात्म्यसंबंध कहिये है। याहीकूं अनिर्वचनीयतादात्म्यसंबंध कहै हैं॥

॥ ४९६ ॥ याहीकूं अभिधेयअर्थ औ मुख्यअर्थ बी कहते है॥

॥ ४२९ ॥ लक्ष्यअर्थ औ लक्षणाका सामान्यरूप ॥

॥ अथ लक्षणा औ जहतीआदिक भेदलक्षण ॥

॥ कबित्त ॥

सक्यको सम्बंध जो
स्वरूप जानि लच्छनको ।
लच्छना सो भान जाको
लच्छ सु पिछानिये ॥
वाच्यअर्थ सारो त्यागि
वाच्यको संबंध जहां ।
होई परतीति तहां
जहती बखानिये ॥
वाच्यजुत वाच्यके
संबंधीका जु ज्ञान होय ।
ताहि ठौर लच्छना
अजहतीहि मानिये ॥
एक वाच्य भागत्याग
होत तहां भागत्याग ।
दूजो नाम जहती
अजहती प्रमानिये ॥ ३५ ॥

टीकाः-शक्य कहिये वाच्यअर्थका जो संबंध कहिये मिलाप सो लक्षणाका स्वरूप कहिये लक्षण जानि ॥ औ--

जा अर्थका पदकी शक्तिसैं ज्ञान न होवै किंतु लक्षणासैं भान कहिये ज्ञान होवै, सो पदका लक्ष्यअर्थ कहिये है ॥

एकपादसैं लक्षणाका स्वरूप कह्या, अब-

॥ ४३० ॥ १ जहती, २ अजहती औ ३ भागत्यागलक्षणाका लक्षण ॥ ४३०--४३२ ॥

लक्षणाके जहतीआदिक तीनि भेदनके लक्षण एकएक पादसैं कहै हैंः-"वाच्य" इत्यादिसैंः--

१जहां वाच्यअर्थ संपूर्ण त्यागिके वाच्य अर्थके संबंधीकी प्रतीति होवै तहां जहती-लक्षणा कहिये है ॥

जैसैं किसीने कह्याः--"गंगामैं ग्राम है" या स्थानमैं गंगापदकी तीरमैं जहतीलक्षणा है । काहेतैं ? गंगापदका वाच्यअर्थ देवनदीका प्रवाह है; ताके विषै ग्रामकी स्थितिका असंभव है । यातैं सारे वाच्यअर्थकूं त्यागिके तीरविषै गंगा-पदकी जहतीलक्षणा है ।

वाच्यके संबंधका नाम लक्षणा है ।

या स्थानमैं गंगापदका वाच्य जो प्रवाह ताका तीरसैं संयोगसंबंध है । यातैं--

(१) गंगापदके वाच्यका जो तीरसैं संबंध सो लक्षणा ॥ औ—

(२) वाच्य सारेका त्याग यातैं जहती लक्षणा ॥

॥ ४९७ ॥ जहतीलक्षणाका सुगम उदाहरण यह हैः—जिस वरका पिता परदेश गया होवै, सो वर श्वशुरके गृहमैं विवाहके अर्थ पितृभ्राता आदिक सम्बधिनकूं साथ लेजावै तहां वस्त्र पहिरावनेके समयमैं काहुनै कह्या कि "वरके पिताकूं वस्त्र पहिरावो" इस वाक्यमैं पिताशब्दका शक्य अर्थ जो वरका जनक सो तहां विद्यमान है नहीं । यातैं जनकरूप शक्यअर्थमैं वक्ताका तात्पर्य संभवै नहीं । किंतु पिताशब्दका शक्यअर्थ जो जनक, तिस सारेकूं त्यागिके ताके सम्बन्धी पिताके भ्राताका ग्रहण है यातैं जहती-लक्षणा है ॥

इहां जनकरूप शक्यअर्थका जो पितृभ्रातासैं

॥ ४३१ ॥ २ "वाच्यजुत" इत्यादितृतीय-पादसैं अजहतीलक्षणा दिखावैं हैं:--

वाच्यजुत कहिये वाच्यअर्थसहित । वाच्यके संबंधीका जा पदसैं ज्ञान होय, ता पदमैं अजहतीलक्षणा मानिये ॥

जैसैं किसीनै कह्याः-"शोण धावन करै है" तहां शोणपदकी लालरंगवाले अश्वविषै अजहतीलक्षणा है। काहेतें? शोण नाम लालरंगका है । यातैं शोणपदका वाच्य लालरंग है ॥ ता केवलमैं धावनका असंभव है। इस कारणतें शोणपदका वाच्य जो लालरंग, तासहित अश्वमैं शोणपदकी अजहतीलक्षणा है ॥

भाषामैं शोणकूं सोन पढ़ै हैं ॥

गुणका औ गुणीका तादात्म्यसंबंध कहै हैं ॥ औ-

लाल बी रूपका भेद होनैतें गुण है । यातैं

(१) शोणपदका वाच्य जो लालगुण, ताका गुणी अश्वके साथि जो तादात्म्यसंबंध, सो लक्षणा । औ-

(२) वाच्यका त्याग नहीं, अधिकका ग्रहण, यातैं अजहतीलक्षणा ॥

॥ ४३२ ॥ ३ "एक वाच्य" इत्यादिचतुर्थ-पादसैं भागत्यागलक्षणा बतावैं हैं:--

सहोदरतारूप सम्बन्ध है सो लक्षणा है । तिस लक्षणाकरि जानिये है जो पितृभ्रातारूप अर्थ सो पिताशब्दका लक्ष्य है ।

किंवा काहूनै कहा कि:--"कुआ चलता है" तहां कुआशब्दका शक्यअर्थ जो जलपूरित खड्डा, तामैं चलनरूप क्रियाके अभावतैं वक्ताका तात्पर्य संभवै नहीं । किन्तु कुआसम्बन्धी दो बैलसहित चर्स (चर्मपात्र) मैं वक्ताका तात्पर्य है । यातैं कुआरूप सारे शक्य (वाच्य) का त्यागकरिके ताके सम्बन्धी दोबैलसहित चर्सका ग्रहण है । यातैं जहतीलक्षणा है ॥ ऐसैं "मार्ग चलता है" औ "चूला जलता है" इत्यादि वाक्यविषै बी जहतीलक्षणा जानिलेनी ॥

इस जहतीलक्षणाका कोई ग्रन्थकारनै ऐसैं सिद्धांतमैं उपयोग दिखाया हैः-"सर्वं खल्विदं ब्रह्म (सर्व यह जगत् निश्चयकरि ब्रह्म है)" इत्यादि श्रुति-वाक्यनविषै सर्वजगत्की ब्रह्मरूपता कही है। तहां अनित्यता दृश्यता विकारिता जडता दुःखरूपता-आदिक विपरीतधर्मसहित नामरूपमय जगतकूं नित्यद्रष्टा अविकारी चेतन आनंदादिस्वरूप ब्रह्म कहना विरुद्ध है । तामैं श्रुतिवाक्यनका तात्पर्य संभवै नहीं। किन्तु बाधसामानाधिकरण्यकी रीतिसैं नाम-रूपका बाधकरिके अवशेष रहा जो ताका सम्बन्धी अधिष्ठानचेतन सो ब्रह्म है । इस अर्थमैं श्रुतिवाक्यनका तात्पर्य है । यातैं इहां सर्वशब्दका वाच्य जो नामरूप जगत्, तिस सारेका त्यागकरिके तिसके सम्बन्धी अस्ति-भाति-प्रियरूप अधिष्ठानका ब्रह्मरूप-करिके ग्रहण है । यातैं जहतीलक्षणा है ॥

इहां आरोपित नामरूपका अपनै अधिष्ठानचेतनमैं जो तादात्म्यसम्बन्ध है सो लक्षणा है औ तिसतैं जानिये है जो अधिष्ठानचेतन सो लक्ष्यअर्थ है । औ-

मुख्यसिद्धांतमैं तौ अधिष्ठानकूं छोडिके आरोपित-की प्रतीति होवै नहीं । किन्तु अधिष्ठानसैं अभिन्न होयके आरोपितकी प्रतीति होवै है । यातैं अस्तिभाति-प्रियसहित नामरूप सर्वशब्दका किंवा जगत्-शब्दका वाच्यअर्थ है । तिसमैंसैं नामरूपभागका त्यागकरिके अवशेष रहा जो अस्तिभातिप्रियरूप अधिष्ठानभाग सो ब्रह्म है । ऐसैं उक्तश्रुतिवाक्यगत सर्वपदमैं भागत्यागलक्षणा मानी है ।

इस रीतिस जहतीलक्षणाके उदाहरण कहे ॥

॥ ४९८ ॥ अजहतीलक्षणाके ये उदाहरण हैं:-

१ "काकेभ्यो दधि रक्षताम् (चीटिनके निवारण अर्थ धूपमैं दधिकूं राखिके तहां किसी किंकरकूं बिठायके स्वामीनैं कह्या कि:--काकोंतैं दधिकूं रक्षा करना)" इस वाक्यविषै काकपदका वाच्य जो वायस पक्षी, केवल तिनतैं दधिकी रक्षामैं वक्ताका तात्पर्य नहीं, किंतु दधिके भक्षक होनैकरि काकके

जहां पदनके वाच्यअर्थमध्य एकभागका त्याग होवै औ एकभागका ग्रहण होवै, तहां **भागत्यागलक्षणा** कहियेहै ॥ भागत्याग-कूंही **जहतिअजहतिलक्षणा** बी कहै हैं ॥

जैसें प्रथम देखे पदार्थकूं अन्यदेशमैं देखिके किसीनैं कह्याः-" सो यह है " तहां भागत्याग लक्षणा है । काहेतैं ?

(१) अतीतकालमैं औ अन्यदेशमैं स्थित वस्तुकूं " सो " कहै हैं । यातैं अतीत कालसहित औ अन्यदेशसहितवस्तु "सो" पदका वाच्यअर्थ है ॥ औ

(२) वर्तमानकाल समीपदेशमैं स्थितवस्तुकूं "यह" कहै हैं । यातैं वर्तमानकाल-सहित औ समीपदेशसहित वस्तु "यह" पदका वाच्यअर्थ है ॥ औ-

अतीतकालसहित अन्यदेशसहित जो वस्तु सोई वर्तमानकाल औ समीपदेशसहित है यह समुदायका वाच्यअर्थ है । सो संभवै नहीं। काहेतैं ?

(१) अतीतकाल औ वर्त्तमानकालका विरोध है ।

(२) तथा अन्यदेशका औ समीपदेशका विरोध है ।

यातैं दोनूंपदनमैं देशकाल जो वाच्यभाग ताकूं त्यागिके वस्तुमात्रमैं दोनूंपदनकी भाग-त्यागलक्षणा है ॥

सजातीय जे बिडालादिक तिनतैं बी दधिकूं रक्षा करना, ऐसा वक्ताका तात्पर्य है । यातैं काकपदके **वाच्य** जे वायसपक्षी, तिनका बिडालादिकनके साथि जो सजातीयसम्बन्ध, सो **लक्षणा** है औ वाच्यका त्याग नहीं, अधिकका ग्रहण है, यातैं **अजहतीलक्षणा** ॥

२ तैसें क्षेत्रनकी रक्षाके निमित्त मंचेपर बैठे हुये पुरुष पक्षीनके उडावने निमित्त पुकारतै होवै । तहां काहुके प्रति किसीनै कह्या कि:-"मंचे पुकारतैं हैं" तहां मंचपदकी मंचेपर बैठे पुरुषनविषै अजहतीलक्षणा है । काहेतैं ? मंचपदके वाच्य मंचमैं पुकारनेका असंभव है । यातैं मंचपदके वाच्य जो मंचे, तिनसहित पुरुष विषै मंचपदकी **अजहती-लक्षणा** है ॥ इहां मंचनपदके वाच्य जे मंचे तिनका अपनै आधेय (आश्रित) पुरुषनके साथि आधेयता-संबंध है, सो लक्षणा औ वाच्यका त्याग नहीं । अधिकका ग्रहण है । यातैं **अजहतीलक्षणा** है ।

३-४ तैसें छत्रीवाले जाते हैं औ लकडिनकूं प्रवेश करावो, इत्यादिवाक्यनविषै बी छत्रीवालेपदमैं औ लकडीपदमैं अपनै वाच्य छत्रीयुक्तपुरुष औ काष्ठसमूह तिनसहित तिनके संबंधी छत्रीरहित पुरुषनका औ लकडीके उठानैवाले पुरुषका क्रमतैं ग्रहण है । यातैं वाच्यका त्याग नहीं । अधिकका ग्रहण होनैतैं **अजहतीलक्षणा** है ।

इस रीतिसैं जहां श्रुतिवाक्यमैं आत्माको सत्‌आदिक विशेषणनके मध्य एक किंवा दोविशेषणनका उच्चारण किया होवै, तहां तिनसहित अन्यअनुक्त सर्वविशेषणनका ग्रहण होवै । यातैं तहां (तैसें ठिकाने) सिद्धांतमैं बी अजहतीलक्षणाका उपयोग है ॥

४६९ " सो यह है" इस वाक्यमैं स्थित जे "सो" औ "यह" ये दोपद, तिनका परस्पर समान (एक) विभक्तिके बलसैं एकअर्थवान्‌तारूप **सामानाधि-करण्यसंबंध** है । तिसके बलसैं तिनके वाच्यअर्थ जे परोक्षवस्तु औ अपरोक्षवस्तु, तिनकी एकता प्रतीत होवै है औ तिन दोनूं वाच्यकूं विरोधिधर्मवान् होनैतैं तिनकी एकता संभवै नहीं । यातैं इहां लक्षणा करनी योग्य है ॥ यामैं जहती किंवा अजहती लक्षणा तो बनै नहीं । किंतु भागत्यागलक्षणा बनै है । यातैं " सो " पदका वाच्य जो परोक्षतासहितवस्तु औ "यह" पदका वाच्य जो अपरोक्षतासहित वस्तु, तिन-मैंसैं परोक्षता औ परोक्षताभागका त्यागकरिके अवि-रोधिवस्तुमात्रका ग्रहण है ।

१ इहां परोक्षताअपरोक्षताभागका वस्तुके साथि **आश्रयतासंबंध** है । औ-

(महावाक्यनमैं लक्षणा ॥ ४३३-४४९ ॥)

"तत्त्वमसि" महावाक्यमैं लक्षणा दिखावनैकूं "तत्"पद औ"त्वं"पदका वाच्यअर्थ दिखावै हैं॥

॥ ४३३ ॥ "तत्" पदका वाच्यअर्थ

॥ दोहा ॥

सर्वसक्ति सर्वज्ञ विभु,
ईस स्वतन्त्र परोछ ।
मायी तत्पद वाच्य सो,
जामैं बंध न मोछ ॥ २६ ॥

टीकाः–

१ सर्वशक्ति कहिये जामैं सर्वसामर्थ्य ।
२ सर्वज्ञ कहिये सर्ववस्तुके जाननैवाला ।
३ विभु कहिये व्यापक ।
४ ईश कहिये सर्वका प्रेरक औ—
५ स्वतंत्र कहिये कर्मके आधीन नहीं । औ–
६ परोक्ष कहिये जीवके प्रत्यक्षका विषय नहीं ॥
७ मायी कहिये माया जाके अधीन ॥ औ–
८ बंधमोक्षरहित, जामैं बंध होवै ताका मोक्ष होवैहै।ईश्वर बंधरहित है । यातैं ईश्वरमैं मोक्ष बी नहीं ॥

इतनै धर्मवाला ईश्वरचेतन "तत्" पदका वाच्यअर्थ है ॥

॥४३४॥अथ "त्वं"पदवाच्यनिरूपण

॥ दोहा ॥

कहे धर्म जो ईसके,
सब तिनतैं विपरीत ।
हैं जिहि चेतन जीव तिहि,
त्वंपदवाच्य प्रतीत ॥ ३७ ॥

टीकाः–जो ईशके धर्म कहे, तिनतैं विप-

---

२ वस्तुभागका अपनै स्वरूपसैं **तादात्म्यसंबंध** है ।

यह सारे वाच्यभागका जो वस्तुके साथि आश्रयता तादात्म्यसबंध, **सो लक्षणा है।** औ–

१ परस्परविरोधि परोक्षता औ अपरोक्षतारूप **वाच्यभागका त्याग** औ—
२ अविरोधि केवलवस्तुरूप **वाच्यभागका ग्रहण है** ।

यातैं यह **भागत्यागलक्षणा** है ।

तैसैं "तत्त्वमसि" आदिक महावाक्यनमैं स्थित जे जीवईशके वाचक दो पद, तिनका बी परस्पर समानविभक्तिके बलसैं एकअर्थवान्तारूप सामानाधिकरण्यसंबंध है । **तिसके बलसैं** तिनके वाच्य जे जीवईश्वर तिनकी एकता **प्रतीत** होवै है । औ तिन दोनूंकूं विरोधिधर्मवान् होनैतैं तिनकी एकता संभवै नहीं। यातैं तहां लक्षणा अंगीकार करनै योग्य है॥ तामैं आगे कहनैके प्रकारसैं जहती किंवा अजहती-लक्षणा तौ संभवै नहीं किंतु भागत्याग ही संभवै है । यातैं सर्वमहावाक्यनमैं दो दो पदनके वाच्य जे जीव औ ईश्वर तिनमैंसै–

१ धर्मसहित उपाधिरूप **विरोधिवाच्यभागका त्याग।** औ–
२ अविरोधि **चेतनभागका ग्रहण है**

१ इहां धर्मसहित माया अविद्याका **अधिष्ठानता-संबंध है औ–**
२ चेतनभागका अपनैसैं **तादात्म्यसंबंध है ।**

यह सारे वाच्यका चेतनभागसैं जो अधिष्ठानता-तादात्म्यसंबंध, **सो लक्षणा है। औ—**

१ **विरोधिवाच्यभागका त्याग** औ–
२ अविरोधिचेतनभागका **ग्रहण है ।**

यातैं यह **भागत्यागलक्षणा** कहिये है ॥

रीतधर्म जामैं होवे, सो जीवचेतन त्वंपदका वाच्य प्रतीत कहिये जान ॥ याका भाव यह है:-

१ अल्पशक्ति ।
२ अल्पज्ञ ।
३ परिच्छिन्न ।
४ अनीश ।
५ कर्मके अधीन ।
६ अविद्यामोहित । औ-
७ बंधमोक्षवाला । औ-
८ प्रत्यक्ष । काहेतैं ? अपना स्वरूप किसीकूं परोक्ष नहीं । प्रत्यक्ष ही होवै है ॥ यद्यपि ईश्वरकूं बी अपना स्वरूप प्रत्यक्ष है, तथापि ईश्वरका स्वरूप जीवनकूं प्रत्यक्ष नहीं । यातैं परोक्ष कहिये है । औ जीवके स्वरूपकूं जीव ईश्वर दोनो जानैं हैं । यातैं[४६०] प्रत्यक्ष कहिये है ।

इतनै धर्मवाला जीवचेतन "त्वं" पदका वाच्य कहिये है ॥

॥४३५॥ वाच्यअर्थमैं एकताका विरोध औ लक्षणकी कर्त्तव्यता ॥

॥ दोहा ॥

महावाक्यमैं एकता,
हैं दोनोंकी भान ।
सो न बनै यातैं सुमति,
लच्छय लच्छनहि जाय ॥ ३८ ॥

टीका:-सामवेदके छांदोग्यउपनिषद्मैं उद्दालकमुनिनै अपनै पुत्र श्वेतकेतुकूं जगत्की उत्पत्ति करनैवाला ईश्वर बतायके कह्या:-
"तत्त्वमसि"[४६१] । ताका यह वाच्यअर्थ है:---

१ "तत्" कहिये सो, जगत्की उत्पत्ति करनैवाला सर्वशक्तिसर्वज्ञताआदिक धर्मसहित ईश्वर ।
२ "त्वं" कहिये तूं, अल्पशक्तिअल्पज्ञताआदिक धर्मवाला जीव ।
३ "असि" कहिये "है"

इहां "सो तूं है" इस कहनैतैं ईश्वरजीवकी एकता[४६२] वाच्यअर्थसैं भान होवै है सो बनै नहीं । काहेतैं ?-

१ सर्वशक्ति औ अल्पशक्ति ।
२ सर्वज्ञ औ अल्पज्ञ ।
३ विभु औ परिच्छिन्न ।
४ स्वतंत्र औ कर्मअधीन ।
५ परोक्ष औ प्रत्यक्ष ।
६ माया जाके अधीन औ अविद्यामोहित एक है ।

यह कहना "अग्नि शीतल है" इस कहनैके समान है । यातैं हे सुमती ! लक्षण ही कहिये लक्षणातैं लक्ष्यअर्थ जान । वाच्यअर्थमैं विरोध है ॥

॥ ४६० ॥ **यद्यपि** जीव अपनै निजरूप अहंपदके लक्ष्य कूटस्थमात्रकूं नहीं जानता है **तथापि** अहंपदका वाच्य जो अतःकरणविशिष्टचेतन, किंवा स्थूलसूक्ष्मसंघातविशिष्टचेतन मैं हूं ऐसैं जानता है । यातैं जीवकूं विवेकज्ञानतैं पूर्व बी विशिष्टात्मरूपसैं अपनै स्वरूपका ज्ञान प्रत्यक्ष है ॥

॥४६१॥ **"तत्त्वमसि"** इस सामवेदके छांदोग्यउपनिषद्के षष्ठअध्यायगत महावाक्यका श्वेतकेतुपुत्रके प्रति उद्दालकपितानै जिस रीतिसैं नववार उपदेश किया है, सो सारी रीति हमनै पचदशीके महावाक्यविवेकनाम पचमप्रकरणके टिप्पणविषै औ छांदोग्यउपनिषद्की भाषाटीकाविषै बी दिखाई है ॥

॥ ४६२ ॥ इहां वाच्यअर्थसैं एकताका भान कह्या । सो " तत् त्वं " इन दोपदनके सामानाधिकरण्यरूप संबंधके बलतैं कह्या है ॥ सामानाधिकरण्यका उदाहरण सहित लक्षण चतुर्थतरंगके ११२ वें दोहाके टिप्पण विषै हमनै लिख्या है ।

॥ दोहा ॥

आदि दोय नहिं संभवै,
महावाक्यमैं तात ।
भागत्याग यातैं लखहु,
है जातैं कुसलांत ॥ ३९ ॥

टीकाः—हे तात ! महावाक्यमैं आदि दोय कहिये जहती अजहती नहीं संभवैं । यातैं भागत्यागलक्षणा महावाक्यमैं लखहु कहियें जानो । जातैं कुसलात कहिये विरोधका परिहार होवै ॥

॥४३६॥ १ महावाक्यमैं जहतीका असंभव॥

॥ अथ जहतीअसंभवप्रतिपादन ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञेय जु साछी ब्रह्मचित,
वाच्यमांहि सो लीन ।
मानै जहतीलच्छना,
है कछु ज्ञेय नवीन ॥ ४०॥

टीकाः—संपूर्णवेदांतका ज्ञेय, साक्षीचेतन औ ब्रह्मचित् कहिये ब्रह्मचेतन है । सो साक्षी चेतन औ ब्रह्मचेतन त्वंपद औ तत्पदके वाच्यमैं लीन कहिये प्रविष्ट है ॥ औ—

जहतीलक्षणा जहां होवै तहां वाच्यसंपूर्णका त्यागकरिकै वाच्यका संबंधी अन्यज्ञेय होवै है । यातैं महावाक्यमैं जहतीलक्षणा मानैं तौ वाच्यमैं आया जो चेतन, तासैं नवीन कहिये अन्यकछु ज्ञेय होवैगा ॥ चेतनसैं भिन्न असत् जडदुःखरूप है ताके जाननैतैं पुरुषार्थ सिद्ध होवै नहीं । यातैं महावाक्यमैं जहती लक्षणा नहीं ॥

॥ ४३७ ॥ २ महावाक्यमैं अजहतिका असंभव ॥

॥ अथ अजहतीलक्षणाअसंभव-प्रतिपादन ॥

॥ दोहा ॥

वाच्यहु सारो रहत है,
जहां अजहती मीत ।
वाच्यअर्थ सविरोध यूं,
तजहु अजहती रीत ॥ ४१ ॥

टीकाः—हे मीत प्रिय ! जहां अजहतीलक्षणा होवै । तहां वाच्यअर्थ सारे रहै है औ वाच्यसैं अधिकका ग्रहण होवै है॥महावाक्यनमैं अजहती लक्षणा अंगीकार करैं तौ वाच्यअर्थ सारा रहैगा औ वाच्यअर्थ महावाक्यनमैं सविरोध कहिये विरोधसहित है । विरोध दूरि करनैकूं लक्षणा अंगीकार करी है ॥ अजहती मानैंतैं महावाक्यनमैं विरोध दूरि होवै नहीं । यातैं अजहतीकी रीति महावाक्यनमैं तजहु ॥

॥ ४३८ ॥ ३ महावाक्यमैं भागत्यागका अंगीकार ॥

॥ अथ भागत्यागलक्षणाप्रकार ॥

॥ दोहा ॥

त्यागि विरोधीधर्म सब,
चेतन सुद्ध असंग ।
लखहु लच्छनातैं सुमति,
भागत्याग यह अंग ॥ ४२ ॥

टीकाः—हे अंग ! हे प्रिय ! तत्पदका वाच्य ईश्वर औ त्वंपदका वाच्य जीव तिन्हके आपसमैं

विरोधीधर्म त्यागिकै शुद्धअसगचेतन लक्षणातैं लखहु । यह भागत्यागलक्षणा है ॥ या स्थानमैं यह सिद्धांत हैः-ईश्वरजीवका स्वरूप अनेकप्रकारका अद्वैतग्रंथनमैं कह्या है ॥

१ विवरणग्रंथमैं
 (१) अज्ञानमैं प्रतिबिंब जीव औ—
 (२) बिंब ईश्वर कह्या है ॥ औ—

२ विद्यारण्यके मतमैं
 (१) शुद्धसत्त्वगुणसहित मायामैं आभास ईश्वर औ—
 (२) मलिनसत्त्वगुणसहित जो अंतःकरणका उपादानकारण अविद्याका अंश, तामैं आभास जीव कह्या है॥

॥ ४३९॥ जीवईश्वरके स्वरूपमैं पंचदशीकार तथा विवरणकारादिकका मत। (आभास, प्रतिबिंब औ अवच्छेदवाद) ॥ ४३९–४४३ ॥

यद्यपि पंचदशीग्रंथमैं विद्यारण्यस्वामीनै अंतःकरणमैं आभास जीव कह्या है, तथापि अंतःकरणके आभासकूं जीव मानै तौ सुषुप्तिमैं अंतःकरण रहै नहीं । यातैं जीवका बी अभाव हुवा चाहिये । औ प्राज्ञरूप जीव सुषुप्तिमैं रहै है। यातैं विद्यारण्यस्वामीका यह अभिप्राय हैः—

अंतःकरणरूप परिणामकूं प्राप्त जो होवै अविद्याका अंश, तामैं आभास जीव है ॥ सो अविद्याका अंश सुषुप्तिमैं बी रहै है। यातैं प्राज्ञका अभाव नहीं ॥ औ—

केवलआभास[४६३] ही जीव ईश्वर नहीं है। किंतु
 १ मायाका अधिष्ठानचेतन औ मायासहित आभास ईश्वर है ॥ औ—
 २ अविद्या अंशका अधिष्ठानचेतन औ अविद्याके अंशसहितआभास जीव है ॥
 १ ईश्वरकी उपाधिमैं शुद्धसत्त्वगुण है। यातैं ईश्वरमैं सर्वशक्तिसर्वज्ञतादिक धर्म हैं । औ—
 २ जीवकी उपाधिमैं मलिनसत्त्वगुण है। यातैं जीवमैं अल्पशक्तिअल्पज्ञतादिक धर्म हैं ॥

याकूं आभासवाद कहै हैं ॥ औ—

॥ ४४० ॥ विवरणके मतमैं यद्यपि जीव ईश्वर दोनूंकी उपाधि एक ही अज्ञान है। यातैं दोनूं अल्पज्ञ हुये चाहिये, तथापि जा उपाधिमैं प्रतिबिंब होवै, ताका यह स्वभाव होवै हैः-प्रतिबिंबमैं अपनै दोष करै है। बिंबमैं नहीं ॥

जैसैं दर्पणस्वरूप उपाधिमैं मुखका प्रतिबिंब होवै है। ग्रीवामैं स्थित मुख बिंब है॥ तहां दर्पणरूप उपाधिके श्याम पीत लघुतादिक अनेक दोष प्रतिबिंबमैं भान होवै हैं औ ग्रीवामैं स्थित जो बिंब है, तामैं भान होवै नहीं ॥ **तैसैं** दर्पणस्थानी जो अज्ञान, तिसविषै

॥ ४६३ ॥ केवलचिदाभास ही जीवईश्वर नहीं है। काहेतैं ? अपनै तादात्म्यसंबंधकरि अधिष्ठानसैं अभिन्न होयके जो प्रतीत होवै सौ **आरोपित** कहिये है ॥ अरोपितकी अधिष्ठानसैं भिन्नताकारिके प्रतीति होवै नहीं । **जैसैं** रज्जुविषै सर्प आरोपित है यातैं ताकी रज्जुसैं भिन्नताकारिके प्रतीति होवै नहीं। किन्तु रज्जुसैं अभिन्न होयके। औ रज्जुके स्वरूपकूं ढांपिके सर्पकी प्रतीति होवै है **तैसैं** मायाअविद्यामैं जे आभास हैं वे बी जातैं आरोपित हैं यातैं तिनकी अपनै अधिष्ठानकूटस्थ औ ब्रह्मसैं भिन्नताकारिके प्रतीति संभवै नहीं । किन्तु तिन दोनूंकी अपनै अधिष्ठानकूटस्थ औ ब्रह्मसैं तादात्म्यसंबंधरूप एकताकूं पायके तिनके स्वरूपकूं ढांपिके ही प्रतीति होवै है यातैं अधिष्ठानचेतन औ उपाधिसहितचिदाभास जीव किंवा ईश्वर है ॥

प्रतिबिंबरूप जीवमैं अज्ञानकृत अल्पज्ञतादिक दोष हैं औ बिंबरूप ईश्वरमैं नहीं । यातैं—

१ ईश्वरमैं सर्वज्ञतादिक हैं । औ—

२ जीवमैं अल्पज्ञतादिक हैं ॥

॥ ४४१ ॥ आभास औ प्रतिबिंबका इतना भेद हैः-आभासपक्षमैं तौ आभास मिथ्या है औ प्रतिबिंबवादमैं प्रतिबिंब मिथ्या नहीं । किंतु सत्य है । काहेतैं ?

प्रतिबिंबवादीका यह सिद्धांत हैः-दर्पणमैं जो मुखका प्रतिबिंब है, सो मुखकी छाया नहीं । काहेतैं ?

१ छायाका यह स्वभाव हैः-जिस दिशामैं छायावान्के मुख औ पृष्ठ होवैं, उस दिशामैं छायाके मुख औ पृष्ठ होवै हैं ॥ औ—

२ दर्पणके प्रतिबिंबके मुख पीठि बिंबसैं विपरीत होवै हैं । यातैं दर्पणमैं छायारूप प्रतिबिंब नहीं । किंतु दर्पणकूं विषय करनैवास्तै नेत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरणकी वृत्ति, सो दर्पणकूं विषयकरिके तत्काल ही दर्पणसैं निवृत्त होयके ग्रीवामैं स्थित मुखकूं विषय करै है ॥

जैसैं भ्रमणके वेगसैं अलातका चक्र भान होवै है औ चक्र नहीं, तैसैं दर्पण औ मुखके विषय करनैमैं वृत्तिके वेगतैं मुख दर्पणमैं स्थित भान होवै है औ मुख ग्रीवाविषै ही स्थित है । दर्पणमैं नहीं औ छाया बी नहीं । वृत्तिके वेगसैं जो दर्पणमैं मुखकी प्रतीति सोई प्रतिबिंब है ॥

इस रीतिसैं दर्पणरूप उपाधिके संबंधसैं ग्रीवामैं स्थित मुख ही बिंबरूप औ प्रतिबिंबरूप भान होवै है औ विचारसैं बिंबप्रतिबिंबभाव है नहीं । तैसैं अज्ञानरूप उपाधिके संबंधसैं असंगचेतनमैं बिंबस्थानी ईश्वरभाव औ प्रतिबिंबस्थानी जीवभाव प्रतीत होवै है औ विचारदृष्टिसैं ईश्वरता जीवता है नहीं ।

अज्ञानतैं जो चेतनमैं जीवभावकी प्रतीति, सोई अज्ञानमैं प्रतिबिंब कहिये है । यातै बिंबपना औ प्रतिबिंबपना तौ मिथ्या है औ स्वरूपसैं बिंबप्रतिबिंब सत्य है । काहेतैं ? बिंबप्रतिबिंबका स्वरूप दृष्टांतविषै तौ मुख है औ दार्ष्टांतविषै चेतन है । सो मुख औ चेतन सत्य है ॥

१ इस रीतिसैं प्रतिबिंबकूं स्वरूपतैं सत्य होनैतैं सत्य कहै हैं । औ—

२ आभासका स्वरूप छाया मानै हैं, यातैं मिथ्या है ॥

यह आभासवाद औ प्रतिबिंबवादका भेद है ॥ औ—

॥४६४॥ यद्यपि प्रतिबिम्बवादमैं शुद्धब्रह्म ही ईश्वर है । तामैं सर्वज्ञताआदिधर्म बी संभवै नहीं, तथापि जीवके अल्पज्ञताआदिकधर्मकी अपेक्षाकरिके शुद्धब्रह्ममैं बिंबपना, ईश्वरपना, सर्वज्ञपना । इत्यादिधर्मनका आरोप होवै है । वास्तवतैं जीव ईश्वर दोनूं शुद्धब्रह्मरूप हैं । तिसमैं किसी धर्मका संभव नहीं ॥

॥ ४६५ ॥ इहां कछुक विशेष हैः- जलपूरित अनेक घटनविषै सूर्यके अनेक प्रतिबिंब (आभास) होवै हैं । तिनमैं—

१ एकएक प्रतिबिंब व्यष्टि कहिये है । औ—

२ सर्व मिलिके एक समष्टिप्रतिबिंब कहिये है ।

तिनके मध्य जिस प्रतिबिंबका जलके अभावकरिके अभाव होवै तिसका सूर्यसैं अभेद कहिये है । अन्योंका नहीं । ऐसैं जब सर्वप्रतिबिंबनका अभाव होवै तब सो समष्टिप्रतिबिंबका सूर्यसैं अभेद कहिये है ।

तैसैं या उक्तआभासवादीके पक्षमैं—

१ अनेकबुद्धि वा अविद्याअंशरूप जलविषै अनेक ब्रह्मके प्रतिबिंब (आभास) हैं । तिनमैं एक एक प्रतिबिंब व्यष्टि कहिये है । औ—

॥ ४४२ ॥ कितनै ग्रंथनमैं-

१ शुद्धसत्त्वगुणसहित मायाविशिष्टचेतन ईश्वर कहिये है ॥ औ-

२ मलिनसत्त्वगुणसहित अंतःकरणका उपादान अविद्याके अंशविशिष्टचेतन जीव कहिये है ॥

२ सर्व मिलिके एक **समष्टिप्रतिबिंब** कहिये है तिनमैं

१ अनेक व्यष्टिप्रतिबिंब **जीव** है। औ-

२ एक समष्टिप्रतिबिंब **ईश्वर** है ॥

तिनके मध्य जिस जीवका उपाधिके अभावतैं अभाव होवै, तिसका ब्रह्मके साथि उपचारमात्र अभेद कहिये है।

ऐसैं जब सर्वजीवनका अभाव होवैगा, तब सो समष्टिप्रतिबिंबरूप ईश्वरका विदेहमोक्ष होवैगा।

१ या पक्षमैं जगत् औ ब्रह्मके किंवा जीवब्रह्मके अभेदके बोधक श्रुतिवाक्यनमैं भागत्यागलक्षणाका स्वीकार नहीं। किंतु "गंगामैं ग्राम है" इस वाक्यकी न्याई सारे वाच्यका त्याग औ ताके संबंधि ब्रह्मके ग्रहणतैं जहतीलक्षणाका स्वीकार है। यह अधिष्ठानकूटस्थकूं छोड़िके केवलबुद्धिसहित वा अविद्यासहित आभासकूं जीव माननैहारे कोई वेदांतके एकदेशी आभासवादीका मत है ॥

२ या पक्षमैं पुरुषार्थ (मोक्ष) के निमित्त प्रयत्न करनैवाले जीवका मोक्षदशाविषै अभाव होवै है। यातैं "धनवृद्धिकी वांछासैं व्यापार करनैवालेका मूलधन बी नष्ट भया" इसकी न्यांई मोक्षकी प्राप्तिके निमित्त प्रयत्न करनैवाले जीवका स्वरूप नष्ट होवैगा। यह अनर्थ जानिके या सिद्धांतमैं किसी मुमुक्षुकी प्रवृत्ति नहीं होवैगी।

यातैं यह पक्ष समीचीन नहीं ॥ औ--

पंचदशी तथा विचारसागरआदिक ग्रंथनमैं-

१ अधिष्ठानकूटस्थसहित साभासबुद्धि वा अविद्याकूं जीव मान्या है। औ-

२ अधिष्ठानब्रह्मसहित साभासमायाकूं ईश्वर मान्या है।

यामैं वाच्यभागके एकदेशके त्यागतैं औ एकदेशके ग्रहणतैं महावाक्यआदिकस्थलमैं सिद्धांतसंमत भागत्यागलक्षणाका ही स्वीकार है ॥

या पक्षमैं मुख्य आकाशके दृष्टांतका ही अंगीकार है। तो आकाशके दृष्टांतका सविस्तर वर्णन पंचदशीके चित्रदीपमैं औ विचारसागरके चतुर्थतरंगमैं किया है ॥

या पक्षकी रीतिसैं-

१ आकाशके किंवा मुखआदिकके प्रतिबिंबका अधिष्ठानरूप **उपादान** घटाकाश औ दर्पण-आदिक हैं। औ-

२ **परिणामीउपादान** जल औ अविद्याआदिक है। औ-

३ **निमित्तकारणं** महाकाश अरु मुखआदिक बिंब औ उपाधिकी संनिधि है ॥

तिस प्रतिबिंबका बाधकारिके अपनै बिंब मुखआदिकनसैं अभेद होवै है। **तथापि** जहांलगि जल दर्पण-आदिक औ बिंबकी सन्निधिरूप निमित्त होवैं तहांलगि बाधित प्रतिबिंबकी बी अनुवृत्ति (प्रतीति) होवै है। याहीकूं **बाधितानुवृत्ति** कहै हैं ॥

तैसैं-

१ चिदाभासरूप जीवका अधिष्ठानरूप **उपादान** कूटस्थ है औ-

२ **परिणामीउपादान** नानाबुद्धि किंवा अज्ञान-अश हैं औ-

३ प्रारब्ध **निमित्तकारण** है।

तिनमैंसैं जो चिदाभास वा बुद्धि वा अज्ञानअंशरूप उपाधिसहित अपनै स्वरूपका बाधकरिके अहंआदिक जीववाचकपदका लक्ष्य अर्थ जो कूटस्थअधिष्ठानरूप अपना निजरूप ताका अभिमानकारिके तिस अहंपदके लक्ष्य कूटस्थकी बिंबरूप ब्रह्मके साथि पूर्वसिद्ध एकता है, ताकूं जानता है सो मुक्त होवै है। दूसरे बद्ध हैं ॥

यद्यपि उक्त "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञानके समयमैं ही अविद्यारूप उपादानके नाशकारि ताके कार्य

याकूं **अवच्छेदवाद** कहै हैं ॥

४६६ सर्व ही वेदांतकी प्रक्रिया अद्वैतआत्माके जनावनैकूं है।यातैं जौनसी प्रक्रियातैं जिज्ञासुकूं बोध होवै, सोई ताकूं समीचीन है । तथापि वाक्यवृत्ति औ उपदेशसहस्रीमैं भाष्यकारनै आभासवाद ही लिख्या है । यातैं आभासवाद ही मुख्य है ॥ ताकी रीतिसैं–

॥ ४४३ ॥ चारिमहावाक्यनमैं भागत्यागका प्रदर्शन ॥

१ (१) माया । औ–
(२) मायामैं आभास । औ–
(३) मायाका अधिष्ठान जो चेतन ।

सो सर्वशक्तिसर्वज्ञतादिकधर्मसहित ईश्वर है सोई तत्पदका वाच्य है ॥ औ–

२ (१) व्यष्टिअविद्या ।
(२) तामैं आभास । औ–
(३) ताका अधिष्ठानचेतन ।

अल्पशक्तिअल्पज्ञतादिकधर्मसहित जीव है। सो त्वंपदका वाच्य है ॥

तिन्ह दोनूंकी "तत्त्वमसि" वाक्यनै एकता बोधन करी । सो बनै नहीं । यातैं–

१ आभाससहित माया औ मायाकृत सर्वशक्तिसर्वज्ञतादिकधर्म, इतनै वाच्यभागकूं त्यागिके चेतनभागविषै तत्पदकी भागत्यागलक्षणा ॥

२ तैसैं आभाससहितअविद्याअंश औ

जगत्सहित चिदाभासका बाध होवै है, तथापि जहांलगि प्रारब्धरूप निमित्त है, तहांलगि बाध भये (मिथ्या जानै) देहादिजगत्सहित चिदाभासकी अनुवृत्ति (प्रतीति) होवै है ॥ जब प्रारब्धका अंत होवै, तब तिस प्रतीतिका अभाव होवै है । सोई ताका **विदेहमोक्ष** है । पूर्वउक्तपक्षतैं यह पक्ष उत्तम है ॥ औ–

बिंबप्रतिबिंबवादविषै–

१ प्रतिबिंबका अधिष्ठानरूप **उपादान** बिंब है औ–
२ **परिणामीउपादान** मुखआदिकबिंबका अज्ञान है ।
३ ताका **निमित्तकारण** दर्पण औ बिंबकी सन्निधिआदिक है ।

बिंबप्रतिबिंबके अभेदज्ञानतैं प्रतिबिंबभावकी निवृत्ति होवै है। परंतु जहांलगि बिंब औ दर्पणकी सन्निधिरूप उपाधि (निमित्त) होवै तहांलगि मिथ्या जानै। प्रतिबिंबभावरहित प्रतिबिंबके स्वरूपकी प्रतीति होवै है । जब दर्पणआदिकका अपसरण होवै तब प्रतिबिंबकी प्रतीतिका अभाव होवै है ।

१ **तैसैं** एक ही अज्ञानसैं शुद्धब्रह्मरूप बिंबमैं जीवरूप प्रतिबिंबभाव प्रतीत होवै है, ताका **उपादान** अज्ञान है औ **अधिष्ठान** शुद्धब्रह्म है ।

२ **निमित्तकारण** अदृष्ट है । जब तिस प्रतिबिंबकूं अपनै बिंबब्रह्मसैं आपकी एकता प्रतीत होवै, तब ताकी प्रतिबिंबभाव (जीवभाव) निवृत्ति होवै है । परंतु जहांलगि प्रारब्धरूप उपाधि (निमित्त) है, तहांलगि बाधित भये जगत्सहित इस जीवके जीवभावरहित स्वरूपकी प्रतीति होवै है । जब प्रारब्धका अंत होवैगा तब तिस प्रतीतिका अभाव होयके केवलशुद्धब्रह्म अवशेष रहैगा, सोई ताका **विदेहमोक्ष** है ।

या पक्षमैं स्वप्नकी न्यांई मुख्य एकजीवका अंगीकार है औ नानाजीव जो प्रतीत होवै हैं, वे जीवाभास हैं । यामैं तीन सत्ताका अंगीकार है । यातैं यह बी **व्यावहारिकपक्ष** कहिये है । परंतु अन्यसर्वव्यावहारिक पक्षनविषै यह पक्ष उत्तम है ॥

इस रीतिसैं आभासवाद औ प्रतिबिंबवादका भेद है ॥

॥ ४६६ ॥ इहां सर्वशब्दकरि कार्यकारणउपाधिवाद, अवच्छिन्नअनवच्छिन्नवाद औ दृष्टिसृष्टिवादआदिकपक्षनका ग्रहण है । वेदांतके अनेकपक्षनका अनुवाद अप्पय्यदीक्षितकृत सिद्धांतलेशमैं तथा वृत्तिप्रभाकरके अष्टमप्रकाशमैं किया है ॥

अविद्याकृत अल्पशक्तिअल्पज्ञतादिकधर्म जो त्वंपदका वाच्यभाग, ताकूं त्यागिके चेतनभागमैं त्वंपदकी भागत्याग-लक्षणा है ॥

इस रीतिसैं भागत्यागलक्षणातैं–

१ ईश्वर औ जीवके स्वरूपमैं लक्ष्य जो चेतनभाग, तिनकी एकता "तत्त्वमसि[४६७]" महावाक्य बोधन करै है ॥

२ तैसैं " अयम् आत्मा[४६८] ब्रह्म " इस महावाक्यमैं–

(१) आत्मापदका जीव वाच्य है। औ–

(२) ब्रह्मपदका ईश्वर वाच्य है॥ ब्रह्मपदका शुद्ध वाच्य नहीं । ईश्वर ही वाच्य है। यह चतुर्थतरंगमैं प्रतिपादन करि आये हैं ॥

पूर्वकी न्यांई दोनूं पदनकी लक्षणा है।

(३) लक्ष्यअर्थ परोक्ष नहीं। इस अर्थकूं जनावनैकूं अयंपद है ॥

" अयं" कहिये सबके [४६९]अपरोक्ष आत्मा ब्रह्म है। यह वाक्यका अर्थ है ॥

३ " अहं ब्रह्मास्मि[४७०] " इस महावाक्यमैं

(१) अहंपदका जीव वाच्य है । औ–

(२) ब्रह्मपदका ईश वाच्य है ॥

दोनों पदनकी चेतनभागमैं लक्षणा है ॥

" मैं ब्रह्म हूं " यह वाक्यका अर्थ है ॥

४ "प्रज्ञानमानंदं[४७१] ब्रह्म" इस महावाक्यमैं–

(१) प्रज्ञानपदका जीव वाच्य है।

(२) ब्रह्मपदका ईश है।

पूर्वकी न्यांई लक्षणा।

(३) लक्ष्य जो ब्रह्मात्मा, सो आनदगुणवाला नहीं किंतु आनंदरूप है। इस अर्थके जनावनैकूं आनंदपद है।

आत्मासैं अभिन्नब्रह्म आनंदरूप है यह वाक्यका अर्थ है॥

जैसैं महावाक्यनमैं भागत्यागलक्षणा है। तैसैं अन्यवाक्यनमैं सत्य, ज्ञान, आनंदपद बी शुद्धब्रह्मकूं भागत्यागलक्षणासैं बोधन करैहै। शक्तिसैं नहीं। काहेतें ? शुद्धब्रह्म किसीपदका वाच्य नहीं। यह सिद्धांत है। यातैं सारे पद विशिष्टके वाचक हैं औ शुद्धके लक्षक हैं॥

१ मायाकी आपेक्षिक सत्यता औ चेतनकी निरपेक्षिक सत्यता मिली हुई सत्यपदका वाच्य है। निरपेक्षिक सत्य लक्ष्य है ॥

२ बुद्धिवृत्तिरूप ज्ञान औ स्वयंप्रकाशज्ञान, दोनूं मिलै तौ ज्ञानपदका वाच्य औ स्वयंप्रकाशभाग लक्ष्य ॥

॥ ४६७ ॥ यह उपदेशवाक्य कहिये है । इसतैं भिन्न तीन अनुभववाक्य कहिये हैं ॥

॥ ४६८ ॥ यह अथर्वणवेदकी मांडूक्यउपनिषद्गत महावाक्य है । याका विशेषप्रसंग हमनै श्रीपंचदशीके महावाक्यविवेकके टिप्पणविषै किंवा मांडूक्यकी भाषाटीकाविषै लिख्या है ॥

॥ ४६९ ॥ अपरोक्ष दो प्रकारका है ।

१ एक तौ स्वयंप्रकाश होनैकरि बुद्धिरूप ज्ञानका विषय जो आत्माका स्वरूप, सो अपरोक्ष है ।

२ दूसरा "मैं स्वप्रकाश आत्मा हूं" इस रीतिसैं बुद्धिसैं अवलोकन करना, सो बी अपरोक्ष कहिये है ॥

तिनमैं प्रथमअपरोक्ष नित्य (सदाविद्यमान) है औ दूसरा (बुद्धिवृत्तिरूप) अपरोक्ष अनित्य (कदाचित् होनैवाला) है ॥

॥ ४७० ॥ यह यजुर्वेदकी बृहदारण्यक उपनिषद्गत महावाक्य है । याका विशेषप्रसंग हमनै श्रीपंचदशीके महावाक्यविवेकके टिप्पणविषे तथा श्रीबृहदारण्यककी भाषाटीकाविषै लिख्या है ॥

॥ ४७१ ॥ यह ऋग्वेदकी ऐतरेयउपनिषद्का महावाक्य है । याका विशेषप्रसंग हमनै श्रीपंचदशीके महावाक्यविवेकके टिप्पणमैं लिख्या है ॥

३ विषयसंबंधजन्य सुखाकार सात्त्विक अंतःकरणकी वृत्ति औ परमप्रेमका आस्पद स्वरूपसुख, इन दोनूं मिलै आनंदपदका वाच्य औ वृत्तिभागकूं त्यागिके स्वरूपभाग लक्ष्य।

इस रीतिसैं सर्वपदनकी शुद्धमैं लक्षणा संक्षेपशारीरकमैं प्रतिपादन करी है ॥

॥ ४४४ ॥ ॥ अथ उक्तअर्थ संग्रह ॥

॥ कवित्त ॥

"गंगामैं ग्राम" जहति-
लच्छना या ठौर लखि,
"सोन धावै" लच्छना
अजहति जनाइये।
"सोई यह वस्तु" इहां
लच्छना है भागत्याग,
दूजो नाम जहति
अजहति सुनाइये ॥
"तत्त्वमसि" आदि महा-
वाक्यनमैं भागत्याग,
लच्छना न जहति
अजहति बताइये।
ब्रह्म काहु पदको न
वाच्य यूं बखानै वेद,
यातैं सर्वपदनमैं
रीति यूं लखाइये ॥ ४३ ॥
मायामांही सत्यता जु
औरभांति भाखियत,
ब्रह्ममांहि सत्यता सु
औरभांति भाखिये।
दोउ मिली सत्यपद
वाच्य मुनि भाखत हैं,
ब्रह्ममांहि सत्यता सु
लच्छयभाग राखिये ॥
बुद्धिवृत्ति संवित द्वै
मिले ज्ञानपद वाच्य,
संवितस्वरूप लच्छय
बुद्धिवृत्ति नाखिये।
आत्म औ विषैको सुख
वाच्यपद आनंदको,
विषैसुख त्यागि आत्म-
सुख लच्छ आखिये ॥ ४४ ॥

४४५ प्रश्नः-दोनूं पदनमैं लक्षणा मानना निष्फल है ॥

महावाक्यनमैं विरोध दूरि करनैंकूं दोनूंपदनमैं लक्षणा अंगीकार करी ॥ तहां कोई कहै हैः--एकपदमैं लक्षणा अंगीकार कियेसैं ही विरोध दूरि होवै है। दोयपदमैं लक्षणा माननैका प्रयोजन नहीं ॥

॥ दोहा ॥

एकहि पदमैं लच्छना,
मानै नहीं विरोध।
दोयपदनमैं लच्छना,
निष्फल कहत सुबोध ॥ ४५ ॥

टीकाः--सुबोध कहिये सुज्ञ। दोयपदनमैं लक्षणा निष्फल कहते हैं। काहेतें? एक ही पदमैं लक्षणा माननैतैं विरोध दूरि होय जावै है ॥ याका भाव यह हैः--यद्यपि सर्वज्ञतादिविशिष्टकी अल्पज्ञतादिविशिष्टके साथि एकता

नहीं बनै है। तथापि एकपदका लक्ष्य जो शुद्ध, ताकी विशिष्टके साथि एकता बनै है ॥

दृष्टांत–जैसैं––

१ "शूद्रमनुष्य ब्राह्मण है" इस रीतिसैं शूद्रत्वधर्मविशिष्टमनुष्यकी ब्राह्मणत्व-धर्मविशिष्टके साथि एकता कहना विरुद्ध है। औ––

२ "मनुष्य ब्राह्मण है" इस रीतिसैं शूद्रत्वधर्मरहित शुद्धमनुष्यकूं ब्राह्मणत्व-विशिष्टता कहनैमैं विरोध नहीं ॥

तैसैं––

१ अल्पज्ञतादिधर्मविशिष्टचेतनकी औ सर्वज्ञतादिधर्मविशिष्टकी एकता विरुद्ध बी है।

२ परंतु जीववाचकपद औ ईशवाचकपद-की चेतनमैं लक्षणाकरिके चेतनमात्रकी सर्वज्ञतादि-धर्म-विशिष्टके साथि वा अल्पज्ञतादिविशिष्टके साथि एकता कहनैमैं विरोध नहीं ॥

यातैं दोपदमैं लक्षणा माननैमैं कोई युक्ति नहीं ॥

(गतप्रश्नका उत्तर ॥ ४४६–४५० ॥)

॥४४६॥ दोनूं पदनमैं लक्षणा सफल है ॥

॥ समाधान ॥ कबित्त ॥

लच्छना जो कहै एक-
पदमांहि ताकूं यह,
पूछि दोयपदनमैं
कौनसैमैं लच्छना ?।
प्रथम वा द्वितीयमैं
कहै ताहि भाखि यह,
वाक्यनको होयगो
विरोध मूढलच्छना ॥
तीनि वाक्यमध्य जीव-
वाचक प्रथमपद,
"तत्त्वमसि" यामैं आदि-
पद ईसलच्छना ।
प्रथम वा द्वितीयको
नेम नहिं बनै यातैं,
भाखत द्वैपदनमैं
लच्छना सुलच्छना ॥ ४६ ॥

टीका:–जो एकपदमैं लक्षणा अंगीकार करै ताकूं यह पूछि:–दोनूं पदनमैंसैं कौनसै पदमैं लक्षणा है ?

जो ऐसै कहै:–

१ सर्वमहावाक्यनके प्रथमपदमैं लक्षणा है। द्वितीयमैं नहीं ॥

२ यद्वा द्वितीयपदमैं लक्षणा सर्ववाक्यनमैं है। प्रथमपदमैं नहीं ॥

ताकूं हे शिष्य ! यह भाखि:––हे मूढ-लक्षण ! प्रथम वा द्वितीयपदमैं जो नेमतैं लक्षणा सर्ववाक्यनमैं मानैं तौ वाक्यनका परस्पर-विरोध होवैगा। काहेतैं ?–

१ तीनवाक्य मध्य कहिये

(१) "अहं ब्रह्मास्मि"।

(२) "प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म"।

(३) "अयमात्मा ब्रह्म"।

इन तीन वाक्यनमैं जीववाचकपद प्रथम कहिये पूर्व है ॥ औ–

(४) "तत्त्वमसि" या वाक्यमैं आदिपद कहिये प्रथमपद, ईशलक्षण कहिये ईश्वरका बोधक है ॥

(१) जो पूर्वपदमैं लक्षणा सारै मानैं तौ तीनिवाक्यनका तौ यह अर्थ होवैगाः-चेतन सर्वज्ञतादि विशिष्टअंश सारे ईश्वररूप हैं ॥ औ-

(२) "तत्त्वमसि" वाक्यका यह अर्थ होवैगाः-चेतन अल्पज्ञतादिविशिष्ट-संसारी जीवरूप है । काहेतैं ? तीनि वाक्यनमैं पूर्व जीववाचक पद हैं । ताकी चेतनभागमैं लक्षणा । औ द्वितीय जो ईश्वरवाचकपद, ताके वाच्यका ग्रहण । औ "तत्त्वमसि" मैं आदि ईशवाचकपद, ताकी चेतनभागमैं लक्षणा औ द्वितीय जीववाचकपद, ताके वाच्यका ग्रहण ॥

इस रीतिसैं लक्षणाका नेम करै तौ वाक्यनका परस्परविरोध होवैगा ।

तैसैं सर्ववाक्यनके द्वितीयपद कहिये आगिले पदमैं लक्षणा मानैं । तौ--

(१) तीनि वाक्यनमैं पूर्व जो जीवपद, ताके वाच्यका ग्रहण औ उत्तर ईशपदकी चेतनभागमैं लक्षणा । यातैं अल्पज्ञतादि धर्मविशिष्ट चेतन है । यह तीनि वाक्यनका अर्थ होवैगा ॥ औ—

(२) "तत्त्वमसि" मैं आदि ईशपद । ताके वाच्यका ग्रहण औ द्वितीय जीवपदकी चेतनभागमैं लक्षणा । यातैं सर्वज्ञतादि-धर्मविशिष्ट चेतन है । यह "तत्त्वमसि" का अर्थ होनैतैं परस्परविरोध ही होवैगा ॥

इस रीतिसैं प्रथम वा द्वितीयपदमैं लक्षणाका नेम बनै नहीं । यातैं सुलक्षणा कहिये सुंदरि है लक्षण जिनके, ते आचार्य द्वैपदनमैं लक्षणा भाखत हैं । और-

॥ ४४७ ॥ ईश्वरवाचकपदमैं लक्षणा है । याका उत्तर ॥

जो ऐसैं कहैः-प्रथमपद वा द्वितीयपदमैं लक्षणा है । यह नियम नहीं करै है । किंतु सर्ववाक्यनमैं जो ईश्वरवाचकपद, तामैं लक्षणा है । यह नियम करै है ॥ सो ईश्वरवाचक पूर्व होवै वा उत्तर होवै । यातैं वाक्यनका परस्पर विरोध नहीं ॥ ताका--

॥ समाधान ॥ दोहा ॥

ईसपदहि लच्छक कहैं,
सब अनर्थकी खानि ।
ज्ञेय होय श्रुतिवाक्यमैं,
ह्वै पुरुषारथहानि ॥ ४७ ॥

टीकाः-जो ईश्वरवाचकपदकूं ही लक्षक कहै, तौ सर्वअनर्थ अल्पज्ञता पराधीनता जन्ममरणसैं आदिलेके जो दुःखके साधन, तिनकी खानि जो संसारी जीव, सो श्रुति-वाक्यनमै ज्ञेय होवै । यातैं पुरुषार्थ कहिये मोक्षकी हानि होवैगी ।

याका भाव यह हैः-जो ईश्वरवाचक पदमैं ही लक्षणा मानैं तौ महावाक्यनका यह अर्थ होवैगाः-"तत्पदका लक्ष्य जो अद्वयअसंग-मायामलरहित चेतन, सो कामकर्मअविद्याके आधीन अल्पज्ञ, अल्पशक्ति, परिच्छिन्न, पुण्यपाप, सुखदुःख, जन्ममरण, गमनआगमन आदिकअनंतअनर्थका पात्र है" । जो महावाक्यका ऐसा अर्थ होवै तौ जिज्ञासुकूं इसी अर्थविषै बुद्धिकी स्थिति करनी होवैगी औ जामैं बुद्धिकी स्थिति होवै है । प्राणवियोगसैं अनंतर ताहीकूं प्राप्त होवै है । यातैं वेदवाक्यनके विचारसैं मुमुक्षुकूं अनर्थकी ही प्राप्ति होवैगी । आनंदकी प्राप्ति नहीं होवैगी । यातैं ईश्वर-

वाचकपदमैं लक्षणा है। जीववाचकमैं नहीं। यह नियम असंगत है। और—

॥ ४४८ ॥ जीववाचकपदमैं लक्षणा है। याका उत्तर ॥

जो ऐसैं कहैं:—सर्वमहावाक्यनमैं जो जीववाचकपद हैं, तिन्हमैं लक्षणा है। ईशवाचकमैं नहीं। यातैं पुरुषार्थकी हानि नहीं। काहेतैं? जीववाचकपदमैं लक्षणा मानैं तौ महावाक्यनका यह अर्थ होवैगा:—"जो त्वंपदका लक्ष्य चेतनभाग सो सर्वशक्ति, सर्वज्ञ, स्वतंत्र औ जन्मादिकबंधरहित ईश्वररूप है॥" इस अर्थमैं बुद्धिकी स्थितिसैं जिज्ञासुकूं अतिउत्तमईश्वरभावकी ही प्राप्ति होवैगी। यातैं जीववाचकपदमैं लक्षणाका नियम करै हैं॥ ताका—

समाधान ॥ दोहा ॥

साछी त्वंपद लच्छय कहु,
कैसे ईसस्वरूप? ।
यातैं दोपद लच्छना,
भाखत जतिवर-भूप ॥४८॥

टीका:—त्वंपदका लक्ष्य जो साक्षी, सो ईशस्वरूप कैसै? यह कहु। अर्थ यह:—त्वंपदके लक्ष्यकूं ईश्वररूप कहना बनै नहीं, यातैं यति जो संन्यासी तिनमैं वर जो श्रेष्ठ, तिनके भूप स्वामी, दोनूं पदमैं लक्षणा भाखत हैं॥

याका भाव यह है:—जो जीववाचक पदमैं लक्षणा मानैं औ ईशवाचकमैं नहीं। ताकूं यह पूछै हैं:—१ त्वंपदकी लक्षणा व्यापकचेतनमैं है। २ अथवा जितनै देशमैं जीवकी उपाधि है उतनै देशमैं स्थित जो साक्षीचेतन, तामैं त्वंपदकी लक्षणा है?

(१) जो व्यापकचेतनमैं त्वंपदकी लक्षणा कहै तौ बनै नहीं। काहेतैं? वाच्यअर्थमैं जाका प्रवेश होवै, तामैं भागत्यागलक्षणा होवै है औ वाच्यमैं प्रवेश व्यापकचेतनका नहीं। किंतु जीवपनैकी उपाधिदेशमैं स्थित जो साक्षीचेतन ताका वाच्यमैं प्रवेश है। यातैं साक्षीचेतनमैं ही त्वंपदकी लक्षणा है। व्यापकचेतनमैं नहीं॥ ता साक्षीचेतनमैं सर्वके हृदयका प्रेरण औ सर्वप्रपंचमैं व्यापकतादिक ईश्वरके धर्मनका असंभव है॥ औ साक्षी सदा अपरोक्ष है। ताके विषै परोक्षता ईश्वरधर्मका अत्यंत असंभव है॥ औ—

२ मायारहितकूं मायाविशिष्ट कहना असंभव है॥ जैसे दंडरहितकूं दंडी कहना औ संस्काररहित द्विजबालककूं संस्कारविशिष्ट कहना असंभव है। यातैं साक्षीचेतनका ईश्वरसैं अभेद कहै तौ महावाक्य असंभवअर्थके प्रतिपादक होवैंगे॥ औ—

॥ ४४९ ॥ दोनूं पदनमैं लक्षणा औ ओतप्रोतभाव ॥

दोनूं पदनमैं लक्षणा मानैं तौ दोष नहीं। काहेतैं? जो एकताके विरोधी धर्म हैं, तिन्ह सबकूं त्यागिके दोनूं पदनमैं प्रकाशरूप चेतन जो वाच्यभाग, ता सर्वधर्मरहित चेतनमैं दोनूं पदनकी लक्षणा है॥

उपाधि औ उपाधिकृत धर्मनतैं चेतनका भेद है। स्वरूपसैं नहीं। उपाधि औ उपाधिकृत धर्मनका त्याग कियेतैं दोनूं पदनके लक्ष्य चेतनकी एकता संभवै है॥ जैसैं घटाकाशमैं घटदृष्टि त्यागिके मठविशिष्टआकाशतैं एकता बनै नहीं औ मठदृष्टि त्याग कियेतैं एकता बनै है॥

॥ दोहा ॥

तत् त्वं त्वं तत् रीति यह,
सब वाक्यनमैं जानि ।
जातैं होय परोछता,
परिच्छिन्नता हानि ॥ ४९ ॥

टीकाः–सर्ववाक्यनमैं "तत् त्वं" "त्व तत्" इस रीतिसैं ओतप्रोतभाव[४७२]की रीति जानि । जा ओतप्रोतभाव कियेतैं वाक्यक अर्थमैं परोक्ष औ परिच्छिन्नता[४७३]भ्रांतिकी हानि होवै है ॥

१ "तत् त्वं" या कहनैतैं तत्पदके अर्थका त्वंपदके अर्थसैं अभेद कह्या । सो त्वंपदका अर्थ साक्षी नित्य अपरोक्ष है । यातैं परोक्षताभ्रांतिकी हानि । औ—

२ "त्वं तत्" या कहनैतैं त्वंपदके अर्थका तत्पदके अर्थसैं अभेद कह्या । सो तत्पदका अर्थ व्यापक है । यातैं परिच्छिन्नताभ्रांतिकी हानि ॥

१ तैसैं–
(१) "अहं ब्रह्म" ।
(२) प्रज्ञानं ब्रह्म" ।
(३) "आत्मा ब्रह्म"
यातैं परिच्छिन्नताहानि ॥
२ औ–

॥ ४७२॥ गमन औ आगमनरूप परिचय विना मार्गके सम्यक्‌मानके अभावकी न्यांई ओतप्रोतभाव विना सम्यक्‌अभेदज्ञान होवै नहीं । यातैं महावाक्यके उपदेशके अनंतर जिज्ञासुकूं ओतप्रोतभाव कर्त्तव्य है । याहीकूं **अन्वय** औ **व्यतिहार** वी कहै हैं ॥

॥ ४७३ ॥ **इहां यह प्रश्न है:**–महावाक्यउपदेशके अनंतर जिज्ञासुकूं ब्रह्म औ आत्मविषै परोक्षता औ परिच्छिन्नभ्रांति प्रतीत होवै है, सो कारण विना संभवै नहीं । तहां अन्य तो कोई भ्रांतिका कारण संभवै नहीं, किंतु ब्रह्मविषै स्थित माया औ आत्माविषै स्थित अविद्या, भ्रांतिका कारण संभवै । सो मायाअविद्या, ब्रह्म औ आत्माके आश्रित होयके पूर्व रही थी । सो जब जिज्ञासुनै "तत्त्वं" पदार्थका शोधन किया तब दोनूं नष्ट होगयीं ॥

जैसैं घटस्वरूपके विचार किये हुये घटनिष्ठ अविद्या रहै नहीं, **तैसैं** ब्रह्म औ आत्माके विचार किये हुये तिनविषै स्थित मायाअविद्या रहै नहीं । किंत तिस अधिकारीकी दृष्टिसैं बाधित होवै है औ तृतीय चेतनका अभाव है औ चेतनसैं विना अन्यजडवस्तुके आश्रित मायाअविद्या रहै नहीं औ मायाअविद्याकी स्थिति विना उक्त दो प्रकारकी भ्रांति संभवै नहीं औ जिज्ञासुके चित्तमैं प्रतीयमान जे भ्रांति, तिनकी मायाअविद्या विना अन्य गति (कारण) संभवै नहीं । इस अर्थापत्तिप्रमाणसैं मायाअविद्याकी स्थितिकी कल्पना होवै है । यातैं महावाक्यके उपदेशअनंतर वे मायाअविद्या कहां स्थित होयके परोक्षतापरिच्छिन्नताभ्रांतिकूं उपजावै है ? यह प्रश्न है । याका–

यह उत्तर है:–**यद्यपि** पदार्थशोधनके अनंतर ज्ञात (विचारित) जे ब्रह्म औ आत्मा, तिसविषै तौ मायाअविद्या संभवै नहीं, **तथापि** महावाक्यकी अर्थरूप जो ब्रह्मआत्माकी एकता, सो सम्यक्‌ज्ञात भई नहीं । किंतु अज्ञात है । तिस एकताविषै मायाअविद्या स्थित होयके परोक्षतारूप औ परिच्छिन्नतारूप भ्रांतिकूं उपजावै है । तिस भ्रांतिके निवारणअर्थ ओतप्रोतभाव कर्त्तव्य है । ओतप्रोतभावके किये एकताका सम्यक्‌ज्ञान होयके मायाअविद्याकी निवृत्तिद्वारा परोक्षतापरिच्छिन्नतारूप भ्रांतिकी निवृत्ति होवै है ।

(१) "ब्रह्म अहं" ।
(२) "ब्रह्म प्रज्ञानं" ।
(३) "ब्रह्म आत्मा"
यातैं परोक्षताहानि ॥

॥ दोहा ॥

जीवब्रह्मकी एकता,
कहत वेद-स्मृति बैन ।
सिष्य तहां पहिचानिये,
भागत्यागकी सैन ॥ ५० ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जो वेदबैन औ स्मृति-बैन जीवब्रह्मकी एकता कहै, तहां सारै भागत्यागकी सैन पहिचानिये ।

॥ ४५० ॥ ग्रंथ (३३३ उक्त) की समाप्ति ॥

॥ दोहा ॥

अस सिष गुरु उपदेस सुनि,
भौ ततकाल निहाल ।
भलै विचारै याहि जो,
ताके नसत जँजाल ॥ ५१ ॥

॥ सोरठा ॥

मिथ्यागुरु सुरबानि,
कियो ग्रंथ उपदेस यह ।
सुनत करत तमहानि,
यह ताकी भाषा करी ॥ ५२ ॥

॥ दोहा ॥

अगृधदेवकूं स्वप्नमैं,
यह किय गुरु उपदेस ।
नस्यो न तहु दुःखमूल वह,
मिथ्या बनको बेस ॥ ५३ ॥

वेष कहिये स्वरूप । अन्य अर्थ स्पष्ट ।

॥ ४५१ ॥ प्रश्नः—अर्थसहित ग्रंथ पढ़ा तौ बी मन दुःखका मूल भासता है ॥

॥ अगृध उवाच ॥

॥ चौपाई ॥

भगवन यह तुम ग्रंथ पढ़ायो ।
अर्थसहित सो मो हिय आयो ॥
बन दुखमूल तऊ मुहिं भासै ।
कहु उपाय जातैं यह नासै ॥ ५४ ॥

(गत प्रश्नका उत्तर ॥ ४५२–४५३॥)

॥ ४५२ ॥ वनका नाशक हेतु यही (उक्त) है ॥ अगृधदेवके स्वप्नकी समाप्ति (नाश) ॥

बोले गुरु सुनि सिषकी बानी ।
सुनि सिष ह्वै जातैं बन हानी ॥
अस उपाय को और नहीं है ।
बनका नासक हेतु यही है ॥ ५५ ॥

महावाक्यको अर्थ बिचारहु ।
"मैं अगृध" यूं टेरि पुकारहु ॥
सुनि पुनि वाक्य विचारे चेला ।
"अहं अगृध" यह दीनो हेला ॥५६

निद्रा गई नैन परकासे ।
बन गुरु ग्रंथ सबैं वह नासे ॥

भयो सुखी बनदुख बिसरायो ।
हुतो अगृध निजरूप सु पायो॥५७॥

॥ ४५२ ॥ मिथ्यागुरुवेदतैं अज्ञानजन्य मिथ्याजगत्का परिहार होवै है ॥

॥ दोहा ॥

अगृधदेवमैं नींदत,
भौ बनदुख जिहि रीति ।
आतममैं अज्ञानतैं,
त्यूं जगदुःख प्रतीति ॥ ५८ ॥
ज्यूं मिथ्या गुरु ग्रंथतैं,
मिथ्या बन संहार ।
त्यूं मिथ्या गुरु वेदतैं,
मिथ्या जग परिहार ॥ ५९ ॥
लच्छ्यअर्थ लखि वाक्यको,
है जिज्ञासु निहाल ।
निरावरन सो आप है,
दादू दीनदयाल ॥ ६० ॥

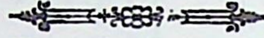
॥ इति विचारसागरे गुरुवेदादि-साधनमिथ्यावर्णनं नाम षष्ठस्तरंगः समाप्तः ॥ ६ ॥





॥ श्रीविचारसागर ॥

॥ सप्तमस्तरंगः ॥ ७ ॥



अथ जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्ति-वर्णनम् ।

॥४५४ ज्ञानीके व्यवहारमैं नियम नहीं ॥

॥ दोहा ॥

उत्तम मध्य कनिष्ठ तिहु,
सुनि अस गुरुउपदेस ।
ब्रह्म आत्म उत्तम लख्यो,
रह्यो न संसै लेस ॥ १ ॥

टीकाः—यद्यपि गुरुनै उपदेश तीनूंकूं साथि ही किया, तथापि गुरुउपदेशतैं साक्षात्कार उत्तमतत्त्वदृष्टिकूं हुवा ।

॥ दोहा ॥

भ्रमन करत ज्यूं पवनतैं,
सूको पीपरपात ।
शेषकर्म प्रारब्धतैं,
क्रिया करत दरसात ॥ २ ॥

कबहुँक चढ़ि रथ बाँजि[४७६] गज,
बाग बगींचे देखि ।
नग्नपाद पुनि एकले,
फिर आवत तिहिं लेखि ॥ ३ ॥

विविधवेष सज्या सयन,
उत्तमभोजन भोग ।
कबहुँक अनसन गिरिगुहा,
रजनि सिला संयोग ॥ ४ ॥

करि प्रनाम पूजन करत,
कहुँ जन लाख हजार ।
उभै लोकतैं भ्रष्ट लखि,
कहत कर्मि धिक्कार ॥ ५ ॥

जो ताकी पूजा करत,
संचित सुकृत सु लेत ।
दोषदृष्टि तिहि जो लखै,
ताहि पापफल देत ॥ ६ ॥

ऐसै ताके देहको,
बिना नियम व्यवहार ।
कबहुँ न भ्रम संदेह है,
लह्यो तत्त्वनिर्धार ॥ ७ ॥

॥ ४७४ ॥ जीवन्मुक्तिका लक्षण आगे ४७६ वें अंकविषै कहियेगा ॥

॥ ४७५ ॥ विदेहमुक्तिका लक्षण आगे ४७५ वें अंकविषै कहियेगा ॥

नहिं ताकूं कर्त्तव्य कछु,
भयो भेदभ्रम नास ।
उपज्यो वेदप्रमानतैं,
अद्वय ब्रह्मप्रकास ॥ ८ ॥

(ज्ञानीके व्यवहारमैं नेमका आक्षेप)
॥ ४६६–४७३ ॥)

॥ ४५५ ॥ ज्ञानीकूं समाधि औ शरीर-निर्वाहतैं अधिक अप्रवृत्तिके नियमका आक्षेप ॥ ४५५–४५८ ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञानीके व्यवहारमैं,
कोऊ कहत है नेम ।
त्रिपुटि तजै दुख हेतु लखि,
लहै समाधि सप्रेम ॥ ९ ॥

ह्वै किंचित व्यवहार जो,
भिच्छासन जलपान ।
भूलै नाहिं समाधिसुख,
ह्वै त्रिपुटीतैं ग्लान ॥ १० ॥

लहै प्रयत्न समाधिको,
पुनि ज्ञानी इह हेत ।
जो समाधिसुख तजि भ्रमत,
नर कूकर खर प्रेत ॥ ११ ॥

गौडपादमुनि कारिका,
लिख्यो समाधिप्रकार ।
ज्ञानी तजी विच्छेप यूं,
लहै सकलसुखसार ॥ १२ ॥

अष्टअंगबिन होत नहिं,
सो समाधिसुख मूल ।
अष्टअंग ते अब सुनो,
जे समाधि अनुकूल ॥ १३ ॥

पांचपांच यमनियम लखि,
आसन बहुतप्रकार ।
प्रानायाम अनेकविध,
प्रत्याहार विचार ॥ १४ ॥

छठो धारना ध्यान पुनि,
अरु सविकल्पसमाधि ।
अष्टअंग ये साधिके,
निर्विकल्प आराधि ॥ १५ ॥

सुनि समाधि कर्त्तव्यता,
तत्त्वदृष्टि हँसि देत ।
उत्तर कछु भाखत नहीं,
लखि तिहि बकत सप्रेत ॥ १६ ॥

टीकाः—जैसैं सप्रेत कहिये प्रेतसहित भूतके आवेशवाला बकै तैसैं अन्यथा कहता सुनिके तत्त्वदृष्टि हँसै है ॥

अन्य दोहाका अक्षरअर्थ स्पष्ट है ॥

भाव यह हैः—ज्ञानवान्‌के शरीरव्यवहारका नियम नहीं । काहेतैं? ज्ञानीके व्यवहारमैं अज्ञान औ ताका कार्य भेदभ्रांति तथा भेदभ्रमके कार्य रागद्वेष तौ हैं नहीं । किंतु ज्ञानवान्‌के बी प्रारब्धकर्म शेष रहै हैं, सोई ताके व्यवहारमैं निमित्त हैं ॥ सो प्रारब्धकर्म पुरुषभेदसैं नाना-प्रकारका होवै है । यातैं ज्ञानीके प्रारब्धकर्मजन्य व्यवहारका नियम नहीं । यह सिद्धांतपक्ष है॥

४७७ कोई ऐसैं कहैं हैंः-ज्ञानीके व्यवहारमैं और किसी कर्मका तौ नियम नहीं है, परंतु ज्ञानवान्‌के निवृत्तिका नियम है। प्रवृत्ति होवै तौ देहस्थितिके हेतु भिक्षा अशन कौपीन आच्छादनमात्र ग्रहणमैं प्रवृत्ति होवै है। अन्य प्रवृत्ति होवै नहीं। काहेतैं? ज्ञानकी उत्पत्तिसैं प्रथम जिज्ञासाकालमैं विषयनमैं दोषदृष्टिसैं वैराग्य होवै है। सो वैराग्य ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर बी दोषदृष्टितैं तथा विषयनमैं मिथ्या-बुद्धिसैं होवै है॥

१ अपरोक्षरूपतैं मिथ्या जानै पदार्थनमैं सत्यबुद्धि होवै नहीं॥

२ दोषदृष्टितैं राग होवै नहीं औ प्रवृत्ति रागतैं होवै है। ज्ञानीके राग संभव नहीं,

यातैं प्रवृत्ति होवै नहीं॥

शरीरनिर्वाहक भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति तौ रागतैं विना प्रारब्धकर्मतैं संभवै है। कर्म तीनि प्रकारके हैंः-१संचित,२आगामी औ ३ प्रारब्ध। तिनमैं—

१ भूतशरीरनमैं किये कर्म फलारंभरहित **संचित** कहिये हैं॥

२ भविष्यत्कर्म **आगामी** कहिये हैं।

३ भूतशरीरनमैं किया वर्त्तमानशरीरका हेतु कर्म **प्रारब्ध** कहिये है।

तिनमैं—

१ संचितकर्मका ज्ञानतैं नाश होवै है॥

२ ज्ञानवान्‌कूं आत्मामैं कर्त्तृत्वभ्रांति नहीं। यातैं ताकूं आगामीकर्मका संभव नहीं॥ औ—

३ जिस प्रारब्धकर्मनैं ज्ञानीके शरीरका आरंभ किया है, सोई प्रारब्धकर्म शरीरस्थितिके हेतु भिक्षादिकनमैं प्रवृत्ति करवावै है। प्रारब्धकर्मका भोग विना नाश होवै नहीं और—

कहूं ऐसा लिख्या हैः-संचित आगामी-कर्मकी न्यांई ज्ञानीके प्रारब्धकर्म बी रहै नहीं, यातैं भोजनादिकप्रवृत्ति बी ज्ञानीकूं संभवै नहीं। ताका यह अभिप्राय हैः-ज्ञानीकी दृष्टितैं आत्मामैं कर्म औ ताके फलका संबंध नहीं, यातैं आत्मामैं सर्वकर्मका निषेध अभि-प्रायतैं प्रारब्धका निषेध किया है औ ज्ञानतैं पूर्व किये प्रारब्धका ज्ञानीके शरीरकूं भोग होवै नहीं। इस अभिप्रायतैं प्रारब्धका निषेध नहीं। काहेतैं?

सूत्रकारनै यह लिख्या हैः-

१ ज्ञानीके संचितकर्मका ज्ञानतैं नाश होवै है।

२ आगामीका संबंध होवै नहीं।

३ प्रारब्धका भोगतैं नाश होवै है।

यातैं प्रारब्धके बलतैं शरीरनिर्वाहक क्रिया ज्ञानीकी होवै है। अधिक नहीं। परंतु—

॥ ४९६ ॥ कर्म नानाप्रकारके हैं। जहां एक कर्म नानाशरीरका आरंभक होवै। ऐसैं कर्मतैं रचित प्रथमशरीरमैं जाकूं ज्ञान होवै, तहां ज्ञानवान्‌कूं अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये। काहेतैं? फलका जानै आरंभ किया है, सो **प्रारब्ध** कहिये है। ताका भोग विना नाश होवै नहीं॥ अनेक शरीरका हेतु कर्म एक है, तानै प्रथमशरीर जो उपजाया तामैं ज्ञान हुवा, ता कर्मके फल ज्ञानतैं अनंतर और शरीर शेष

॥ ४७७ ॥ केवल सन्यासीकूं ही ज्ञानका मुख्य अधिकारी माननैहारे शंकरानंदस्वामी आदिक॥

॥ ४७८ ॥ वर्त्तमानशरीरविषै किया कर्म **आगामी कर्म** कहिये हैं॥

॥ ४७९ ॥ अपरोक्षानुभूति औ विवेकचूडामणि-आदिक ग्रंथन विषै॥

रहे है। यातैं ज्ञानवान्कूं बी अन्यशरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये । और--

॥ ४५७ ॥ जो ऐसैं कहैः--प्रारब्ध-कर्मका फल जितनै शरीर होवैं, उतनै शरीर ज्ञानीकूं बी होवै हैं । प्रारब्धके भोगतैं अधिक होवै नहीं। यातैं ज्ञान बी सफल होवै है । सो बनै नहीं ॥ काहेतैं ? यह वेदूंका[४८०] ढंढोरा हैः-- "ज्ञानवान्के प्राण अन्यलोकमैं वा इस लोकके अन्यशरीरमैं गमन नहीं करते । किंतु तिसी स्थानमैं अंतःकरण इंद्रियसहित लीन होवै हैं॥" औ प्राणगमन विना अन्यशरीरकी प्राप्ति संभवै नहीं । यातैं ज्ञानवान्कूं प्रारब्धशेषतैं और शरीर होवै है । यह कहना तो संभवै नहीं ॥ किंतु--

यह समाधान है--जहां अनेक शरीरनका आरंभक एककर्म होवै, तहां अंतशरीरमैं ही ज्ञान होवै है । पूर्वशरीरमैं ज्ञान होवै नहीं । काहेतैं ? अनेकशरीरनका आरंभकप्रारब्ध ही[४८१] ज्ञानका प्रति-बंधिक है । जैसैं---

१ विषयनमैं आसक्ति ।

२ बुद्धिमंदता ।

३ भेदवादिवचनमैं विश्वास ।

ये तीनुं ज्ञानके प्रतिबंधक हैं। तैसैं विलक्षण प्रारब्ध बी ज्ञानका प्रतिबंधक है ॥ औ---

ज्ञानके प्रतिबंधक होते जहां ज्ञानसाधन-श्रवणादिक होवैं, तहां ज्ञान होवैं नहीं किंतु प्रतिबंधक दूरि हुयेतैं प्रथमजन्मविषै किये जो श्रवणादिक हैं,तिनतैं ही अन्यशरीरमैं ज्ञान होवै है। जैसैं वामदेवनै[४८३] पूर्वजन्मविषै श्रवणादिक किये, तब प्रारब्धका फल एक शरीर शेष होते ज्ञान नहीं हुवा । किंतु श्रवणादिक करते वर्त्तमान-शरीरका पात होयके अन्यशरीरकी प्राप्ति हुयेतैं पूर्वजन्ममैं किये श्रवणादिकनतैं गर्भविषै ज्ञान हुआ है । यातैं ज्ञानसैं अनंतर अन्य शरीरका संबंध होवै नहीं ॥ औ वर्त्तमानशरीरकी चेष्टा प्रारब्धसैं होवै है ॥ तहां जितनी चेष्टा शरीरकी निर्वाहक है सोई होवै । रागजन्य अधिक चेष्टा होवै नहीं । यातैं सर्वप्रवृत्तिरहित ज्ञानी होवै है॥

॥ ४५८ ॥ इस रीतिसैं निवृत्तिप्रधान ज्ञानीका व्यवहार होवै है । याके विषै---

ऐसी शंका है:--मनका स्वभाव अति-चंचल है । निरालंब मनकी स्थिति होवै नहीं । किसी आलंबतैं मनकी स्थिति होवै है। यातैं मनके किसी आलंबकी प्राप्तिनिमित्त बी ज्ञानवान्की प्रवृत्ति होवै है ॥ ताका---

यह समाधान है:--यद्यपि समाधिहीन पुरुषका मन चंचल होवै है तथापि समाधितैं मनका विजय होवै है औ ज्ञानवान् समाधि-विषै स्थित होवै है । यातैं ज्ञानवान्की प्रवृत्ति होवै नहीं ॥

॥४८०॥ "न तस्य प्राणा ह्युत्क्रामन्ते । ह्यत्रैव समवलीयन्ते (तिस ज्ञानीके प्राण गमन करते नहीं । किन्तु इहां मरणके स्थानविषै ही लीन होवै है)" इत्यादि वेदवाक्यनका नगारा है ॥

॥ ४८१ ॥ ज्ञानके त्रिविधप्रतिबंधका निवृत्तिके उपायसहित वर्णन श्रीपंचदशीगत ध्यानदीपविषै लिख्या है औ तिसका नाममात्र कथन पूर्व पंचम-तरंगगत टिप्पणविषैं हम करि आये है ॥

॥ ४८२ ॥ जन्मांतरका हेतु प्रारब्धशेष ॥

॥ ४८३ ॥ इहां "वामदेव" शब्दकरि ऋषभ-देवके पुत्र भरतराजाका बी ग्रहण है । भरतका बी तीनजन्मका हेतु प्रारब्धशेष था । तिसकरि साधन-सामग्रीके होते बी ज्ञान भया नहीं । पीछे तृतीय-जन्मविषै उपदेशतैं विना ही पूर्वकृतविचारसैं ज्ञान भया ॥

॥ ४८४ ॥ आश्रयरहित ॥

॥ ४८५ ॥ आश्रयतैं ॥

॥ ४५९ ॥ समाधिके अष्टअंग ॥ ४५९-४६५ ॥

सो समाधि इन अष्टअंगनते होवै है:-- १ यम, २ नियय, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७ ध्यान औ ८ सविकल्पसमाधि, इन अष्टअंगनतैं समाधि होवै है ॥

॥ ४६० ॥ १ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य औ ५ अपरिग्रह, ये पांच यम कहे हैं ॥

॥ ४६१ ॥ १ शौच, २ संतोष, ३ तप, ४ स्वाध्याय औ ५ ईश्वरप्रणिधान, ये पांच **नियम** कहिये हैं ॥ औ-

ज्ञानसमुद्रग्रंथमैं दशप्रकारके यम औ दश प्रकारके नियम कहे हैं। सो पुराणकी रीतिसैं कहे हैं। वेदांतसंप्रदायमैं यमनियमके पांचपांच ही भेद हैं ॥ और-

॥ ४६२ ॥ आसनके भेद अनंत हैं। तिनमैं:--१ स्वस्तिक, २ गोमुख, ३ वीर, ४ कूर्म, ५ पद्म, ६ कुक्कुट, ७ उत्तान, ८ कूर्मक, ९ धनुष, १० मत्स्य, ११ पश्चिमतान, १२ मयूर, १३ सव, १४ सिंह, १५ भद्र औ १६ सिद्ध। इत्यादिक चौऱ्यासी आसन योगग्रंथनमैं लिखे हैं। तिनके लक्षण बी तहां लिखे हैं। ग्रंथके विस्तारभयतैं तथा वेदांतमैं अत्यंतउपयोगी नहीं, यातैं लक्षण लिखे नहीं ॥ तिनमैं बी १ सिंह, २ भद्र, ३ पद्म औ ४सिद्ध ये चारि आसन प्रधान हैं ॥ तिन चारिमैं बी--

सिद्ध आसन अत्यन्त प्रधान है । ताका यह लक्षण है:--वामपादकी एड़ी गुदा मेढ्रके मध्य सीवनमैं दाबिके धरै । दक्षिणपादकी एड़ी मेढ्रके ऊपरि दाबिके धरै । भृकुटीके अन्तर दृष्टि राखै । स्थाणुकी[४८६] न्यांई सरलनिश्चलशरीरतैं स्थितिकूं **सिद्धासन** कहे हैं ॥ और----

कोई ऐसै कहै है:-वामपादकी एड़ी सीवनमैं नहीं लगावै। किंतु मेढ्रके ऊपरि लगावै। ताके ऊपरि दक्षिण एडी धरै॥ औ पूर्वकी न्यांई यह सिद्धासन ही अतिप्रधान है। काहेतैं? कितनै आसन तौ रोगनाशके हेतु हैं । और कोई आसन ऐसे हैं, प्राणायामादिक समाधिके अंग जिनतैं होवै हैं, औ सिद्धासन समाधिकालमैं होवै है। यातैं अतिप्रधान है । याहीकूं वज्रासन, मुक्तासन और गुप्तासन कहै हैं॥

॥ ४६३ ॥ आसनसिद्धिसैं अनन्तर प्राणायाम बी करै । सो प्राणायाम बहुतप्रकारका है । तथापि संक्षेपतैं यह लक्षण है:-

१ नासाके वामछिद्रद्वारा इडा नाम नाडीतैं वायुकूं पूरण करै, ताकूं पूरक कहै हैं ।
२ दक्षिणतैं त्यागै, ताकूं रेचक कहै हैं ।
३ सुषुम्णातैं रोकै, ताकूं कुम्भक कहै हैं ।

इस रीतिसैं पूरक,रेचक,कुंभककूं **प्राणायाम** कहै हैं। सो दो प्रकारका है:--१ एक अगर्भ है, तैसैं २ दूसरा सगर्भ है ॥

१ प्रणवके उच्चारणरहित प्राणायाम[४८७] अगर्भ कहिये है ॥

२ प्रणवके उच्चारणसहित प्राणायाम सगर्भ कहिये है ॥

॥ ४६४ ॥ १ विषयनतैं सकलइंद्रियनके निरोधकूं **प्रत्याहार** कहै हैं ।

२ अंतरायसहित अंतःकरणकी स्थिति धारणा कहिये हैं ॥

॥ ४८६ ॥ खंभेकी न्यांई ॥

॥ ४८७ ॥ सारे हठयोगका प्राणायाममैं अन्तर्भाव है । यातैं तिस प्राणायामकी रीति "हठप्रदीपिका आदिक" ग्रन्थनमैं स्पष्ट लिखी है ॥

३ अंतरायरहित अद्वितीयवस्तुविषै अंतः-करणका प्रवाह ध्यान कहिये है ॥

॥ ४६५ ॥ व्युत्थानसंस्कारनका तिरस्कार औ निरोधसंस्कारनकी प्रगटता हुया अंतःकरण-का एकाग्रतारूप परिणाम, समाधि कहिये है। सो समाधि दो प्रकारकी हैः-१ एक सवि-कल्पसमाधि है । औ २ दूसरी निर्विकल्प-समाधि है ॥

१ ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयरूप त्रिपुटीभानसहित अद्वितीयब्रह्मविषै अंतःकरणकी वृत्तिकी स्थिति सविकल्पसमाधि कहिये है। सो सविकल्प-समाधि दो प्रकारकी हैः-(१) एक तौ शब्दानु-विद्ध है औ (२) दूसरी शब्दाननुविद्ध है ॥

(१) "अहं ब्रह्मास्मि" इस शब्दकरिके अनुविद्ध कहिये सहित होवै, सो शब्दानुविद्ध कहिये है ॥

(२) शब्दरहितकूं शब्दाननुविद्ध कहे हैं॥

२ त्रिपुटीभानरहित अखंडब्रह्माकार अंतः-करणवृत्तिकी स्थिति, निर्विकल्पसमाधि कहिये है ॥

इस रीतिसैं सविकल्प औ निर्विकल्पसमा-धिके दो भेद हैं। तिनमैं--

(१) सविकल्पसमाधि साधन है। औ--

(२) निर्विकल्पसमाधि फल है।

१ साधनरूप जो सविकल्पसमाधि है, ताके विषै यद्यपि त्रिपुटीरूप द्वैत प्रतीत होवै है, तथापि सो द्वैत इस रीतिसैं ब्रह्मरूप करिके प्रतीत होवै हैः-जैसैं मृत्तिकाविकारनकूं मृत्ति-कारूप जानैतैं विवेकीकूं मृत्तिकाके विकार घटा-दिक प्रतीत बी होवै हैं, परंतु मृत्तिकारूप ही प्रतीत होवै हैं, तैसैं सविकल्पसमाधिमैं त्रिपुटी-द्वैत ब्रह्मरूप ही प्रतीत होवै है।

२ निर्विकल्पसमाधिविषै बी सविकल्प समाधिकी न्यांई त्रिपुटीरूप द्वैत विद्यमान बी होवै है, तौ बी त्रिपुटीद्वैतकी प्रतीति होवै नहीं। जैसैं जलमैं लवणकूं गेरैं, तहां लवण विद्यमान होवै है, परंतु नेत्रसैं लवणकी सर्वथा प्रतीति होवै नहीं ॥

इस रीतिसैं सविकल्पनिर्विकल्पसमाधिका यह भेद सिद्ध हुवाः-

१ सविकल्पसमाधिमैं ब्रह्मरूपकरिके द्वैतकी प्रतीति होवै है। औ--

२ निर्विकल्पसमाधिमैं त्रिपुटीरूपद्वैतकी अप्रतीति होवै है ॥

॥ ४६६ ॥ सुषुप्तिसैं निर्विकल्पसमाधि-का भेद ॥

तैसैं सुषुप्तिसैं निर्विकल्पका यह भेद हैः-

१ सुषुप्तिमैं अंतःकरणकी ब्रह्माकारवृत्तिका अभाव होवै है। औ--

२ निर्विकल्पसमाधिमैं ब्रह्माकारवृत्ति तौ अंतःकरणकी होवै है, ताका भान होवै नहीं ॥

इस रीतिसैं--

१ सुषुप्तिमैं तौ वृत्तिसहित अंतःकरणका अभाव होवै है। औ-

२ निर्विकल्पसमाधिमैं वृत्तिसहित अंतःकरण तौ होवै है, ताकी प्रतीति होवै नहीं ॥

निर्विकल्पसमाधिविषै अंतःकरणकी जो ब्रह्माकारवृत्ति होवै है, ताका हेतु सविकल्प-समाधिका अभ्यास है। यातैं साधनरूप अष्ट-अंगनमैं सविकल्पसमाधि गिनी है। निर्विकल्प समाधि फल है ॥

॥ ४८८ ॥ समाधिविषै जो अन्तःकरणका अभाव होवै तौ योगीका देह निद्रालुकी न्यांई गिर्या चाहिये औ गिरता नहीं। यातैं समाधिविषै अन्तःकरण होवै है, यह जानिये है ॥

॥४६७॥निर्विकल्पसमाधि दोप्रकारकी ॥

सो निर्विकल्पसमाधि बी दोप्रकारकी होवै हैः-१ एक अद्वैतभावनारूप औ २ दूसरी अद्वैतावस्थानरूप होवै है ।

१ अद्वैतब्रह्माकार अंतःकरणकी अज्ञात-वृत्तिसहित होवै, सो अद्वैतभावनारूप निर्विकल्पसमाधि कहिये है ॥

२ या समाधिमैं अभ्यास अधिक हुयेतैं ब्रह्माकारवृत्ति बी शांत होय जावै है । यातैं वृत्तिरहितकूं अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि कहै हैं ॥

जैसैं तप्तलोहके ऊपरि जलकी बूंद गेरी तप्तलोहमैं प्रवेश करै है, तैसैं अद्वैतभावनारूप समाधिके दृढअभ्यासतैं अत्यंतप्रकाशमान ब्रह्मविषै वृत्तिका लय होवै है ।[४८९] सो अद्वैतावस्थान-[४९०]रूप निर्विकल्पसमाधि फल है औ अद्वैतभावनारूप निर्विकल्पसमाधि ताका साधन है ॥

॥ ४६८ ॥ अद्वैतावस्थानरूप समाधिसैं सुषुप्तिका भेद ॥

अद्वैतावस्थानरूप समाधि औ सुषुप्तिका इतना भेद हैः-

१ सुषुप्तिमैं वृत्तिका लय अज्ञानमैं होवै है । औ

२ अद्वैतावस्थानसमाधिमैं वृत्तिका लय[४९१] ब्रह्मप्रकाशमैं होवै है ॥ औ—

१ सुषुप्तिका आनंद अज्ञानआवृत है । औ-

२ समाधिमैं निरावरणब्रह्मानंदका भान होवै है ॥ परंतु—

॥ ४६९ ॥ निर्विकल्पसमाधिके लय, विक्षेप, कषाय औ रसास्वाद, ये चारि विघ्न ॥ ४६९-४७२ ॥

निर्विकल्पसमाधिमैं चारि विघ्न होवै हैं, सो निषेध करनैकूं कहिये हैः-१ लय, २ विक्षेप, ३ कषाय, औ ४ रसास्वाद ।

१ आलस्यकरिके अथवा निद्राकरिके वृत्तिके अभावकूं लय कहै हैं । ता लयतैं सुषुप्तिसमान अवस्था होवै है । ब्रह्मानंदका भान होवै नहीं । यातैं निद्राआलस्यादिक निमित्ततैं जब वृत्तिका अपनै उपादान अंतःकरणमैं लय होता दीखै तब योगी सावधान होयके निद्रादिकनकूं रोकिके वृत्तिकूं जगावै । इस रीतिसैं लयरूप विघ्नका विरोधी जो निद्राआलस्यविरोधसहित वृत्तिका प्रवाहरूप जागरण, ताकूं गौडपादाचार्य चित्तसंबोधन कहै हैं ॥

॥ ४८९ ॥ यातैं सो अद्वैतभावनारूप समाधि ॥

॥ ४९० ॥ यह अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि ही ज्ञानकी सप्तमभूमिकारूप योगका परम-अवधि है ॥

॥ ४९१ ॥ इहां यह रहस्य हैः-यद्यपि उक्त-समाधिविषै निःशेषरजतमके तिरोधानतैं आविर्भावकूं प्राप्त भये शुद्धसत्त्वगुणरूप उपादानविषै ही वृत्तिका लय संभवै है । निर्विकारब्रह्मप्रकाशविषै नहीं । तप्त-लोहविषै जलबिंदुके लयका दृष्टांत कह्या । तहां बी विचारदृष्टिसैं पार्थिवलोहविषै जलबिंदुका लय नहीं किन्तु जलका उपादान जो अग्निमात्र ताके विषै जलबिन्दुका लय होवै हैं । ताका तप्तलोहविषै उपचार (कथन) होवै है । तथापि ब्रह्मप्रकाशके भानरूप निमित्तकारि वृत्तिका लय हुवा है । यातैं उपचारतैं ब्रह्मप्रकाशविषै लय कहिये है ।

किंवा तिस समाधिमान् ब्रह्मविद्वरिष्ठकी दृष्टिसैं गुणादिक प्रतीत होवै नहीं । किन्तु शुद्धब्रह्म प्रतीत होवै है । तहां तिस (ब्रह्मविवर्त) वृत्ति (दृष्टि) का अभाव भया । यातैं बी ब्रह्मप्रकाशविषै वृत्तिका लय कहिये है ॥

॥ ४९२ ॥ यह अर्थ गौडपादाचार्यकृत मांडूक्य-उपनिषद्की कारिकाविषै लिख्या है । तिसकी वेदांतदीपिकानाम भाषाटीकाविषै हमनै बी लिख्याहै॥

॥ ४७० ॥ २ विक्षेपका यह अर्थ हैः-जैसैं बाज वा बिल्लीतैं डरिके चटिकाग्रहमैं प्रवेश करै, तब भयव्याकुलकूं गृहके अंतर तत्काल स्थान दिखै नहीं, यातैं फेरि बाहरि आयके भय अथवा मरणरूप खेदकूं प्राप्त होवै है, तैसैं अनात्मपदार्थनकूं दुःखहेतु जानिके अद्वैतानंदकूं विषय करनैवास्ते अंतर्मुख हुई जो वृत्ति, तहां वृत्तिका विषय चेतन अतिसूक्ष्म है। यातैं किंचित् काल वृत्तिकी स्थिति विना तत्काल ही चेतन-स्वरूप आनंदका लाभ नहीं होवै है । तातैं वृत्ति बहिर्मुख होवै है । इस रीतिसैं बहिर्मुखवृत्ति विक्षेप कहिये है ॥ सो वृत्तिकी स्थिरता विना स्वरूपआनंदका अलभ होवै है । यातैं अंतर्मुख वृत्ति हुयेतैं बी जितनै काल वृत्ति ब्रह्माकार होवै नहीं उतनै काल बाह्यपदार्थनमैं दोषभावनातैं वृत्तिकूं बाहिर्मुखता योगी होनै देवै नहीं । किंतु वृत्तिकी अंतर्मुखता ही स्थापन करै ॥

विक्षेपरूप विघ्नका विरोधी जो योगीका प्रयत्न, ताकूं गौडपादाचार्यने सम कह्या है ॥

॥ ४७१ ॥ ३ रागादिक दोषनकूं कषाय कहै हैं । यद्यपि रागादिक दो प्रकारके हैंः—
(१) एक बाह्य हैं औ (२) दूसरे आंतर हैं ॥

(१) पुत्रस्त्रीधनआदिक जिनके विषय वर्त्तमान होवैं सो बाह्य कहिये हैं ॥

(२) भूतका वा भावीका चिंतनरूप जो मनोराज्य सो आंतर कहिये हैं ॥

सो दोनूं प्रकारके रागादिक समाधिमैं प्रवृत्त योगीविषै संभवै नहीं । काहेतैं ?

चित्तकी पांच भूमिका हैंः-तिनमैं (१) एक क्षेपनाम भूमिका है । (२) दूजी मूढता । (३) तीजी विक्षेप । (४) चोथी एकाग्रता । औ (५) पांचमी निरोधभूमिका है ॥

(१) लोक४९३वासना, देह४९४वासना, शास्त्र४९५वासना इसतैं आदिलेके रजोगुणका परिणाम जो दृढ़अनात्मवासना, ताकूं क्षेप कहै हैं ।

(२) निद्राआलस्यादिक तमोगुणपरिणामकूं मूढ़ता कहै हैं ।

(३) ध्यानमैं प्रवृत्तचित्तकी कदाचित् बाह्य प्रवृत्तिकूं विक्षेप कहैं हैं ।

(४) अंतःकरणका अतीतपरिणाम औ वर्त्तमान परिणाम समानाकार होवै, ताकूं एकाग्रता कहै हैं ॥

यह एकाग्रताका लक्षण योगसूत्रमैं पतंजलिनै कह्या है । ताका भाव यह हैः-समाधिकालमैं योगीके अंतःकरणमैं एकाग्रता होवै है । सो एकाग्रता वृत्तिका अभावरूप नहीं किंतु जितनै अंतःकरणके परिणाम समाधिकालमैं होवै हैं, सो सारे ब्रह्मकूं ही विषय करै हैं । यातैं अंतः-करणके अतीतपरिणाम औ वर्तमानपरिणाम केवल ब्रह्माकार होनैतैं समानाकार होवै हैं ॥

(५) ता एकाग्रताकी वृद्धिकूं निरोध कहै हैं॥

ये पांचभूमिका अंतःकरणकी हैं ।

भूमिका नाम अवस्थाका है ॥

ये पांचभूमिकासहित अंतःकरणके ये क्रमतैं

॥ ४९३ ॥ "कोई लोक मेरी निंदा मति करो, किन्तु सर्व स्तुति ही कू करो" इस आग्रहका दृढसंस्कार लोकवासना है ॥

॥ ४९४ ॥ "स्थूल किंवा सूक्ष्मदेहके रोगादिरूप किंवा पापरूप मलका औषधआदिककारि किंवा तीर्थाटनकारि निःशेष निवारण करूंगा औ तिसविषै शोभापुष्टिआदिरूप किंवा पुण्यरूप गुणका सम्पादन करूंगा" इस आग्रहका दृढसंस्कार देहवासना है ॥

॥ ४९५ ॥ "सर्वशास्त्रनके पाठकूं किंवा अर्थकूं किंवा तिस तिस शास्त्रउक्त आचरणकूं मैं धारण करूंगा" इस आग्रहका दृढसंस्कार शास्त्रवासना है ॥

नाम हैं:-(१) क्षिप्त, (२) मूढ, (३) विक्षिप्त, (४) एकाग्र औ (५) निरुद्ध । तिनमैं-

(१-२) क्षिप्त औ मूढअंतःकरणका तौ समाधिविषै अधिकार नहीं ।

(३) विक्षिप्तअंतःकरणकूं अधिकार है ॥

(४-५) एकाग्र औ निरुद्ध अंतःकरण समाधिकालमैं होवै है ।

यह योगग्रंथनमैं कह्या है ।

रागादिकदोषसहित अंतःकरण क्षिप्त ही है । ता क्षिप्तअंतःकरणका योगमैं अधिकार नहीं । यातैं रागादिक दोषरूप कषाय समाधिके विघ्न[४९६] है । यह कहना संभवै नहीं ।

तथापि यह समाधान है:—बाह्य अथवा अंतर जो रागादिक[४९७] हैं, सो तौ क्षिप्तअंतःकरणमैं ही होवै हैं । ताका अधिकार बी नहीं । तौ बी अनेकजन्मविषै पूर्व अनुभव किये जो बाह्यअंतररागद्वेष, तिनके सूक्ष्मसंस्कार विक्षिप्तादिकअंतःकरणमैं बी संभवै हैं, यातैं रागद्वेषका नाम कषाय नहीं । किंतु रागद्वेषादिकनके संस्कार कषाय[४९८] कहिये हैं ॥ सो संस्कार अंतःकरण रहै जितनै दूरि होवै नहीं । यातैं समाधिकालमैं बी अंतःकरणमैं रहै हैं, परंतु रागद्वेषादिकनके उद्भूतसंस्कार समाधिके विरोधी हैं । अनुद्भूत विरोधी नहीं ॥

प्रगटकूं उद्भूत कहै हैं ॥

अप्रगटकूं अनुद्भूत कहै हैं ॥

समाधिमैं प्रवृत्त योगीकूं जो रागद्वेषके संस्कारनकी प्रगटता होवै तौ विषयनमैं दोषदर्शनतैं दाबि देवै ।

विक्षेपकषायका यह भेद है:-

(१) बाह्यविषयाकारवृत्तिकूं विक्षेप कहै हैं ॥ औ--

(२) योगीके प्रयत्नतैं जहां वृत्ति अंतर्मुख तौ होवै, परंतु रागादिकनके उद्भूतसंस्कारनतैं अंतर्मुख हुई वृत्ति बी रुक जावै, ब्रह्मकूं विषयमैं करै नहीं, ताकूं कषाय कहै हैं । विषयमैं दोषदर्शनसहित योगीके प्रयत्नतैं कषायविघ्नकी निवृत्ति होवै है ॥

॥ ४९६ ॥ जा पुरुषकूं राजाके पास जानैका अधिकार होवै, ताकूं तौ ड्योढीदारनै विघ्न किया ऐसा कथन संभवै औ जाकूं तहां जानैका अधिकार ही नहीं, ताकूं ड्योढीदारनै विघ्न किया ऐसा कहना संभवै नहीं । **तैसैं** क्षिप्तअन्तःकरणका जो समाधिमैं अधिकार होवै तौ तिसकूं रागादिदोषरूप कषाय समाधिके विघ्न होवैं । जातैं ता क्षिप्तअन्तःकरणका समाधिमैं अधिकार नहीं, यातैं ताकूं रागादिदोषरूप कषाय समाधिके विघ्न हैं, यह कहना संभवै नहीं ॥

॥ ४९७ इहां यह प्रक्रिया है:—१ उद्युक्त २ आशारूप, औ ३ वासनारूप भेदतैं रागादिक तीन भांतिके हैं ॥

१ बाह्यप्रवृत्तिके हेतु जे रागादिक वे **उद्युक्त राग** कहिये हैं । ताहीकूं **बाह्यराग** बी कहै हैं । औ

२ मनोराज्यरूप जे रागदिक वे **आशारूप राग** कहिये हैं । तिनकूं ही **आंतरराग** बी कहै है । औ--

३ जन्मांतरविषै पूर्वअनुभव किये जे रागादिक, तिनके जे संस्कार, वे **वासनारूप रागादिक** कहिये है । तिनमैं वासनारूप रागादिक उद्भूत औ अनुद्भूतभेदतैं दो भांतिके है ।

यह अर्थ जीवन्मुक्तिविवेकनामग्रन्थविषै विद्यारण्यस्वामीनै लिख्या है ॥

॥ ४९८ ॥ यामैं यह दृष्टांत है:--**जैसैं** राजाके मिलनैअर्थ गृहतैं निकस्या जो कोई धनिक, ताकूं राजद्वारमैं जाग्रत् होयके स्थित जो द्वारपाल सो रोक देवै, **तैसैं** सर्वविषयोंतैं उपराम होयके निर्विकल्पसमाधिके आनंदअर्थ अन्तर्मुख भया जो योगीका मन, ताकूं बीचमैं (समाधिआनंदलाभतैं पूर्व) उद्भूतरागादिकका संस्काररूप कषाय रोक देवै है । यातैं सो समाधिका विघ्न है ॥

॥ ४७२॥ ४ रसास्वादका यह अर्थ हैः-- योगीकूं ब्रह्मानंदका अनुभव होवै है औ विक्षेपरूप दुःखकी निवृत्तिका अनुभव होवै है । काहूं दुःखकी निवृत्तिसैं बी आनन्द होवै है ॥

जैसैं भारवाही पुरुषका भार उतरैसैं ताकूं आनंद होवै, तहां आनन्दमैं और तौ कोई विषय हेतु है नहीं । किंतु भारजन्यदुःखकी निवृत्तिसैं यह कहै हैः--"मेरेकूं आनन्द हुवा है" यातैं दुःखकी निवृत्ति बी आनन्दका हेतु है । तैसैं योगीकूं समाधिमैं विक्षेपजन्य दुःखकी निवृत्तिसैं जो आनन्द होवै ताका अनुभव **रसास्वाद** कहियेहै ॥

जो दुःखनिवृत्तिजन्य आनन्दके अनुभवसैं ही योगी अलंबुद्धि करि लेवै तौ सकलउपाधिरहित ब्रह्मानन्दाकार वृत्तिके अभावतैं ताका अनुभव समाधिमैं होवै नहीं । यातैं दुःखनिवृत्तिजन्य आनन्दका अनुभवरूप रसास्वाद बी समाधिमैं विघ्न है ॥

वांछितकी प्राप्तिविना बी विरोधीकी निवृत्तिसैं आनन्दकी उत्पत्तिमैं अन्य दृष्टांतः- जैसैं पृथिवीमैं निधि होवै सो निधि अत्यन्तविषधरसर्पतैं रक्षित होवै । तहां निधिप्राप्तिसैं प्रथम बी निधिप्राप्तिका विरोधी जो सर्प है, ताकी निवृत्तिसैं आनन्द होवै है । तहां सर्पनिवृत्तिके आनन्दमैं जो अलंबुद्धि करै तौ उद्यम त्यागनैतैं निधिप्राप्तिका परमानन्द प्राप्त होवै नहीं । तैसैं अद्वैतब्रह्मरूप निधि है । देहादिक अनात्मपदार्थनकी प्रतीतिरूप जो विक्षेप सो सर्प है । विक्षेपरूप सर्पकी निवृत्तिजन्य जो अवांतरआनंदरूपी रसका अनुभवरूप आस्वादन है, सो निधिरूपी अद्वैतब्रह्मकी प्राप्तिजन्य जो महाआनंद है, ताकी प्राप्तिका प्रतिबंधक होनैतैं विघ्न कहिये है ।

अथवा रसास्वादका यह और अर्थ हैः-- सविकल्पसमाधिसैं उत्तर निर्विकल्पसमाधि होवै है औ सविकल्पसमाधिमैं त्रिपुटी प्रतीत होवै है, यातैं सविकल्पसमाधिका आनंद त्रिपुटीरूप उपाधिसहित होनैतैं सोपाधिक कहिये है औ निर्विकल्पसमाधिमैं त्रिपुटी प्रतीत होवै नहीं । यातैं निरुपाधिक आनंद निर्विकल्पसमाधिमैं होवै है। इस रीतिसैं सविकल्पसमाधिसैं उत्तर निर्विकल्पसमाधिके आरंभमैं बी सविकल्पसमाधिके सोपाधिकआनन्दकूं त्यागि सकै नहीं । किंतु ताहीकूं अनुभव करै, सो **रसास्वाद** कहिये है। यातैं विक्षेपनिवृत्तिजन्य आनन्दका अनुभव अथवा सविकल्पसमाधिके आनंदका अनुभव **रसास्वाद** कहिये है ॥ सो दोनूं प्रकारका रसास्वाद निर्विकल्पसमाधिके परमानंदके अनुभवका विरोधी होनैतैं विघ्न है यातैं ताकूं बी त्यागै ॥

ऐसैं निर्विकल्पसमाधिमैं चारि विघ्न होवै हैं, सो चारि विघ्न समाधिके आरंभमैं होवै हैं । यातैं--

॥ ४७३ ॥ ज्ञानवान्‌की बाह्यप्रवृत्तिके असंभवके आक्षेपकी समाप्ति ॥

सावधानतासैं चारिविघ्नकूं रोकिके समाधिमैं परमानंदकूं विद्वान् अनुभव कर है । ताहीकूं **जीवन्मुक्त** कहै हैं ॥

इस रीतिसैं समाधिसैं ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं होवै है ॥

जब प्रारब्धबलतैं समाधिसैं उत्थान होवै, तब बी समाधिमैं जो परमानंदका अनुभव किया है, ताकी स्मृति होवै है । यातैं उत्थानकालमैं बी ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं । औ--

ज्ञानवान्‌की जो भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति होवै है, सो केवल प्रारब्धसैं होवै है । परंतु भोजनादिक व्यवहारमैं ज्ञानी खेद मानिके

प्रवृत्त होवै है। काहेतें? भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति बी समाधिसुखकी विरोधी है। जाकूं भोजनादिक शरीरनिर्वाहकी प्रवृत्ति ही खेदरूप प्रतीत होवै, ताकी अधिकप्रवृत्ति संभवै नहीं।

इस रीतिसैं बहुत आचार्योंनै यही पक्ष लिख्या है। औ जीवन्मुक्तिका आनंद बी बाह्यप्रवृत्तिमैं होवै नहीं। किंतु निवृत्तिमैं होवै है। यातैं जीवन्मुक्तिके सुखार्थी ज्ञानवान्‌की बाह्यप्रवृत्ति संभवै नहीं॥

(॥अंक ४६९-४७३ गत आक्षेपका समाधान ॥ ४७४-४७८ ॥)

॥ ४७४ ॥ ज्ञानी निरंकुश है। प्रारब्धसैं व्यवहारसिद्धि ॥

तथापि ज्ञानवान्‌के निवृत्तिका बी नियम कहना संभवै नहीं। काहेतैं? निवृत्तिमैं अथवा प्रवृत्तिमैं वेदकी आज्ञारूप विधि तौ ज्ञानीकूं है नहीं, जातैं ज्ञानीके व्यवहारमैं नियम होवै। यातैं ज्ञानी निरंकुश है। ताका व्यवहार प्रारब्धसैं होवै है॥

१ जिस ज्ञानीका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्र फलका हेतु है, ताकी भिक्षाभोजनमात्र प्रवृत्ति होवै है।

२ जाका प्रारब्ध अधिकभोगका हेतु होवै ताकी अधिकमैं बी प्रवृत्ति होवै है। और—

जो ऐसैं कहैः—जाका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्रका हेतु होवै, ताहीकूं ज्ञान होवै है। अधिकव्यवहारका हेतु जाका प्रारब्ध होवै, ताकूं ज्ञान होवै नहीं। यातैं भिक्षाभोजनादिक व्यवहारतैं अधिकव्यवहार ज्ञानीका होवै नहीं। जाकी अधिकप्रवृत्ति होवै, सो ज्ञानी नहीं॥

सो शंका बनै नहीं। काहेतैं?याज्ञवल्क्य जनकादिक ज्ञानी कहे हैं। सभाविजयतैं धनसंग्रहव्यवहार याज्ञवल्क्यका तथा राज्यपालनव्यवहार जनकका कह्या है औ वासिष्ठग्रंथमैं अनेक ज्ञानी पुरुषनके व्यवहार नानाप्रकारके कहे हैं। यातैं ज्ञानीके प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका नियम नहीं।

यद्यपि याज्ञवल्क्यनै सभाविजयतैं उत्तर विद्वत्संन्यासरूप निवृत्ति ही धारी है औ प्रवृत्तिमैं ग्लानिके हेतु नानादोष कहे हैं, तथापि 'याज्ञवल्क्यकूं विद्वत्संन्यासतैं पूर्व ज्ञान नहीं था, यह कहना तौ संभवै नहीं किंतु ज्ञान तौ प्रथम बी था। परंतु विद्वत्संन्यासतैं पूर्व जीवन्मुक्तिका आनंद प्राप्त हुवा नहीं। यातैं जीवन्मुक्तिके आनंदवासतैं सर्वसंग्रहका त्याग किया है॥ याज्ञवल्क्यका प्रारब्ध कुछ काल अधिकभोगका हेतु था औ उत्तरकाल न्यूनभोगका हेतु था। यातैं प्रथम तौ याज्ञवल्क्यकूं ग्लानि विना अधिक भोग औ आगे ग्लानितैं सर्वभोगनका त्याग हुवा है॥ औ—

जनकका प्रारब्ध मरणपर्यंत राज्यपालनादिकसमृद्धिभोगका हेतु हुवा है। यातैं सदा त्यागका अभाव ही हुवा है। भोगनमैं ग्लानि बी हुई नहीं॥ औ—

२ वामदेवादिकनका प्रारब्ध न्यूनभोगका हेतु हुवा है।तिनकूं सदा भोगनमैं ग्लानितैं प्रवृत्तिका अभाव ही कह्या है।

३ वासिष्ठमैं ऐसा बी प्रसंग हैः—शिखरध्वजकी ज्ञानतैं अनंतर अधिकप्रवृत्ति हुई है॥

इस रीतिसैं नानाप्रकारके विलक्षण व्यवहार

॥ ४९९॥ अब इहांसैं ग्रंथकार पूर्वउक्त ज्ञानवान्‌के निवृत्तिके नियमविषै शंकाका समाधान कहै हैं॥

ज्ञानी पुरुषनके कहे हैं, तिन सर्वकूं ज्ञान समान है औ ताका फल मोक्ष बी समान है औ प्रारब्धभेदसैं व्यवहारका भेद है । व्यवहारकी न्यूनतासैं जीवन्मुक्तिके सुखकी अधिकता औ व्यवहारकी अधिकतासैं जीवन्मुक्तिके सुखकी न्यूनता होवै है । याके विषे:--

॥ ४७५ ॥ ज्ञानीकूं विदेहमोक्षत्याग वा परलोककी इच्छा होवै नहीं ॥

कोई यह शंका करै हैः—जो जीवन्मुक्तिके सुखकूं त्यागिके तुच्छभोगनमैं प्रवृत्त होवै, सो विदेहमोक्षकूं बी त्यागिके वैकुंठादिक लोककी इच्छा धारिके जावैगा ।

सो शंका बनै नहीं । काहेतैं ?

१ जीवन्मुक्तिके सुखका त्याग औ भोगनमैं प्रवृत्ति तौ ज्ञानीकी प्रारब्धबलतैं संभवै है । औ—

२ विदेहमोक्षका त्याग औ परलोककूं गमन संभवै नहीं । काहेतैं ?

(१) ज्ञानीके प्राण बाहरि गमन करैं नहीं । यातैं परलोककूं गमन संभवै नहीं । औ--

(२) विदेहमोक्षका त्याग बी संभवै नहीं । काहेतैं? ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति होयके प्रारब्धभोगतैं अनंतर स्थूलसूक्ष्म-शरीराकार अज्ञानका चेतनमैं लय विदेहमोक्ष कहिये है । सो अवश्य होवै है । जो मूल अज्ञान बाकी रहै अथवा नष्ट अज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै तौ विदेहमोक्षका अभाव होवै । सो मूलअज्ञानका विरोधी ज्ञान हुयेतैं अज्ञान बाकी रहै नहीं औ प्रमाणतैं नाश हुये अज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै नहीं । यातैं विदेहमोक्षका अभाव होवै नहीं । औ--

३ विदेहमोक्षके त्यागमैं तथा परलोकके गमनमैं ज्ञानीकी इच्छा बी संभवै नहीं । काहेतैं ?

(१) ज्ञानीकूं इच्छा केवल प्रारब्धसैं होवै है । जितनी सामग्री विना प्रारब्धका भोग संभवै नहीं उतनी सामग्रीकूं प्रारब्ध रचै है । इच्छा-

---

॥९००॥ इहां यह सांप्रदायिक श्लोक है:-

कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी राजानौ जनकराघवौ ।
वसिष्ठः कर्मकर्त्ता च त एते ज्ञानिनः समाः॥१॥

अस्यार्थः--

१ कृष्ण भोगी है ।

२ शुकदेव त्यागी भया है ।

३ जनक अरु रामचन्द्र राजा भये हैं ॥ औ—

४ वसिष्ठमुनि कर्मका कर्त्ता भया है ॥

इस रीतिसैं इनका प्रारब्धभेदतैं विलक्षण व्यवहार भया है । तथापि वे औ ये (आधुनिक) ज्ञानी समान हैं ॥ १ ॥

उक्त अर्थके प्रतिपादक ये चित्रदीपके श्री श्लोक हैं:-

आरब्धकर्मनानात्वाद्बुधानामन्यथान्यथा ।
वर्त्तनं तेन शास्त्रार्थे भ्रमितव्यं न पण्डितैः॥२
स्वस्वकर्मानुसारेण वर्त्ततां ते यथातथा ।
अविशिष्टःसर्वबोधः समा मुक्तिरिति स्थितिः ३॥

प्रारब्धकर्मके नाना होनेंकरि ज्ञानिनका और-और प्रकारसैं (परस्परविलक्षण) वर्त्तना है । तिसकरि पंडितजनोंनै दृढबोधसैं मोक्षके प्रतिपादक शास्त्रके अर्थविषै भ्रांत होना योग्य नहीं ॥ २ ॥

सो ज्ञानी अपनै अपनै कर्मके अनुसार करि जैसैं तैसैं (विलक्षण) वर्त्तन करो । सर्वका बोध समान है औ मुक्ति समान है । यह स्थिति (शास्त्र औ विद्वानोंका निर्धार) है ॥ ३ ॥

॥ ९०१ ॥ यह शंका द्वैतविवेकविषै विद्यारण्य स्वामीनै लिखी है ॥

विना भोग संभवै नहीं । यातैं ज्ञानीकी इच्छा बी प्रारब्धका फल है ॥ औ—

(२) अन्यलोकमैं अथवा इस लोकमैं अन्य शरीरका संबंध ज्ञानीकूं प्रारब्धसैं बी होवै नहीं। यह पूर्व इसी तरंगमैं प्रतिपादन करि आये हैं।

यातैं ज्ञानीकूं प्रारब्धसैं विदेहमोक्ष त्यागकी वा परलोकके गमनकी इच्छा होवै नहीं ॥

॥ ४७६ ॥ ज्ञानीकी मंदप्रारब्धसैं—
जीवन्मुक्तिसुखकी विरोधिनी प्रवृत्ति॥

जीवन्मुक्तिके सुखके विरोधी वर्त्तमानशरीरमैं अधिकभोगनकी इच्छा तौ भिक्षाभोजनादिकनकी न्यांई जनकादिकनकूं संभवै है ॥

या स्थानमैं यह रहस्य है:—ज्ञानीकी बाह्य प्रवृत्ति जीवन्मुक्तिकी विरोधिनी नहीं । किंतु जीवन्मुक्तिके विलक्षणसुखकी विरोधिनी है, काहेतैं ? आत्मा नित्यमुक्त है । अविद्यासैं बंध प्रतीत होवै है ॥ जिस कालमैं ज्ञान होवै है, तिसी कालमैं अविद्याकृत बंधभ्रम नष्ट होवै है। ज्ञान हुयेतैं फेरि बंधभ्रांति होवै नहीं ॥ शरीरसहितकूं बंधभ्रमका अभाव ही जीवन्मुक्ति कहियै है॥देहादिकनकी प्रवृत्तिमैं तथा निवृत्तिमैं ज्ञानीकूं बंधभ्रांति आत्मामैं होवै नहीं, यातैं बाह्य प्रवृत्तिसैं बी जीवन्मुक्ति दूरि होवै नहीं ॥ तौ बी बाह्यप्रवृत्तिमैं जीवन्मुक्तिकूं विलक्षण सुख होवै नहीं । एकाग्रतारूप अंतःकरणपरिणामतैं

॥ ५०२ ॥ द्वैतविवेकविषै पूर्वउक्तशंकारूप तर्कके कर्त्ता श्रीविद्यारण्यस्वामीका "मंदप्रारब्धसैं भोगादिकमैं प्रवृत्त ज्ञानीकूं विदेहमोक्षके त्यागकी वा परलोकके गमनकी इच्छा होवैगी" इस अर्थविषै अभिप्राय नहीं । किंतु प्रयत्नरहित जे ज्ञानी हैं तिनकूं यथेष्टाचरणकी हेतु भोगादिककी आसक्ति छुडायके जीवन्मुक्तिके सुखविषै आसक्त करनैमैं अभिप्राय है ।

जैसैं रोगिष्ठ पदार्थके खानैवाले पुत्रकूं परमहितेच्छु जो तिसकी माता सो "हे पुत्र ! जब तू आरोग्यकी इच्छा त्यागिके देखनैमात्र सुन्दर इन रोगिष्ठपदार्थनकूं विवेक छोडिके खाता है, तब वंचकोंके किये हुये विषयुक्त लड्डुके भक्षणके लोभकरि तूं जीवनकी इच्छा बी त्याग देगा" ऐसैं कहनैवाली माताका "पुत्रकूं जीवनके त्यागकी औ विषयुक्त लड्डुके खानैकी इच्छा होवैगी" इस अर्थमैं अभिप्राय नहीं । किंतु तर्ककरि रोगके हेतु रोगिष्ठपदार्थनके भक्षणकी आसक्ति छुडायके आरोग्य (नीरोगता) मैं आसक्त करनैविषै अभिप्राय है ।

तैसैं विद्यारण्यस्वामीका बी "विवेककूं छोडिके (उपेक्षाकरिके) मंदप्रारब्धके फलमैं सहायक वासनाकरि किंवा केवलवासनाकरि विक्षेपके हेतु कामादिककी परवशतारूप प्रमादकूं प्राप्त भये ज्ञानीकूं जीवन्मुक्तिरूप जीवनके त्यागकी औ परलोकके भोगकी इच्छा होवैगी" इस अर्थमैं अभिप्राय नहीं । किन्तु अनिष्टापादनरूप तर्कसैं ताकूं यथेष्टाचरणरूप रोगकी हेतु भोगमैं प्रवृत्ति छुडायके जीवन्मुक्तिके विलक्षणसुखरूप आरोग्यमैं आसक्त करनैविषै अभिप्राय है ॥ औ—

दृढ बोधवान् मोक्षकी इच्छासैं रहित हुया बी मुक्त होवै है। या अर्थमैं भाष्यकारका वचन प्रमाण है ॥ श्लोक:—

देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम् ।
आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते ॥१॥

अर्थः—अज्ञानीकूं देहविषै आत्मबुद्धिकी न्यांई जाकूं देहविषै आत्मज्ञानका बाधक ज्ञान ब्रह्मसैं अभिन्न आत्माविषै होवै, सो वृक्षसैं छूटे हस्तवाले नरकी न्यांई न इच्छता हुआ बी मुक्त होवै है १ औ

स्वप्नतैं जागे पुरुषकूं जैसैं स्वप्नभ्रांतिकी निवृत्तिके त्यागविषै अरु स्वप्नगत परलोकके गमनविषै इच्छा संभवै नहीं, तैसैं ज्ञानीकूं बन्धभ्रांतिकी निवृत्तिरूप विदेहमोक्षके त्यागविषै अरु स्वर्गादिपरलोकके गमनविषै इच्छा संभवै नहीं ।

सुख होवै है। सो एकाग्रतापरिणाम बाह्यवृत्तिमैं होवै नहीं।

इस रीतिसैं प्रारब्धभेदतैं ज्ञानी पुरुषनके व्यवहार नानाप्रकारके हैं। परंतु जाका प्रारब्ध अधिकप्रवृत्तिका हेतु होवै है, ताका मंदप्रारब्ध कहिये है। काहेतैं? अधिकप्रवृत्ति एकाग्रताकी विरोधी है औ एकाग्रता विना निरुपाधिक आनंद प्रतीत होवै नहीं। यह समाधिनिरूपणमैं कही है॥ और-

॥४७७॥ ज्ञानीके व्यवहारका अनियम ॥ ४७७-४७८ ॥

जो पूर्व कह्या:-"ज्ञानवान्कूं सर्व अनात्मपदार्थनमैं मिथ्याबुद्धि होवै है, राग होवै नहीं यातैं प्रवृत्ति संभवै नहीं" सो शंका बी बनै नहीं। काहेतैं?

जैसैं देहविषै मिथ्याबुद्धि बी ज्ञानीकूं होवै है तौ बी देहके अनुकूल जो भिक्षादिक हैं, तिनमैं केवल प्रारब्धसैं प्रवृत्ति होवै है, तैसैं जिसका अधिकभोगका प्रारब्ध होवै, तिस ज्ञानीकी अधिकप्रवृत्ति बी होवै है॥

जैसैं बाजीगरके तमासेकूं मिथ्या जानिके सर्वलोकनकी प्रवृत्ति होवै है, तैसैं सर्वपदार्थनमैं ज्ञानीकूं मिथ्याबुद्धि हुयेसैं बी प्रवृत्ति संभवै है॥ और--

॥ ४७८ ॥ जो ऐसैं कहैः-जाकूं जिस पदार्थमैं दोषदृष्टि होवै ताके विषै तिस पुरुषकी प्रवृत्ति होवै नहीं। ज्ञानीकूं अनात्मपदार्थनमैं दोषदृष्टि होवै है, राग होवै नहीं, यातैं प्रवृत्ति संभवै नहीं॥

सो बी बनै नहीं। काहेतैं? जिस अपथ्य सेवनमैं रोगीनै अन्वयव्यतिरेकतैं दोषनिश्चय किया है, ता अपथ्यसेवनमैं प्रारब्धतैं जैसैं रोगीकी प्रवृत्ति होवै है, तैसैं प्रारब्धसैं ज्ञानीकी

॥ ५०३ ॥ जैसैं सारी पृथिवीके राज्यकूं प्राप्त भये पुरुषकूं रोगका हेतु प्रारब्ध भोगका विरोधि होनैतैं मंद कहिये है, तैसैं अविद्यातत्कार्यरूप शत्रुनका संहार करिके ब्रह्मभावकूं प्राप्त भये ज्ञानीका अधिकप्रवृत्तिका हेतु प्रारब्ध एकाग्रताका विरोधि होनैतैं मंद कहिये है॥

इहां मंदपदका निकृष्ट अर्थ है। शिथिल अर्थ नहीं। काहेतैं? जैसैं उक्तराजा शिथिलप्रारब्धजन्य सुसाध्य वा कष्टसाध्य रोगकी तौ औषधआदिक प्रयत्नसैं निवृत्ति करै है। परंतु तीव्रतरप्रारब्धजन्य असाध्यरोगकी निवृत्ति करनी तिसतैं अशक्य है, तैसैं शिथिलप्रारब्धके फलरूप प्रवृत्तिकूं तौ ज्ञानी जीवन्मुक्तिके सुखअर्थ वासना (रागद्वेष) के निवारणरूप प्रयत्नसैं दूरी करै है। परंतु तीव्रतरप्रारब्धकी फलरूप प्रवृत्ति तिसकारि निवारण करनैकूं अशक्य है इस रीतिसैं व्यवस्थाके किये प्रारब्ध औ पुरुषार्थ दोनूं सफल होवै हैं। यातैं अधिकप्रवृत्तिका हेतु प्रारब्ध शिथिल नहीं है। किंतु निकृष्ट है। यातैं मंद कहिये है।

॥ ५०४ ॥ पूर्व षष्ठतरंगगत ४०६ वें अंकविषै कह्या॥

॥ ५०५ ॥ इहां यह विवेक है:—१ मंद, २ तीव्र औ ३ तीव्रतर इन भेदनतैं प्रारब्धकर्म तीनि भांतिका है॥

१ जाका उपादेयफल भिक्षाके अन्नकी न्याईं अधिकप्रयत्नसैं प्राप्त होवै अरु जाका अकस्मात् प्राप्त भया हेयफल सुसाध्य रोगकी न्याईं अल्पप्रयत्नसैं निवृत्ति होवै, ऐसा जो प्रारब्ध सो मंदप्रारब्ध है॥ औ-

२ जाका उपादेयफल निमंत्रणके अन्नकी न्याईं अल्पप्रयत्नसैं प्राप्त होवै अरु जाका अकस्मात प्राप्त भया हेयफल कष्टसाध्यरोगकी न्याईं अधिकप्रयत्नसैं निवृत्त होवै, ऐसा जो प्रारब्ध सो तीव्रप्रारब्ध है॥ औ-

३ जाका उपादेयफल आसनपर प्राप्त भये अन्नकी न्याईं विना प्रयत्नसैं आप ही प्राप्त होवै अरु जाका बलात्कारसैं प्राप्त भया हेयफल

सर्वव्यवहारमैं प्रवृत्ति दोषदृष्टि हुये बी संभवै है। इस रीतिसैं ज्ञानीके व्यवहारका नियम[९०६] नहीं ॥

यह पक्ष विद्यारण्यस्वामीनै विस्तारसैं[९०७] तृप्तिदीपमैं प्रतिपादन किया है, यातैं तत्त्वदृष्टिका व्यवहार नियमरहित है। समाधिरूप नियमकी विधि सुनिके तत्त्वदृष्टि हँसै है ॥

बलीवर्दके डामकी न्यांई मरणांतप्रयत्नसैं बी निवृत्त होवै नहीं, ऐसा जो प्रारब्ध सो **तीव्रतरप्रारब्ध** है ॥

इस रीतिसैं मंद औ तीव्रप्रारब्धका फल प्रयत्नके अधीन है। तिस प्रयत्नकी हेतु शुभाशुभवासना है। तिस वासनाकी निवृत्ति बी पुरुषार्थसैं (पुरुषके प्रयत्नसैं) होवै है ॥ तिनमैं-

१ **शुभवासनाकी निवृत्ति** कुसत्संगादिक पुरुषार्थसैं होवै है। औ-

२ **अशुभवासनाकी निवृत्ति** सत्संग अरु विवेकज्ञानादिकसैं होवै है।

जातैं ज्ञानी सत्संग अरु विवेकज्ञानादिगुणकरि संपन्न है, यातैं ताके चित्तमैं कोई अशुभप्रवृत्तिकी हेतु अशुभवासना होवै नहीं। किंतु शुभप्रवृत्तिकी हेतु शुभवासना ही होवै है। यातैं तिस ज्ञानीकी मंद औ तीव्रप्रारब्धके निषिद्धफलविषै विधिनिषेधसैं जन्य गुणदोषबुद्धिके अभाव हुये बी शुभवासनारूप स्वभावसैं पागलवैष्णवकी न्यांई बी ब्राह्मणादिकके बालककी न्यांई प्रवृत्ति संभवै नहीं किंतु निवृत्ति ही संभवै है ॥ औ-

रोगीकी अन्वयव्यतिरेकतैं दोषनिश्चयके होते बी जो अपथ्यसेवनमैं प्रवृत्ति होवै है, सो प्रयत्नशील रोगीकी नहीं होवै है। किंतु जिह्वालोलुप प्रयत्नरहित रोगीकी अपथ्यसेवनमैं प्रवृत्ति होवै है औ किसी प्रयत्नशील रोगीकी बी अपथ्यसेवनमैं प्रवृत्ति होवै है, सो **तीव्रतरप्रारब्धका फल** है ॥

इस रीतिसैं दोषनिश्चयरूप औ मिथ्यात्वनिश्चयरूप दृढविवेकयुक्त ज्ञानीकी मंद वा तीव्र प्रारब्धके फलभूत यथेष्टाचरणरूप निषिद्धप्रवृत्ति संभवै नहीं॥

॥ ४७९ ॥ तत्त्वदृष्टिका देशादिअपेक्षारहित देहपात ॥ ४७९-४८० ॥

॥ दोहा ॥

भ्रमन करत कछु काल थूं,
तत्त्वदृष्टि सुज्ञान ॥

जो प्रारब्धका भक्त कहै किः-प्रारब्धका फल सर्वथा अनिवार्य है, यातैं पुरुषप्रयत्न व्यर्थ है।

सो कथन बनै नहींः-काहेतैं ? जो ऐसैं होवै तौ सर्वज्ञरचित वैद्यशास्त्र, मंत्रशास्त्र औ योगशास्त्र आदिक उपायके बोधक शास्त्र व्यर्थ होवैंगे औ दृष्टफलके हेतु उपायनके बोधक तिन शास्त्रनकूं व्यर्थ कहना बनै नहीं। इस व्यवस्थाकरि प्रारब्ध औ पुरुषार्थ दोनूं सफल होवै हैं। यह वासिष्ठआदिक उत्तम ग्रंथनका मत है ॥

इहां कछु अधिक विचार है, सो हम प्रमादमुद्गरमैं लिखैंगे। इहां प्रसंगसैं दिशामात्र जनाई है ॥

॥ ९०६ ॥ इहां यह अभिप्राय हैः-स्वाधीनकार्यविषै नियम होवै है। पराधीनकार्यविषै नियम संभवै नहीं ॥ जातैं ज्ञानीके शरीरनका व्यवहार नानाप्रारब्धके आधीन है। यातैं हाथसैं छूटे बाणवेगके आधीन गौके वेधकी न्यांई प्रारब्धके आधीन ज्ञानीके देहके व्यवहारका नियम संभवै नहीं ॥

यद्यपि रागादिवासनाकूं रोकिके स्वाधीनचित्तवाले केइक ज्ञानी, मंद किंवा तीव्रप्रारब्धके फलरूप शरीरके व्यवहारकूं नियममैं ही रखते हैं, **तथापि** तीव्रतरप्रारब्धके फलरूप शरीरके व्यवहारका नियम ज्ञानीसैं बी बनै नहीं ॥

॥ ९०७ ॥ ज्ञानीकूं प्रीतिसे विना प्रारब्धभोग होवै है औ सो प्रारब्ध इच्छा अनिच्छा औ परेच्छाभेदतैं तीनि भांतिका है। यह अर्थ श्रीविद्यारण्यस्वामीनै तृप्तिदीपविषै १४३ सैं १६२ वें श्लोकपर्यंत लिख्या है। जाकूं जाननैकी इच्छा होवै, सो तहां देख लेवै। विस्तारके भयतैं इहां लिख्या नहीं ॥

भोगै निजप्रारब्ध तब,
लीन भये तिहिं प्रान ॥ १७ ॥

टीकाः-

१ प्रारब्धभोगतैं अनंतर ज्ञानीके प्राण गमन करैं नहीं। यातैं 'तत्त्वदृष्टिके प्राण लीन हुये' यह कह्या ॥ औ--

२ ज्ञानीके शरीरत्यागमैं कालविशेषकी अपेक्षा नहीं । उत्तरायणमैं अथवा दक्षिणायनमैं देहपात होवै । सर्वथा मुक्त है ।

३ तैसैं देशविशेषकी अपेक्षा नहीं । काशीआदिक पुनीत देशमैं अथवा अत्यत मलिन देशमैं ज्ञानीका देहपात होवै । सर्वथा मुंक्त है ॥

४ तैसैं आसनविशेषकी अपेक्षा नहीं । पृथिवीमैं शव आसनतैं अथवा सिद्ध-आसनतैं देहपात होवै ॥

५ तैसैं सावधान ब्रह्मचिंतन करतेका अथवा रोगव्याकुल हाहाशब्द पुकारतेका देहपात होवै । सर्वथा मुक्त है । काहेतैं ? जिस कालमैं ज्ञानतैं अज्ञान निवृत्त हुया तिसी कालमैं ज्ञानी मुक्त है ॥

यातैं ज्ञानीकूं विदेहमोक्षमैं देशकालआसना-दिकनकी अपेक्षा नहीं ।

जैसैं ज्ञानीकूं देहपातमैं देशकालादिकनकी अपेक्षा नहीं, तैसैं ज्ञानके निमित्त श्रवणमैं बी देशकालआसनादिकनकी अपेक्षा नहीं । औ--

॥ ४८० ॥ उपासककूं देशकालादिकनकी अपेक्षा है ।

यद्यपि भीष्मादिक ज्ञानी कहे हैं औ भीष्मनै उत्तरायण विना प्राण त्याग किये नहीं तथापि भीष्मादिक अधिकारी पुरुष हैं, यातैं उपासक-नके उपदेशवासते तिन्हेंनै कालविशेषकी प्रतीक्षा करी है । औ--

वसिष्ठ भीष्मादिक अधिकारी हैं, यातैं हीं उनकूं अनेक जन्म हुये हैं । काहेतैं ? अधिकारी पुरुषनका एककल्पपर्यंत प्रारब्ध होवै है । कल्पके अंत विना विदेहमोक्ष होवै नहीं औ कल्पके भीतरि तिनकूं इच्छाबलतैं नानाशरीर होवै हैं । तथापि आत्मस्वरूपविषै तिनकूं जन्ममरणभ्रांति होवै नहीं । यातैं जीवन्मुक्त हैं ॥ तिन अधिकारी पुरुषनका व्यवहार संपूर्ण अन्यके उपदेशनिमित्त है ॥ औ--

अन्य ज्ञानीके व्यवहारमैं कोई नियम नहीं। इस अभिप्रायमैं तत्त्वदृष्टिके देहपातका देश-कालआसनादिक कुछ कह्या नहीं ॥

॥ ४८१ ॥ अदृष्टिका देशादिकअपेक्षा-सहित देहपात ॥

॥ दोहा ॥

दूजो सिष्य अदृष्टि तिहि,
गंगातट सुभथान ।
देस इकंत पवित्र अति,
कियो ब्रह्मको ध्यान ॥ १८ ॥

॥ ५०८ ॥ इहां यह सांप्रदायिक वचन हैः—

॥ श्लोकः ॥

देहः पततु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा ।
ज्ञानसंप्राप्तिसमये सर्वथा मुक्त एव सः ॥ १ ॥

अस्यार्थः--ज्ञानीका देह काशीविषै पडो अथवा चांडालके गृहविषै पडो । परन्तु ज्ञानप्राप्तिके समयमैं बन्धभ्रांतिकी निवृत्तितैं सो ज्ञानी सर्वथा (सर्वप्रकारसैं) मुक्त ही है ॥ १ ॥

॥ ५०९ ॥ यह अर्थ विद्यारण्यस्वामीनै बी भूतविवेकके अन्तमैं लिख्या है ॥

सास्त्ररीति तजि देहकूं,
पूरव कह्यो जु राह ।
जाय मिल्यो सो ब्रह्मतैं,
पायो अधिक उछाह ॥ १९॥

टीकाः-जैसैं ज्ञानीकूं देशकालकी अपेक्षा नहीं, तासैं विपरीत उपासककूं जाननी ।

उत्तमदेशमैं उत्तम उत्तरायणादिक कालमैं उपासक शरीर तजै, तब उपासनाका फल होवै औ—

ज्ञानीकूं मरणसमय सावधानतासैं ज्ञेयकी स्मृतिकी अपेक्षा नहीं । उपासककूं मरणसमय ध्येयके स्वरूपकी स्मृतिकी अपेक्षा है ।

१ जिस ध्येयका पूर्व ध्यान किया है, ता ध्येयकी स्मृति मरणसमय होवै, तब उपासनाका फल होवै है ॥

२ जैसैं ध्येयकी स्मृति चाहिये तैसैं ध्येयब्रह्मकी प्राप्तिका जो मार्ग पंचमतरंगमैं कह्या है, ताकी बी स्मृति चाहिये। काहेतैं ? मार्गचिंतन बी उपासनाका अंग है । औ—

ज्ञाननिमित्त श्रवणमैं देशकालआसनकी अपेक्षा नहीं । ध्यानमैं उत्तमदेश, निरंतरकाल औ सिद्धादिक आसनकी अपेक्षा है । यातैं अदृष्टिकूं उत्तमदेश, गंगातीरमैं स्थिति औ मरणसमय बी योगशास्त्ररीतिसैं देहपात कह्या।

(॥ तर्कदृष्टिका निश्चय । विद्याके अष्टादशप्रस्थान ४८२-४९१ ॥)

॥ ४८२॥ सर्वशास्त्रनकूं ब्रह्मज्ञानकी हेतुता ॥

॥ दोहा ॥

तर्कदृष्टि पुनि तीसरो,
लहि गुरुमुखउपदेस ।
अष्टादसप्रस्थान जिन,
अवगाहन करि बेस ॥ २० ॥
जेती बानी वैखरी,
ताको अलं पिछान ।
हेतु मुक्तिको ज्ञान लखि,
अद्वयनिश्चय ज्ञान ॥ २१ ॥

टीकाः-तर्कदृष्टि नाम तीसरा गुरुद्वारा उपदेशकूं श्रवण करिके सुनै अर्थमैं अन्यशास्त्रनका विरोध दूरि करनैकूं सर्वशास्त्रनका अभिप्राय विचारिके यह निश्चय किया:-

१ सकलशास्त्रनका परमप्रयोजन मोक्ष है ।
२ मोक्षका साधन ज्ञान है ।
३ सो ज्ञान अद्वयनिश्चयरूप है ।
४ भेदनिश्चय यथार्थज्ञान नहीं ।
५ सारे शास्त्र साक्षात् अथवा परंपरातैं ब्रह्मज्ञानके हेतु हैं ॥

यद्यपि संस्कृतवैखरीवाणीके अष्टादश प्रस्थान हैं । तिनमैं—

१ कोई कर्मकूं प्रतिपादन करै हैं ।
२ कोई विषयसुखके उपायनकूं प्रतिपादन करै हैं ।
३ कोई ब्रह्मभिन्न देवनकी उपासनाकूं बोधन करै हैं ॥
४ तैसैं ज्ञाननिमित्त जो न्यायसांख्यआदिक शास्त्र हैं, सो बी भेदज्ञानकूं ही यथार्थज्ञान कहै हैं ।

यातैं सर्वकूं अद्वैतब्रह्मकी बोधकता बनै नहीं ॥

तथापि सकलशास्त्रनके कर्त्ता सर्वज्ञ हुये हैं औ कृपालु हुये हैं, यातैं तिनके किये मूलसूत्रनका तौ वेदके अनुसार ही अर्थ है । परंतु तिनके व्याख्यानकर्त्ता भ्रांत हुये हैं। मूलसूत्र-

कारनके अभिप्रायतैं विलक्षण अर्थ किया है। सो वेदसैं विरुद्ध तिन सूत्रनका अर्थ नहीं। किंतु सर्वशास्त्रनका वेदानुसारी अर्थ है। यह तर्कदृष्टिनै उत्तमसंस्कारतैं निश्चय किया ॥

॥ ४८३ ॥ विद्याके अष्टादशप्रस्थान ॥

विद्याके अष्टादशप्रस्थान ये हैं:-चारि वेद, चारि उपवेद, षट् वेदके अंग, पुराण, न्याय, मीमांसा औ धर्मशास्त्र। इस रीतिसैं वैखरीवाणीरूप विद्याके अठारह भेद हैं। तिन्हकूं प्रस्थान कहै हैं ॥

॥४८४॥ चारिवेदका ब्रह्मज्ञानमैं तात्पर्य॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद औ अथर्ववेद, ये चारि वेद हैं। तिनमैं--

१ कितनै वचन ज्ञेयब्रह्मकूं बोधन करै हैं।
२ कितनै ध्येयकूं बोधन करै हैं। औ--
३ बाकी कर्मकूं बोधन करै हैं।

जो कर्मके बोधक वेदवचन हैं, तिनका बी अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञान ही प्रयोजन है ॥ औ-

प्रवृत्तिमैं किसी वेदवचनका अभिप्राय नहीं। किंतु निषिद्धस्वाभाविक प्रवृत्तिसैं रोकनैमैं अभिप्राय है। यातैं अभिचारादिकर्मका प्रतिपादक जो अथर्ववेद है ताका बी निवृत्तिमैं तात्पर्य है ॥ जो द्वेषतैं शत्रुमारणमैं प्रवृत्त होवै तौ गरदानसैं अथवा अग्निदाहसैं शत्रुकूं नहीं मारै। इस वास्तैं अभिचारकर्म श्येनयागादिक कहिये हैं॥ शत्रुमारणके निमित्त जो कर्म सो अभिचार कहिये हैं॥ ऐसा श्येन नाम यज्ञ है ॥

श्येनयागका बोधक जो वेदवचन है ताका यह अर्थ नहीं:-शत्रुमारणकामनावाला श्येनयागमैं प्रवृत्त होवै। किंतु शत्रुमारणकी जाकूं कामना होवै, सो श्येनयागतैं भिन्न जो गरदानादिक शत्रुमारणके उपाय हैं, तिनमैं प्रवृत्त होवै नहीं। इस रीतिसैं द्वेषतैं प्राप्त जो गरदानादिक तिनतैं निवृत्तिमैं श्येनयागबोधक वचनका अभिप्राय है। प्रवृत्तिमैं नहीं। काहेतैं ? प्रवृत्ति द्वेषतैं प्राप्त है। जो अन्यतैं प्राप्त होवै तामैं वाक्यका अभिप्राय होवै नहीं ॥

इस रीतिसैं सारे अथर्ववेदका निवृत्तिमैं तात्पर्य है। और तीनि वेदनमैं कर्मबोधकवाक्यनका अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानमैं उपयोग स्पष्ट है ॥ तैसैं-

---

॥ ९१० ॥ विद्याके अंगकूं प्रस्थान कहै हैं ॥ विद्याके अष्टादश प्रस्थान अग्निपुराणके आरम्भमैं तथा मधुसूदनस्वामीकृत प्रस्थानभेदमैं लिखे हैं।

॥ ९११ ॥ गर नाम जहर, तिसका दान कहिये देना, सो **गरदान** कहिये है। तिसतैं आदिलेके

॥ ९१२ ॥ जैसैं-

१ "पर्णीत भर्याका संग करना" औ-
२ "ऋतुमती भार्याका संग करना" औ-
३ "हुतशेष (होमकरिके अवशेष रहे मांस) का भक्षण करना" औ--
४ "सूत्रामणियागविषै सुरापान करना"

इत्यादि वेदके विधिवचनोंका जैसैं अन्य (राग) तैं प्राप्त सर्व स्त्रीका संग किंवा सर्वदा पर्णीत स्त्रीका संग किंवा मांसमद्यकी सेवा, तिनविषैं प्रवृत्ति करावनैमैं अभिप्राय नहीं। किन्तु तिनविषै स्वाभाविक जो प्रवृत्त है तिसके संकोचद्वारा निवृत्तिमैं अभिप्राय है, यातैं वे वेदवाक्य **परिसंख्याविधिरूप** हैं। नियमविधिरूप किंवा अपूर्वविधिरूप नहीं ॥

तैसैं श्येनयागबोधक अथर्ववेदके वचनका बी अन्यतैं (द्वेषतैं) प्राप्त शत्रुमारणविषै प्रवृत्तिमैं अभिप्राय नहीं। किन्तु तिस स्वाभाविक प्रवृत्तिके रोकनैद्वारा तिन गरदानआदिकनतैं निवृत्तिमैं अभिप्राय है। यातैं यह श्येनयागबोधक वचन बी परिसंख्याविधिरूप है ॥

अन्यतैं प्राप्तअर्थका तिसके संकोचके निमित्त बोधक जो वेदवचन सो **परिसंख्यारूप** कहिये है।

इन विधिवचनोंका सविस्तर वर्णन वेदांतपदार्थमंजूषाविषै किया है।

॥ ४८५ ॥ चारि उपवेदका ब्रह्मज्ञानमैं तात्पर्य ॥

चारि उपवेद हैं-आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद औ अर्थवेद । तिनमैं--

१ आयुर्वेदके कर्त्ता ब्रह्मा, प्रजापति, अश्विनीकुमार, धन्वंतरि आदिक हैं । चरक वाग्भट्टादिकृत चिकित्साशास्त्र बी आयुर्वेद है औ वात्स्यायनकृत कामशास्त्र बी आयुर्वेदके अंतर्भूत है । काहेतें ? कामशास्त्रका विषय वाजीकरण-स्तंभनादिक बी चरकादिकनै कथन किये हैं । तिस आयुर्वेदका वैराग्यमैं ही अभिप्राय है । काहेतें ? आयुर्वेदकी रीतिसैं रोगादिकनकी निवृत्ति हुयेतें बी फेरि रोगादिक उत्पन्न होवै हैं, यातें लौकिक उपाय तुच्छ हैं, इस अर्थमैं आयुर्वेदका अभिप्राय है । औ औषधदानादिकनतें पुण्य होयके अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा बी ज्ञानमैं उपयोग है ॥ तैसैं--

२ विश्वामित्रकृत धनुर्वेदमैं आयुधनिरूपण किये हैं । आयुध चारि प्रकारके हैं-(१) मुक्त, (२) अमुक्त, (३) मुक्तामुक्त औ (४) यंत्रमुक्त ।

(१) चक्रादिक हाथसैं फैंकिये, सो मुक्त कहिये है ॥

(२) खड्गादिक अमुक्त कहिये है ।

(३) बरछीआदिक मुक्तामुक्त कहिये है ।

(४) शर गोलीआदिक यंत्रमुक्त कहिये है ।

इस रीतिसैं चारि प्रकारके आयुध हैं । तिनमैं--

(१) मुक्तआयुधकूं अस्त्र कहै हैं ॥

(२) अमुक्तकूं शस्त्र कहै हैं ॥

इन चारि प्रकारके आयुधनकूं ब्रह्मा, विष्णु, पशुपति, प्रजापति, अग्नि, वरुण आदिक देवता मंत्र कहै हैं । क्षत्रिय-कुमार अधिकारी कहै हैं औ तिनके अनुसारी ब्राह्मणादिक बी अधिकारी कहै हैं । तिनके चारि भेद कहै हैं:-१ पदाति, २ रथारूढ, ३ अश्वारूढ, औ ४ गजारूढ । और युद्धमैं शकुन मंगल कहै हैं ॥

(१) इतना अर्थ धनुर्वेदके प्रथमपादमैं कह्या है । औ--

(२) आचार्यका लक्षण तथा आचार्यतें शस्त्रोंके ग्रहणकी रीति, धनुर्वेदके द्वितीयपादमैं कही है । औ—

(३) गुरुसंप्रदायतैं प्राप्त हुये शस्त्रोंका अभ्यास तथा मंत्रसिद्धि-देवतासिद्धिका प्रकार तृतीयपादमैं कह्या है ।

(४) सिद्ध हुये मंत्रनका प्रयोग चतुर्थपादमैं कह्या है ।

इतना अर्थ धनुर्वेदमैं हैं । सो ब्रह्माप्रजापति-आदिकनतैं विश्वामित्रकूं प्राप्त हुवा है । तानैं प्रकट किया है औ विश्वामित्रतैं धनुर्वेद उत्पन्न नहीं हुवा ॥

दुष्टचौरादिकनतैं प्रजापालन क्षत्रियका धर्मबोधक धनुर्वेद है । यातैं ताका बी अंतःकरणशुद्धि करिके ज्ञानद्वारा मोक्षमैं ही अभिप्राय है ॥ तैसैं—

३ गांधर्ववेद भरतनै प्रगट किया है । तामैं स्वर, ताल, मूर्छनासहित गीत, नृत्य औ वाद्यका निरूपण विस्तारसैं किया है । देवताका आराधन, निर्विकल्पसमाधिकी सिद्धि गांधर्ववेदका प्रयोजन कह्या है । यातैं ताका बी अंतःकरणकी एकाग्रताकरिके ज्ञानद्वारा मोक्ष ही प्रयोजन है ॥ तैसैं—

४ अर्थवेद बी नानाप्रकारका है:--नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, शिल्पशास्त्र, सूपकारशास्त्रसैं आदि लेके धनप्राप्तिके उपायबोधकशास्त्र

अर्थवेद[५१३] कहिये हैं। धनप्राप्तिके सकलउपायनमैं निपुणपुरुषकूं बी भाग्य विना बी धनकी प्राप्ति होवै नहीं। यातैं अथर्ववेदका बी वैराग्यमैं ही तात्पर्य है। तैसैं—

॥ ४८६ ॥ चारि वेदनके षट्अंगनका अर्थसहित प्रयोजन ॥

चारि वेदनके षट्अंग ये हैं:-१ शिक्षा, २ कल्प, ३ व्याकरण, ४ निरुक्त, ५ ज्योतिष औ ६ पिंगल। ये छे वेदके उपयोगी होनैतैं वेदके अंग कहिये हैं। तिनमैं----

१ शिक्षाका कर्त्ता पाणिनि है। वेदके शब्दनमैं अक्षरोंके स्थानका ज्ञान औ उदात्त[५१४], अनुदात्त[५१५] और स्वरितका[५१६] ज्ञान शिक्षातैं होवै है॥ वेदनके व्याख्यानरूप जो अनेक प्रतिशाखा नाम ग्रंथ हैं सो बी शिक्षाके अंतर्भूत हैं तैसैं—

२ वेदबोधित कर्मके अनुष्ठानकी रीति कल्पसूत्रनतैं जानी जावै है। यज्ञ करावनैवाले ब्राह्मण ऋत्विक् कहिये हैं। तिनके भिन्न-भिन्न करनैयोग्य जो कर्म, तिनके प्रकारके बोधक कल्पसूत्र हैं। तिन कल्पसूत्रनके कर्त्ता कात्यायन आश्वलायनादिमुनि हैं। यातैं कल्पसूत्र बी वेदके उपयोगी होनैतैं वेदके अंग हैं। तैसैं—

३ व्याकरणतैं वेदके शब्दनका शुद्धताका ज्ञान होवै है। सो व्याकरणसूत्ररूप अष्टअध्याय पाणिनिनाम मुनिनैं किया है। कात्यायन औ पतंजलिनैं तिन सूत्रनके व्याख्यानरूप वार्त्तिक औ भाष्य किये हैं। और जो व्याकरण हैं तिनमैं वेदके शब्दनका विचार नहीं। यातैं पुराणादिकनमैं उपयोगी तौ हैं, परंतु वेदके उपयोगी नहीं। औ पाणिनिकृत व्याकरण वेदके शब्दनकी बी सिद्धि करै है। यातैं वेदका अंग है॥ तैसैं—

४ यास्कनाम मुनिनैं त्रयोदशअध्यायरूप निरुक्त किया है। तहां वेदके मंत्रनमैं अप्रसिद्ध पदनके अर्थबोधके निमित्त नाम निरूपण किये हैं। यातैं वैदिक अप्रसिद्धपदनके अर्थज्ञानमैं उपयोगी होनैतैं निरुक्त बी वेदका अंग है। संज्ञाका बोधक जो पंचाध्यायरूप निघंटु नाम ग्रंथ यास्कनै किया है सो बी निरुक्तके अंतर्भूत है॥ और अमरसिंह हेमादिकननै किये जो संज्ञाके बोधक कोष हैं सो सारे निरुक्तके अंतर्भूत हैं॥ तैसैं—

५ आदित्यगर्गादिकृत ज्योतिष बी वेदका अंग है। काहेतैं? वैदिककर्मके आरंभमैं कालका ज्ञान चाहिये। सो कालज्ञान ज्योतिषतैं होवै है। यातैं वेदका अंग है॥

६ पिंगलमुनिनैं सूत्र अष्टअध्यायतैं छंद निरूपण किये हैं तिनतैं वैदिकगायत्रीआदिक छंदनका ज्ञान होवै है, यातैं पिंगलकृत सूत्र बी वेदके अंग हैं॥ तैसैं—

यह षट् जो वेदके अंग हैं तिनमैं वेदके उपयोगी जो अर्थ नहीं, ताका प्रसंगतैं निरूपण किया है। प्रधानतासैं नहीं। यातैं वेदका जो प्रयोजन है सोई षट्अंगनका प्रयोजन है। पृथक् नहीं॥

॥ ४८७ ॥ अष्टादशपुराण तथा उपपुराणका अर्थ ॥

पुराण अष्टादश हैं। व्यासनाम मुनिनैं किये हैं। तिनके ये नाम हैं:--१ ब्रह्म। २ पद्म।

॥ ५१३ ॥ याहीकूं स्थापत्यवेद बी कहै हैं॥

॥ ५१४ ॥ उच्चस्वर उदात्त कहिये है॥

॥ ५१५ ॥ नीचस्वर अनुदात्त कहिये है।

॥ ५१६ ॥ समानस्वरका ज्ञान स्वरितका ज्ञान कहिये है।

३ वैष्णव । ४ शैव । ५ भागवत । ६ नारदीय। ७ मार्कंडेय । ८ आग्नेय । ९ भविष्य । १० ब्रह्मवैवर्त । ११ लैंग । १२ वाराह । १३ स्कंद। १४ वामन। १५ कौर्म । १६ मात्स्य । १७ गारुड औ १८ ब्रह्मांड । ये अष्टादशपुराण व्यासनैं किये हैं ॥ तैसैं---

कालीपुराणादिक और बहुत हैं । सो उपपुराण हैं । कोई उपपुराण बी अष्टादश कहे हैं। सो नियम नहीं । उपपुराण बहुत हैं ।

भागवत दो हैंः-एक तौ वैष्णवभागवत है औ दूसरा भगवतीभागवत है। दोनूंकी समानसंख्या अष्टादशसहस्र है औ दोनूंके द्वादश स्कन्ध हैं । परंतु तिनमैं एक पुराण है औ दूसरा उपपुराण है ॥ दोनूं व्यासकृत हैं । यातैं दोनूं प्रमाण हैं॥

जैसैं व्यासनै पुराण किये हैं तैसैं उपपुराण बी कोई व्यासनैं किये हैं । कोई उपपुराण पराशरआदिक अन्य सर्वज्ञ मुनियोंने किये हैं । यातैं उपपुराण बी प्रमाण हैं ॥

जो उपनिषदका अर्थ हैं सोई उपपुराण-सहित पुराणका अर्थ है । यह वार्त्ता आँगे प्रतिपादन करैंगे । तैसैं---

॥ ४८८ ॥ न्याय औ वैशेषिकसूत्रनका फल ॥

पंचमअध्यायरूप न्यायसूत्र गौतमनै किये हैं तिनमैं युक्ति प्रधान है । युक्तिचिंतनतैं पुरुषकी तीव्रबुद्धि होवै है, तब मनन करनैविषै समर्थ होवै है । यातैं युक्तिप्रधान न्यायसूत्रनका बी मननद्वारा वेदांतजन्य ज्ञान ही फल है। औ-

कणादनाम मुनिनै दशअध्यायरूप वैशेषिक सूत्र किये हैं । तिनका बी न्यायमैं अंतर्भाव है । तैसैं---

॥४८९॥धर्ममीमांसा औ ब्रह्ममीमांसा भेदतैं दो मीमांसा औ संकर्षणकांडका फल ॥

मीमांसाके दो भेद हैंः--१ एक धर्ममीमांसा औ २ दूसरी ब्रह्ममीमांसा ॥

१ धर्ममीमांसाकूं पूर्वमीमांसा कहै हैं ॥

२ ब्रह्ममीमांसाकूं उत्तरमीमांसा कहै हैं ॥

१ धर्ममीमांसाके द्वादश अध्याय हैं । जैमिनिनाम ताका कर्त्ता है। कर्म-अनुष्ठानकी रीति तामैं प्रतिपादन करी है । यातैं विधिसैं कर्ममैं प्रवृत्ति धर्ममीमांसाका फल है। कर्ममैं प्रवृत्तिसैं अंतःकरणशुद्धि, तासैं ज्ञान औ ज्ञानतैं मोक्ष, इस रीतिसैं धर्ममीमांसाका मोक्षफल है । औ धर्ममीमांसाके द्वादशअध्यायमैं आपसमैं अर्थका भेद है, सो कठिन है । यातैं लिख्या नहीं ॥ औ संकर्षणकांड पंचमअध्यायरूप जैमिनिनै किया है। ताके विषै उपासना कही है । ताका बी धर्ममीमांसाके विषै अंतर्भाव है ॥ तैसैं --

२ ब्रह्ममीमांसाके चारि अध्याय हैं। ताका कर्त्ता व्यास है। एक एक अध्यायके चारि चारि पाद हैं ॥ तहां---

---

॥ ५१७ ॥ यह वार्त्ता आगे ५१० सैं ५१७ वें अंकपर्यंत प्रतिपादन करैंगे। धर्मशास्त्रमैं कर्मकांडका अर्थ है औ पुराणनमैं उपनिषद्रूप ज्ञानकांडका अर्थ है । यंह सूतसहिताके व्याख्यानमैं श्रीविद्यारण्यस्वामीने लिख्या है ॥

॥ ५१८ ॥ न्यायसूत्रनका मननद्वारा वेदांत-जन्य ज्ञान ही फल है। यह अर्थ न्यायपारंगत शिरोमणि भट्टाचार्यनै बी अपनै ग्रन्थमैं लिख्या है । यातैं इनका उक्तफल संभवै है ॥

॥ ५१९ ॥ जिसविषै धर्मकी मीमांसा (विचार) है सो **धर्ममीमांसा** कहिये है ॥

॥ ५२० ॥ जिसविषै ब्रह्मकी मीमांसा (विचार) है, सो **ब्रह्ममीमांसा** कहिये है ॥

१ प्रथम अध्यायमैं यह अर्थ है:—सारे उपनिषद्वाक्य ब्रह्मकूं प्रतिपादन करै हैं। अन्यकूं नहीं।

२ उपनिषद्वाक्यनका मंदबुद्धि पुरुषकूं आपसमैं विरोध प्रतीत होवै है, ताका परिहार द्वितीय अध्यायमैं कह्या है।

३ ज्ञान तथा उपासनाके साधनका विचार तृतीय अध्यायमैं कह्या है। औ—

४ ज्ञानउपासनाका फल चतुर्थ अध्यायमैं कह्या है॥

यह ब्रह्ममीमांसारूप शारीरकशास्त्र ही सर्वशास्त्रनमैं प्रधान है। मुमुक्षुकूं यही उपादेय है। ताके व्याख्यानरूप[९२१] ग्रंथ यद्यपि नाना हैं तथापि श्रीशंकरकृतभाष्यरूप[९२२] व्याख्यान ही मुमुक्षुकूं श्रोतव्य है, ताका ज्ञानद्वारा मोक्षफल स्पष्ट ही है॥ तैसैं—

॥ ४९० ॥ स्मृतिआदिक ग्रंथनके कर्त्ता औ प्रयोजन ॥

मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अंगिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त, शातातप, पराशर, गौतम, शंख, लिखित, हारीत, आपस्तंब, शुक्र, बृहस्पति, व्यास, कात्यायन, देवल, नारद इत्यादिक सर्वज्ञ हुये हैं॥ तिनोंनै वेदके अनुसार स्मृतिनामग्रंथ किये हैं॥सो धर्मशास्त्र कहिये हैं। तिनमैं वर्णआश्रमके कायिक वाचिक मानसिक धर्म कहे हैं। तिनका बी अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञान होयके मोक्ष ही प्रयोजन है॥ तैसैं—

व्यासनै महाभारत औ वाल्मीकिनै रामायण किया है, तिनका बी धर्मशास्त्रमैं अंतर्भाव है, औ—

देवताआराधनके निमित्त जो मंत्रशास्त्र है, ताका बी धर्मशास्त्रमैं अंतर्भाव है। देवताआराधनका अंतःकरणशुद्धि प्रयोजन है॥ तैसैं—

सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, वैष्णवतंत्र, शैवतंत्रादिक बी धर्मशास्त्रनके अंतर्भूत हैं। काहेतैं? इनमैं बी मानसधर्मका[९२३] निरूपण है॥ तहां—

॥ ४९१ ॥ सांख्यशास्त्रका फल ॥

सांख्यशास्त्र षट्अध्यायरूप कपिलनै किया है। ताके—

१ प्रथमअध्यायमैं विषय निरूपण किये हैं।

२ द्वितीयअध्यायमैं महत्तत्त्वअहंकारादिक प्रधानके कार्य कहे हैं।

३ तृतीयअध्यायमैं विषयनतैं वैराग्य कह्या है।

४ चौथे अध्यायमैं विरक्तोंकी आख्यायिका कही है॥

५ पंचम अध्यायमैं परपक्षका खंडन कह्या है।

६ छठे अध्यायमैं सारे अर्थका संक्षेपतैं संग्रह किया है॥

प्रकृतिपुरुषके विवेकतैं पुरुषका असंगज्ञान सांख्यशास्त्रका प्रयोजन है॥ ताका बी त्वंपदके लक्ष्यअर्थशोधनद्वारा महावाक्यजन्यज्ञानमैं उपयोग होनैतैं मोक्ष ही फल है॥ तैसैं—

॥ ९२१ ॥ शंकराचार्यकृत भाष्य, रामानुजभाष्य, मध्वभाष्य, भास्कराचार्यकृत भाष्य, विष्णुस्वामीकृत भाष्य, विज्ञानेंद्रभिक्षुकृत भाष्य, नीलकण्ठभाष्य, इत्यादिभाष्यरूप व्याख्यान ॥

॥ ९२२ ॥ इहां भाष्यशब्दकरि श्रीशंकराचार्यके शिष्यप्रशिष्यनके किये तिस भाष्यके व्याख्यानोंका बी ग्रहण है॥ वे भाष्यके व्याख्यान अनेक हैं। तिनके नाममात्रका कीर्तन हमनै पंचदशीगत तृप्तिदीपके १०२ वें श्लोकके टिप्पणविषै किया है। तहां देख लेना॥

॥ ९२३ ॥ उपासनारूप धर्म ॥

॥ ४९२ ॥ योगशास्त्रका फल औ शारीरक उक्तिसैं अविरोध ॥

योगशास्त्र चारिपादरूप है । पतंजलि ताका कर्त्ता है, सो पतंजलि शेषका अवतार है । एकऋषि संध्याउपासन करे था, ताकी अंजलिमैं प्रकट होयके पृथिवीमैं पड्या है । यातैं पतंजलि नाम कहिये है ॥ तानैं--

१ शरीरका रोगरूपी मल दूरि करनै वास्ते चिकित्साग्रंथ किया है ॥ औ-

२ अशुद्धशब्दका उच्चारणरूपी जो वाणीका मल है, ताके नाशकूं पाणिनीयव्याकरणका भाष्य किया है ॥ तैसैं--

३ विक्षेपरूप अंतःकरणका मल है, ताके नाशकूं योगसूत्र किये हैं ॥ तहां--

१ प्रथमपादमैं चित्तवृत्तिका निरोधरूप समाधि औ ताके साधन अभ्यासवैराग्यादिक कहे हैं ॥ तैसैं--

२ विक्षिप्तचित्तकूं समाधिके साधन, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान औ समाधि, ये आठ समाधिके अंग द्वितीयपादमैं कहे हैं ।

३ तृतीयपादमैं योगकी विभूति कही है ।

४ चतुर्थपादमैं योगका फल मोक्ष कह्या है।

इसरीतिसैं योगशास्त्र बी ज्ञानसाधन निदिध्यासनकूं संपादनद्वारा मोक्षका हेतु है ॥ औ-

शारीरक सूत्रमैं जो सांख्ययोगका खंडन किया है, सो तिनके व्याख्यान जो उपनिषद्नसैं विरुद्ध किये हैं, तिनका खंडन किया है । सूत्रनका नहीं ॥ तैसैं-

॥ ४९३ ॥ पांचरात्र औ पाशुपततंत्र-आदिकका फल ॥

न्यायवैशेषिकका खंडन बी विरुद्धव्याख्यानका है ।

तैसैं नारदनै पंचरात्रनाम तंत्र किया है । तामैं वासुदेवमैं अंतःकरण स्थापन कह्या है, ताका बी अंतःकरणकी स्थिरतासैं ज्ञानद्वारा मोक्ष ही फल है । सारे वैष्णवग्रंथ पंचरात्रके अंतर्भूत हैं । सो पंचरात्र धर्मशास्त्रके अंतर्भूत है ।

तैसैं पाशुपततंत्रमैं पशुपतिका आराधन कह्या है । ताका कर्त्ता पशुपति है । ताका बी अंतःकरणकी निश्चलताद्वारा मोक्षसाधन ज्ञान फल है ॥ और--

॥ ४९४ ॥ शैवग्रन्थादिकनका फल औ वाममार्ग ।

जो शैवग्रंथ हैं, सो सारे पाशुपततंत्रके अंतर्भूत हैं ॥

तैसैं गणेश, सूर्य, देवीकी उपासनाबोधक ग्रंथनका चित्तकी निश्चलताद्वारा ज्ञान फल है औ सर्वका धर्मशास्त्रमैं अंतर्भाव है । परंतु-

देवीकी उपासनाके बोधक ग्रंथनमैं दो संप्रदाय हैः-एक दक्षिणसंप्रदाय औ दूसरा उत्तर संप्रदाय है । उत्तरसंप्रदायकूं वाममार्ग कहैं हैं ॥ तिनमैं--

१ दक्षिणसंप्रदायकी रीतिसैं जिन ग्रंथनमैं देवीकी उपासना है, सो तौ धर्मशास्त्रके अंतर्भूत है ॥ औ--

२ वाम्ममार्ग जिन ग्रंथनमैं है, सो धर्मशास्त्रसैं विरुद्ध है; यातैं अप्रमाण है ॥

यद्यपि वामतंत्र शिवनै किया है तथापि सकलशास्त्र औ वेदसैं विरुद्ध है, यातैं प्रमाण नहीं ॥

जैसैं विष्णुके बुद्धअवतारनै नास्तिकग्रंथ किये हैं सो वेदविरुद्ध हैं ॥ यातैं प्रमाण नहीं । तैसैं शिवकृत वामतंत्र बी अत्यंतविरुद्ध है । मदिरादिक अत्यंत अशुद्ध पदार्थनका तामैं ग्रहण लिख्या है । औ उत्तमपदार्थनके जो नाम हैं,

सोई मलिन पदार्थनके नाम लोकवंचनके निमित्त कहे हैं । मदिराका नाम तीर्थ । मांसका नाम शुद्ध । मदिरापात्रका नाम पद्म । प्याजैंका नाम व्यास । लशुनका नाम शुकदेव । मदिराकारी कलालका नाम दीक्षित कहे हैं ॥ तैसैं वेश्यासेवी चर्मकारी आदिक चांडालीसेवीकूं प्रयागसेवी काशीसेवी कहे हैं ॥ औ भैरवीचक्रमैं स्थित जो चांडालादिक हैं, तिनकूं ब्राह्मण कहे हैं । औ अत्यंत व्यभिचारिणीकूं योगिनी औ व्यभिचारीकूं योगी कहे हैं । ऐसैं अनेक प्रकारसैं निषिद्ध तिनका व्यवहार है । पूजनके समय अनेकदोषवती स्त्रीकूं उत्तमशक्ति कहै हैं । जातिकी चांडाली अतिव्यभिचारिणी रजस्वला स्त्रीकू दवी बुद्धिसैं पूजन करै हैं । ताकी उच्छिष्टमदिरा पान करै हैं औ अधिकमदिरापानसैं जो वमन करि देवै, ताकूं पृथिवीमैं नहीं गिरनै देवै हैं । किंतु आचार्यसहित दूसरे सावधान भक्षण करै हैं । वमनकूं भैरवी कहै हैं ॥ औ..............में जिह्वा लगायके मंत्रनका जप करै हैं ॥ १ मदिरा, २ मांस, ३ मत्स्य, ४ मुद्रा औ ५ मंत्र, इन पंच मकारकूं भोगमोक्षनिमित्त सेवन करै हैं ॥ प्रथमद्वितीयादिक तिन मकारनके अप्रसिद्ध नामनतैं व्यवहार करै हैं । इसतैं आदिलेके वामतंत्रका सकल व्यवहार इस लोकतैं औ परलोकतैं भ्रष्ट करै है । इसी कारणतैं कर्णच्छेदी योगी औ अवधूतगुसांई तैसैं अनेकसंन्यासी औ ब्राह्मणादिक वाममार्गकूं सेवन करै हैं तौ बी लोकवेदनिंदित जानिके गुप्त राखै हैं ॥

अधिक क्या कहैं ? वामतंत्रकी रीति सुनिके म्लेच्छके बी रोमांच होय जावैं । ऐसा निंदित वामतंत्र है ॥ सर्वंगी जो अभक्षण करै हैं, सो सारे निंदितमार्ग वामतंत्रमैं कहे हैं । अतिनीच व्यवहार लिखनै योग्य नहीं । यातैं विशेष प्रकार लिख्या नहीं । सर्वथा वामतंत्र त्यागनै योग्य है ॥ तैसैं–

॥ ४९५ ॥ ॥ नास्तिकमत ॥

नास्तिकमत बी त्यागनै योग्य है । नास्तिकनके षट् भेद हैं:–१ माध्यमिक, २ योगाचार, ३ सौत्रांतिक, ४ वैभाषिक, ५ चार्वाक औ ६ दिगंबर । ये छह वेदकूं प्रमाण नहीं मानै हैं । तिनका आपसमैं विलक्षण सिद्धांत है ॥

१ माध्यमिक शून्यवादी हैं ।

२ योगाचारके मतमैं सारे पदार्थ विज्ञानसैं भिन्न नहीं । विज्ञान ही तत्त्व है । सो विज्ञान क्षणिक है ।

३ सौत्रांतिकमतमैं विज्ञानका आकार बाह्यपदार्थ विषय विना होवै नहीं । यातैं विज्ञानतैं बाह्यपदार्थनका अनुमान होवै है । इस रीतिसैं सौत्रांतिकमतमैं अनुमानप्रमाणके विषय बाह्यपदार्थ हैं । प्रत्यक्ष नहीं । और स्थिर नहीं । किंतु सारे पदार्थ क्षणिक हैं ॥ औ—

४ वैभाषिकमतमैं बाह्यपदार्थ क्षणिक तौ हैं परंतु प्रत्यक्षप्रमाणके विषय हैं । इतना भेद है ॥

ये चारि मत सुगतके हैं ॥

५ चार्वाकमतमैं पदार्थ क्षणिक नहीं । परंतु तिसके मतमैं देह आत्मा है ॥ औ—

६ दिगंबरमतमैं देह आत्मा नहीं । देहसैं आत्मा भिन्न है । परंतु जितना देहका परिमाण होवै, उतना आत्माका परिमाण है ॥

इस रीतिसैं इनका आपसमैं मतका भेद है । और बी इनकी आपसमैं मतकी विलक्षणता बहुत है । परंतु सारे वेदके विरोधी हैं । यातैं

॥ ९२४ ॥ पलाडुका कहिये कांदेका ॥
॥ ९२५ ॥ वेश्याका सेवन करनैवाला ॥
॥ ९२६ ॥ चांडालीका सेवन करनैवाला ॥

नास्तिक हैं । इसी कारणतैं तिनके मतका उपपादन औ खंडन विंशेषकरिके लिख्या नहीं ॥ इस रीतिसैं--

॥ ४९६ ॥ साहित्यआदिकके तात्पर्यपूर्वक तर्कदृष्टिका सारग्राही निश्चय ॥

वाममार्ग औ नास्तिक मतनके ग्रंथ यद्यपि संस्कृतवाणीरूप हैं, तथापि वेदबाह्य हैं । यातैं वेदके अनुसारी विद्याके प्रस्थान अष्टादश ही हैं ॥

और मम्मटआदिकनै जो साहित्यग्रंथ[९२७] किये हैं तिनका बी कामशास्त्रमैं अंतर्भाव है । तैसैं सकलकाव्यनका बी किसीकों[९२८] कामशास्त्रमैं औ किसीकों[९२९] धर्मशास्त्रमैं अंतर्भाव है ॥

इस रीतिसैं अष्टादशविद्याके प्रस्थान सारे ब्रह्मज्ञानद्वारा मोक्षके हेतु हैं । कोई साक्षात्‌ज्ञानका हेतु है । कोई परंपरातैं ज्ञानका हेतु है। यह तर्कदृष्टिनैं सकलशास्त्रनका अभिप्राय[९३०] निश्चय किया ॥

यद्यपि उत्तरमीमांसा विना सारे शास्त्र जिज्ञासुकूं हेय हैं। यह शारीरकमैं सूत्रकारभाष्यकारनै प्रतिपादन किया है। यातैं अन्यशास्त्र बी मोक्षके उपयोगी हैं। यह कहना संभवै नहीं। तथापि सारग्राहीदृष्टिसैं तर्कदृष्टिनै यह सार निश्चय किया ॥

॥ ४९७ ॥ तर्कदृष्टिका एक विद्वानूसैं मिलाप ॥

॥ दोहा ॥

सुनि प्रसिद्ध विद्वान पुनि,
मिल्यो आप तिहि जाय ।
निश्चय अपनो ताहि तिहि,
दीनो सकल सुनाय ॥ २२ ॥

टीकाः-गुरुद्वारा सुनै अर्थमैं बुद्धिकी स्थिरताके निमित्त सकलशास्त्रनका अभिप्राय विचार्या, तौ बी फेरि सन्देह हुवाः-जो शास्त्रनका अभिप्राय मैं निश्चय किया सोई है अथवा अन्य अभिप्राय है ? काहेतैं ? तर्कदृष्टि कनिष्ठअधिकारी कह्या है । यातैं वारंवार कुतर्कसैं संदेह होवै है । ताकी निवृत्तिवास्ते अन्य विद्वान्‌के निश्चयतैं अपनै निश्चयकी एकता करनैकूं गया ॥

॥ दोहा ॥

तर्कदृष्टिके बैन सुनि,
सो बोल्यो बुध संत ।
जो मोसूं तैं यह कह्यो,
सोई मुख्यसिद्धांत ॥ २३ ॥

॥ ९२७ ॥ अलकारके ग्रन्थ ॥

॥ ९२८ ॥ नायकाभेद औ रसभेदआदिक अर्थके प्रतिपादक काव्यग्रन्थका ॥

॥ ९२९ ॥ भगवत्‌चरित्रके प्रतिपादक काव्यग्रंथका ॥

॥ ९३० ॥ इहां किसी सारग्राही दृष्टिवाले पंडितका वचन हैः—

॥ श्लोकः ॥

भक्तिज्ञाने यत्र विष्णोर्यत्र वेदाः परा प्रमा ।
मतानि तानि सर्वाणि जीवोद्धारस्य हेतवः॥ १ ॥

अस्यार्थः—जिन मतोंविषै विष्णुके (व्यापकपरमात्माके) भक्ति किंवा ज्ञान हैं, फिर जिन मतों विषै चारि वेद परमप्रमाण हैं, वे सर्वमत साक्षात् किंवा परंपरातैं जीवनके उद्धारके हेतु हैं ॥ १ ॥

संशय सकल नसाय यूं,
लख्यो ब्रह्म अपरोछ ।
जग जान्यो जिन सब असत,
तैसें बंध रु मोछ ॥ २४ ॥

॥ ४९८ ॥ ज्ञानीकूं इच्छाका संभव औ इच्छाके अभावका अभिप्राय ॥

सेष रह्यो प्रारब्ध यूं,
इच्छा उपजी येह ।
चलि तत्कालहि देखिये,
जननिजनक जुत गेह ॥ २५ ॥

टीकाः—"ज्ञानीका सकलव्यवहार अज्ञानीकी न्यांई प्रारब्धसैं होवै है" यह पूर्व कही है । यातैं इच्छा संभवै है । औ कहूं शास्त्रमैं ऐसा लिख्या हैः—ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं । ताका यह अभिप्राय नहींः—ज्ञानीका अंतःकरण पदार्थकी इच्छारूप परिणामकूं प्राप्त होवै नहीं । काहेतैं? अंतःकरणके इच्छादिक सहजधर्म हैं औ-

अंतःकरण यद्यपि भूतनके सत्त्वगुणका कार्य कह्या है तथापि रजोगुणतमोगुणसहित सत्त्वगुणका कार्य है । केवलसत्त्वगुणका नहीं । केवलसत्त्वगुणका कार्य होवै तौ चलस्वभाव अंतःकरणका नहीं हुवा चाहिये । तैसैं राजसी वृत्ति कामक्रोधादिक औ मूढतादिक तामसीवृत्ति किसी अंतःकरणकी नहीं हुई चाहिये । यातैं केवलसत्त्वगुणका अंतःकरण कार्य नहीं । किंतु अप्रधानरजोगुणतमोगुणसहित प्रधानसत्त्वगुणवाले भूतनतैं अंतःकरण उपजै हैं, यातैं अंतःकरणमैं तीनूं गुण रहै हैं।सो तीनूं गुण बी पुरुषनके जितनै अंतःकरण हैं तिनमैं सम नहीं । किंतु न्यून अधिक हैं । यातैं गुणोंकी न्यूनताअधिकतासैं सर्वके विलक्षण स्वभाव हैं । इस रीतिसैं तीनूं गुणोंका कार्य अंतःकरण है ॥

जितनै अंतःकरण रहै उतनै रजोगुणका परिणामरूप इच्छाका अभाव बनै नहीं । यातैं ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं । ताका यह अभिप्राय हैः—अज्ञानी औ ज्ञानी दोनूंकूं इच्छा तौ समान होवै है । परंतु—

१ अज्ञानी तौ इच्छादिक आत्माके धर्म जानै है । औ—

२ ज्ञानीकूं जिस कालमैं इच्छादिक होवै हैं, तिस कालमैं बी आत्माके धर्म इच्छादिकनकूं जानै नहीं । किंतु काम, संकल्प, संदेह, राग, द्वेष श्रद्धा, भय, लज्जा, इच्छादिक अंतःकरणके परिणाम हैं । यातैं अंतःकरणके धर्म जानै है ॥

इस रीतिसैं इच्छादिक होवैं बी हैं । आत्माके धर्म इच्छादिक ज्ञानीकूं प्रतीत होवैं नहीं । यातैं ज्ञानीमैं इच्छाका अभाव कह्या है ॥ तैसैं—

मनवाणीतनसैं जो व्यवहार ज्ञानी करै सो सारा ज्ञानीकूं आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं । किंतु सारी क्रिया मनवाणीतनमैं है ॥ औ—

"आत्मा असंग है" यह ज्ञानीका निश्चय है । यातैं सर्वव्यवहारकर्त्ता बी ज्ञानी अकर्ता है इसी कारणतैं श्रुतिमैं यह कह्या हैः—"ज्ञानतैं उत्तर किये जो वर्तमानशरीरमैं शुभअशुभकर्म; तिनके फल पुण्यपापका संबंध होवै नहीं ॥"

प्रारब्धबलतैं अज्ञानीकी न्यांई सर्व व्यवहार औ ताकी इच्छा संभवै है ॥

॥ ४९९ ॥ शुभसंततिराजाका प्रसंग ।

॥ ४९९—५०८ ॥

शुभसन्ततिनाम राजाकूं त्यागिके तीनूं पुत्र

॥ ९३१ ॥ अन्तःकरणसहित चिदाभासका ॥

निकसे। तहां पुत्रनकी कथा कही। अब पिताका प्रसंग कहै हैं:----

॥ दोहा ॥

पुत्र गये लखि गेहतैं,
पितु चित उपज्यो खेद।
सूनो राज न तिनि तज्यो,
नहिं यथार्थ निर्वेद ॥ २६ ॥

टीकाः--पुत्र गृहतैं निकसे, तब राजाकूं तीव्रवैराग्यके अभावतैं तिनके वियोगका दुःख हुवा। तैसैं मंदवैराग्य हुवा है। यातैं विषय-भोगका सुख होवै नहीं औ बाहरि निकसनैकी इच्छा करी। सो पुत्रनके निकसनैतैं सूना राज छोडि सकै नहीं। यातैं बी दुःख हुवा। जो तीव्रवैराग्य होता तौ सूना राज बी त्यागि देता सो वैराग्य तीव्र हुआ नहीं। किंतु मंद हुआ है यातैं त्यागि सकै नहीं। औ भोगनमैं आसक्ति नहीं यातैं उभयथा खेद ही है। यथार्थ निर्वेद कहिये तीव्रवैराग्य नहीं ॥ मंदवैराग्यका फल उपास्यकी जिज्ञासा कहै हैं--

॥ ५०० ॥ शुभसंततिका पंडितोंसैं प्रश्नः-
"ऐसा कौन देव है, जो सोवै नहीं
किंतु जागता है ?" ॥

॥ चौपाई ॥

सुभसंतति पितु सो बडभागा।
भयो प्रथम तिहिं मंदविरागा ॥
जिज्ञासा उपजी यह ताकूं।
देव ध्येय को ध्याऊं जाकूं ? ॥२७॥
पंडित निरनो करन बुलाये।
यथायोग्य आसन बैठाये ॥
प्रश्न कियो यह सबके आगै।
अस को देव न सोवै जागै ? ॥२८॥
पुरुषारथ हित जन जिहि जाचै।
भक्तिमानके मनमैं राचै ॥
सुनि यह पृथिवीपतिकी बानी।
इक तिनमैं बोल्यो सुज्ञानी ॥ २९ ॥

॥५०१॥ विष्णुउपासकका उत्तर ॥

सुन राजा तुहि कहूं सु देवा।
सिव विरंचि लागे जिहि सेवा ॥
संख-चक्र-धारी हितकारी।
पद्म गदा धर परउपकारी ॥ ३० ॥
मंगलमूर्ती विस्नु कृपालू।
निज सेवक लखि करत निहालू ॥
सक्ति गनेस सूर सिव जे हैं।
सब आज्ञा ताकीमैं ते हैं ॥ ३१ ॥
भारत सकलग्रंथ यह भाखै।
पद्मपुरान तापनी आखै ॥
विस्नुरूपतैं उपजत सबही।
परैं भीर जाचैं तिहि तबही ॥ ३२ ॥

[तापनी कहिये नृसिंहतापनी। रामतापनी, गोपालतापनी उपनिषद]

विविध वेषको धरि अवतारा।
सब देवनकूं देत सहारा ॥
यातैं ताकी कीजे पूजा।
विस्नुसमान सेव्य नहिं दूजा ॥३३॥
विस्नुभक्त सिव उत्तम कहिये।
तथापि सेव्य स्वरूप न लहिये ॥

रूप अमंगल सिवको सवसम ।
ध्यान करैं नहिं ताको यू हम॥३४॥
[सव कहिये मुरदा, ताके सम अमंगल]
राख डमरु गजचर्म कपाला ।
धरै आप किहि करै निहाला ॥
ताको पूत गनेस हु तैसो ।
रूप विलच्छन नरपसु जैसो ॥ ३५॥
सठ हठतैं ध्यावत जो देवी ।
तासमरूप धरत तिहिं सेवी ॥
तिय निंदित असुची न पवित्रा ।
औगुन गिनै न जात विचित्रा॥३६॥
कपट कूटको आकर कहिये ।
पराधीन निजतंत्र न लहिये ॥
ऐसो रूप जु चहिये जाकू ।
सो सेवहु नर खरसम ताकूं ॥ ३७॥
भ्रमत फिरै निसदिन यह भानूं ।
रहत न निश्चल छन इक थानूं ॥
भ्रमतौ फिरै उपासक ताको ।
तिहि समान सेवक जौ जाको॥३८॥
आन देव यातै सब त्यागै ।
सेवनीय इक हरि नित जागै ॥
पूजन ध्यान करन विधि जो है ।
नारदपंचरात्रमैं सो है ॥ ३९ ॥

टीकाः—विष्णुकूं त्यागिके प्रसिद्ध जो चारि उपासना है, तिन एकएकका निषेध कियेतै बी स्मार्त्तउपासनाका बी निषेध किया । काहेतैं ? पांचूं देवनकूं समबुद्धिकरिके उपासै, ताकूं स्मार्त्तउपासना कहै है । शिवआदिक चारिदेवनकूं विष्णुकी समता निषेधनैतै स्मार्त्तउपासनाका निषेध बी अथसैं किया है ॥

॥ ५०२ ॥ शिवसेवकका उत्तर ॥

सिवसेवक मुनि सुनि तिहि बैना।
क्रोधसहित बोल्यो चल नैना ॥
सुन राजन बानी इक मोरी ।
जामैं वचन प्रमान करोरी ॥ ४० ॥
सिवसमान आन को कहिये ।
मांगे देत जाहि जो चहिये ॥
सब बिभूति हरिकूं दै मागी ।
धरत बिभूति आप नितत्यागी॥४१॥
चर्म कपाल हेतु इहि धारै ।
सम नहिं उत्तम अधम विचारै ॥
नग्न रहत उपदेसत येही ।
नहिं विरागसम सुख है केही॥४२॥

टीकाः—वैष्णवनै चर्मकपालादिक निंदितवस्तुका धारण आक्षेप किया। ताका यह समाधान हैः—महादेवकूं सर्वपदार्थनमैं सम[१३२]बुद्धि है॥

॥ १३२ ॥ महादेवकूं आत्माराम होनैतैं सर्वपदार्थनमैं सम कहिये तुल्यता (मिथ्यापनै) की बुद्धि है। किंवा सम कहिये एक (ब्रह्म) की बुद्धि है। यातै सो सर्वविभूतिनविषै विरक्त होयके चर्मकपालादिक निंदितवस्तुकूं ही धारता है । सो महिम्नस्तोत्रविषै पुष्पदंताचार्यनै बी कहा हैः—"हे वरद !इंद्रआदिक देव तुम्हारी भ्रुकुटीसैं रचित तिस तिस समृद्धिकूं धारते है औ तुम्हारे पास कुटुम्बका उपकरण (साधन) नंदिकेश्वर खट्वांग (चारपाइएकी पट्टीरूप काष्ठमय शस्त्र), कुठार, गजचर्म, भस्म औ सर्प है । इस हेतुतैं जानिये है कि स्वात्माराम पुरुषकूं विषयरूप मृगतृष्णा (जलबुद्धिसैं ग्रहण करी हुई सूर्यकी किरण) भ्रमावती नहीं" ॥

द्वितीयपादका अन्वय यह हैः-सम विचारै । उत्तम अधम नही विचारै ॥

सदावर्त ऐसो दे भारी ।
कासीपुरी मरे नर नारी ॥
सो सौं[५३३]युज्यमुक्तिकूं जावै ।
गर्भवाससंकट नहिं पावै ॥ ४३ ॥

सिवसमान नर नारी ते सब ।
लहत सु दिव्यभोग सगरे तब ॥
करत आप अद्वयउपदेसा ।
तजत लिंग यूं ब्रह्मप्रवेसा ॥ ४४ ॥

ऊँच नीच रंचहु नहिं देखै ।
मुक्ति सबनकूं दै इक लेखै ॥
सिवसमान राजन को दाता ।
भक्त अभक्त सबनको त्राता ॥ ४५ ॥

विस्नुसुभाव सुन्यो हम ऐसो ।
जगमैं जन प्राकृत है तैसो ॥
त्राता भक्त अभक्त न त्राता ।
यह प्रसिद्ध सबजगमैं नाता ॥ ४६ ॥

हरि सेवक हर सेव्य बखान्यो ।
रामचंद्र रामेश्वर मान्यो ॥
स्कंदपुरान व्यास बहु भाख्यो ।
हरि सेवक हर सेव्यहि राख्यो ॥ ४७ ॥

कह्यो जु भारत पद्मपुराना ।
सबदेवनतैं हरि अधिकाना ॥
भारततातपर्य नहि देख्यो ।
जो अप्पयदीछित बुध लेख्यो ॥ ४८ ॥

टीकाः-वैष्णवनैं यह कह्याः-"भारतादिक ग्रंथनमैं विष्णु सर्वदेवनका पूज्य कह्या है । सो बनै नहीं । काहेतैं ? भारतग्रंथका तात्पर्य देखतैं शिवकूं ही ईश्वरता प्रतीत होवै है । यह अप्पैय्य[५३४]-दीक्षित नाम विद्वान्नै सकलपुराणइतिहासका तात्पर्य लिख्या है ॥

तहा भारतमैं यह प्रसंग हैः-अश्वत्थामानै नारायणअस्त्र औ आग्नेयअस्त्रका प्रयोग किया, तब बहुत सेनाका तौ संहार बी हुवा । परतु पंचपांडवोमैं कोई मऱ्या नहीं । तब रथकूं त्यागिके धनुर्वेद औ आचार्यकूं धिक्कार करता वनकूं चल्या । तहां व्यास-भगवान् ताकूं मिले औ यह कह्याः-"हे ब्राह्मण ! तूं आचार्य औं वेदकूं धिक्कार मति करुं । ये अर्जुन कृष्ण दोनूं नरनारायणरूप हैं । इनूंनै शिवका पूजन बहुत किया है । यातै इनकी भक्तिके आधीन हुवा त्रिशूली महादेव इनके रथके आगै रहै है । यातैं इन दोनूंके उपरि प्रयोग किये अनेकशस्त्रअस्त्रनकी सामर्थ्यकूं महादेव नाश करिदेवै हैं" ॥

इस भारतप्रसगंतैं नारायणरूप कृष्णकी विभूति महादेवकी कृपातैं उपजी है । यह सिद्ध होवै है । यातैं विष्णुचरित्रके प्रतिपादक जो ग्रंथ हैं, सो शिवकी अधिकताकूं प्रतिपादन करै हैं । काहेतैं ? तिन ग्रंथनमैं विष्णु सेव्य कह्या है, सो विष्णु भारतप्रसंगतैं शिवका भक्त है यातैं जिस शिवकी भक्तितैं विष्णु सेव्य होवै है सो शिव ही

॥५३३॥ शिवसमान ऐश्वर्ययुक्त शिवलोककूं ॥

॥ ५३४ ॥ ये पंडित दक्षिणदिशामैं शिव कांचीपुरी है, तिसविषे भये हैं औ वे वडे शिवके उपासक थे। इनोनैं सिद्धांतलेशनाम वेदांतका ग्रन्थ वी किया है ॥

परमसेव्य है। इस रीतिसै अप्पयदीक्षितनै सकल वैष्णवग्रंथनका प्रतिपाद्य शिव कह्या है ॥

॥ चौपाई ॥

सिव सबको प्रतिपाद्य बखान्यो।
भक्तनमै उत्तम हरि गान्यो ॥
ईस देव पद सबमैं कहिये।
महतसहित इक सिवमैं लहिये ॥४९॥

टीकाः-महादेव, महेश, शिवकूं कहै हैं। औरनकूं देव ईश कहै हैं ॥

सिवतै भिन्न असिव जो कहिये।
तिहिं तजि सिव कल्यानहि लहिये ॥
जलसायी जिहिं नाम बखान्यो।
सो जागै यह मिथ्या गान्यो ॥५०॥

टीकाः- कल्याणकूं शिव कहै हैं, तातैं भिन्न अशिव है। ताका यह अर्थ सिद्ध हुआः-शिवतै भिन्न और देवता अशिव कहिये अकल्याण-रूप हैं। तिन अकल्याणरूप देवतानकूं त्यागिके कल्याणरूप शिवकूं उपासै ॥

विख लखजब सबकूं उपज्यो डर।
निर्भय किये सकल गर धरि गर ॥
जाको पूत गनेस कहावै।
विघ्नजाल तत्काल नसावै ॥ ५१ ॥
कारजमैं कारन गुन होवै।
यूं सिव विघ्न मूलतैं खोवै ॥
जन्ममरन दुख विघ्न कहावै।
तिहिं समूल सिवध्यान नसावै॥५२॥

सेवनयोग्य सदाशिव एका।
जागै सहित समाधि विवेका ॥
तंत्र पासुपत रीति जु गावै।
त्यू पूजनकारि ध्यान लगावै ॥ ५३ ॥
नारदपंचरात्रमत झूठो।
यह परिमल परसंग अनूठो ॥
यातैं सिवसेवा चित लावै।
पुरुषारथ जो चहै सु पावै ॥ ५४ ॥

टीकाः-नारदपंचरात्रका मत सूत्रभाष्यमैं खंडन किया है। ताके अनुसारी रामानुज आदिक नवीन वैष्णवनका मत कैल्पतरुकी टीका परिमलमैं खंडन किया है ॥

॥ ५०३ ॥ गणेशपूजकका उत्तर ॥

सिवको पूत गनेस बतायो।
कारनगुन कारजमैं गायो ॥
सुनि गनेसको पूजक बोल्यो।
अस किय कोप सिंहासन डोल्यो ५५
राजन सुन दोनूं ये झूठै।
वचन सत्य सम कहत अनूठै ॥
सिवको पूत गनेस बतावै।
पराधीनता तामैं गावै ॥ ५६ ॥
कहूं प्रसंग सुनहु इक ऐसो।
लिख्यो व्यासभगवत मुनि जैसो ॥
चढे त्रिपुर मारनकूं सारै।
हरिहरसहित देव अधिकारै ॥ ५७ ॥

॥ ५२९ ॥ श्रीशंकराचार्यकृत ब्रह्मसूत्रभाष्यके ऊपरि वाचस्पतिमिश्रकृत भामतीनिबंधनामक टीका है। तिसके व्याख्यानका नाम कल्पतरु है। ताका परिमलनामक व्याख्यान है। तातैं ॥

नहिं गनेसको पूजन कीनो ।
त्रिपुर न रंचहु तिनतैं छीनो ॥
पुनि पछिताय मनाय गनेसा ॥
त्रिपुर विनास्यो रह्यो न लेसा॥५८॥

भये समर्थ किये जिहि पूजा ।
सेवनयोग्य सु इक नहिं दूजा ॥
रामपूत दसरथको जैसै ।
विघ्नहरन सिवको सुत तैसै ॥ ५९ ॥

व्यास गनेसपुरान बनायो ।
सबको हेतु गनेस बतायो ।
हरि हर विधि रवि सक्ति समेता ।
तुंडीतैं[९३६] उपजत सब तेता ॥ ६० ॥

करत ध्यान जिहि छन जन मनमैं ।
नासत विघ्न प्रधान गननमैं ॥
विघ्नहरन यूं जागत निसदिन ।
भक्तिसहित सेवहु तिहि अनछन६१॥

॥ ५०४ ॥ देवीभक्तका उत्तर ॥

हेतु गनेस सक्तिको सुनिके ।
भगतभागवत उचर्‍यो गुनिके ॥
सुन राजन बानी मम साची ।
तीनूं सकल कहत ये काची ॥ ६२॥

टीकाः-भगतभागवत कहिये भगवतीको भगत ॥

सूने देव सक्तिबिन सारे ।
मृतक देहसम लखि हत्यारे ॥

सक्तिहीन असमर्थ कहावै ।
सो कैसै कारज उपजावै ॥ ६३ ॥

जिन बहु सक्तिउपासन धारी ।
तातैं भये सकल अधिकारी ॥
हरि हर सूर गनेस प्रधाना ।
तिनमैं सक्ति देखियत नाना ॥६४॥

सक्ति लोकमैं भाखत जाकूं ।
रूप भगवतीको लखि ताकूं ॥

टीकाः-भगवतीके दो रूप हैं:-१ सामान्य औ २ विशेष ॥

१ सर्वपदार्थनमैं अपना कार्य करनैकी जो सामर्थ्यरूप शक्ति, सो भगवतीका सामान्यरूप है। औ-

२ अष्टभुजादिकसहित मूर्ति विशेषरूप है ॥

सामान्यरूप शक्तिके संख्यारहित अनंत अंश हैं। जामैं शक्तिके न्यूनअंश होवैं सो अल्पशक्ति होवै है। असमर्थ कहिये है॥ जामैं शक्तिके अधिक अंश होवै सो समर्थ कहिये है ॥ विष्णु शिव आदिकनमैं शक्तिके अंश अधिक हैं। यातैं अधिकसमर्थ कहिये हैं ॥

इस रीतिसैं भगवतीका सामान्यरूप जो शक्ति ताके अंशनकी अधिकतासैं विष्णु, शिव, गणेश, सूर्यकी महिमा प्रसिद्ध है औ शक्तिसैं रहित होवै तौ जैसैं प्राण विना शरीर अमंगलरूप होवै है,तैसैं सारे देव हत्यारे कहिये अमंगलरूप होय जावैं। यातैं जिस शक्तिकी अधिकतासैं देवनकी महिमा प्रसिद्ध है,सो महिमा शक्तिका है। तिन देवनका नहीं ॥ विष्णुशिव आदिकननै भगवतीके सामान्यरूप शक्तिकी

॥ ९३६ ॥ शुंडादंडतैं ॥

अधिकउपासना करी है। यातैं तिनमैं शक्तिके अंश अधिक हैं । यह पूर्वग्रंथनमैं भगवती-भक्तका अभिप्राय है।

जैसैं भगवतीके निराकाररूप शक्तिके अनंत अंश हैं, तैसैं साकाररूपके बी अनंतअंश हैं। तिन साकारअंशनमैं कालीरूप प्रधान है औ माहेश्वरी, वैष्णवी, शौरी, गाणेशी आदिक बी प्रधानअंश हैं। विष्णुकूं भगवतीकी उपासनतैं वैष्णवीनाम भगवतीके अंशका लाभ। तैसैं अन्यदेवनकूं भगवतीके उपासनतैं निजनिज माहेश्वरीआदिक अंशनका लाभ हुवा है। तिनमैं बी भगवतीके विष्णु औ शिव दोनूं प्रधानभक्त हैं। काहेतैं? ध्याताकूं ध्येयरूपकी प्राप्ति उपासनाकी परमअवधि है ॥ विष्णु-शिवकूं उपासनासैं ध्येयरूपकी प्राप्ति हुई है, यातैं प्रधानउपासक हैं। यह अढाई चौपाईतैं प्रतिपादन करै हैं:-

॥ चौपाई ॥

लाख करोरि मात्रिका गन पुनि ॥
तंत्रग्रंथ लखि अंस सकल गुनि॥६५
काली ताको अंस प्रधाना।
माहेश्वरी आदि लखि नाना ॥
हरि हर ब्रह्म सकल तिहिं ध्यावै।
निजनिज अंसैं कृपा तिहि पावै६६॥
ध्येयरूप ध्याता ह्वै जबही।
सिद्ध उपासन लखिये तबही ॥
अस उपासना हरि अरु हरकी।
नारीमूर्त्ति धरी तजि नरकी ॥६७ ॥

॥ दोहा ॥

अमृत मथनप्रसंगमैं,
हरि मोहिनीस्वरूप।
अर्धअंग सिवको लसै,
देवीरूप अनूप ॥ ६८ ॥

टीकाः-मथनकरिके अमृत प्रगट किया, तब सुरअसुरनका विवाद मेटनैमैं विष्णु असमर्थ हुवा। तब अपनै उपास्यरूप भगवतीका ऐसा एकाग्रचित्तसैं ध्यान किया, जातैं आप विष्णु उपास्यरूपकूं प्राप्त हुवा। ता रूपके माहात्म्यसैं असुर बी ताके अनुकूल हुये॥ तैसैं शिवनै बी समाधिमैं ऐसा भगवतीका ध्यान किया, जातैं अर्धविग्रह शिवका उपास्यरूप हुवा। कदाचित् विक्षेपतैं समाधिका अभाव होवै है। यातैं सारा विग्रह शिवका उपास्यरूप नहीं॥ इस रीतिसैं सारे देव भगवतीके उपासक हैं। सो उपासना दो रीतिसैं कही है:-दक्षिणआम्नायतैं और उत्तरआम्नायतैं। पूर्व दक्षिण आम्नाय कह्या। आगै उत्तरआम्नाय कहै हैं-

॥ चौपाई ॥

भक्त भगवतीके हर हरि हैं।
इन सम कौन उपासन करि हैं॥
तदपि महामाया जो ध्यावै।
तुरत सकल पुरुषारथ पावै ॥ ६९ ॥

॥ ९३७ ॥ ६३ सैं ६४ वीं चौपाईरूप पूर्व-उक्तग्रन्थभागमैं भगवतीके भक्तका यह जो आगे कहियेगा सो अभिप्राय है॥

॥ ९३८ ॥ हरिहरआदिक निज निज कहिये वैष्णवी माहेश्वरी आदिक भगवतीके अंशनकूं तिसकी कृपातैं पावते हैं। यह अर्थ देवीभागवतमैं स्पष्ट लिख्या है॥

नहिं साधन जगमैं अस औरा ।
उपजै भोग मोछ इकठौरा ॥
भक्त भगवतीको जो जगमैं ।
भोगै भोग न आवत भगमैं ॥ ७० ॥
सिवकृत तंत्ररीति यह गाई ।
भक्तिभगवती अतिसुखदाई ॥
पंच मकार न तजिये कबहू ।
जिनहि सनातन सेवत सबहू ॥७१॥
कृस्नदेव बलदेव सुज्ञानी ।
प्रथमा पिवत सदा ज्यूं पानी ॥
और प्रधान पुरातन जेते ।
सेवत सकल मकारहि तेते ॥ ७२ ॥
तिन सेवनकी जो विधि सारी ।
सिव निजमुख भाखी उपकारी ॥
सिवको वचन धरै जो मनमैं ।
लहै सुभोग मोछ इक तनमैं ॥७३॥
ग्रंथ भागवत व्यास बनायो ।
उपपुरान काली समुझायो ॥
भक्ति भगवतीकी इक गाई ।
पूजाविधि सगरी समुझाई ॥ ७४ ॥
ध्याता सकल भगवतीके हैं ।
हरि हर सूर गनेस जिते हैं ॥
सकल पिये प्रथमा मतिवारे ।
पूजत सक्ति मग्न मन सारे ॥ ७५ ॥

जगजननी जागै इक देवी ।
परमानंद लहै तिहि सेवी ॥

॥५०५॥ सूर्यभक्तका उत्तर ॥

सूर्यभक्त भगवतीको यह सुनि ।
क्रोधसहित बोल्यो इक मुनि पुनि७६

सुन राजन बानी इक मोरी ।
भाखूं झूठं न सपथ करोरी ॥
अतिपापिष्ठ नीच मत याको ।
श्रवन सनेह सुन्यो तैं जाको ॥७७॥

औगुन जिते बखानत जगमैं ।
ते गिनियत गुनगन या भगमैं ॥
मद्य मलीनहि तीरथ राखत ।
सुद्ध नाम आमिषको आखत॥७८॥

कहत और यूं सब विपरीता ।
६३९ संभुतंत्र सेवी मति रीता ॥
दच्छिन संप्रदाय जो दूजी ।
यद्यपि श्रेष्ठ अनेक न पूजी ॥७९ ॥

तथापि बिन भानू सब अंधे ।
इन सबके मन जिनमैं बंधे ॥
करत भानु सगरो उजियारो ।
ता बिन होत तुरत अँधियारो॥८०॥
और प्रकासक जगमैं जे हैं ।
अंस सबै सूरजके ते हैं ॥

॥ ६३९ ॥ "शंभुतंत्र" कहिये पामरपुरुषनकी बी कहुं आस्ता रहै । इस अभिप्रायसैं वाममार्गके प्रतिपादक शिवतंत्र (वामतंत्र) हैं। ताके सेवन करने वालेकी "मति रीता" कहिये बुद्धि युक्तिप्रमाणकारि शून्य होनैतैं खाली है ॥

भानु समान कौन हितकारी ।
भ्रमत आप परहित मति धारी॥८१॥

काल अधीन होत सब कारज ।
ताहि त्रिविध भाखत आचारज ॥
वर्तमान भावी अरु भूता ।
सूरज क्रिया करत यह सूता ॥ ८२ ॥

या विधि सकल भानुतैं उपजै ।
भस्म होत सब जब वह कुपिजै॥
भानुरूप द्वैभांति पिछानहु ।
निराकार साकारहि जानहु ॥ ८३ ॥

निराकार परकास जु कहिये ।
नामरूपमैं व्यापक लहिये ॥
अधिष्ठान सबको सो एका ।
जगत विवर्त ह्वै जिहि अविवेका८४

"अहं भानु" अस वृत्ति उदै जब॥
तामैं प्रगटि विनासत तम तब॥८५॥

टीकाः-सूर्यके दो रूप हैंः-निराकार-प्रकाश औ साकारप्रकाश, तिन दोनूंमैं निराकारप्रकाश सारे नामरूपमैं व्यापक हैं। जाकूं वेदांती भातिशब्दकरिके व्यवहार करै हैं, सो निराकारप्रकाशरूप जो सूर्यका सामान्यरूप है, सो सारे जगत्का अधिष्ठान है ॥ ताके अज्ञानतैं जगत्‌रूपी विवर्त उपजै है ॥ सोई निराकारप्रकाश अंतःकरणकी वृत्तिमैं प्रतिबिंब-सहित ज्ञान कहिये है ॥ "अहं भानु" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति प्रकाशके प्रतिबिंबसहित होवै, तब अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा जगत्की निवृत्ति होवै है ॥

॥ चौपाई ॥

सुनि साकाररूप यह ताको ।
होय चांदिनी दिनमैं जाको ॥
ताके अंस और बहुतेरे ।
चंद तारका दीप घनेरे ॥ ८६ ॥

यातैं द्वैविध भानु बतायो ।
ज्ञेय ध्येयको भेद जनायो ॥
वेद सकल याहीकूं भाखत ।
रूप प्रकास सत्य तिहिं आखत८७॥

टीकाः-निराकार साकारभेदतैं भानुके दो रूप हैं। तिनमैं निराकाररूप ज्ञेय है। साकाररूप ध्येय है। याहीकूं वेदांतनमैं निर्गुणसगुणभेदतैं दो प्रकारका ब्रह्म कहै हैं ॥

जामैं लेस न तमको कबही ॥
लखि तिहि जग जन जागत सबही८८

कबहु न सोवै सो यूं जागै ।
ध्यान करत ताको तम भागै ।
औरहि जागत भाखत सगरे ।
राजन जानि झूठ ते झगरे ॥ ८९ ॥

॥ ५०६ ॥ उक्तमतके अनुवादपूर्वक स्मार्त्तमत ॥

ऐसै पांच उपासक बोले ।
निजगुण अवगुण परके खोले ॥
पंडित और अनेक जु आये ।
भिन्नभिन्न निज मत समुझाये ॥९०॥

टीकाः-जैसैं पांच उपासक परस्परविरुद्ध

वचन बोले, तैसें अनेक पंडित निजनिजबुद्धिके अनुसार विरुद्ध ही बोलैं ॥

जैसें इन पांचूंका परस्परविरुद्ध मत है, तैसें स्मार्त्त जो पंडित पांचूंदेवनमैं भेदबुद्धि करैं नहीं, ताका मत बी इन सबतैं विरुद्ध है। काहेतैं ?--

वैष्णवका यह मत हैः-विष्णुसमान और देव नहीं। सारे विष्णुके भक्त हैं। और विष्णुके जो रामकृष्णनारायणआदिक नाम हैं, तिनके समान जो अन्यदेवनके नामकूं जानैं, सो नामापराधी[५४२] है। ताकू रामादिकनामउच्चारणका यथार्थफल होवै नहीं ॥

तैसें शैवमतमैं शिवसमान अन्य देव नहीं औ शिवके नामउच्चारणका फल विष्णुनामउच्चारणतैं होवै नहीं ॥

इस रीतिसैं सर्वके मतमैं अपनै अपनै उपास्यदेवके समान अन्य देव नहीं औ स्मार्त्तमतमैं सारे देव सम हैं। यातैं ताका मत बी पांचूंवातैं विरुद्ध है ॥ तैसें--

॥५०७॥षट्शास्त्रनकी परस्परविरुद्धता॥

१ सांख्य, २ पातंजल, ३ न्याय, ४ वैशेषिक, ५ पूर्वमीमांसा औ ६ उत्तरमीमांसा, इन षट्शास्त्रनका मत बी परस्परविरुद्ध है। काहेतैं ?

१ सांख्यशास्त्रमैं ईश्वरका अंगीकार नहीं। २ योग[५४३]सैं निरपेक्ष प्रकृतिपुरुषके विवेकज्ञानतैं मोक्ष मानी है। औ पातंजलशास्त्रमैं ईश्वरका अंगीकार औ समाधितैं मोक्ष मानी है। यह विरोध है॥

३-४ न्यायमतमैं चार प्रमाण औ वैशेषिकमतमैं दोय प्रमाण। यह विरोध है। तैसें न्याय वैशेषिकका और बी आपसमैं बहुत विरोध है। जिज्ञासुकूं अपेक्षित नहीं। यातैं लिख्या नहीं ॥

५ तैसे पूर्वमीमांसामैं ईश्वरका अंगीकार नहीं। मोक्षरूप नित्यसुखका अंगीकार नहीं। किंतु कर्मजन्य विषयसुख ही पुरुषार्थ है ॥ और-

६ उत्तरमीमांसामैं ईश्वरका मोक्षका अंगीकार। विषयसुख पुरुषार्थ नहीं ॥ और उत्तर-

॥ ५४२ ॥ जाके दश नामापराधमैंसैं कोई बी नामापराध होवै सो नामापराधी कहिये है। ये दश नामापराध ये है॥ श्लोकः ॥

सन्निंदाऽसति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधीरश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागोहि धर्मान्तरैः
साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश१

अस्यार्थः-१ सत्पुरुषनकी निंदा, २ असाधुपुरुषके पास नामके महिमाकी कथा, ३ विष्णुका शिवसैं भेद, ४ शिवका विष्णुसैं भेद, ५ श्रुतिवाक्यमैं अश्रद्धा, ६ शास्त्रवाक्यनमैं अश्रद्धा, ७ गुरुवाक्यमैं अश्रद्धा, ८ नामविषे अर्थवादका (महिमाकी स्तुतिका) भ्रम, ९ 'अनेकपापका नाशक नाम मेरे पास है' इस विश्वाससैं निषिद्धकर्मका आचरण। उक्तविश्वाससैं ही विहितकर्मका त्याग औ १० अन्यधर्मोसैं (अन्यदेवनके नामोंसैं) तुल्यता भगवत्नामविषै जाननी। ये दश शिव औ विष्णुके जपविषै नामापराध हैं ॥ १ ॥

याहीतैं कोई महात्मानै भाषादोहाविषै कहा है--

॥ दोहा ॥

राम राम सब को कहै,
दशरित कहै न कोय ॥
एकवार दशरित कहै,
तु कोटिजज्ञफल होय ॥ १ ॥

इहां "दशरित कहै न कोय" इस द्वितीयपादका यह अर्थ हैः-दशअपराधनसैं विना (रहित होयके) रामनामकूं कोई नहीं कहता। अन्य अर्थ स्पष्ट ॥

॥ ५४३ ॥ योगनिरपेक्ष कहिये समाधिरूप योगकी अपेक्षासैं रहित केवल ॥

मींमांसाका मत या ग्रंथमैं स्पष्टही है। सर्वशास्त्रन का मत यातैं विरुद्ध है ॥ औरनमैं भेदवाद है। यामैं भेदका खंडन औ अभेदका प्रतिपादन है ॥

इस रीतिसैं सकलशास्त्रनके सिद्धांत परस्पर विरुद्ध हैं ॥

॥ ५०८ ॥ तर्कदृष्टिका पितासैं मिलाप ॥

॥ चौपाई ॥

वचन विरुद्ध सुने जब राजा ।
यह संसै उपज्यो तिहि ताँजा[५४४] ॥
इनमैं कौन सत्य बुध भाखत ।
युक्ति प्रमान सकल सम आखत ९१

संसै सोक दुखित यूं जियमैं ।
को उपास्य यह लख्यो न हियमैं ॥
चिंता हृदय हुई यह जाकूं ।
निजसंदेह सुनाऊं काकूं ॥ ९२ ॥

सास्त्रनिपुन पंडित जग जेते ।
सुने विरुद्ध बकत यह तेते ॥
यूं चिंतत बहुकाल भयो जब ।
तर्कदृष्टि तिहि आय मिल्यो तब९३

॥ दोहा ॥

मिले परस्पर ते उभै,
पुत्र पिता जिहि रीति ।
करि प्रनाम आसिष दुहुं,
आसन लहे सप्रीति ॥ ९४ ॥

(तर्कदृष्टिका पिताप्रति उपदेश
॥ ५०९–५२२ ॥)

॥ ५०९ ॥ कारणरूपकी उपास्यता औ कार्यरूपकी निकृष्टता ॥

निजपितु चिंतासहित लखि,
सुत बोल्यो यह बात ।
को चिंता चित रांवरे[५४६],
मुख प्रसन्न नहिं तात ॥ ९५ ॥

॥ चौपाई ॥

सुभसंतति सुतकी सुनि बानी ।
तिहि भाखी निज सकल कहानी ॥
चित चिंताको हेतु सुनायो ।
को उपास्य यह तत्त्व न पायो॥९६॥
तर्कदृष्टि सुनि पितुके बैना ।
बोल्यो सुभसंतति सुख दैना ॥

॥ ५४४ ॥ कोई डोकरीके अगणमैं बिल्ला मर गया था। तिस बिल्लेकूं वह देहलीका दरवज्जा खुल्ला छोडिके गामसैं बाहिर छोड़ गयी। तहां तलकि पिछाड़ी कोई रोगिष्ठ ऊंट तिसके अगणमैं प्रवेशकूं पायके मर गया। तिसतैं तिस डोकरीकूं जैसैं बडी चिन्ता भई तैसैं शुभसततिराजाने बी उपास्यदेवके अज्ञानकूं दूरी करनेअर्थ पंडितनके प्रति प्रश्न किया। तिसतैं ताजा कहिये नवीन संशय उत्पन्न भया। ताके निवारणकी तिसकूं बड़ी चिन्ता भई ॥

॥ ५४५ ॥ जिहि कहिये जैसी रीति है तैसैं। दुहु कहिये पुत्र औ पिता दोनूं क्रमतैं प्रणाम औ आशीर्वादकारिके प्रीतिसहित आसनकूं प्राप्त भये। यह अर्थ है ॥

॥ ५४६ ॥ तुम्हारे चित्तमैं कौन चिन्ता है ?

कारनरूप उपास्य पिछानहु ।
ताके नाम अनंतहि जानहु ॥ ९७ ॥

कारजरूप तुच्छ लखि तजिये ।
यह सिद्धांत वेदको भजिये ॥
रचे व्यास इतिहास पुराना ।
तिनमैं यही मतो नहिं नाना ॥ ९८॥

मनमैं मर्म न लखत जु पंडित ।
करत परस्पर मत ते खंडित ॥
नीलकंठपंडित बुध नीको ।
कियो ग्रंथ भारतको टीको ॥ ९९ ॥

तिन यह प्रथमहि लिख्यो प्रसंगा।
श्रुतिसिद्धांत कह्यो जो चंगा ॥१००

॥ ५१० पुराणउक्त स्तुति औ निंदाके करनैंमैं व्यासका अभिप्राय ॥

टीकाः—यद्यपि सकलपुराणनका कर्त्ता एक व्यास है, तानै स्कंदपुराणमैं शिवकूं स्वतंत्रतादिक ईश्वरधर्म कहे औ अन्यदेवनकूं शिवकृपातैं सारी विभूतिकी प्राप्ति कही । यातैं जीवधर्म कहे ॥ तैसैं विष्णुपुराण पद्मपुराणमैं विष्णुकूं ईश्वरता कही । तैसैं किसीकूं पुराणमैं, किसीकूं उपपुराणमैं, विष्णुशिवतैं भिन्न जो गणेशादिक हैं, तिनकूं ईश्वरता कही । इस रीतिसैं व्यासवाक्यनमैं विरोध प्रतीत होवै है ॥ ताका—

यह समाधान करै हैं:—सारे ही ईश्वर हैं ॥ जा प्रकरणमैं अन्यदेवकी निंदा है, ताकी निंदाकरिके तिसकी उपासनात्यागमैं व्यासका अभिप्राय नहीं । किंतु वैष्णवपुराणमैं शिवादिकनकी निंदा औ विष्णुकी स्तुतिकारिके विष्णुकी उपासनामैं प्रवृत्तिकी हेतु है। तैसैं शिवपुराणमैं विष्णुआदिकनकी निंदा बी तिनकी उपासनाके त्याग अर्थ नहीं । किंतु तिनकी निंदा शिवकी उपासनामैं प्रवृत्तिके अर्थ है ॥ जो एकप्रकरणमैं अन्यकी निंदा त्यागवास्ते होवै तौ सर्वकी उपासनाका त्याग होवैगा । यातैं अन्यकी निंदा एककी स्तुतिके अर्थ है । त्याग अर्थ नहीं ॥

दृष्टांतः—वेदमैं अग्निहोत्रके दो काल कहे हैं॥ एक तौ सूर्यउदयसैं प्रथम औ दूसरा सूर्यउदयतैं अनंतर काल कह्या है।तहां उदयकालके प्रसंगमैं अनुदयकालकी निंदा करी है औ अनुदयकालके प्रसगमैं उदयकालकी निंदा करी है ॥ तहां निंदाका तात्पर्य त्यागमैं होवै तौ दोनूं कालमैं होमका त्याग होवैगा औ नित्यकर्मका त्याग संभवै नहीं । यातैं उदयकालकी स्तुतिवास्तै अनुदयकालकी निंदा है औ अनुदयकालकी स्तुतिवास्तै उदयकालकी निंदा है । तैसैं एक देवकी उपासनाके प्रसंगमैं अन्यकी निंदाका एककी स्तुतिमैं तात्पर्य है । अन्यकी निंदामैं तात्पर्य नहीं ॥

॥ ५११ ॥ पांचदेवनके उपासकनकूं सम (ब्रह्मलोक) फलकी प्राप्ति ॥

जैसैं शाखाभेदतैं कोई उदयकालमैं होम करै है । कोई अनुदायकालमैं करै है । फल दोनूंकूं समान होवै है । तैसैं इच्छाभेदतैं पांचूं देवनमैं जाकी उपासना करै तिन सबतैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है । तहां भोग भोगिके विदेहमोक्ष होवै है ॥

यद्यपि विष्णुआदिकनकी उपासनातैं वैकुंठलोकादिकनकी प्राप्ति पुराणमैं कही है ।

॥ ५४७ ॥ सारे कहिये विष्णु, शिव, गणेश, देवी औ सूर्य, ये पांच देव ।

ब्रह्मलोककी नहीं । तथापि उत्तम उपासक विदेहमुक्तिके अधिकारी देवयानमार्गनतैं सारे ब्रह्मलोककूं ही जावै हैं । परंतु एक ही ब्रह्मलोक वैष्णवउपासककूं वैकुंठरूप प्रतीत होवै है और—लोकवासी सारे तिसकूं चतुर्भुजपार्षदरूप प्रतीत होवै हैं औ आप बी चतुर्भुजमूर्ति होवै है ॥ तैसैं शैवउपासककूं ब्रह्मलोक ही शिवलोक प्रतीत होवै है । तिसलोकवासी सारे त्रिनेत्रमूर्ति अपनैसहित प्रतीत होवै हैं ॥ इस रीतितैं सर्व-उपासकोंकूं ब्रह्मलोक ही अपनै उपास्यका लोक प्रतीत होवै है । काहेतैं ? यह नियम है:—देवयाँनमार्ग विना अन्यमार्गतैं जे जावै हैं, तिनका संसारमैं आगमन होवै है औ देवयान-मार्ग एक ब्रह्मलोकका है । यातैं विदेहमोक्षके योग्य उपासक सारे ब्रह्मलोककूं जावै हैं । तिस ब्रह्मलोकमैं ऐसी अद्भुत महिमा है:—उपासककी इच्छाके अनुसार सारी सामग्रीसहित वह ब्रह्मलोक ही तिनकूं प्रतीत होवै है"

इस रीतितैं पांचूं देवनके उपासकनकूं सम फल होवै है । याके विषै—

॥ ५१२ ॥ एक परमात्मामैं नानानामरूप संभवै हैं ॥

यह शंका होवै है:—पांचूं देवनके नामरूप भिन्न भिन्न कहे हैं और ईश्वर एक है । एक ईश्वरके नाना रूप संभवैं नहीं । ताका

यह समाधान है:—परमार्थसैं नामरूप कोई परमात्मामैं हैं नहीं । मंदबुद्धिकूं उपासना-वासतैं नामरूपरहित परमात्माके मायाकृत कल्पितनामरूप कहे हैं । यातैं एकपरमात्मामैं मायाकृतकल्पितनामरूप नाना संभवै हैं ॥ इस रीतिसैं सर्वपुराणवाक्यनका विरोध दूरि होवै है ॥ औ—

५१३ सारे पुराणनका कारण औ कार्यब्रह्मके उपासनकी क्रमतैं उपादेयता औ हेयतामैं तात्पर्य है ॥ ५१३—५१४ ॥

पुराणवाक्यनमैं विरोधशंकाका मुख्य समाधान तौ यह है:-विष्णु । शिव । गणेश । देवी औ सूर्य । इसतैं आदिलेके जितने एकएकके नाम हैं, सो सारे कारणब्रह्मके नाम हैं औ कार्यब्रह्मके बी सो सारे नाम हैं ॥ जैसैं माया-विशिष्टकारणकूं ब्रह्म कहै हैं औ हिरण्यगर्भ कार्य है ताकूं बी ब्रह्म कहै हैं । इस रीतिसैं कारणब्रह्मकूं विष्णु । शिव । गणेश । देवी । सूर्यपद बोधन करै हैं । औ कार्यब्रह्मकूं बी पांचूं पद बोधन करै हैं । ऐसैं पांचूं पदनके जो नारायण, नीलकंठ, विघ्नेश, शक्ति, भानु इत्यादिक अनंत पर्याय हैं, सो सारे कारणब्रह्म औ कार्यब्रह्म दोनूंवांकूं बोधन करै हैं ॥ कहुं कारणब्रह्मकूं, औ कहुं कार्यब्रह्मकूं प्रसंगतैं बोधन करै हैं ॥ जैसैं सैंधवपद अश्व लवण दोनूंवांकूं बोधन करै है ॥ भोजनप्रसंगमैं सैंधव-पद लवणकूं बोधन करै है औ गमनप्रसंगमैं सैंधवपद अश्वकूं बोधन करै है ॥ वैष्णवपुराणमैं

॥ ९४८ ॥ १ दवयान । २ पितृयान ।
१ सूर्यमण्डलकूं भेदन करिके ब्रह्मलोकमैं जानेका जो मार्ग सो देवयानमार्ग है । याहीकूं अर्चिमार्ग बी कहै हैं ॥ औ—
२ चन्द्रमंडलकूं भेदन करिके इन्द्रलोकरूप ब्रह्म-लोकमैं जानेका जो मार्ग सो पितृयान-मार्ग है । याहीकूं धूममार्ग बी कहते हैं । औ
३ वारंवार जन्ममृत्युके कारण मृत्युलोकविषै आवनैका जो मार्ग सो तीसरा जायस्वम्रियस्वमार्ग है ये तीन संसारके मार्ग हैं औ चौथा ब्रह्मज्ञानरूप जो मार्ग, सो मोक्षका मार्ग है ॥

विष्णुनारायणादिक पद कारणब्रह्मके बोधक हैं। शिवगणेशसूर्यादिक पद कार्यब्रह्मके बोधक हैं। यातैं—

॥ ५१४ ॥ १ वैष्णवग्रंथनमैं विष्णुकी स्तुति औ शिवादिकनकी निंदातैं व्यासका यह अभिप्राय हैः—कारणब्रह्म उपास्य है औ कार्यब्रह्म उपास्य नहीं ॥

२तैसैं स्कंदपुराणादिक शैवग्रंथनमैं शिवमहेशादिकपद कारणब्रह्मके बोधक हैं औ विष्णु गणेशदेवीसूर्यादिक पद कार्यब्रह्मके बोधक हैं। यातैं तिनमैं बी कारणब्रह्मकी स्तुति औ कार्यब्रह्मकी निंदा है ॥

३ तैसैं गणेशपुराणमैं गणेशपद कारणब्रह्मका वाचक औ विष्णुशिवादिकपद कार्यब्रह्मके वाचक हैं। यातैं कारणकी स्तुति औ कार्यकी निंदा है ॥

४ तैसैं कालीपुराणमैं कालीदेवीआदिक पद कारणब्रह्मके बोधक औ विष्णुशिवगणेशसूर्यादिकपद कार्यब्रह्मके बोधक। यातैं कालीपदबोध्य कारणकी स्तुति औ विष्णुशिवादिकपदबोध्य कार्यब्रह्मकी निंदा है॥

५ तैसैं सौरपुराणमैं सूर्यभानुपदबोध्य कारणब्रह्म है, ताकी स्तुति औ अन्यपदबोध्य कार्यकी निंदा है ॥

इस रीतिसैं सकलपुराणनमैं कार्यकारणकी संज्ञारूप संकेतका तौ भेद है। उपादेय हेय जो अर्थ ताका भेद नहीं ॥ सकल पुराणनमैंः—

१ कारणब्रह्मकी उपासना उपादेय है॥औ

२ कार्यकी उपासना हेय है।

यातैं सारे पुराण एक कारणब्रह्मकूं उपास्यता बोधन करै हैं। तिनका आपसमैं विरोध नहीं ॥

॥५१५॥ मूर्तिप्रतिपादनका अभिप्राय ॥

॥ ५१५—५१६ ॥

यद्यपि चतुर्भुज, त्रिनेत्र, सतुंड, अष्टभुजादिकमूर्ति मायाके परिणाम हैं औ चेतनके विवर्त्त हैं। यातैं कार्य हैं औ तिनकी बी उपासना कही है तथापि तिन चतुर्भुजादिक मूर्तियोंका जो माय्याविशिष्टकारण है तासैं विचार कियेतैं भेद नहीं। यातैं तिन आकारनको बाधिके कारणरूपतैं तिनकी उपासनामैं तात्पर्य है। काहेतैं ? आकार कार्य है। यातैं तुच्छ है औ कारण सत्य है ॥ औ जाकी मंदप्रज्ञा आकारमैं ही स्थित होवै, सो शास्त्र उक्तआकारकी ही उपासना करै। तासैं बी प्रज्ञा निश्चल होयके कारणब्रह्मकी उपासनामैं स्थिति होवै है ॥

॥ ५१६ ॥ कारणब्रह्मकी उपासना इसरीतिसैं कही हैः—ब्रह्म जगत्का कारण है। सत्यकाम है। सत्यसंकल्प है। सर्वज्ञ है। स्वतंत्र है। सर्वका प्रेरक है। कृपालु है। ऐसै ईश्वरके धर्मनकूं चिंतन करै ॥ मूर्तिचिंतनमैं शास्त्रका तात्पर्य नहीं ॥ और—

अनेकमूर्ति जो शास्त्रमैं लिखी हैं, सो उपासनाके निमित्त नहीं। किंतु सारी मूर्ति कारणब्रह्मकी उपलक्षण हैं ॥ जो वस्तु जाके एकदेशमैं होवै, औ कदाचित् होवै औ व्यावर्त्तक होवै, सो उपलक्षण कहिये है ॥

जैसैं "काकवाला देवदत्तका गृह है" या वाक्यमैं देवदत्तके गृहका काक उपलक्षण है। काहेतैं? गृहके एकदेशमैं काक होवै है औ कदाचित् होवै है। सर्वदा नहीं। औ अन्यगृहतैं देवदत्तके गृहका व्यावर्त्तक है ॥ तैसैं जगत्का कारण ब्रह्म है ॥ ताके एकदेशमैं मूर्ति होवै है औ कदाचित् होवै है औ चतुर्भुजादिकमूर्ति कारणब्रह्मविषै ही होवै है। अन्यमैं नहीं। यातैं व्यावर्त्तक होनैतैं-उपलक्षण है ॥

उपलक्षणका यह प्रयोजन होवै हैः—विशेष्यवस्तुके स्वरूपका ज्ञान होवै। जैसैं काकतैं

देवदत्तके गृहका ज्ञान होवै । अन्य प्रयोजन काकतैं नहीं ॥ तैसैं चतुर्भुजादिकआकारनतैं निराकारकारणब्रह्मका ज्ञान ही उपासनाके निमित्त मूर्त्तिप्रतिपादनका प्रयोजन है । अन्य नहीं ॥ औ

॥५१७॥ आकारनमैं आग्रहवाले शैवादिककूं खेदकी प्राप्ति ॥

मंदप्रज्ञावाले शास्त्रअभिप्रायकूं समझैं विना तिन आकारनमैं आग्रह करै हैं।और श्यालसारमेयन्यायतैं परस्पर कलह करै हैं ॥

स्त्रीके भाईकूं श्याल कहै हैं । कुक्कुरकूं सारमेय कहै हैं । दृष्टांतकूं न्याय कहै हैं ॥

किसीके सालेका नाम उत्फालक था और सालेके शत्रुका नाम धावक था ॥ तिस पुरुषके गृहके कुक्कुरकौं नाम धावक और दूसरे गृहके कुक्कुरका नाम उत्फालक था तहां तिस पुरुषकी स्त्री गृहविषै प्रथम आई । तब दोनूं कुक्कुर आपसमैं हमेस लडैं । तहां स्त्रीके पति श्वसुरआदिक उत्फालककूं गालि देवै औ अपने धावककी बडाई करैं तब ता स्त्रीकूं यह भ्रांति हुई:–मेरे भाईकूं गालि देवै हैं । ताके शत्रुकी बडाई करै हैं ॥ तातैं दूषित होयके भर्तासैं क्लेश करती हुई ॥

जैसैं तिनके अभिप्राय जाने विना समानसंज्ञातैं भ्रमकरिकै स्त्रीनै क्लेश किया तैसैं वैष्णवग्रथनमैं शिवादिकनामतैं कार्यब्रह्मकी निंदा करी है । इस अभिप्रायकूं नहीं जानिके शैवादिक दुःखित होवै हैं । और विष्णुनामतैं कार्यकी निंदाकूं नहीं जानिके वैष्णव दुःखित होवै हैं ॥ और—

सकलपुराणनका यह अभिप्राय है:–

१ कारणब्रह्म उपास्य है ।

२ कार्यब्रह्म त्याज्य है ॥

१ मायाविशिष्टचेतन कारणब्रह्म कहिये है ॥

२ मायाकृत कार्यविशिष्टचेतन कार्यब्रह्म कहिये है ॥

यही अर्थ भारतकी टीकाके आरंभमैं लिख्या है । और सारे वेदांतनका यही सिद्धांत है ॥

॥ ५१८ ॥ उत्तरमीमांसाकी प्रमाणता । औरनकी अप्रमाणता ॥ ५१८–५२०॥

॥ चौपाई ॥

सुभसंतति सुनि सुतके वैना ।
उपज्यो जियमैं किंचित चैना ॥
पुनि तिन प्रश्न कियो निजपूतहिं ।
सास्त्र परस्पर कहत असूतहिं ॥१०१॥

टीकाः–पुराणमैं विरोधशंकाके नाशतैं चैन कहिये सुख हुआ औ षट्शास्त्रनकी परस्परविरोधशंका मिटी नहीं । यातैं किंचित् चैन हुवा । सर्वथा नहीं ॥ असूत कहिये विरुद्ध कहै है ॥

॥ चौपाई ॥

तिनमैं सत्य कौन सो कहिये ।
जाको अर्थ बुद्धिमैं लहिये ॥ १०२॥
॥ ५१९ ॥

तर्कदृष्टि सुनि निजपितु बानी ।
बोल्यो वचन सु परमप्रमानी ॥
उत्तरमीमांसा उपदेसा ।
वेदबिरुद्ध न जामैं लेसा ॥ १०३ ॥
सास्त्र पंच ते वेदविरुद्धं ।
यातैं जानहु तिनहिं असुद्धं ॥

किंचितअंस वेदअनुसारी । लखि बहुग्रहत मंद अधिकारी १०४

टीकाः—यद्यपि षट्शास्त्रनके कर्त्ता सर्वज्ञ कहे हैं ॥

१ सांख्यका कर्त्ता कपिल ।

२ पातंजलका कर्त्ता पतंजलि (शेषका अवतार)

३ न्यायका कर्त्ता गौतम ।

४ वैशेषिकशास्त्रका कर्त्ता कणाद ।

५ पूर्वमीमांसाका कर्त्ता जैमिनि ।

६ उत्तरमीमांसाका कर्त्ता व्यास ॥

इन सबनका माहात्म्य प्रसिद्ध है । यातें इनके वचनरूप शास्त्र बी सारे समानप्रमाण चाहिये । तथापि सर्ववाक्यनमें प्रबलप्रमाण वेदवाक्य है । काहेतें ?

१ वेदका कर्त्ता सर्वज्ञ ईश्वर है । ताके विषे भ्रमसंदेहविप्रलिप्सादोष संभवै नहीं ॥

२ इन शास्त्रनके कर्त्ता जीव हैं । तिनविषै भ्रम आदिक दोषनका संभव है ॥

१ यद्यपि शास्त्रकार बी सर्वज्ञ कहे हैं तथापि तिनकूं सर्वज्ञता योगमाहात्म्यसैं हुई है । यातें युंजानयोगी हुये हैं । औ

२ ईश्वरकूं सर्वज्ञता स्वभावसिद्ध है । यातें युक्तयोगी है ।

१ जाकूं चिंतन किये पदार्थनका ज्ञान होय सो युंजानयोगी कहिये है ।

२ जाकूं सर्वदा एकरस सारे पदार्थ अपरोक्ष प्रतीत होवैं सो युक्तयोगी कहिये है । ऐसा ईश्वर है ॥

१ युक्तयोगीकृत वेदवचन प्रबल । औ—

२ युंजानयोगीकृत शास्त्रवचन दुर्बल हैं । यातें—

॥ ५२० ॥ वेदअनुसारी शास्त्र प्रमाण औ वेदविरुद्ध अप्रमाण । पांच शास्त्र जैसें वेदविरुद्ध हैं तैसें शारीरकआदिकग्रंथनमैं स्पष्ट है औ उत्तरमीमांसा किसी अंशमैं वेदविरुद्ध नहीं । यातें प्रमाण है और शास्त्र बी किसी अंशमैं वेदके अनुसारी देखिके मंदबुद्धि तिनमैं विश्वास करै हैं । परंतु बहुत अंशमैं वेदविरुद्ध है यातें त्याज्य है ॥ किसी अंशमैं वेदअनुसारी होनेतें उपादेय होवै तौ जैनशास्त्र बी अहिंसा-अंशमैं वेदअनुसारी है सो उपादेय हुवा चाहिये । और त्याज्य है । उपादेय नहीं ॥

यद्यपि सुगत ईश्वरका अवतार है । जाकूं बुद्ध कहे हैं । ताके वचन बी वेदसमान प्रमाण चाहिये । तथापि बुद्ध विप्रलिप्सानिमित्तसैं हुया है । यातें ताके वचन सर्वथा अप्रमाण हैं ॥

वंचनकी इच्छाकूं विप्रलिप्सा कहै हैं । जाकूं बहकावनेकी इच्छा कहै हैं ॥

यातें सर्वअंशमैं वेदअनुसारी उत्तरमीमांसा ही सर्वथा मुमुक्षुकूं उपादेय है ॥

यद्यपि उत्तरमीमांसा व्यासकृत सूत्ररूप है ताका व्याख्यान बी अनेक पुरुषोंनें नानारीतिसैं किया है तथापि पूज्यचरणशंकरकृत व्याख्यान ही वेदानुसारी है । और नहीं । यह पंचमतरंगमैं प्रतिपादन करी है । यातें और पंचशास्त्र अप्रमाण हैं ॥ और

॥ ५२१ ॥ अन्यशास्त्रनकी त्याज्यतामैं दृष्टांत औ हेतु ५२१-५२२

जो इस तरंगमैं पूर्व सारे शास्त्र मोक्षउपयोगी कहे सो तर्कदृष्टिके सारग्राहीविवेकतैं कहे ॥

जैसैं किसीका शत्रु तरवारि मारै तासैं रुधिर निकसिके दैवगतिसैं रोग निवृत्त होय जावै । तब सारग्राही पुरुष तरवारि मारनैका उपकार मानि लेवै, तैसैं अन्यशास्त्रनसैं बी किसी रीतिसैं

अंतःकरणकी शुद्धि वा निश्चलता हुयेतैं पुरुष निवृत्त होयके वेदअनुसार निश्चय करै तौ मोक्ष होवै है ॥ सर्वथा तिनहींमैं आग्रह करै तौ अंधगोलांगूलन्यायतैं अनर्थकूं प्राप्त होवै है । यातैं सकलशास्त्र त्यागिके अद्वैतव्याख्यानरीति-सैं उत्तरमीमांसा उपादेय है:॥.

॥ ५२२ ॥ अंधगोलांगूलन्याय यह है:-किसी धनीके भूषणयुक्त पुत्रकूं चोर ले गये, वनमैं भूषण ले ताके नेत्र फोड़िके छोड़ि गये । तब ता रुदन करते बालककूं कोई निर्दयवंचक बली उन्मत बलीवर्दकी लांगूल पकडाय देवै औ यह कहै:-तूं इसका लांगूल मति छोडियो । तेरे ग्राममैं यह पहुँचाय देवैगा । सो दुःखी बालक ताके वचनमैं विश्वासकरिके दुःख अनुभवकरिके नष्ट होवै है ॥

तैसैं विषयरूप चोर विवेकरूप नेत्रकूं फोडिके संसारवनमैं गेरै है । तहां भेदवादी निर्दयवंचक अन्यशास्त्रनके सिद्धांतमैं आग्रह करावै है औ यह कहै है:-हमारा उपदेश ही तेरेकूं परमसुखप्राप्तिका हेतु होवैगा । ताकूं छोडियो मति ॥तिसके वाक्यनमैं विश्वासकरिके पुरुषार्थसुखरहित होवै है औ जन्ममरणरूप महा-दुःखकूं अनुभव करै है । यातैं अन्यशास्त्र त्याज्य हैं ॥

॥ ५२३ ॥ राजाका मृत्यु औ ब्रह्म-लोककी प्राप्ति ॥ ५२३--५२४ ॥

॥ दोहा ॥

तर्कदृष्टिके बचन सुनि ।
सुभसंतति तिहि तात ।
संसै सोक नस्यो सकल ।
लह्यो हियै कुसलात ॥ १०५ ॥
कारनब्रह्म उपासना ।
करी बहुत चित लाय ।
तर्कदृष्टि निज लखि गुरू ।
राजसमाज चढाय ॥ १०६ ॥

टीकाः-यद्यपि तर्कदृष्टि पुत्र था तथापि उपदेश उत्तम कऱ्या । यातैं गुरुपदवीकूं प्राप्त हुवा । यह ब्रह्मविद्याका माहात्म्य है ॥

॥ ५२४ ॥ ॥ दोहा ॥

कछू वदीत्यो काल तब ।
तजि राजा निजप्रान ।
ब्रह्मलोकमैं सो गयो ।
मुनि जहँ जात सध्यान ॥ १०७॥

टीकाः-राजाके मरणका देशकाल कह्या नहीं । ताका यह अभिप्राय है:-उपासकके मरणमैं देशकालकी अपेक्षा नहीं । दिनमैं मरे अथवा रात्रिमैं । दक्षिणायनमैं अथवा उत्तरायण मैं । पवित्रभूमिमैं अथवा अपवित्रमैं । सर्वथा उपासनाके बलतैं देवयानमार्गद्वारा ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है और अदृष्टिके प्रसंगमैं जो पूर्व देशकालकी अपेक्षा कही सो योगसहित-उपासककूं कही है । केवलईश्वरशरणउपासककूं देशकालकी अपेक्षा नहीं । यह अर्थ सूत्रकार-भाष्यकारनै प्रतिपादन किया है ॥

॥ ९९० ॥ भेदवादी आचार्य, तिनके शास्त्रविषै उक्त परमेश्वर औ मोक्षके अपरोक्षज्ञानसैं रहित है औ यथोक्तउपासनादिरूप मोक्षके साधनोंसैं रहित हुये बी द्रव्यहरणके निमित्त लोकनकूं अपने संप्रदायके चिह्नसहित सांकेतिक मन्त्रका उपदेश देते हैं औ हमारे उपदेशसैं अन्यसन्मार्गतैं रुके हुये इनका सारा जन्म व्यर्थ होवैगा । ऐसी करुणा ल्यावते नहीं । यातैं निर्दयवंचक हैं ॥

॥ ५२९ ॥ तर्कदृष्टिका देहपात औ परमात्मासैं अभेद ॥

॥ दोहा ॥

राजकाज सब तब कियो।
तर्कदृष्टि हुसियार ।
लग्यो न रंचक रंग तिहि ।
लख्यो ब्रह्म निर्धार ॥ १०८॥
अन्त भयो प्रारब्धको।
पायो निश्चय गेह ।
आतम परमातम मिल्यो।
देह खेहतैं छेह ॥ १०९ ॥

टीकाः-देहका खेह कहिये राखमैं । छेह कहिये अंत । आत्मा कहिये कूटस्थसाक्षी । ताका परमात्मासैं अभेद ॥

यद्यपि कूटस्थका परमात्मासैं सदा अभेद है तथापि उपाधिकृत भेद है ॥ उपाधिके लयतैं उपाधिकृतभेदका अभाव होवै है ॥

परमात्मासैं अभेद कह्या ताका यह अभिप्राय है:-विदेहमुक्तिमैं ईश्वरतैं अभेद होवै है । शुद्ध-चेतनब्रह्मसैं नहीं । यह वार्त्ता शारीरकभाष्यके चतुर्थअध्यायमैं प्रतिपादन करी है ॥ तहां यह प्रसंग है:—

१ विदेहमुक्तिमैं सत्यसंकलपादिकरूपकी प्राप्ति जैमिनिके मतसैं कही है ॥

२ औडुलोमिके मतसैं सत्यसंकलपादिकनका अभाव कह्या है ॥ औ—

३ सिद्धांत मतमैं सत्यसंकलपादिकनका भाव अभाव दोनूं कहे हैं।ताका यह अभिप्राय है ईश्वरतैं अभेद होवै है, ईश्वरके सत्यसकलपादिक मुक्तमैं अन्य जीवोंकरि व्यवहार करिये है ॥ सो ईश्वर परमार्थदृष्टिसैं शुद्ध है । ताके विषैं कोई गुण है नहीं । किंतु निर्गुण है । यातैं सत्यसंकलपादिकनका अभाव है ॥

यद्यपि संसारदशाविषै बी जीव परमार्थसैं निर्गुण है, शुद्ध है तथापि जीवकूं संसार-दशामैं अविद्यासैं कर्त्तापनाभोक्तापना प्रतीत होवै है ॥

ईश्वरकूं कदे बी आत्मामैं अथवा अन्यमैं संसार प्रतीत होवै नहीं । यातैं सदा असंग निर्गुण शुद्ध है । यातैं ईश्वरतैं जो अभेद है सोई शुद्धसैं अभेद है ॥ औ—

ईश्वरतैं अभेदकूं शुद्धब्रह्मसैं अभेद नहीं मानै तौ ईश्वरकूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति कदे बी होवै नहीं । काहेतें ? जीवकी न्याई ईश्वरकूं उपदेशजन्य ज्ञान औ विदेहमोक्ष तौ कदे होवै नहीं । सदा प्राप्त जो ताका रूप सो शुद्ध नहीं । यातैं जीवतैं बी न्यून ईश्वर सदाबद्ध है । यह सिद्ध होवैगा । यातैं यह मानना योग्य है:—

१ ईश्वरकूं आवरण नहीं । यातैं उपदेश-जन्य ज्ञानकी अपेक्षा नहीं ॥

२ आवरणके अभावतैं भ्रांति नहीं यातैं नित्यसर्वज्ञ है । नित्यमुक्त है ॥

३ माया औ ताका कार्य आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं । यातैं सदा असंग है । याहीतैं शुद्ध है ॥

इस रीतिसैं ईश्वरतैं अभेद ही शुद्धचेतनसैं अभेद है ॥ औ

दृष्टांतसैं बी ईश्वरतैंही अभेद सिद्ध होवै है॥ जैसैं मठमैं घटका अभाव होवै तौ मठाकाश-मैं घटाकाशका लय होवै है । महाकाशमैं नहीं तैसैं विद्वान्‌का शरीर ईश्वरकृत ब्रह्मांडमैं नष्ट होवै है औ ब्रह्मांड सारा ईश्वरशरीर मायाके अंतर्भूत है ॥ विद्वान्‌का आत्मा विदेहमोक्षमैं ब्रह्मांडके बाहरि गमन करै नहीं । यातैं ईश्वरतैं

अभेद होवै है। परंतु जैसें मठाकाशसैं घटाकाशका अभेद हुवा। सो मठाकाश महाकाशरूप है तैसैं ईश्वरतैं अभेद होवै है, सो ईश्वर शुद्धब्रह्म ही है। यातैं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति होवै है ॥

॥ ५२६ ॥ इस भाषाग्रन्थके रचनेका प्रयोजन ॥

॥ दोहा ॥

यह विचारसागर कियो,
जामैं रत्न अनेक।
गोप्य वेदसिद्धांततैं।
प्रगट लहत सविवेक ॥ ११० ॥
सांख्य न्यायमैं श्रम कियो,
पढि व्याकरण असेष।
पढे ग्रंथ अद्वैतके,
रह्यो न एकहु सेष ॥ १११ ॥
कठिन जु और निबंध हैं,
जिनमैं मतके भेद।
श्रमतैं अवगाहन किये,
निश्चलदास सवेद ॥ ११२ ॥
तिन यह भाषाग्रंथ किय।
रंच न उपजी लाज।
तामैं यह इक हेतु है।
दयाधर्म सिरताज ॥ ११३ ॥
बिन व्याकरन न पढि सकै,
ग्रंथ संसकृत मंदं॥

॥ ५९१ ॥ इहां यह रहस्य है:—ज्ञानवान्‌की दृष्टिमैं विदेहमोक्षतैं पूर्व ब्रह्मांडादिजगत् कछु है ही नहीं किंतु शुद्धब्रह्महि है। यातैं ताकी दृष्टिसैं तौ शुद्धब्रह्मसैं ही अभेद होवै है। सोई ताकूं शुद्धकी प्राप्ति है। औ——

अज्ञजनोंकी दृष्टिसैं ब्रह्मांडआदिक ज्यूंके त्यूं प्रतीत होवै हैं। यातैं तिनकी दृष्टिसैं ज्ञानीका ईश्वरसैं (ईश्वरके देहरूप ब्रह्मांडसैं) अभेद होवै है। सो ईश्वर वास्तव शुद्धब्रह्म ही है। यातैं बी ज्ञानीकूं शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति होवै है ॥

उक्त विदेहमोक्षमैं ज्ञानी जीवका ब्रह्मसैं जो अभेद, तामैं आभासवादआदिक भिन्नभिन्न वेदांतके पक्षनका जो विचार है सो वृत्तिप्रभाकरके अष्टमप्रकाशविषै विस्तारसैं लिख्या है। सोई विचारसागरके षष्टतरंग-गत ४४१ वें अंकके टिप्पणमैं हमनै संक्षेपतैं जनाया है ॥

॥ ५९२ ॥ जाके पास डोरी लोटा होवै सो कूपके जलका पान करि शकै है औ जाके पास वह सामग्री नहीं सो कूपके जलका पान कर शकता नहीं। तौ बी सो पुरुष वापिका (बावड़ी) के किंवा मिष्टसमुद्रके जलका पान अनायाससैं कर शकता है, तैसैं जाके काव्यकोशव्याकरणरूप सामग्री है सो तो संस्कृतग्रन्थनके अर्थकूं तात्पर्यसहित जानि शकता है औ जाके पास वह सामग्री नहीं, सो पुरुष मन्दबुद्धिवाला है। यातैं सो संस्कृतग्रंथनके अर्थकूं जानि शकता नहीं तौ बी सो मन्दपुरुष इस भाषाग्रन्थके अर्थकूं अनायाससैं पढ़ै (याके अर्थकूं जानै) औ तिसकरि सो परमानन्दकूं पावै। इस शिरोमणि दयाधर्मरूप हेतुतैं यह भाषाग्रन्थरूप वापिका किंवा मिष्टसमुद्र किया है, तिसकी वृद्धि औ अधिक मधुरताअर्थ ताकी ये टिप्पणरूप जरियां प्रगट करी हैं। वे बी भाषा जाननैवाले जनोंके विशेष सुखकर होनैतैं हितकारक हैं ॥

पढै याहि अनयास हीं,
लहै सु परमानंद ॥ ११४ ॥

॥ ५२७ ॥ मंगलाचरणपूर्वक ग्रन्थकी समाप्ति ॥

दिल्लीतैं पश्चिमदिशा,
कोस अठारह गाम ।
तामैं यह पूरो भयौ ।
किहँडौली[६६३] तिहि नाम ॥ ११५ ॥
ज्ञानी मुक्ति विदेहमैं,
जासौं होय अभेद ॥

दादू आदूरूप सो,
जाहि बखानत वेद ॥ ११६ ॥

नामरूप व्यभिचारिमैं,
अनुगत एक अनूप ।
दादूपदको लच्छच है ।
अस्तिभातिप्रियरूप ॥ ११७ ॥

॥ इति श्रीविचारसागरे जीवन्मुक्ति विदेह-मुक्तिवर्णनं नाम सप्तमस्तरंगः समाप्तः ॥ ७ ॥

॥ ६६३ ॥ किहडौलीग्राममैं श्रीनिश्चलदासजीका गुरुद्वार है। तहां अद्यापि तिनकी शिष्यशाखा बी है। तिनोंनै जो ग्रंथ संग्रह किये थे वे बी तहां विद्यमान हैं ॥

॥ इति श्रीपण्डितपीताम्बरविरचितविचार-सागरटिप्पणिकायां सप्तमतरङ्गटिप्पणं सम्पूर्णम् ॥

॥ समाप्तोऽयं विचारसागरो ग्रंथः ॥





॥ श्रीवृत्तिरत्नावलि ॥

अर्थात

॥ श्रीवृत्तिप्रभाकरसार ॥

॥ अथ प्रथमरत्नप्रारंभः ॥ १ ॥

॥ सकारण सभेद वृत्तिस्वरूप--निरूपण ॥ १-२४ ॥

॥ ग्रंथकर्त्ताकृत मंगलाचरण ॥

॥ दोहा ॥

जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिको,
साक्षी मैं पर जानि ।
दुखद देह अभिमानकी,
होय मूलयुत हानि ॥ १ ॥

॥ १ ॥ वृत्तिके सामान्यलक्षणका निर्णय ॥ १-९ ॥

॥ १ ॥ "अहं ब्रह्मास्मि" या वृत्तिसैं कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्ति होवै है। यह वेदांतका सिद्धांत है ॥

॥ २ ॥ तहां यह जिज्ञासा होवै है:-वृत्ति किसकूं कहैं हैं औ वृत्तिका कारण कौन है औ वृत्तिका प्रयोजन कौन है? यातैं वृत्तिप्रभाकरका सारांशभूत वृत्तिरत्नावलिनाम ग्रंथ लिखै हैं ॥

॥ ३ ॥ अतःकरणका औ अज्ञानका जो परिणाम, सो वृत्ति कहिये है ॥ यद्यपि क्रोधसुखादिक बी अंतःकरणके परिणाम हैं, औ आकाशादिक अज्ञानके परिणाम हैं तिनकूं वृत्ति नहीं कहै हैं, तथापि विषयका प्रकाशक जो अंतःकरण औ अज्ञानका परिणाम सो वृत्ति कहिये है ॥

॥ ४ ॥ क्रोधसुखादिकरूप जे अंतःकरणके परिणाम, तिनतैं किसी पदार्थका प्रकाश होवै नहीं। तैसैं आकाशादिकनतैं बी प्रकाश होवै नहीं, यातैं सो वृत्ति नहीं, किंतु ज्ञानरूप परिणामतैं प्रकाश होवै है, ताहीकूं वृत्ति कहै हैं ॥

॥ ५ ॥ यद्यपि सुख, दुःख, काम, तृप्ति, क्रोध, क्षमा, धृति, अधृति, लज्जा औ भयादिक जितनै अंतःकरणके परिणाम हैं, तिन सर्वका अनेकस्थानोंमैं वृत्तिशब्दसैं व्यवहार लिख्या है, तथापि तत्त्वानुसंधान अद्वैत-कौस्तुभादिक ग्रंथनमैं प्रकाशक परिणाम ही वृत्ति कह्या है ॥ औ—

॥ ६ ॥ कितनैक ग्रंथनमैं अज्ञाननाशव परिणामकूं वृत्ति कहै हैं। औ परोक्षज्ञानसैं बी असत्त्वापादक अज्ञानांशका नाश होवै है।

अथवा विषयचेतनस्थ अज्ञानका नाश तौ अपरोक्षज्ञान विना होवै नहीं । प्रमातृचेतनस्थ अज्ञानका नाश परोक्षज्ञानसैं बी होवै है। यातैं परोक्षज्ञानमैं उक्तलक्षणकी अव्याप्ति नहीं ॥

॥ ७ ॥ तथापि सुखःदुखके ज्ञानरूप वृत्तिमैं औ मायावृत्ति रूप इश्वरके ज्ञानमैं, तथा शुक्तिरजतादिगोचर भ्रमरूप अविद्यावृत्तिमैं औ स्वप्नगोचर औ सुषुप्तिगत सुख औ अज्ञानगोचर विद्यावृत्तिमैं औ प्रत्यभिज्ञा ज्ञानरूप वृत्तिमैं उक्तलक्षणकी अव्याप्ति है। काहेतैं ?—

१ प्रथम अज्ञातसुखादिक उपजैं, पीछे तिनका ज्ञान होवै, तौ सुखादिज्ञानतैं चेतनके अज्ञानका नाश संभवै । सो अज्ञातसुखादिक हैं नहीं। किंतु सुखादिक औ तिनका ज्ञान एककालमैं उपजै हैं। यातैं अज्ञातसुखादिकनके अभावतैं सुखादिगोचरवृत्तिसैं अज्ञानका नाश संभवै नहीं ॥

२ तैसैं ईश्वरकूं असाधारणरूपतैं सकलपदार्थ सदा-प्रत्यक्ष प्रतीत होवै हैं, यातैं अज्ञानके अभावतैं मायाकी वृत्तिरूप ज्ञानतैं बी अज्ञानका नाश संभवै नहीं ॥

३ शुक्तिरजतादिक औ स्वप्नगत मिथ्या पदार्थनकी औ तिनके ज्ञानकी बी एककालमैं उत्पत्ति होवै है। यातै भ्रमवृत्तिसैं बी अज्ञानका नाश होवै नहीं ॥

४ तैसैं सुषुप्तिमैं वृत्ति है तौ बी अपनै विषयभूत स्वउपादान अरु स्वरूपसुखके आवरण अज्ञानका नाश तिसतैं होता नहीं औ ज्ञानगोचर प्रत्यभिज्ञा ज्ञान होवै है । तहां बी आवरणके अभावतैं तिसतैं ताका नाश होवै नहीं ॥ जैसैं "अहं ब्रह्मास्मि" इस एकवार उदय भये ज्ञानसैं स्वरूपके आवरणका नाश होवै । पीछे अनेक वार विचारसैं विद्वान्कूं "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी वृत्ति उदित होवै है। तासैं प्रथम ही निरावृत्त ज्ञानीके स्वरूपका आवरण भंग होता नहीं । तैसैं धारावाहिक वृत्ति होवै है तहां बी उक्तफलकी द्वितीयादिवृत्तिमैं अव्याप्ति है। काहेतैं? ज्ञानधारा होवै तहां प्रथमज्ञानसैं अज्ञानका नाश हुए द्वितीयादिक ज्ञानकूं अज्ञानकी नाशकता संभवै नहीं ॥

॥ ८ ॥ यातैं प्रकाशकपरिणामकूं वृत्ति कहै हैं ॥ याका यह भाव है:—"अस्ति" व्यवहारका हेतु जो अविद्या औ अंतःकरणका परिणाम, सो वृत्ति कहिये है ॥

॥ ९ ॥ प्रकाशकपरिणामकूं वृत्ति कहै बी अज्ञातपदार्थगोचरवृत्तिमैं ही अज्ञाननाशकता रूप प्रकाशकता है औ अनावृतपदार्थगोचर वृत्तिमैं प्रकाशकता है नही। काहेतैं ? अनावृत चेतनके संबंधसैं ही विषयप्रकाशके संभवतैं वृत्तिमैं प्रकाशकताकी कल्पना अयोग्य है। यातैं वृत्तिमैं अज्ञाननाशकतासैं विना अन्यविधप्रकाशकताके असंभवतैं द्वितीयलक्षणकी बी प्रथमलक्षणकी न्यांई सुखादिगोचरवृत्तिमैं अव्याप्ति होवैगी । यातैं "अस्तित्वव्यवहारका हेतु अविद्या औ अंतःकरणका परिणाम" वृत्ति कहिये है ॥

॥ २ ॥ वृत्तिके भेदका निरूपण
॥ १०-१७ ॥

॥ १० ॥ सो वृत्तिज्ञान दो प्रकारका है ॥ १ एक प्रमारूप है औ २ दूसरा अप्रमारूप है ॥

॥ ११ ॥

१ (१) प्रमाणजन्य यथार्थज्ञानकूं प्रमा कहै हैं ॥

(२) वा अबाधितअर्थकूं विषय करनैवाले ज्ञानकूं प्रमा कहै हैं ॥

(३)वा अबाधितअर्थकूं विषय करनैहारे स्मृतिसैं भिन्न ज्ञानकूं प्रमा कहै हैं॥

(४) वा यथार्थअनुभवकूं प्रमा कहै हैं ।

२ तासैं भिन्न ज्ञानकूं अप्रमा कहै हैं ।

॥१२॥ प्रथमलक्षणके अनुसार तौ प्रत्यक्षादि भेदतैं प्रमाज्ञान षट्प्रकारका है । औ तासैं भिन्न ईश्वरज्ञान औ सुखादिगोचरज्ञान औ स्मृतिज्ञान औ भ्रमज्ञान अप्रमारूप हैं। तिनमैं ईश्वरज्ञानादिक यथार्थअप्रमा हैं औ भ्रमज्ञान अयथार्थअप्रमा है । औ-

॥ १३ ॥ काहू ग्रंथकारके मतमैं तौ यथार्थज्ञान प्रमा है औ अयथार्थज्ञान अप्रमा है । ताकी रीतिसैं द्वितीयलक्षण है ताके अनुसार तौ ईश्वरज्ञान औ सुखदुःखादिगोचरज्ञान औ स्मृतिज्ञान बी प्रमा हैं। औ भ्रमज्ञान अप्रमा है । परंतु-

॥१४॥ प्राचीनआचार्योंने स्मृतिसैं भिन्न यथार्थज्ञानमैं प्रमाव्यवहार किया है । यातैं स्मृतिसैं व्यावृत्त प्रमाका लक्षण कह्या चाहिये । ताकी रीतिसैं तृतीय औ चतुर्थ लक्षण है । ताके अनुसार तौ प्रत्यक्षादिषड्विध ज्ञान औ ईश्वरज्ञान औ सुखादिगोचरज्ञानही प्रमा हैं औ तासैं भिन्न स्मृतिज्ञान औ भ्रमज्ञान अप्रमा हैं ॥

॥ १५ ॥ शुक्तिरजतादिज्ञान स्मृतिसैं भिन्न हैं । अबाधितअर्थकूं विषय करैं नहीं । किंतु बाधितअर्थकूं विषय करै है । यातैं प्रमा नहीं ॥ अबाधित अर्थकूं विषय करनैवाला स्मृतिज्ञानबी है औ स्मृतिज्ञानमैं प्रमाव्यवहार है नहीं । यातैं बहुत ग्रंथनमैं " स्मृतिसैं भिन्न अबाधितअर्थगोचरज्ञान" सो प्रमा कहिये है ॥

॥ १६ ॥ चतुर्थ लक्षणकी पदकृति यह है:-यथार्थ तौ स्मृति बी है । सो अनुभवरूप नहीं ॥ अनुभव तौ भ्रमज्ञान बी है । सो यथार्थ नहीं । यातैं "यथार्थअनुभव" प्रमा है औ तासैं भिन्न अप्रमा है । यह प्रमाका लक्षण बी स्मृतिसैं व्यावृत्त है ॥

॥ १७ ॥ ईश्वरज्ञान औ सुखादिगोचरज्ञान बी यथार्थ अनुभवरूप हैं।यातैं सो बी प्रत्यक्षादि षट्अनुभवकी न्याई प्रमा हैं । तासैं भिन्न स्मृतिज्ञान औ भ्रमज्ञान अप्रमा हैं ॥ अप्रमाका निरूपण आगे अष्टमरत्नसैं लेके त्रयोदशरत्नपर्यंत कहैंगे ॥

॥ ३ ॥ प्रमा औ अप्रमाकी संख्या अरु कारण ॥ १८--२४ ॥

॥१८॥ प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्दी, अर्थापत्ति औ अभाव, ये षट्प्रमाणजन्य यथार्थज्ञान औ ईश्वरज्ञान औसुखादिगोचर ज्ञान । इस भेदतैं प्रमाज्ञान अष्टविध हैं ॥

॥ १९ ॥

१ प्रत्यक्षादि षट्ज्ञान और प्रत्यक्षका भेद सुखादिज्ञान जीवआश्रितप्रमा कहिये है ॥ औ-

२ भूत--भावि--वर्त्तमान सकलपदार्थगोचर मायाकी वृत्तिरूप ज्ञान ईश्वरआश्रित प्रमा कहिये है ॥

॥ २० ॥ फेरि तिनमैं-

१ प्रत्यक्षप्रमा औ मायाकी वृत्तिरूप ईश्वरका ज्ञान औ प्रत्यक्षप्रमाके अंतर्गत सुखादिगोचरज्ञान प्रत्यक्षरूप हैं ॥ औ-

२ शाब्दीप्रमा प्रत्यक्षपरोक्षभेदतैं दो भांतिकी है ॥

३ तैसैं अभावप्रमा बी प्रत्यक्षपरोक्षभेदतैं दो भांतिकी है। अथवा अभावकूं विवादका विषय होनैतैं अभावप्रमा परोक्ष ही है। औ-

४-६ अनुमिति उपमिति औ अर्थापत्तिप्रमा परोक्ष ही हैं ॥

॥ २१ ॥ प्राणिके कर्मनके अनुसार सृष्टिके आदिकालमैं सर्वपदार्थनकूं विषय करनैवाला ईश्वरका ज्ञान उपजै है, सो भूत-भविष्यत्वर्त्तमान सकलपदार्थनके सामान्यविशेषभावकूं विषय करै हैं औ प्रलयपर्यंत स्थायी है । यातैं एक औ नित्य कहै हैं । ताका उपादानकारण माया है औ निमित्तकारण सर्वप्राणिनके अदृष्टादिक हैं ॥

॥ २२ ॥ धर्मादिक निमित्तसैं अनुकूलप्रतिकूलपदार्थके संबंध होनेतैं अंतःकरणके सत्वगुणका औ रजोगुणका परिणामरूप सुखदुःख होवै है ॥ जो सुखदुःखका निमित्त है, ताही निमित्तसैं सुखदुःखकूं विषय करनैवाली अंतःकरणकी वृत्ति होवै । ता वृत्तिमैं आरूढ साक्षी सुखदुःखकूं प्रकाशै है। ताका अंतःकरण उपादान है औ धर्मादिक निमित्त हैं । औ-

॥२३॥ प्रमाणजन्य यथार्थज्ञान षड्विध है। तिसका उपादानकारण अंतःकरण है औ निमित्तकारण प्रत्यक्षादिप्रमाण तथा इंद्रियसंयोगादिक हैं ॥

॥ २४ ॥ अविद्याके परिणाम भ्रमज्ञानका उपादानकारण अविद्या है औ निमित्तकारण सजातीयवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार। प्रमातृदोष प्रमाणदोष । प्रमेयदोष । अधिष्ठानके सामान्यअंशका ज्ञान औ तिमिरआदिक हैं ॥

॥ इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां सकारणसभेदवृत्तिस्वरूपनिरूपणं नाम प्रथमं रत्नं समाप्तम् १

॥ अथ द्वितीयरत्नप्रारम्भः ॥ २ ॥

॥ १ ॥ प्रत्यक्षप्रमाणनिरूपण ॥२५-८८॥

॥ ४ ॥ षट्प्रमाणोंके नाम, लक्षण औ मतभेदसैं स्वीकार ॥ २५--२७ ॥

॥ २५ ॥ प्रमाणके षट्भेद हैंः-प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति औ अनुपलब्धि ।

॥ २६ ॥

१ प्रत्यक्षप्रमाका जो करण सो प्रत्यक्षप्रमाण कहिये है ।

२ अनुमितिप्रमाके करणकूं अनुमानप्रमाण कहै हैं ॥

३ शाब्दीप्रमाके करणकूं शब्दप्रमाण कहै हैं ॥

४ उपमितिप्रमाके करणकूं उपमानप्रमाण कहै हैं ।

५ अर्थापत्तिप्रमाके करणकूं अर्थापत्तिप्रमाण कहैहैं ॥

६ अभावप्रमाके करणकूं अनुपलब्धिप्रमाण कहै हैं ॥

प्रत्यक्ष औ अर्थापत्तिप्रमाणके औ प्रमाके एक ही नाम हैं ॥

॥ २७ ॥

१ चार्वाकके मतमैं एक प्रत्यक्षप्रमाण मान्या है ॥

२ कणाद औ सुगतके मतमैं प्रत्यक्ष औ अनुमान, ये दो प्रमाण माने हैं ॥

३ सांख्यशास्त्रका कर्ता जो कपिल है,ताके मतमैं प्रत्यक्ष, अनुमान औ शब्द ये तीन प्रमाण माने हैं ।

४ न्यायशास्त्रका कर्ता जो गौतम है ताके मतमैं प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द औ उपमान, ये चारि प्रमाण माने हैं ॥

५ पूर्वमीमांसाका एकदेशी भट्टका शिष्य जो प्रभाकर है। ताके मतमैं प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान औ अर्थापत्ति, ये पांच प्रमाण माने हैं ॥

६ भट्टके मतमैं षट्प्रमाण माने हैं औ-

७ वेदांतके ग्रंथनमैं बी षट्प्रमाण ही लिखे हैं ॥

यद्यपि सूत्रकारभाष्यकारनै प्रमाणसंख्या लिखी नहीं तथापि सिद्धांतका अविरोधी जो भट्टका मत है ताकूं अद्वैतवादमैं मानैं हैं। यातैं वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं षट्प्रमाण ही लिखे हैं ॥

॥५॥ प्रत्यक्षप्रमाण औ प्रमाके स्वरूपका निर्णय ॥ २८-३५ ॥

॥ २८ ॥ अज्ञानका ज्ञापक प्रमाण कहिये है ? वा प्रमाका करण प्रमाण कहिये है ?

प्रत्यक्षप्रमाके करण नेत्रादिक इंद्रिय हैं, यातैं नेत्रादिकइंद्रियनकूं प्रत्यक्षप्रमाण कहै हैं ॥

॥ २९ ॥ व्यापारवाला जो असाधारण कारण होवै, सो करण कहिये है।

अथवा व्यापारसैं भिन्न जो असाधारण कारण होवै, सो करण कहिये है ॥

॥ ३० ॥ कार्यसैं नियत अव्यवहितपूर्ववृत्ति होवै, सो कारण कहिये है । सो कारण १साधारण औ२असाधारण भेदतैं दो भांतिका है ॥

१ सर्वकार्यके कारणकूं साधारणकारण कहै हैं।

२ किसी एक कार्यके कारणकूं असाधारण कारण कहै हैं ॥

१ ईश्वर औ ताके ज्ञान, इच्छा, कृति, दिशा, काल, अदृष्ट, प्रागभाव औ प्रतिबंधकाभाव, ये नव साधारण कारण हैं ॥

२ इनसैं भिन्न जे घटादिकके कपालादिक कारण, सर्व असाधारणकारण हैं ॥ तिनमैं बी (१) कोई उपादानकारण होवै है (२) कोई निमित्तकारण होवै है॥

(१) जाके स्वरूपमैं कार्यकी स्थिति होवै, सो उपादानकारण कहिये है।

(२) तासैं भिन्न निमित्तकारण कहिये है। जैसैं घटका उपादान दो कपाल हैं औ निमित्त दंडादिक हैं।

असाधारणकारण बी दो प्रकारका होवै है:-एक तौ व्यापारवाला होवै है । औ २ दूसरा व्यापाररहित होवै है ॥

कारणतैं उपजिके कार्यकूं उपजावै, सो व्यापार कहिये है ॥ जैसैं कपाल घटका कारण है औ कपाल दोका संयोग बी घटका कारण है ॥ तहां कपालकी कारणतामैं संयोग व्यापार है। काहेतैं ? कपालसंयोग कपालतैं उपजै है औ

१ कपालके कार्य घटकूं उपजावै है । यातैं संयोगरूप व्यापारवाला कारण कपाल है। औ--

२ जो कार्यकूं किसीद्वारा उपजावै नहीं। किंतु आप ही उपजावै, सो व्यापारहीन कारण कहिये है ॥ औ--

कपालका संयोग असाधारणकारण तौ है, व्यापारवाला नहीं। यातैं करण नहीं कहिये है। केवल घटका कारण कहिये हैं ॥

॥३१॥ तैसैं प्रत्यक्षप्रमाके नेत्रादिक इंद्रिय करण हैं। काहेतैं ? नेत्रादिक इंद्रियनका अपनै अपनै विषयतैं संबंध नहीं होवै तौ प्रत्यक्षप्रमा होवै नहीं । इंद्रियविषयका संबंध होवै तब होवै है । यातैं इंद्रियविषयका संबंध इंद्रियनतैं उपजिके प्रत्यक्षप्रमाकूं उपजावै है,सो व्यापार है ॥ संबंधरूप व्यापारवाले प्रत्यक्षप्रमाके असाधारणकारण इंद्रिय हैं । यातैं इंद्रियनकूं प्रत्यक्षप्रमाण कहै हैं। इंद्रियजन्य यथार्थज्ञानकूं प्रत्यक्षप्रमा कहै हैं।

॥ ३२ ॥ यद्यपि जिनके मतमैं मनइंद्रिय नहीं, तिनके मतमैं इंद्रियजन्यता प्रत्यक्षका लक्षण नहीं, तथापि तहां विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद ही प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण है। ताहीकूं प्रत्यक्षप्रमा बी कहे हैं ॥

॥ ३३ ॥ सो प्रत्यक्षप्रमा दोमकारकी है:-१ एक अभिज्ञाप्रत्यक्ष है औ २ दूसरी प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष है।

१केवल इंद्रियादिसंबंधजन्य ज्ञान अभिज्ञा-प्रत्यक्ष है। औ--

२ प्रत्यक्षसामग्रीसहकृतसंस्कारजन्य ज्ञान प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष है ॥

सो प्रत्येक बी आंतरप्रत्यक्षप्रमा औ बाह्य प्रत्यक्षप्रमाके भेदतैं दो प्रकारकी है।

आंतरप्रत्यक्षप्रमा बी दो प्रकारकी है:-एक आत्मगोचर है औ दूसरी अनात्मगोचर है ॥

आत्मगोचर बी दो प्रकारकी है:-एक शुद्धात्म-गोचर है औ दूसरी विशिष्टात्मगोचर है।

शुद्धात्मगोचर बी दो प्रकारकी है:-एक तौ ब्रह्मागोचर है औ दूसरी ब्रह्मगोचर है ॥

॥ ३४ ॥ "त्वं" पदार्थबोधक वेदांतवाक्यसैं "शुद्धः प्रकाशोऽहं" ऐसी वृत्ति होवै है, ता वृत्तिदेशमैं अंतःकरणउपहित शुद्धचेतन है। यातैं वृत्त्यवच्छिन्नचेतन औ विषयावच्छिन्न चेतनका अभेद होनैतैं वह वृत्ति अपरोक्ष है। औ ता वृत्तिके विषय चेतनमैं ब्रह्मता बी है। परंतु ब्रह्माकारवृत्ति हुई नहीं। काहेतें? अवांतरवाक्यसैं वृत्ति हुई है। महावाक्यसैं होती तौ ब्रह्माकार बी होती। काहेतें ?-

॥ ३५ ॥ शब्दजन्यज्ञानका यह स्वभाव है:-सन्निहितपदार्थनकूं जिस रूपतैं शब्द-बोधन करै, तिस रूपकूं ज्ञान विषय करै है औ जिस रूपतैं शब्द करै नहीं तिस रूपतैं शब्द-जन्य ज्ञान विषय करै नहीं ॥

जैसैं-दशमपुरुषकूं "दशमोऽस्ति" इस रीतिसैं कहैं, तब "दशमोऽहं" इसरीतिसैं श्रोताकूं ज्ञान होवै नहीं ॥ जैसैं दशममैं आत्मता है, तथापि आत्मताबोधक शब्दाभावतैं आत्मताका ज्ञान होवै नहीं, तैसैं आत्मामैं ब्रह्मता सदा है तौ बी ब्रह्मताबोधक शब्दाभावतैं ज्ञान होवै नहीं। यातैं उक्तवृत्ति ब्रह्मागोचरशुद्धा-त्मगोचरआंतरप्रत्यक्षप्रमा है ॥

॥६॥ शंकासमाधानपूर्वक प्रत्यक्षप्रमाका निर्णय ॥ ३६--५३ ॥

॥ ३६ ॥ प्रत्यक्षके प्रसंगतैं यह शंका होवै है:-सिद्धांतमैं इंद्रियजन्यज्ञान प्रत्यक्ष होवै है। इसका तौ अंगीकार नहीं। काहेतें? बाह्यघटादिकनका प्रत्यक्षज्ञान तौ सिद्धांतमैं बी इंद्रियजन्य है तौ बी मनकूं इंद्रियताका अभाव-तैं आंतरसुखदुःखका ज्ञान इंद्रिय जन्य नहीं। किंतु सुखदुःख साक्षीभास्य हैं॥ विशिष्टात्मा-मैं अंतःकरणभाग साक्षीभास्य है। चेतन-भाग स्वयंप्रकाश है। यातैं जीवका ज्ञान बी मानस नहीं ॥ ब्रह्मविद्यारूप अपरोक्षज्ञानका करण शब्द है। यातैं वह बी शब्दप्रमाणजन्य है। मानस नहीं। औ वाचस्पतिके मतमैं उक्त ज्ञान सर्व मनइंद्रियजन्य है तौ बी मायाकी वृत्तिरूप ईश्वरआश्रितप्रत्यक्षप्रमा इंद्रियअनुमाना-दिप्रमाणजन्य नहीं। यातैं तहां ताके मतमैं बी अव्याप्ति होनैतैं इंद्रियजन्यता प्रत्यज्ञानका लक्षण नहीं। किंतु--

॥ ३७ ॥ वृत्त्यवच्छिन्नचेतनसैं विषयाव-च्छिन्नचेतनका अभेद ही ज्ञानकी प्रत्यक्षता का हेतु है ॥

१ जहां इंद्रियसंबद्ध घटादिक होवैं, तहां इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति बाह्य जायके विषयके आकारके समानाकार होयके विषयतैं

संबंधवती होवै है । यातैं वृत्तिचेतनकी औ विषयचेतनकी उपाधि एकदेशमैं होनेतैं उपहितचेतनका बी अभेद होवै है ॥

२ तैसैं सुखादिकज्ञान यद्यपि इंद्रियजन्य नहीं औ शुद्धात्मज्ञान बी शब्दजन्य है, इंद्रियजन्य नहीं, तथापि विषयचेतन औ वृत्तिचेतनका भेद नहीं। काहेतैं ? सुखाकारवृत्ति अंतःकरणदेशमैं है औ सुख बी अंतःकरणमैं है। यातैं वृत्तिउपहितचेतन अरु विषयउपहित चेतनका अभेद है ॥

तैसैं आत्माकारवृत्तिका उपादानकारण अंतःकरण है औ अंतःकरणउपहित चेतनके अभिमुख हुई है । यातैं आत्माकारवृत्ति बी अंतःकरणदेशमैं होवै है, सो अंतःकरण ही शुद्धआत्माकी उपाधि है ॥

इस रीतिसैं दोनूं उपाधि एकदेशमैं होनैतैं वृत्तिचेतन अरु विषयचेतनका अभेद होवै है ॥ यातैं सुखादिकज्ञान औ शुद्धात्मज्ञान प्रत्यक्षरूप हैं ॥

॥ ३८ ॥ इहां यह निष्कर्ष है:-जहां विषयका प्रमातासैं वृत्तिद्वारा अथवा साक्षात् संबंध होवै, तिस विषयका ज्ञान प्रत्यक्ष है । सो विषय बी प्रत्यक्ष कहिये है ॥ जैसैं घटका प्रत्यक्षज्ञान होवै तब घट प्रत्यक्ष है, ऐसा व्यवहार होवै है ॥

॥३९॥ बाह्यपदार्थनका वृत्तिद्वारा प्रमातासैं संबंध होवै है, सुखादिकनका प्रमातासैं साक्षात्संबंध है ॥

अतीतसुखादिकनका प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंध नहीं । यातैं अतीतसुखादिकनका ज्ञान स्मृतिरूप है । प्रत्यक्षरूप नहीं ।

॥४०॥ अतीतसुखादिकनका बी प्रमातासैं संबंध तौ हुया है, तथापि प्रत्यक्षलक्षणमैं वर्त्तमानका निवेश है ॥

१ "प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधी योग्यविषय" प्रत्यक्ष कहिये है ॥

२ "प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधी योग्यविषयका ज्ञान" प्रत्यक्षज्ञान कहिये है ॥

योग्य नहीं कहैं तौ धर्मादिक सदा प्रमाताके संबंधी हैं, यातैं सदा ही प्रत्यक्ष कहे चाहिये औ तिनका शब्दादिकनसैं ज्ञान होवै, सो प्रत्यक्षज्ञान कह्या चाहिये॥धर्मादिक प्रत्यक्षयोग्य नहीं । यातैं लक्षणमैं योग्यपदके निवेशतैं दोष नहीं॥ १ योग्यता औ २ अयोग्यता अनुभवके अनुसार अनुमेय हैं ॥

१ जा वस्तुमैं प्रत्यक्षताका अनुभव होवै, तामैं योग्यता । औ—

२ जामैं प्रत्यक्षताका अनुभव नहीं होवै, तामैं अयोग्यता ।

यह अनुमान अथवा अर्थापत्तिसैं ज्ञान होवै है ॥

इस रीतिसैं प्रत्यक्षयोग्य वस्तुका प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंध होवै, तहां प्रत्यक्षज्ञान होवै है। या अर्थमैं—

॥ ४१ ॥ यह शंका है:-ब्रह्मगोचरज्ञान परोक्ष नहीं हुया चाहिये ॥ काहेतैं ? ब्रह्मका प्रमातासैं असंबंध होवै तौ बाह्यादिज्ञानकी न्यांई ब्रह्मज्ञान बी परोक्ष होवै ॥ जब अवांतरवाक्यसैं "सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनंतस्वरूप ब्रह्म है" ऐसी वृत्ति होवै, तिस कालमैं बी ब्रह्मका प्रमातासैं संबंध है । यातैं अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान बी प्रत्यक्ष ही हुया चाहिये औ सिद्धांतमैं अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं, किंतु परोक्ष है । सो उक्त रीतिसैं संभवै नहीं । या शंकाका--

॥ ४२ ॥ यह समाधान है:--प्रत्यक्षलक्षणमैं विषयका योग्यता विशेषण कह्या है । तैसैं योग्यताप्रमाणजन्यता ज्ञानका विशेषण है ।

यातैं उक्त दोष नहीं । काहेतैं ? प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधवाला जो योग्य विषय ताका योग्यताप्रमाणजन्य ज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहिये है ॥ या लक्षणमैं उक्त दोष नहीं । काहेतैं ?—

॥४॥ वाक्यका यह स्वभाव हैः--

१ श्रोताके स्वरूपबोधकपदघटित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवै है ।

२ श्रोताके स्वरूपबोधकपदरहित वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै ॥

विषयसन्निहित होवै औ प्रत्यक्षयोग्य होवै तौ बी स्वरूपबोधपदरहित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवै नहीं ॥ जैसैं दशमके बोधक द्विविध वाक्य हैं॥

१ एक तौ "दशमोऽस्ति" ऐसा वाक्य है । औ--

२ दूसरा "दशमस्त्वमसि" ऐसा वाक्य है ॥ तिनमैं—

१ प्रथमवाक्य तौ श्रोताके स्वरूपबोधक पदरहित है । औ--

२ दूसरा वाक्य श्रोताके स्वरूपका बोधक जो "त्वं" पद है तासैं घटित कहिये युक्त है ॥

तिनमैं प्रथमवाक्यसैं श्रोताकूं दशमका परोक्षज्ञान ही होवै है । वाक्यजन्य ज्ञानका विषय दशमपुरुष है । सो दोनूं स्थानमैं अतिसन्निहित है ॥

जो स्वरूपसैं भिन्न होवै औ संबंधी होवै सो सन्निहित होवै है औ प्रत्यक्षयोग्य है ॥ दशमपुरुष श्रोताके स्वरूपसैं भिन्न नहीं। किंतु श्रोताका स्वरूप है । यातैं अतिसन्निहित है औ प्रत्यक्षयोग्य है । जो प्रत्यक्षयोग्य नहीं होवै तौ द्वितीयवाक्यसैं बी दशमका प्रत्यक्षज्ञान नहीं हुवा चाहिये औ द्वितीयवाक्यमैं प्रत्यक्षज्ञान होवै है । यातैं प्रत्यक्षयोग्य है ॥

इस रीतिसैं अतिसन्निहित औ वाक्यजन्यप्रत्यक्षयोग्यदशमका जो वाक्यसैं प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं तौ वह वाक्य अयोग्य है ॥ द्वितीयवाक्यसैं तिसा दशमका अपरोक्षज्ञान होवै है, यातैं द्वितीयवाक्य योग्य है ॥

वाक्यनकी योग्यता औ अयोग्यतामैं और तौ कोई हेतु है नहीं । स्वरूपबोधकपदघटितत्व औ स्वरूपबोधकपदरहितत्व ही योग्यता औ अयोग्यताके संपादक हैं ॥ इस रीतिसैं—

१ "दशमस्त्वमसि" यह वाक्य तौ योग्यप्रमाण है । तिसतैं जन्य "दशमोऽहम्" यह प्रत्यक्षज्ञान है ॥

२ तैसैं "दशमोऽस्ति" यह वाक्य अयोग्यप्रमाण है । तिसतैं जन्य कहिये उत्पन्न जो "दशमः कुत्रचिदस्ति" ऐसा दशमका ज्ञान सो परोक्ष है ॥

॥ ४४ ॥ तैसैं ब्रह्मबोधक वाक्य बी दो प्रकारके हैं--

१ "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इस रीतिके अवांतरवाक्य हैं ॥

२ "तत्त्वमसि" इस रीतिके महावाक्य हैं ॥

१ अवांतरवाक्यनमैं श्रोताका स्वरूपबोधक पद नहीं है । यातैं प्रत्यक्षज्ञानके जननमैं योग्य अवांतरवाक्य नहीं ॥ औ

२ महावाक्यनमैं श्रोताके स्वरूपके बोधक त्वमादिपद हैं । यातैं प्रत्यक्षज्ञानजननमैं योग्य महावाक्य हैं ॥

१ इस रीतिसैं योग्यप्रमाण महावाक्य हैं । तिनसैं उत्पन्न हुया ज्ञान प्रत्यक्ष है॥औ

२ अयोग्यप्रमाण "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इत्यादिक वाक्य हैं । तिनसैं उपज्या ब्रह्मका ज्ञान परोक्ष होवै है ॥

॥ ४५ ॥ अवांतरवाक्य बी दो प्रकारके हैं:-१ तत्पदार्थके बोधक हैं औ २ त्वम्पदार्थके बोधक हैं। तिनमैं--

१ तत्पदार्थबोधक वाक्य तौ अयोग्य हैं औ-

२"यएव हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः" इत्यादिक त्वंपदार्थबोधक अवांतरवाक्य बी महावाक्यनकी न्यांई योग्य हैं। अयोग्य नहीं। काहेतें? श्रोताके स्वरूपके बोधक तिनमैं पद हैं। यातैं त्वम्पदार्थबोधक अवांतरवाक्यतैं बी अपरोक्षज्ञान होवै है। परंतु वह अपरोक्षज्ञान ब्रह्मभेदगोचर नहीं। यातैं परमपुरुषार्थका साधक नहीं। किंतु परमपुरुषार्थका साधन जो अभेदज्ञान, तामैं पदार्थशोधनद्वारा उपयोगी है ॥

इस रीतिसैं प्रमातासैं संबंधी बी ब्रह्म है औ योग्य है। तथापि अयोग्य जो अवांतरवाक्य तिनसैं ब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवै है॥ या कहनैमैं--

॥ ४६ ॥ अन्यशंका होवै है:-प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधवाला जो योग्यविषय, ताका योग्यप्रमाणजन्य ज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहिये है। या कहनेमैं सुखादिकनके प्रत्यक्षमैं उक्तलक्षणका अभाव है। काहेतें ? सुखादिप्रत्यक्षमैं प्रमाणजन्यताके अभावतैं योग्यप्रमाणजन्यता सर्वथा संभवै नहीं। यातैं उक्तलक्षणमैं अव्याप्तिदोष है। या शंकाका--

॥ ४७ ॥ यह समाधान है:-योग्यप्रमाणजन्यताका लक्षणमैं प्रवेश नहीं। किंतु अयोग्यप्रमाणअजन्यताका प्रवेश है। यातैं अव्याप्ति नहीं। काहेतें ? "प्रमातासैं वर्त्तमानसंबंधवाला जो योग्यविषय, ताका अयोग्यप्रमाणसैं अजन्यज्ञान" सो प्रत्यक्षज्ञान कहिये है ॥ इस रीतिसैं कहे अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानकी व्यावृत्ति होवै है ॥

उक्त रीतिसैं ब्रह्ममात्रके बोधक अवांतर वाक्य अयोग्यप्रमाण हैं ॥

१ "ब्रह्मास्ति" यह परोक्षज्ञान तिनतैं जन्य है। अजन्य नहीं। यातैं परोक्षज्ञानमैं लक्षण जावै नहीं ॥ औ--

२ सुखादिगोचरज्ञानका संग्रह होवै है। काहेतें ? सुखादिगोचरज्ञान किसी प्रमाणतैं जन्य नहीं। यातैं अयोग्यप्रमाणतैं अजन्य है ॥ औ--

३ इंद्रियजन्यघटादिज्ञान, तैसैं महावाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान योग्यप्रमाणजन्य होनैतैं अयोग्यप्रमाणसैं अजन्य हैं।

यातैं प्रत्यक्षज्ञानका उक्तलक्षण दोषरहित है॥

इस प्रकार इहां प्रमातासैं विषयका अभेद जो तादात्म्यसंबंध, सो विषयगत अपरोक्षतामैं हेतु है औ विषयकी अपरोक्षता सो ज्ञानगत अपरोक्षतामैं हेतु है ॥ तहां--

॥ ४८ ॥ यह शंका होवै है:-प्रमातासैं अभिन्नअर्थकूं अपरोक्ष मानिके अपरोक्षअर्थगोचरज्ञानकूं अपरोक्षत्व कहैं, तौ स्वप्रकाशआत्मसुखरूप ज्ञानमैं अपरोक्षज्ञानके लक्षणकी अव्याप्ति होवैगी। काहेतें ? अपरोक्षअर्थ है गोचर कहिये विषय जिसका तिस ज्ञानकूं अपरोक्ष कहैं तौ ज्ञानका औ विषयका परस्परभेद सापेक्ष विषयविषयीभाव संबंध है। तिसी स्थानमैं ज्ञानगत अपरोक्षलक्षण होनैतैं विषयविषयीभावके असंभवतैं तामैं उक्तलक्षण संभवै नहीं ॥

यद्यपि पूर्व मीमांसाके वार्तिककारभट्टके शिष्य प्रभाकरके मतमैं "स्व कहिये अपना स्वरूप है, प्रकाश कहिये विषयी जिसका, सो स्वप्रकाश" कहिये है। इस रीतिसैं स्वप्रकाशपदके अर्थसैं बी अभेदमैं विषयविषयीभाव संभवै है। तथापि प्रकाश्यप्रकाशकका भेद अनुभवसिद्ध होनैतैं भेद विना प्रभाकरका विषयविषयीभाव असंगत है। यातैं स्वप्रकाश-

पदका उक्त अर्थ नहीं । किंतु "स्व कहिये अपनी सत्तासैं, प्रकाश कहिये संशयादि-राहित्य" ही स्वप्रकाशपदका अर्थ अद्वैत-ग्रंथनमें कह्या है ॥

इस रीतिसैं स्वप्रकाशज्ञानतैं अभिन्न स्वरूप-सुखमैं विषयविषयीभावके अभावतैं अपरोक्षका उक्तलक्षण तामैं संभवै नहीं ॥ यातैं--

॥ ४९ ॥ अपरोक्षका यह लक्षण है:-"स्व-व्यवहारके अनुकूल अनावृत चैतन्यसैं विषयका अभेद" अपरोक्षविषयका लक्षण है ॥ औ-

अनावृतविषयतैं स्वव्यवहारानुकूल चेतनका अभेद अपरोक्षज्ञानका लक्षण है । यातैं शब्दजन्यब्रह्मज्ञानविषे बी अपरोक्षता संभवै है । अव्याप्तिदोष नहीं ॥

१ स्व कहिये विषय तौ घटादिअगोचर-वृत्तिकालमैं घटादिक है तथापि सो चेतन नहीं ॥

२ चेतन तौ ताका अधिष्ठान बी है । सो चेतनमैं सर्वव्यवहारहेतुवृत्तिके अभावतैं प्रकाशकतारूप व्यवहारके अनुकूल नहीं॥

३ स्वव्यवहारके अनुकूल तौ वृत्तिअवच्छिन्न साक्षीचेतन बी है । सो तिस घटादिविषया-कारवृत्तिके अभावतैं ता घटादिविषयसैं अभिन्न नहीं ॥

४ साक्षीचेतनसैं अभेद तौ धर्माधर्मका बी है । सो साक्षी तिनमैं प्रत्यक्षयोग्यताके अभावतैं स्वव्यवहारके अनुकूलचेतन नहीं ॥

यद्यपि संसारदशामैं बी वृत्तिविशिष्टचेतन जीवका ब्रह्मसैं अभेद होनैतैं सर्वपुरुपनकूं ब्रह्म अपरोक्ष है, ऐसा व्यवहार हुया चाहिये औ अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मका ज्ञान बी अपरोक्ष हुया चाहिये, तथापि संसारदशामैं आवृतब्रह्मका स्वव्यवहारानुकूलचेतनसैं अभेद है । अनावृतब्रह्मरूप विषयका अभेद नहीं होनैतैं ब्रह्ममैं अपरोक्षत्व नहीं ॥

तैसैं अवांतरवाक्यजन्य ज्ञानका बी आवृत-विषयतैं अभेद होनैतैं तिस ज्ञानकूं अपरोक्षत्व नहीं । यातैं उक्त चेतनसैं अनावृत विषयका अभेद विषयगतप्रत्यक्षत्वका प्रयोजक है । औ अनावृतविषयसैं उक्तचेतनका अभेद ज्ञानगतअपरोक्षत्वका प्रयोजक है ॥ यामैं-

॥ ५० ॥ १ यह शंका है:-चेतनमैं घटादिक अध्यस्त हैं औ विषयाकारवृत्तिकालमैं वृत्तिचेतनमैं विषयचेतनकी एकता होनैतैं स्वाधिष्ठानविषयचेतनसैं अभिन्न घटादिकनका वृत्तिचेतनसैं अभेद हुए बी ताकी उपाधिरूप वृत्तिसैं अभेद संभवै नहीं ॥ जैसैं रज्जुमैं कल्पित सर्पदंडमालाका रज्जुसैं अभेद हुये बी सर्पदंडमालाका परस्परभेद ही होवै है । अभेद नहीं औ ब्रह्ममैं कल्पित सकलद्वैतका ब्रह्मसैं अभेद हुये बी परस्पर अभेद होवै नहीं ॥ तैसैं वृत्तिचेतनसैं तौ वृत्तिका औ घटादिकन-का अभेद संभवै है । तिनकी उपाधिभूत वृत्ति औ घटादिक विषयका परस्परअभेद होवै नहीं । यातैं वृत्तिरूप प्रत्यक्षज्ञानमैं उक्तलक्षणकी अव्याप्ति है ॥

॥ ५१ ॥ २ अन्य शंका:--समानगोचर कहिये एकविषयवाले ज्ञानमात्रसैं अज्ञान-की निवृत्ति मानै परोक्षज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये । इस दोषके परिहारअर्थ अपरोक्षज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति कही है । तामैं अन्योन्याश्रयदोष होवै है । काहेतैं ? ज्ञानकी अपरोक्षत्वकी सिद्धिके आधीन अज्ञानकी निवृत्ति कही औ अनावृतविषयका स्व-व्यवहारानुकूलचेतनसैं अभेद हुया । ज्ञानका अपरोक्षत्व कहनैतैं अज्ञानकी निवृत्तिके आधीन

ज्ञानके अपरोक्षत्वकी सिद्धि कही । यातैं परस्परअपेक्षा होनैतैं अन्योन्याश्रयदोष होवै है ॥

ये दो शंका हैं ॥ तामैं—

॥ ५२ ॥ १ प्रथम शंकाका उत्तरः-

अद्वैतविद्याचार्यकी रीतिसैं अपरोक्षत्वधर्म चेतनका है, वृत्तिका नहीं । जैसैं अनुमितित्व इच्छात्वआदिक अंतःकरणवृत्तिके धर्म हैं, तैसैं अपरोक्षत्वधर्म वृत्तिमैं नहीं है। किन्तु विषयाकारवृत्तिउपहित चेतनका होनैतैं चेतनके अपरोक्षत्वका उपाधि वृत्ति है । यातैं वृत्तिमैं ताका अपरोपक्ररिके वृत्तिज्ञान अपरोक्ष हैं । यह व्यवहार होवै है । औ वृत्तिका धर्म मानै तौ सुखादिगोचरवृत्तिके अनंगीकारपक्षमैं साक्षीरूप अपरोक्षज्ञानमैं अपरोक्षत्व व्यवहार नहीं हुया चाहिये। यातैं वृत्तिका धर्म नहीं ॥ इस रीतिसैं वृत्तिज्ञान लक्ष्य नहीं । किन्तु चेतनज्ञान लक्ष्य है । यातैं अव्याप्ति नहीं ॥

॥ ५३ ॥ २ अन्य शंकाका उत्तरः-

ज्ञानमात्रसैं अज्ञानकी निवृत्ति औ अपरोक्षज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति नहीं कहै हैं । किन्तु प्रमाणकी महिमातैं जहां विषयतैं ज्ञानका तादात्म्यसम्बन्ध होवै, तिस ज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवै है । प्रमाणमहिमातैं बाह्यइंद्रियजन्यज्ञान औ महावाक्यरूप प्रमाणमहिमातैं शब्दजन्यब्रह्मज्ञान विषयतैं तादात्म्यसम्बंधवाला होवै है। यातैं उक्त उभयज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवै है ॥

यद्यपि सर्वका उपादान ब्रह्म होनैतैं ब्रह्मगोचर सकलज्ञानोंका तादात्म्यसम्बन्ध है। यातैं अनुमितिरूप ब्रह्मज्ञानतैं औ अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मके परोक्षज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये तथापि महावाक्यतैं जीवब्रह्मका अभेद गोचरज्ञान होवै । ताका विषयसैं तादात्म्यसंबंध तौ प्रमाणकी महिमातैं कहै हैं ॥ अन्यज्ञानका ब्रह्मसैं तादात्म्यसंबंध है, सो ब्रह्मकूं व्यापकता होनैतैं औ सकलकी उपादानता होनैतैं विषयकी महिमातैं कहै हैं ॥ इस रीतिसैं उक्त अपरोक्षज्ञानके लक्षणमैं अन्योन्याश्रयदोष बी नहीं । यातैं उक्तलक्षण निर्दोष है ॥

यद्यपि अपरोक्षज्ञानके लक्षणमैं और बी शंकासमाधानरूप विवाद बहुत है । सो कठिन जानिके औ विस्तारके भयसैं लिख्या नहीं । संक्षेपतैं रीतिमात्र जनाई है ॥ ऐसैं प्रसंगसैं प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण कह्या ॥

॥ आंतरप्रत्यक्षप्रमाके भेदका निर्द्धार ॥ ५४—६१ ॥

॥ ५४ ॥ पूर्वप्रसंग यह हैः-शुद्धात्मगोचर प्रत्यक्षप्रमा दो प्रकारकी हैः-एक ब्रह्मगोचर है, दूसरी ब्रह्मागोचर है । ब्रह्मागोचर कहि आये ॥

महावाक्यजन्य "अहं ब्रह्मास्मि" इस रीतिसैं ब्रह्मतैं अभिन्न आत्माकूं जो विषय करै सो ब्रह्मगोचर शुद्धात्मगोचर प्रत्यक्षप्रमा है ॥ "अहं ब्रह्मास्मि" या ज्ञानकूं वाचस्पति मनोजन्य कहै हैं । औरनके मतमैं यह ज्ञान वाक्यजन्य है ॥

॥ ५५ ॥ तामैं बी इतना भेद है, संक्षेपशरीरकका यह सिद्धांत हैः-महावाक्यतैं ब्रह्मका प्रत्यक्षज्ञान ही होवै है । कदै बी परोक्षज्ञान महावाक्यतैं होवै नहीं ॥

॥ ५६ ॥ अन्य ग्रन्थकारोंका यह मत हैः-विचारसहित महावाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवै है । विचाररहित केवलवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है ॥

॥ ५७ ॥ सर्वके मतमैं "अहं ब्रह्मास्मि" यह ज्ञान शुद्धात्मगोचर है औ ब्रह्मगोचर है।

तैसें प्रत्यक्ष है । या अर्थमैं किसीका विवाद नहीं ॥

॥ ५८ ॥ जीव ईश्वरका स्वरूपनिरूपण बी ग्रंथकारोंनैं आभासवाद अवच्छेदवाद बिंबप्रतिबिंबवादादिरीतिसें बहुतबिस्तारसैं लिख्या है । तहां-

१ जीवके स्वरूपमैं तौ एकत्वअनेकत्वका विवाद है । औ-

२ सर्वमतमैं ईश्वर एक है । सर्वज्ञ है । नित्य मुक्त है ॥

ईश्वरमैं आवरणका निरूपण किसी अद्वैतवादके ग्रंथमैं नहीं ॥ जो ईश्वरमैं आवरण कहै सो वेदांतसंप्रदायसैं बहिर्भूत है । परंतु नानाअज्ञानवादमैं जीवाश्रित ब्रह्मविषयक अज्ञान है। यह वाचस्पतिका मत है । तहां जीवके अज्ञानतैं कल्पित ईश्वर औ प्रपंच नाना मानै हैं तथापि जीवके अज्ञानसैं कल्पित ईश्वर बी सर्वज्ञ ही मानै हैं । ईश्वरमैं आवरणका अंगीकार नहीं ॥

॥५९॥ इस रीतिसैं वेदांतकी अनेक प्रक्रिया हैं । तामैं आग्रह नहीं । काहेतैं ? प्रक्रिया ही मोक्षकी हेतु नहीं । किन्तु तिस प्रक्रियातैं जन्य जो बोध है, सो केवल मोक्षका हेतु है । यातैं--

१ चेतनमैं संसारधर्मका संभव नहीं । औ

२ जीवईशका परस्पर भेद नहीं ।

इस अर्थके बोधअर्थ अनेकरीति कही हैं। जिस पक्षसैं असंगब्रह्मात्माका बोध होवै, सोई पक्ष आदरणीय है । यह सर्वग्रंथकारोंका तात्पर्य है । यामैं किसीका विवाद नहीं ॥

॥ ६० ॥ ऐसैं शुद्धात्मगोचरप्रमाके दो भेद कहे औ विशिष्टात्मगोचरप्रत्यक्षप्रमाके अनंतभेद हैं ॥ "अहं अज्ञः । अहं कर्ता । अहं सुखी । अहं दुःखी । अहं मनुष्य" इसतैं आदिलेके अनंतभेद हैं ॥

यद्यपि अबाधितअर्थकूं विषय करै सो ज्ञान प्रमा कहिये है ॥ "अहं कर्त्ता" इत्यादिकज्ञानका "अहं न कर्त्ता" इत्यादिक ज्ञानसैं बाध होवै है ताकूं प्रमा कहना संभवै नहीं, तथापि संसारदशामैं अबाधितअर्थकूं विषय करै सो प्रमा कहिये है ॥ संसारदशामैं उक्त ज्ञानोंका बाध होवै नहीं, यातैं प्रमा है ॥

इस रीतिसैं आत्मगोचरआंतरप्रत्यक्षप्रमाके भेद कहे । औ---

॥ ६१ ॥ "मयि सुखम् । मयि दुःखम्" । इत्यादिक सुखादिगोचरज्ञान बी आत्मगोचरप्रत्यक्षप्रमा है ॥ परंतु-

१ "अहं सुखी, अहं दुःखी" इत्यादिकप्रमामैं तो अहंपदका अर्थ आत्मा विशेष्य है औ सुखदुःखादिक विशेषणहैं॥

२ "मयि सुखम् । मयि दुःखम्" इत्यादि प्रमामैं सुखदुःखादिक विशेष्य हैं । आत्मा विशेषण है ॥

यातैं "मयि सुखम् । मयि दुःखम्" इत्यादिक ज्ञानकूं आत्मगोचरप्रत्यक्षप्रमा नहीं कहै हैं । किन्तु सुखादिक विशेष्य होनैतैं अनात्मगोचरआंतरप्रत्यक्षप्रमा कहै हैं ॥ इसप्रकार आंतरप्रत्यक्षप्रमाके भेद कहे ॥

॥ ८ ॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके भेदके कथनपूर्वक श्रोत्रजप्रमाका निर्द्धार ॥ ६२-७१॥

॥ ६२ ॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमा पांचप्रकारकी है । ताके कारण श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ये हैं । यातैं सो प्रत्यक्षप्रमाण हैं ॥ इस इंद्रियतैं जन्य यथार्थज्ञान क्रमतैं श्रोत्रप्रमा,

त्वाचप्रमा, चाक्षुषप्रमा, रासनप्रमा औ घ्राणजप्रमा कहिये हैं ॥

॥ ६३ ॥ यद्यपि शब्दजन्यज्ञान औ किसी ग्रंथकारके मतमैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान, ये दोनूं अपरोक्ष होवै हैं । यातैं प्रत्यक्षप्रमाके सप्तभेद कहे चाहिये ॥

॥६४॥ तथापि अभावके ज्ञानमैं प्रत्यक्षता औ परोक्षताका विवाद है औ घटकी न्यांई प्रत्यक्षवस्तुविषै विवाद संभवै नहीं । यातैं अभावका ज्ञान परोक्ष ही बनै है औ शब्दजन्य ज्ञान, प्रत्यक्ष औ परोक्ष दो प्रकारका होवै है । तिनमैं शब्दजन्यप्रत्यक्षज्ञान प्रत्यक्षप्रमा है। यातैं प्रत्यक्षप्रमाके षट्भेद है । सप्त नहीं॥ परंतु शब्दजन्य प्रत्यक्षप्रमाका कारण इंद्रिय नहीं । किंतु शब्द है । यातैं प्रत्यक्षप्रमाणके षट्भेद नहीं ॥

॥ ६५ ॥ इस रीतिसैं कहे जो पंचइंद्रिय, तिनमैं श्रोत्रइंद्रियतैं शब्दगुणका औ शब्दमैं जो शब्दत्वजाति है ताका औ शब्दत्वके व्याप्यकत्वादिकनका औ तारत्वमंदत्वका ज्ञान होवै है॥

॥ ६६ ॥ श्रोत्रइंद्रियसैं ग्राह्य गुणकूं शब्द कहै हैं । सो १ ध्वनिरूप औ २ वर्णरूप भेदतैं दोप्रकारका है ॥

१ भेरीआदिकदेशमैं होवै सो ध्वनिरूप है । औ—

२ कंठादिकअष्टस्थानमैं वायुके संयोगतैं होवै सो वर्णरूप है ॥

१ध्वनिरूप शब्दमैं तारत्वमंदत्वरूप धर्म हैं औ
२ वर्णरूप शब्दमैं कत्वादिरूप धर्म हैं ॥

॥ ६७ ॥ जाका इंद्रियनतैं ज्ञान होवै ता विषयतैं इंद्रियनका कौन संबंध है सो कह्या चाहिये । यातैं सर्वइंद्रियका विषयतैं संबंध कहिये है ॥

जहां श्रोत्रसैं शब्दका प्रत्यक्ष होवै तहां श्रोत्रका शब्दसैं संयुक्त तादात्म्यसम्बन्ध है । काहेतैं? श्रोत्र आकाशके सत्त्वगुणभागतैं उपजै है। यातैं कार्यरूप द्रव्य है औ दो द्रव्योंका संयोग होवै है । यातैं श्रोत्रका आकाशसैं संयोग है औ संयोगवालेकूं संयुक्त कहै हैं । यातैं श्रोत्रसयुक्त आकाश है । तासैं शब्दगुणका तादात्म्यसंबंध है । काहेतैं ? सिद्धांतमैं १ जातिव्यक्तिका, २ गुणगुणीका, ३ क्रियाक्रियावानका औ ४ कार्यउपादानकारणका तादात्म्यसंबंध है ॥

॥ ६८ ॥

१ (१) अनेकधर्मीमैं जो एकधर्म रहै, ताकूं जाति कहै हैं ॥

(२) जातिके आश्रयकूं व्यक्ति कहै हैं ॥

२(१)कर्मसैं भिन्न जो जातिमात्रका आश्रय वा द्रव्यकर्मसैं भिन्न जो जातिका आश्रय, सो गुण कहिये है ॥

(२) गुणके आश्रयकूं गुणी औ द्रव्य कहै हैं ॥

३ (१) चेष्टाकूं क्रिया कहै हैं ।

(२) ताके आश्रयकूं क्रियावान् कहै हैं ।

४ (१) उत्पन्न होवै सो कार्य कहिये है ।

(२) कारणका लक्षण कहि आये ।

यातैं श्रोत्रका शब्दसैं श्रोत्रसंयुक्ततादात्म्यसंबंध सिद्ध हुवा ॥ औ—

॥ ६९ ॥ दो प्रकारके शब्दमैं जो शब्दत्वजाति, ताके व्याप्य जो कत्वादि औ तारत्वादि तासैं श्रोत्रका श्रोत्रसंयुक्त तादात्म्यवत् तादात्म्यसंबंध है । काहेतैं ? तादात्म्यवालेकूं तादात्म्यवत् कहै हैं औ आभिन्न बी कहै हैं। यातैं उक्तसंबंधवाला होनेतैं श्रोत्रसंयुक्ततादात्म्यवत् जो शब्द है, तासैं शब्दत्वादिकनका तादात्म्य है ॥

॥७०॥ यद्यपि आकाशतैं बी श्रोत्रका संयोगसम्बन्ध है औ वक्ष्यमाण रसनाघ्राणका बी द्रव्यसैं संयोग है । यातैं इन तीन इंद्रियनतैं बी द्रव्यका प्रत्यक्ष हुया चाहिये, तथापि श्रोत्रमैं

औ रसनाघ्राणमैं द्रव्यके प्रत्यक्षकी योग्यता नहीं। यातैं वह सम्बन्ध साफल्य नहीं । किंतु निष्फल है ॥

॥ ७१ ॥ श्रोत्रजन्य प्रमाका श्रोत्रइंद्रिय करण है । औ श्रोत्रसंयुक्ततादात्म्य औ श्रोत्रसंयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य, यह दो सम्बन्ध अपनै कारण श्रोत्रसैं उपजिके, ताके कार्य श्रोत्रप्रमाकूं उपजावै हैं, यातैं व्यापार है औ श्रोत्रप्रमा फल है ॥

॥९॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके भेद। त्वाचप्रमाका निर्द्धार॥७२॥७८॥

॥७२॥ तैसैं त्वकूइंद्रियतैं स्पर्शके औ स्पर्शके आश्रयका औ स्पर्शके आश्रित स्पर्शत्वजाति औ ताके व्याप्य कठिनत्वादिकका ज्ञान होवै है ॥

॥७३॥ त्वक्इंद्रियमात्रसैं ग्राह्यगुणकूं स्पर्श कहै हैं ॥ सो शीत, उष्ण, अनुष्णाशीत औ काठिन्य भेदतैं चारप्रकारका है ।

जहां त्वक्सैं द्रव्यका प्रत्यक्ष होवै, तहां त्वक्का द्रव्यसैं त्वक्संयोग है। काहेतैं? त्वक्इंद्रिय वायुके सत्त्वगुणभागतैं उपजै है, यातैं द्रव्य होनैतैं ताका अन्यद्रव्यतैं संयोग ही है ॥

॥७४॥ उद्भूतरूप औ उद्भूतस्पर्शवाले पृथिवी, जल औ तेज, इन तीन द्रव्यनका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है औ अनुद्भूतरूप अनुद्भूत स्पर्शवाले पृथिवीआदिकका बी त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं औ वायुके गुण स्पर्शका तौ त्वाचप्रत्यक्ष होवै है । परंतु वायुका होवै नहीं। काहेतैं ?

॥ ७५ ॥ यह नियम है:–जिस द्रव्यमैं उद्भूतरूप होवै, तिस द्रव्यका औ ताकी योग्यजातिका औ ताके आश्रित रूपसंख्यादियोग्यगुणनका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है । अन्यका नहीं ।

प्रत्यक्षयोगकूं उद्भूत कहै हैं । औ प्रत्यक्षके अयोग्यकूं अनुद्भूत कहै हैं ॥ औ––

॥७६॥ जिस द्रव्यमैं उद्भूतरूप औ उद्भूतस्पर्श होवै, तिस द्रव्यका औ ताकी जातिका औ ताके आश्रित प्रत्यक्षयोग्यगुणनका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है। अन्यका नहीं । जैसैं घ्राण रसन नेत्रमैं रूप औ स्पर्श दोनूं हैं। परंतु उद्भूत नहीं। यातैं पृथिवीजलतेजरूप बी तिन इंद्रियनका त्वाचप्रत्यक्ष औ चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं । औ झरोखेमैं जो परमसूक्ष्मरज प्रतीत होवैं, सो त्र्यणुकरूप पृथिवी है । तामैं उद्भूतरूप है। यातैं त्र्यणुकका चाक्षुषप्रत्यक्ष तौ होवै है । उद्भूतस्पर्शके अभावतैं त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं। त्र्यणुकमैं स्पर्श बी है। परंतु सो स्पर्श उद्भूत नहीं ॥ वायुमैं उद्भूतस्पर्श तौ है । रूप नहीं। यातैं वायुका त्वाचप्रत्यक्ष तथा चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं । यातैं यह सिद्ध हुवा:–द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं उद्भूतरूप हेतु है और त्वाचोनूं प्रत्यक्षेमैं रूप हेतु है।

॥७७॥ इस रीतिसैं जहां त्वाचप्रमा होवै, तहां त्वक्इंद्रियका द्रव्यसैं संयोग ही सम्बन्ध है औ द्रव्यआश्रित जो द्रव्यत्वजाति औ त्वाच प्रत्यक्षके योग्य जो स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व औ द्रवत्व, ये नवगुण तासैं त्वक्का त्वक्संयुक्ततादात्म्यसम्बन्ध है । काहेतैं ?

१ स्पर्शमैं त्वक्की योग्यता है । औरकी नहीं । औ––

२ रूपमैं नेत्रकी योग्यता है । औरकी नहीं औ––

संख्यादिक अष्टगुणनमैं त्वक् औ नेत्र दोनूंकी योग्यता है। औ––

३ श्रोत्रकी शब्दमात्रमैं योग्यता है । औ

४ रसनाकी रसमात्रमैं योग्यता है औ-
५ घ्राणकी गंधमात्रसैं योग्यता है ॥

इहां मात्रपदसैं द्रव्यमैं योग्यताका निषेध है। यातैं त्वक्सैं संयोगवाला होनैंतैं त्वक्संयुक्त जो द्रव्य, तामैं जाति औ गुणनका तादात्म्य है औ स्पर्शादिगुणमैं जो स्पर्शत्वादिक जाति है, तासैं त्वक्का त्वक्संयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्यसंबंध है ॥ यातैं-

॥ ७८ ॥ त्वक्जन्यज्ञानका त्वक्इंद्रिय करण है। औ त्वक्संयोग औ त्वक्संयुक्ततादात्म्य औ त्वक्संयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य, ये तीन संबंध व्यापार हैं औ त्वाचप्रमा फल है ॥

॥ १० ॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके भेद चाक्षुषप्रमाका निर्द्धार ॥ ७९-८१ ॥

॥ ७९ ॥ तैसैं नेत्रसैं उद्भूतरूपवाले पृथिवी जलतेजद्रव्यका औ ताके आश्रित योग्यजाति औ रूपसंख्यादिनवयोग्यगुणनका प्रत्यक्ष होवै है ॥ नेत्रइंद्रियमात्रसैं ग्राह्यगुणकूं रूप कहै हैं। सो शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश औ चित्र इन भेदनसैं सप्तप्रकारका है ॥

॥ ८० ॥ तहां द्रव्यसैं नेत्रका संयोग ही है औ द्रव्यत्वजाति औ रूपादिगुणनसैं नेत्रसंयुक्ततादात्म्य है औ रूपादिगुणनके आश्रित रूपत्वादिकजातिसैं नेत्रसंयुक्तदातात्म्यवत्तादात्म्य है। यातैं-

॥ ८१ ॥ नेत्रजन्यज्ञानका नेत्र करण है औ नेत्रसंयोग औ नेत्रसंयुक्ततादात्म्य औ नेत्रसंयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य, यह तीन संबंध व्यापार हैं औ चाक्षुषप्रमा फल है।

॥ ११ ॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके भेद रासनप्रमाका निर्द्धार ॥ ८२--८४ ॥

॥ ८२ ॥ तैसैं रसनासैं रसका औ ताके आश्रित रसत्वका ही ज्ञान होवै है। रसनासैं ग्राह्य गुणकूं रस कहै हैं। सो मधुर, आम्र, लवण, कटुक, कषाय औ तिक्त भेदसैं षट्प्रकारका है॥

॥ ८३ ॥ तहां रससैं रसनाका रसनसंयुक्ततादात्म्य औ रसत्वसैं औ ताके व्याप्य मधुरत्वादिकैसैं रसनसंयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य है। यातैं---

॥ ८४ ॥ रसनजन्यज्ञानका रसनइंद्रिय करण है औ रसनसंयुक्ततादात्म्य औ रसनसंयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्यसंबंध व्यापार है औ रासनप्रमा फल है ॥

॥ १२ ॥ बाह्यप्रत्यक्षप्रमाके भेद घ्राणजप्रमाका निर्द्धार औ सामग्रीके अनुवादसहित प्रत्यक्षप्रमाका उपसंहार ॥ ८५-८८ ॥

॥ ८५ ॥ तैसैं घ्राणसैं गंधगुणका औ ताके आश्रित गंधत्वजाति औ ताके व्याप्य सुगंधत्वदुर्गन्धत्वका ज्ञान होवै है। घ्राणसैं ग्राह्य गुणकूं गंध कहै हैं। सो सुगंधदुर्गन्धभेदसैं दो प्रकारका है। तहां--

॥८६॥ गंधसैं घ्राणका घ्राणसंयुक्ततादात्म्य है औ गंधत्वसैं घ्राणसंयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य है। यातैं--

॥ ८७ ॥ घ्राणजन्य यथार्थज्ञानका घ्राणइंद्रिय करण है औ उक्तदोसंबंध व्यापार हैं औ घ्राणजप्रमा फल है ॥

॥ ८८ ॥ इस रीतिसैं पांचप्रकारकी जे बाह्यप्रत्यक्षप्रमा वे फल हैं। ताके श्रोत्रादिक पंचइंद्रिय करण हैं। ताके संयोग, संयुक्ततादात्म्य औ संयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य ये तीनसंबंध व्यापार हैं ॥ इस रीतिसैं संक्षेपतैं प्रत्यक्षप्रमा कही ॥

॥ इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां प्रत्यक्षप्रमाणनिरूपणं नाम द्वितीयं रत्नं समाप्तम् ॥ २ ॥

॥ अथ तृतीयरत्नप्रारंभः ॥ ३ ॥

॥२॥ अनुमानप्रमाणनिरूपण ॥ ८९-१०४

॥ १३ ॥ सामग्रीसहित अनुमितिप्रमाका निर्द्धार ॥ ८९-९६ ॥

॥ ८९ ॥ अनुमितिप्रमाका जो करण होवै सो अनुमानप्रमाण कहिये है ॥

लिंगज्ञानजन्य जो ज्ञान सो अनुमिति कहिये है ॥ जैसें पर्वतमैं धूमका प्रत्यक्षज्ञान होयके वह्निका ज्ञान होवै है । तहां धूमका प्रत्यक्षज्ञान लिंगज्ञान कहिये है । तासैं वह्निका ज्ञान उपजै है । यातैं पर्वतमैं वह्निका ज्ञान अनुमिति है ॥

जाके ज्ञानसैं साध्यका ज्ञान होवै, सो लिंग कहिये है ॥

अनुमितिज्ञानका विषय साध्य कहिये है । अनुमितिज्ञानका विषय वह्नि है । यातैं सो साध्य है ॥

धूमज्ञानतैं वह्निरूप साध्यका ज्ञान होवै है । यातैं धूम लिंग है । व्याप्यके ज्ञानतैं व्यापकका ज्ञान होवै है । यातैं व्याप्यकूं लिंग कहै हैं ।

व्यापककूं साध्य कहै हैं ।

व्याप्तिवालेकूं व्याप्य कहै हैं ।

व्याप्तिके निरूपककूं व्यापक कहै हैं ।

अविनाभावरूपसंबंधकूं व्याप्ति कहै हैं । जैसें धूमविषै वह्निका अविनाभावरूप संबंध है । सोई धूमविषै वह्निकी व्याप्ति है । यातैं धूम वह्निका व्याप्य है ॥ ता व्याप्तिरूपसंबंधका निरूपक वह्नि है । यातैं धूमका व्यापक वह्नि है ॥

जा विना जो होवै नहीं, ताका अविनाभावरूपसंबंध तामैं कहिये है ॥ वह्नि विना धूम होवै नहीं । यातैं वह्निका अविनाभावरूपसंबंध धूममैं है । वह्निमैं धूमका अविनाभाव नहीं । काहेतैं ? तप्तलोहमैं धूमविना वह्नि है । यातैं धूमका व्याप्य वह्नि नहीं । वह्निका व्याप्य धूम है ॥

॥ ९० ॥ यातैं जहां अनुमिति होवै, तहां प्रथम महानसादिकमैं वारंवार धूमवह्निका सहचार देखिके मूलउच्छेदरहित ऊंची धूमरेखामैं वह्निकी व्याप्तिका प्रत्यक्षरूप निश्चय होवै है ॥ पर्वतादिकमैं हेतुका प्रत्यक्ष होवै है ॥ तिसतैं अनंतर संस्कारका उद्भव होयके व्याप्तिकी स्मृति होवै है । तिसतैं अनंतर "वह्निमान् पर्वतः" ऐसा अनुमितिज्ञान होवै है ॥ तहां-

॥ ९१ ॥ व्याप्तिका अनुभव करण है । व्याप्तिकी स्मृति व्यापार है । पक्षमैं साध्यक ज्ञानरूप अनुमिति फल है. ॥

इस रीतिसैं वाक्यप्रयोग विना व्याप्तिज्ञानादिकतैं जो अनुमिति होवै, सो स्वार्थानुमिति कहिये है । ताके करण व्याप्तिज्ञानादिक स्वार्थानुमान कहिये हैं ।

॥ ९२ ॥ जहां दोका विवाद होवै, तहां वह्निनिश्चयवाला पुरुष अपनै प्रतिवादीकी निवृत्तिवासतैं वाक्यप्रयोग करै है । ताकूं परार्थानुमान कहै हैं ।

॥ ९३ ॥ सो वाक्य वेदांतमतमैं तीनिअवयवका होवै है । प्रतिज्ञा, हेतु औ उदाहरण, ये वाक्यके अवयवके नाम हैं ॥ "पर्वतो वह्निमान्, धूमात् । यो यो धूमवान् सोऽग्निवान् । यथा महानसः ।" इतना महावाक्य है । तामैं तीनि अवांतरवाक्य हैं । तिन्हके प्रतिज्ञादिक क्रमतैं नाम हैं ।

॥ ९४ ॥ साध्यविशिष्टपक्षका बोधक वाक्य प्रतिज्ञावाक्य कहिये है । ऐसा "पर्वतो

वह्निमान्" यह वाक्य है । 'वह्निविशिष्ट पर्वत है' ऐसा बोध या वाक्यतैं होवै है । तहां—

१ वह्नि साध्य है ।

२ पर्वत पक्ष है ।

३ प्रतिज्ञावाक्यतैं उत्तर जो लिंगका बोधक वचन सो हेतुवाक्य कहिये है । ऐसा वाक्य "धूमात्" यह है ॥

४ हेतुसाध्यका सहचारबोधक जो दृष्टांत-प्रतिपादक वचन, सो उदाहरणवाक्य कहिये है ।

वादीप्रतिवादीका जहां विवाद न होवै, किंतु दोनूंका निर्णीत अर्थ जहां होवै सो दृष्टांत कहिये है ॥

॥९५॥इस रीतिसैं प्रतिज्ञादिक तीन अवांतर वाक्य हैं । तिनके समुदायरूप महावाक्यतैं विवादकी निवृत्ति होवै है ॥ महावाक्य सुनिके जो प्रतिवादी आग्रह करै अथवा व्यभिचारकी शंका होवै तौ तर्कसैं ताकी निवृत्ति होवै है । यातैं प्रमाणका सहकारी तर्क है ।

अनिष्टके आपादनकूं तर्क कहै हैं ।

॥ ९६ ॥ इस रीतिसैं--

१ तीनि अवयवनका समुदायरूप जो महा-वाक्य, ताकूं परार्थानुमान कहै हैं ॥

२ तिसतैं उत्तर जो अनुमिति होवै, सो परार्थानुमिति कहिये है ।

॥१४॥ वेदांतविषै उपयोगी अनुमानका निर्द्धार ॥ ९७-१०१ ॥

॥९७॥ वेदांतवाक्यनसैं जीवमैं ब्रह्मका अभेद निर्णीत है । सो अनुमानतैं बी इस रीतिसैं सिद्ध होवै हैः-"जीवो ब्रह्माभिन्नः । चेतनत्वात् । यत्र यत्र चेतनत्वं तत्र तत्र ब्रह्मा-भेदः । यथा ब्रह्मणि ॥" यह तीनि अवयवनका समुदायरूप महावाक्य है यातैं परार्थानुमान कहिये है ॥ इहां—

१ जीव पक्ष है ।

२ ब्रह्माभेद साध्य है ।

३ चेतनत्व हेतु है

४ ब्रह्म दृष्टांत है ॥

॥ ९८ ॥ इहां प्रतिवादी जो ऐसैं कहैः- 'जीवमैं चेतनत्व हेतु तौ है औ ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं है' इस रीतिसैं पक्षमैं चेतनत्व-हेतुका ब्रह्माभेदरूप साध्यसैं व्यभिचारकी शंका करै तौ तर्कसैं शंकाकी निवृत्ति करै ॥

॥ ९९ ॥ इहां तर्कका यह स्वरूप हैः--- जीवमैं चेतनत्व हेतु मानिके ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं मानै तौ चेतनकी अद्वितीयताकी प्रतिपादक श्रुतिनका विरोध होवैगा ।

अनिष्टका आपादन तर्क कहिये है ।

श्रुतिका विरोध सर्वआस्तिकनकूं अनिष्ट है ।

॥ १०० ॥ "व्यावहारिकप्रपंच मिथ्या ज्ञाननिवर्त्यत्वात् । यत्र यत्र ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्र मिथ्यात्वम् । यथा शुक्तिरजतादौ ॥"—

१ "व्यावहारिकप्रपंच" पक्ष है—

२ "मिथ्यात्व" साध्य है ॥

३ "ज्ञाननिवर्त्यता" हेतु है ।

४ "व्यावहारिकप्रपपंचो मिथ्या" यह प्रतिज्ञावाक्य है ।

"ज्ञाननिवर्त्यत्वात्" यह हेतुवाक्य है ।

६"यत्र यत्र ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्र मिथ्यात्वम्। यथा शुक्तिरजतादौ" यह उदाहरण-वाक्य है ॥

॥१०१॥ इहां बी प्रपंचकूं ज्ञाननिवर्त्यता मानिके मिथ्यात्व नहीं मानै तौ सबकी ज्ञानतैं निवृत्ति बनै नहीं । यातैं ज्ञानसैं सकलप्रपंचकी निवृत्तिप्रतिपादक श्रुतिस्मृतिका विरोध होवैगा। या तर्कतैं व्यभिचारशंकाकी निवृत्ति होवै है ॥

॥ १५ ॥ न्याय औ वेदांतके मतमैं अनुमानके स्वीकारका निर्णय ॥१०२-१०४॥

॥ १०२ ॥ इस रीतिसैं वेदांतअर्थके अनुसारी अनेक अनुमान हैं। परंतु वेदांतवाक्यतैं अद्वितीयब्रह्मका जो निश्चय हुवा है। तिसकी संभावनामात्रका हेतु अनुमानप्रमाण है। स्वतंत्रअनुमान ब्रह्मनिश्चयका हेतु नहीं। काहेतैं? वेदांतवाक्य विना अन्यप्रमाणकी ब्रह्मविषै प्रवृत्ति नहीं। **यह सिद्धांत है ॥**

॥ १०३ ॥ न्यायमतमैं १ केवलान्वयि, २ केवलव्यतिरेकि, औ ३ अन्वयव्यतिरेकि इन भेदनतैं **तीन प्रकारका अनुमान** अंगीकार किया है।

१ जहां हेतुसाध्यके सहचारज्ञानतैं हेतुमैं व्याप्तिका ज्ञान होवै है, सो **अन्वयि अनुमान** कहिये है।

२ जहां साध्याभावमैं हेत्वभावके सहचारदर्शनतैं हेतुमैं साध्यकी व्याप्तिका ज्ञान होवै सो **केवलव्यतिरेकि अनुमान** कहिये है ॥

केवलान्वयिअनुमानमैं अन्वयके सहचारका उदाहरण मिलै है औ केवलव्यतिरेकिअनुमानमैं व्यतिरेकके सहचारका उदाहरण मिलै है। यह भेद है ॥

३ जहां दोनूंके उदाहरण मिलैं सो **अन्वयव्यतिरेकि अनुमान** कहिये है। ऐसा अनुमान "पर्वतो वह्निमान्" है। याकूं **प्रसिद्धानुमान** कहै हैं ॥

इहां अन्वयके सहचारका उदाहरण महानस है औ व्यतिरेकके सहचारका उदाहरण महाह्रद है।

इस रीतिसैं तीनिप्रकारका अनुमान नैयायिक कहै हैं ॥

॥ १०४ ॥ वेदांतमतमैं केवलव्यतिरेकिका प्रयोजन आर्थापत्तिसैं होवै है औ केवलान्वयिअनुमान कोई है नहीं। काहेतैं? सर्वपदार्थनका ब्रह्ममैं अभाव है, यातैं व्यतिरेकसहचारका उदाहरण ब्रह्म मिलै है ॥

यद्यपि वृत्तिज्ञानकी विषयतारूप ज्ञेयता ब्रह्मविषै है, ताका अभाव ब्रह्मविषै बनै नहीं, तथापि ज्ञेयतादिक मिथ्या हैं। मिथ्यापदार्थ औ ताका अभाव एकअधिष्ठानमैं रहै हैं। यातैं जिसकूं नैयायिक अन्वयिव्यतिरेकि कहैं हैं, सोई अन्वयिनाम एक प्रकारका अनुमान मान्या है। औ विचारदृष्टिसैं केवलव्यतिरेकि अनुमान बी अर्थापत्तिसैं न्यारा माननैकूं योग्य है। **यह वेदांतका मत है ॥**

वेदांतवाक्यसैं अद्वैतब्रह्मका जो निश्चय हुवा है, मननद्वारा ताकी संभावनामात्रका हेतु अनुमानप्रमाण है। स्वतंत्र ब्रह्मनिश्चयका हेतु नहीं। **यह अनुमानका प्रयोजन है ॥**

यह संक्षेपतैं अनुमानप्रमाण कह्या है ॥

॥ इति श्रीवृत्तिरत्नावल्याम् अनुमानप्रमाणनिरूपणं नाम तृतीयं रत्नं समाप्तम् ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थरत्नप्रारंभः ॥ ४ ॥

॥३॥ उपमानप्रमाणनिरूपण ॥१०५-११४॥

॥ १६ ॥ व्यवहारविषै उपयोगी उपमिति औ उपमानका सादृश्यसहित स्वरूप ॥१०५-१०७॥

॥ १०५ ॥ उपमितिप्रमाका करण **उपमानप्रमाण** कहिये है ॥

वेदांतमतमैं उपमितिउपमानका यह स्वरूप है:-ग्रामविषै गोव्यक्तिकूं देखनैवाला वनमैं जायके गवयकूं देखे, तब "यह पशु गौके

सदृश है" ऐसा प्रत्यक्ष होवै है। तिसतैं अनंतर "मेरी गो" इस पशुके सदृश है ऐसा ज्ञान होवै है। तहां-

१ गवयमैं गोसादृश्यका ज्ञान उपमान प्रमाण कहिये है। औ--

२ गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान उपमिति कहिये है ॥

३ यातैं सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञानरूप उपमिति, गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान है।

४ ताका करण गवयमैं गोका सादृश्यज्ञान है, सोई उपमान है ॥

॥ १०६ ॥ भेदसहित समानधर्मकूं सादृश्य कहै हैं। जैसैं गवयमैं गोके भेदसहित समान अवयव गवयमैं हैं, सोई गोका सादृश्य है ॥ गोके समानधर्म गौमैं हैं। भेद नहीं। गोका भेद अश्वमैं है। समानधर्म नहीं। यातैं सादृश्य नहीं ॥ चन्द्रके भेदसहित आह्लादजनकतारूप समानधर्म मुखमैं है, सोई मुखमैं चन्द्रका सादृश्य है ॥

॥ १०७ ॥ यद्यपि उक्तज्ञानकूं ही उपमिति मानैं तौ आत्मामैं किसीका सादृश्य नहीं। यातैं जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण मिलै नहीं ॥

॥ ७१ ॥ जिज्ञासुके अनुकूल उपमिति औ उपमानका स्वरूप ॥ १०८-१४१ ॥

॥ १०८ ॥ यद्यपि असंगतादिक धर्मनतैं आकाशके सदृश आत्मा है, यातैं आकाशमैं आत्माका सादृश्यज्ञान उपमान है, आत्मामैं आकाशका सादृश्यज्ञान उपमिति है तथापि जिस अधिकरणमैं जिस पदार्थके अभावका ज्ञान होवै, तहां अभावज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुये विना तिस अधिकरणमैं ता पदार्थका ज्ञान होवै नहीं। जैसैं आत्मामैं कर्तृत्वादिकनका अभावज्ञान हुया। न्यायादिकशास्त्र सुनैं बी प्रथमज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुये विना "कर्त्ता भोक्ता आत्मा है" ऐसा ज्ञान होवै नहीं ॥

जाकूं वेदांतअर्थ निश्चयकरिके नैयायिकादिकनके कुसंगतैं "कर्त्ता भोक्ता आत्मा है" ऐसा ज्ञान होवै है। तहां प्रथमज्ञानमैं भ्रमबुद्धि होयके होवै है। प्रथम ज्ञानमैं भ्रमबुद्धि हुये विना विरोधि ज्ञान होवै नहीं। सो भ्रमबुद्धि भ्रमरूप होवै, अथवा यथार्थ होवै इसमैं आग्रह नहीं। परंतु भ्रमबुद्धिमैं भ्रमत्व निश्चय नहीं चाहिये। यह आग्रह है ॥

इस रीतिसैं जिस कालमैं गुरुवाक्यनतैं जिज्ञासुकूं ऐसा दृढनिश्चय हुया है:-आकाशादिकसकलप्रपंच गन्धर्वनगरकी न्याईं दृष्टनष्टस्वभाव है, तातैं विलक्षणस्वभाव आत्मा है। आकाशादिकनमैं आत्माका किंचित् बी सादृश्य नहीं। तिस कालमैं आकाश औ आत्माका सादृश्यज्ञान संभवै नहीं। यातैं उत्तमजिज्ञासुके अनुकूल सिद्धांतकी उपमितिका उदाहरण मिलै नहीं ॥

॥ १०९ ॥ तथापि सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान अथवा वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञान, इन दोनूंमैं कोइएक होवै सो उपमिति कहिये है ॥

खड्गमृगमैं उष्ट्रके वैधर्म्यज्ञानतैं उष्ट्रमैं खड्गमृगका वैधर्म्यज्ञान होवै है ॥ पृथिवीमैं जलके वैधर्म्यज्ञानतैं जलमैं पृथिवीका वैधर्म्यज्ञान होवै है! यातैं उष्ट्रमैं खड्गमृगका वैधर्म्यज्ञान औ जलमैं पृथिवीका वैधर्म्यज्ञान उपमिति है। ताका करण उपमान कहिये है। इहां खड्गमृगमैं उष्ट्रका वैधर्म्यज्ञान औ पृथिवीमैं जलका वैधर्म्यज्ञान करण होनैतैं उपमान है। और--

॥ ११० ॥ विपरीत बी उपमानउपमिति भाव संभवै है ॥ इंद्रियसम्बन्धमैं सादृश्यज्ञान उपमान है औ इंद्रियसैं व्यवहितमैं सादृश्य

ज्ञान उपमिति है। तैसें प्रपंचमें आत्माके वैधर्म्यका ज्ञान उपमान है औ प्रपंचमें आत्माके वैधर्म्यज्ञानतैं आत्मामें प्रपंचका वैधर्म्यज्ञान उपमिति है।

॥ १११ ॥ न्यायमतमैं तौ संज्ञाका संज्ञीमें वाच्यताका ज्ञान उपमिति है। सो व्यवहारमें उपयोगी है। जैसें सदृशज्ञानतैं उपमिति होवै है, तैसें विधर्मज्ञानसैं बी होवै है ॥ जहां खड्गमृगके वाच्यकूं नहीं जानता आरण्यक पुरुषतैं "उष्ट्र-विधर्मा शृंगसहित नासिकावाला खड्गमृगपद वाच्य है" इस वाक्यकूं सुनिके वाक्यार्थानुभवसैं उत्तर, वनमैं जायके उष्ट्रविधर्मखड्गमृगके प्रत्यक्षसैं उक्त गैंडमैं खड्गमृगपदकी वाच्यता जानै है ॥

विरुद्धधर्मवालेकूं विधर्म कहै हैं।

विरुद्धधर्मकूं वैधर्म्य कहैं है।

खड्गमृगमैं उष्ट्रतैं विरुद्धधर्म ह्रस्वग्रीवादिक हैं। पृथिवीमें जलादिकनतैं विरुद्धधर्म गंध है।

सारग्राहीदृष्टिसैं उक्तरीति मानै तौ सिद्धांतमें हानि नहीं। उलटी अनुकूलता है। ताका सिद्धांतके अनुकूल यह उदाहरण है ॥

॥ ११२ ॥ आत्मपदका अर्थ कैसा है ? या प्रश्नका "देहादिवैधर्म्यवान् आत्मा" ऐसा गुरुके उत्तरसैं अनित्य अशुचि दुःखस्वरूप देहादिकनसैं विधर्मा नित्यशुद्ध आनंदरूप आत्मपदका वाच्य है। ऐसा एकांतदेशमैं विवेचनकालमैं मनका आत्मासैं संयोग होयके उपमितिज्ञान होवै है। औ सर्वथा नैयायिकरीतिमैं विद्वेष होवै तौ पूर्वउक्तसिद्धांतकी रीति ही अंगीकरणीय है ॥ परंतु—

॥ ११३ ॥ पूर्व कह्या था जो "व्यापारवाला असाधारण कारण" करण कहिये है। यह लक्षण सिद्धांतकी रीतिसैं इहां बनै नहीं। काहेतैं ?

१ प्रत्यक्ष, अनुमान, औ शब्द, ये तीन प्रत्यक्षप्रमा, अनुमितिप्रमा औ शाब्दीप्रमाके व्यापारवाले कारण हैं। औ—

२ उपमान, अर्थापत्ति औ अनुपलब्धि ।ये तीन उपमितिआदिक प्रमाके निर्व्यापार कारण हैं ॥

यातैं "व्यापारसैं भिन्न असाधारणकारण" कूं करण कह्या चाहिये। काहेतैं ? जैसें व्यापारमैं व्यापारता नहीं है, तैसें व्यापारसैं भिन्नता बी व्यापारमैं नहीं है। यातैं सिद्धांत की रीतिसैं व्यापारवत् पदके स्थानमैं व्यापारभिन्न कह्या चाहिये ॥

॥ ११४ ॥ इस रीतिसैं प्रपंचमैं ब्रह्मकी विधर्मताका ज्ञान उपमान है औ प्रपंचतैं विधर्म ब्रह्म है। यह उपमानप्रमाण ताका फल उपमितिज्ञान है।

॥ इति श्रीवृत्तिरत्नावल्याम् उपमानप्रमाणनिरूपणं नाम चतुर्थं रत्नं समाप्तम् ॥ ४ ॥

॥ अथ पंचमरत्नप्रारंभः ॥ ५ ॥

॥४॥ शब्दप्रमाणनिरूपण ॥११५-१५१

॥ १८ ॥ शाब्दीप्रमाके भेद

॥ ११५ --११८ ॥

॥ ११५ ॥ शाब्दीप्रमाके करणकूं शब्दप्रमाण कहै हैं। शाब्दीप्रमा दो प्रकारकी है। एक व्यावहारिक है औ दूसरी पारमार्थिक है।

॥ ११६ ॥ व्यावहारिकशाब्दीप्रमा बी दो प्रकारकी है। १ एक लौकिकवाक्यजन्य है औ २ दूसरी वैदिकवाक्यजन्य है।

१ " नीलो घटः" इत्यादिक लौकिक वाक्य हैं ॥

२ " वज्रहस्तः पुरन्दरः " इत्यादिक वैदिकवाक्य हैं।

१ जैसैं नीलके अभेदवाला घट है, यह प्रथमवाक्यका अर्थ है ॥

२ तैसैं वज्रहस्तके अभेदवाला पुरंदर है, यह द्वितीयवाक्यका अर्थ है ॥

१ प्रथमवाक्यमैं विशेषणबोधक "नील" पद है औ "घट" पद विशेष्यबोधक है ।

२ द्वितीयवाक्यमैं "वज्रहस्त" पद विशेषण बोधक है औ "पुरंदर" पद विशेष्य-बोधक है ॥

इस रीतिसैं लौकिकवैदिकवाक्यनकी समान-रीति है परंतु—

॥ ११७ ॥ वैदिकवाक्य दो प्रकारके हैं । १ एक व्यावहारिकअर्थके बोधक हैं औ २ दूसरे परमार्थतत्त्वके बोधक हैं ॥

१ ब्रह्मसैं भिन्न सारा व्यावकहारिक अर्थ कहिये है ।

२ परमार्थतत्त्व ब्रह्म कहिये है ॥

॥ ११८ ॥ ब्रह्मबोधकवाक्य बी दोप्रकारके हैं ॥

१ "तत्" पदार्थके वा "त्वं" पदार्थके स्वरूपके बोधक अवांतरवाक्य हैं

(१) जैसैं "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" यह वाक्य "तत्" पदार्थका बोधक है ॥

(२) "य एग हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः" यह वाक्य त्वंपदार्थके स्वरूपका बोधक है॥

२ "तत"पदार्थ त्वंपदार्थके अभेदके बोधक "तत्त्वमसि" आदिक महावाक्य हैं ॥

॥१९॥ शब्दकी वृत्तिके भेद । शक्ति-वृत्तिका निरूपण ॥ ११९-१२४॥

॥ ११९ ॥ जा अर्थमैं जा पदकी वृत्ति होवै ता अर्थकी ता पदसैं प्रतीति होवै है ॥ पदका अर्थसैं संबंध, वृत्ति कहिये है ॥ शक्ति औ लक्षणाभेदतैं सो वृत्ति दो प्रकारकी है ॥

॥ १२० ॥ पदार्थबोधहेतुसामर्थ्यकूं शक्ति कहै हैं ॥

जिस अर्थमैं पदकी शक्ति होवै, सो अर्थ पदका शक्य कहिये हैं ॥

जैसैं घट औ पट पदमैं कलश औ वस्त्ररूप अर्थके बोधकी सामर्थ्य है, सो शक्ति है ॥

यातैं घट औ पटपदकों कलश औ वस्त्र शक्यअर्थ हैं । ताहीकूं वाच्यअर्थ बी कहै हैं ॥

॥ १२१ ॥ सो शक्ति १ योग, २ रूढ, औ ३ योगरूढउभयरूप भेदतैं तीन प्रकारकी है।

१ अवयवशक्तिकूं योग कहै हैं । जैसैं पाचकपद है, तहां पाच्अवयवका पाक अर्थ है । अक्अवयवका कर्त्ता अर्थ है ॥

इस रीतिसैं पाचकपदके अवयवनमैं जो अर्थका बोधहेतुसामर्थ्य सो पाचकपदमैं अवयवशक्ति है ॥

अवयवशक्तिसैं जो शब्द अपनै अर्थकूं जनावै, सो यौगिकशब्द कहिये है। जैसैं पाचकादिकशब्द हैं ॥ औ—

॥ १२२ ॥ २ परिभाषाशक्तिकूं रूढि कहै हैं।

शास्त्रका असाधारणसंकेत परिभाषा कहिये है। जैसैं छंदोग्रंथनममैं बाण, रस, मुनि शब्दका पंच, षट्, सप्त अर्थ है। यहशास्त्रका असाधारणसंकेत होनैतैं परिभाषा है । यातैं परिभाषातैं जो शब्दमैं बोधहेतुसामर्थ्य सो रूढिशक्ति कहिये है। औ—

रूढिशक्तिसैं जो शब्द अपनै अर्थकूं जनावै सो रौढिकशब्द कहिये हैं। जैसैं घट डित्थ कपित्थ शब्द हैं ॥ औ—

॥ १२३ ॥ ३ अवयव परिभाषा दोनूंकी अर्थबोधहेतुसामर्थ्यकूं योगरूढउभयरूप शक्ति कहै हैं। जैसैं पंकजशब्दके पंकअवयवका कर्दम अर्थ है औ ज अवयवका जात अर्थ है ।

(१) इस रीतिसैं कादवतैं उपज्या कमल, पंकजशब्दका अर्थ है। काहेतैं ? पंकज शब्दमैं अवयवशक्ति है । औ–

(२) जलजंतु बी पंकतैं उपजै हैं, ताकूं पंकज नहीं कहै हैं । किंतु कमलपुष्प कूं ही पंकज कहै हैं । यातैं पंकजशब्दमैं परिभाषाशक्ति बी है ।

यातैं पंकजशब्दमैं दोनूं सामर्थ्य होनैतैं योगरूढउभयरूप शक्ति है ॥

॥ १२४ ॥ सर्वके मतमैं शक्ति औ लक्षणा यह दो वृत्ति हैं औ ब्रह्मप्रमाके करण महावाक्यके अर्थनिरूपणमैं बी दोका ही उपयोग है ॥

॥ २० शब्दकी वृत्तिके भेद । लक्षणावृत्तिका निरूपण ॥ १२५–१३९ ॥

॥१२५॥ यद्यपि "यन्मनसा न मनुते"

१ यत् कहिये जिस ब्रह्मकूं मनकरिकै लोक नहीं जानै हैं । इत्यादिक श्रुतिमैं जैसैं मानसज्ञानकी विषयताका निषेध कऱ्या है ।

२ तैसैं "यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" कहिये जिस ब्रह्मतैं मनसहित वाणी बी न प्राप्त होयके निवर्त्त होती है । इत्यादिश्रुतिमैं शब्दकी विषयताका बी निषेध किया है ॥

यातैं महावाक्यनकूं ब्रह्मप्रमाकी करणता कहना विरुद्ध है ॥

॥ १२६ ॥ तथापि शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता नहीं, इस अर्थमैं श्रुतिका तात्पर्य होवै तौ "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" 'कहिये तिस उपनिषद्गम्य पुरुषको मैं पूछता हौं।' इस श्रुतितैं ब्रह्मकूं उपनिषद्वेद्यत्वरूप "औपनिषदत्व" कथन असंगत होवैगा । यातैं शक्तिवृत्तिसैं ब्रह्मका ज्ञान शब्दसैं होवै नहीं । लक्षणावृत्तिसैं ब्रह्मगोचरज्ञान होवै है । यातैं शक्तिवृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध है औ लक्षणावृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता है । यातैं लक्षणावृत्तिजन्यज्ञानका विषय होनैतैं ब्रह्मकूं औपनिषदत्व संभवै है ॥ औ––

लक्षणावृत्तिजन्य ज्ञानमैं बी चिदाभासरूप फलका विषय ब्रह्म नहीं है । किंतु आवरणभंगरूप वृत्तिमात्रकी विषयता ब्रह्मविषै है ॥ जैसैं शब्दजन्य ज्ञानकी विषयताका सर्वथा निषेध नहीं, तैसैं मानसज्ञानकी विषयताका बी सर्वथा निषेध नहीं। किंतु शमदमादिसंस्काररहित विक्षिप्तमनकी ब्रह्मज्ञानमैं हेतुता नहीं औ मानसज्ञानमैं जो चिदाभासअंश है ताकी विषयता नहीं । यातैं भाष्यकाररीतिसैं ब्रह्मप्रमाका उक्त मन सहकारी है औ शब्द करण है ॥ इस रीतिसैं महावाक्यनकूं ब्रह्मप्रमाकी करणता कहनैमैं कछु बी विरोध नहीं ॥

॥ १२७ ॥ इस प्रकार दो वृत्ति हैं । तामैं शक्ति कहि आये औ––

शक्यसंबंधकूं लक्षणा कहै हैं ।

॥ १२८ ॥ यद्यपि उक्त रीतिसैं शक्तिवृत्तिजन्य ज्ञानकी आविषयता होनैतैं शक्तिवृत्तिका कथन निरर्थक है ॥

॥ १२९ ॥ २ तथापि––

१ शक्तिज्ञान विना शक्य जो वाच्यअर्थ ताका ज्ञान होवै नहीं ॥ औ––

२ शक्यके ज्ञान विना शक्यसंबंधरूप लक्षणाका ज्ञान बनै नहीं औ––

३ लक्षणाके ज्ञान विना लक्ष्य जो पदार्थ ताका ज्ञान सो बनै नहीं ।

४ पदार्थज्ञान विना वाक्यार्थज्ञान बनै नहीं । यातैं––

१ शक्तिज्ञानका शक्यज्ञानमैं ।

२ शक्यज्ञानका लक्षणाज्ञानमैं ।

३ लक्षणाज्ञानका लक्ष्यरूप पदार्थज्ञानमैं। औ।

४ पदार्थज्ञानका पदार्थसमुदायके संबंधके ज्ञानरूप वा संबंधसहित पदार्थसमुदायके ज्ञानरूप वाक्यार्थज्ञानमैं--

उपयोग होनैतैं शक्तिवृत्तिका कथन निष्फल नहीं । किंतु परंपरासैं वाक्यार्थज्ञानमें उपयोगी होनैतैं सफल है ॥

॥ १३० ॥ इस रीतिसैं कही जो लक्षणा सो १ केवललक्षणा औ २ लक्षितलक्षणा भेदतैं दो प्रकारकी है ।

१ शक्यके साक्षात्संबंधकूं केवललक्षणा कहै हैं । औ-

२ शक्यके परंपरासंबंधकूं लक्षितलक्षणा कहै हैं ॥

शक्यसंबंधपना दोनूंमैं है । तामैं कहूं लक्षितलक्षणा ही गौणी बी कहिये है ।

॥ १३१ ॥ लक्षितलक्षणाके उदाहरण "द्विरेफो रौति" इत्यादि हैं । याका दोरेफ ध्वनि करै है । यह अर्थ पदनकी शक्तिसैं प्रतीत होवै है ॥ इहां द्विरेफपदका शक्य दो रेफ हैं । तिनका--

१ अवयविता संबंध भ्रमरपदमैं है ।

२ ता पदका शक्तिरूपसंबंध अपनै वाच्य मधुपमैं है ।

यातैं शक्यका संबंधी जो भ्रमरपद ताका संबध होनैतैं शक्यका परंपरासंबंध है । यातैं लक्षितलक्षणा है ॥

॥१३२॥ सो केवललक्षणा औ लक्षितलक्षणा ये दोनूं बी जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा, औ भाग त्यागलक्षणा भेदतैं तीन प्रकारकी हैं । सो प्रत्येकलक्षणा बी १ प्रयोजनवती लक्षणा औ २ निरूढलक्षणा भेदतैं दो भांतिकी है ॥

१ जहां शक्तिवाले पदकूं त्यागिके लाक्षणिक शब्दप्रयोगमैं प्रयोजन कहिये फल होवै, सो प्रयोजनवती लक्षणा कहिये है ॥

जैसैं "तीरे ग्रामः" ऐसा कहैं तौ तीरमैं शीतपावनतादिकनकी प्रतीति होवै नहीं ॥ गंगापदसैं तीरका बोधन करै । गंगाके धर्म शीतपावनतादिक तीरमैं प्रतीत होवै हैं यातैं गंगापदकी तीरसैं प्रयोजनवती लक्षणा है । औ

२ पदकी जिस अर्थमैं शक्तिवृत्ति होवै नहीं औ शक्यकी न्यांई जिस अर्थकी प्रतीति जिस पदमैं सर्वकूं प्रसिद्ध होवै, तिस अर्थमैं ता पदकी प्रयोजनशून्यलक्षणा ऐसी निरूढलक्षणा कहिये है ॥

जैसैं "नीलो घटः" इत्यादिवाक्यकूं सुनतैं ही सर्वपुरुषनकूं गुणीकी प्रतीति अतिप्रसिद्ध है । यातैं नीलादिक पदनका गुणीमैं प्रयोजनशून्यलक्षणा होनैतैं निरूढलक्षणा है ।

निरूढलक्षणा शक्तिके सदृश होवै है । कोई विलक्षण अनादि तात्पर्य होवै, तहां निरूढलक्षणा होवै है ॥

इस रीतिसैं लक्षणाके भेद कहे ॥ तामैं-

॥ १३३ ॥ जहल्लक्षणा औ अजहल्लक्षणा महावाक्यनमैं नहीं । किंतु भागत्यागलक्षणा है। ताकी रीति पूर्व कहि आये ।

सो भागत्यागलक्षणा महावाक्यनमैं लक्षितलक्षणा नहीं, किंतु केवललक्षणा है । काहेतैं ? लक्ष्यचेतनतैं वाच्यका साक्षात्संबंध है । परंपरा नहीं ॥

जहां भागत्यागलक्षणा होवै, तहां वाच्यका एकदेश लक्ष्य होवै है । ता वाच्यके एकदेशतैं वाच्यका साक्षात्संबंध है । यातैं केवललक्षणा होवै है औ-

महावाक्यनतैं जिज्ञासुकूं अखंडब्रह्मका बोध होवै, ऐसा ईश्वरका अनादि तात्पर्य है । यातैं निरूढलक्षणा है । प्रयोजनवती नहीं ॥ इहां

॥ १३४ ॥ ऐसी शंका होवै हैः-

१ वाच्यअर्थका लक्ष्यचेतनसैं संबंध मानैं तौ लक्ष्यअर्थमैं असंगताकी हानि होवैगी।

२ संबंध नहीं मानैं तौ तौ लक्षणा बनै नहीं। काहेतैं ? शक्यसंबंधकूं अथवा बोध्यसंबंधकूं लक्षणा कहै हैं। सो असंगमैं संभवै नहीं। ताका-

॥१३५॥ यह समाधान हैः-वाच्यअर्थमैं १ चेतन औ २ जड दो भाग हैं। तामैं-

१ चेतनभागका लक्ष्यअर्थमैं तादात्म्यसंबंध है ॥

सकल पदार्थनका स्वरूपमैं तादात्म्यसंबंध होवै है ॥

वाच्यभागचेतनका स्वरूप ही लक्ष्यचेतन है। यातैं वाच्यमैं चेतनभागका लक्ष्यचेतनमैं तादात्म्यसंबंध है। औ-

२ वाच्यमैं जडभागका लक्ष्यचेतनसैं अधिष्ठानतासंबंध है।

कल्पितके संबंधतैं अधिष्ठानका स्वभाव बिगरै नहीं ॥ जैसैं कल्पितमृगतृष्णाके जलतैं अधिष्ठानभूमि गीली होवै नहीं। ऐसैं इहां बी जानि लेना ॥

॥ १३६ ॥ अन्यशंकाः-

१"तत्" पदकी अखंडचेतनमैं लक्षणा मानै औ "त्वं"पदकी बी अखंडचेतनमैं लक्षणा मानै तौ पुनरुक्तिदोष होनैतैं "घटो घटः"। इस वाक्यकी न्याईं अप्रमाणवाक्य होवैगा ॥

२ दोनूंपदनका लक्ष्यअर्थ जुदा मानै तौ अभेदबोधकता नहीं होवैगी ॥ ताका-

॥ १३७ ॥ यह समाधान हैः-

१ मायाविशिष्ट औ अंतःकरणविशिष्ट तौ "तत्" पदका औ "त्वं" पदका शक्य है। उपहित लक्ष्य है। जो ब्रह्मचेतन दोनूं पदनका लक्ष्य होवै तौ पुनरुक्तिदोष होवै। सो ब्रह्मचेतन लक्ष्य नहीं। किंतु मायाउपहित तौ अंतःकरणउपहित लक्ष्य हैं ॥ सो उपाधि भेदसैं भिन्न हैं। पुनरुक्ति नहीं ॥ औ-

२ उपहित दोनूं परमार्थसैं अभिन्न हैं। यातैं अभेदबोधकता वाक्यकूं संभव है ॥ इस रीतिसैं तत्पदार्थ औ त्वंपदार्थका उद्देश विधेयभाव मानिके अभेदबोधकता निर्दोष है ॥

१ "तत्" पदार्थमैं परोक्षताभ्रमनिवृत्तिके अर्थ "तत्" पदार्थकूं उद्देशकरिके "त्वं" पदार्थता विधेय है ॥

"त्वं" पदार्थमैं परिच्छिन्नताभ्रमनिवृत्तिके अर्थ "त्वं" पदार्थकूं उद्देशकारिके "तत्" पदार्थता विधेय है ॥ औ--

॥१३८॥ पुनरुक्तिके परिहारवास्ते किसीग्रंथकारका यह तात्पर्य हैः-जो पदनकूं भिन्नभिन्नलक्षकता मानैं तौ पुनरुक्तिकी शंका होवै। सो भिन्नभिन्न लक्षकता नहीं। किंतु मीमांसकरीतिसैं दोनूंपद मिलिके अखंडब्रह्मके लक्षक हैं।

इस रीतिसैं लक्षणाके प्रसंगमैं बहुत विचार प्राचीनआचार्योंनैं लिख्या है। ताकी संक्षेपतैं रीतिमात्र जनाई है ॥

॥ १३९ ॥ इस रीतिसैं प्रथम तौ पदकी शक्ति वा लक्षणाके ज्ञानसहित वाक्यका श्रवणसाक्षात्कार होयके पूर्व अनुभूतपदार्थनकी स्मृति होवै है। तिसतैं अनंतर पदार्थनके संबधका ज्ञान वा संबंधसहित पदार्थनका ज्ञानरूप वाक्यार्थबोध होवै है। ताहीकूं शाब्दबोध बी कहै हैं। यातैं शब्दकी शक्ति अथवा लक्षणावृत्तिकाज्ञान शाब्दबोधका हेतु है ॥

॥ २१ ॥ शाब्दबोधके अकांक्षाआदिक चारिसहकारीका निरूपण ॥१४०-१५१॥

॥ १४० ॥ आकांक्षांकाज्ञान, २ योग्यता-

ज्ञान, ३ तात्पर्यज्ञान, औ ४ आसत्ति ये चार सहकारी हैं ॥

१ आकांक्षा नाम इच्छाका है सो यद्यपि चेतनमैं होवै है, तथापि पदके अर्थका जितनै काल पदार्थान्तरमैं अन्वयज्ञान होवै नहीं, इतनै काल अपनै अर्थके अन्वयवास्तै पदांतरकी इच्छा सदृश प्रतीति होवै है। अन्वयबोध हुया पाछे प्रतीति होवै नहीं । सो आकांक्षा कहिये हैं ॥ जैसैं "अयमेति पुत्रो राज्ञः पुरुषोऽपसार्यतां" कहिये"यह राजाका पुत्र आवै है।" ऐसैं राजपदार्थनका पुत्रपदार्थनसैं अन्वयबोध हुया पाछे पुरुषपदार्थमैं अन्वयबोधहेतु आकांक्षा राजपदार्थनमैं है नहीं। यातैं "राजाके पुरुषको निकासो" ऐसा बोध होवै नहीं । किंतु "पुरुषकूं निकासो" ऐसा बोध होवै है ॥ जो आकांक्षाज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं होवै तौ "राजाका पुत्र आवै है, राजाके पुरुषको निकासो" ऐसा बोध हुया चाहिये । यातैं आकांक्षाज्ञान शाब्दबोधका हेतु है ॥

॥ १४१ ॥ २ एकपदार्थका पदान्तरसैं सम्बन्धकूं योग्यता कहै हैं । जहां योग्यता नहीं होवै, तहां शाब्दबोध होवै नहीं । जैसैं "वह्निना सिंचति" या वाक्यमैं वह्निवृत्ति-करणतारूप तृतीयापदार्थनका सेचनपदार्थनमैं निरूपकतासम्बन्धरूप योग्यता है नहीं । यातैं शाब्दबोध होवै नहीं। जो शाब्दबोधमैं योग्यता हेतु नहीं होवै तौ " वह्निना सिंचति " या वाक्यतैं शाब्दबोध हुया चाहिये । यातैं योग्यताज्ञान शाब्दबोधका हेतु है ॥

॥१४२॥ ३ वक्ताकी इच्छाकूं तात्पर्य कहै हैं। जा अर्थमैं तात्पर्यज्ञान होवै नहीं, ताका शाब्दबोध होवै नहीं ॥

(१) जैसैं "सैंधवमानय"या वाक्यतैं भोजन समयमैं अश्वविषै वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्य संभवै नहीं, यातैं अश्वका शाब्दबोध होवै नहीं ।

(२)तैसैं गमनसमयमैं लवणका शाब्दबोध होवै नहीं ।

जो तात्पर्यज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं होवै तौ "सैंधवमानय" या वाक्यतैं भोजनसमयमैं अश्वका बोध औ गमनसमयमैं लवणका बोध हुया चाहिये । यातैं शाब्दबोधमैं तात्पर्यज्ञान हेतु है ॥ तैसैं--

॥ १४३ ॥ वेदांत जो वेदका अंतभाग उपनिषद् ताका तात्पर्य, अहेय अनुपादेय जो अद्वितीयब्रह्म ताके बोधमैं है । उपासना-विधिमैं तात्पर्य नहीं । काहेतैं ?

(१) लौकिकवाक्यका तात्पर्य तौ प्रकरणादिकनतैं जानिये है। सो प्रकरणादिक काव्यप्रकाश काव्यप्रदीपमैं लिखे हैं ॥ औ--

(२)वैदिकवाक्यके तात्पर्यज्ञानके हेतु उपक्रमोपसंहारादिक षट् हैं ॥ [१] उपक्रम उपसंहारकी एकरूपता । [२] अभ्यास । [३] अपूर्वता । [४] फल । [५] अर्थवाद औ [६] उपपत्ति । ये षट् वैदिकवाक्यके तात्पर्यके लिंग हैं । इनतैं वैदिकवाक्य-नका तात्पर्य जानिये है । यातैं तात्पर्यके लिंग कहिये हैं ॥ जैसैं धूमतैं वह्नि जानिये है। यातैं वह्निका लिंग धूम कहिये है। औ-

(३) उपनिषदनतैं भिन्न कर्मकांडबोधक वेदका तात्पर्य कर्मविधिमैं है । जैसैं उपक्रमोपसंहारादिक पूर्व वेदके कर्मविधिमैं हैं, तैसैं जैमिनिकृत द्वादशाध्यायीमैं स्पष्ट हैं॥ औ-

(४) उपनिषद्रूप वेदके उपक्रमोपसंहारादिक अद्वितियब्रह्ममैं हैं । यातैं अद्वितीयब्रह्ममैं तिनका तात्पर्य है ॥

॥१४४॥ [१]जैसैं छांदोग्यके षष्ठा-

ध्यायका उपक्रम कहिये आरंभमैं अद्वितीय ब्रह्म है औ उपसंहारक कहिये समाप्तिमैं अद्वितीय ब्रह्म है। जो अर्थ आरंभमैं होवै सोई समाप्तिमैं होवै तहां उपक्रमोपसंहारकी एकरूपता कहिये है।

॥१४५॥ [२] पुनः पुनः कथनका नाम **अभ्यास** है। छांदोग्यके षष्ठाध्यायमैं नववार "तत्त्वमसि" वाक्य है। यातैं अद्वितीय ब्रह्ममैं अभ्यास है।

॥ १४६ ॥ [३] प्रमाणांतरतैं अज्ञातताकूं **अपूर्वता** कहै है। उपनिषद्रूप शब्दप्रमाणतैं और प्रमाणका अद्वितीयब्रह्म विषय नहीं। यातैं अद्वितीयब्रह्ममैं अज्ञाततारूप अपूर्वता है।

॥ १४७ ॥ [४] अद्वितीयब्रह्मके ज्ञानतैं मूलसहित शोकमोहकी निवृत्ति फल कह्या है।

[५] स्तुति अथवा निंदाका बोधक वचन **अर्थवाद** कहिये है। अद्वितियब्रह्मबोधकी स्तुति उपनिषदनमैं स्पष्ट है॥

॥१४८॥ [६] कथन करे अर्थके अनुकूल युक्तिकूं **उपपत्ति** कहै हैं। छांदोग्यमैं सकलपदार्थनका ब्रह्मसैं अभेदकथनके अर्थ कार्यका कारणतैं अभेदप्रतिपादन अनेकदृष्टांतनसैं कह्या है।

॥ १४९ ॥ इस रीतिसैं षट्‌लिंगनतैं सकल-उपनिषदनका तात्पर्य अद्वितीयब्रह्ममैं है। सो उपनिषदनके व्याख्यामैं भगवान्‌भाष्यकारनै षट्‌लिंग स्पष्ट लिखे हैं। तिनतैं वेदांतवाक्यनका अद्वैतब्रह्ममैं तात्पर्य निश्चय होवै है॥

जा अर्थमैं वक्ताके तात्पर्यका ज्ञान होवै ता अर्थका श्रोताकूं शब्दसैं बोध होवै है। यातैं तात्पर्यज्ञान बी शाब्दबोधका हेतु है॥ औ--

॥ १५० ॥ ४ योग्यपदनके शक्ति वा लक्षणावृत्तिरूप सम्बन्धतैं व्यवधानरहित पदार्थनकी स्मृति **आसत्ति** कहिये है। इस रीतिकी आसत्ति स्वरूपसैं शाब्दबोधकी हेतु है। ताका ज्ञान हेतु नहीं॥

याप्रकारतैं आकांक्षाज्ञान, योग्यताज्ञान, तात्पर्यज्ञान, औ आसत्ति ये शाब्दबोधके हेतु हैं। इन चारिकूं शाब्दसामग्री कहै हैं॥

॥ १५१ ॥ इस रीतिसैं-

१ इहां शक्ति वा लक्षणासहित शब्दका ज्ञान प्रमाका करण होनैतैं प्रमाण है। औ-

२ पदार्थनकी स्मृति तिसतैं उपजिके शाब्दीप्रमाकूं जनै है। यातैं व्यापार है। औ-

३ शाब्दीप्रमा फल है॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां शब्दप्रमाणनिरूपणं नाम पंचमं रत्नं समाप्तम्॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठरत्नप्रारम्भः ॥६॥

॥५॥ अर्थापत्तिप्रमाणनिरूपण॥१५२-१६२॥

॥ २२ ॥ अर्थापत्तिप्रमा औ प्रमाणके स्वरूपका निर्द्धार ॥१५२-१५३॥

॥ १५२ ॥ अर्थापत्तिप्रमाके करणकूं **अर्थापत्तिप्रमाण** कहै हैं। जैसैं प्रमाण प्रमाका बोधक प्रत्यक्ष शब्द है। तैसैं अर्थापत्तिशब्द बी प्रमाण औ प्रमा दोनूंका बोधक है॥

॥१५३॥ उपपादक कल्पनका हेतु उपपाद्य ज्ञानकूं **अर्थापत्तिप्रमाण** कहै हैं॥

उपपादकज्ञानकूं **अर्थापत्तिप्रमा** कहै हैं।

उपपादक संपादक पर्यायशब्द हैं॥

उपपाद्य संपाद्य पर्यायशब्द हैं।

१ जिस विना जो संभवै नहीं, तिसका सो उपपाद्य कहिये है। जैसैं रात्रिभोजन विना

दिवाअभोजीपुरुषमैं स्थूलता संभवै नहीं। यातैं रात्रिभोजनका स्थूलता उपपाद्य है ॥

२ जिसके अभावसैं जाका अभाव होवै, सो ताका उपपादक कहिये है । जैसैं रात्रिभोजनके अभावसैं स्थूलताका दिवाअभोजीकूं अभाव होवै है। यातैं रात्रिभोजन स्थूलताका उपपादक है।

१ इस रीतिसैं उपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतैं उपपादककी कल्पना अर्थापत्तिप्रमा कहिये है।

२ उपपादक कल्पनाका हेतु उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण कहिये है।

'अर्थ कहिये उपपादकवस्तु, ताकी आपत्ति कहिये कल्पना' या अर्थसैं अर्थापत्तिशब्द प्रमाका बोधक है औ अर्थकी कल्पना जिसतैं होवै सो उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञानरूप प्रमाण अर्थापत्तिशब्दका अर्थ है ॥

॥ २३ ॥ अर्थापत्तिप्रमाके भेद ॥ १५४--१५७ ॥

॥ १५४ ॥ सो अर्थापत्ति १ दृष्टार्थापत्ति औ २ श्रुतार्थापत्ति भेदतैं दो प्रकारकी है।

१ जहां दृष्टउपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतैं उपपादककी कल्पना होवै तहां दृष्टार्थापत्ति कहिये है । जैसैं दिवाअभोजीस्थूलमैं रात्रिभोजनका ज्ञान दृष्टार्थापत्ति है। काहेतैं ? उपपाद्यस्थूलता सा दृष्ट है ॥

॥ १५५ ॥ २ जहां श्रुतउपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतैं उपपादककी कल्पना होवै तहां श्रुतार्थापत्ति कहिये है । जैसैं " गृहे असद्देवदत्तो जीवति" या वाक्यकूं सुनिके गृहसैं बाह्यदेशमैं देवदत्तकी सत्ता विना गृहमैं असद्देवदत्तका जीवन बनै नहीं। यातैं गृहमैं असद्देवदत्तके जीवनकी अनुपपत्तिसैं देवदत्तकी गृहतैं बाह्यसत्ता कल्पना करिये है। तहां गृहमैं असत्देवदत्तका जीवन दृष्ट नहीं, किंतु श्रुत है ॥

१ श्रुतअर्थकी अनुपपत्तिसैं उपपादककी कल्पना श्रुतार्थापत्तिप्रमा कहिये है।

२ ताका हेतु श्रुतअर्थकी अनुपपत्तिका ज्ञान श्रुतार्थापत्तिप्रमाण कहिये है। इहां गृहमैं असद्देवदत्तका जीवन उपपाद्य है। गृहतैं बाह्यसत्ता उपपादक है।

॥ १५६ ॥ १ अभिधानानुपपत्ति औ २ अभिहितानुपपत्ति भेदतैं श्रुतार्थापत्ति दो प्रकारकी है ॥

१ "द्वारं" अथवा "पिधेहि" इत्यादिस्थलमैं जहां वाक्यका एकदेश उच्चारित होवै, एकदेश उच्चारित नहीं होवै, तहां श्रुतपदके अर्थके अन्वययोग्यअर्थका वा अनन्वययोग्यअर्थका बोधक जो पद ताका अध्याहार होवै है । सो अर्थके वा पदके अध्याहारका ज्ञान अन्यप्रमाणतैं संभवै नहीं, अर्थापत्तिप्रमाणतैं होवै है। इहां अभिधानानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति है । काहेतैं ? एकपदार्थका इष्टपदार्थांतरसैं अन्वयबोधमैं वक्ताके तात्पर्यकूं अभिधान कहै हैं। "द्वारं" अथवा "पिधेहि" इतना कहै, तहां "द्वारकूं ढांको" यह बोध श्रोताकूं होवै ऐसा वक्ताका तात्पर्यरूप अभिधान है। यातैं अभिधानानुपपत्ति कहिये है ॥ इहां—

(१) अर्थ अथवा शब्दका अध्याहार उपपादक है। औ—

(२) पूर्वउक्त तात्पर्य उपपाद्य है।

॥ १५७ ॥ २ जहां सारे वाक्यका अर्थ अन्यअर्थकल्पन विना अनुपपन्न होवै, तहां

अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति है॥ जैसें "स्वर्गकामो यजेत" या वाक्यका अर्थ अपूर्वकल्पन विना अनुपपन्न है । यातें अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थानुपपत्ति है ॥ इहां—

(१) यागकूं स्वर्गसाधनता उपपाद्य है। ताकी अनुपपत्तिसें उपपादकअपूर्वकी कल्पना है ।

(२) अंतकी आहुतिकूं याग कहै हैं ॥

(३) सुखविशेषकूं स्वर्ग कहै हैं ।

(४) कर्मजन्यसंस्काररूप अदृष्टकूं अपूर्व कहै हैं ॥ औ—

स्वर्गसाधनता दृष्ट नहीं, किंतु श्रुत है। यातें श्रुतार्थापत्ति है ॥

॥ २४ ॥ अर्थापत्तिप्रमाका जिज्ञासुकूं उपयोग ॥१५८--१६२॥

॥ १५८ ॥ श्रुतार्थापत्तिका जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरणः—"तरति शोकमात्मवित्' यह है । इहां ज्ञानतें शोककी निवृत्ति श्रुत है । ताकी शोकमिथ्यात्व विना अनुपपत्ति है। यातें ज्ञानतें शोककी निवृत्ति अनुपपत्तिसें बंधमिथ्यात्वकी कल्पना होवे है ॥ बंधमिथ्यात्व उपपादक है। ज्ञानतें शोकनिवृत्ति उपपाद्य है। सो दृष्ट नहीं । किन्तु श्रुत है । यातें श्रुतार्थापत्ति है ॥ तैंसें—

॥ १५९ ॥ महावाक्यनमैं जीवब्रह्मका अभेद श्रवण होवै है, सो औपाधिकभेद होवै तौ संभवै। स्वरूपसें भेद होवै तौ संभवै नहीं। यातें जीवब्रह्मके अभेदकी अनुपपत्तिसें भेदका औपाधिकत्वज्ञान अर्थापत्तिप्रमाणजन्य है।

१ इहां जीवब्रह्मका अभेद उपपाद्य है।

२ भेदमैं औपाधिकता उपपादक है।

१ सारे उपपाद्यज्ञान प्रमाण हैं ।

२ उपपादकज्ञान प्रमा है ॥

इहां जीवब्रह्मका अभेद विद्वान्कूं दृष्ट है । अन्यकूं श्रुत है । यातैं दृष्टार्थापत्ति औ श्रुतार्थापत्ति दोनूंका उदाहरण है।

॥ १६० ॥ तैसें रजतके अधिकरण शुक्तिमैं रजतका निषेध दृष्ट है । सो रजतके मिथ्यात्व विना संभवै नहीं । यातैं निषेधकी अनुपपत्तिसें रजतमिथ्यात्वकी कल्पना होवे है । यह दृष्टार्थापत्तिका उदाहरण है ॥ है ॥ इहां--

१ रजतनिषेध उपपाद्य है औ—

२ मिथ्यात्व उपपादकहै ॥

॥ १६१ ॥ मनके विलयसैं अनंतर निर्विकल्पसमाधिकालमैं अद्वितीयब्रह्ममात्र शेष रहै है। सकलअनात्मवस्तुका अभाव होवै है। सो अनात्मवस्तु मानस होवै तौ मनके विलयतैं ताका अभाव संभवै । जो मानस नहीं होवै तौ मनके विलयतैं अभाव होवै नहीं । काहेतैं ? अन्यके विलयतैं अन्यका अभाव होवै नहीं। यातैं मनके विलयतैं सकलद्वैताभावकी अनुपपत्तिसैं सकलद्वैत मनोमात्र है । यह कल्पना होवै है ॥ इहां--

१ मनके विलयतैं सकलद्वैतका विलय उपपाद्य है।

२ ताका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण है ।—

३ सकलद्वैतकूं मानसता उपपादक है ।

४ ताका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमा है ।

॥ १६२ ॥ या स्थानमैं उपपादकप्रमा असाधारणकारण अर्थापत्तिप्रमाण है ॥ सो निर्व्यापार है तौ बी तामैं उपपादकप्रमाकी कारणता संभवै है । यह उपमाननिरूपणमैं कह्या है ॥

इति वृत्तिरत्नावल्यां षष्ठं रत्नम्।

॥ अथ सप्तमरत्नप्रारंभः ॥ ७ ॥

॥६॥अनुपलब्धिप्रमाणनिरूपणम्॥ १६३-१८१

॥ न्यायशास्त्रकी रीतिसैं अभावके स्वरूपका निर्द्धार ॥ १६३--१६९ ॥

॥ १६३॥ अभावकी प्रमाके असाधारण-कारणकूं **अनुपलब्धिप्रमाण** कहै हैं ।

१ प्राचीननैयायिक, निषेधमुखप्रतीतिके विषयकूं **अभाव** कहै हैं । औ—

२ नवीननैयायिक संबंध सादृश्यतैं भिन्न होवै औ प्रतियोगिसापेक्षप्रतीतिका विषय होवै, ताकूं **अभाव** कहै हैं ॥

प्रतियोगिसापेक्षप्रतीतिके विषय तौ संबंध औ सादृश्य वी हैं, सो तातैं भिन्न नहीं । तातैं भिन्न तौ और वी हैं । सो प्रतियोगिसापेक्ष-प्रतीतिके विषय नहीं । किंतु प्रतियोगिनिरपेक्ष-प्रतीतिके विषय हैं यातैं अभावके लक्षणकी कहुं वी अतिव्याप्ति नहीं ॥

॥ १६४ ॥ सो अभाव दो प्रकारका है:— १ एक अन्योन्याभाव औ २ दूसरा संसर्गाभाव है । तिनमैं अन्योन्याभाव तौ एकविध ही है ॥ संसर्गाभावके चारि भेद हैं (१) एक प्राग-भाव है (२) प्रध्वंसाभाव है (३) सामयिका-भाव है औ (४) अत्यंताभाव है ॥

॥ १६५ ॥ १ अभेदके निषेधक अभावकूं **अन्योन्याभाव** कहै हैं ॥

वा अत्यंताभावसैं भिन्न उत्पत्ति औ नाशतैं शून्य अभावकूं **अन्योन्याभाव** कहै हैं । ताहीकूं **भेद** औ **भिन्नता** औ **अतिरिक्तता** औ **जुदापना** वी कहै हैं ॥

(१) उत्पत्तिशून्य तौ प्रागभाव वी है, सो नाशशून्य नहीं ।

(२) नाशशून्य तौ प्रध्वंसाभाव वी है । सो उत्पत्तिशून्य नहीं ।

(३) उत्पत्तिनाशशून्य तौ आत्मा वी है । सो अभावरूप नहीं । किंतु भावरूप है ।

(४) उत्पत्तिनाशशून्य अभावरूप तौ अत्यंताभाव वी है, सो अन्योन्या-भावरूप नहीं । किंतु तातैं भिन्न है ॥

"घटः पटो न" ऐसा कहनैसैं घटमैं पटके अभेदका निषेध होवै है । यातैं घटमैं पटके अभेदका निषेधक घटमैं पटका अन्योन्या-भाव है ॥

॥ १६६ ॥ २ तासैं भिन्न अभाव । ताकूं **संसर्गाभाव** कहै हैं ॥

(१) अनादि सांत जो अभाव, सो **प्रागभाव** कहिये है । अपने प्रतियोगीके उपादानकारणमैं प्रागभाव रहै है । जैसैं घटके प्रागभावका प्रतियोगी घट है । ताके उपादान-कारण कपालमैं घटका प्रागभाव रहै है । सो अनादि कहिये उत्पत्तिरहित है औ सांत कहिये अंतवाला है ।

[१] अनादिअभाव तौ अत्यंताभाव वी है, सो सांत नहीं ।

[२] सांत अभाव तौ सामयिकाभाव वी है, सो अनादि नहीं । औ—

[३] वेदांतसिद्धांतमैं अनादि औ सांत माया है, सो अभाव नहीं । किंतु जगत्का उपादानकारण होनैतैं सत्असत्तैं विलक्षण अनिर्वचनीय भावरूप माया है ॥

॥ १६७ ॥ (२) सादिअनंत जो अभाव, सो **प्रध्वसाभाव** कहिये है । जैसैं मुद्गरादिक-नतैं घठादिकनका ध्वंस होवै है ॥

[१] अनंतअभाव तौ अत्यताभाव बी है सो सादि नहीं ।

[२] सादिअभाव तौ सामयिकाभाव बी है, सो अनंत नहीं ।

[३] सादिअनंत तौ मोक्ष बी है । काहेतैं ?

(क) ज्ञानतैं मोक्ष होवै है । यातैं सादि है औ

(ख) मुक्तकूं फेरि संसार होवै नहीं । यातैं अनंत है ।

परंतु मोक्ष अभावरूप नहीं । किंतु भावरूप है ॥

यद्यपि अज्ञान औ तिसके कार्यकी निवृत्तिकूं **मोक्ष** कहै हैं । निवृत्ति नाम **ध्वंसका** है । यातैं मोक्ष बी अभावरूप है। **तथापि** कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है ॥ अज्ञान औ ताका कार्य कल्पित है । यातैं तिन्हकी निवृत्ति अधिष्ठानब्रह्मरूप है । यातैं अभावरूप मोक्ष नहीं । किंतु ब्रह्मरूप होनैतैं भावरूप है ॥

॥ १६८ ॥ (३) उत्पत्ति औ नाशवाला जो अभाव, सो **सामयिकाभाव** कहिये है ॥ जहां किसी कालमैं पदार्थ होवै औ किसी कालमैं न होवै, तहां पदार्थशून्यकालमैं ।तिसपदार्थका **सामयिकाभाव** होवै है ॥ जैसैं भूतलादिकनमैं घटादिक किसी कालमैं होवै हैं औ किसी कालमैं नहीं होवैं । तहां घटशून्यकालसंबंधी भूतलादिकनमैं घटादिकनका **सामायिकाभाव** है ॥

समयविशेषमैं उपजै औ समयविशेषमैं नष्ट होवै, सो **सामयिकाभाव** कहिये है ॥ भूतलसैं घटकूं अन्यदेशमैं लेजावैं तब घटका अभाव भूतलमैं उपजे है औ तिसी भूतलमैं घटकूं ले आवैं तब घटका अभाव भूतलमैं नष्ट होवै है ॥ इस रीतिसैं सामयिकाभाव उत्पत्तिनाशवाला है ॥

[१] उत्पत्तिवाला तौ प्रध्वसाभाव बी है । सो नाशवाला नहीं ।

[२] नाशवाला तौ प्रागभाव बी है, सो उत्पत्तिवाला नहीं ।

[३] उत्पत्तिनाशवाले तौ घटादिकभूतभौतिक अनेकपदार्थ हैं सो अभावरूप नहीं । किंतु **विधिमुखप्रतीति** कहिये अस्तिप्रतीतिके विषय होनैतैं भावरूप हैं ॥

॥ १६९ ॥ (४) अन्योन्याभावसैं भिन्न जो उत्पत्तिशून्य औ नाशशून्य अभाव, सो **अत्यंताभाव** कहिये है ॥

जहां किसी कालमैं जो पदार्थ न होवै तहां तिस पदार्थका **अत्यंताभाव** कहिये है ॥ जैसैं वायुमैं रूप औ गंध किसी कालमैं नहीं होवै हैं, तहां रूप औ गंधका **अत्यंताभाव** है । आत्मामैं रूप, रस, गंध, स्पर्श औ शब्द कदी बी रहैं नहीं । यातैं रूपादिकनके **अत्यंताभाव** आत्मामैं रहै हैं ॥

[१] उत्पत्तिशून्य तौ प्रागभाव बी है, सो नास शून्य नहीं ।

[२] नाशशून्य तौ प्रध्वंसाभाव बी है । सो उत्पत्तिशून्य नहीं ।

[३] उत्पत्तिनाशशून्य ब्रह्म बी है, सो अभावरूप नहीं । किंतु भावरूप है ।

[४] उत्पत्तिनाशशून्य अभावरूप तौ अन्योन्याभाव बी है । सो अन्योन्याभावसैं भिन्न नहीं ॥

॥ २३ ॥ उक्तअभावके स्वरूपमैं वेदांतसैं विरुद्धअंशका प्रदर्शन ॥ १७०--१७८ ॥

॥ १७० ॥ इस रीतिसैं अभावका कथन

न्यायशास्त्रकी रीतिसैं किया । यामैं जितना अंश वेदांतसैं विरुद्ध है, सो संक्षेपतैं दिखावै हैंः-

१ कपालमैं घटके प्रागभावकूं अनादि कहै हैं, सो प्रमाणविरुद्ध है। यातैं वेदांतके अनुसारी नहीं। काहेतैं? घटप्रागभावका अधिकरण सादि है औ प्रतियोगी घट बी सादि है। प्रागभावकूं अनादिता किस रीतिसैं होवै? औ-

मायामैं सकलकार्यके प्रागभावकू अनादिता कहैं तौ संभव है। काहेतै? माया अनादि है। परंतु मायामैं कार्यका प्रागभाव मानना व्यर्थ है औ सिद्धांतमैं इष्ट बी नहीं। यातैं प्रागभाव सादिसांत है।

॥१७१॥ २ तैसैं नैयायिकमतमैं प्रध्वंसाभाव बी अपनै प्रतियोगीके उपादानमैं ही रहै है। यातैं घटका ध्वंस कपालमात्रवृत्ति है सो अनंत है। यह कथन असंगत है॥ घटध्वंसका अधिकरण जो कपाल, ताके नाशतैं घटध्वंसका नाश होनैतैं प्रध्वंसाभाव बी सादिसांत है।

॥१७२॥ ३ तैसैं अन्योन्याभाव बी सादिसांतअधिकरणमैं सादिसांत है। जैसैं घटमैं पटका अन्योन्याभाव है। ताका अधिकरण घट है। सो सादि है औ सांत है। यातैं घटवृत्ति पटान्योन्याभाव बी सादिसांत है॥ अनादिअधिकरणमैं अन्योन्याभाव अनादि है। परंतु अनादि बी सांत है। अनंत नहीं॥

॥ १७३ ॥ जैसैं ब्रह्ममैं जीवका भेद है, सो जीवका अन्योन्याभाव है। ताका अधिकरण ब्रह्म है। सो अनादि है। यातैं-

(१) ब्रह्ममैं जीवका भेदरूप अन्योन्याभाव अनादि है औ-

(२) ब्रह्मज्ञानसैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा भेदका अंत होवै है। यातैं सांत है॥

॥१७४॥ अनादिपदार्थकी बी ज्ञानसैं निवृत्ति अद्वैतवादमैं इष्ट है। इसीवास्तै शुद्धचेतन, जीव, ईश्वर, अविद्या, अविद्याचेतनका संबंध औ अनादिका परस्पर भेद, ये षट्पदार्थ अद्वैतमतमैं स्वरूपसैं अनादि कहे हैं औ शुद्धचेतन विना पांचकी ज्ञानसैं निवृत्ति मानै हैं। यामैं-

॥ १७५ ॥ यह शंका होवै हैः-जीवईश्वरकूं अद्वैतवादमैं मायिक कहै हैं। मायाका कार्य मायिक कहिये है। जीव ईश मायाके कार्य हैं औ अनादि हैं। यह कहना विरुद्ध है। ता शंकाका--

॥ १७६ ॥ यह समाधान हैः-जीवईश मायाके कार्य हैं। यह मायिकपदका अर्थ नहीं है। किंतु मायाकी स्थितिके अधीन स्थिति है। मायाकी स्थिति विना जीवईशकी स्थिति होवै नहीं। यातैं मायिक हैं औ मायाकी न्यांई अनादि हैं। इस रीतिसैं अनादिअन्योन्याभाव बी सांत है।अन्योन्याभाव अनंत नहीं॥

॥ १७७ ॥ ४ तैसैं अत्यंताभाव बी आकाशादिकनकी न्यांई अविद्याका कार्य है औ विनाशी है।

इस रीतिसैं अद्वैतवादमैं सारे अभाव विनाशी हैं। कोई अभाव नित्य नहीं॥ औ अद्वैतवादमैं अनात्मपदार्थ सारे मायाके कार्य हैं। यातैं आत्मभिन्नकूं नित्यता संभवै नहीं॥ जैसैं घटादिक भावपदार्थ मायाके कार्य हैं, तैसैं अभाव बी मायाके कार्य हैं। यातैं मिथ्या हैं॥ औ-

॥ १७८ ॥ कोई ग्रंथकार अद्वैतवादी एक अत्यंताभावकूं मानै है। और अभावकूं अलीक कहै है॥ अलीक नाम जूठका है॥

१ जैसैं घटका प्रागभाव कपालमैं कहै हैं, सो अलीक है। काहेतैं?घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वकालसंबंधी कपाल ही "घटो भविष्यति" या प्रतीतिका विषय है॥ घटका प्रागभाव अप्रसिद्ध है॥

२ तैसैं मुद्गरादिकनतैं चूर्णीकृतकपाल अथवा विभक्तकपालतैं पृथक् घटध्वंस बी अप्रसिद्ध है ॥

३ तैसैं घट संबंधी भूतल ही घटका सामयिकाभाव है। घट होवै तब घटका संबंधी भूतल है। यातैं घटासंबंधी भूतल नहीं। इस रीतिसैं सामयिकाभाव अधिकरणसैं पृथक् नहीं ॥

४ तैसैं घटमैं पटके भेदकूं घटवृत्ति पटान्योन्याभाव कहै हैं। सो दोनूंके अभेदका अत्यंताभावरूप है। दो पदार्थनके अभेदात्यंताभावसैं पृथक् अन्योन्याभाव अप्रसिद्ध है ॥

इस रीतितैं एकं अत्यंताभाव है और कोई अभाव नहीं। इस रीतिसैं अभावके निरूपणमैं बहुत विचार है, ग्रंथवृद्धिभयतैं रीति मात्र जनाई है ॥

॥ २७ ॥ सामग्रीसहित अभावप्रमा औ ताके जिज्ञासुकूं उपयोगके कथनपूर्वक प्रमावृत्तिका उपसंहार॥ १७९-१८६ ॥

॥१७९॥ इस रीतिसैं उक्त जो अभाव,ताका प्रमाज्ञान होवै। तहां अभावप्रमाका असाधारणकारणरूप जो प्रतियोगीका अनुपलंभ सो करण होनैतैं प्रमाण है ॥

उपलंभ नाम ज्ञानका हैं। ताहीकूं प्रतीति औ उपलब्धि बी कहै हैं।ताके अभावकूं अनुपलंभ औ अनुपलब्धि कहै हैं॥

उपमान औ अर्थापत्तिकी न्यांई याका बी व्यापार नहीं है। यातैं इहां बी करणलक्षणमैं व्यापारवत्पदका प्रवेश नहीं। किंतु व्यापारभिन्नपदका प्रवेश है॥

इस प्रकार अनुपलब्धिप्रमाण है। औ अनुपलब्धिप्रमा फल है। ताहीकूं अभावप्रमा बी कहै हैं ॥

॥ १८० ॥ अनुपलब्धिनिरूपणका जिज्ञासुकूं यह उपयोग हैः—

"नेह नानाऽस्ति" इत्यादिक श्रुति प्रपंचका त्रैकालिकअभाव कहै हैं। अनुभवसिद्ध प्रपंचका त्रैकालिक अभाव बनै नहीं। यातैं प्रपंचका स्वरूपसैं निषेध नहीं करै है॥ किंतु प्रपंच पारमार्थिक नहीं। यातैं पारमार्थिकत्वविशिष्टप्रपंचका त्रैकालिक अभाव श्रुति कहै है॥ इस रीतिसैं पारमार्थिकत्वविशिष्टप्रपंचका अभाव श्रुतिसिद्ध है औ——

२ अनुपलब्धिप्रमाणतैं बी सिद्ध है। जो पारमार्थिकत्वविशिष्टप्रपंच होता तौ जैसैं प्रपंचकी स्वरूपसैं उपलब्धि होवै है, तैसैं पारमार्थिकप्रपंचकी बी उपलब्धि होती औ स्वरूपसैं तौ प्रपंचकी उपलब्धि होवै है। पारमार्थिकरूपतैं प्रपंचकी उपलब्धि होवै नहीं। यातैं पारमार्थिकत्वविशिष्टप्रपंचका अभाव है॥

इस रीतिसैं प्रपंचाभावका ज्ञान अनुपलब्धिसैं होवै है। और बी अनेकअभावका ज्ञान जिज्ञासुकूं इष्ट है। ताका हेतु अनुपलब्धिप्रमाण है॥

॥ १८१ ॥ इस रीतिसैं संक्षेपतैं ईश्वरआश्रित औ सप्रमाणप्रत्यक्षादि षट्प्रकारकी जीवाश्रित भेदतैं दो भांतिकी प्रमा कही। सो स्मृतिसैं भिन्न यथार्थवृत्तिज्ञानरूप है॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्याम् अनुपलब्धिप्रमाणनिरूपणं नाम सप्तमं रत्नं समाप्तम् ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टमरत्नप्रारंभः ॥८॥

॥१॥ अप्रमावृत्तिके भेद अनिर्वचनीयख्याति-निरूपण ॥

॥ २८ ॥ यथार्थअप्रमाके भेदका कथन ॥१८२–१८६॥

॥ १८२ ॥ अप्रमावृत्ति बी यथार्थ अयथार्थ भेदतैं दो प्रकारकी है। स्मृतिरूप अंतःकरणकी वृत्तिकूं यथार्थअप्रमा कहै हैं। सो स्मृति बी १ यथार्थ औ २ अयथार्थ भेदतैं दो प्रकारकी है ॥ तिनमैं—

॥१८३॥ १ यथार्थस्मृति दो प्रकारकी है। (१) एक आत्मस्मृति है औ (२) दूसरी अनात्मस्मृति है ॥

(१) तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्य अनुभवतैं आत्मतत्त्वकी स्मृति यथार्थआत्मस्मृति है ॥

(२) व्यावहारिकप्रपंचका मिथ्यात्वअनुभव हुया ताके संस्कारतैं मिथ्यात्वरूपतैं प्रपंचकी स्मृति, यथार्थअनात्मस्मृति है ॥

॥ १८४ ॥ २ तैसैं अयथार्थस्मृति बी दो प्रकारकी है। (१) एक आत्मगोचर है औ (२) अनात्मगोचर है ॥

(१) अहंकारादिकनमैं आत्मत्वभ्रमरूप अनुभवके संस्कारतैं अहंकारादिकनमैं आत्मत्वकी स्मृति औ आत्मामैं कर्तृत्व अनुभवके संस्कारतैं "आत्मा कर्त्ता है" यह स्मृति। दोनूं आत्मगोचरअयथार्थस्मृति हैं ॥ औ—

(२) प्रपंचमैं सत्यत्वभ्रमके संस्कारतैं "प्रपंच सत्य है" यह स्मृति अनात्मगोचरअयथार्थस्मृतिहै॥

॥१८५॥ यद्यपि संसारदशामैं जा ज्ञानके विषयका बाध न होवै, वा प्रमाताके होते जा ज्ञानके विषयका बाध न होवै, सो यथार्थज्ञान कहिये है ॥ यातैं उक्तस्मृति अप्रमा है तौ बी यथार्थ ही कही। फेर ताहीकूं अयथार्थ कहना असंभव है ॥

॥ १८६ ॥ तथापि इहां उक्त स्मृतिकूं परमार्थदृष्टिसैं तौ अयथार्थता है औ उक्तलक्षणके अनुसार संसारदृष्टिसैं यथार्थता होनैतैं आपेक्षिकयथार्थता बी है। यातैं उक्त स्मृतिकूं यथार्थअप्रमा कहनैमैं असंभवदोष नहीं॥

इस रीतिसैं यथार्थअप्रमा कही ॥

॥२९॥ अयथार्थअप्रमाके भेद । संशय औ भ्रमका निर्द्धार॥१८७–१९७ ॥

॥१८७॥ अयथार्थअप्रमा बी दो प्रकारकी है। १ एक स्मृतिरूप आविद्याकी वृत्ति है औ २ दूसरी अनुभवरूप है ॥

॥ १८८ ॥ १ उद्भूतसंस्कारमात्रजन्यज्ञानकूं स्मृति कहै हैं ॥

(१) ज्ञान तौ अन्य बी है। सो संस्कारजन्य नहीं।

(२) संस्कारजन्य तौ प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष बी है। संस्कारमात्रजन्य नहीं॥

(३) अनुभवके बाध हुये उपज्या जो स्मृतिका हेतु भावना नाम संस्कार, सो तो निरंतर रहै है। यातैं सदा स्मृति हुई चाहिये। परंतु सो संस्कार उद्भूत नहीं। किंतु अनुद्भूत है।

यातैं कहुं अतिव्याप्ति नहीं ॥

सो स्मृति (१) यथार्थ औ (२) अयथार्थभेदतैं दो प्रकारकी है।

(१) यथार्थअनुभवजन्य स्मृति यथार्थ है। सो पूर्व ही कही। औ—

(२) अयथार्थ अनुभवजन्य स्मृति अयथार्थ है सो अयथार्थ अप्रमाके अंतर्भूत है ॥

अनुभवमैं यथार्थता अबाधितअर्थकृत है ॥ अबाधितअर्थविषयक अनुभव यथार्थ कहिये है। प्रमा कहिये है । यातैं अबाधितअर्थके आधीन अनुभवमैं यथार्थता है औ स्मृतिमैं यथार्थता औ अयथार्थता अनुभवके आधीन है।

॥ १८९ ॥ २ स्मृतिसैं भिन्न जो ज्ञान, ताकूं अनुभव कहै हैं ॥ सो बी (१) यथार्थ (२)अयथार्थभेदतैं दो प्रकारका है ॥

(१)यथार्थानुभव तौ पूर्व कह्या ।

(२)अयथार्थअनुभव बी संशय अरु निश्चय औ तर्कभेदतैं तीन प्रकारका है॥

अयथार्थकूं ही भ्रम औ भ्रांति औ अध्यास कहै हैं ॥

॥१९०॥ संशय निश्चयरूप भ्रम अनर्थका हेतु है । यातैं निवर्तनीय है ॥ जिज्ञासुकूं निवर्तनीय जो भ्रम, ताके भेद कहै हैंः—

एकधर्मीमैं विरुद्ध नानाधर्मका ज्ञान, संशय कहिये है। सो संशय दो प्रकारका है॥ १ एक प्रमाणसंशय है औ २ दूसरा प्रमेय-संशय है ॥

१ प्रमाणगोचरसंदेह प्रमाणसंशय कहिये है । ताहीकूं प्रमाणगतअसंभावना कहै हैं ॥ "वेदांतवाक्य अद्वितीयब्रह्मविषै प्रमाण हैं वा नहीं हैं" यह प्रमाणसंशय है ॥ ताकी निवृत्ति शारीरकके प्रथमाध्यायके पठनसैं वा श्रवणतैं होवै है ॥

२ प्रमेयसंशय बी आत्मसंशय औ अनात्मसंशय भेदतैं दो प्रकारका है ॥

अनात्मसंशय अनंतविध है। ताके कहनेसैं उपयोग नहीं ॥

॥ १९१॥ आत्मसंशय बी अनेक प्रकारका है ॥

१ आत्मा ब्रह्मसैं अभिन्न है अथवा भिन्न है ?

२ अभिन्न होवै तौ बी सर्वदा अभिन्न है अथवा मोक्षकालमैं हीं अभिन्न होवै है। सर्वदा अभिन्न नहीं ?

३ सर्वदा अभिन्न होवै तौ बी आनंदादिक ऐश्वर्यवान् है अथवा आनंदादिकरहित है?

४ आनंदादिकऐश्वर्यवान् होवै तौ बी आनंदादिक गुण हैं अथवा ब्रह्मात्माका स्वरूप है ?

इसतैं आदिलेके "तत्" पदार्थभिन्न "त्वं" पदार्थविषै अनेक प्रकारका संशय है ॥

॥ १९२ ॥ १ तैसैं केवल "त्वं" पदार्थ-गोचरसंशय बी आत्मगोचरसंशय है ॥

(१) आत्मा देहादिकनतैं भिन्न है वा नहीं ?।

(२) भिन्न कहै तौ बी अणुरूप है वा मध्यपरिमाण है वा विभुपरिमाण है ?

(३) जो विभु कहैं तौ बी कर्त्ता है अथवा अकर्त्ता है ?

(२) अकर्त्ता कहै तौ बी परस्परभिन्न अनेक हैं अथवा एक है ?

इस रीतिके अनेक संशय केवल "त्वं" पदार्थगोचर है ॥

॥ १९३ ॥ २ तैसैं केवल "तत्" पदार्थ-गोचर बी अनेक प्रकारके संशय हैं ॥

(१) वैकुंठादिलोकविशेषवासी ईश्वर परि-च्छिन्नहस्तपादादिकअवयवसहित शरीरी है अथवा शरीररहित विभु है?

(२) जो शरीररहित विभु कहैं तौ बी परमाणुआदिक सापेक्ष जगत्का कर्त्ता है अथवा निरपेक्ष कर्त्ता है ?

(३) परमाणुआदिक निरपेक्ष कर्त्ता कहैं तौ बी केवलकर्त्ता है अथवा अभिन्ननिमित्तोपादानरूप कर्त्ता है ?

(४) जो अभिन्ननिमित्तउपादान कहै तौ बी प्राणिकर्मनिरपेक्ष कर्त्ता होनैतैं विषमकारितादिक दोषवाला है अथवा प्राणिकर्मसापेक्षकर्त्ता होनैतैं विषमकारितादिकदोषरहित है ?

इसतैं आदि अनेक प्रकारके "तत्" पदार्थ गोचरसंशय हैं सो सकल संशय प्रमेयसंशय कहिये हैं ॥

॥ १९४ ॥ तिनकी निवृत्ति मननसैं होवै है शारीरके द्वितीयाध्यायके अध्ययनसैं वा श्रवणतैं मनन सिद्ध होवै है,तासैं प्रमेयसंशयकी निवृत्ति होवै है ॥

॥ १९५ ॥ ज्ञानसाधनका संशय औ मोक्षसाधनका संशय बी प्रमेयसंशय है । काहेतैं? प्रमाके विषयकूं प्रमेय कहै हैं । ज्ञानसाधन मोक्षसाधन बी प्रमाके विषय होनैतैं प्रमेय हैं । यातैं ज्ञानसाधनका संशय औ मोक्षसाधनका संशय बी प्रमेयसंशय है ॥ ताकी निवृत्ति शारीरकके तृतीयअध्यायसैं होवै है॥तैसैं—

॥ १९६ ॥ मोक्षके स्वरूपका संशय बी प्रमेयसंशय है । ताकी निवृत्ति शारीरकके चतुर्थअध्यायसैं होवै है ॥

॥ १९७ ॥ यद्यपि शारीरककै चतुर्थअध्यायमैं प्रथम साधनविचार ही है । उत्तर फलविचार है । मोक्षकूं फल कहै हैं । तथापि

१ चतुर्थाध्यायमैं साधनाविचार जितनैमैं है, उतनै चतुर्थाध्यायसहित तृतीयाध्यायसैं साधनसंशयकी निवृत्ति होवै है ॥

२ शिष्टचतुर्थाध्यायसैं फलसशयकी निवृत्ति होवै है ॥

इस रीतिसैं संशयरूप भ्रमका निरूपण किया ॥

॥ ३० ॥ अयथार्थअप्रमाके भेद निश्चयरूप भ्रमज्ञानका निर्द्धार॥१९८—२०९॥

॥ १९८ ॥ निश्चयरूप भ्रम कहै हैं:—

संशयसैं भिन्न ज्ञानकूं निश्चय कहै हैं ।

शुक्तिका शुक्तित्वरूपसैं यथार्थज्ञान औ शुक्तिका रजतत्वरूपतैं भ्रमज्ञान, दोनूं संशयतैं भिन्न ज्ञान होनैतैं निश्चयरूप हैं ॥

स्वाभावाधिकरणावभासकूं भ्रम कहै हैं ॥ जैसैं शुक्तिमैं रजतभ्रम होवै, तहां—

१ स्व काहिये रजत औ ताका ज्ञान ।

२ ताका पारमार्थिक औ व्यावहारिक जो अभाव ।

३ ताका अधिकरण काहिये अधिष्ठान जो रज्जु वा रज्जुविशिष्टचेतन वा रज्जुउपहित चेतन वा इदमाकारवृत्तिउपहितचेतन ।

४ तामैं अवभास जो रजत औ ताका ज्ञान सो भ्रम कहिये है ॥

॥१९९ ॥ अथवा अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाले अवभासकूं भ्रम औ अध्यास कहै हैं । व्याकरणरीतिसैं अध्यासपदके औ अवभासपदके विषय औ ज्ञान, दोनूं वाच्य हैं ॥ यातैं

॥२००॥ अर्थाध्यास औ ज्ञानाध्यास भेदतैं अध्यास दो प्रकारका है ॥

अर्थाध्यास अनेक प्रकारका है ।

१ कहुं केवलसम्बन्धमात्रका अध्यास है ।

२ कहुं सम्बन्धविशिष्टसम्बन्धीका अध्यास है।

३ कहुं केवलधर्मका अध्यास है ।

४ कहुं धर्मविशिष्टधर्मीका अध्यास है ।

५ कहुं अन्योन्याध्यास है ।

६ कहुं अन्यतराध्यास है ॥

अन्यतराध्यास बी दो प्रकारका है

(१) एक आत्मामैं अनात्मअध्यास है ।

(२) दूसरा अनात्मामैं आत्माध्यास है ॥

इस रीतिसैं अर्थाध्यास अनेक प्रकारका है । उक्तलक्षणका सर्वत्र समन्वय है ।

॥ २०१ ॥ तथाहि मुखसिद्धांतमैं तौ सकलअध्यासका अधिष्ठान चेतन है । रज्जुमैं सर्प प्रतीत होवै तहां बी इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं अभिन्न रज्जुअवच्छिन्नचेतन ही सर्पका अधिष्ठान है । रज्जु अधिष्ठान नहीं । यह अर्थ विचारसागरमैं स्पष्ट है ॥ तहां—

१ चेतनकी परमार्थसत्ता है ।

२ अथवा ताकी उपाधि रज्जु व्यावहारिक होनैतैं रज्जुअवच्छिन्नचेतनकी व्यावहारिकसत्ता है ॥

दोनूं प्रकारसैं सर्प औ ताके ज्ञानकी प्रातिभासिकसत्ता होनैतैं अधिष्ठानकी सत्तासैं विषमसत्तावाला अवभास सर्प औ ताका ज्ञान है यातैं दोनूंकूं अध्यास औ अवभास कहै हैं ॥

॥ २०२ ॥ सत्ताके तीन भेद हैं ॥ १ एक प्रातिभासिक है । २ दूसरी व्यावहारिक है । औ ३ तीसरी परमार्थिक है ॥

१ जाका ब्रह्मज्ञान विना रज्जुआदिअवच्छिन्नचेतनके ज्ञानतैं बाध होवै, ताकी प्रातिभासिकसत्ता है । ऐसै रज्जुसर्पादिक हैं ॥ औ—

२ ब्रह्मज्ञान विना जाका बाध न होवै औ ब्रह्मज्ञान हुये जाकी अधिष्ठानसैं भिन्न सत्तास्फूर्ति रहै नहीं, ताकी व्यावहारिकसत्ता है । ऐसै अविद्या औ आकाशादिक हैं ॥ औ—

३ तीन काल जाका बाध न होवै, ताकी पारमार्थिकसत्ता है । ऐसा चेतन है ॥

इस रीतिसैं सर्वअध्यासोंमैं आरोपितसैं अधिष्ठानकी विषमसत्ता है ॥

॥ २०३ ॥ जा पदार्थमैं आधारता प्रतीत होवै सो अधिष्ठान कहिये है । वह आधारता परमार्थसैं होवै वा आरोपित होवै । ताकी परमार्थतामैं आग्रह या प्रसंगमैं नहीं । काहेतैं ? जैसैं आत्मामैं अनात्माका अध्यास है, तैसैं अनात्मामैं आत्माका अध्यास है । औ अनात्मामैं परमार्थसैं आत्माकी आधारता है नहीं किंतु आरोपितआधारता है । यातैं आधारमात्रकूं या प्रसंगमैं अधिष्ठान कहै हैं ॥

॥ २०४ ॥ यद्यपि आत्माका अधिष्ठान अनात्मा है, या कहनैसैं आत्मा बी आरोपित होनैतैं कल्पित होवैगा ।

॥ २०५ ॥ तथापि भाष्यकारनै शारीरकके आरंभमैं आत्माअनात्माका अन्योन्याध्यास कह्या है । यातैं अनात्मामैं आत्माके अध्यासका निषेध तौ बनै नहीं ॥

परस्परअध्यासकूं अन्योन्याध्यास कहै हैं यातैं अनात्मामैं आत्माध्यास मानिके उक्तशंकाका समाधान कह्या चाहिये । सो समाधान इस रीतिसैं हैः—अध्यास दो प्रकारका होवै है १ एक तौ स्वरूपाध्यास होवै है । औ २ दूसरा संसर्गाध्यास होवै है ॥

१ जा पदार्थका स्वरूप अनिर्वचनीय उपजै ताकूं स्वरूपाध्यास कहै हैं । जैसैं—

(१) शुक्तिमैं रजतका स्वरूपाध्यास है ।

(२) आत्मामैं अहंकारादिकअनात्माका स्वरूपाध्यास है ॥

२ तैसैं जा पदार्थका स्वरूप तौ व्यावहारिक वा पारमार्थिक प्रथम सिद्ध होवै । औ

अनिर्वचनीयसंबंध उपजै, सो **संसर्गाध्यास** कहिये है ॥ जैसैं मुखमैं दर्पणका कोई संबंध है नहीं औ दोनूं पदार्थ व्यावहारिक हैं । तहां दर्पणमैं मुखका संबंध प्रतीत होवै है । यातैं अनिर्वचनीयसंबंध उपजै है ॥ इस रीतिसैं अनेक स्थानोंमैं संबंधी तौ व्यावहारिक हैं ॥ तिनके संबंध औ संबंधनके ज्ञान अनिर्वचनीय उपजै हैं । तिनकूं **संसर्गाध्यास** कहै हैं ॥

॥ २०६ ॥ तैसैं चेतनका अहंकारमैं अध्यास नहीं । किंतु चेतन तो पारमार्थिक है । ताके संबंधका अहंकारमैं अध्यास है । आत्मता चेतनमैं है औ अहंकारमैं प्रतीत होवै है । यातैं आत्माका तादात्म्य चेतनमैं है औ अहंकारमैं प्रतीत होवै है । यातैं आत्मचेतनका तादात्म्य-संबंध अहंकारमैं अनिर्वचनीय है ॥

अथवा आत्मवृत्तितादात्म्यका अहंकारमैं अनिर्वचनीयसंबंध है । यातैं चेतन कल्पित नहीं । किंतु चेतनका अहंकारमैं तादात्म्यसंबंध अथवा आत्मचेतनके तादात्म्यका संबंध कल्पित है ॥

॥ २०७ ॥ इस रीतिसैं —

१ जहां पारमार्थिक पदार्थका अभाव हुया तिसकी जहां प्रतीति होवै, तहां पारमार्थिक पदार्थका व्यावहारिकपदार्थमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजै है औ ताका अनिर्वचनीय ही ज्ञान उपजै है ॥ औ--

२ व्यावहारिक पदार्थका अभाव हुया जहां प्रतीति होवै, तहां अनिर्वचनीय ही संबंधी उपजै है औ संबंधीका अनिर्वचनीयज्ञान उपजै है । औ कहुं संबंधमात्र औ संबंधका अनिर्वचनीयज्ञान उपजै है ॥

सारे ही अधिष्ठानसैं अध्यस्तकी विषमसत्ता ही अनिर्वचनीयसत्ता है ॥

आत्माका अनात्मामैं अध्यास होवै, तहां बी अधिष्ठानअनात्मा व्यावहारिक है ॥ औ अध्यस्त आत्मा नहीं । किंतु आत्माका संबंध अनात्मामैं अध्यस्त है । यातैं अनिर्वचनीय है॥

सत्‌असत्‌सैं विलक्षणकूं अनिर्वचनीय कहै हैं ॥

या प्रसंगमैं--

॥ ३१ ॥ प्रसंगप्राप्तशंकासमाधानआदिक-अर्थका कथन ॥ २०८--२१९॥

॥ अथ चारि शंका ॥

॥ २०८ ॥ १ प्रथम शंका यह है:---

"स्वप्नप्रपंचका अधिष्ठान साक्षी है" यह कह्या।

सो संभवै नहीं । काहेतैं ? जिस अधिष्ठा-नमैं जो आरोपित होवै तिस अधिष्ठानसैं सो संबद्ध प्रतीत होवै है ॥जैसैं शुक्तिमैं आरोपित रजत है सो " इदं रजतं" इस रीतिसैं शुक्तिकी इदंतासैं संबद्ध प्रतीत होवै है ॥ आत्मामैं कर्तृत्वादिक अरोपित हैं, सो " अहं कर्त्ता" इस रीतिसैं संबद्ध प्रतीत होवै है॥ तैसैं स्वप्नके गजादिक साक्षीमैं आरोपित होवैं तौ "अहं गजः" " मयि गजः " इस रीतिसैं साक्षीसैं संबद्ध गजादिक प्रतीत हुये चाहियें ॥ औ--

॥ २०९ ॥ २ दूसरी शंका यह है:—

" शुक्तिमैं रजताभाव व्यावहारिक है औ पारमार्थिक है " यह पूर्व कह्या ।

सो संभवै नहीं । काहेतैं ? अद्वैतवादमैं एक चेतन ही पारमार्थिक है । तासैं भिन्नकूं पारमार्थिक मानैं तौ अद्वैतवादकी हानि होवैगी॥ पारमार्थिकरजत है नहीं । यातैं पारमार्थिकरज-तका अभाव है । यह कहना तौ संभवै है औ पारमार्थिकअभाव है यह कहना संभवै नहीं ॥

॥ २१० ॥ ३ तृतीय शंका यह है:--

"शुक्तिमैं अनिर्वचनीयरजतके उत्पत्तिनाश होवै हैं " यह पूर्व कह्या ।

सो संभवै नहीं । काहेतैं ? जो रजतके उत्पत्तिनाश होवैं तौ घटके उत्पत्तिनाशकी न्याई रजतके उत्पत्तिनाश प्रतीत हुये चाहियें॥

(१) जैसैं घटकी उत्पत्ति होवै तब "घट उपजै है" इस रीतिसैं घटकी उत्पत्ति प्रतीत होवै है । औ--

(२) घटका नाश होवे है, तब "घटका नाश हुया" इस रीतिसैं घटका नाश प्रतीत होवै है ॥

(१) तैसैं शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति होवै तब "रजतकी उत्पत्ति हुई" इस रीतिसैं उत्पत्ति प्रतीत हुई चाहिये ॥ औ--

(२) रजतका ज्ञानसैं नाश होवै तब "रजतका शुक्तिदेशमैं नाश हुवा" इस रीतिसैं नाश प्रतीत हुया चाहिये ॥ औ-शुक्तिमैं केवलरजत प्रतीत होवै है । ताके उत्पत्तिनाश प्रतीत होवैं नहीं।यातैं शास्त्रांतरकी रीतिसैं अन्यथाख्यातिआदिक ही समीचीन हैं । अनिर्वचनीयख्याति संभवै नहीं ॥

॥ २११ ॥४ चतुर्थ शंका यह है:--
"सत् असत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीयरजतादिक उपजै हैं" यह पूर्व कह्या ।

सो सर्वथा असंगत है ॥

(१) सत्सैं विलक्षण असत् होवै है औ
(२) असत्सैं विलक्षण सत् होवै है ॥

(१) "सत्सैं विलक्षण तौ है औ असत् नहीं" यह कथन विरुद्ध है ॥

(२) तैसैं "असत्सैं विलक्षण है औ सत् नहीं" यह कथन बी विरुद्ध है ।

चारिशंकाके क्रमतैं ये समाधान हैं:--

॥ २१२ ॥ १ प्रथमशंकाका समाधान:--
"साक्षीमैं स्वप्नअध्यास होवै तौ 'अहं गजः' मयि गजः' ऐसी प्रतीति हुई चाहिये" या शंकाका-

यह समाधान है:-पूर्व अनुभवजनित-संस्कारसैं अध्यास होवै है ॥ जैसा पूर्व अनुभव होवै है तैसा ही संस्कार होवै है औ संस्कारके समान अध्यास होवै है ॥

सर्व अध्यासौंका उपादानकारण अविद्या तौ समान है । परंतु निमित्तकारण पूर्वानुभव-जन्य संस्कार है, सो विलक्षण है ॥ जैसा अनुभवजन्यसंस्कार होवै तैसा ही अविद्याका परिणाम होवै है ॥

(१) जिस पदार्थकी अहमाकार ज्ञान-जन्यसंस्कारसहित अविद्या होवै, तिस पदार्थका अहमाकारअविद्याका परिणामरूप अध्यास होवै है ॥

(२) जिसकी ममताकार अनुभवजन्य-संस्कारसहित अविद्या होवै, तिस पदार्थका ममताकारअविद्याका परिणामरूप अध्यास होवै है ॥

(३) जिस पदार्थका इदमाकार अनुभव-जन्यसंस्कारसहित अविद्या होवै, तिसपदार्थका इदमाकारअविद्याका परिणामरूप अध्यास होवै है ॥

स्वप्नके गजादिकनका पूर्वअनुभव इदमाकार ही हुया है । अहमाकारादिकअनुभव हुया नहीं । यातैं अनुभवजन्यसंस्कार बी गजादिगोचर इदमाकार ही होवै है ॥ यातैं "अयं गजः" ऐसी प्रतीति होवै है । "मयि गजः"

"अहं गजः" ऐसी प्रतीति होवै नहीं ॥

संस्कार अनुमेय है । कार्यके अनुकूल संस्कारकी अनुमिति होवैहै । संस्कारजनक पूर्व-अनुभव बी अध्यासरूप है । ताका जनक संस्कार बी इदमाकार ही होवैहै॥औ अध्यास-प्रवाह अनादि है। यातैं प्रथमअनुभवकी

इदमाकारतामैं कोई हेतु नहीं । यह शंका संभवै नही । काहेतैं? अनादिपक्षमैं कोई अनुभव प्रथम नही । पूर्वपूर्वसैं उत्तर सारे अनुभव हैं ॥

॥२१३॥ २ द्वितीयशंकाका समाधानः-

"अभावकूं पारमार्थिक मानैं तौ अद्वैतकी हानि होवैगी" या द्वितीयशंकाका--

यह समाधान हैः-सकलपदार्थ सिद्धांत मैं कल्पित हैं, तिनका अभाव पारमार्थिक है, सो ब्रह्मरूप है । यह भाष्यकारकूं संमत है । यामैं विशेषयुक्ति आगै चतुर्दशरत्नविषै कहैंगे ॥ इस कारणतै अद्वैतकी हानि नही ॥

॥२१४॥ ३ तृतीयशंकाका समाधानः-

"शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति मानैं तो उत्पत्तिकी प्रतीति हुई चाहिये" याका--

यह समाधान हैः-शुक्तिमैं तादात्म्य-संबंध रजत अध्यस्त है औ शुक्तिकी इदंताका संबंध रजतमैं अध्यस्त है । यातैं "इदं रजतम्" इस रीतिसैं रजत प्रतीत होवै है ॥ जैसैं शुक्तिकी इदंताका संबंध रजतमैं अध्यस्त है, तैसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्वधर्म है ॥ रजतप्रतीतिकालतैं प्रथमसिद्धकूं प्राक्सिद्ध कहै हैं ॥ रजतप्रतीति कालतैं प्रथमसिद्ध शुक्ति है ॥ इस रीतिसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्वधर्म है । ताके संबंधका अध्यास बी रजतमैं होवै है ॥ इसीवास्तै "इदानी रजतम्" यह प्रतीति नहीं होवै है ॥ "प्राग्जातं रजतं पश्यामि" यह प्रतीति होवै है ॥ या प्रतीतिका विषय प्राग्जातत्व है । सो रजतमैं है नहीं । किंतु रजतमैं "इदानींजरतत्व" है । औ "प्राग्जातत्व" रजतमैं प्रतीत होवै है ॥

तहां रजतमैं अनिर्वचनीयप्राग्जातत्वकी उत्पत्ति मानैं तौ गौरव होवै है ॥ शुक्तिके प्राग्जातत्वकी रजतमैं प्रतीति मानैं तौ अन्यथा-ख्याति माननी होवै है औ ऐसै स्थानमैं अन्यथाख्यातिकूं मानै बी हैं। तथापि शुक्तिकैं प्राक्सिद्धत्वधर्मका अनिर्वचनीयसंबंध रजतमैं उपजै है । यह पक्ष समीचीन है ॥

इस रीतिसैं शुक्तिके प्राक्सिद्धत्वके संबंधकी प्रतीतिसैं उत्पत्तिप्रतीतिका प्रतिबंध होवै है । काहेतैं? प्राक्सिद्धता औ वर्त्तमान उत्पत्ति, दोनूं परस्परविरोधी ? हैं ॥ जहां प्राक्सिद्धता होवै तहां अतीतउत्पत्ति होवै है । वर्त्तमानउत्पत्ति होवै तहां प्राक्सिद्धता होवै नहीं ॥

इस रीतिसैं शुक्तिवृत्तिप्राक्सिद्धत्वके संबंधकी प्रतीतिसैं उत्पत्तिप्रतीतिका प्रतिबंध होनैतैं रजत-की उत्पत्ति हुये बी उत्पत्तिकी प्रतीति होवै नहीं ॥ औ--

जो कह्या "रजतका नाश होवै तौ ताकी प्रतीति हुई चाहिये" ताका--

यह समाधान हैः-अधिष्ठानका ज्ञान होवै तब रजतका नाश होवै है औ अधिष्ठान-ज्ञानतैं रजतका बाधनिश्चय होवै है ॥ शुक्तिमैं कालत्रयमैं रजत नहीं । इस निश्चयकूं बाध कहै हैं ॥ ऐसा निश्चय नाशप्रतीतिका विरोधी है । काहैतैं? नाशमैं प्रतियोगी कारण होवै है औ बाधसैं प्रतियोगीका सर्वदा अभाव भासै है॥ जाका "सर्वदा अभाव है" ऐसा ज्ञान होवै, ताकी नाशबुद्धि संभवै नहीं ॥

किंवा जैसा घटादिकनका मुद्गरादिकनसैं चूर्णीभावरूप नाश होवै है, तैसा कल्पितका नाश होवै नहीं । किंतु अधिष्ठानके ज्ञानतैं अज्ञानरूप उपादानसहित कल्पितकी निवृत्ति होवै है ॥ अधिष्ठानमात्रका अवशेष ही अज्ञान-सहित कल्पितकी निवृत्ति होवै है ॥ सो अधि-ष्ठान शुक्ति है । ताका अवशेषरूप रजतका नाश अनुभवसिद्ध है । यातैं रजतके नाशकी प्रतीति होवै नहीं । यह कथन साहसतैं है ॥

॥२१५॥ ४ चतुर्थशंकाका समाधानः—

"सत् असतसैं विलक्षण कथन विरुद्ध है" या चतुर्थशंकाका—

यह समाधान हैः—जो स्वरूपरहितकूं सद्विलक्षण कहैं औ विद्यमानस्वरूपकूं असद्विलक्षण कहैं तौ विरोध होवै। काहेतें? एक ही पदार्थमैं स्वरूपराहित्य औ स्वरूपसाहित्य नहीं। यातें सदसद्विलक्षणका उक्त अर्थ नहीं। किंतु—

१ कालत्रयमैं जाका बाध नहीं होवै ताकूं सत् कहै हैं॥

२ जाका बाध होवै सो सद्विलक्षण कहिये है॥

३ शशशृंगवंध्यापुत्रकी न्यांई स्वरूपहीनकूं असत् कहै हैं।

४ तासैं विलक्षण स्वरूपवान् होवै है॥

इस रीतिसैं——

१ बाधके योग्य स्वरूपवाला सदसद्विलक्षणशब्दका अर्थ है॥

२ सद्विलक्षणशब्दका बाधयोग्य अर्थ है॥

३ स्वरूपवाला इतना असद्विलक्षणशब्दका अर्थ है॥

इस रीतिसैं जहां भ्रमज्ञान है तहां सारे अनिर्वचनीयपदार्थकी उत्पत्ति होवै है॥

॥२१६॥ कहुं संबंधीकी उत्पत्ति होवै है॥ जैसैं शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति है औ रजतमैं शुक्तिवृत्तितादात्म्यके संबंधकी उत्पत्ति होवै है। शुक्तिवृत्तितादात्म्यकी रजतमैं अन्यथाख्याति नहीं। तैसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्वधर्म है। ताके अनिर्वचनीयसंबंधकी रजतमैं उत्पत्ति होवै है। ताकी बी अन्यथाख्याति नहीं॥ इस रीतिसैं

१ अन्योन्याध्यासका बी यह उदाहरण है। औ——

२ संबंधाध्यासका यह उदाहरण है। संबंधी अध्यासका बी यह उदाहरण है। औ—

१ अनिर्वचनीयवस्तुकी प्रतीतिकूं ज्ञानाध्यास कहै हैं॥ औ——

२ ज्ञानके अनिर्वचनीयविषयकूं अर्थाध्यास कहै हैं॥

यातें——

१ ज्ञानाध्यास अर्थाध्यासका बी यह उदाहरण है। औ——

२ रजतत्वधर्मविशिष्टरजतका शुक्तिमैं अध्यास है। यातैं धर्मीअध्यासका बी यह उदाहरण है॥

॥ २१७ ॥ जहां अन्योन्याध्यास होवै, तहां दोनूंका परस्पर स्वरूपसैं अध्यास नहीं होवै है। किंतु आरोपितका स्वरूपसैं अध्यास होवै है। औ सत्यवस्तुका धर्म अथवा संबंध अध्यस्त होवै है॥

संबंधाध्यास बी दो प्रकारका होवै हैः——

१ कहुं धर्मके संबंधका अध्यास होवै है औ

२ कहुं केवल संबंधका अध्यास होवै है॥

(१) जैसैं उक्तउदाहरणमैं शुक्तिवृत्तिइदंतारूप धर्मके संबंधका रजतमैं अध्यास है। औ——

(२) "रक्तः पटः" या स्थानमैं कुसुंभवृत्तिरक्तरूप धर्मके संबधका पटमैं अध्यास है। औ——

(३) दर्पणमैं मुखके संबंधका अध्यास होवै है॥

२ (१) अंतःकरणका आत्मामे स्वरूपसैं अध्यास है॥ औ——

(२) अंतःकरणमैं आत्माका स्वरूपसै अध्यास नहीं। किंतु आत्मसंबंधका अध्यास होनैतैं आत्माका संसर्गाध्यास है। ज्ञानस्वरूप आत्मा है। अंतःकरण नहीं॥ औ ज्ञानका संबंध अंतःकरणमैं प्रतीत होवै है। यातैं आत्माके संबंधका अंतःकरणमैं अध्यास है॥ तैसैं "घटः स्फुरति" "पटः स्फुरति" इस रीतिसैं स्फुरण-

संबंध सर्वपदार्थनमैं प्रतीत होवै है ॥ यातैं आत्म-संबंधका निखिलपदार्थनमैं अध्यास है ॥

॥२१८॥ आत्मामैं काणत्वादिक इंद्रियधर्म प्रतीत होवै हैं । यातैं काणत्वादिक धर्मनका आत्मामैं अध्यास होवै है । औ इंद्रियनका आत्मामैं तादात्म्यअध्यास नहीं है । काहेतैं ? "अहं काणः" ऐसी प्रतीति होवै है औ "अहं नेत्रम्" ऐसी प्रतीति होवै नहीं । यातैं नेत्रधर्म काणत्वका आत्मामैं अध्यास है। नेत्रका अध्यास नहीं ॥

यद्यपि नेत्रादिनिखिलप्रपंचका अध्यास आत्मामैं है, तथापि ब्रह्मचेतनमैं समग्रप्रपंचका अध्यास है। "त्वं" पदार्थमैं निखिलप्रपंचका अध्यास नहीं । अविद्याका ऐसा अद्भुतमहिमा है । एक ही पदार्थका एकधर्मविशिष्टका अध्यास होवै है, अपरधर्मविशिष्टका अध्यास होवै नहीं ॥ जैसैं ब्राह्मणत्वादिधर्मविशिष्टशरीरका आत्मामैं तादात्म्याध्यास होवै है । शरीरत्वविशिष्टशरीरका अध्यास होवै नहीं । इसीवास्ते विवेकी बी "ब्राह्मणोऽहं" "मनुष्योऽहं" ऐसा व्यवहार करै है ॥ औ "शरीरमहम्" ऐसा व्यवहार विवेकीका होवै नहीं ॥ यातैं अविद्याका अद्भुतमहिमा होनैतैं इंद्रियके अध्यास विना आत्मामैं काणत्वादिक धर्मनका अध्यास संभवै है । यह धर्माध्यासका उदाहरण है ॥

॥ २१९ ॥ उक्त रीतिसैं सकलभ्रममैं पूर्वउक्त दोनूं लक्षण संभवै हैं । परंतु१परोक्ष औ२अपरोक्ष भेदसैं भ्रम दो प्रकारका है ॥

१ अपरोक्षभ्रमके उदाहरण तौ कहे ॥ औ—

२ जहां वह्निशून्यदेशमैं महानसत्वरूप हेतुतैं वह्निका अनुमितिज्ञान होवै है । वा विप्रलंभकके वाक्यसैं वह्निका शब्दभ्रम होवै है । वे दोनूं परोक्षभ्रम हैं ॥ जहां परोक्षभ्रम होवै, तहां नैयायिकादिक जिस रीतिसैं अन्यथाख्याति आदिकनसैं निर्वाह करै हैं ॥ तासैं विलक्षण कहनैमैं अद्वैतवादीका आग्रह नहीं है ॥

अपरोक्षअध्यासविषै ही पारिभाषिकअध्यास विलक्षण मानै हैं ।काहेतैं?कर्तृत्वादिक अनर्थभ्रम अपरोक्ष है । ताके स्वरूपमैं ज्ञाननिवर्त्यताके अर्थ अध्यासका निरूपण है । यातैं अपरोक्षभ्रमकूं ही दृष्टांतताके अर्थ अध्यासता प्रतिपादनमैं आग्रह है । परोक्षभ्रमविषै शास्त्रान्तरसैं विलक्षणता कहनैमैं प्रयोजन नहीं ॥ औ अपरोक्षभ्रमविषै उक्त रीतिसैं लक्षणका समन्वय होवै है ॥

॥ ३२ ॥ सिद्धांतमैं स्वीकृत अनिर्वचनीयख्यातिका निर्धार ॥ २२०—२२२॥

॥२२० ॥ सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयख्याति है । ताकी यह रीति है:—जहां रज्जुआदिकनमैं सर्पादिकभ्रम होवै । तहां—

१ प्रथमक्षणमैं तौ सर्पादिकसंस्कारसहित पुरुषके तिमिरादिदोषसहित नेत्रका रज्जुआदिकसैं संबंध होवै, तब रज्जुका विशेषधर्म रज्जुत्व भासैं नहीं । औ रज्जुमैं जो मुंजरूप अवयव हैं सो भासैं नहीं । तब—

२ द्वितीयक्षणविषै रज्जुमैं सामान्यधर्म इदंता भासै है ॥

(१) वर्तमानकाल औ पुरोदेशका संबंध इदंता कहिये है।ताहीकूं सामान्य अंश औ आधार बी कहै हैं॥औ—

(२) मुंजरूप त्रिवलयाकार रज्जुत्वधर्मविशिष्टरज्जु।यह विशेषअंश कहिये है । ताहीकूं अधिष्ठान बी कहै हैं॥

सो अधिष्ठानका समान्यज्ञान बी अध्यासका हेतु है । सो सामान्यज्ञान दोषसहित नेत्ररूप प्रमाणसैं उपजै है । यातैं प्रमा है ।यातैं नेत्रद्वार

अंतःकरण रज्जुकूं प्राप्त होयके इदमाकारपरिणामकूं प्राप्त होवै है ॥ तदनंतर–

३ तृतीयक्षणमैं तिस दोषजन्य इदमाकारवृत्तिउपहितचेतनस्थअविद्यामैं क्षोभ होवै है ॥ उपादानकी कार्याभिमुखताकूं क्षोभ कहै हैं ॥ औ––

४ चतुर्थक्षणमैं तिस अविद्याका तमोगुणका अंश औ सत्वगुणका अंश दोनूं सर्पादिविषयाकार औ ज्ञानाकारपरिणाकूं प्राप्त होवै हैं । सो सर्पादि औ ताका ज्ञान अविद्याके परिणाम औ चेतनके विवर्त्त हैं ॥ यातैं एक सर्पादिक ज्ञानरूप धर्मीमैं दो धर्म रहै हैं ॥ जैसैं एक ही पुरुषरूप धर्मीमैं स्वपिताकी अपेक्षातैं पौत्रत्व औ पितामहकी अपेक्षातैं पौत्रत्व ये दोधर्म रहै हैं, तैसैं इहां सर्पसैं आदिलेके आकाशादिसकलप्रपंचमैं विकारी अविद्याकी अपेक्षातैं परिणामत्व औ रज्जुआदिउपहित वा मायाउपहितचेतनरूप अधिष्ठानकी अपेक्षातैं विवर्त्तत्व ये दो धर्म रहै हैं।

(१) उपादानके समानसत्तावाला औ अन्यथास्वरूप परिणाम कहिये है । जैसैं अपनै उपादान दुग्धके समानसत्तावाला कहिये व्यावहारिकसत्तावाला औ मिष्टत्व दुग्धतासैं आम्ल होनैतैं अन्यथा कहिये और स्वरूप दधि है। यातैं दुग्धका परिणाम है ॥ तैसैं उक्तप्रपंच बी अविद्याके समान प्रातिभासिक वा व्यावहारिकसत्तावाला औ अरूपअविद्यासैं रूपवाला होनैतैं अन्यथा कहिये और स्वरूप है। यातैं अविद्याका परिणाम है ॥ औ–

(२) अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाला अन्यथा स्वरूप विवर्त्त कहिये है। जैसैं व्यावहारिक औ पारमार्थिकसत्तावाला रज्जुउपहित औ मायाउपहितचेतन है । तातैं विषम कहिये विलक्षण जो प्रातिभासिक औ व्यावहारिकसत्तावाला औ संसारदशामैं अबाधित उभयचेतनसैं बाधित होनैकरि अन्यथा कहिये और स्वरूप होनैतै सर्पादिप्रपंच चेतनका विवर्त्त है ॥

॥२२१॥ इस रीतिसैं सर्प दंड माला जलधारा औ पृथ्वीकी दरार इत्यादि दश पदार्थनमैंसैं जिस जिस संस्कारसहित पुरुषके दोषसहितनेत्रका रज्जुसैं संबंध होयके जाके इदमाकारवृत्ति होवै, ताकी वृत्तिउपहितचेतनमैं स्थित अविद्याका सो सो पदार्थ औ तिसतिसका ज्ञानरूप परिणाम साथि ही होवै है ॥ औ–

१ जहां एकरज्जुमैं सर्पादिकमैंसैं एक ही पदार्थके संस्कारसहित दश पुरुषनके सदोषनेत्रका रज्जुसैं संबंध होयके जाकै इदमाकारवृत्ति होवैं, ताकी वृत्तिउपहितचेतनमैं स्थित अविद्याका सो सो पदार्थ औ तिसतिसका ज्ञानरूप परिणाम साथि ही होवै है ॥

२ औ जहां एक रज्जुमैं दश पुरुषनके सदोषनेत्रका रज्जुसैं संबंध होयके सर्प दंड मालाआदिक एकएकका तिन्हकूं भ्रम होवै । तहां जाकी वृत्तिउपहितचेतनमैं जो विषय उपज्या है सो ताहीकूं प्रतीत होवै है। अन्यकूं नहीं ॥

॥ २२२ ॥ इस रीतिसैं उक्त जो भ्रमज्ञान सो इंद्रियजन्य नहीं। किंतु अविद्याकी वृत्तिरूप है। परंतु जा वृत्तिउपहितचेतनमैं स्थित अविद्याका परिणाम भ्रम है सो इदमाकारवृत्ति नेत्रसैं रज्जुआदिकविषयके संबंधतैं होवै है । यातैं भ्रमज्ञानमैं इंद्रियजन्यताकी प्रतीति होनैतैं नैयायिकनकूं इंद्रियजन्यताकी भ्रांति होवै है॥ औ कोई वेदांती बी ऐसैं अंगीकार करै है परंतु ताकी उक्ति, युक्ति औ अनुभवसैं विरुद्ध है । यातैं समीचीन नहीं ॥

इस रीतिसैं सिद्धांतमैं अंगीकरणीय अनिर्वचनीयख्यातिकी रीति संक्षेपतैं कही ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्याम् अनिर्वचनीयख्यातिनिरूपणं नाम अष्टमं रत्नं समाप्तम् ॥ ८ ॥

॥ अथ नवमरत्नप्रारंभः ॥ ९ ॥

॥ २ ॥ अप्रमावृत्तिभेद सत्ख्यातिप्रदर्शनपूर्वक-खंडन ॥ २२३-२३० ॥

॥३३॥ सिद्धांतसैं भिन्न सकलख्यातिनकें नामसहित सत्ख्यातिवादके कथन-पूर्वक ताके निराकरणकी योग्यता॥ ॥ २२३-२२५ ॥

॥ २२३ ॥ शुक्तिआदिकमैं रजतादिभ्रम होवै, तहां सिद्धांतपक्षसैं विना पांच मत हैं:— सत्ख्याति, असत्ख्याति, आत्मख्याति, अन्यथाख्याति औ अख्याति, भ्रमके ये नाम कहे हैं। सर्वके मतमैं अन्यतम भ्रमका नाम प्रसिद्ध है । तिसतैं भिन्न भिन्न ताकूं अन्यतम कहै हैं ॥

॥ २२४ ॥ तिनमैं सत्ख्यातिवादीका यह सिद्धांत है:—शुक्तिके अवयवनके साथि रजतके अवयव सदा रहै हैं ॥ जैसैं शुक्तिके अवयव सत्य हैं तैसैं ही रजतके अवयव हैं । मिथ्या नहीं ॥ जैसैं दोषसहित नेत्रसंबंधतैं सिद्धांतमैं अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीयरजत उपजै है तैसैं दोषसहित नेत्रसंबंधतैं रजतावयवसैं सत्यजरत उपजै है ॥ अधिष्ठानज्ञानतैं जैसैं अनिर्वचनीयरजतकी निवृत्ति सिद्धांतमैं होवै है। तैसैं शुक्तिज्ञानतैं सत्यरजतका अपनै अवयवमैं ध्वंस होवै है ॥ यह सत्ख्यातिवादीका मत है॥

॥ २२५ ॥ सो सत्ख्यातिवादीका मत निराकरणीय है। काहेतैं ? शुक्तिरजतदृष्टांतसैं प्रपंचके मिथ्यात्वकी अनुमिति है ॥ सत्ख्यातिवादमैं शुक्तिमैं रजत सत्य है । तिसकूं दृष्टांत धारिके प्रपंचमैं मिथ्यात्वसिद्धि होवै नहीं। यह पक्ष निराकरणीय है ॥

॥ ३४ ॥ सत्ख्यातिवादका खंडन ॥ २२६-२३० ॥

॥ २२६ ॥ या पक्षमैं यह दोष है:—शुक्तिज्ञानसैं अनंतर तीनकालमैं रजत नहीं है । इस रीतिसैं शुक्तिमैं त्रैकालिकरजताभाव प्रतीत होवै है ॥ सिद्धांतमैं तौ अनिर्वचनीयरजत मध्य कालमैं होवै है, औ व्यावहारिकरजताभाव त्रैकालिक है। सत्ख्यातिवादीके मतमैं व्यावहारिकरजत होवै, तिसकालमैं व्यावहारिक-रजतभाव संभवै नहीं। यातैं त्रैकालिकरजताभावकी प्रतीतिसैं व्यावहारिकरजतकथन विरुद्ध है ॥ औ—

अनिर्वचनीयरजतकी उत्पत्तिमैं तौ प्रसिद्ध-रजतकी सामग्री चाहिये नहीं । दोषसहित अविद्यासैं ताकी उत्पत्ति संभवै है। औ व्यावहारिकरजत तौ रजतकी प्रसिद्धसामग्री विना संभवै नहीं औ शुक्तिदेशमैं रजतकी प्रसिद्ध सामग्री है नहीं । यातैं सत्यरजतकी उत्पत्ति शुक्तिदेशमैं संभवै नहीं ॥ औ—

॥२२७॥ जो ऐसैं कहै:—शुक्तिदेसमैं रजतके अवयव हैं, सोई सत्यरजतकी सामग्री है।

ताकूं यह पूछै हैं:— १ रजतावयवनका बी उद्भूतरूप है वा २ अनुद्भूतरूप है ?

१ उद्भूतरूप कहै तौ रजतावयवनका वी रजतकी उत्पत्तिसैं प्रथम प्रत्यक्ष हुया चाहिये। ओ—

२ अनुद्भूतरूप कहै तौ अनुद्भूतरूपवाले अवयवनतैं रजत बी अनुद्भूतरूपवाला होवैगा । यातैं रजतका प्रत्यक्ष नहीं होवैगा औ—

॥२२८॥ जहां एक रज्जुमैं दशपुरुषनकूं भिन्नभिन्नपदार्थनका भ्रम होवै। किसीकूं दंडका,

किसीकूं मालाका किसीकूं सर्पका तथा जलधाराका इत्यादिकपदार्थनके अवयव स्वल्प-रज्जुदेशमैं संभवैं नहीं। काहेतैं?मूर्तद्रव्य स्थानका निरोध करै हैं॥औ सिद्धांतमैं तौ अनिर्वचनीय-दंडादिक हैं। सो व्यावहारिकदेशका निरोध करैं नहीं। औ तिन दंडादिकनमैं स्थान-निरोधादिकफल नहीं मानैं तौ दंडादिकनकूं सत् कहना विरुद्ध है औ निष्फल है ॥

॥ २२९ ॥ दंडादिकनकी प्रतीतिमात्र होवै है। अन्यकार्य तिनतैं होवै नहीं। ऐसा कहैं तौ अनिर्वचनीयवाद सिद्ध होवै है ॥ औ—

॥२३०॥ भ्रमस्थलमैं सत्पदार्थकी उत्पत्ति मानैं तौ अंगारसहित ऊषरभूमिमैं जलभ्रम होवै तहां जलसैं अंगार शांत हुए चाहिये ॥ औ तूलके ऊपरि धरे गुजापुंजमैं अग्निभ्रम होवै। तहां तूलका दाह हुया चाहिये। यातैं अवयव तौ स्थाननिरोधादिकके हेतु नहीं।औ अवयवीसैं कोई कार्य होवै नहीं। ऐसैं पदार्थकूं सत् कहना सुनिके बुद्धिमानोकूं हास्य होवै है। यातैं सर्वथा निर्युक्तिक होनैंतैं यह पक्ष असंभवित है ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्यां सत्ख्यातिप्रदर्शन-पूर्वकखंडनं नाम नवमं रत्नं समाप्तम् ॥ ९ ॥

॥ अथ दशमरत्नप्रारंभः॥१०॥

॥३॥ अप्रमावृत्तिभेद असतख्यातिप्रदर्शनपूर्वक खंडन ॥ २३१–२३४ ॥

॥ ३५ ॥ द्विविधअसतख्यातिवादके कथनपूर्वक असतख्यातिवादीके प्रति प्रश्न ॥२३१–२३२॥

॥ २३१ ॥ असतख्याति दो प्रकारकी मानैं हैं ॥

१ एक तौ शुक्तिअधिष्ठानमैं असतूरजतकी प्रतीतिरूप है। औ—

२ दूसरी असतरजतत्वसमवायकी प्रतीति-रूप है

सो दोनूं असंगत हैं। काहेतैं ?

॥ २३२ ॥ जो असतख्याति मानै ताकूं यह पूछै हैंः—'असतख्याति' या वाक्यमैं—

१ निःस्वरूप असत्शब्दका अर्थ है ?

२ अथवा असत्शब्दका अर्थ अबाध्य-विलक्षण है ?

॥ ३६ ॥ असतख्यातिवादका खंडन ॥ २३३–२३४ ॥

॥ २३३ ॥ १ जो ऐसैं कहैः—असत्-शब्दका अर्थ निःस्वरूप है ॥

तौ "मुखे मे जिह्वा नास्ति" इस वाक्यकी न्यांई असतख्यातिवादका अंगीकार निर्लज्ज-का है काहेतैं ? सत्तास्फूर्तिरहितकूं निःस्वरूप कहै हैं।यातैं "सत्तास्फूर्तिशून्य बी प्रतीत होवैहै।" यह असतख्यातिवाद कहै। तैसैं सिद्ध होवै है॥ सत्तास्फूर्तिशून्यकी प्रतीति कहना विरुद्ध है ॥ यातैं—

॥२३४॥२अबाध्यविलक्षण असत्शब्दका अर्थ कहैं तौ अबाध्यविलक्षण बाध्य होवै है ॥ बाधके योग्यकूं बाध्य कहैहैं॥इस रीतिसैं बाधके योग्यकी प्रतीति असतख्याति कहिये है।

यह सिद्ध हुया। सोई सिद्धांतीका मत है। काहेतैं ? अनिर्वचनीयख्याति सिद्धांतमैं है औ बाधयोग्य ही अनिर्वचनीय होवै है॥ इस रीतिसैं सिद्धांतसैं विलक्षण असतख्यातिवाद है। यह कहना संभवै नहीं ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्याम् असतख्यातिप्रदर्श-नपूर्वकखंडनं नाम दशमं रत्नं समाप्तम् ॥१० ॥

अथएकादशरत्नप्रारंभः॥११॥

॥४॥ अप्रमावृत्तिभेद आत्मख्यातिप्रदर्शनपूर्वक खंडन ॥ २३५-२४० ॥

॥ ३७ ॥ आत्मख्यातिवादका अनुवादपूर्वक खंडन ॥ २३५-२३८ ॥

॥ २३५ ॥ तैसें आत्मख्यातिवाद बी असंगत है । काहेतें? विज्ञानवादीके मतमैं आत्मख्याति है । क्षणिकविज्ञानरूप बुद्धिकूं विज्ञानवादी आत्मा कहे हैं॥ तिसके मतमैं बाह्यरजत नहीं है । किंतु विज्ञानरूप आत्माका धर्म रजत आंतर सत्य है । ताकी दोषके बलतें बाह्यदेशमैं प्रतीति भ्रम है।यातें रजतज्ञानमैं रजतगोचरत्वअंश भ्रम नहीं । किंतु रजतका बाह्यदेशस्थत्वप्रतीतिअंशमैं भ्रम है ॥ जो रजतकी बाह्यदेशमैं उत्पत्ति मानैं तौ बाह्यदेशमैं सत्यरजत तौ संभवै नहीं । अनिर्वचनीय मानना होवैगा । सो अनिर्वचनीयवस्तु लोकमैं अप्रसिद्ध है । यातें अप्रसिद्धकल्पनादोष होवैगा । यातें आंतररजत उपजै है । ऐसें मानै तौ कोई दोष नहीं ॥ यह विज्ञानवादीका अभिप्राय है ॥

॥२३६॥ यह मत समीचीन नहीं ॥ 'रजत आंतर है' ऐसा अनुभव किसीकूं नहीं ॥ भ्रमस्थलमैं वा यथार्थस्थलमैं रजतादिकनकी आंतरता किसी प्रमाणसैं सिद्ध नहीं ॥सुखादिक आंतर है औ रजतादिक बाह्य है । यह अनुभव सर्वकूं होवै है॥रजतकूं आंतर मानैं तौ अनुभवसैं विरोध होवै है । औ आंतरताका साधक प्रमाण युक्ति है नहीं । यातें रजतादिकपदार्थ स्वप्न विना जागरणमैं आंतर अप्रसिद्ध हैं ॥ बाह्यस्वभावकूं भ्रमस्थलमैं आंतरकल्पना अप्रसिद्ध कल्पना है । औ आंतर होवै तौ "मयि रजतम् अहं रजतम्" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये॥ "इदं रजतम्" इस रीतिसैं रजतकी बाह्यप्रतीति नहीं हुई चाहिये । यातें आंतररजतका असंभव है । ताकी बाह्यदेशमैं प्रतीति बनै नहीं ॥ किंतु--

॥ २३७ ॥ बाह्यदेशमैं ही अनिर्वचनीयरजत उपजै है । यह सिद्धांतकी रीति ही समीचीन है औ अनिर्वचनीयवस्तुकी अप्रसिद्धकल्पनादोष कह्या, सो बी अज्ञानसैं कह्या है । काहेतें ?--

॥ २३८ ॥ अद्वैतवादका यह मुख्यसिद्धांत है:--

१ चेतन सत्य है ।

तासैं भिन्न सकल मिथ्या है ॥

अनिर्वचनीयकूं मिथ्या कहे हैं, यातें चेतनसैं भिन्नपदार्थकूं सत्यकथनमैं ही अप्रसिद्धकल्पना है । चेतनसैं भिन्नपदार्थनमैं अनिर्वचनीयता तौ अतिप्रसिद्ध है ॥ युक्तिसैं विचार करैं तब किसी अनात्मपदार्थका स्वरूप सिद्ध होवै नहीं औ प्रतीति होवै है । यातें सकलअनात्मपदार्थ अनिर्वचनीय हैं॥ सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयपदार्थ कोई सत्य नहीं । गंधर्वनगरकी न्यांई सारा प्रपंच दृष्टनष्टस्वभाव है ॥

॥३८॥ अनिर्वचनीयख्यातिकी रीतिपूर्वक अद्वैतवादीकूं अनिर्वचनीयपदार्थकी प्रसिद्ध ॥२३९-२४० ॥

॥ २३९ ॥ स्वप्नसैं जाग्रत्पदार्थमैं किंचिद्विलक्षणता नहीं, औ शुक्तिरजत प्रातिभासिक है । कांताकरादिकनमैं रजत व्यावहारिक है ॥

इस रीतिसैं अनात्मपदार्थनमैं मिथ्यात्वसत्यत्वविलक्षणता परस्पर कही है, सो स्थूलबुद्धिवालेके अद्वैतबोधमैं प्रवेशवास्ते अरुंधतीन्यायसैं कही है ॥ स्थूलबुद्धिपुरुषकूं प्रथम ही मुख्यसिद्धांतकी रीति कहैं, तौ अद्भुतअर्थकूं सुनिके अनात्मसत्यत्वभावनावाला पुरुष शास्त्रसैं विमुख होयके पुरुषार्थसैं भ्रष्ट होय जावै । इसवास्ते--

१-२ अनात्मपदार्थनकी व्यावहारिकप्राति-भासिकभेदसैं द्विविधसत्ता कही। औ-
३ चेतनकी परमार्थिकसत्ता कही ॥

॥२४०॥चेतनसैं प्रपंचकी न्यूनसत्ता बुद्धिमैं आरूढ हुए सकल अनात्मपदार्थनकूं स्वप्नादि-दृष्टांतसैं प्रातिभासिक जानिके निषेधवाक्यनतैं सर्वअनात्मकूं सत्तास्फूर्तिशून्य जानि लेवै। इस वास्ते सत्ताभेद कह्या है। औ अनात्मपदार्थनका परस्परसत्ताभेदमैं अद्वैतशास्त्रका तात्पर्य नहीं है। यातैं अद्वैतवादीकूं अनिर्वचनीय पदार्थ अप्रसिद्ध है यह कथन विरुद्ध है ॥ इस रीतिसैं आत्म-ख्यातिवादीका मत असंगत है ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्याम् आत्मख्यातिपूर्वक-खंडनं नाम एकादशं रत्नं समाप्तम् ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादशरत्नप्रारंभः॥१२॥

॥ ५ ॥ अप्रमावृत्तिभेद अन्यथाख्यातिप्रदर्शन-पूर्वक खंडन ॥ २४१-२४२ ॥

॥ ३१ ॥ अन्यथाख्यातिवादका कथन-पूर्वक खंडन ॥ २४१-२४२ ॥

॥ २४१ ॥ तैसैं नैयायिक अन्यथाख्याति मानै हैं। ताकी यह रीति हैः-दोषसहित नेत्रका संयोग रज्जुसैं जब होवै, तब रज्जुत्वधर्मसैं नेत्रका संयुक्तसमवायसंबंध तौ है, परंतु दोषके बलतैं रज्जुत्व भासै नहीं । किंतु रज्जुमैं सर्पत्व भासै है । सो सर्पत्वका ज्ञान नेत्रजन्य है। तामैं पूर्वदृष्टसर्पका उद्बुद्धसंस्कार बी सहकारी है ॥ या मतमैं धर्मी जो सर्प, ताका अध्यास नहीं । किंतु सर्पत्वरूपधर्म-मात्रका अध्यास है। यह नवीननैयायिकनका मत है ॥

॥ २४२ ॥ सो नवीननैयायिकनका मत समीचीन नहीं। काहेतैंनेत्रसैं अंतरायसहित सर्पका रज्जुमैं ज्ञान संभवै नहीं। जो रज्जुके समीप सर्प होवै तौ दोनूंसैं नेत्रका संयोग होयके सर्पवृत्तिसर्पत्वकी रज्जुमैं नेत्रजन्यभ्रम प्रतीति संभवै। औ जहां रज्जुके समीप सर्प नहीं, तहां रज्जुमैं सर्पत्वभ्रम नेत्रजन्य संभवै नहीं ॥ इहां जातैं सर्पव्यक्तिसैं नेत्रसंयोगके अभावतैं सर्पत्वसैं नेत्रसंयुक्तसमवायका अभाव है । यातैं सर्पत्वविशिष्टरज्जुका ज्ञान संभवै नहीं। इस रीतिसैं अन्यथाख्याति असंगत है॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्याम् अन्यथाख्यातिप्र-दर्शनपूर्वकखंडनं नाम द्वादशं रत्नं समाप्तम् १२

अथत्रयोदशरत्नप्रारंभः॥१३॥

॥६॥अप्रमावृत्तिभेद अख्यातिप्रदर्शनपूर्वक-खंडन ॥ २४३-२४८ ॥

॥ ४० ॥ अख्यातिवादका अनुवाद-पूर्वक खंडन ॥ २४३-१४४ ॥

॥ २४३ ॥ सांख्यप्रभाकरमतमैं अख्याति मानी है, ताकी रीति यह हैः-जहां शुक्तिसैं तथा रज्जुसैं दोषसहित नेत्रका सम्बन्ध होवै, तहां शुक्तिका तथा रज्जुका विशेषरूप भासै नहीं। किंतु सामान्यरूप इदन्ता भासै है ॥ औ शुक्तिसैं नेत्रके संबंधजन्य ज्ञान हुए रजतके संस्कार उद्बुद्ध होयके शुक्तिके सामान्यज्ञानके उत्तरक्षणमैं रजतकी स्मृति होवै है। तैसैं रज्जुके सामान्यज्ञानके उत्तरक्षणमैं सर्पकी स्मृति होवै है॥ यद्यपि सकलस्मृतिज्ञानमैं पदार्थकी सत्ता बी भासै है। तथापि दोषसहित नेत्रके संबंधतैं संस्कार उद्बुद्ध होवै । तहां दोषके महात्म्यतैं तत्ताअंशका प्रमोष होवै है। यातैं प्रमुष्टतत्ताक स्मृति होवै है ॥ प्रमुष्ट कहिये लुप्त हुई हैं तत्ता जिसकी, सो प्रमुष्टतत्ताकशब्दका अर्थ है ॥

इस रीतिसैं "इदं रजतम्" "अयं सर्पः" इत्यादिकस्थलमैं दो ज्ञान हैं ॥

१ तहां शुक्तिका औ रज्जुका सामान्यइंदरूपका प्रत्यक्षज्ञान यथार्थ है । औ–

२ रजतका तथा सर्पका स्मृतिज्ञान बी यथार्थ है ।

इस रीतिसैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है ॥

यद्यपि जा पदार्थमैं इष्टसाधनताका ज्ञान होवै तामैं प्रवृत्ति होवै है औ जामैं अनिष्टसाधनताका ज्ञान होवै तासैं निवृत्ति होवै है । या मतमैं शुक्तिमैं इष्टसाधनताज्ञान औ रज्जुमैं अनिष्टसाधनताका ज्ञान कहै तौ भ्रमका अंगीकार होवै । यातैं इष्टसाधनताज्ञानके औ अनिष्टसाधनताज्ञानके अभावतैं शुक्तिमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति औ रज्जुमैं निवृत्ति नहीं हुई चाहिये । औ होवै है यातैं भ्रमज्ञान आवश्यक है ॥

तथापि--

१ जो पदार्थमैं पुरुषकी प्रवृत्ति होवै ता पदार्थका सामान्यरूपतैं प्रत्यक्षज्ञान ।औ–

२ इष्टपदार्थकी स्मृति । औ–

३ स्मृतिके विषयतैं पुरोवर्तिपदार्थका भेदज्ञानाभाव ।

४ तैसैं स्मृतिज्ञानका पुरोवर्तिके ज्ञानतैं भेदज्ञानाभाव ।

इतनी सामग्री प्रवृत्तिकी है ॥

रज्जुमैं सर्पज्ञानतैं जो निवृत्ति होवै है, सो बी विमुखप्रवृत्ति ही है। यातैं भ्रमज्ञान विना प्रवृत्ति संभवै है ॥ यह अख्यातिवादीका अभिप्राय है॥ ज्ञानद्वयका विवेकाभाव औ उभयविषयका विवेकाभाव अख्यातिपदका पारिभाषिक अर्थ ह ॥

॥ २४४ ॥ यह अख्यातिवादीका मत बी **समीचीन नहीं** । काहेतैं ?–

१ शुक्तिमैं रजतभ्रमतैं प्रवृत्त हुये पुरुषकूं रजतका लाभ नहीं होवे, तब पुरुष यह कहै हैः–"रजतशून्यदेशमैं रजतज्ञानसैं मेरी निष्फल प्रवृत्ति हुई ॥" इस रीतिसैं भ्रमज्ञान अनुभवसिद्ध है । ताका लोप संभवै नहीं ॥ औ–

२ मरुभूमिमैं जलका बाध होवै, तब यह कहै हैः–"मरुभूमिमैं मिथ्याजलकी प्रतीति मेरेकूं हुई" या बाधतैं बी मिथ्याजल औ ताकी प्रतीति होवै है ॥

अख्यातिवादीकी रीतितैं तौ "रजतकी स्मृति औ शुक्तिज्ञानके भेदके अग्रहणतैं मेरी शुक्तिमैं प्रवृत्ति हुई" ऐसा बाध हुया चाहिये । और "मरुभूमिके प्रत्यक्षसैं औ जलकी स्मृतिसैं मेरी प्रवृत्ति हुई" ऐसा बाध हुया चाहिये। औ–

विषय तथा भ्रमज्ञान दोनूं त्यागिके अनेक प्रकारकी विरुद्धकल्पना अख्यातिवादमैं हैं । तथाहि नेत्रसंयोग हुये दोषके माहात्म्यतैं शुक्तिका विशेषरूपतैं ज्ञान होवै नहीं । यह कल्पना । तैसैं तत्तांशके प्रमोषतैं स्मृतिकल्पना औ विषयनका भेद है । औ भासै नहीं ॥ तैसैं ज्ञानोंका भेद है । कदी बी भासै नहीं । इत्यादिक सकलकल्पना विरुद्ध हैं॥ औ रजतकी प्रतीतिकालमैं अभिमुखदेशमैं रजत प्रतीत होवै है। यातैं अख्यातिवाद बी अनुभवविरुद्ध है ॥

इस रीतिसैं ख्यातिनका निरूपण कह्या ॥

॥ ४१ ॥ तर्कभ्रमके निर्णयपूर्वक ख्यातिनिरूपण औ खंडनके उपसंहारसहित चतुर्दशज्ञानोंका कथन ॥[२४५-२४८ ॥

॥ २४५ ॥ यद्यपि अनिर्वचनीयख्यातिका मंडन औ अन्यख्यातिनका प्रतिपादन औ खंडन अन्यग्रंथनमैं विस्तारतै लिख्या हैतथापि वह युक्ति कठिन होनैतैं स्वल्पमतिमान्आस्तिकअधिकारीकूं अनुपयोगी जानिके इहां संक्षेपतैं रीतिमात्र जनाई है ॥

॥ २४६ ॥ इस प्रकार संशय औ निश्चयरूप भ्रम कह्या ॥ तैसें तीसरा तर्क बी भ्रम ही है । काहेतें ? व्याप्यके आरोपतें व्यापकका आरोप तर्क कहिये है ॥ जैसें " यदि वह्निर्न स्यात्तदा धूमोऽपि न स्यात्" ऐसा ज्ञान धूमवह्निसहित देशमें होवै, सो तर्क है ॥ तहां वह्निका अभाव व्याप्य है । धूमका अभाव व्यापक है ॥ वह्निके अभावके आरोपतें धूमाभावका आरोप होवै है ॥ वह्निधूमके होते वह्नि-अभावका औ धूमाभावका ज्ञान है । यातें भ्रम है ॥ बाध हुये भ्रम होवै । ताकूं आरोप कहै हैं ॥ इसरीतिसें तीसरा तर्क बी भ्रम है ॥

॥ २४७ ॥ यद्यपि तर्कज्ञान बी भ्रमनिश्चयके अंतर्भूत है । तथापि इहां धूमवह्निका सद्भाव है । यातें तिनके अभावका बाध है । ताके होते बी पुरुषकी इच्छातें वह्निके अभावका औ धूमाभावका भ्रमज्ञान होवै है । यातें आरोपरूप विलक्षणता होनैतें पृथक् कह्या ॥

॥२४८॥ इस प्रकार प्रमाअप्रमाभेदतें वृत्तिज्ञान त्रयोदश हैं ॥ यद्यपि वृत्तिज्ञानके प्रसिद्ध भेद त्रयोदश ही हैं औ अवांतर भेद अनंत हैं । तथापि स्वप्नके प्रातिभासिकरज्जुआदिअवच्छिन्नचेतनमें अध्यस्तसर्पादिकनका ज्ञान मिलिके चतुर्दशज्ञान हैं ॥ इस रीतिसें रत्नोपमित चतुर्दशवृत्तिज्ञानका स्वरूप औ कारण लक्षणपूर्वक संक्षेपतें निरूपण किया ॥

इति श्रीवृत्तिरत्नावल्याम् अख्यातिप्रदर्शनपूर्वकखंडनं नाम त्रयोदशं रत्नं समाप्तम् ॥१३॥

॥अथचतुर्दशरत्नप्रारंभः ।१४॥

॥ वृत्तिफलनिरूपण ॥ २४९-२५७ ॥

॥ ४२ ॥ अवस्थात्रयका निरूपण ॥

॥ २४९-२५५ ॥

॥ २४९ ॥ उक्तवृत्तिरूप ज्ञानका प्रयोजन यह है:-

१ जीवकूं अवस्थात्रयका संबंध वृत्तिसें होवै है । औ-

२ पुरुषार्थप्राप्ति बी वृत्तिसें होवै है । यातें---

१ संसारप्राप्तिकी हेतु वृत्ति है । औ-

२ मोक्षप्राप्तिकी हेतु बी वृत्ति है । काहेतें ?-

॥ २५० ॥ अवस्थात्रयके संबंधसें जीवकूं संसार है ॥ अवस्थाशब्द कालका वाचक है ॥

१ स्वप्नावस्था औ सुषुप्तिअवस्थासें भिन्न जो इंद्रियजन्यज्ञानका आधारकाल, औ इंद्रियजन्यज्ञानके संस्कारका आधारकाल, सो जाग्रत्अवस्था कहिये है ॥

सुखादिज्ञानकालमें औ उदासीनकालमें यद्यपि इंद्रियजन्य ज्ञान नहीं है तथापि ताके संस्कार हैं । औ इंद्रियजन्यज्ञानके संस्कार स्वप्नावस्था सुषुप्तिअवस्थामें बी हैं, यातें स्वप्नावस्था सुषुप्तिअवस्थासें भिन्नकाल कह्या ॥

इस रीतिसें "जाग्रत्अवस्था" यह व्यवहार इंद्रियजन्यज्ञानके आधीन है । सो इंद्रियजन्यज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूप है ॥ अंतःकरणकी वृत्तिके मतभेदसें कोई आवरणनिवृत्ति प्रयोजन मानै हैं । तामें बी नाना मत हैं । औ कोई प्रकाशहेतु प्रमातासें विषयका संबंध वृत्तिका प्रयोजन मानै हैं ॥ उक्तप्रयोजनवाली इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्ति जाग्रत्अवस्थामें होवै है ॥

॥ २५१ ॥ २ इंद्रियसें अजन्य जो विषयगोचर अंतःकरणकी अपरोक्षवृत्ति ताकी अवस्थाकूं स्वप्नावस्था कहै हैं ॥ स्वप्नमें ज्ञेय औ ज्ञान अंतःकरणका परिणाम है औ-

॥२५२॥३ सुखगोचर अविद्यागोचर अज्ञानकी साक्षात्परिणामरूप वृत्तिकी अवस्थाकूं सुषुप्तिअवस्था कहै हैं ॥ सुषुप्तिमें अविद्याकी वृत्ति सुखगोचर औ अज्ञानगोचर होवै है ॥

॥ २५३ ॥ यद्यपि अविद्यागोचरवृत्ति जाग्रत्में बी "अहं न जानामि" इस रीतिसैं होवै है, तथापि वह वृत्ति अंतःकरणकी है। अविद्याकी नहीं ॥ तैसैं प्रातिभासिक रजताकारवृत्ति जाग्रत्में अविद्याका परिणाम है। सो अविद्यागोचर नहीं। तैसैं सुखाकारवृत्ति जाग्रत्में है। सो अविद्याका परिणाम नहीं है ॥

॥२५४॥इस रीतिसैं उक्तसुषुप्तिमैं अविद्याकी वृत्तिमैं आरूढ साक्षी अविद्याकूं प्रकाशै है औ स्वरूपसुखकूं प्रकाशै है ॥ सुषुप्तिअवस्थामैं सुखाकार अविद्याका परिणाम जिस अज्ञानांशका हुआ है, तिस अज्ञानांशमैं तिस पुरुषका अंतःकरण लीन है ॥ जाग्रत्कालमैं तिस अज्ञानांशका परिणाम अंतःकरण होवै है। यातैं अज्ञानकी वृत्तिसैं अनुभूतसुखकी जाग्रत्में स्मृति होवै है ॥ उपादानकारणका औ कार्यका भेद नहीं होनेतैं अनुभव औ स्मरणकूं व्यधिकरणता नहीं। नाम भिन्न अधिकरणता नहीं ॥

॥ २५५ ॥ इस रीतिसैं तीनि अवस्था हैं॥ मरणका औ मूर्च्छाका कोई सुषुप्तिमैं अंतर्भाव कहै हैं। कोई पृथक्‌ कहै हैं ॥ यह अवस्थाभेद वृत्तिके आधीन है ॥ जाग्रत्स्वप्नमैं तौ अंतःकरणकी वृत्ति है ॥

१ जाग्रत्मैं इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्ति है।
२ स्वप्नमैं इंद्रियअजन्य अंतःकरणकी वृत्ति है।
३ सुषुप्तिमैं अज्ञानकी वृत्ति है ॥

॥ ४३ ॥ वृत्तिके प्रयोजनका कथन ॥ २५६-२५७ ॥

॥ २५६ ॥

१ अवस्थाका अभिमान ही बंध है ॥ अभिमान बी भ्रमज्ञानकूं कहै हैं ॥ सो बी वृत्तिविशेष है। यातैं वृत्तिकृतबंध ही संसार है ॥ औ--

२ वेदांतवाक्यसैं "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति होवै। तासैं प्रपंचसहितअज्ञानकी निवृत्ति होवै है। सोई मोक्ष है ॥ यातैं---

१ वृत्तिका संसारदशामैं तौ व्यवहारसिद्ध प्रयोजन है। औ--

२ वृत्तिका परमप्रयोजन मोक्ष है ॥

॥ २५७ ॥ कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है। यातैं संसारनिवृत्ति मोक्ष है ॥ या कहनैतैं ब्रह्मरूप मोक्ष है। यह सिद्ध होवै है ॥ सो निवृत्तिका अधिष्ठानरूप ब्रह्म ज्ञातत्वविशिष्ट नहीं किंवा ज्ञातत्वोपहित नहीं। किंतु ज्ञातत्वरूप उपलक्षणसैं लक्षित है। यातैं सो निवृत्ति बी ज्ञातत्वोपलक्षितअधिष्ठान है ॥

इस रीतिसैं संक्षेपतैं वृत्तिज्ञानका प्रयोजन निरूपण किया ॥

॥ दोहा ॥

वृत्तिसूरके दर्शमैं,
मंददृष्टि जे लोक।
पीतांबर ता हित रवी,
माला रत्न सुतोक ॥१॥

इति श्रीमद्बापुसरस्वतीपूज्यपादशिष्यपीतांबरशर्मविदुषा परमसुहृत्साधुश्रीमत्त्रिलोकरामाज्ञया संकीर्णायां वृत्तिरत्नावल्यां वृत्तिफलनिरूपणं नाम चतुर्दशं रत्नं समाप्तम् ॥ १४ ॥

समाप्तोऽयं वृत्तिरत्नावलिर्ग्रंथः ॥

॥ साधुश्रीसुंदरदासजीकृत स्वप्नबोध ॥

॥ दोहा छंद ॥

स्वप्नेमें मेला भयो । स्वप्नेमांहि विछोह ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहीं मोह निर्मोह ॥ १ ॥
स्वप्नेमैं संग्रह कियो । स्वप्नेहीमैं त्याग ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना कछु राग विराग२॥
स्वप्नेमांही पति भयो । स्वप्ने कामी होइ ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । कामी पती न कोइ॥३॥
स्वप्नेमैं पंडित भयो । स्वप्ने मूरख जान ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहीं ज्ञान अज्ञान ॥४॥
स्वप्नेमैं राजा कहैं । स्वप्नेहीमैं रंक ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नांहिं साथरौ प्रयंक॥५॥
स्वप्नेमैं हत्या लगी । स्वप्ने न्हायो गंग ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । पाप न पुण्य प्रसंग॥६॥
स्वप्ने सूरातन कियो । स्वप्ने चाल्यो भागि ॥
दोन जु मिथ्या ह्वै गये । सुंदर देख्यो जागि७॥
स्वप्ने गयो प्रदशेमैं । स्वप्ने आयो भौन ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । आयो गयो सु कौन॥८॥
स्वप्ने खोई वस्तुकों । पाई स्वप्नेमांहि ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । पाई खोई नांहि ॥९॥
स्वप्नेमैं भूल्यो फिर्‌यो । स्वप्ने पाई बाट ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं। ओघट रह्यो न घाट१०॥
स्वप्ने चौरासी भ्रम्यो । स्वप्ने यमकी मार ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहिं डूब्यो नाहिं पार ११
स्वप्नेमैं मरिबो करै । स्वप्ने जन्मै आइ ॥
सुंदर जाग्गो स्वप्नतैं । को आवै को जाइ१२॥
स्वप्नमांहि स्वर्गे गयो । स्वप्ने नरकहिं दीन ॥
सुंदर जागो स्वप्नतैं । धर्म अधर्म न कीन १३॥

स्वप्नेमैं दुर्बल भयो । स्वप्नेमांहि सुपुष्ट ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहीं रूप नहिं कुष्ट१४॥
स्वप्नेमैं सुख पाइयो । स्वप्ने पायो दुःख ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं।ना कछु सुख नहिं दुःख१५॥
स्वप्नेमैं योगी भयो । स्वप्नेमैं संन्यास ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना घर ना बनवास१६॥
स्वप्नेमैं लोका भयों । स्वप्नेमांहि मथेन ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना कछु लेन न देन१७॥
स्वप्नेमैं ब्राह्मण भयो । स्वप्नेमैं शूद्रत्व ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं।नहिं तम रज कहिं सत्व१८
स्वप्नेमैं यम नियम व्रत । स्वप्ने तीरथ दान ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । एक सत्य भगवान॥१९॥
स्वप्ने दौड्यो द्वारिका । स्वप्ने जगन्नाथ ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । ना को संग न साथ॥२०॥
स्वप्नेमैं मथुरा गयो । स्वप्नेमैं हरिद्वार ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहिं बदरी केदार ॥२१॥
स्वप्नेमें कांशी मुवो । स्वप्नेमैं घरमांहिं ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । मुक्तिरासि भौ नाहिं२२॥
स्वप्ने दुष्कर तप कियो । स्वप्ने संशय ताप ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नाहिं आसीस न श्राप२३॥
स्वप्नेमैं निंदा भई । स्वप्नेमांहि प्रसंस ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । नहीं कृष्ण नाहिं कंस२४
स्वप्नेमैं भारत भयो । स्वप्ने यादवनाश ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं । मिथ्या वचन बिलास२५
स्वप्न सकल संसार है । स्वप्ना तीनौ लोक ॥
सुंदर जाग्यो स्वप्नतैं।तब सब जान्यो फोक २६

॥ इति साधुश्रीसुंदरदासजीकृतः स्वप्नबोधः संपूर्णः ॥

॥ अथ षट्दर्शनसारदर्शकपत्रकम् ॥

विषय	पूर्वमीमांसा	उत्तरमीमांसा (वेदांत)	न्याय	वैशेषिक	सांख्य	योग
जगत्	स्वरूपसैं अनादि अनंत प्रवाहरूप संयोगावियोगेवान्	नामरूप क्रियात्मके मायाका परिणाम चेतनका विवर्त्त	परमाणुआरंभित संयोगवियोगजन्य आकृतिविशेष	परमाणुआरंभित संयोगवियोगजन्य आकृतिविशेष	प्रकृतिपरिणाम त्रयोविंशतितत्त्वात्मक	प्रकृतिपरिणाम त्रयोविंशतितत्त्वात्मक
जगत्कारण	जीव अदृष्ट औ परमाणु	अभिन्ननिमित्तोपादानईश्वर	परमाणु ईश्वरादिनव	परमाणु ईश्वरादिनव	त्रिगुणात्मक प्रकृति	कर्मानुसार प्रकृति औ तन्नियामक ईश्वर
ईश्वर		मायाविशिष्टचेतन	नित्य इच्छाज्ञानादि गुणवान् विभु कर्त्ता विशेष	नित्य इच्छाज्ञानादिगुणवान् विभु कर्त्ता विशेष	०	क्लेशकर्मविपाकआशय असंबद्धपुरुष विशेष
जीव	जडचेतनात्मक विभु नाना कर्त्ता भोक्ता	अविद्याविशिष्टचेतन	ज्ञानादिचतुर्दशगुणवान् कर्त्ता भोक्ताजड़ विभु नाना	ज्ञानादिचतुर्दशगुणवान् कर्त्ता भोक्ताजड़ विभु नाना	असंग चेतन विभु नाना भोक्ता	असंग चेतन विभु नाना कर्त्ता भोक्ता
बंधहेतु	निषिद्धकर्म	अविद्या	अज्ञान	अज्ञान	अविवेक	अविवेक
बंध	नरकादि दुःखसंबंध	अविद्यातत्कार्य	एकविंशति दुःख	एकविंशतिदुःख	अध्यात्मादित्रिविध दुःख	प्रकृतिपुरुषसंयोगजन्य अविद्यादिपंच क्लेश
मोक्ष	स्वर्गप्राप्ति	अविद्यातत्कार्यनिवृत्तिपूर्वक परमानंदब्रह्मप्राप्ति	एकविंशतिदुःखध्वंस	एकविंशतिदुःखध्वंस	त्रिविधदुःखध्वंस	प्रकृतिपुरुषसंयोगाभावपूर्वक अविद्यादिपंचक्लेशनिवृत्ति
मोक्ष साधन	वेदविहितकर्म	ब्रह्मात्मैक्यज्ञान	इतरभिन्नात्मज्ञान	इतरभिन्नात्मज्ञान.	प्रकृतिपुरुषविवेक	निर्विकल्पसमाधि पूर्वक विवेक

अधिकारी	कर्मफलासक्त	मलविक्षेपदोषरहित चतुष्टयसाधनसंपन्न	दुःखजिहासु कुतर्की	दुःखजिहासु कुतर्की	संदिग्ध विरक्त	विक्षिप्तचित्तवान्
प्रकटकर्त्ता आचार्य	जैमिनि	वेदव्यास	गौतम	कणाद	कपिल	पतंजलि
प्रधानकांड	कर्मकांड	ज्ञानकांड	ज्ञानकांड	ज्ञानकांड	ज्ञानकांड	उपासनाकांड
वाद	आरंभवाद	विवर्त्तवाद	आरंभवाद	आरंभवाद	परिणामवाद	परिणामवाद
आत्मपरिमाणसंख्या	विभु नाना	विभु एक	विभु नाना	विभु नाना	विभु नाना	विभु नाना
प्रमाण	षट् (६)	षट् (६)	प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द (४)	प्रत्यक्ष अनुमान (२)	प्रत्यक्ष अनुमान शब्द (३)	प्रत्यक्ष अनुमान शब्द (३)
ख्याति	अख्याति	अनिर्वचनीय	अन्यथा	अन्यथा	अख्याति	अख्याति
सत्ता	जीवजगत् परमार्थसत्ता	परमार्थरूपात्मसत्ता व्यावहारिक औ प्रातिभाषिकजगत् सत्ता	जीवजगत् परमार्थसत्ता	जीवजगत् परमार्थसत्ता	जीवजगत् परमार्थसत्ता	जीवजगत् परमार्थसत्ता
उपयोग	चित्तशुद्धि	तत्त्वज्ञानपूर्वक मोक्ष	मनन	मनन	"त्वं" पदार्थशोधन	चित्तैकाग्र्य

॥ इति पीतांबरशर्मविदुषा संकीर्णं षड्दर्शनसारदर्शकं पत्रकम् ॥



॥ अथ श्रीपंचदशी ॥

नाटकदीपः ।

दशमप्रकरणम् ॥ १० ॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ १११७	परमात्माद्वयानंदपूर्णः पूर्वं स्वमायया । स्वयमेव जगद्भूत्वा प्राविशज्जीवरूपतः ॥ १ ॥	टीकांक: ३९४५ टिप्पणांक: ॐ

॥ ॐ श्रीपञ्चदशी ॥

नाटकदीपव्याख्या ॥ १० ॥

भाषाकर्तृकृतमङ्गलाचरणम् ।

श्रीमत्सर्वगुरून् नत्वा पञ्चदश्या नृभाषया ।
कुर्वे नाटकदीपस्य टीकां तत्त्वप्रकाशिकाम् ॥ १ ॥

॥ ॐ श्रीपञ्चदशी ॥ १ ॥

॥ अथ नाटकदीपकी

तत्त्वप्रकाशिका व्याख्या ॥ १ ॥

॥ भाषाकर्ताकृत मगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीयुक्तसर्वगुरुनकूं नमनकरिके पंचदशीके नाटकदीपनामदशमप्रकरणकी तत्त्वप्रकाशिकानामक टीकाकूं नरभाषासैं मैं करूं हूं ?

॥ संस्कृतटीकाकारकृत मंगलाचरण ॥

टीकाः—श्रीमत्भारतीतीर्थ औ विद्यारण्य इन दो मुनीश्वरनकूं नमनकरिके मेरेकरि नाटकदीपका अर्थ संक्षेपकरिके कहिये है ॥ १ ॥

टीकाकारकृतमंगलाचरणम् ।

नत्वा श्रीभारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरौ ।
अर्थो नाटकदीपस्य मया संक्षिप्य वक्ष्यते ॥ १ ॥

४५ चिकीर्षितस्य ग्रंथस्य निष्प्रत्यूहपरिपूरणायाभिमतदेवतातत्त्वानुस्मरणलक्षणं मङ्गलमाचरन्मन्दाधिकारिणामनायासेन निष्प्रपंच-

॥ १ ॥ अध्यारोप औ अपवादपूर्वक बंधनिवृत्तिके उपाय विचारका विषय (जीव परमात्मा) सहित कथन ॥ ३९४५--३९९९ ॥

॥ १ ॥ अध्यारोप औ साधन (विचारजन्य ज्ञान) सहित अपवाद ॥

॥ ३९४५--३९६२ ॥

॥ १ ॥ आत्मामैं अध्यारोप ॥

४५ प्रारंभ करनैकूं इच्छित नाटकदीपरूप

* चेतनविषै अध्यस्तअहकारादिकर्कू औ तिनके प्रकाशक

साक्षीकूं नाटकका रूपककरि प्रकाश करनैहारा प्रकरण की ॥

टीकांक: ३९४६ टिप्पणांक: ७४४	विष्ण्वाद्युत्तमदेहेषु प्रविष्टो देवताऽभवत् । मर्त्याद्यधमदेहेषु स्थितो भजति देवताम् ॥२॥	नाटकदीप: ॥ १० ॥ श्लोकांक: १११८

ब्रह्मात्मप्रतिपत्तिसिद्ध्ये "अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते । शिष्याणां बोधसिद्ध्यर्थं तत्त्वज्ञैः कल्पितः क्रमः" इति न्यायमनुसृत्यात्मन्यध्यारोपं तावदाह (परमात्मेति)—

४६] पूर्वम् अद्वयानन्दपूर्णः परमात्मा स्वमायया स्वयम् एव जगत् भूत्वा जीवरूपतः प्राविशत् ॥

४७) पूर्वं सृष्टेः प्राक् । अद्वयानन्दपूर्णः "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" । "पूर्णमदः पूर्णम्" इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धः स्वगतादिभेदशून्यः परमानन्दरूपः परिपूर्णः । परमात्मा स्वमायया " मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् " इति श्रुत्युक्तया स्वनिष्ठया मायाशक्त्या स्वयमेव जगद् भूत्वा " तदात्मानं स्वयमकुरुत, सच्च त्यच्चाभवत् " इति श्रुतेः स्वयमेव जगदाकारतां प्राप्य जीवरूपतः प्राविशत् । " तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य " इत्यादिश्रुतेः जीवरूपेण प्रविष्टवानित्यर्थः ॥ १ ॥

४८ ननु परमात्मन एवैकस्य सर्वशरीरेषु

ग्रंथकी निर्विघ्नपरिपूर्णता अर्थ इष्टदेवताके स्वरूपके स्मरणरूप मंगलकूं आचरते हुये आचार्य्य, मंद अधिकारिनकूं श्रमसैं विना निष्प्रपंचब्रह्मआत्माके निश्चयकी सिद्धिअर्थ " अध्यारोप औ अपवादकरि प्रपंचरहित परमात्माकूं निरूपण करियै है ॥ शिष्यनके बोधकी सिद्धिअर्थ तत्त्वज्ञपुरुषोंनै क्रम कल्प्या है" इस न्यायकूं अनुसरिके आत्माविषै अध्यारोपकूं प्रथम कहै हैं:—

४६] पूर्व अद्वय आनंद औ पूर्णरूप जो परमात्मा था । सो अपनी मायाकरि आप ही जगतरूप होयके तिसविषै जीवरूपसैं प्रवेश करता भया ॥

४७) सृष्टितैं पूर्व अद्वय आनंद औ पूर्ण कहियै " हे सौम्य ! यह जगत् आगे एक ही अद्वितीय सत् ही था " औ " विज्ञानआनंदरूप ब्रह्म है" औ " यह पूर्ण है । यह पूर्ण है" इत्यादिश्रुतिकरि प्रसिद्ध जो स्वगतआदिक भेदरहित परमानंदरूप परिपूर्ण परमात्मा था । सो अपनी मायाकरि कहियै " मायाकूं तौ प्रकृति नाम उपादान जानै औ मायावालेकूं तौ महेश्वर नाम मायाका अधिष्ठाननिमित्त जानै" इस श्रुतिमैं उक्त अपनै विषै स्थित मायाशक्तिकरि आप ही जगतरूप होयके कहियै " सो ब्रह्म आप ही आपकूं करता भया। स्थूल सूक्ष्मरूप होताभया " इस श्रुतितैं आप ही जगतआकारताकूं पायके जीवरूपकरि प्रवेश करता भया कहियै " तिस जगत्कूं रचिके तिसीहीके प्रति पीछे प्रवेश करता भया । इस जीवरूपकरि प्रवेशकरिके " इत्यादिक श्रुतितैं जीवरूपसैं प्रवेशकूं प्राप्त भया । यह अर्थ है ॥ १ ॥

४८ ननु । एक ही परमात्माकूं सर्वशरीरन

---

४४ परमात्माकी स्वगतआदिक तीनभेदसैं रहितताकूं देखो पंचमहाभूतविवेकगत २०-२५ श्लोकविषै औ तिनकी ३१०-३१८ टिप्पणविषै ॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११११९ ११२०	अनेकजन्मभजनात्स्वविचारं चिकीर्षति । विचारेण विनष्टायां मायायां शिष्यते स्वयम् ३॥ अद्वयानंदरूपस्य सद्वयत्वं च दुःखिता । बंधः प्रोक्तः स्वरूपेण स्थितिर्मुक्तिरितीर्यते ॥४॥	टीकांकः ३९५९ टिप्पणांक. ॐ

प्रविष्टत्वे पूज्यपूजकादिभावेन प्रतीयमान उत्तमाधमभावो विरुध्येतेत्याशङ्क्याह--

४९] विष्णवाद्युत्तमदेहेषु प्रविष्टः देवता अभवत् । मर्त्याद्यधमदेहेषु स्थितः देवतां भजति ॥

५०) नायं स्वाभाविक उत्तमाधमभावः किंतु शरीरोपाधिनिबंधनोऽतो न विरोध इति भावः ॥ २ ॥

(५१) इत्थमात्मन्यध्यारोपं संक्षेपेण प्रदर्श्य ससाधनं तदपवादं संक्षिप्य दर्शयति--

५२] अनेकजन्मभजनात् स्वविचारं चिकीर्षति, विचारेण मायायां विनष्टायां स्वयं शिष्यते ॥

५३) अनेकजन्मभजनात् अनेकेषु जन्मस्वनुष्ठितानां कर्मणां ब्रह्मणि समर्पणरूपात् भजनात् स्वविचारं स्वस्यात्मनो ब्रह्मरूपस्य ज्ञानसाधनं श्रवणादिकं, चिकीर्षति कर्तुमिच्छति । ततः स्वविचारेण विचारजनितज्ञानेन, मायायां स्वस्याद्वयानन्दत्वादिरूपाच्छादिकायामज्ञानाविद्यादिशब्दवाच्यायां विनष्टायां निवृत्तायां, स्वयम् अद्वयानन्दपूर्णः परमात्मैवावशिष्यते ॥ ३ ॥

५४ ननु " तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः

विषै प्रवेशकूं पाये हुये पूज्य औ पूजकआदिकभावकरि प्रतीयमान जो उत्तमअधमभाव है, सो विरोधकूं पावैगा । यह आशंका करि कहै हैं:--

४९] विष्णुआदिकउत्तमदेहनविषै प्रवेशकूं पाया हुया परमात्मा देवता कहिये पूज्य होता भया औ मनुष्यआदिक अधमदेहनविषै स्थित हुया परमात्मा देवताकूं भजता है ॥

५०) यह उत्तमअधमभाव स्वाभाविक नहीं है । किंतु शरीररूप उपाधिका किया है । यातैं विरोध नहीं है । यह भाव है ॥ २ ॥

॥ २ ॥ साधन (विचारजन्य ज्ञान) सहित अपवाद ॥

५१ ऐसैं आत्माविषै अध्यारोपकूं संक्षेपसैं दिखायके साधनसहित तिसके अपवादकूं संक्षेपकारिके दिखावै हैं:--

५२] अनेकजन्मविषै भजनतैं अपनै विचारकूं करनैकूं इच्छता है । विचारकरि मायाके नष्ट भये आप अवशेष रहता है ॥

५३)अनेकजन्मविषै अनुष्ठान किये कर्मनके ब्रह्मविषै समर्पणरूप भजनतैं अपनै ब्रह्मरूपके ज्ञानके साधन श्रवणादिरूप विचारकूं करनैकूं इच्छता है । तातैं अपनै विचारकरि कहिये विचारजनितज्ञानकरि अपनै अद्वयआनंदपनैआदिकरूपकी आच्छादक अज्ञानअविद्याआदिक शब्दकी वाच्य मायाके निवृत्त भये आप अद्वयआनंदपूर्णरूप परमात्मा ही अवशेष रहता है ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥ तृतीयश्लोकउक्तअपवादकूं बंधनिवृत्ति (मुक्ति) रूप ज्ञानफलरूपताकी सिद्धि ॥

५४ ननु । "सो ब्रह्म मैं हूं । ऐसैं जानिके

प्रमुच्यते" इत्यादिश्रुतिभिः बंधनिवृत्तिलक्षणस्य मोक्षस्य ज्ञानफलत्वाभिधानात् परमात्मावशेषस्य तत्फलताभिधानमनुपपन्नमित्याशंक्याह—

९९] अद्वयानन्दरूपस्य सद्वयत्वं च दुःखिता बन्धः प्रोक्तः स्वरूपेण स्थितिः मुक्तिः इति ईर्यते ॥

९६) अद्वितीये ब्रह्मणि वास्तवस्य बन्धस्य मोक्षस्य वा दुर्निरूपत्वात् दुःखित्वादिभ्रम एव बन्धः स्वरूपावस्थितिलक्षणा तन्निवृत्तिरेव मोक्षः अतो न श्रुतिविरोध इति भावः ४

सर्वबंधनोंतैं छूटता है" इत्यादिक श्रुतिनकरि बंधकी निवृत्तिरूप मोक्षकूं ज्ञानकी फलरूपताके कथनतैं परमात्माके अवशेष रहनैकूं तिस ज्ञानकी फलरूपताका कथन बनै नहीं। यह आशंका करि कहै हैं:—

९९] अद्वय आनंदरूप आत्माकूं द्वैतसहितपना औ दुःखीपना बंध कहा है:- औ स्वरूपकरि स्थिति मुक्ति कहिये है॥

९६) अद्वितीयब्रह्मविषै वास्तवबंध वा मोक्षकूं दुःखसैं बी निरूपण करनैकूं अशक्य होनैतैं दुःखीपनैआदिकका भ्रम ही बंध है, औ स्वरूपकरि स्थितिरूप तिस बंधकी निवृत्ति ही मोक्ष है। यातैं श्रुतिनका विरोध नहीं है। यह भाव है ॥ ४ ॥

४५ इहां यह रहस्य है:——

(१) महावाक्यके श्रवणमैं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसी अंतःकरणकी वृत्तिरूप तत्त्वज्ञान होवै है। तिससैं प्रपंचसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवै है, सोई मोक्ष है॥ कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान रूप होवै है यातैं ब्रह्मरूप मोक्ष है। यह सिद्ध होवै है ॥ यह भाष्यकारका सिद्धांत है। औ——

(२) न्यायमकरंदकार (अद्वैतवादी) नैं कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप नहीं मानी है। किंतु अधिष्ठानसैं भिन्न सत्‌रूप, असत्‌रूप, सत्‌असत्‌रूप औ सत्‌असत्‌तैं विलक्षण अनिर्वचनीय, इन चारि प्रकारसैं विलक्षणप्रकारवाली कल्पितकी निवृत्ति मानी है ताहीकूं पंचमप्रकार कहै हैं। यह समीचीन नहीं। काहेतैं? सत्‌रूपआदिकवस्तु लोकशास्त्रआदिकमैं प्रसिद्ध है। इनसैं विलक्षण कोई वस्तु प्रसिद्ध नहीं। अप्रसिद्धवस्तुविषै पुरुषकी अभिलाषा होवै नहीं। किंतु प्रसिद्धविषै होवै है। यातैं पंचमप्रकाररूप निवृत्तिके मानै पुरुषकी अभिलाषाकी विषयतारूप पुरुषार्थताका अभाव होवैगा। यातैं अधिष्ठान रूप ही निवृत्ति माननी चाहिये।

(१) सो अधिष्ठानरूप निवृत्ति अज्ञातअधिष्ठानरूप मानै तौ प्रयत्न विना ही सर्वकूं मोक्षकी प्राप्तिके होनैतैं श्रवणादिककी निष्फलता होवैगी। औ——

(२) ज्ञातअधिष्ठानरूप निवृत्ति मानै तौ विदेहमोक्षदशामैं ब्रह्मविषै ज्ञातत्व कहिये ज्ञानके विषय होनैरूप धर्मका अभाव है। यातैं मोक्षकूं परमपुरुषार्थताका अभाव होवैगा औ

(३) ज्ञातत्वरूप धर्मके अभावतैं ज्ञातत्वविशिष्ट वा ज्ञातत्वउपहित अधिष्ठानरूप बी निवृत्ति संभवै नहीं। काहेतैं? विशेषणवाला विशिष्ट कहिये है औ उपाधिवाला उपहित कहिये है। विशेषण औ उपाधि जितनैकालविषै अविद्यमान होवै तितनै कालपर्यंत अपनै संबंधी वस्तुकूं अन्य वस्तुतैं भिन्नकरिके जनावै है। विदेहमोक्षदशामैं ज्ञातत्वके अभावतैं तिस ज्ञातत्वकूं विशेषणरूपकरि वा उपाधिरूपकरि अज्ञातअवस्थावाले ब्रह्मतैं भिन्नकरि जनावना संभवै नहीं।

यातैं ज्ञातत्वउपलक्षित अधिष्ठानरूप कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति है। काहेतैं? उपलक्षण जो है सो अपनै भाव (वर्त्तमान) अभाव (भविष्यत्) दोनू कालमैं बी अपनै संबंधीकूं अन्यसैं भिन्नकरि जनावता है। यातैं जैसैं देवदत्तके ग्रहके उपलक्षण काकके होते न होते बी "यह देवदत्तका ग्रह है" ऐसा व्यवहार होवै है, तैसैं जीवन्मुक्तिदशामैं ज्ञातत्वके होते औ विदेहमुक्तिदशामैं ताके न होते बी कार्यसहितअज्ञानकी निवृत्तिरूप अधिष्ठान जो है सो ज्ञातत्वउपलक्षित है। यह व्यवहार होवै है ॥ औ——

कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्न है। इस पक्षमैं आग्रह होवै तौ बी अनिर्वचनीयकी निवृत्ति अनिर्वचनीयरूप है, पंचमप्रकाररूप नहीं ॥ निवृत्ति नाम ध्वंसका है। सो ध्वंस न्यायमतमैं तौ अनंतअभावरूप है। परंतु सिद्धांतमतमैं क्षणिकभाव विकाररूप है। काहेतैं यास्कमुनिनैं जन्मादिकषट्भाव (अनिर्वचनीय) विकार कहे हैं। तिनमैं ध्वंसशब्दका पर्याय नाश क्षणिकरूप गिन्या है। यातैं सो ध्वंस क्षणिकाभावरूप है। सो ज्ञानसैं उत्तरकाल एकक्षण रहै है। पीछे तिस निवृत्तिका अत्यंत अभाव होवै है। सो अत्यंतअभाव ब्रह्मरूप है। यातैं द्वैतकी शंका नहीं ॥ औ——

कल्पितकी निवृत्ति ज्ञानसैं जन्य होनैतैं सादि है औ ब्रह्मरूप होनैतैं अनंत है। यातैं सिद्धांतमैं मोक्ष सादि औ अनंत कहिये है ॥ इस रीतिसैं स्वरूपकरि स्थितिरूप बंधकी निवृत्ति ही मोक्ष है।

नाटकदीपः ॥१०॥ श्लोकांकः ११२१ ११२२	^६१^ अविचारकृतो बंधो विचारेण निवर्तते । ^६१^ तस्माज्जीवपरात्मानौ सर्वदैव विचारयेत् ॥५॥ ^६४^ अहमित्यभिमंता यः कर्ताऽसौ तस्य साधनम् । ^६७^ मनस्तस्य क्रिये अंतर्बहिर्वृत्ती क्रमोत्थिते ॥ ६॥	टीकांकः ३९७९ टिप्पणांकः ॐ

५७ ननु "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः" इति स्मृतेर्मोक्षस्य कर्मसाधनतावगमात् किमनेन विचारजनितज्ञानेनेत्यत आह--

५८] अविचारकृतः बंधः विचारेण निवर्तते ॥

५९) विचारप्रागभावोपलक्षिताज्ञानकृतस्य बंधस्य न विचारजन्यज्ञानादन्यतो निवृत्तिरुपपद्यते। उदाहृतस्मृतौ च संसिद्धिशब्देन चित्तशुद्धिरेवाभिधीयते, न मोक्ष इति भावः ॥

६० विचारेण बंधननिवृत्तिरुक्ता किं विषयेण विचारेणत्यत आह-

६१] तस्मात् जीवपरात्मानौ सर्वदा एव विचारयेत् ॥

६२) तत्त्वसाक्षात्कारपर्यंतं सर्वदा विचारं कुर्यादित्यर्थः ॥ ५ ॥

६३ तत्र जीवस्वरूपं तावन्निरूपयति (अहमिति)-

६४] यः "अहम्" इति अभिमंता असौ कर्ता ॥

६५)यः चिदाभासविशिष्टः अहंकारो

॥ ४ ॥ बंधनिवृत्तिअर्थ विचारकी कर्तव्यता औ विचारके विषयका सूचन ॥

५७ ननु "जनकआदिक जे भये हैं, वे कर्मकरि ही संसिद्धिकूं प्राप्त भये" इस गीतास्मृतितैं मोक्षकूं कर्मरूप साधनवान्ताके जाननैतैं इस विचारसैं जनित ज्ञातकरि क्या प्रयोजन है ? तहां कहै हैं:--

५८] अविचारका किया जो बंध है, सो विचारकरि निवर्त्त होवै है ॥

५९) विचारके प्राक्अभावकरि उपलक्षित अज्ञानका किया जो बंध है, ताकी विचारसैं जन्य ज्ञानतैं अन्यसाधनतैं निवृत्ति संभवै नहीं औ उदाहरण करी गीतास्मृतिविषै "संसिद्धि" शब्दकरि चित्तशुद्धि ही कहिये है। मोक्ष नहीं। यह भाव है ॥

६० विचारकरि बंधकी निवृत्ति कही, सो किसकूं विषय करनैहारे नाम किस वस्तुके विचारकरि बंधकी निवृत्ति होवै है ?तहां कहै हैं:-

६१] तातैं जीव औ परमात्माकूं सर्वदा ही विचार करना ॥

६२) तत्त्वके साक्षात्कारपर्यंत सर्वदा जीव परमात्माके विचारकूं करना। यह अर्थ है ॥५॥

॥ २ ॥ पंचमश्लोकउक्तविचारके विषय जीव औ परमात्माका स्वरूप ॥ ३९६३-३९८४ ॥

॥ १ ॥ क्रियायुक्त कारणसहित कर्तारूप जीवका स्वरूप ॥

६३ तिन जीवपरमात्मारूप विचारके विषयनविषै जीवके स्वरूपकूं प्रथम निरूपण करै हैं:

६४] जो "अहं" ऐसैं मानता है, यह कर्ता है ॥

६५) जो चिदाभासविशिष्ट अहंकार

टीकांक: ३९६६ टिप्पणांक: ॐ	अंतर्मुखाहमित्येषा वृत्तिः कर्तारमुल्लिखेत् । बहिर्मुखेदमित्येषा बाह्यं वस्त्विदमुल्लिखेत् ॥ ७ ॥ इदमो ये विशेषाः स्युर्गंधरूपरसादयः । असांकर्येण तान्भिद्याद्घ्राणादींद्रियपंचकम् ॥ ८ ॥	नाटकदीप: ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११२३ ११२४

व्यवहारदशाया देहादौ अहमिति अभिमन्यते असौ कर्त्ता कर्तृत्वादिधर्मविशिष्टो जीव इत्यर्थः ॥

६६ तस्य किं करणमित्यपेक्षायामाह–

६७] तस्य साधनं मनः ॥

६८) कामादिवृत्तिमानंतःकरणभागो मनः।

६९ करणस्य क्रियाव्याप्तत्वात् तत्क्रियां दर्शयति--

७०] तस्य क्रमोत्थिते अंतर्बहिर्वृत्ती क्रिये ॥

७१ अनयोः स्वरूपं विषयं च विविच्य दर्शयति–

७२] अंतर्मुखा "अहम्" इति वृत्तिः एषा कर्तारम् उल्लिखेत् । बहिर्मुखा "इदम्" इति एषा बाह्यम् इदं वस्तु उल्लिखेत् ॥

७३) इदमित्येषा इति बहिर्वृत्तेः स्वरूपाभिनयः। अविशिष्टेन विषयप्रदर्शनं बाह्यं देहाद्बहिर्वर्तमानमिदंतया निर्दिश्यमानं वस्तूल्लिखेत् विषयीकुर्यादित्यर्थः ॥ ७ ॥

७४ ननु मनसैव सर्वव्यवहारसिद्धौ चक्षुरादिवैयर्थ्यं प्रसज्येतेत्याशंक्याह–

व्यवहारदशामैं देहादिकविषै "अहं" कहिये मैं ऐसैं मानता है। यह कर्त्ता कहिये कर्त्तापनैआदिकधर्मविशिष्ट जीव है। यह अर्थ है ॥

६६ तिस कर्त्ताका कौन करण है ? इस पूछनैकी इच्छाके भये कहै हैं:--

६७] तिस कर्त्ताका साधन कहिये करण मन है ॥

६८) कामादिकवृत्तिमान् अंतःकरणका भाग मन है ॥

६९ करणकूं क्रियाकरि व्याप्त होनैतैं तिस मनरूप करणकी क्रियाकूं दिखावै हैं:–

७०] तिस मनकी क्रमकरि उत्पन्न अंतर्वृत्ति औ बहिर्वृत्तिरूप क्रिया हैं॥६॥

॥ २ ॥ जीवके करण मनकी क्रियाका स्वरूप औ विषय ॥

७१ इन अंतरबाहिरवृत्तिनके स्वरूपकूं औ विषयकूं विवेचनकरिके दिखावै हैं:–

७२] अंतर्मुख जो "मैं" इस आकारवाली वृत्ति है, सो कर्त्ताकूं विषय करै है औ बहिर्मुख जो "इदं" कहिये यह इस आकारवाली वृत्ति है, सो बाह्य इदंवस्तुकूं कहिये इस वस्तुकूं विषय करै है ॥

७३) "इदं" (यह) इस आकारवाली" इतनै मूलके पदकरि बाहिरवृत्तिके स्वरूपका कथन किया औ अवशेष रहे उत्तरार्धगत मूलके भागकरि बाहिरवृत्तिके विषयकूं दिखावते हैं:– यह बाहिरवृत्ति देहतैं बाहिर वर्तमान जो इदंपनैकरि निर्देश करिये है वस्तु, तिसकूं विषय करै है। यह अर्थ है ॥ ७ ॥

॥ ३ ॥ सर्वव्यवहारके हेतु मनके होते बी घ्राणादिइंद्रियनका उपयोग ॥

७४ ननु । मनकरिही सर्वव्यवहारकी सिद्धिके हुये चक्षु आदिक इंद्रियनकी व्यर्थताका प्रसंग होवैगा। यह आशंका करि कहै हैं:--

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११२५ ११२६

कर्तारं च क्रियां तद्वद् व्यावृत्तविषयानपि ।
स्फोरयेदेकयत्नेन योऽसौ साक्ष्यत्र चिद्वपुः ॥९॥
ईक्षे[८१] शृणोमि जिघ्रामि स्वादयामि स्पृशाम्यहम् ।
इति भासयते सर्वं नृत्यशालास्थदीपवत् ॥१०॥

टीकांकः ३९७९ टिप्पणांकः ॐ

७५] इदमः विशेषाः ये गन्धरूपरसादयः स्युः तान् घ्राणादीन्द्रियपञ्चकं असाङ्कर्येण भिद्यात् ॥

७६) मनसेदमिति सामान्यमात्र गृह्यते न तु तद्विशेषो गन्धादिरतस्तद्ग्रहणे घ्राणादिकमुपयुज्यत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

७७ एवं सोपकरणं जीवस्वरूपं निरूप्य परमात्मानं निरूपयति–

७८] कर्तारं च क्रियां तद्वत् व्यावृत्तविषयान् अपि एकयत्नेन यः चिद्वपुः स्फोरयेत् असौ अत्र साक्षी ॥

७९) कर्तारं पूर्वोक्तमहंकाररूपम् । क्रियाम् अहमिदमात्मकमनोवृत्तिरूपाम् । व्यावृत्तविषयानपि व्यावृत्तान् अन्योन्यविलक्षणान् घ्राणादिग्राह्यान् गन्धादीन् विषयान् च । एकयत्नेन युगपदेव । यः चिद्वपुः चिद्रूप एव सन् । स्फोरयेत् प्रकाशयेत् । असावत्र वेदान्तशास्त्रे साक्षी इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ९ ॥

८० साक्षिण एकयत्नेन सर्वस्फोरकत्वमभिनीय दर्शयति (ईक्षे शृणोमीति)—

८१] "अहम् ईक्षे, शृणोमि, जिघ्रामि, स्वादयामि, स्पृशामि" इति सर्वं भासयेत् ॥

७५] इदंपदार्थके भेद जे गन्धरूपरसआदिक हैं तिनकूं घ्राणआदिक इन्द्रियनका पञ्चक परस्पर मिलाप विना भेदकरि ग्रहण करै है ॥

७६) मनकरि "यह" ऐसे सामान्यवस्तु मात्र ग्रहण करिये हैं, परंतु तिसका विशेष गंधादिक नहीं । यातैं तिस वस्तुके विशेषके ग्रहणविषै घ्राणआदिकइंद्रियनका पंचक उपयोगकूं पावता है । यह अर्थ है ॥ ८ ॥

॥४॥ परमात्मा (साक्षी) का निरूपण ॥

७७ ऐसैं सामग्रीसहित जीवके स्वरूपकूं निरूपण करिके अब परमात्माकूं निरूपण करै हैं:–

७८] कर्त्ताकूं औ क्रियाकूं तैसैं भिन्नभिन्नविषयनकूं बी एकयत्नकरि जो चिद्रूप हुआ प्रकाशता है, सो इहां साक्षी कहिये है ॥

७९) पूर्व श्लोक ६ विषै उक्त अहंकाररूप कर्त्ताकूं औ "अहं" अरु "इदं" इस आकारवाली मनकी वृत्तिरूप क्रियाकूं औ परस्परविलक्षण अरु घ्राणआदिकइन्द्रियनसैं ग्रहण करनै योग्य गंधादिक विषयनकूं एकयत्नकरि कहिये एककालविषै ही जो चेतनरूप ही हुया प्रकाशता है, यह चेतन इहां वेदांतशास्त्रविषै साक्षी ऐसैं कहिये है । यह अर्थ है ॥ ९ ॥

॥ ९ ॥ साक्षी (परमात्मा)के एकप्रयत्नसैं सर्वकी प्रकाशकता दृष्टांतसहित आकार ॥

८० साक्षीके एकयत्नकरि सर्वके प्रकाश करनैकूं आकारकरि दिखावै हैं:–

८१] "मैं देखता हूं, मैं सुनता हूं, मैं सूंघता हूं, मैं स्वाद लेता हूं, मैं स्पर्श करता हूं।" ऐसैं सर्वकूं प्रकाशता है ॥

टीकांक: ३९८२ टिप्पणांक: ॐ	नृत्यशालास्थितो दीपः प्रभुं सभ्यांश्च नर्तकीम्। दीपयेदविशेषेण तदभावेऽपि दीप्यते ॥ ११ ॥ अहंकारं धियं साक्षी विषयानपि भासयेत । अहंकाराद्यभावेऽपि स्वयं भात्येव पूर्ववत् ॥ १२ ॥	नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११२७ ११२८

८२) ईक्षे रूपमहं पश्यामीत्येवं द्रष्टृदर्शनदृश्यलक्षणां त्रिपुटीमेकयत्नेन भासयेत्। एवं श्रृणोमि इत्यादावपि योज्यम् ॥

८३ युगपदविकारित्वेनानेकावभासकत्वे दृष्टांतमाह—

८४] नृत्यशालास्थदीपवत् ॥ १० ॥

८५ दृष्टांतं स्पष्टयति—

८६] नृत्यशालास्थितः दीपः प्रभुं च सभ्यान् नर्तकीम् अविशेषेण दीपयेत्। तदभावे अपि दीप्यते ।

८७) अविशेषेण प्रभ्वादिविषयविशेषावभासनाय वृद्ध्यादिविकारमंतरेणेति यावत् ११

८८ दार्ष्टांतिके योजयति (अहंकारमिति)—

८९] साक्षी अहंकारं धियं विषयान् अपि भासयेत । अहंकाराद्यभावे अपि स्वयं पूर्ववत् भाति एव ॥

---

८२) " रूपकूं मैं देखता हूं" ऐसैं रूपद्रष्टा जो अहंकार, दर्शन जो वृत्तिरूप क्रिया अरु घटादिरूप दृश्य, इस त्रिपुटीकूं एकयत्नकरि प्रकाशता है। ऐसैं " मैं शब्दकूं सुनता हूं " इत्यादिकव्यवहारविषै बी श्रोता, श्रवण औ श्रोतव्य, इत्यादिकात्रिपुटीनकूं एकयत्नकरि प्रकाशता है। सो योजना करनेकूं योग्य है ॥

८३ एककालविषै अविकारी होनेकरि अनेकनके प्रकाशकपनैविषै दृष्टांत कहै हैं:—

८४] नृत्यशालाविषै स्थित दीपककी न्याई ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ श्लोक १० उक्त दृष्टांतके वर्णनकरि परमात्माकूं निर्विकारी होनेकरि सर्वकी प्रकाशकता ॥३९८५–३९९९॥

॥ १ ॥ श्लोक १० उक्त दृष्टांतकी स्पष्टता ॥

८५ दृष्टांतकूं स्पष्ट करै हैं:—

८६] नृत्यशालाविषै स्थित जो दीप, सो प्रभु जो सभापति ताकूं औ सभ्य जे सभाविषै स्थित लोक तिनकूं औ नर्तकी जो नृत्य करनेहारी स्त्री ताकूं सम्पूर्णताकरि प्रकाशता है औ तिन प्रभुआदिकनके अभाव हुये बी प्रकाशता है ॥

८७] अशेषकरि कहिये प्रभुआदिक विषयनके भेदके प्रकाशनैअर्थ वृद्धिआदिक विकारसैं विना दीपक प्रकाशता है। यह अर्थ है ॥ ११ ॥

॥ २ ॥ दृष्टांतउक्तअर्थकी दार्ष्टान्तमैं योजना ॥

८८ दार्ष्टांतिकविषै जोड़ते हैं:—

८९] ऐसैं साक्षी अहंकारकूं औ बुद्धिकूं औ शब्दादिकविषयनकूं बी प्रकाशता है औ अहंकारआदिकके अभाव हुये बी आप पूर्वकी न्यांई भासता ही है ॥

नाटकदीपः ॥ १० ॥ श्लोकांकः ११२९ ११३०	निरंतरं भासमाने कूटस्थे ज्ञप्तिरूपतः । तद्भासा भासमानेय बुद्धिर्नृत्यत्यनेकधा ॥१३॥ अहंकारः प्रभुः सभ्या विषया नर्तकी मतिः । तालादिधारीण्यक्षाणि दीपः साक्ष्यवभासकः १४	टीकांकः ३९९० टिप्पणांकः ॐ

९०) सुषुप्त्यादौ अहंकाराद्यभावेऽपि तत्साक्षितया भात्येव इत्यर्थः ॥ १२ ॥

९१ ननु प्रकाशरूपाया बुद्धेरेवाहंकारादि-सर्ववस्त्ववभासकत्वसंभवात् किं तदतिरिक्त-साक्षिकल्पनयेत्याशङ्क्याह (निरन्तरमिति)

९२] कूटस्थे ज्ञप्तिरूपतः निरन्तरं भासमाने इयं बुद्धिः तद्भासा भासमाना अनेकधा नृत्यति ॥

९३] कूठस्थे निर्विकारे साक्षिणि ज्ञप्तिरूपतः स्वप्रकाशचैतन्यतया, निरन्तरं भासमाने सदा स्फुरति सति, इयं बुद्धिस्तद्भासा तस्य साक्षिणः स्वरूप-चैतन्येन भासमाना प्रकाशमानैव अनेकधा घटोऽयं पटोऽयमित्यादि ज्ञाना-कारेण नृत्यति विक्रियते ॥ अयं भावः-- यतो बुद्धेर्विकारितया जडत्वात् स्वतः स्फूर्तिराहित्यमतस्तदतिरिक्तः सर्वावभासकः साक्ष्यभ्युपगन्तव्य इति ॥ १३ ॥

९४ उक्तमर्थं श्रोतृबुद्धिसौकर्याय नाटक-त्वेन निरूपयति--

९५ अहंकारः प्रभुः । विषयाः सभ्याः । मतिः नर्तकी । अक्षाणि तालादिधारीणि । अवभासकः साक्षी दीपः ॥

---

९०) सुषुप्तिआदिकविषै अहंकारआदिकके अभाव हुये बी आत्मा तिस अभावका साक्षी होनैकरि भासता ही है । यह अर्थ है ॥ १२ ॥

॥ ३ ॥ बुद्धितैं भिन्न सर्वप्रकाशकसाक्षीके अगीकारकी योग्यता ॥

९१ ननु प्रकाशरूप बुद्धिकूं ही अहंकार आदिक सर्ववस्तुनके अवभासकपनेके सभवतैं तिस बुद्धितैं भिन्न साक्षीकी कल्पनासैं क्या प्रयोजन है ? यह आशंका करि कहै हैं:--

९२ कूटस्थकूं ज्ञप्तिरूपसैं निरंतर भासमान होते तिस कूटस्थके प्रकाश-करि भास्यमान यह बुद्धि अनेक प्रकारसैं नृत्य करती है ॥

९३) निर्विकारसाक्षीकूं स्वप्रकाश चैतन्य होनैकरि सदा स्फुरायमान होते । यह बुद्धि तिस साक्षीके स्वरूप चैतन्यकरि भासमान ही हुई अनेकप्रकारसैं कहिये " यह घट है, यह पट है । " इत्यादि ज्ञानके आकारसैं नृत्य करती है, कहिये विकारकूं पावती है॥ इहां यह भाव है:-जातैं बुद्धिकूं विकारीपनैकरि जड हौनैतैं आपकरि प्रकाशरहितपना है । यातैं तिस बुद्धितैं भिन्न सर्वका अवभासक साक्षी अंगीकार करनैकूं यागेय है ॥ १३ ॥

॥ ४ ॥ श्रोताकी बुद्धिमैं सुगम करनैवास्तै श्लोक १२-१३ उक्तअर्थका नाटकपनैकरि निरूपण ॥

९४ श्लोक १२-१३ उक्तअर्थकूं श्रोताकी बुद्धिविषै सुगम होनैअर्थ नाटकपनैकरि निरूपण करै हैः--

९५ अहंकार स्वामी है औ विषय सभावासी पुरुष हैं । बुद्धि नर्तकी है औ इंद्रियतालआदिकके धारण करनै-हारे हैं औ अवभासक साक्षी दीप है ॥

९६) विषयभोगसाकल्यवैकल्याभिमान-प्रयुक्तहर्षविषादवत्त्वान्नृत्याभिमानिप्रभुतुल्यत्व-महंकारस्य । परिसरवर्तित्वेऽपि विषयाणां तद्ग्राहित्यात्सभ्यपुरुषसाम्यम् । नानाविध-विकारित्वात् नर्तकीसाम्यं धियः । धीविक्रिया-

९६) विषयभोगकी संपूर्णता औ असंपूर्णताके अभिमानके किये हर्ष औ विषाद्वाला होनैतैं अहंकारकूं नृत्यका अभिमानी प्रभु जो राजा ताकी तुल्यता है औ चारिओरतैं वर्तनैहारे हुये बी तिस उक्तहर्षविषाद-वान्‌ताकारि रहित होनैतैं विषयनकूं सभ्यपुरुषनकी समता है औ नानाप्रकारके विकारवाली होनैतैं बुद्धिकूं नर्त्तकी जो नृत्य करनैहारी स्त्री ताकी समता है औ बुद्धिके विकारनके

४६ जैसें नृत्यका अभिमानी राजा नृत्यकी संपूर्णता औ असंपूर्णताके अभिमानकरि हर्षविषादवाला होवै है औ नर्तकीआदिकका धनाढयता करि आश्रय है औ नृत्यशालाका निर्वाहक है औ अनेकदारायुक्त है औ बडे कार्यका कर्त्ता है औ बडे भोगका भोक्ता है। तैसें अहंकार बी भोगकी संपूर्णता औ असंपूर्णताके अभिमानकरि हर्षविषादवाला होवै है औ उपाधिरूपतासें आत्मधनयुक्त होनैकरि बुद्धिआदिकनका आश्रय है औ समष्टिव्यष्टिदेहरूप शालाका अहंममभावकरि निर्वाहक है औ शुभाशुभवृत्तिरूप अनेकदाराकरि युक्त है औ सर्वकर्मका कर्त्ता है औ सर्वभोगका भोक्ता है। यातैं साभासअहंकार नृत्यअभिमानी राजाके तुल्य है ॥

४७ जैसें सभाविषै स्थित पुरुष (ऊपरके टिप्पणविषै उक्त) राजाके धर्मनसें रहित हुये चारिओरतें वर्तते हैं औ राजाके स्वाधीन हैं। तैसें शब्दादिकविषय बी कर्तृत्वभोक्तृत्वआदिक अहंकारके धर्मनसें रहित हुये चारिओरतें परिदृश्यमान हैं औ अहंकारके स्वाधीन हैं। यातैं सभ्यपुरुषनके तुल्य हैं ॥

४८ जैसें नर्तकी, नृत्यउपयोगी अनेकचेष्टारूप विकार (अन्यथाअवयव) वाली होवै है औ सर्वलोकनकी ओर हस्त आदिककूं प्रसारती है औ (१) शृंगार, (२)वीर, (३)करुण, (४) अद्भुत, (५) हास्य, (६) भयानक, (७) बीभत्स, (८) रौद्र, अरु (९) शांत इन नवरसरूप मनोभावकरि राजाकूं रंजन करती है ।

तैसें बुद्धि बी कामादिपरिणामरूप अनेकविकारवाली होवै है औ सर्वविषयाकार होनैकरि अपनै अग्रभागरूप हस्तकूं सर्वओरतैं प्रसारती है। औ—

(१) शास्त्रसंस्कारसैं रहित होवै तब वस्त्रभूषणादिककी शोभाके अभिमानकरि शृंगाररसकूं दिखावती है। औ—

(२)शरीरकी प्रबलता देखिके युद्धादिकके प्रसंगमैं पुरुषपनैके अभिमानकरि वीररसकूं दिखावती है। औ—

(३) पुत्रकलत्रादिसंबंधिनके दुःखकूं देखिके कोमल भये अंतःकरणमैं करुणरसकूं दिखावती है। औ—

(४) इंद्रजालादिकअपूर्वपदार्थकूं देखिके आश्चर्यकूं पावती हुई अद्भुतरसकूं दिखावती है औ—

(५) वाञ्छितविषयके लाभतैं आनंदकूं पावती हुई हास्यरसकूं दिखावती है। औ—

(६) शत्रुआदिकतैं जन्य दुःखकी चिंताकारि भयकूं पावती हुई भयानकरसकूं दिखावती है। औ—

(७) मलिनपदार्थके संसर्गकरि ग्लानिकूं पावती हुई बीभत्सरसकूं दिखावती है औ—

(८)क्रोधादिकके प्रसंगसैं भय दिखावती हुई रौद्ररसकूं दिखावती है औ—

(९) प्रियपदार्थके नाशकारि उदासीन हुई शांतिरसकूं दिखावती है ॥

(१) बुद्धि जब शास्त्रसंस्कारसहित होवै तब द्वितीयपृष्ठगत ८वें टिप्पणविषै उक्त अमानित्वसैं आदिलेके औ ८४वें टिप्पणविषै उक्त दैवीसंपत्तिरूप भूषणयुक्त हुई शृंगाररसकूं दिखावती है। औ—

(२) कामादिकशत्रुनके जयविषै पुरुषार्थकरि वीररसकूं दिखावती है। औ—

(३) अध्यात्मादिदुःखकरि ग्रस्त पुरुषकूं देखिके द्रवीभावकूं पाई हुई करुणारसकूं दिखावती है। औ—

(४)एक ही अद्वितीय असंग निर्विकार निष्प्रपंच ब्रह्मविषै सजातीयआदिभेदयुक्त औ संग अरु कर्तृत्वादिविकारवान् प्रपंचकूं देखिके वा गुरुकृपासैं अलैकिकवस्तुकूं जानिके आश्चर्यवान् हुई अद्भुतरसकूं दिखावती है। औ—

(५) राज्यपदसैं पतन होयके रंकपदकूं प्राप्त भये राजेकी न्याईं ब्रह्मभावसैं पतन होयके जीवभावकूं प्राप्त भये परमात्माकूं देखिके वा अपरोक्षज्ञानकी प्राप्तिकरि हर्षकूं पायके वा निरावरणस्वरूपानंदकूं अनुभवकरिके हास्यरसकूं दिखावती है। औ—

(६) ज्ञानसैं विना निवारण करनैकूं अशक्य जन्ममरणादि संसारदुःखकी चिंताकारि भयकूं पावती हुई भयानक रसकूं दिखावती है। औ—

नाटकदीपः ॥१०॥ श्लोकांकः ११२१	स्वस्थानसंस्थितो दीपः सर्वतो भासयेद्यथा । स्थिरस्थायी तथा साक्षी बहिरंतःप्रकाशयेत् १५	टीकांकः ३९९७ टिप्पणांकः ७५०

णामनुकूलव्यापारवत्त्वात्तालादिधारिसमानत्वमि न्द्रियमाणाम् । एतत्सर्वावभासकत्वात् साक्षिणो दीपसादृश्यमस्तीति द्रष्टव्यम् ॥ १४ ॥

९७ ननु साक्षिणोऽप्यहंकाराद्यवभासकत्वे तेन तेन संबंधापगमागमरूपविकारवत्त्वं स्यादित्याशङ्क्याह (स्वस्थानेति)—

९८] दीपः यथा स्वस्थानसंस्थितः सर्वतः भासयेत् तथा स्थिरस्थायी साक्षी बहिः अन्तः प्रकाशयेत् ।

९९) दीपो यथा गमनादिविकारशून्यः स्वदेशेऽवस्थित एव सन् स्वसंनिहिताखिल-पदार्थानवभासयाति । एवं साक्षी अपीति भावः ॥ १५ ॥

अनुकूलव्यापारवान् होनैतें इंद्रियनकूं तालआदिकके धारण करनैहारे पुरुषनकी समानता है औ इन सर्वका अवभासक होनैतें सांक्षीकूं दीपककी सदृशता है । ऐसें देखनैकूं योग्य है ॥ १४ ॥

॥ ९ ॥ साक्षीके निर्विकारीपनैका श्लोक १० उक्त दृष्टांतपूर्वक कथन ॥

९७ ननु । साक्षीकूं बी अहंकारआदिकके अवभासकपनेके हुये तिस अहंकारादिकके साथि संबंधके अपगम नाम नाश औ आगम नाम उत्पत्तिरूप विकारवान्‌पना होवैगा । यह आशंकाकरि कहे हैं:—

९८] जैसें दीप अपने स्थानके विषे स्थित हुया सर्वओरतें प्रकाशता है तैसें स्थिरस्थायी कहिये तीनि काल अचल हुया साक्षी बाहिर भीतर प्रकाशता है ।

९९) जैसें गमन आदिकविकाररहित दीपक अपनै देशविषैं स्थित हुया ही अपनै समीपके सर्वपदार्थनकूं प्रकाशता है । ऐसें गमनादिक-विकाररहित स्वस्वरूपविषै स्थिर हुया साक्षी बी सर्वकूं प्रकाशता है । यह भाव है ॥ १५ ॥

(७) शिष्टनिंदित यथेच्छाचरणरूप दुराचारसें ग्लानिकूं पावती हुई बीभत्सरसकूं दिखावती है । औ—

(८) अज्ञजननकूं सन्मार्गविषै प्रवृत्ति करावनेके वास्ते संसारदुःखके भयकूं जनावती हुई वा तत्त्वज्ञानके बलकरि कालकूं बी डरावती हुई रौद्ररसकूं दिखावती है । औ—

(९) दोषदृष्टिजन्य वा मिथ्यात्वदृष्टिजन्य वैराग्यके उदय-करि वा जगत्‌की विस्मृतिरूप उपरामके उदयकरि प्रपंचकी अरुचिकूं पायके शांतिरसकूं दिखावती है । औ—

(१०) निरावरण परिपूर्ण सत्त्वात्मिक जीवन्मुक्तिके विलक्षण आनंदकूं आस्वादन करती हुई नवरसतैं विलक्षण दशमरस कूं दिखावती है ॥

इस रीतिसैं बुद्धि नवरसकूं दिखायके साभास अहंकारकूं रंजन करती है यातैं नर्तकीके समान है ॥

४९ जैसै तालमृदंगसारंगीआदिकवाद्यनके धारनैहारे पुरुष नर्तकीकी चेष्टाके अनुकूल व्यापारवान् होवै हैं । तैसें इंद्रिय बी जिस जिस विषयके ग्रहण करनेकूं बुद्धि जाती है तिस तिस विषयके सन्मुख होनैकरि बुद्धिके विकार जे परि-णाम तिनके अनुकूलव्यापारवान् होवै हैं । यातैं इंद्रिय ताल-आदिक धारिनके समान हैं ॥

५० जैसें नृत्यशालाविषै स्थित दीपक जब सभास्थित होवै तब बाहिर भीतर सर्व ओरतें राजा आदिक सर्वकूं प्रका-शता है औ जब सभा न होवै तब बी प्रकाशता है औ आप गमनआगमनआदिकक्रिया विकारसैं रहित हुया ज्यूंका त्यूं अपनै स्थानविषैं स्थित है, तैसें साक्षी बी जाग्रत्स्वप्न-कालमैं स्थित अहंकारादिकसर्वकूं प्रकाशता है औ सुषुप्ति, मूर्च्छा अरु समाधिकालविषै इन सर्वके अभाव हुये तिनके अभावकूं प्रकाशता है औ आप गमनआगमनआदिक-विकारनसैं रहित हुया ज्यूंका त्यूं स्वमहिमामैं स्थित है । यातैं साक्षी दीपकके समान है ॥

टीकांकः ४००० टिप्पणांकः ॐ	बहिरंतर्विभागोऽयं देहापेक्षो न साक्षिणि । विषया बाह्यदेशस्था देहस्यांतरहंकृतिः ॥ १६ ॥ अंतस्था धीः सहैवाक्षैर्बहिर्याति पुनः पुनः । भास्यबुद्धिस्थचांचल्यं साक्षिण्यारोप्यते वृथा १७	नाटकदीपः ॥१०॥ ११३२ ११३३

४००० ननु साक्षिणो बहिरन्तरवभासकत्वाभिधानमनुपपन्नं " अपूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम्" इति श्रुत्या तस्य बाह्यान्तरविभागाभावाभिधानादित्याशङ्क्याह (बहिरिति)–

१] अयं बहिरंतर्विभागः देहापेक्षः न साक्षिणि ॥

२ कस्य बाह्यत्वं कस्य चांतरत्वमित्यत आह–

३] विषयाः बाह्यदेशस्थाः । देहस्य अन्तः अहंकृतिः ॥ १६ ॥

४ ननु " स्थिरस्थायी तथा साक्षी बहिरंतः प्रकाशयेत्" इति अविकारिण सतो बहिरन्तःरवभासकोक्तिरयुक्ता " अहं घटं पश्यामि" इत्यत्राहमित्यन्तरहंकारसाक्षितया प्रथमतो भासकस्यानन्तरं "घटं पश्यामि" इति घटाकारवृत्तिस्फुरणरूपेण बाहिर्निर्गमानुभावादित्याशक्याह–

५] अंतस्था धीः अक्षैः सह एव पुनः

॥ २ ॥ परमात्माके यथार्थस्वरूपका विशेषकारि निर्द्धार

॥ ४०००–४०५० ॥

॥ १ ॥ साक्षीपरमात्मामैं बुद्धिके चंचलताका आरोप ॥ ४०००–४०११ ॥

॥ १ ॥ वास्तवसाक्षीकूं बाहिरभीतरपनेके अभाव पूर्वक बाह्यभीतरके वस्तुका कथन ॥

४००० ननु, साक्षीकूं बाहिर भीतर अवभासकपनैका कथन अयुक्त है । काहेतैं "न पूर्व कहिये कारण है । न अपर कहिये कार्य है । न अंतर है । न बाह्य है" इस श्रुतिकरि तिस साक्षीआत्माके बाहिरभीतरविभागके अभावके कथनतैं । यह आशंकाकारि कहै हैं:—

१] यह जो "बाहिर भीतर " ऐसा विभाग है, सो देहके अपेक्षाकारि है, साक्षीविषै नहीं है ॥

२ तब किसकूं बाह्यपना है औ किसकूं आंतरपना है ? तहां कहै हैं:—

३] शब्दादिकविषय बाह्यदेशविषै स्थित है औ देहके भीतर अहंकार है ॥ १६ ॥

॥ २ ॥ बाहिरभीतरप्रकाशमान साक्षीविषै बुद्धिकी चंचलताका आरोप ॥

४ ननु " तैसैं स्थिरस्थायी हुया साक्षी बाहिर भीतर प्रकाशता है" इस १९ वे श्लोकउक्तप्रकारकरि अविकारी हुये साक्षीके बाहिरभीतरअवभासकपनैका कथन अयुक्त है । काहेतै ? " मै घटकूं देखता हूं " इहां " मै" ऐसैं भीतर अहंकारका साक्षी होनैकारि प्रथमतै भासकसाक्षीके पीछे "घटकूं देखता हूं" ऐसै घटाकारवृत्तिके स्फुरणरूपकारि बाहिरनिर्गमनके अनुभवतैं, यह आशंकाकारि कहै हैं:–

५] देहके भीतर स्थिति जो बुद्धि है । सो इंद्रियनके साथि हीं वारंवार

नाटकदीप ॥ १० ॥ श्लोकांक: ११३४ ११३५	गृहांतरगतः स्वल्पो गवाक्षादातपोऽचलः । तत्र हस्ते नर्त्यमाने नृत्यतीवातपो यथा ॥१८॥ निजस्थानस्थितः साक्षी बहिरंतर्गमागमौ । अकुर्वन्बुद्धिचांचल्यात्करोतीव तथा तथा॥१९॥	टीकांक: ४००६ टिप्पणांक ॐ

पुनः बहिः याति । भास्यबुद्धिस्थचाञ्चल्यं साक्षिणि वृथा आरोप्यते ॥

६) द्रष्टृग्राहकत्वेन देहान्तरावस्थिता बुद्धिः रूपादिग्रहणाय चक्षुरादिद्वारा भूयो भूयो निर्गच्छति । तथा च तन्निष्ठं चाञ्चल्यं तद्भासके साक्षिण्यारोप्यते अतो न वास्तवं साक्षिणः चाञ्चल्यमिति भावः ॥ १७ ॥

७ भासके भास्यचाञ्चल्यारोपः क्व दृष्ट इत्याशंक्याह (गृहान्तरगत इति)—

८) गवाक्षात् गृहांतरगतः स्वल्पः आतपः अचलः तत्र हस्ते नर्त्यमाने यथा आतपः नृत्यति इव ॥

९) गवाक्षात् गृहांतरगतः स्वल्पातपोऽचल एव वर्तते तत्र तस्मिन्नातपे पुरुषेण हस्ते नर्त्यमाने इतस्ततः चाल्यमाने यथा आतपो नृत्यतीवचलतीवलक्ष्यते न तु चलतीत्यर्थः ॥ १८ ॥

१० दार्ष्टान्तिकमाह—

११] निजस्थानस्थितः साक्षी बहिः अंतः गमागमौ अकुर्वन् बुद्धिचाञ्चल्यात् तथा तथा करोति इव ॥ १९ ॥

बाहिर जाती है । ऐसैं हुए साक्षीकरि भासनैं योग्य बुद्धिकी चंचलता साक्षीविषै वृथा आरोपित होवै है ॥

६) "मैं" इस आकारकरि द्रष्टा जो साभासअहंकार, ताकी ग्राहक कहिये विषय करनैहारी होनैकरि देहके भीतर स्थित जो बुद्धि है "सो यह घट है" इत्यादिआकारकरि रूपादिकके ग्रहणअर्थ कहिये विषय करनैअर्थ चक्षुआदिकइंद्रियद्वारा फेरि फेरि बाहिर गमन करती है । तैसैं हुये तिस बुद्धिविषै स्थित जो चंचलपना है, सो तिस बुद्धिके भासक साक्षीविषै मूढनकरि आरोप करिये है । यातैं साक्षीकूं वास्तव बाहिर भीतर गमन करनैरूप चंचलपना नहीं है । यह भाव है ॥ १७ ॥

॥ ३ ॥ प्रकाशकविषै प्रकाश्यकी चचलताके आरोपमैं दृष्टांत ॥

७ भासक जो प्रकाशक ताविषै भास्य जो प्रकाश्यवस्तु ताकी चंचलताका आरोप कहां देख्या है ? यह आशंका करि कहै हैं—

८] गवाक्षतैं गृहके भीतर प्राप्त जो स्वल्पआतप कहिये सूर्यका प्रकाश है, सो स्वरूपतैं अचल होवै है । तहां हस्तके नर्त्यमान कहिये नचाये हुए जैसे आतप नृत्य करतेहुएकी न्यांई होवै है ॥

९) गवाक्ष जो झरोखा तातैं गृहके भीतर आया जो थोड़ा आतप कहिये धूप है, सो अचल ही वर्तता है । तिस आतपविषै पुरुषकरि हस्तके इधर उधर चलायमान किये हुये जैसैं आतप चलतेकी न्यांई देखिये है औ चलता नहीं । यह अर्थ है ॥ १८ ॥

॥ ४ ॥ दृष्टांतउक्तअर्थकी दार्ष्टांतमैं योजना ॥

१० दार्ष्टांतिककूं कहै हैं:—

११] तैसैं निजस्थानमैं कहिये स्वस्वरूपविषै स्थित हुया साक्षी बाहिरभीतरगमनआगमनकूं न करता हुया बुद्धिकी चंचलतातैं तैसैं तैसैं करतेहुयेकी न्यांई होवै है ॥

टीकांक: ४०१२ टिप्पणांक: ॐ	न बाह्यो नांतरः साक्षी बुद्धेर्देशौ हि तावुभौ बुद्ध्याद्यशेषसंशांतौ यत्र भात्यस्ति तत्र सः ॥२०॥ देशः कोऽपि न भासेत यदि तर्ह्यस्त्वदेशभाक् । सर्वदेशप्रकृत्यैव सर्वगत्वं न तु स्वतः ॥ २१ ॥	नाटकदीप ॥१०॥ ११३६ ११३७

१२ "निजस्थानस्थितः" इत्यनेन किं बाह्यादिदेशस्थत्वमेवोच्यते नेत्याह (न बाह्य इति)—

१३] साक्षी बाह्यः न आंतरः न ॥

१४ तत्र हेतुमाह (बुद्धेरिति)--

१५] हि तौ उभौ बुद्धेः देशौ ॥

१६ तर्हि किं विवक्षितमित्यत आह---

१७] बुद्ध्याद्यशेषसंशांतौ सः यत्र भाति तत्र अस्ति ॥

१८) आदिशब्देनेन्द्रियादयो गृह्यन्ते । संशान्तिशब्देन तत्प्रतीत्युपरतिर्विवक्षिता २०॥

१९ ननु सर्वव्यवहारोपरतौ देश एव नोपलभ्यते कुतस्तन्निष्ठत्वमुच्यत इत्याशङ्क्य स्वाभिप्रायमाविष्करोति (देश इति)-

२०] यदि कः अपि देशः न भासेत तर्हि अदेशभाक् अस्तु ॥

२१) देशादिकल्पनाधिष्ठानस्य स्वातिरिक्तदेशापेक्षा नास्तीति भावः ॥

॥ २ ॥ साक्षीके देशकालादिरहित निजस्वरूपके कथनपूर्वक ताके अनुभवका उपाय ४०१२–४०५० ॥

॥ १ ॥ बुद्धिके बाह्यअंतरदेशतैं रहित साक्षीका निजस्थान ॥

१२ "निजस्थानविषै स्थित हुया" इस १९ श्लोकगत कथनकरि क्या साक्षीका बाह्यआदिकदेशविषै स्थितपना कहिये है ? यह आशंका करि साक्षीविषै बाह्यअंतरदेशकी कल्पना नहीं है । ऐसें कहै हैं:--

१३] साक्षी बाह्य नहीं है औ आंतर नहीं है ॥

१४ तिसविषै कारण कहै हैं:—

१५] जातैं सो बाहिर भीतर दोनूं बुद्धिके देश हैं, यातैं साक्षीके नहीं ॥

१६ तब साक्षीका स्थान क्या कहनैकूं इच्छित है ? तहां कहै हैं:—

१७] बुद्धिआदिकसर्वकी संशान्तिके हुये सो साक्षी जहां स्वस्वरूपविषै भासता है तहां ही है ॥

१८) इहां आदिशब्दकरि इंद्रियआदिक ग्रहण करिये हैं औ संशान्तिशब्दकरि तिन बुद्धिआदिकनकी प्रतीतिकी निवृत्ति कहनैकूं इच्छित है ॥ २० ॥

॥ २ ॥ देशादिरहित आत्माके सर्वगतपनै औ सर्वसाक्षीपनैकी अवास्तवता ॥

१९ ननु सर्वव्यवहार जो प्रतीति ताकी निवृत्तिके हुए देश ही प्रतीत नहीं होवै है । तब साक्षीका तिसविषै स्थितपना काहेतैं कहिये है ? यह आशंकाकरि अपनै अभिप्रायकूं प्रगट करै हैं:----

२०] जब कोई बी देश नहीं भासता है । तब देशकूं न भजनैहारा कहिये देशरहित साक्षी होहु ॥

२१) देशादिककी कल्पनाके अधिष्ठानकूं अपनैतैं भिन्न देशकी अपेक्षा नहीं है । यह भावहै॥

नाटकदीपः ॥१०॥ श्लोकांकः ११३८ ११३९	अंतर्बहिर्वा सर्वं वा यं देशं परिकल्पयेत् । बुद्धिस्तद्देशगः साक्षी तथा वस्तुषु योजयेत् ॥२२॥ यद्यद्रूपादि कल्प्येत बुद्ध्या तत्तत्प्रकाशयन् । तस्य तस्य भवेत्साक्षी स्वतो वाग्बुद्ध्यगोचरः ॥२३॥	टीकांक ४०२२ टिप्पणांक ॐ

२२ ननु देशाद्यभावे शास्त्रे सर्वगतसर्वसाक्षित्वाद्युक्तिर्विरुध्येतेत्यत आह—

२३]सर्वदेशप्रकल्पत्या एव सर्वगतत्वम्

२४ स्वाभाविकमेव किं न स्यादित्यत आह (न तु स्वत इति)—

२५] स्वतः तु न ॥

२६) अद्वितीयत्वादसङ्गत्वाच्चेति भावः ॥ २१ ॥

२७ सर्वगतत्ववत्सर्वसाक्षित्वमपि न वास्तवमित्याह—

२८] अंतः वा बहिः वा यं सर्वं देशं बुद्धिः परिकल्पयेत । तद्देशगः साक्षी तथा वस्तुषु योजयेत् ॥ २२ ॥

२९ "तथा वस्तुषु योजयेत्" इत्येतत् प्रपञ्चयति—

३०]यत् यत् रूपादि बुद्ध्या कल्प्येत तत् तत् प्रकाशयन् तस्य तस्य साक्षी भवेत् ॥

३१ तर्हि किं तस्य निजं रूपमित्यत आह-

३२] स्वतः वाग्बुद्ध्यगोचरः ॥ २३ ॥

---

२२ ननु देशआदिकके अभाव हुये शास्त्रविषै सर्वगत कहिये सर्वविषै व्यापक औ सर्वके साक्षिपनेका जो कथन है। सो विरोधकूं पावैगा। तहां कहै हैं:—

२३] सर्वदेशकी कल्पनाकरि ही आत्माकूं सर्वगतपना है ॥

२४ स्वाभाविक कहिये स्वरूपसैं ही सर्वगतपना क्यूं नहीं होवैगा ? तहां कहै हैं:—

२५] स्वतः कहिये स्वरूपतैं सर्वगतपना नहीं है ॥

२६) आत्माकूं अद्वितीय होनैतैं औ असंग होनैतैं स्वाभाविकसर्वगतपना नहीं है । यह भाव है ॥ २१ ॥

२७ सर्वगतपनैकी न्याईं सर्वसाक्षीपना बी वास्तव नहीं है । ऐसैं कहै हैं:—

२८]अंतर वा बाहिरदेशकूं वा जिस सर्ववस्तुकूं बुद्धि कल्पती है । तिस देशविषै स्थित साक्षी कहिये है तैसैं सर्ववस्तुनविषै योजना करना ॥ २२ ॥

॥ ३ ॥ बुद्धिकल्पितवस्तुकी साक्षिताके कथनपूर्वक साक्षीका निजरूप ॥

२९ " तैसैं वस्तुनविषै योजना करना" इस २२ श्लोकउक्तकूं वर्णन करै हैं:—

३० जो जो रूपादिकवस्तु बुद्धिकरि कल्पना करिये है । तिस तिस वस्तुकूं प्रकाशता हुया तिस तिस वस्तुका साक्षी होवै है ॥

३१ तब तिसका निजरूप क्या है ? तहां कहै हैं:—

३२] स्वरूपतैं वाणी औ बुद्धिका अविषय है ॥ २३ ॥

टीकांकः ४०३३ टिप्पणांक ७९१	[34]कथं तादृङ्मया ग्राह्य इति चेन्[36]मैवं गृह्यताम् । [38]सर्वग्रहोपसंशांतौ स्वयमेवावशिष्यते ॥ २४ ॥ [41]न तत्र मानापेक्षास्ति [43]स्वप्रकाशस्वरूपतः । [44]तादृग्व्युत्पत्त्यपेक्षा चेच्छ्रुतिं पठ गुरोर्मुखात् ॥ २५ ॥	नाटकदीपः ॥१०॥ श्लोकांकः ११४० ११४१

३३ अवाङ्मनसगोचरत्वे मुमुक्षुणा न गृह्येतेति शङ्कते (कथमिति)–

३४] तादृक् मया कथं ग्राह्य इति चेत् ।

३५ अग्राह्यत्वमिष्टमेवेत्याह–

३६] मा एव गृह्यताम् ॥

३७ नन्वात्मनो "विचारेण विनष्टायां मायायां शिष्यते स्वयम्" इत्युक्तं परमात्मावशेषणं न सिद्ध्येदित्यत आह–

३८] सर्वग्रहोपसशान्तौ स्वयम् एव अवशिष्यते ॥

३९) स्वात्मातिरिक्तस्य द्वैतस्य मिथ्यात्वनिश्चयेन तत्प्रतीत्युपशांतौ स्वात्मा एव सत्यतया अवशिष्यते इति भावः ॥ २४ ॥

४० यद्यप्युक्तन्यायेन स्वात्मा परिशिष्यते तथापि तदापरोक्ष्याय किंचित्प्रमाणमपेक्षितमित्यत आह (न तत्रेति)–

४१] तत्र मानापेक्षा न अस्ति ॥

॥ ४॥ श्लोक २२ उक्त निजरूपकी अग्राह्यताकी इष्टापत्तिपूर्वक, श्लोक २३ उक्त परमात्माके अवशेषका कथन ॥

३३ वाणी अरु मनके अविषय हुये मुमुक्षुकरि ग्रहण नहीं होवैगा। इस रीतिसैं वादी शंका करै हैः–

३४] तैसा मनवाणीका अविषय साक्षी मेरेकरि कैसैं ग्रहण करनैकूं योग्य है ? ऐसैं जो कहै ।

३५ अग्राह्यपना इष्ट ही है । ऐसैं सिद्धांती कहै हैः–

३६] तौ मति ग्रहण करो ॥

३७ ननु "आत्माके विचारकरि मायाके नाश हुये आप परमात्मा ही शेष रहता है" ऐसैं तृतीय श्लोकविषै कह्या जो परमात्माका अवशेष रहना, सो नहीं सिद्ध होवैगा । तहां कहै हैः–

३८] सर्वग्रहकी कहिये सर्वप्रतीतिकी सम्यक्शांतिके हुये आप ही अवशेष रहता है ॥

३९) स्वात्मातैं भिन्न द्वैतकी मिथ्यापनैके निश्चयकरि तिस द्वैतकी प्रतीतिकी उपरातिके हुये स्वात्मा ही सत्यपनैकरि अवशेष रहता है । यह भाव है ॥ २४ ॥

॥ ५ ॥ प्रमाणअपेक्षारहित स्वप्रकाशवस्तुके श्रुतिकारि उत्तमअधिकारीकूं बोधनका उपाय ॥

४० यद्यपि श्लोक २४ उक्त न्यायकरि स्वात्मा परिशेषका विषय होवै है, तथापि तिसके अपरोक्ष करनैअर्थ कछुक प्रमाण अपेक्षित है । तहां कहै हैः–

४१] तिस स्वात्माविषै प्रमाणकी अपेक्षा नहीं है ॥

---

७९१ स्वयंप्रकाशरूप आत्माकूं माननैहारे हमकूं तिसका नहीं ग्रहण (विषय) करना इष्ट है औ शब्दकी लक्षणावृत्तिकरि औ मनकी वृत्तिव्याप्तिकरि मनआदिकका साक्षी स्वयंप्रकाशरूप सो आत्मा जानना योग्य है ॥

नाटकदीपः ॥१०॥ श्लोकांकः ११५२	यदि सर्वगृहत्यागोऽशक्यस्तर्हि धियं व्रज । शरणं तदधीनोंतर्बहिर्वैषोऽनुभूयताम् ॥२६॥ ॥ इति श्रीपंचदश्यां नाटकदीपः ॥ १० ॥	टीकांकः ४०५२ टिप्पणांकः ७५२

४२ तत्र हेतुमाह--

४३] स्वप्रकाशस्वरूपतः.॥

४४ नन्वात्मनः स्वप्रकाशतया स्वतः स्फूर्तौ मानं नापक्ष्यत इति व्युत्पत्तिसिद्ध्ये मानमपेक्षितमित्याशङ्क्य श्रुतिरेवात्र प्रमाणमित्याह--

४५] तादृग्व्युत्पत्त्यपेक्षा चेत् गुरोः मुखात् श्रुतिं पठ ॥ २५ ॥

---

४२ तिसाविषै हेतु कहै हैं:--

४३] स्वप्रकाशस्वरूप होनैतैं ॥

४४ ननु " आत्माकी स्वप्रकाशताकरि आपहीतैं स्फूर्तिविषै प्रमाण अपेक्षित नहीं है" ऐसैं बोधकी सिद्धि अर्थ प्रमाण अपेक्षित है।यह आशंकाकरि श्रुति ही इहां प्रमाण है । ऐसैं कहै हैं:--

४५] तैसैं बोधकी अपेक्षा जो होवै तौ ब्रह्मनिष्ठगुरुके मुखतैं श्रुतिकूं पठन कर ॥ २५ ॥

४६ एवमुत्तमाधिकारिण आत्मानुभवोपायमभिधाय मन्दाधिकारिस्तं दर्शयति (यदीति)--

४७] सर्वगृहत्यागः यदि अशक्यः तर्हि धियं शरणं व्रज ॥

४८ बुद्धिशरणत्वे किं फलमित्यत आह--

४९] तदधीनः अन्तः वा बहिः एषः अनुभूयताम् ॥

॥६॥ मंदअधिकारीकूं आत्माके अनुभवका उपाय ॥

४६ ऐसैं उत्तमाधिकारीकूं आत्माके अनुभवके उपायकूं कहिके जब मंदअधिकारीकूं तिस आत्मानुभवके उपायकूं दिखावै हैं:--

४७] सर्वप्रतीतिका त्याग जब अशक्य है, तब बुद्धिके प्रति शरण जावहु कहिये लक्ष्य करहु ॥

४८ बुद्धिके शरण होनैविषै क्या फल होवै है ? तहां कहै हैं:--

४९] तिस बुद्धिके अधीन अंतर वा बाहिर यह परमात्मा अनुभव करना ॥

---

५२ जैसें " शाखाविषै चंद्र है" इस वचनकूं सुनिके स्थूलदृष्टिवाला पुरुष शाखाकूं लक्ष्यकरिके पीछे धर्मसहित शाखाकी दृष्टिकूं छोडिके शाखाके समीप स्थित होनैकरि शाखाके आधीन चंद्रकूं देखता है । तैसैं मदबुद्धिवाला अधिकारी गुरुके उपदेशतैं बुद्धिकूं लक्ष्यकारिके बाह्यअंतर धर्मसहित बुद्धिकी दृष्टिकूं छोडिके अधिष्ठान साक्षीरूपकारि बुद्धिके समीप स्थित होनैकरि बुद्धिके आधीन हुयेकी न्याई तो परमात्मा है, ताकूं स्वस्वरूपकारि अनुभव करता है ॥

५०) बुद्ध्या यद्यत्परिकल्प्यते बाह्यमान्तरं वा तस्य तस्य साक्षित्वेन तदधीनः परमात्मा तथैव अनुभूयताम् इत्यर्थः ॥२६॥

---

५० बुद्धिकरि जो जो बाह्य वा आंतर-वस्तु चारि औरतैं कल्पना करिये है। तिस तिस वस्तुका साक्षी होनैकरि तिस बुद्धिके अधीन परमात्मा है। सो तैसे साक्षीपनैकरि ही अनुभव करना। यह अर्थ है ॥ २६ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यविद्यारण्य-मुनिवर्यकिङ्करेण रामकृष्णाख्यविदुषा विरचिते पञ्चदशीप्रकरणे नाटकदीप-व्याख्या समाप्ता ॥ १० ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यबापु-सरस्वतीपूज्यपादशिष्यपीतांबरशर्म-विदुषा विरचिता पञ्चदश्या नाटकदीपस्य तत्त्वप्रकाशि-काऽऽख्या व्याख्या समाप्ता ॥ १० ॥



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई.